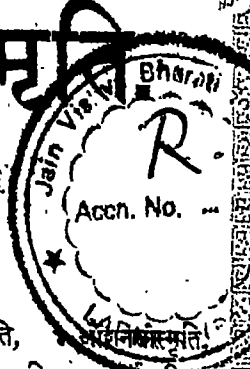


अष्टादशस्मृति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

— ८९३३० —

३ ३ ३ ३ ३



- १ अत्रिस्मृति, २ विष्णुस्मृति, ३ वीरतन्मृति, ४ अश्विनीस्मृति,
५ आश्विनीस्मृति, ६ यमस्मृति, ७ उपस्तम्बस्मृति, ८ सर्वतस्मृति,
९ कात्यायनस्मृति, १० वृहस्पतिस्मृति, ११ पाराशरस्मृति, १२ व्यास-
स्मृति, १३ शङ्खस्मृति १४ लिखितस्मृति, १५ दक्षस्मृति,
१६ यौतमस्मृति, १७ आतातपस्मृति, १८ ऋषिस्मृति.

इनके

श्रीगणेशपुत्रगुरुलभूषण पं. वैकुण्ठलाल पं. श्यामसुन्दरलाल
त्रिपाठीजीने संपादित करवाये,

खेमराज श्रीकृष्णदासने

संस्कृत

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस में

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

चैत्र संवत् १९६९, शक्र १८२०.

सरकारी कानूनके मुताबिक पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर"

ग्रन्थालयाधीन स्वामीन रक्कते.

अष्टादशस्मृतियोंकी भूमिका ।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ।

काणः स्यादिकया हीनो द्वाभ्यामन्यः प्रकीर्तितः ॥

वेद और धर्मशास्त्र ब्राह्मणोंकी दाहिनी बाँई दो आँखें हैं, इनमेंसे किसी एक (श्रुति वा स्मृति) के न जाननेसे काना और दोनोंके न जाननेसे ब्राह्मण अन्धा होता है अर्थात् बाहरकी आँख होनेपरभी न होनेके तुल्यही है ।

कर्तव्य विषयको जब आँख सुझादेती है तभी मनुष्य उसके करनेमें प्रवृत्त होता है । धर्मशास्त्र हमको यही शिक्षा देते हैं कि अमुक कर्म कर्तव्य है, अमुक नहीं ।

धर्मशास्त्रमात्रमें द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंका अधिकार है । महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि—“निषेकादिः श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्सम्यङ् नान्यस्य कस्यचित् ॥” अर्थात् गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टि (मृत संस्कार) पर्यन्त जिनकी सभी क्रिया वैदिक मन्त्रोंसे होती हैं उन्हीं मात्रका धर्मशास्त्रके पढ़ने और तदनुसार कर्म करनेका अधिकार है दूसरे किसीका नहीं ।

पहिले भातवर्षमें लोग अपने अपने कर्म करनेमें किसी प्रकार आलस्य नहीं करते थे बल्कि यों कहिये राजनियमके अनुसार ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की जाती थी कि आप अपना धर्मपालन कीजिये उसमें जो बाधाएँ उपस्थित होती थीं राजा उनका निवारण करते थे । भोजनाच्छादनादिकी तो कोई भी चिन्ता न थी ।

अब समयने ऐसा पलटा खया है कि द्विजाति अपना कर्म धर्म भलीभाँति कर नहीं सकते । कितनीही पराधीनता ऐसी आपड है कि मनुष्य विवश है । ऐसी दशामें हम इतना अवश्य चाहते हैं कि प्रत्येक सनातन धर्मियोंको अपना अपना कर्तव्य तो मालूम होजाय जिसके अनुसार वह यथाशक्ति वर्तें ।

यह अष्टादशस्मृति धर्मका भाण्डार है इनमें सभी विषय मिलेंगे जिनका यथाशक्ति आचरण करना ही द्विजोंका कर्तव्य है । कोईभी विषय इसका छिष्ट न रहजाय इसलिये हमने मुरादाबाद निवासी पं० श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठीजीसे सरल उत्तम भाषाटीका कराई है । आशा है कि, प्रत्येक गृहस्थ इस अत्यन्त उपयोगी धर्मग्रन्थको लेकर स्वकर्तव्य पालन करेंगे ।

खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष “श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम प्रेस—बंबई.

भाषाटीकासमेत अष्टादशस्मृतिकी विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
अत्रि स्मृति १.		स्त्रियोंको प्रतिमास रज निकलनेसे	
लोगोंके हितके लिये मुनिजनोंका अत्रि-		सदा शुचित्वका कथन ...	२३
ऋषिसे प्रश्न, ऋषिका स्मृतिनामक		मदिरासे छुये घडेमेंसे जलपानमें प्राय-	
धर्मशास्त्रको बनाना, इसके श्रवणप-		श्चित्त, जूता, विष्टा आदिसे दूषित	
ठनका फल ...	१	कूपका जल पीनेसे प्रायश्चित्त ...	२५
स्त्रवर्णके अनुसार कर्म करनेसे लोकप्रि-		गोवधका प्रायश्चित्त ...	२७
यता होती है, चारों वर्णोंका कर्म		दूषित जलके पानमें प्रायश्चित्त ...	२९
और उनके उपजीविकाका विचार		स्पर्शास्पर्शदोषका प्रायश्चित्त ...	३०
ब्राह्मण आदिको पतित करनेवाली	२	शूद्रके यहां का जल पानकरनेमें प्राय-	
क्रियाका कथन ...		श्चित्त ...	३१
क्षत्रियके कर्मका निरूपण, मलशुद्धिका	३	पतितका अन्न खानेमें ब्राह्मणको प्राय-	
कथन, ब्राह्मणोंका लक्षण ...		श्चित्त ...	३२
इष्ट, पूर्व, यम, नियमादिका विवरण	४	पशु वेद्यागमन करनेमें प्रायश्चित्त ...	३३
पुत्रकी प्रशंसा ...	६	रजस्वला स्त्रीकी कुत्ता आदिके स्पर्श-	
प्रमादसे या आलस्यसे संध्योद्धरणमें	७	से शुद्धि ...	३४
प्रायश्चित्त ...		मूर्ख ब्राह्मणके मारनेमें प्रायश्चित्त ...	३५
जूठा आदि भोजन करने में प्रायश्चित्त	८	बिल्लीआदिसे च्छिद्य अन्नके खानेमें	
मुर्दा पडनेसे अपवित्र गृहकी शुद्धि ...	९	प्रायश्चित्त, और ऊंट आदिके गाढी-	
सूतकनिर्णय ...	१०	पर बैठनेमें प्रायश्चित्त...	३६
परिवेत्ता और परिवित्ति इनके दोष	११	अमक्ष्य अन्नके भक्षणमें प्रायश्चित्त ...	३७
कथन ...		अमंगल पदार्थ सेवनका निषेध मौन	
चांद्रायण कृच्छ्रातिकृच्छ्रका कथन ...	१३	करनेके स्थान और उसका फल ...	३९
स्त्री और शूद्रोंको पतित करनेवाले क-	१४	बहुविध दानोंका फल	४०
र्मका कथन		दान देनेमें योग्य ब्राह्मण ...	४१
भोजनमें निषिद्ध पात्र ...	१७	श्राद्धकाल; श्राद्धदानकी प्रशंसा और	
छैः भिक्षुक होते हैं ...	१९	उसका फल ...	४२
धोवी आदिके अन्नभक्षणमें प्रायश्चित्त	२०	दशविध ब्राह्मणोंका निरूपण ...	४५
और चांडाल आदिके अन्नभक्षणमें		दान देनेमें अयोग्य ब्राह्मणोंका कथन	४६
प्रायश्चित्त ...	२१	अत्रिजीने बनायी हुई स्मृतिके श्रवण	
		पठनका फल	४८

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
विष्णुस्मृति २.		अध्याय ६.	
अध्याय १.		चौथे आश्रम (संन्यास) के धर्मका	
कलापनगरमें वासकरनहारे ऋषियोंका		कथन ८०	
विष्णुजीसे धर्मोंके विषे प्रश्न करना		अध्याय ७.	
गर्माधानसे द्विजसंस्कारोंके काल-		संक्षेपसे योगशास्त्रका सार कथन ... ८२	
का विचार उपवीतके अनंतर		औशनसीस्मृति ४.	
ब्रह्मचारीके सामान्य नियम ... ४१		जाति और शुक्तिका विधान और अनु-	
अध्याय २.		लोम प्रतिलोम उत्पन्नहुई जाति-	
गृहस्थियोंके उत्तम धर्मोंका कथन ... ४२		योंका विचार ८५	
अध्याय ३.		आंगिरसस्मृति ५.	
वानप्रस्थ (वननिवासी) के धर्मोंका		चारों वर्णोंके गृहस्थ आदि आश्रमधर्मोंमें	
निरूपण ५५		प्रायश्चित्तविधिका निरूपण ... ९१	
अध्याय ४.		यमस्मृति ६.	
संन्यासीके संक्षेपसे नियमोंका कथन... ५६		महापाप तथा उपपातकादि दोषनिवृ-	
अध्याय ५.		त्तिके लिये संक्षेपसे प्रायश्चित्तवि-	
संक्षेपसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके		धिका निरूपण ९९	
धर्मोंका कथन ५९		आपस्तंबस्मृति ७.	
हारीतस्मृति ३.		अध्याय १.	
अध्याय १.		बालक गौ आदिके पालन करनेमें	
वर्णआश्रमोंके धर्म जाननेकेलिये मुनि-		असावधानीसे उनको विपत्ति आ-	
योंका हारीतनामक ऋषिसे प्रश्न		जाय तो इस विषयमें प्रायश्चित्त	
करना और उनसे ब्राह्मणके आचा-		वर्णन ११०	
रका कथन... .. ६३		अध्याय २.	
अध्याय २.		जलशोधनका विचार ११४	
क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके धर्मका कथन		अध्याय ३.	
अध्याय ३.		विना जानेहुये अंत्यजके घरमें निवास	
यज्ञोपवीत हानेके उपरान्त ब्रह्मचारीके		होजानेपर विदित होय तो उस गृह-	
नियम ६८		पतिको करनेयोग्य प्रायश्चित्तका	
अध्याय ४.		कथन तथा बाल वृद्ध आदिके पापके	
ब्राह्मविवाहसे स्त्रीका स्त्रीकारकरनेपर		प्रायश्चित्तकी व्यवस्था ... ११५	
आचरणे योग्य धर्मका निरूपण.... ७०		अध्याय ४.	
अध्याय ५.		चांडालके कृप अथवा उसके वरतनम	
वानप्रस्थधर्मोंका निरूपण... .. ७८		अज्ञानसे जलपान करनेमें चारों	
		वर्णोंको प्रायश्चित्तका कथन ११७	

विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय ५.	
ब्राह्मण चांडालको स्पर्श कर जलपा- नादि करे उसका प्रायश्चित्त तथा उच्छिष्ट अन्न खानेमें प्रायश्चित्त ११८	
अध्याय ६.	
नीलीवस्त्रके धारण आदिमें प्रायश्चित्त १२०	
अध्याय ७.	
रजस्वलास्त्रीकी शुद्धिकी विचारणा १२१	
अध्याय ८.	
कौंसी आदि पात्रोंकी शुद्धि और शूद्रा- न्नभक्षणका प्रायश्चित्त ... १२४	
अध्याय ९.	
भोजन करते २ अघोवायु वा मलत्याग होय उसकी शुद्धि तथा भक्षणके, चाटनेके, पीनेके और खानेके अयो- ग्य पदार्थके सेवनमें प्रायश्चित्त ... १२५	
अध्याय १०.	
क्रोधरहित क्षमाशील पुरुषको ही मोक्ष लाम होता है ... १३१	
संवर्तस् ति ८.	
यज्ञोपवीत होनेपर ब्रह्मचारीका अवश्य कर्तव्य ... १३३	
विवाहके अनंतर गृहस्थीके आचारका निरूपण ... १३६	
फलके साथ नानाविधदानोंका वर्णन वानप्रस्थ और संन्यासआश्रमके धर्मोंका निरूपण ... १४३	
ब्रह्महत्या आदि पातकोंका प्रायश्चित्त १४४	
कात्यायनस्मृति ९.	
खण्ड १.	
यज्ञोपवीत बनानेकी विधि और वृद्धि- श्राद्धमें पूजनयोग्य सोलह मातृका- ओंके नामका कथन ... १५७	

विषय.	पृष्ठांक.
खण्ड २.	
वृद्धि (नांदीमुख) श्राद्धमें जो विशेष हो उसका कथन ... १५९	
खण्ड ३.	
वृद्धिश्राद्धका विधान ... १६०	
खण्ड ४.	
वृद्धिश्राद्धमें पिंडदानकी विधि ... १६२	
खण्ड ५.	
वृद्धिश्राद्ध कियेविना गर्भाधानादिसं- स्कारोंकी सां नहीं होती ... १६३	
खण्ड ६.	
अग्निके आधानकालका निरूपण ... १६४	
खण्ड ७.	
दोनों अरणिका विचार ... १६६	
खण्ड ८.	
दोनों अरणियोंको घिसनेसे अग्निकी उत्पत्ति होतीहै उसकी विधि ... १६७	
खण्ड ९.	
होमकालका कथन तथा विना प्रदीप्त- हुये अग्निमें हवन करनेसे दाष ... १७०	
खण्ड १०.	
ज्ञानयोग्य जलोंका विचार ... १७२	
खण्ड ११.	
संध्योपासनके विधिका निरूपण ... १७३	
खण्ड १२.	
पितरोंका तर्पण ... १७५	
खण्ड १३.	
पांचयज्ञोंका विचार ... १७७	
खण्ड १४.	
वलिदानका विचार और अग्निकी प्रार्थना ... १७८	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
खण्ड १५.		खण्ड २७.	
ब्रह्माको दक्षिणा देनेका प्रमाण तथा		अन्वाहार्यकी विधि २०४	
आव्यस्थाली आदिके प्रमाणका		खण्ड २८.	
कथन ... १८०		अध्ययनमें अनध्यायोंका विचार ... २०७	
खण्ड १६.		खण्ड २९.	
अन्वाहार्य आम्रहायणादि पितृयज्ञोंका		पशुके श्रोतोंका दर्भकूर्चादिसे धोना	
कथन ... १८३		इसकी विधि .. २०९	
खण्ड १७.		वृहस्पतिस्मृति १०.	
पितृयज्ञविधिका निरूपण... १८५		भूमिदानकी प्रशंसा ... २१२	
खण्ड १८.		गयाश्राद्ध और वृषोत्सर्गकी पुत्रको	
दर्शपौर्णमासादिमें होमादिका विचार १८८		अवश्य कर्तव्यता ... २१४	
खण्ड १९.		त्वदत्त वा परदत्त भूमिका ब्राह्मणसे	
पति प्रवासमें गया हो तो अभिलेखमें		अपहार करनेमें दोषोंका कथन ... २१५	
खीका अधिकार तथा खीकी प्रशंसा और		ब्रह्मस्व हरणकरनेसे सर्वस्वका नाश... २१६	
अग्निहोत्रीकी प्रशंसा ... १९०		सत्तात्रको सुवर्णआदिके दानसे सर्वपा-	
खण्ड २०.		तकोंका नाश ... २१७	
पुनराधान अभिसमारोपणका विचार १९२		वापी कूपआदिका जीर्णोद्धार करनेका	
खण्ड २१.		फल ... २१८	
गृहस्थोंके मरणकी विधि १९४		त्रयमें फलमूलादिके भक्षणसे महापुण्य	
खण्ड २२.		लाभ ... २१९	
शवस्पर्श करनेवाले चिताको देखकर		पाराशरस्मृति ११.	
किसप्रकार परत लौटें ... १९६		अध्याय १.	
खण्ड २३.		पट्कर्म करनेसे ब्राह्मणोंको सौख्यलाभ,	
अग्निहोत्री विदेशमें मरजाय तो उस-		अतिथिसत्कारका फल और सामा-	
की व्यवस्था ... १९७		न्यतासे वर्णचतुष्टयका कर्म ... २२१	
खण्ड २४.		अध्याय २.	
सूतकमें त्याज्य कर्मोंका कथन और		कलियुगमें गृहस्थके आवश्यककर्मोंका	
पोढश्राद्धोंका विधान ... १९९		साधारणतासे कथन ... २२०	
खण्ड २५.		अध्याय ३.	
ब्रह्मदंडादिसे युक्त जो उनके विषयमें		जन्ममरणके अशौचकी शौद्धका कथन २३१	
कर्तव्यविधि ... २०१		अध्याय ४.	
खण्ड २६.		अतिमानस वा अतिक्रोधादिसे मरेहुये	
वृषोत्सर्गआदिमें समझनीय चरुका		खीपुरुषोंका दाह आदिकरनेमें प्रा-	
निर्वाप किसप्रकार करना उसका		यश्चित्त, तप्तकृच्छ्रका लक्षण और	
कथन ... २०३		परिवेदनादिदोषका विचार ... २३७	

विषय.	पृष्ठाङ्क.	विषय.	पृष्ठाङ्क.
अध्याय ५.		अध्याय २.	
भेडिया कुत्ते आदिसे काटनेमें शुद्धि, चांडालादिसे मारेहुये ब्राह्मणके देहका स्पर्श करनेमें प्रायश्चित्त और अग्निहोत्रीका देशांतरमें मरण होय तो उसकी क्रियाका विचार ... २४१		गृहस्थाश्रम निरूपण, स्त्रियोंके धर्म और पतिव्रतास्त्रीका परित्याग करनेमें प्रायश्चित्त ... २८९	
अध्याय ६.		अध्याय ३.	
प्राणियोंकी हिंसाका प्रायश्चित्तकथन... २४३		गृहस्थमात्रके नित्य नैमित्तिक काम्यक- र्त्तोंका कथन ... २९५	
अध्याय ७.		अध्याय ४.	
काठ आदिके बनाये पात्रोंकी शुद्धि और रजस्वलास्त्री परस्परस्पर्श करें तो उसका प्रायश्चित्त... २५१		सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा और दानधर्म कथन ... ३०३	
अध्याय ८.		शं स्मृति १३.	
अकामसे बंधन आदिमें गौ मरजाय तो उसका प्रायश्चित्त... २५६		अध्याय १.	
अध्याय ९.		सामान्यरीतसे चारों वर्णोंके कर्मका कथन ३११	
भलीभांति गौकी रक्षा करनेकी इच्छासे बांधने या रोकनेमें गोहत्या होय तो उसका प्रायश्चित्त... २६१		अध्याय २.	
अध्याय १०.		निषेक आदि संस्कारोंके कालका निरू- पण ... ३१२	
अगम्यस्त्रीगमनका चारों वर्णोंको योग्य प्रायश्चित्त.... २६८		अध्याय ३.	
अध्याय ११.		यज्ञोपवीत करनेपर ब्रह्मचारीको अवश्य प्रतिपालनीय नियमोंका निरूपण.... ३१३	
अशुद्ध वीर्यआदि पदार्थके भक्षणमें प्रायश्चित्त और शूद्रान्नभक्षणमें ब्रा- ह्मणको प्रायश्चित्त ... २७२		अध्याय ४.	
अध्याय १२.		ब्राह्मणआदि आठप्रकारके विवाहोंका निरूपण और विवाहकरनेयोग्य स्त्रीका कथन ... ३१५	
विष्टा मूत्र आदि भक्षणमें प्रायश्चित्त और ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त ... २७७		अध्याय ५.	
व्यासस्मृति १२.		पांच हत्याके दोष निवृत्तिके लिये पंच महायज्ञोंका कथन, अग्निकी सेवा और अतिथिकी पूजा हीसे गृहध- र्मकी सफलता ... ३१७	
अध्याय १.		अध्याय ६.	
सोलह संस्कारोंके नाम कथन और संक्षेपसे ब्रह्मचारीका धर्म ... २८५		वानप्रस्थाश्रमके धर्मोंका निरूपण ... ३१९	
		अध्याय ७.	
		संन्यासाश्रमधर्मका निरूपण, अष्टांगयोग कथन और ध्यानयोगका निरूपण ३२०	
		अध्याय ८.	
		नित्य नैमित्तिकादिभेदसे छहविध स्नान- का कथन ... ३२३	

विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय ९.	
क्रियाज्ञानकी विधि ३२५
अध्याय १०.	
शुभकारक आचमनकी विधि ३२६
अध्याय ११.	
अघमर्पण आदि सूक्तोंके जपका फल	३२८
अध्याय १२.	
गायत्रीमंत्रजपका फल ३२९
अध्याय १३.	
तर्पणविधिका कथन ३३१
अध्याय १४.	
पितृकार्यमें ब्राह्मणकी परीक्षा, पंक्ति- पावन पंक्तिद्वपकोंका कथन श्राद्धके योग्य देशकालोंका निरूपण	३३३
अध्याय १५.	
जन्म मरण अशौचमें शुद्धि ३३६
अध्याय १६.	
पात्रोंकी शुद्धि और मूत्र पुरीपसे शुद्धि	३३९
अध्याय १७.	
ब्रह्महत्या आदि पातकोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त विधि...	... ३४१
अध्याय १८.	
अघमर्पणप्राजापत्य आदि व्रतोंकी व्याख्या ३४८
लिखितस्मृति १४.	
द्विजके कर्तव्य दृष्टपूर्तका कथन, श्राद्धके देश कालका कथन, सामान्यरीतिसे द्विजाचारका कथन और प्रायश्चित्त- की विधि ३५०
दक्षस्मृति १५.	
अध्याय १.	
उपनयनके पूर्व आठवर्षतक द्विजवाल- कको भक्ष्याभक्ष्यका दोष नहीं, आश्रमस्वीकार करनेपर अविहित आचारसे दोष, समयपर आश्रम- स्वीकार न करनेसे दोष, और आ-	

विषय,	पृष्ठांक.
श्रमलक्षणका निरूपण ३६०
अध्याय २.	
ब्राह्मणके प्रतिदिन करने योग्य कर्मोंका निरूपण ३६१
अध्याय ३.	
गृहस्थीके अमृत ईपदान कर्म विकर्मा- दिका निरूपण ३६७
अध्याय ४.	
वशवर्तिनी स्त्रीसेही गृहस्थके धर्मार्थ कामकी व्यवस्था होती है ३७०
अध्याय ५.	
शौच अशौचका विचार ३७३
अध्याय ६.	
जन्ममृत्युके निमित्त अशौचका विचार	३७४
अध्याय ७.	
पङ्गयोगका निरूपण ३७६
गौतमस्मृति १६.	
अध्याय १.	
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके उपनयनका काल मौंजी दंडादिका विचार ३८२
अध्याय २.	
यज्ञोपवीतके पहले शौचाचारका नियम नहीं उसके ऊपर पालनीय नियमों- का वर्णन ३८४
अध्याय ३.	
नैष्टिकब्रह्मचारीके धर्मका कथन ३८६
अध्याय ४.	
अनुलोमप्रतिलोमसे उत्पन्नहुये हों उनकी जातिका निरूपण ३८७
अध्याय ५.	
विवाहके अनंतर गृहस्थीको आचरने योग्य धर्मोंका कथन...	... ३८९
अध्याय ६.	
अभिवादनके विषयमें विचार ३९१

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय ७.		अध्याय २१.	
आपत्कालमें ब्राह्मणादिके धर्मोंका कथन ... ३९२		पंक्तिबाह्य द्विजादिका निरूपण ... ४१३	
अध्याय ८.		अध्याय २२.	
संस्कारयुक्त ब्राह्मणको अपराध होनेपर भी वधबंधनादि दंडका निषेध और सब संस्कारोंसे युक्त द्विजका मोक्ष-अधिकार होना ... ३९२		पतितोंकी गणना ४१४	
अध्याय ९.		अध्याय २३.	
गृहस्थीको पालनीयव्रतोंका कथन.... ३९४		ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त ... ४१५	
अध्याय १०.		अध्याय २४.	
चारोंवर्णोंके उपजीविकाका विचार... ३९६		मदिरापानआदिका प्रायश्चित्त ४१६	
अध्याय ११.		अध्याय २५.	
राजाके आचारका निरूपण ... ३९८		रहस्यपातकोंका प्रायश्चित्त ... ४१८	
अध्याय १२.		अध्याय २६.	
शूद्रको अपराधी होनेपर उसके विषयमें दंडका विचार ... ४००		जिसके व्रतका भंग हुवा हो ऐसे अव-कीर्णिको व्रत पूर्ण होने योग्य कर्म-का कथन ... ४१९	
अध्याय १३.		अध्याय २७.	
साक्षिके प्रसंगसे सत्यासत्यका विचार ४०२		कृच्छ्रनामक व्रतका विवरण ... ४२०	
अध्याय १४.		अध्याय २८.	
चारों वर्णोंके आशौचका निरूपण ४०३		चांद्रायणव्रतविधिका वर्णन ... ४२१	
अध्याय १५.		अध्याय २९.	
दर्शभादि सर्वश्राद्धोंका कथन ... ४०५		द्रव्यविभागके अधिकारियोंका विवरण ४२२	
अध्याय १६.		शातातपस्मृति १७.	
अध्ययनमें अनध्यायोंका विचार ... ४०६		अध्याय १.	
अध्याय १७.		इहलोकमें संपादित दुष्कर्मसे नरकया-तना भोगके अनंतर भूमीपर उत्पन्न हुये प्राणियोंके देहचिह्नका कथन ४२५	
ब्राह्मणको शुद्धान्नभोजन और शुद्धप्र-तिग्रहका कथन ... ४०८		अध्याय २.	
अध्याय १८.		ब्रह्महत्या आदि करनेसे नरकयातना भोगनेपर यहां कुष्ठी होता है उसका प्रायश्चित्त और गोहत्यादिका प्रा-यश्चित्त ... ४२८	
स्त्रीधर्मोंका वर्णन ... ४०९		अध्याय ३.	
अध्याय १९.		सुरापान आदिपातकोंका प्रायश्चित्त... ४३३	
निषिद्धआचार करनेसे दोष,तन्निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्तका कथन ... ४११		अध्याय ४.	
अध्याय २०.		कुलत्रआदिकी शुद्धिकी लिये प्रायश्चित्त ४३६	
पापसे नरकयातना भोगकर उत्पन्नहुये मनुष्यके शरीरचिह्नोंका कथन ... ४१२			

विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय ५. मातृगमन आदि करनेवालेको प्राय- श्चित्त ४३९	
अध्याय ६. बोडा सुकर सींगवाले पशु आदिसे हत गतिहीनके उद्धारके लिये प्राय- श्चित्तका कथन ४४३	
वसिष्ठस्मृति १८. अध्याय १. मनुष्योंको मुक्तिके लिये धर्मजिज्ञा- सा, धर्माचरणमें आर्यावर्त देशका महत्त्व कथन, और ब्राह्मणकी प्रशंसा ४४८	
अध्याय २. वर्णत्रयको द्विजत्वकथन अध्ययनको आवश्यकताका निरूपण ... ४४९	
अध्याय ३. वेदाध्ययन न करनेवाला द्विज शूद्रसमान होना है, आतताई ब्राह्मणका भी वध निन्दित है, धर्मकथनके अधि- कारी, आचमनावेधि और भूमि- आदिकी शुद्धताका कथन ... ४५३	
अध्याय ४. संस्कारके विशेषसे चारवर्णोंका विभाग, देवता अविधि इनकी पूजामें पशु- वधका दोष नहीं, और अशौचका विचार ४५८	
अध्याय ५. स्त्रियोंको परार्थीनत्वका कथन और रजस्वला स्त्रियोंके नियमका कथन ४६०	
अध्याय ६. आचारकी प्रशंसा और सामान्यतासे ब्राह्मणके आचरणका कथन ... ४६१	
अध्याय ७. संक्षेपसे ब्रह्मचारीके कर्तव्यका कथन ४६५	
अध्याय ८. विवाहकरनेयोग्य स्त्रीका निरूपण और	

विषय.	पृष्ठांक.
विवाहके अनंतर पालनीय धर्मोंका निरूपण ४६५	
अध्याय ९. वानप्रस्थआश्रमका संक्षेपसे धर्मकथन ४६७	
अध्याय १०. संन्यासीके धर्मोंका निरूपण ४६९	
अध्याय ११. छैः कर्मरत ब्राह्मणको ब्रह्मचारी यदि और अतिथिसे अन्न देनेका विचार श्राद्धका विचार और व- त्रयको योग्य दंड अजिन वस्त्र भिक्षा और उपनयनकालका विचार ४६९	
अध्याय १२. स्नातकके व्रतोंका कथन ४७३	
अध्याय १३. स्वाध्याय और उपाकर्मका कथन ... ४७५	
अध्याय १४. भक्षणमें योग्य अयोग्य वस्तुओंका विचार ४७७	
अध्याय १५. पुत्रके दान प्रतिग्रहका विचार ४८०	
अध्याय १६. राजव्यवहार साक्षिआदिका विचार ४८२	
अध्याय १७. पुत्र होनेसे मनुष्य पिताके कृणसे मुक्त होता है इससे बारह पुत्रोंका कथन ४८४	
अध्याय १८. प्रतिलोमतासे उत्पन्नहुये चांडालआदिका कथन और शूद्रको धर्मोपदेश द- नेमें अनधिकारका विचार ... ४८८	
अध्याय १९. संक्षेपसे राजधर्मका कथन ... ४९०	
अध्याय २०. ब्रह्महत्या आदिपातकोंका प्रायश्चित्तविधि ४९२	
अध्याय २१. क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इनको ब्राह्मण स्त्री गमनमें प्रायश्चित्त ... ४९५	

॥ श्रीः ॥

अ दिशस्मृतयः

भाषाटीकासमेताः।

श्रीयोगिजनवल्लभाय नमः।

—०—

अत्रिस्मृतिः १.

हुताग्निहोत्रमासीनमात्रिं वेदविदां वरम् ॥ सर्वशास्त्रविधिज्ञं तमृषिभिश्च नम-
स्कृतम् ॥ १ ॥ नमस्कृत्य च ते सर्व इदं वचनमब्रुवन् ॥ हितार्थं सर्वलो-
कानां भगवन्कथयस्व नः ॥ २ ॥

अग्निहोत्रइत्यादिसे निश्चिन्तमनयुक्त बैठेहुए वेदकी विधिके जाननेवालोंमें प्रधान शा-
स्त्रके पारदर्शी ऋषियोंके पूज्य महर्षि अत्रिजीको ॥ १ ॥ प्रणाम करके ऋषि बोले कि,
हे भगवन् ! जिसके करनेसे त्रिलोकीका कल्याण हो, आप उसी विषयको हमसे कहिये ॥ २ ॥

अत्रिरुवाच ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा यन्मे पृच्छथ संशयम् ॥

तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥

अत्रिजी बोले कि, हे वेदशास्त्रार्थतत्त्व जाननेवाले ऋषियो ! तुमने जैसे सन्देहयुक्त अर्थात्
अनिश्चित विषयको पूछा है सो उसे मैंने जैसा देखा और जैसा सुना है [अर्थात् अपने
विचारसे और गुरुके उपदेशके अनुसार] वह सभी वर्णन करूंगा ॥ ३ ॥

सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान्देवान्प्रणम्य च ॥ जप्त्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रा-
नुसारतः ॥ ४ ॥ सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ॥ चतुर्णामपि वर्णा-
नामात्रिः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ५ ॥

(इस प्रतिज्ञायुक्त वचन कहनेके उपरान्त) महर्षि अत्रिजीने सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे
आचमन, समस्त देवताओंको प्रणाम और सम्पूर्ण सूक्तोंका जप करके सम्पूर्ण शास्त्रोंके अनु-
सार ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण पाप और सन्देहोंका नाश करनेवाला, चारों वर्णोंका हितकारी
सनातन धर्मशास्त्र निर्माणकिया ॥ ५ ॥

ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ॥ सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते श्रुत्वेदं
शास्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥ तस्मादिदं वेदविद्भिरर्ध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च
प्रवक्तव्यं सदृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥ ७ ॥

१ अथात्रिस्मृत्युपक्रमः ।

यहांपर “इत्युक्त्वा ततः” ऐसा अध्याहार होता है अर्थात् मूलमें यह पद न होनेपर भी अर्थके वश
जाना पड़ता है ।

इस संसारमें जो इच्छानुसार पाप करनेवाले हैं और जो धर्मकी निन्दा करतेहैं वह भी इस उत्तम धर्मशास्त्रके श्रवण करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजायेंगे ॥ ६ ॥ इस कारण वेदके जाननेवाले यत्नसहित इसका पाठ करें और धर्मके अनुसार उत्तम चरित्रोंवाले शिष्योंको भी सुनावें ॥ ७ ॥

अकुलीने ह्यसदृत्ते जडे शूद्रे शठे द्विजे ॥

एतेष्वेव न दातव्यमिदं शास्त्रं द्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥

निन्दित कुलमें उत्पन्नहुए, दुराचरण करनेवाले, मूर्ख, शूद्र और दुष्टस्वभाववाले ब्राह्मण इन पांच प्रकारके मनुष्योंको श्रेष्ठ ब्राह्मण इसकी शिक्षा न दें ॥ ८ ॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ॥ पृथिव्यां नास्ति तद्ब्रह्म यदृत्वा ह्यनृणी भवेत् ॥ ९ ॥ एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते ॥ शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १० ॥

यदि गुरुने शिष्यको एक अक्षर भी पढायाहै, तथापि पृथ्वीमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे अर्पणकर शिष्य ऋणसे मुक्त होसके ॥ ९ ॥ एक अक्षरके शिक्षा देनेवाले गुरुका जो मनुष्य सम्मान नहीं करते वह सौ जन्मतक कुत्तेके जन्मको भोगकर अन्तमें चांडाल हो जन्म लेतेहैं ॥ १० ॥

वेदं गृहीत्वा यः कश्चिच्छास्त्रं चैवावमन्यते ॥

स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ११ ॥

जो मनुष्य वेदको पढकर उसके गर्वसे अन्यान्य शास्त्रके उपदेशको ग्रहण नहीं करता वह इक्कीस बार पशुकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ११ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोपि मानवाः ॥

प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्युपस्थिताः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य अपने आचारके पालनमें तत्पर हैं अर्थात् कभी कुमार्गमें पैर नहीं धरते वह दूर होनेपर भी मनुष्योंकी प्रीतिके पात्र हैं ॥ १२ ॥

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ॥ प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥ क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥ शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥ दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ॥ शूद्रस्य वार्ता शुभ्रूपा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥ तदेतत्कर्माभिहितं संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥ बहुमानमिह प्राप्य प्रयाति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंके छः कार्य हैं, उनमें यजन, दान और अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और दान लेना, पढ़ाना, यज्ञ कराना यह तीन जीविका हैं ॥ १३ ॥ क्षत्रियोंके पांच कार्य हैं, उनमें यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं, और शस्त्रका व्यवहार और प्राणियोंकी रक्षाकरना यह दो जीविका हैं ॥ १४ ॥ वैश्यको भी यजन, दान, अध्ययन यह तीन तपस्या हैं और वार्ता अर्थात् खेती, वाणिज्य, गौओंकी रक्षा और व्यवहार यह चार आजीविका हैं,

शूद्रोंकी, ब्राह्मणोंकी सेवा करना यही तपस्या और शिल्पकार्य उनकी जं.विका है ॥ १५ ॥
मैंने यह धर्म कहा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण इस धर्मके अनुसार
चलनेपर इस कालमें बहुतसा सन्मान प्राप्तकर परछोकमें श्रेष्ठ गतिको पातेहैं ॥ १६ ॥

ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेष्ववस्थिताः ॥

तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके गृहीयते ॥ १७ ॥

जो पूर्वोक्त अपने २ धर्मका त्यागकर दूसरे धर्मका आश्रय करतेहैं, राजा उनको दण्ड
देकर स्वर्गका भागी होताहै ॥ १७ ॥

आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ॥

परधर्मो भवेत्त्याज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥

अपने धर्ममें स्थित होकर शूद्र भी स्वर्ग प्राप्त करतेहैं, दूसरोंका धर्म सुन्दरी पराई स्त्रीकी
समान तजनेके योग्य है ॥ १८ ॥

वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥

यतो राष्ट्रस्य हंतासौ यथा वद्वेश्व वै जलम् ॥ १९ ॥

जप, होम इत्यादि ब्राह्मणोंके उचित कर्ममें रत होनेसे शूद्रका राजा वध करै, कारण कि
जलधारा जिस प्रकारसे अधिकोःनष्ट करतीहै, उसी प्रकारसे यह जप होममें तत्पर हुआ शूद्र
सम्पूर्ण राज्यका नाश करताहै ॥ १९ ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रयविक्रयः ॥

याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविट्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥

दानलेना, पढ़ाना, निपिद्ध वस्तुका खरीदना और बेचना वा यज्ञकराना इन चारों कर्मोंके
करनेसे क्षत्रिय और वैश्य पतित होतेहैं ॥ २० ॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥

ज्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ २१ ॥

ब्राह्मण मांस, लाख और लवणके बेचनेसे तत्काल पतित होता है और दूधके बेचनेसे
भी तीन दिनमें शूद्रकी समान होजाताहै ॥ २१ ॥

अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥ तं ग्रामं दंडयेद्वाजा चौरभक्त-
ददंडवत् ॥ २२ ॥ विद्रुद्रोऽज्यमविद्रांसो येषु राष्ट्रेषु भुंजते ॥ तेऽप्यनावृष्टिभि-
च्छंति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥

व्रत और अध्ययनसे शून्य ब्राह्मण जिस ग्राममें भिक्षा मांगकर जीवन धारण करतेहैं राजा
उस ग्रामको अर्थात् उस ग्रामके अव्रत और निरक्षर ब्राह्मणोंके पालनेवाले नगरवासियोंको
चोरको भात देनेवालेके दंडकी तुल्य (अर्थात् चौरको पोषण करनेवालेके दंडके तुल्य) दंड
देवै ॥ २२ ॥ जिस राज्यमें पंडितोंके भोगनेयोग्य वस्तुको मूर्ख भोगतेहैं, वहाँ अनावृष्टि वा
अन्य किसी प्रकारका महामय उपस्थित होताहै ॥ २३ ॥

ब्राह्मणान्वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ॥ तत्र वर्पति पर्जन्यो यत्रैतान्पृजये-
न्तुपः ॥ २४ ॥ त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आश्रमाश्च त्रयोभयः ॥ एतेषां
रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥ २५ ॥

जिस राज्यमें राजा वेदके जाननेवाले और सम्पूर्ण शास्त्रमें कुशल, ऐसे ब्राह्मणोंका आदर
करताहै, उस स्थानपर सर्वदा सृष्टि होतीहै ॥ २४ ॥ स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल यह तीनों
लोक; ऋक्, यजुः, साम यह तीनों वेद; ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास यह चारों
आश्रम; दक्षिणामि, गार्हपत्य और आहवनीय यह तीनों अभि इन सबकी रक्षाके निमित्त
विधाताने ब्राह्मणोंकी सृष्टि कीहै ॥ २५ ॥

उभे संध्ये समाधाय मौनं कुर्वति ते द्विजाः ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोक
महीयते ॥ २६ ॥ य एवं कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणम् ॥ यशःस्वर्गं
नृपत्वं च पुनः कौशं च सोऽर्जयेत् ॥ २७ ॥

जिस राजाके राज्यमें ब्राह्मण मौनका अवलम्बन कर प्रातःकाल और सायंकालके समय
सन्ध्यावन्दन करतेहैं, वह राजा दिव्य सहस्र वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ २६ ॥
जो राजा चारों वर्णोंके उक्त धर्मको विचारकर उनके गुण दोषका विचार करताहै, उसके
राज्यकी दृढ़ता और कौश (खजाने) का संचय होताहै, और उसको स्वर्ग प्राप्तहोताहै ॥ २७ ॥

दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पूजा न्यायेन कौशस्य च संप्रवृद्धिः ॥

अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्रक्षा पंचैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥ २८ ॥

दुष्टोंका दमन और श्रेष्ठोंका पालन, न्यायके अनुसार धनका संग्रह करना, विचारके
निमित्त आयेहुए अर्थियोंपर पक्षपातका न करना और सब प्रकारसे राज्यकी रक्षा
करना यह पांच राजाओंके यज्ञ (अर्थात् तत्सदृश आवश्यक) कर्म हैं ॥ २८ ॥

यत्प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवंतीह पार्थिवाः ॥

नतु कतुसहस्रेण प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥

राजा इस प्रकारसे प्रजापालन करके जैसे पुण्यको प्राप्त करताहै, ब्राह्मण हजार २ यज्ञक-
रके भी वैसे पुण्यको नहीं प्राप्त करसके ॥ २९ ॥

अलभे देवखातानां त्वदेषु सरसीषु च ॥

उद्धृत्य चतुरः पिंडान्पारक्ये स्नानमाचरेत् ॥ ३० ॥

देवताओंके तीर्थ वा जलाशयोंके न मिलनेपर हृद (हींद) वा सरोंवरमें स्नान करे, दूसरे
जलाशय (तलावआदिक) होनेपर चार मट्टीके पिंड बाहर निकालकर फिर उसमें स्नान
करे ॥ ३० ॥

वसा शुक्रमसृद्धमज्जा मूत्रं विट् कर्णविण्मखाः ॥ श्लेष्मास्थि दूषिका स्वेदोद्वा-
दंशैते नृणां मलाः ॥ ३१ ॥ पण्णां पण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥
मृद्वारिभिश्च पृथ्वीपामुत्तरेषां तु वारिणा ॥ ३२ ॥

वसा (भेद) : शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्टा, कानकां मल, नख, श्लेष्मां, अस्थि, नेत्रोंका मल, धर्म (पसीना) यह बारह मनुष्योंके मल हैं ॥ ३१ ॥ उनमेंसे मट्टी और जलसे तो प्रथमके छहों मलोंकी शुद्धि होतीहै और केवल जलसे शेष छहों मलोंकी शुद्धि पंडितोंने कहीहै ॥ ३२ ॥

शौचमंगलानायासाः अनसूयाऽस्पृहांदमः ॥

लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥ ३३ ॥

शौच, मंगल, अनायास, अनसूया, अस्पृहा, दम, दान, और दया यह ब्राह्मणोंके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिर्दितैः ॥ आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥ ३४ ॥ प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ॥ एतद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ३५ ॥ शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा ॥ अत्यंतं तत्र कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥ ३६ ॥ न गुणान्गुणिनो हंति स्तौति चान्यान्गुणानपि ॥ न हसेच्चान्यदोषांश्च सानसूया प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥ यथोत्पन्नेन कर्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु ॥ न स्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ बाह्य आध्यात्मिके वापि दुःख उत्पादिते परैः ॥ न कुप्यति न चाहंति दम इत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥ अहन्यहनि दातव्यमदीनेनांतरात्मना ॥ स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥ परस्मिन्बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ॥ आत्मवद्वर्तितव्यं हि दयैषा परिकीर्तिता ॥ ४१ ॥ यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोपि भवेद्विजः ॥ स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥ ४२ ॥

अभक्ष्य वस्तुका त्याग, श्रेष्ठका संसर्ग, और शास्त्रमें कहेहुए अन्यान्य आचारोंके पालन करनेका नाम शौच है ॥ ३४ ॥ उत्तम कर्मोंका आचरण और निन्दित कर्मोंका त्याग करना इसीको धर्मके जाननेवाले ऋषियोंने मंगल कहाहै ॥ ३५ ॥ शुभ कार्य हो अथवा अशुभ कार्य हो जिससे शरीरको ग्लानि होती हो उसे अत्यन्तं न करै उसका नाम अनायास है ॥ ३६ ॥ गुणवान् मनुष्योंके गुणोंको नष्ट न करता और दूसरेके गुणोंकी प्रशंसा करना दूसरेके दोषोंको देखकर उनका उपहास न करना इसीका नाम अनसूया है ॥ ३७ ॥ आवश्यकीय सम्पूर्ण वस्तुओंमेंसे जो कुछ भी मिल जाय उसीसे संतुष्ट रहना और पराई स्त्रीकी अभिलाषा न करना इसीका नाम अस्पृहा है ॥ ३८ ॥ कोई मनुष्य यदि बाह्य वा मानसिक दुःख उत्पन्न करै तो उसके ऊपर क्रोध वा उसकी हिंसा न करनेका नाम दम है ॥ ३९ ॥ किञ्चित् प्राप्तिके होनेपर भी उसमेंसे थोड़ा २ प्रतिदिन प्रसन्न मनसे दूसरेको देना इसका नाम दान है ॥ ४० ॥ दूसरेके प्रति, माता पिता आदि अपने कुटुम्बियोंके प्रति, मित्रोंके प्रति, वैरकारीके प्रति और अपने शत्रुके प्रति समान व्यवहार करना इसीका नाम दया है ॥ ४१ ॥ जो ब्राह्मण गृहस्थ होकर भी इन सब लक्षणोंसे भूषित है वह उत्तम स्थानको प्राप्त करताहै, उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ४२ ॥

इष्टापूर्तं च कर्तव्यं ब्राह्मणेनैव यत्नतः ॥

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तं मोक्षो विधीयते ॥ ४३ ॥

इष्टकर्म और पूर्तकर्म ये उभयविध कर्म ब्राह्मणेनही यत्नसे करने इष्टकर्मसे स्वर्ग प्राप्तहोताहै और पूर्तकर्मसे मोक्ष मिलताहै ॥ ४३ ॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥ आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्ट-
मित्यभिधीयते ॥ ४४ ॥ वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥ अन्नप्रदानमा-
रामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥

अग्निहोत्र, तपस्या, सत्यमें तत्परता, वेदकी आज्ञाका पालन, अतिथियोंका सत्कार और वैश्वदेव इनका नाम इष्ट है ॥ ४४ ॥ वात्रढी, कूप, तलाव, इत्यादि जलाशयोंका बनाना, देवताओंके मंदिरकी प्रतिष्ठा, अन्नदान और वगीचोंका लगाना इसका नाम पूर्त है ॥ ४५ ॥

इष्टापूर्तं द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने ॥

अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्तं धर्मे न वैदिके ॥ ४६ ॥

इस इष्ट और पूर्त कार्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको समान अधिकार है, यद्यपि शूद्र भी पूर्त कार्यमें अधिकारी है, परन्तु उसके अन्तर्गत जो वैदिक कर्म है उसका अधिकार उसे नहीं है ॥ ४६ ॥

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥

यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य सर्वदा यमोंका सेवन करे, नियमका अनुष्ठान यथासमयमें कियाजा-
ताहै सर्वदा नहीं, और जो यमोंका त्याग कर केवल नियमही करताहै तो वह पतित
होताहै ॥ ४७ ॥

आनुशस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥ प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं
मार्दवं च यमा दश ॥ ४८ ॥ शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्य-
निग्रहः ॥ व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥ ४९ ॥

अकूरता, क्षमा, सत्यवादिता, अहिंसा, दान, सरलता, प्रीति, प्रसन्नता, मधुरता और
मृदुता इन दशोंका नाम यम है ॥ ४८ ॥ शौच, यज्ञका अनुष्ठान, तपस्या, अर्थात् वेदका
पढ़ना, विधिरहित रतिका त्याग, व्रत, मौन, उपवास और स्नान यह दश नियम हैं ॥ ४९ ॥

प्रतिनिधिं कुशमयं तीर्थवारिषु मज्जाति ॥ यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत
सः ॥ ५० ॥ मातरं पितरं वापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ॥ यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वाद-
शांशफलं भवेत् ॥ ५१ ॥

कुशाकी प्रतिमाको लेकर तीर्थके जलमें स्नान करे, उसने उस मूर्तिको जिसके आशयसे
जलमें स्नान करायाहै, वह आठवां हिस्सा पुण्यका प्राप्त करताहै ॥ ५० ॥ माता, पिता,

भ्राता, मित्र, और गुरुके पुण्यकी इच्छासे जो ज्ञान करतेहैं, वह उस ज्ञानके वारहवें अंशके फलको प्राप्त करतेहैं ॥ ५१ ॥

अपुत्रेणैव कर्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ॥

पिंडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

जिस मनुष्यके पुत्र नहीं है वह पुत्रके प्रतिनिधिको ग्रहण करै, कारण कि श्राद्ध तर्पणादिक कार्य बिना पुत्रके नहीं होते ॥ ५२ ॥

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥ ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वं च गच्छति ॥ ५३ ॥ जातमात्रेण पुत्रेण पितृणामनृणी पिता ॥ तदहि शुद्धि-
माप्नोति नरकात्त्रायते हि सः ॥ ५४ ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत चाश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ५५ ॥ कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः ॥ गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ ५६ ॥

पिता यदि उत्पन्न हुए पुत्रका मुख जीवित अवस्थामें एकवार भी देखले तो वह पितरोंके ऋणसे मुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ पुत्रके पृथ्वीपर उत्पन्न होतेही मनुष्य पितरोंके ऋणसे छूटजाताहै, और उसी दिन वह शुद्ध होताहै कारण कि यह पुत्र नरकसे उद्धार करताहै ॥ ५४ ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करनी उचित है कारण कि यदि उनमेंसे कोई एकभी पुत्र गयाजी जाय, कोई अश्वमेध यज्ञको करै और कोई नील वृषका उत्सर्ग करै ॥ ५५ ॥ नरकसे भयभीत हुए पितृगण “जो पुत्र गयाको जायगा वही हमारे उद्धारका करनेवाला होगा” यह विचारकर ऐसे पुत्रकी इच्छा करतेहैं ॥ ५६ ॥

फलपुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥

गयशीर्षं पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥ ५७ ॥

फलपु नदीमें स्नान करके गयासुरके मस्तकपर चरण धर गयाके गदाधर देवताका दर्शन करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे भी छूटजाताहै ॥ ५७ ॥

महानदीमुपस्पृश्य तर्पयैत्पितृदेवताः ॥

अक्षयाल्लभते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य महानदी (गंगाआदि) में स्नान आचमन कर देवता और पितरोंका तर्पण करतेहैं, वही अक्षय लोकको प्राप्त होकर वंशका उद्धार करतेहैं ॥ ५८ ॥

शंकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोज्यविवर्जिते ॥

आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५९ ॥

१ “पुत्र” नाम-नरकका है उससे त्राण (उद्धार) करताहै, अपने पिताको, इससे वह पुत्र कहा ताहै; ऐसा अक्षरार्थ पाया जाताहै ।

२ नील वृषका लक्षण—जिसकी पूंछका अग्रभाग, खुर और शींग श्वेत हों और सब अंग लाल हो उसको नील वृष कहतेहैं ।

३ गंगाम् ।

पवित्र भोजन और भोज्यहीन देशमें, शंकाके स्थानमें, प्राणकी रक्षाके अर्थ जिसकी पवित्रतामें संदेह है ऐसे द्रव्योंके भोजन करनेसे उसका जो प्रायश्चित्त है उसे मैं कहता हूँ तुम श्रवण करो ॥ ५९ ॥

अक्षारलवणं रौक्षं पिबेद्ब्राह्मीं सुवर्चलाम् ॥

त्रिरात्रं शंसपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥ ६० ॥

प्रथमतः ब्राह्मण (अपने शुद्धिके अर्थ) खारी नमकसे रीझित अर्थात् नखा अन्न और कांतिकी देनेवाली ब्राह्मी वा शंसपुष्पी औषधीको दूधके साथ मिठाकर तीन राततक पिये ॥ ६० ॥

यद्यभांदि द्विजः कश्चिदज्ञानापिबते जलम् ॥ प्रायश्चित्तं कथं तस्य मुच्यते केन कर्मणा ॥ ६१ ॥ पालाशविल्वपत्राणि कुशान्पत्रान्यदुंबरम् ॥ काययित्वा पिबेदापत्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६२ ॥

(प्रश्न-) यदि कोई ब्राह्मण बिना जानेहुए मदिराके पात्रमें जलपान करले तो उसका प्रायश्चित्त किसप्रकार होताहै; और उस मनुष्यको शुद्धि किस कर्मके अनुष्ठान करनेसे होताहै ? ॥ ६१ ॥ (उत्तर-) ढाकके पत्ते, बेलके पत्ते, कुश, कमलके पत्ते, गूलरके पत्ते इन सबका काय बनाय कर तीन दिनतक पानकरे तब शुद्ध होताहै ॥ ६२ ॥

सायं प्रातस्तु यः संध्यां प्रमादादिकर्मैस्सकृत् ॥

गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत्प्रात्वा समाहितः ॥ ६३ ॥

जो मनुष्य असावधानतासे एकवार प्रातःकाल वा संध्याकालकी संध्या न करे तो दूसरे दिन ज्ञानकरनेके उपरान्त एकप्रश्चित्त हो एकसहस्रवार गायत्रीका जनकरे ॥ ६३ ॥

रोगाक्रांतोऽथवाऽऽयासात् स्थितः ज्ञानजपाद्गृहिः ॥

ब्रह्मकूर्चं चरेद्भक्त्या दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य रोगसे व्याकुल हो या अत्यन्त परिश्रमके करनेसे तान और जप न करसके वह भक्तिपूर्वक “ब्रह्मकूर्च” और यन्त्रिचिन् दान करके शुद्ध होताहै ॥ ६४ ॥

गवां शृंगोदके न्नात्वा महानद्युपसंगमे ॥

समुद्रदर्शने चापि व्यालदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ६५ ॥

सर्पसे काटाहुआ मनुष्य गौओंके सींगोंके जलमें वा गंगा यमुनाके संगमके स्थानमें स्नान करके फिर समुद्रका दर्शन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ६५ ॥

वृकश्चानशृगालैस्तु यदि दष्टस्तु ब्राह्मणः ॥ हिरण्योदकसंमिश्रं घृतं प्राश्य

१ “ब्रह्मनुवर्चलाम्” इस पाठके होनेसे उसका अर्थ पीले वर्णके नृशर्वत वृक्षके पत्ते, ऐसा हुआहै ।

२ इति विप्रविनर्त्ता उत्थामिति श्लोकावशेषः । ३ अतिरिचयेत् । ४ पंचगव्यप्राशनपूर्वकं जगविवातप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रायश्चित्तम् ।

५ पञ्चगव्यप्राशन (भक्षण) पूर्वकं जगविवातप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रायश्चित्तम् ।

विशुद्ध्यति ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥ उदितं ग्रहनक्षत्रं दष्टा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ६७ ॥

जिस ब्राह्मणको वृक (भेडिया) कुत्ता, या गीदडने काटाहो वह सुवर्णसे शुद्धहुए जलके साथ घृतको भोजन करै तब वह शुद्ध होताहै ॥ ६६ ॥ (परन्तु) जिस ब्राह्मणको कुत्ता, गीदड, भेडिया आदि हिंसक जन्तुओंने काटाहो तो वह उदयहुए ग्रह नक्षत्रोंके देखनेसे शीघ्र ही शुद्ध होजातीहै ॥ ६७ ॥

सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥

सघृतं यावकं प्राश्य घृतशेषं समापयेत् ॥ ६८ ॥

यदि व्रती ब्राह्मणको कुत्तेने काटाहो तो वह तीन दिनतक उपवास करै; और घृतसहित यावक (आधा पकाहुआ जौ वा कुंलथी) को भोजनकर व्रतकी समाप्ति करै ॥ ६८ ॥

मोहात्ममादात्संलोभाद्व्रतभंगं तु कारयेत् ॥

त्रिरात्रेणैव शुद्ध्येत पुनरेव व्रती भवेत् ॥ ६९ ॥

मोह वा असावधानतासे या लोभके वशसे जिसने व्रतभंग करदियाहै वह तीन दिन तक उपवास करनेसे शुद्ध होताहै और फिर व्रतको धारण करै ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणानां यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ७० ॥ क्षत्रियान्नं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ त्रिरात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ॥ ७१ ॥ अभोज्यान्नं तु भुंक्तान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव वा ॥ जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥ ७२ ॥

यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानसे दूसरे ब्राह्मणका जूठा भोजन करले तो वह दो दिन गायत्रीके जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७० ॥ यदि ब्राह्मण विना जानेहुए क्षत्री-या वैश्यका जूठा अन्न भोजन करले तो वह तीन दिनतक गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ७१ ॥ भक्षण न करनेयोग्य अन्नको, पूर्वभुक्तसे अवशिष्ट (बचेहुए)-अन्नको, स्त्री और शूद्रके जूठे अन्नको, या भक्षण न करनेयोग्य मांसको जो मनुष्य भोजन करताहै; वह सात दिनतक जौकी लपसी (दलिया) को पिये तो शुद्ध होताहै ॥ ७२ ॥

असंस्पृश्येन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥

तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ७३ ॥

जो जाति स्पर्श करनेके योग्य नहीं है उसके स्पर्श करनेवाले द्विजको स्नान करना योग्य है, जिसने उसका जूठा खायाहै वह छैः महीनेतक कृच्छ्र व्रत करै ॥ ७३ ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा ॥

पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ७४ ॥

१ रातमें काटे तो दिन निकलतेही सूर्यको देखले तो शुद्धि होतीहै । दिनमें काटे तो संध्याको तारा देखकर शुद्धि होतीहै ।

२ पूर्वभुक्तावशिष्टमन्नम् ।

जिस ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्यने विष्टा, मूत्र, वा सुरा जिसमें मिली हो अन्नान (भूल) से खाई है, तो वह फिर संस्कारके (यज्ञोपवीत इत्यादिके)

वपनं मेखला दंडं भैक्ष्यचर्यं व्रतानि च ॥

निवर्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्माणि ॥ ७५ ॥

उन द्विजातियोंको पुनःसंस्कारके समय मस्तक मुढाना, मेखलाका धारण करना, भिक्षाका माँगना, और ब्रह्मचर्यका धारण करना, यह कार्य करने नहीं होंगे ॥ ७५ ॥

गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ॥ प्रत्याज्यं मुन्मयं भांडं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ ७६ ॥ गृहान्निष्क्रम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ॥ गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाव्रापयेत्पुनः ॥ ७७ ॥ ब्राह्मैर्मंत्रैस्तु पृतं तु हिरण्यकुशवारिभिः ॥ तेनैवाभ्युक्ष्य तद्वेश्म शुध्यते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥

जिस घरमें मुर्दा पड़ा है उसकी शुद्धि किस प्रकार होती है सो मैं कहता हूँ, उस घरके मट्टीके पात्र और सिद्धहृय अन्नको स्वागदे ॥ ७६ ॥ उन सब वस्तुओंको घरसे निकालकर फिर गोबर से घरको लिपावै; और पीछे बकरीके गोबरसे धूपितकरे ॥ ७७ ॥ ब्राह्म मंत्रको पढ़कर सुवर्ण और कुशाओंसे जलको घरमें छिड़कै तब उस गृहकी शुद्धि होनेमें कोई संदेह नहीं है ॥ ७८ ॥

राजन्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः ॥

पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ ७९ ॥

राजा अथवा अंत्यज चांडाल जिस किसी ब्राह्मणको बलपूर्वक विचलित (श्रेष्ठ मार्गसे अलग करके अभक्ष्य वस्तुका भोजन कराय असत् मार्गमें) करे तो यह ब्राह्मण तीन प्राजापत्य करके फिर संस्कार करे ॥ ७९ ॥

शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ॥

तदुच्छिष्टं तु संप्राश्य यत्नेन कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ८० ॥

जिसको कुत्तेने स्पर्श किया हो वह स्नान करे; और जिसने जूठा भोजन किया हो तो वह यत्नपूर्वक कृच्छ्रव्रत करे (तब शुद्ध होता है) ॥ ८० ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सूतकस्य विनिर्णयम् ॥

प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ ८१ ॥

इसके पीछे सूतक अर्थात् आशौचके विषयका वर्णन करता हूँ और उसके पीछे प्रायश्चित्तोंका वर्णन करूँगा ॥ ८१ ॥

एकाहाच्छुद्धयते विप्रो योश्निवेदसमन्वितः ॥

त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥ ८२ ॥

१ “प्रयोज्यं” ऐसा पाठ हो तो ‘मट्टीके पात्रोंको बर्तें और सिद्ध (अन्यके) पकाये, अन्नको भक्षण करै’ ऐसा अर्थ जानना ।

२ छागसंबन्धिन पुरीषेण ।

३ जिस मंत्रके ब्रह्मा देवता हों उस वैदिक मंत्रको ब्राह्म मंत्र कहते हैं ।

जो अग्नि और वेदकरके समन्वित (युक्त) हैं वह एकही दिनमें, जो केवल वेदपाठी ही हैं वह तीन दिनमें; और जो अग्निहोत्री और वेदपाठी नहीं हैं ऐसे निर्गुण ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ८२ ॥

व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ॥

राज्ञां तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छंति ब्राह्मणाः ॥ ८३ ॥

शास्त्रके अनुसार व्रत धारण करनेवाला, अग्निहोत्रका करनेवाला, और राजा, एवं ब्राह्मण जिसको अशौच होनेकी इच्छा नहीं करते, इन सब मनुष्योंके यहां अपने २ कर्मके अनुसार अशौच नहीं होता ॥ ८३ ॥

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ॥

वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ८४ ॥

ब्राह्मण दशदिनके पीछे, क्षत्रिय बारह दिनके उपरान्त, और वैश्य पंद्रह दिनके पीछे, शूद्र एक महीनेके पीछे शुद्ध होता है ॥ ८४ ॥

सर्पिडानां तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः ॥ पिंडांश्चोदकदानं च श्रावशौचं तथानु-
गमं ॥ ८५ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षडहः पंचमे तथा ॥ षष्ठे चैव त्रिरात्रं
स्यात्सप्तमे त्र्यहमेव वा ॥ ८६ ॥

एक वंशमें उत्पन्न होकर अपनेसे सात पीढ़ियोंतक सर्पिड संज्ञा होती है; और इनको ही पिंड प्रदान और तर्पण किया जाता है; पूर्वोक्त मरणाशौचभी उसका अनुगामी है; अर्थात् सर्पिडोंके निमित्त करना योग्य है ॥ ८५ ॥ परन्तु सूतिकाके अशौचमें चार पीढ़ीतक, दश रात्रि, और पांचवी पीढ़ीमें छैः दिनतक, और छठी पीढ़ीमें तीन राततक, और सातवीं में तीन दिनतक ही अशौच रहता है ॥ ८६ ॥

मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ॥

स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भर्तारि यौनिकम् ॥ ८७ ॥

मरणके अशौचमें (हीनवर्णकी) दासी और अनुलोमी (पतिसे नीच वर्णकी) स्त्रियोंको पतिकी समान अशौच होता है, स्वामीके मरनेके उपरान्त जिस वंशमें उसका जन्म हुआ था उस वंशके अनुसार ही सूतक माना जायगा ॥ ८७ ॥

शवस्पृष्टं तृतीये तु सचैलं स्नानमाचरेत् ॥

चतुर्थे सप्तभिक्षं स्यादेव श्रावविधिः स्मृतः ॥ ८८ ॥

जिस मनुष्यने मृतक मनुष्यका स्पर्श किया हो (उस मृतक शरीरके छूनेवाले मनुष्यको जो स्पर्श करता है और उसको जो छूता है वह उसः समय पहनेहुए वस्त्रको बिना उतारेही सबस्त्र स्नानकरै, और शवस्पृष्ट चौथा अर्थात् तीसरे स्पर्शको छूनेवाला सात घरोंकी भिक्षा करके खाय, यही शवस्पर्शमें विधि कही गई है ॥ ८८ ॥

एकत्र संस्कृतानां तु मातृणामेकभोजिनाम् ॥

स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक्पृथक् ॥ ८९ ॥

१ यद्वा “यस्याहस्तस्य शर्वरी” इस न्यायसे तीन दिन तीन रात समझना ।

सौतेके पुत्रका जन्म अथवा उसकी मृत्यु होनेपर एक समयमें व्याहीहुई, एक घरमें अन्नका खानेवाली असवर्णा माताओंको पतिकी समान (स्वामीके अनुसार) सूतक होगा; परन्तु यह सब पृथक् रहतीहों या अलग २ व्याहीगई हों तो अपनी २ जातिके अनुसार अशौच होगा ॥ ८९ ॥

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नं मृतसूतके ॥

पाचकान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ९० ॥

ऊँटनी, या भेडका दूध, अशौचान्न, और रसोद्वेय ब्राह्मणका अन्न और जो (मरेका ऐंको-दशाह) श्राद्धका अन्न भोजन करताहै उसको चांद्रायण व्रत करना योग्य है ॥ ९० ॥

सूतकान्नमधर्माय यस्तु प्राश्नाति मानवः ॥

त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ॥ ९१ ॥

जो मनुष्य अधर्मके निमित्त (अर्थात् आज संध्या इत्यादि कर्म नहीं करना होगा ऐसा विचार कर) अशौचान्नको खाताहै वह तीन दिनतक उपवास करके एक दिन जलमें निवास करे ॥ ९१ ॥

महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ॥

होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ९२ ॥

वालस्वंतर्दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥

सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ ९३ ॥

अग्निहोत्री मनुष्य दोनों ही अशौचोंमें महायज्ञ (काम्ययज्ञ)को न करे, परन्तु शुष्क अन्न वा फलसे नित्यका होम करे ॥ ९२ ॥ जन्म होनेके उपरान्त दशदिनके बीचमें ही जिस बालककी मृत्यु होजाय उसकी शुद्धि तत्कालही होजातीहै, उसको जन्मका सूतक नहीं होता ॥ ९३ ॥

कृतचूडे प्रकुर्वीत उदकं पिंडमेव च ॥

स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेव च ॥ ९४ ॥

जो मूडन (चौल) होनेके पीछे बालक मरजाय तो नाम और स्वधाका उच्चारण करके तर्पण और पिंड उसका करना होगा ॥ ९४ ॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैव मंत्रे पूर्वकृते तथा ॥

यज्ञे विवाहकाले च सद्यः शौचं विधीयते ॥ ९५ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥

पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरत्रवीत् ॥ ९६ ॥

ब्रह्मचारी और संन्यासीको और अशौचसे पहले संकल्प कियेहुए मंत्रके जपमें और यज्ञमें तथा जिस विवाहमें वृद्धिश्राद्धतक होगयाहै, उस विवाहमें (विवाहपद संस्कारमात्रका उपलक्षक है) तत्कालही अशौचनिवृत्ति होजातीहै ॥ ९५ ॥ जो विवाह, उत्सव और यज्ञके बीचमें अशौच होजाय तो उस पूर्वसंकल्पित कार्यके करनेमें कोई दोष नहीं होगा, यह अत्रिभूषिका वचन है ॥ ९६ ॥

मृतसञ्जननोद्धं तु सूतकादौ विधीयते ॥

स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाश्चेन्न संस्पृशेत् ॥ ९७ ॥

मरेहुए बालकके जन्म होनेके पीछे जो अशौच होताहै उसमें आचमनके द्वारा ब्राह्मणोंके अंगका स्पर्श होतेही अशौच नहीं रहता; जो सूतिकाको स्पर्श न कियाहो तो ॥ ९७ ॥ पंचमेहनि विज्ञेयं संस्पर्श क्षत्रियस्य तु ॥ सप्तमेहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥ ९८ ॥ दशमेहनि शूद्रस्य कर्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ॥ मासेनैवात्मशुद्धिः स्यात्सूतके मृतके तथा ॥ ९९ ॥

क्षत्रियका पांच दिनमें, वैश्यका सात दिनमें, और शूद्रका दशदिनमें स्पर्श होताहै, यह बुद्धिमानोंको जानना योग्य है ॥ ९८ ॥ और शूद्रके जन्म मरणमें एक मासतक अशौच होताहै, बुद्धिमानोंको ऐसा जानना योग्य है ॥ ९९ ॥

व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥ क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ १०० ॥ व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥ श्राद्धत्यागविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १०१ ॥

चिरकालतक रोगी, कंजूस, जो सर्वदा ऋणी रहै, धर्मकार्यसे रहित, मूर्ख, और जो स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो ॥ १०० ॥ और जिसका चित्त जुयेमें अत्यन्त लगा हो सर्वदा पराधीनतामें रहनेवाला और श्राद्धदान रहित मनुष्यके दग्धहोकर भस्म होवै तबतकही अशौच है ॥ १०१ ॥

द्वे कृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रं मातुः स्यात्पितुः सांतपनं कृतम् ॥ १०२ ॥ कुब्जवामनषण्डेषु गद्रेषु जडेषु च ॥ जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ १०३ ॥ क्लीबे देशांतरस्थे च पतिते व्रजितेपि वा ॥ योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ १०४ ॥ पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित् ॥ अग्निहोत्राधिकार्यसित न दोषः परिवेदने ॥ १०५ ॥

परिवित्ति(१) मनुष्य दो प्राजापत्यको करै तौ वह शुद्ध होताहै, और परिवेत्तासे विवाहिता कन्याको एक प्राजापत्य करना होताहै; और कन्याकी माताको कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करना योग्यहै, और कन्याके पिताको सान्तपन करना चाहिये ॥ १०२ ॥ बड़ा भाई यदि (जो) कुबड़ा, बौना, बावला, जन्मसे अंधा, जन्मसे बहरा, गूंगा, जनसमाजमें निंदित, तोतला, और वेदके पढनेमें असमर्थ हो तौ छोटे भाईका प्रथम विवाह होजानेपर उसे दोष नहीं लगेगा ॥ १०३ ॥ बड़ा भाई यदि नपुंसक, विदेशी, संन्यासी, पतित और योगशास्त्रमें रत हो (योगाभ्यास करनेके कारण उसकी विवाहमें इच्छा नहीं हो) तौ उसे भी परिवेदनमें दोष नहीं होगा ॥ १०४ ॥ जिस मनुष्यका पिता, पितामह, बड़ाभाई यह अग्निहोत्रके अधिकारी हुएहैं, पीछे यह मनुष्य (प्रायश्चित्त करके) अग्निको ग्रहण करै तौ बड़े भाईके विवाह करनेमें दोषी नहीं होगा ॥ १०५ ॥

१ बड़े भाईका विवाह होजानेके पहले ही जो छोटेका विवाह होजाय तो उस छोटे भाईको "परिवेत्ता" और बड़ेको "परिवित्ति" कहतेहैं ।

भार्यामरणपक्षे वा देशांतरगतेपि वा ॥

अधिकारी भवेत्पुत्रस्तथा पातकसंयुगे ॥ १०६ ॥

स्त्रीके मरनेपर अथवा दूरदेशमें जानेपर अथवा पातक लगनेपर पुत्र अभिहोत्रादि कर्मोंका अधिकारी होताहै ॥ १०६ ॥

ज्येष्ठो भ्राता यदा न नित्यं रोगसमन्वितः ॥

अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥ १०७ ॥

यदि ज्येष्ठ भाईकी मृत्यु होगई हो, या वह सर्वदा रोगी रहताहो तो उसकी आज्ञा लेकर छोटा भाई शंख ऋषिके वचनके अनुसार अपना विवाह करले ॥ १०७ ॥

नामयः परिविंदति न वेदा न तपांसि च ॥

न च श्राद्धं कनिष्ठो वै विना चैवाभ्यनुज्ञया ॥ १०८ ॥

ज्येष्ठ भाईकी विना आज्ञाके छोटा भाई अभिहोत्र नहीं करसकता, वेद नहीं पढ सकता, तप नहीं करसकता, और न श्राद्ध ही कर सकताहै ॥ १०८ ॥

तस्माद्धर्मं सदा कुर्याच्छ्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥ १०९ ॥

जो श्रुति स्मृतिमें कहेहुए नित्य (संभ्याआदि) वा नैमित्तिक (जातकर्मआदि) और जो स्वर्गके देनेवाले काम्य कर्म हैं, उनका अनुष्ठान कर धर्मका संचय करै ॥ १०९ ॥

एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च द्वासयेत् ॥

अमावास्यां न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः ॥ ११० ॥

शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको केवल एक ही ग्रास खाय, इस दिनसे प्रारंभ कर पूर्णिमातक एक २ ग्रासको बढ़ाता जाय, अर्थात् पूर्णिमातक तिथिकी संख्याके अनुसार ग्रासोंकी संख्या होगी, और कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे प्रतिदिन एक २ ग्रासको कम करै, और अमावस्याको उपवास करै, ऐसा करनेसे चान्द्रायण व्रत होताहै; यह चान्द्रायण व्रतकी विधि है ॥ ११० ॥

एकैकं ग्रासमश्रीयात्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥

अयं परं च नाश्रीयादतिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥

इत्येतत्कथितं पूर्वैर्महापातकनाशनम् ॥ १११ ॥

पहले तीन दिनतक एक २ ग्रासका भोजन करै; और अगले तीन दिनमें सर्वथा भोजन न करै इसे अतिकृच्छ्र कहतेहैं। पहले आचार्योंने इस व्रतको ही महापातकोंका नाशकरनेवाला कहा है ॥ १११ ॥

वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ॥ न स्पृशंतीह पापानि महापातकजान्यपि ॥ ११२ ॥ वायुभक्षो दिवा तिष्ठेद्वात्रिं नीत्वाप्सु सूर्यदृक् ॥ जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मवाहते ॥ ११३ ॥

वेदके अभ्यासमें रत, क्षमाशील, और महायज्ञके करनेवाले मनुष्यको ब्रह्महत्यादिकोंका पाप भी स्पर्श नहीं करसकता ॥ ११२ ॥ वायुका पान कर दिनमें सूर्यकी ओर देखता रहै;

और रात्रिमें जलमें निवास कर सहस्रवार गायत्रीका जप करनेसे ब्रह्महत्याके अतिरिक्त सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ ११३ ॥

पद्मोदुंबरविल्वाश्च कुशाश्वत्थपलाशकाः ॥

एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते ॥ ११४ ॥

कमलपत्र, गूलरके पत्ते, बेलपत्र, कुश, पीपलके पत्ते और ढाकके पत्ते इन सबका काथ बनायकर इस जलको पानकरै इसका “पर्णकृच्छ्र” नाम कहाहै ॥ ११४ ॥

पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद्घृतम् ॥

जग्ध्वा परेह्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ११५ ॥

गायकां दूध, गोमूत्र, गायकां दही, गायकां गोबर, और घी, इस पंचगव्यका पानकरै, और दूसरे दिन निर्जल उपवास करै, इसको “सान्तपनकृच्छ्रव्रत” कहतेहैं ॥ ११५ ॥

पृथक्सांतपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥

सप्ताहेन तु कृच्छ्रोप्यं महासांतपनं स्मृतम् ॥ ११६ ॥

ऊपर कहेहुए पंचगव्यमेंसे एक २ पदार्थको एक २ दिन (किसी दिन दूध किसी दिन दही आदि) इस प्रकारसे पाँच दिन भोजन करै, छठे दिनके उपरान्त सातवें दिन उपवास करै, इस व्रतको “महासान्तपनकृच्छ्र” कहतेहैं ॥ ११६ ॥

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातरुग्रहं भुंक्ते त्वयाचितम् ॥ त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजा-

पत्यो विधिः स्मृतः ॥ ११७ ॥ सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः ॥

अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥ ११८ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं स्याद्याव-

द्वास्य विशेषमुखे ॥ एतद्भासं विजानीयाच्छद्वयर्थं कायशोधनम् ॥ ११९ ॥

तीन दिन सायंकालको और तीन दिन प्रातःकालको, और तीन दिन बिना मांगेहुए जो मिलजाय ऐसे भोजनको करै, इसके पीछे तीनादिनतक उपवास करै (इन बारह दिनमें होनेवाले व्रतको) “प्राजापत्य ” कहतेहैं ॥ ११७ ॥ इस व्रतमें सायंकालके समय बारह ग्रास, और प्रातःकालके समयमें पंद्रह ग्रास, और बिना मांगेहुए चौबीस ग्रास खाय, इसके पीछे तीन दिनतक उपवास करै ॥ ११८ ॥ यह सभीको जानना उचित है कि इस प्रायश्चित्तके, अंगसे उत्पन्नहुए शरीरकी शुद्धि करनेवाले भोजनका, ग्रास मुरगेके अंडेकी समान हो; या जितना ग्रास उसके मुखमें स्वच्छन्दतासे जा सकै उसके निमित्त वही ग्रास श्रेष्ठ है ॥ ११९ ॥

त्र्यहमुष्णं पिबेदापरुग्रहमुष्णं पिवेत्पयः ॥ त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रये ॥ १२० ॥ षट्पलानि पिबेदापास्त्रिपलं तु पयः पिवेत् ॥ पलमेकं तु वै सर्पित्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ १२१ ॥

तीन दिन छैः पलपरिमित तनक गरम जल पिये; और तीन दिन तीन पलपरिमित गरम दूध पिये, और तीन दिनतक एक पलपरिमित गरम घृतका पान करै, और तीन दिनतक वायु भक्षण करै, ऐसा अनुष्ठान करनेसे “तप्तकृच्छ्र” व्रत होताहै ॥ १२० ॥ १२१ ॥

अथ तु दधिना भुंक्ते अथं भुंक्ते च सर्पिषा ॥ क्षीरेण तु अथं भुंक्ते वायुभक्षो
दिनत्रयम् ॥ १२२ ॥ त्रिपलं दधि क्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा ॥ एतदेव व्रतं
पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ॥ १२३ ॥

तीन दिनतक तीन पलपरिमित दहीका, और तीन दिनतक एक पलपरिमित घृतका और
तीन दिनतक तीन पलपरिमित घृतका, पानकरै, और तीन दिनतक वायुको भक्षण करै,
इसीको “वैदिककृच्छ्र” व्रत कहतेहैं ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥

उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रं प्रकीर्तितम् ॥ १२४ ॥

एक दिनमें केवल एकहीवार भोजन करै, एक दिन रात्रिको एक दिन बिना मांगेहुए
भोजन करै, और एक दिन उपवास करै, इस प्रकारसे “पादकृच्छ्र” व्रत होताहै ॥ १२४ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकाविंशतिम् ॥

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ १२५ ॥

और इक्कीस दिनतक केवल दूधहीको पीकर रहै, इस प्रकारसे “कृच्छ्रातिकृच्छ्र” व्रत
होताहै, और बारह दिनतक उपवास करै इसको “पराक” व्रत कहतेहैं ॥ १२५ ॥

पिण्याकश्चातकांस्तुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥

एकैकमुपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥ १२६ ॥

चार दिन तकशरावर प्रतिदिन खल, कच्चा मट्ठा, जल, सत्तू, इनका एक २ ग्रास भोजन
करै; और एक दिन उपवास करै इस व्रतका नाम “सौम्यकृच्छ्र” कहाहै ॥ १२६ ॥

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥

तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पंचदशाह्निकः ॥ १२७ ॥

इन पाचोंमेंसे क्रमानुसार एक २ का तीन २ दिनतक आवृत्ति करनेसे पंद्रह दिनमें जो
व्रत होताहै उसीका नाम “तुलापुरुष” है ॥ १२७ ॥

कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिबेत् ॥

एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ १२८ ॥

दुहाहुआ कपिलागऊके स्वाभाविक गरम दूधको जो मनुष्य पीताहै वह व्यासजीका बना-
या (किया) हुआ “कृच्छ्र” है, यह चाण्डालको भी शुद्ध करदेताहै ॥ १२८ ॥

निशायां भोजनं चैव तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु ॥ अनादिष्टेषु पापेषु चांद्रायणमथो-
दितम् ॥ १२९ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्रिगुणदक्षिणैः ॥ यत्फलं समवा-
प्नोति तथा कृच्छ्रैस्तपोधनाः ॥ १३० ॥

(दिनमें अनाहार रहकर) रात्रिमें भोजन करनेका नाम “नक्तव्रत” है, जिस पापका
श्रित्त नहीं कहाहै उसका यह प्रायश्चित्त चान्द्रायण व्रत कहाहै ॥ १२९ ॥ (हे तपस्वी-
मनुष्यो !) दुराज्ञो दक्षिणा देकर अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेसे जिस प्रकारका फल प्राप्त
होताहै; प्रथम कष्टहुए कृच्छ्रके करनेसे भी वसी प्रकारका फल प्राप्तहोताहै ॥ १३० ॥

वेदाभ्यासरतः क्षांतो नित्यं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥

शौचमृद्धार्यभिरतो गृहस्थोपि हि मुच्यते ॥ १३१ ॥

जो मनुष्य वेदके पढ़नेमें तत्पर, क्षमाशील, और धर्मशास्त्रको विचारकर उसके उपदेशके अनुसार शौच और आचारका पालन करतेहैं, वह गृहस्थी होनेपरभी मुक्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ १३१ ॥

उक्तमेताद्विजातीनां महर्षे श्रूयतामिति ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥ १३२ ॥

इस प्रकारसे यह द्विजातियोंका धर्म कहा; इसके आगे स्त्री शूद्र जिन कारणोंसे पतित होतेहैं उसका वर्णन करताहूं; हे महर्षिगण ! तुम श्रवण करो ॥ १३२ ॥

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्या मंत्रसाधनम् ॥

देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ १३३ ॥

जप, तपस्या, तीर्थयात्रा, संन्यास, मन्त्रसाधन, देवताओंकी आराधना, यह छैः कर्म स्त्री शूद्रोंको पतित करनेवाले हैं ॥ १३३ ॥

जीवद्भर्तारि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥

आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३४ ॥

जो स्त्री स्वामीके जीवित रहतेहुए उपवास करके व्रत धारण करतीहै, वह स्त्री अपने स्वामीकी आयुको हरण करतीहै; और अन्तमें वह नरकको जातीहै ॥ १३४ ॥

तीर्थ नार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥

शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥ १३५ ॥

यदि स्त्रीको तीर्थके स्नान करनेकी इच्छा है तो वह अपने पतिके चरणोदकका पान करे, तब वह स्त्री शिव या विष्णुभगवान्के परम पद (कैलास वा वैकुण्ठ) को प्राप्त करसकेगी ॥ १३५ ॥

जीवद्भर्तारि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥

श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३६ ॥

स्वामीकी जीवित अवस्थामें वा मृत्युकी अवस्थामें स्त्री वामाङ्गी है; और पुरुष दाहिनी ओरका भागी है। परन्तु श्राद्ध, यज्ञ, और विवाहके समयमें स्त्री दाहिनी ओरको ही बैठतीहै ॥ १३६ ॥

सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः ॥

पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥ १३७ ॥

चन्द्रमा गंधर्व और अङ्गिरा (वृहस्पति) ने इन स्त्रियोंको शुद्धता दान कीहै; और अभिने भी सम्पूर्ण शुद्धता दीहै; इस कारण स्त्री सर्वदा ही पवित्र हैं ॥ १३७ ॥

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥ विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रिय-
स्त्रिभिरेव च ॥ १३८ ॥ वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत् ॥

तदासौ वेदविभोक्तो वचनं तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥ एकोपि वेदविद्धर्मं यं
व्यवस्येद्विजोत्तमः ॥ स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ॥ १४० ॥

ब्राह्मणके वंशमें जन्म लेनेसे ब्राह्मण होताहै, और जब उसका संस्कार होताहै
(उपनयन होताहै) तब उसको द्विज कहतेहैं, विद्यासे विप्रत्व प्राप्त होताहै; और उक्त
जन्म संस्कार और विद्या इन तीनोंसे “श्रोत्रिय” पदका वाच्य होताहै ॥ १३८ ॥ जो ब्रा-
ह्मण वेद शास्त्रको पढ़ते और उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करतेहैं उनको वेदवित् (वेदका
जाननेवाला) कहा जाताहै; उनके वचन पवित्रताके देनेवाले हैं ॥ १३९ ॥ वेदका जानने-
वाला एक भी ब्राह्मण जिस धर्मका आचरण करताहै, वही श्रेष्ठ धर्म है, और मूर्खोंके सहस्रों
यत्न करनेपर भी वह धर्म नहीं होता ॥ १४० ॥

पावका इव दीप्यन्ते जपहोमैर्द्विजोत्तमाः ॥ प्रतिग्रहेण नश्यन्ति वारिणा इव
पावकः ॥ १४१ ॥ तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥ नाशयन्ति
हि विद्वांसो वायुमैधानिवांवरे ॥ १४२ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण जप होमादिके द्वारा अधिकी समान दीप्तिमान् होजातेहैं; और जलसे जिस
प्रकार अग्निके तेजका नाश होताहै उसी प्रकारसे जो ब्राह्मण प्रतिग्रह (अर्थात् दान) को
लेतेहैं उनका तेज भी नष्ट होजाताहै ॥ १४१ ॥ जिस प्रकारसे तीक्ष्ण पवन आकाशमें
स्थित सम्पूर्ण मेघोंको छिन्न भिन्न कर देताहै, उसी प्रकारसे विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण भी उस
प्रतिग्रहसे उत्पन्नहुए दोषोंको प्राणायामसे दूर करदेताहै ॥ १४२ ॥

भुक्तमात्रो यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ॥ लक्ष्मीर्वलं यशस्तेज आयुश्चैव
प्रहीयते ॥ १४३ ॥ यस्तु भोजनशालायामासनस्थ उपस्पृशेत् ॥ तच्चान्नं नैव
भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १४४ ॥ पात्रोपरि स्थिते पात्रेयस्तु स्थाप्य
उपस्पृशेत् ॥ तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १४५ ॥

जो ब्राह्मण भोजन करनेके उपरान्त आचमन कर गीले हाथ रहताहै अर्थात् अंगोले आ-
दिसे हाथ नहीं पोंछलेता; उसके यहां लक्ष्मी कभी निवास नहीं करती; और बल, तेज, यश,
आयु इन सभीकी हानि होतीहै ॥ १४३ ॥ जो मनुष्य भोजनके गृहमें (भोजनके)
आसन पर स्थित होकर कुड़ा करताहै; उसका अन्न भोजन करनेके योग्य नहींहै और जो
यदि भोजन भी करलियाहै तो वह चांद्रायण व्रत करे ॥ १४४ ॥ और जो मनुष्य आ-
सन पर स्थित पात्रके ऊपर पात्र रखकर उस पात्रके जलसे आचमन करताहै उसके अन्नको
भी भोजन न करे और जो भोजन करेगा तो उसे चांद्रायण व्रत करना होगा ॥ १४५ ॥

अश्रद्धया च यदत्तं विप्रेऽग्नौ दैविके क्रतौ ॥

न देवास्तृप्तिमायाति दातुर्भवति निष्फलम् ॥ १४६ ॥

देवताके उद्देश्यकरके जो यज्ञ कियाजाता है उसमें श्रद्धाराहित जो कुछ ब्राह्मण वा अग्निमें
अर्पण कियाजाताहै; उसके देनेसे देवता तृप्त नहीं होते किन्तु वह अन्नादिक प्रदान कियेहुए
भी निष्फल होजातेहैं ॥ १४६ ॥

हस्तं प्रक्षालयित्वा यः पिबेद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ॥

तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥ १४७ ॥

जो द्विजोंमें उत्तम भोजन करनेके अनन्तर हाथोंको धुलाकर उसी शेष जलको पीतेहैं उस श्राद्धकर्मके अन्नको पितरलोग स्वीकार नहीं करते; वह मानों राक्षसोंने खाया, पितर निराश होकर चलेगये ॥ १४७ ॥

नास्ति वेदात्परं श नास्ति मातुः परो गुरुः ॥

नास्ति दानात्परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥ १४८ ॥

वेदसे श्रेष्ठ और कोई शास्त्र नहीं है, मातासे श्रेष्ठ कोई गुरु नहीं है, इस लोक और परलोकमें दानकी अपेक्षा उत्तम मित्र नहीं है ॥ १४८ ॥

अपात्रेष्वपि यदत्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ॥

हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ १४९ ॥

परन्तु जो दान कुपात्रको दियाजाता है वह सात पीढीतक दग्ध करताहै; अपात्रमें (कुपात्रमें) दियाहुआ हव्य (देवताओंके योग्य) कव्य (पितरोंके योग्य) जो अन्न उसे देवता वा पितर ग्रहण नहीं करते ॥ १४९ ॥

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ॥

श्वानविष्टासमं भुंक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ १५० ॥

लोहेके पात्रसे जो अन्न दिया जाताहै वह अन्न सब प्रकारसे भोजन करनेवालेको विष्टाकी समान वरजनेयोग्य है, और उसका दाता नरकको जाताहै ॥ १५० ॥

पित्तलेन तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ॥

न दद्याद्दामहस्तेन आयसेन कदा च न ॥ १५१ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य पीतल अथवा लोहेके पात्रमें रखकर अन्नको वाँचे हाथसे कदापि न परोसे ॥ १५१ ॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत्पितृन् ॥ अन्नदाता च भोक्ता च व्रजेतां नरकं च तौ ॥ १५२ ॥ अभावे मृन्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥ तेषां वचः प्रमाणं स्याद्यदन्नं चातिरिक्तम् ॥ १५३ ॥

जो मनुष्य श्राद्धमें अपने पितरोंकी वृत्तिके अभिप्रायसे मट्टीके पात्रमें ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै, उस अन्नको देनेवाला और खानेवाला दोनोंही नरकको जातेहैं ॥ १५२ ॥ और जो अन्यान्य पात्र न मिले तौ श्राद्धीय ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मट्टीके पात्रमें परोसदे; कारण कि, पवित्र ब्राह्मणोंके सत्य असत्य सभी वचन प्रामाणिक हैं ॥ १५३ ॥

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥ भिक्षादातुर्न धर्मोस्ति भिक्षुभुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ १५४ ॥ न च कांस्येषु भुंजीयादापद्यापि कदाचन ॥ मलाशाः सर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥ १५५ ॥ कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ॥ कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्बिषं तयोः ॥ १५६ ॥

यदि संन्यासीको सुवर्णके पात्र, लोहेके पात्र, चांदी, अथवा कांसीके पात्रमें जो भिक्षा दीजातीहै उसका धर्म नहीं होता; और उससे प्राप्तहुई भिक्षाको खानेवाला भिक्षु (संन्यासी) पापका भोक्ता होताहै ॥ १५४ ॥ भिक्षुक कभी अधिक विपत्तिके आजनिपर भी कांसीके

पात्रमें भोजन न करै; कारण कि, जो संन्यासी कांसीके पात्रमें भोजन करतेहैं, उन्हें मल भक्षणका दोष कहाहै ॥ १५५ ॥ कांसीके पात्रकी जो अपवित्रता है; और गृहस्थमें जो पाप है, कांसीके पात्रमें भोजन करनेवाला भिक्षुक इन दोनोंके पापोंका अधिकारी होताहै ॥ १५६ ॥

अत्राप्युदाहरन्ति ॥ सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥

भुञ्जन्भिक्षुर्न दुष्येत दुष्येच्चैव परिग्रहे ॥ १५७ ॥

इस विषयमें (किसीने) कहाहै कि, सुवर्ण, लोहा, तांबा, कांसी, चांदी, इनके पात्रमें भिक्षुक भोजन करनेसे दोषी नहीं होता, परन्तु इन सब पात्रोंके ग्रहण करनेसे दोषी होताहै ॥ १५७ ॥

यतिहस्ते जलं दद्याद्विक्षां दद्यात्पुनर्जलम् ॥ तद्वैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं साग-
रोपमम् ॥ १५८ ॥ चरेन्माधुकरिं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥ एकाग्रं नैव
भोक्तव्यं बृहस्पतिसमो यदि ॥ १५९ ॥

प्रथम संन्यासीके हाथमें जल दे, फिर भिक्षा दे, और इसके पीछे जल दे, तो वह भिक्षा मेरुपर्वतकी समान होजातीहै; और वह जल समुद्रकी समान होजाताहै ॥ १५८ ॥ यती म्लेच्छके गृहसे भी भ्रमर (मोरे) की वृत्तिका अवलम्बन करै (अर्थात् अनेक स्थानोंसे अन्नका संग्रह करै) परन्तु एकके स्थानका अन्न भक्षण न करै चाहे उसका देनेवाला बृहस्पतिकी भी समान क्यों न हो ॥ १५९ ॥

अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धं भैक्षं गृहे वसन् ॥ दशरात्रं पिवेद्वज्रमापस्तु त्र्यहमेव
च ॥ १६० ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् ॥ एतद्वज्रमिति श्रोक्तं
भगवानत्रिरब्रवीत् ॥ १६१ ॥

और जो यति गृहमें रहकर विपत्तिके बिना ही आये (इच्छानुसार) सिद्धहुए अन्नकी भिक्षा करताहै वह दश दिनतक वज्र और तीन दिनतक शुद्ध जलका पान करै ॥ १६० ॥ गोमूत्रसे मिलेहुए और घृतसे पकायेहुए जौका नाम "वज्र" है यह भगवान् अत्रिजीने कहाहै ॥ १६१ ॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥

अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च पडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ १६२ ॥

ब्रह्मचारी, यती, विद्यार्थी, गुरुकी प्रतिपालना करनेवाला, पथिक और दरिद्र, इन छैः को भिक्षुक कहतेहैं ॥ १६२ ॥

षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गुर्विणीमेव वै स्त्रियम् ॥

आदंतजननादूर्ध्वमेवं धर्मो न हीयते ॥ १६३ ॥

गर्भवती स्त्रीके संग छैः महीनेतक विषय करै, और फिर बालक होनेके उपरान्त जबतक बालकके दांत न उपजआवें तबतक विषय न करै इस प्रकारसे धर्म नष्ट नहीं होताहै ॥ १६३ ॥

ब्रह्महा प्रथमं चैव द्वितीयं गुरुतल्पगः ॥ तृतीयं तु मुरापेयं चतुर्थं स्तेयमेव
च ॥ १६४ ॥ पापानां चैव संसर्गं पंचमं पातकं महत् ॥ १६५ ॥ एषामेव

विशुद्ध्यर्थं चरेत्कुच्छ्राण्यनुक्रमात् ॥ त्रीणि वर्षाण्यकामश्चेद्ब्रह्महत्या पृथ-
क्पृथक् ॥ १६६ ॥

बालकके जन्महोनेके पीछे पहले महीनेमें ब्रह्महत्याका, दूसरेमें गुरुपत्नीमें गमनका, तीस-
रेमें सुरापान, और चौथेमें चोरीकरनेका ॥ १६४ ॥ पांचवेंमें गाढ संसर्ग करनेका, पाप
लगताहै ॥ १६५ ॥ इन पापोंसे शुद्धहोनेके निमित्त क्रमानुसार तीन वर्षतक व्रत करै तब
ब्रह्महत्याके पापसे भी मुक्त होसकताहै और चतुर्विध अन्य पातकोंसे भी पृथक् पृथक् कुच्छ्र-
करनेसे मुक्त होताहै ॥ १६६ ॥

अर्द्धं तु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ॥

षड्भागो द्वादशश्चैव विदूशूदयोस्तथा भवेत् ॥ १६७ ॥

क्षत्रीको ब्रह्महत्याका ब्राह्मणसे आधा पाप और वैश्यको छठा भाग, और शूद्रको बार-
हवां भाग ब्रह्महत्याका पाप लगताहै ॥ १६७ ॥

त्रिन्मासान्नक्तमश्नीयाद्भूमौ शयनमेव च ॥

स्त्रीघाती शुद्ध्यतेऽप्येवं चरेत्कुच्छ्रावदमेव वा ॥ १६८ ॥

स्त्रीका मारनेवाला मनुष्य तीन महीनेतक नक्तव्रत करै, पृथ्वीमें शयन, और एक वर्षतक
कुच्छ्रव्रत करै तब शुद्ध होताहै ॥ १६८ ॥

रजकः शैलुषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ॥

एतेषां यस्तु भुंक्ते वै द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ १६९ ॥

घोबी, नट, (नाटिका इत्यादिमें सजकर जो जीविका निर्वाह करतेहैं) वेणुकर्मोपजीवी
(डोम) इनके यहांके अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करताहै वह चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध
होताहै ॥ १६९ ॥

सर्वात्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ॥

पराकेण विशुद्धिः स्याद्भगवानत्रिरव्रवीत् ॥ १७० ॥

सम्पूर्ण अंत्यजोंके साथ जाने और उनके द्रव्यके भोजन करने एवम् उनके साथ
बैठनेसे पराकव्रतके करनेसे शुद्ध होताहै, यह भगवान् अत्रिजीनें कहाहै ॥ १७० ॥

चांडालभांडे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः ॥ गोमूत्रयावकाहारः सप्तषट्त्रिद्व्य-
हान्यपि ॥ १७१ ॥ संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्नमंत्यजैर्वाप्युदक्यया ॥ अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽ-
श्रीयात्प्राजापत्यार्धमाचरेत् ॥ १७२ ॥

जो ब्राह्मण चांडालके पात्रका जल पीताहै वह सत्ताईस दिनतक गोमूत्रसे मिलेहुए जौ
भोजनकरै तब शुद्ध होताहै ॥ १७१ ॥ यदि जिस ब्राह्मणने चांडाल वा ऋतुमती स्त्रीके स्पर्श-
किये हुए पक्वान्नको अज्ञानतासे भोजन कियाहै तौ वह आधा प्राजापत्य करै ॥ १७२ ॥

चांडालान्नं यदा भुंक्ते चातुर्वर्णस्य निष्कृतिः ॥ चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं
चरेत् ॥ १७३ ॥ षड्वात्रमाचरेद्वैश्यः पंचगव्यं तथैव च ॥ त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो
दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ १७४ ॥

यदि चांडालके यहांके अन्नको चारों वर्णोंने भोजन कियाहै, तौ उनकी शुद्धि इस प्रकारसे होतीहै, ब्राह्मण चांद्रायण व्रत करै क्षत्री सांतपनको करै ॥ १७३ ॥ और वैश्य छैः दिनतक व्रत और पंचगव्यका पान करै, और शूद्र तीन रात्रितक व्रत करै यत् किंचित् दान करै, तब उनकी शुद्धि होतीहै ॥ १७४ ॥

ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चांडालो मूलसंस्पृशः ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७५ ॥ ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १७६ ॥

(प्रश्न—) जिस ब्राह्मणने वृक्षपर चढ़कर फल खायाहै और उस समय उस वृक्षकी जड़को चांडालने छुलियाहो तौ उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ॥ १७५ ॥ (उत्तर—) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वह ब्राह्मण वस्त्रोंसहित स्नान करै, और एक दिन नक्तभोजन करै पश्चात् घृतका पान करै तब वह शुद्ध होताहै ॥ १७६ ॥

एकः वृक्षं समारूढश्चांडालो ब्राह्मणस्तथा ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ । ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७८ ॥

(प्रश्न—) जो ब्राह्मण और चांडाल एकही वृक्षपर चढ़कर वहां स्थित फलोंको भक्षण करतेहैं तौ उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ॥ १७७ ॥ (उत्तर—) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वस्त्रोंसहित स्नान करके अहोरात्र (एक दिन एक रात) उपवास करै, पश्चात् पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १७८ ॥

एकशाखासमारूढश्चांडालो ब्राह्मणो यदा ॥ फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७९ ॥ त्रिरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ स्त्रियो म्लेच्छस्य संपर्काच्छुद्धिः सांतपने तथा ॥ १८० ॥ तप्तकृच्छ्रं पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाभिधीयते ॥ १८१ ॥

(प्रश्न—) जो ब्राह्मण और चांडाल एकही वृक्षकी शाखापर चढ़कर फलोंको भक्षण करतेहैं तौ उस ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकार होगा ॥ १७९ ॥ (उत्तर—) वह ब्राह्मण तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यका पानकरै तब शुद्ध होताहै ॥ १८० ॥ स्त्रियोंको म्लेच्छके साथ संसर्ग होनेपर सांतपन कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होतीहै, और पीछेसे तप्तकृच्छ्रके करनेसे शास्त्रकारोंने उनकी शुद्धि कहीहै ॥ १८१ ॥

स वर्तेत यथा भार्या गत्वा म्लेच्छस्य संगताम् ॥ सचैलं स्नानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ॥ १८२ ॥ संगृहीतामपत्याथमन्यैरपि तथा पुनः ॥ १८३ ॥

म्लेच्छने जिसका संग कियाहै ऐसी भार्याके साथ संभोग करनेवाला वस्त्रसहित स्नान करै और केवल घृतकाही भोजन कर तप्तकृच्छ्र करै तब शुद्ध होताहै, और जिसने संतानके निमित्त ऐसी स्त्रीका संग कियाहो वह भी उपरोक्त व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

चंडालम्लेच्छश्चपचकपालव्रतधारिणः ॥

अकामतः स्त्रियो गत्वा पाराकेण विशुद्ध्यते ॥ १८४ ॥

चांडाल, स्लेच्छ, श्वपच, कपालव्रतधारी (अघोरी) जिस मनुष्यने अज्ञानतासे इनकी स्त्रियोंके साथ गमन कियाहै तौ वह पराकत्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८४ ॥

कामतस्तु प्रसूतां वा तत्समो नात्र संशयः ॥

स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥ १८५ ॥

यदि जानकर इन स्त्रियोंमें जिस मनुष्यने गमन कियाहै; अथवा संतान उत्पन्न होनेपर प्रसूतास्त्रीके संग भोग करनेवाला पुरुष स्त्रीकी समान जाँतिमें होजाताहै इसमें कुछ भी संदेह नहीं कारण कि वह पुरुष ही उस स्त्रीकी संतान होकर जन्म लेताहै ॥ १८५ ॥

तै भ्यक्तो घृताभ्यक्तो विष्मूत्रं कुरुते द्विजः ॥ तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चंडालं स्पृशते द्विजः ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १८६ ॥ केशकीटनख-स्नायु अस्थिकण्टकमेव च ॥ स्पृष्ट्वा नद्युदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

जो ब्राह्मण तेल वा घृतसे उवटन करके (बिना स्नान किये) शौचको जाताहै, अथवा लघुशंका करताहै अथवा जो ब्राह्मण तैल वा घृतसे उवटन करके चाण्डालको स्पर्श करताहै वह पंचगव्यका पान कर एक दिन रात्रितक उपवास करके शुद्ध होताहै ॥ १८६ ॥ केश, कीट, नख, स्नायु, अस्थि और कांटोंको जो स्पर्श करताहै वह नदीके जलमें स्नान-कर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८७ ॥

मत्स्यास्थि जंझकास्थीनि नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥

हेमतप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ॥ १८८ ॥

मच्छीकी अस्थि, शृगालकी अस्थि, नख, शुक्ति (शीपी) और कौडी इनके स्पर्श करनेसे स्नानकर, सुवर्णसे शोधित गरम धीका भोजन करै तब शुद्ध होताहै ॥ १८८ ॥

गोकुले कंदुशालायां तैलचक्रेभ्यंत्रयोः ॥

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥ १८९ ॥

गोकुल (ग्वाल) कंदुशाला (भट्टी) तेल निकालनेका कोल्हू, और ईख पेलनेका कोल्हू, स्त्री और रोगीका शौचाशौच विचारके योग्य नहीं है, अर्थात् यह सबही पवित्र हैं ॥ १८९ ॥

न स्त्री दुष्यति जारेण ब्राह्मणो वेदकर्मणा ॥ नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ॥ १९० ॥ पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगंधर्ववह्निभिः ॥ भुंजते मानवाः पश्चान्न वा दुष्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९१ ॥ असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषेच्यते ॥ अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुंचति ॥ १९२ ॥ विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥ तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥ १९३ ॥ स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥ बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथापि वा ॥ १९४ ॥ न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ॥ ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति ॥ १९५ ॥

स्त्रियें देवताओंके जारत्वसे ॐ भी दूषित नहीं होती, ब्राह्मण वेदोक्त कर्म यज्ञिय हिंसा इत्यादिक) करनेसे दूषित नहीं होते (तालाब आदिमें स्थित) जल विष्टा मूत्रके स्पर्श होनेसे भी अशुद्ध नहीं होता अग्नि अपवित्र वस्तुओंको दग्धकरके भी अपवित्र नहीं होती ॥ १९० ॥ प्रथम स्त्रियोंको चंद्रमा, गंधर्व, अग्नि इत्यादि देवता भोग करतेहैं, पीछे मनुष्य भोगतेहैं । वह किसी प्रकारसे भी (मानसादि सामान्य पापसे) दुष्ट नहीं होती ॥ १९१ ॥ असवर्ण (इतरवर्ण) पुरुषका जो स्त्री गर्भ धारण करतीहै वह गर्भिणी स्त्री जबतक संतान उत्पन्न न करे तबतक अशुद्ध रहतीहै ॥ १९२ ॥ संतान जन्मके पीछे वह स्त्री जब ऋतुमती होतीहै तब वह कांचन (अग्निकी) समान शुद्ध होजातीहै ॥ १९३ ॥ स्त्रीके सब प्रकारसे अस्वीकार अवस्थामें (विना राजीके) यदि कोई छलसे या बलसे या चोरीसे उससे मिले ॥ १९४ ॥ तौ इस प्रकार दुष्टा हुई स्त्रीको त्याग करना उचित नहीं, कारण कि इस कार्यमें स्त्रीकी इच्छा नहीं थी, पीछे ऋतुकालके उपस्थित होनेपर इस स्त्रीके साथ संसर्ग करना योग्य है (इससे प्रथम संसर्ग न करे) कारण कि ऋतुकालके जानेपर स्त्रियें शुद्ध होतीहैं ॥ १९५ ॥

रजकश्चर्मकारश्च नटो वुरुड एव च ॥ केवर्तमेदमिल्लाश्च सत्तेत अंत्यजाः स्मृताः ॥ १९६ ॥ एतान्गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥ कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादेव तद्वयम् ॥ १९७ ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्मभिः ॥ प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रसवणेन तु ॥ १९८ ॥ वलोद्धृता स्वयं वापि परप्रेरितया यदि ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ १९९ ॥ प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यदजो भवेत् ॥ न तेन तद्वर्तं तासां विनश्यति कदाचन ॥ २०० ॥

रजक, चर्मकार, नट, (नाटक इत्यादिको करके जीविका निर्वाह करनेवाले) वुरुड (जो बांसकी डालियाँ बनातेहैं) धीमर, कलाल, भील, इन सात जातियोंको भंत्यज कहतेहैं ॥ १९६ ॥ जानकर जो स्त्री इनसे अथवा जो मनुष्य इनकी स्त्रीमें गमन करताहै और जो इनके यहाँका अन्न भोजन करताहै, वा दान लेताहै उसका प्रायश्चित्त कृच्छ्राब्द (एक वर्षतक एक २ करके क्रमानुसार प्राजापत्य व्रत ३० प्राजापत्य) करना योग्य है, और जिसने विना जाने कियाहै वह चान्द्रायण करे तब शुद्ध होताहै ॥ १९७ ॥ जो स्त्री केवल एकहीवार म्लेच्छ वा (उसकी समान) पापी (चांडाल वा अत्यन्त पापी इत्यादि) से भोगी गईहै, वह प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करे; और रजस्वला होनेपर उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १९८ ॥ जो स्त्री

ॐ यहां जार शब्दसे देवताभुक्त जानना मनुष्योंका जारत्व न लेना जैसा कि ऋग्वेदमें लिखा है

“ सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः । तृतीयोऽग्निदे पतित्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ”

अष्टक ८ अध्याय ३ । वर्ग २७ मंत्र ४०

अर्थात् पहले सोम, फिर गंधर्व, तिसके पीछे अग्नि स्त्रीपर अधिकार करतेहैं पीछे मनुष्य पति होताहै सोमने पवित्रता, गंधर्वने सुन्दर वाणी और अग्निने सर्वभक्षिपना दियाहै, इस कारण स्त्री शुद्ध है, इन तीनों देवताओंका छः वर्षतक अधिकार रहताहै, इसीसे इनको जारपना कहतेहैं, मनुष्योंका जारत्व यहां नहीं कहाहै।

चलपूर्वक हरि गईहो, या किसीके कहनेसे गईहो, और एकवार ही भोगीगईहो तो वह प्राजापत्य व्रतको करके शुद्ध होतीहै ॥१९९॥ जिन स्त्रियोंने बहुत दिनोंके तपका प्रारंभ कियाहो तो उनके मासिक धर्म होनेपर उनका व्रत कभी भंग नहीं होता ॥ २०० ॥

मद्यसंस्पृष्टकुम्भेषु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥

कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत पुनः संस्कारमर्हति ॥ २०१ ॥

जिस ब्राह्मणने मदिरासे छुए घड़ेका जल पियाहो तो वह कृच्छ्रपाद प्रायश्चित्त करके शुद्ध होताहै, और फिर वह संस्कारके योग्य है ॥ २०१ ॥

अंत्यजस्थासु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥

उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ॥ २०२ ॥

जो वृक्ष अंत्यजोंके हों, और उनपर बहुत सारे फल पुष्प आतेहों तो उन वृक्षोंके फूल फल सभीके भोगने योग्य हैं ॥ २०२ ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥

कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत आपस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २०३ ॥

जो ब्राह्मण चांडालसे स्पर्श कियेहुए जलको पीताहै वह “कृच्छ्रपाद”का अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होताहै यह आपस्तंब ऋषिका वचन है ॥ २०३ ॥

श्लेष्मोपानहविण्मूत्रस्त्रिरजोमद्यमेव च ॥ एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ॥ २०४ ॥ एकं द्यहं त्र्यहं चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥ प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २०५ ॥

(प्रश्न—) श्लेष्मा, जूता, विषा, मूत्र, रज, रुधिर, वा मदिरासे दूषित कूपका जल पानकनेसे उसका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा ॥ २०४ ॥ (उत्तर—) ब्राह्मण तीन दिनतक, क्षत्री दो दिनतक, और वैश्य एक दिनतक उपवास करै, और शूद्र नक्तव्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २०५ ॥

सद्यो वांति सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥ पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनत्रयम् ॥ शिरःकंठोरुपादांश्च मुरया यस्तु लिप्यते ॥ २०६ ॥ दशषट्-त्रितयैकाहं चरेदेवमनुकमात् ॥ अत्राप्युदाहरंति ॥ प्रमादान्मद्यपसुरांसंकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः ॥ गोमूत्रेयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २०७ ॥

सद्यः वमनके (तत्काल हुई कैके) स्पर्शसे वखों सहित स्नान करै, और पहले दिनके वमनके स्पर्शसे एक दिन और अधिक दिनकी वमनके स्पर्शसे तीन दिनतक उपवास करना ब्राह्मणोंको कर्तव्य है मस्तकमें सुराका लेप होनेसे दश दिन, और कंठमें सुराका लेप होनेसे छः दिन जांघमें सुराका लेप होनेसे तीन दिन और पैरमें सुराका लेप होनेसे एक दिनतक उपवास करै ॥ २०६ ॥ इस स्थानपर ऋषिने कहाहै कि जो श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रमादके चशसे मद्यपाई पुरुषसे मद्य लेकर (अर्थात् अवधि मद्य) पान करताहै वह गोमूत्रसे सिद्ध हुए जौको दश दिनतक खाय तब शुद्ध होताहै ॥ २०७ ॥

मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥
ने देवा भुंजते तस्य नै पिवन्ति हविर्जलम् ॥ २०८ ॥

जो ब्राह्मण मद्यप (अविधि मद्यका पानकरनेवाले) के वा निषाद (भील) के अन्नको भोजन करता है देवता उसके दियेहुए हव्यका भोजन वा उसके दियेहुए जलका पानतक भी नहीं करते ॥ २०८ ॥

चितिभ्रष्टा तु या नारी ऋतुभ्रष्टा च व्याधितः ॥
प्राजापत्येन शुद्धयेत ब्राह्मणानां तु भोजनात् ॥ २०९ ॥

जो स्त्री स्वामीके साथ मरनेको चितापर चढ़कर पश्चात् उठकर चितासे निकल पड़े, वा रोगद्वारा रजोहीन होजाय वह प्राजापत्य व्रत करने तथा दश ब्राह्मणों को भोजन करानेसे शुद्ध होगी ॥ २०९ ॥

ये च प्रव्रजिता विप्राः प्रव्रज्यामिजलावहाः ॥ अनाशकान्निवर्तते चिकीर्षति
गृहस्थितिम् ॥ २१० ॥ धारयेत्रीणि कृच्छ्राणि चांद्रायणमथापि वा ॥ जाति-
कर्मादिकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ॥ २११ ॥

जो निवृत्त ब्राह्मण संन्यासी होजाते हैं, वा जिन्होंने अपनी मृत्युका संकल्प करके अग्निमें प्रवेश या जलमें प्रवेश किया है और फिरभी उनका जीवन नष्ट नहीं हुआ है ॥ २१० ॥ और वह फिर गृहस्थ होनेकी इच्छा करते हैं तो वह तीन प्राजापत्य, चांद्रायण और जातकर्म इत्यादि सब संस्कारोंके भागी होते हैं ॥ २११ ॥

न शौचं नोदकं नाशु नापवादानुकंपने ॥ ब्रह्मदंडहतानां तु न कार्यं कटधार-
णम् ॥ २१२ ॥ स्नेहं कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ॥ गोमूत्रयावका-
हारः कृच्छ्रमेकं विशोधनम् ॥ २१३ ॥

ब्रह्मदंड, (ब्रह्मशापादि) से जो नष्ट होगया है, उसका अशौच नहीं होता उसके निमित्त जल आदिका दान वा अश्रुत्याग करना, उचित नहीं है उसका गुण वर्णन करना, या उसके प्रति दया प्रकाश करके दुःखकरना वा उसके निमित्त “कट धारण” (शय्यान्तरको छोड़कर केवल काठपर शयन) करना ठीक नहीं है ॥ २१२ ॥ यदि कोई मनुष्य इस (ब्रह्मदंडहत) मनुष्यके प्रति अंतःकरणके स्नेहसे वा उसके क्षमावात् पुत्रादिके भयसे अथवा विनयसे इन सब निषिद्ध कर्मोंका अनुष्ठान करे तो वह गोमूत्रसे सिद्ध हुए जौका आहार करे यही एक उसका प्रायश्चित्त है ॥ २१३ ॥

बुद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातमिपक्क्रियः ॥ आत्मानं घातयेद्यस्तु भृशग्न्य-
नशनांबुभिः ॥ २१४ ॥ तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः ॥ तृतीये
तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥ २१५ ॥

जो मनुष्य बुद्धहोकर शौच स्मृतिसे वर्जित होगया हो, अर्थात् जिसको शौचाशौचके विषयका ज्ञान नहीं है, वैद्योंने भी जिसकी चिकित्सा करनी छोड़दी हो, पश्चात् उसने ऊँचे-

से गिरकर या अभिमें प्रवेश करके निर्जल रहकर वा जलमें डूबकर आत्मघात किया हो-
॥ २१४ ॥ तौ उसके पुत्रोंको तीन दिनतक अशौच होगा, दूसरेही दिन अस्थिसंचय
(गंगार्ज्जमें डालनेके निमित्त चितासे अस्थियोंका संग्रह करना) और तीसरे दिन जलदान-
करके चौथे दिन श्राद्ध करें ॥ २१५ ॥

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुचारिणी ॥

मंगलानि कुतस्तस्य कुत स्य तमःक्षयः ॥ २१६ ॥

जिसके घरमें एक भी गौ बल्लडेवाली अर्थात् दूध देनेवाली न हो उसका मंगल किस
प्रकारसे होसकता है और पाप दुःख वा अमंगलका नाश किस प्रकारसे होसकता है ॥ २१६ ॥

अतिदोहातिवाहाभ्यां नासिकामेदनेन वा ॥

नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २१७ ॥

अधिक दूधके दुहनेसे या अधिक चढ़नेसे, रस्सी डालनेके अर्थ नाक छेदनेसे, या नदी
वा पर्वतमें रोकनेसे गौकी मृत्यु होनेपर साक्षात् गोवधप्रायश्चित्तका पादोन (एकपाद कम)
प्रायश्चित्त करें ॥ २१७ ॥

अष्टागवं धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ॥ चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गववध्य-

कृत् ॥ २१८ ॥ द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ षड्गवं तु त्रिपादोक्तं

पूर्णाहस्त्वष्टभिः स्मृतम् ॥ २१९ ॥

धर्ममें निष्ठा करनेवाले आठ बैलोंके हलको चलाते हैं; छैः बैलोंका हल चलाना भी
व्यावहारिक है, अर्थात् उसके करने से समाज में निन्दनीय नहीं है, निर्दयी मनुष्य चार
बैलोंका हल चलाते हैं, और जो दो बैलोंका हल चलाते हैं वे गौकी हत्या करनेवाले हैं ॥ २१८ ॥
ॐ दो बैलोंका हल एक पहरतक और चार बैलोंका हल मध्याह्न कालतक, छैः बैलोंका हल
तीन पहरतक, और आठ बैलोंका हल सारे दिनतक चञ्चलना योग्य है ॥ २१९ ॥

क षोष्ठाशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सातपनं चरेत् ॥ प्राजापत्यं चरेन्मृत्सा अतिकृच्छ्रं

तु आयसैः ॥ २२० ॥ प्रायश्चित्तेन तच्चूर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ अनहुत्स-

हितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ २२१ ॥

जो मनुष्य काष्ठ, लोष्ट (ढेला आदि) से गौको मारता है वह “कृच्छ्र” व्रतको करे
और जिसने मट्टीके द्वारा गौहत्या की है वह “प्राजापत्य” को करे, और जिसने लोहदंड
से गौहत्या की है वह “अतिकृच्छ्र” व्रतको करे ॥ २२० ॥ प्रायश्चित्त हो जानेपर ब्राह्मण-
भोजन करावे, और बल्लडे सहित एक गाय ब्राह्मणको दक्षिणामें दे ॥ २२१ ॥

शरभोष्ट्रहयान्नागान्सिंहशार्दूलगर्दभान् ॥

हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ २२२ ॥

ॐ पहले श्लोकमें चार और दो बैलोंके हल चलाने को निषिद्ध कहा है, और इस स्थानमें उनका
एक प्रकारसे विधान किया है; इस कारण यहां यह जानना होगा कि इसप्रकार कुछ समयके लिये
चार वा दो बैलोंका हल चलाना निषिद्ध नहीं है परन्तु सम्पूर्ण दिन हल चलाना निषिद्ध है ।

शरभ (आठ पैरवाला मृग) ऊंट, अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र वा गर्दभ इनकी हत्या करनेवाला शुद्धकी हत्याका जो प्रायश्चित्त कहा है उसे करे ॥ २२२ ॥

मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्च पतत्रिणः ॥

हत्वा व्यहं पिवेत्क्षीरं कुच्छं वा पादिकं चरेत् ॥ २२३ ॥

चंडालस्य च संस्पृष्टं विष्णुमंत्रोच्छिष्टमेव वा ॥

त्रिरात्रेण विशुद्धं हि भुक्कोच्छिष्टं समाचरेत् ॥ २२४ ॥

विही, गोह, नीला, मेंढक वा पक्षीका मारनेवाला तीन दिनतक दुग्ध पान कर फिर "पादकुच्छ" को करे ॥ २२३ ॥ चांडालका स्पर्श किया हुआ और विष्टा मूत्रसे स्पर्श किया हुआ वा अपनी उच्छिष्टको जो मनुष्य भोजन करता है वह तीन दिनतक उच्छिष्ट भोजन करनेके प्रायश्चित्तको करे ॥ २२४ ॥

वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥

उद्धरेत्पद्मातं पूर्णं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२५ ॥

जो जलाशय, वावडी, कुआ, तलाव, मुरदे इत्यादिके स्पर्शसे दूषित होजाते हैं इनकी शुद्धि छैः सो घडे जल भरकर बाहर निकालनेसे तथा उसमें पंचगव्य डालनेसे होती है ॥ २२५ ॥

अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरश्चानादिदूषिते ॥

उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ २२६ ॥

जिन जलाशयोंमें अस्थि, और चर्म पड़े हैं अथवा गर्दभ कुत्ते पढके मरगए हैं, उन जलाशयोंका संपूर्ण उदक निकालडालें, और पंचगव्य आदिकोंसे शुद्ध करे ॥ २२६ ॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यंत्राकरे कारुकाशिल्पिहस्ते ॥

स्त्रीवालवृद्धाचरितानि यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि ॥ २२७ ॥

दोहिनी और मशकका जल, यन्त्र (जलादिके निकालनेकी कल) आकर (खान) कारीगर और शिल्पीका हाथ, जी, बालक और वृद्धोंके आचरण, और निनका अपवित्रपन प्रत्यक्षमें नहीं देखागया है वह सब पवित्र हैं ॥ २२७ ॥

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेवानिवेशे भवनस्य दाहे ॥

अवाप्त्ययज्ञेषु महोत्सवेषु तेष्वेव दोषा न विकल्पनीयाः ॥ २२८ ॥

नगरीकी रोक शत्रुओंसे परकोटाके घिरजानेके समयमें, संकटके देशमें, सेवाके स्थानमें अग्निके घरमें लगजानेके समय, यज्ञकी समाप्ति हुए बिना और धडे २ उत्सवोंके समयमें दोषादोषका विचार करना कर्तव्य नहीं है ॥ २२८ ॥

प्रपास्वरण्ये घटकस्य कूपे द्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतं च ॥

श्वपाकचंडालपरिग्रहे तु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः ॥ २२९ ॥

प्याऊ, वन, घड़ियों, (घंटों) का कुआ और द्रोणी (खेतकी बयारी) में जो खोवसे निकला हुआ जल हो उसके पीनेमें कुछ दोष नहीं है। कंजर, और चांडालके बनाये हुए कुएंआदिका जल पीकर मनुष्यकी पंचगव्यके पीनेसे शुद्धि होती है ॥ २२९ ॥

रेतोविष्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत् ॥

त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात्कुंभे सांतपनं तथा ॥ २३० ॥

वीर्यं, विष्टा, वा मूत्र, इनका जिसमें स्पर्श हो ऐसे कूपके जलको जो पान करता है वह रात्रितक उपवास करे और जिसने ऐसे दूषित घड़ेके जलका पान किया हो वह “सा-
न्तपन” करके शुद्ध होता है ॥ २३० ॥

क्लिन्नभिन्नशवं यत्स्यादज्ञानाच्च तथोदकम् ॥

प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३१ ॥

जो किसी ब्राह्मणने मुरदेके स्पर्शसे दूषित हुए जलको पान किया हो तो उसका प्राय-
श्चित्त तप्तकृच्छ्र करना योग्य है ॥ २३१ ॥

उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च ॥

प्रायश्चित्तं चरेत्पीत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३२ ॥

जिस ब्राह्मणने, ऊंटनी, गधी, वा किसी अन्य मनुष्यकी स्त्रीके दूधको पिया हो तो वह
तप्तकृच्छ्र व्रतका प्रायश्चित्त करे ॥ २३२ ॥

वर्णबाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः ॥

पंचरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २३३ ॥

यदि ब्राह्मणको उच्छिष्ट अवस्थामें यवन इत्यादि स्पर्श करले, तो वह पंचगव्यका पान-
कर पांच रात्रितक उपवास करे तब शुद्ध होता है ॥ २३३ ॥

शुचि गोतृषिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥

चर्मभांडस्थधाराभिस्तथा यंत्रोद्धृतं जलम् ॥ २३४ ॥

जिस जलसे गौकी वृषि होसके वह पृथ्वीपर रक्खा हुआ निर्मल जल, चर्मपात्रसे लगाई
हुई धाराका जल, और यंत्रसे निकला हुआ जल यह सब पवित्र हैं ॥ २३४ ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टे स्नानमेव विधीयते ॥

उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३५ ॥

चांडालने जिसे स्पर्श किया हो वह केवल स्नानही करे, और जो उच्छिष्ट अवस्थामें स्पर्श
किया हो तो तीन रात्रिमें शुद्ध होता है ॥ २३५ ॥

आकराद्गतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥

आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुरालयम् ॥ २३६ ॥

खानसे निकली हुई वस्तु कभी अशुद्ध नहीं होती, सदिराके स्थानको छोड़कर सभी आकर
शुद्ध हैं ॥ २३६ ॥

भृष्टाभृष्टा यवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ॥ खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यद्भृष्टतरं

शुचि ॥ २३७ ॥ अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ॥ गोकुले

कंदुशा यां तैलयंत्रेक्षुयंत्रयोः ॥ २३८ ॥

जौ, चना, खजूर और कपूर यह भुने हों अथवा बिना भुने हों सभी अवस्थामें शुद्ध हैं
और अन्यान्य द्रव्योंकी ढेरियें जो परस्पर मिलीहुई धरी हैं उनमें जो अशुद्ध हो जाँय वही

अशुद्ध गिनी जाँयगी दूसरी नहीं ॥ २३७ ॥ स्त्रियोंके आचरण किये हुए कार्यमें गाथाक कुलमें कटुशालामें (अर्थात् हलवाईके दूकान में) तेलनिकालनेके यंत्रमें, और ईखके कोल्हूमें, शौचाशौचका विचार करना योग्य नहीं है ॥ २३८ ॥

अदुष्टाः सततं धारा वातोद्धृताश्च रेणवः ॥ २३९ ॥

पवित्र आकाशसे गिरनेवाली जलधारा और वायुसे उड़ीहुई धूरि यह सर्वदाही पवित्र हैं ॥ २३९ ॥

बहूनामेकलयानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् ॥

अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथंचन ॥ २४० ॥

एक साथ बैठे हुए अनेक मनुष्योंमें यदि एक मनुष्य अपवित्र हुआ बैठा होय तो अशौच उसी एककोही लगताहै, अन्य मनुष्योंको किसी तरहसे आशौच लगता नहीं ॥ २४० ॥

एकपत्तयुपविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक् ॥

यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेऽशुचयः स्मृताः ॥ २४१ ॥

एक पंक्तिमें पृथक् २ बैठे हुए भोजन करनेवालोंमेंसे यदि एक मनुष्यकी देहमें नीलका स्पर्श होजाय तो उस पंक्तिके सभी मनुष्योंको अशुद्ध कहा जायगा ॥ २४१ ॥

यस्य पट्टे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ॥

त्रिरात्रं तस्य दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिनः ॥ २४२ ॥

जिस मनुष्यके शरीरपर नीलरंगका वस्त्र देखा जायगा (अर्थात् जो नीले रंगका वस्त्र पहन रहाहै) वह मनुष्य तीन रात्रि, और अन्य एक दिनतक उपवास करे ॥ २४२ ॥

आदित्येस्तमिते रात्रावस्पृश्यं स्पृशते यदि ॥ भगवन्केन शुद्धिः स्यात्ततो ब्रूहि तपोधन ॥ २४३ ॥ आदित्येस्तमिते रात्रौ स्पर्शहीनं दिवा जलम् ॥ तेनैव सर्वशुद्धिः स्याच्छवस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥ २४४ ॥

(ऋषियोंने प्रश्न किया कि) हे भगवन् ! हे तपोधन ! सूर्यके अस्त होनेके उपरान्त रात्रिके समय यदि स्पर्श न करनेयोग्य वस्तुका जो स्पर्श करले तो उसकी शुद्धि किस प्रकारसे होतीहै सो आप कहिये ॥ २४३ ॥ (अत्रिजी बोले कि) रात्रिके समय विना छुआ जो दिनका निर्मल जल रक्खा हुआ है उसके जलसे मुरदेके स्पर्श अतिरिक्त और सबकी शुद्धि होतीहै ॥ २४४ ॥

देशं कालं च यः शक्तिं पापं चावेक्षयेत्ततः ॥

प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यस्य चोक्ता न निष्कृतिः ॥ २४५ ॥

और जिन पापोंका प्रायश्चित्त शास्त्रमें नहीं कहाहै, देश, समय, शक्ति और पापका विचार करके उसके प्रायश्चित्तकी कल्पना करलें ॥ २४५ ॥

देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ॥

उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ २४६ ॥

देवयात्रामें (देवताओंके दर्शनके निमित्त जानेमें) विवाहमें, यज्ञआदि प्रकरणमें और सम्पूर्ण उत्सवोंमें स्पर्श करनेके योग्य और अयोग्यका विचार नहीं होता है ॥ २४६ ॥

आरनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधि सक्तवः ॥ स्नेहपकं च तं च शूद्रस्यापि न
दुष्यति ॥ २४७ ॥ आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥ अंत्यभांड-
स्थितास्त्वेते निष्कांताः शुद्धिमाप्नुयुः ॥ २४८ ॥

आरनाल (चनेआदिकी खटाई) दूध, कंदुक, दही, सत्तू, स्नेह, (घी तेलसे पकाहुआ)
पदार्थ और मट्ठा यह यदि शूद्रके यहांकाभी हो (उसको भक्षण करनेसे ब्राह्मणोंको) दोष
नहीं है ॥ २४७ ॥ आर्द्रमांस (बिना पकाहुआ मांस) घृत, तेल और फलसे उत्पन्नहुए
स्नेह (इंगुदीवृक्षका तेल आदि) यह चांडालके पात्रसे निकलतेही शुद्ध होजाते हैं ॥ २४८ ॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ॥

अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २४९ ॥

यदि ब्राह्मणने बिना जाने हुए शूद्रके यहाँका जलपान कर लिया है तो वह स्नान करनेके
उपरान्त पंचगव्यका पानकर एक दिनतक उपवास करै तब शुद्ध होता है ॥ २४९ ॥

आहिताभिस्तु यो अग्निमो महापातकवान्भवेत् ॥

अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥ २५० ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री हैं वह यदि महापातकी होजाय तो वह जलमें होमके पात्रोंको
फेंककर फिर अग्निको ग्रहण करै ॥ २५० ॥

यो गृहीत्वा विवाहार्थं गृहस्थ इति मन्यते ॥ अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथा-

पाको हि स स्मृतः ॥ २५१ ॥ वृथापाकस्य भुंजानः प्रायश्चित्तं चरेद्विजः ॥

प्राणानाशु त्रिराचम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २५२ ॥

जो मनुष्य विवाहकी अग्निको ग्रहण करके अपनेको गृहस्थ मानते हैं (और अग्निकी
रक्षा नहीं करते) उनका अन्न भोजन करनेके योग्य नहीं है, कारण कि उनका भोजन
वृथापाक (निष्फल) कहा गया है (देवता उसके अन्नको भोजन नहीं करते इसीसे
उसका पाक निष्फल है) ॥ २५१ ॥ इस वृथापाकके अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करले वह
इस प्रायश्चित्तको करै कि जलके बीचमें तीनवार प्राणायाम करके घृतका भोजन करै तब
शुद्ध होता है ॥ २५२ ॥

वैदिके लौकिके वापि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ॥

वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥ २५३ ॥

पाँच हत्याके पापको दूरकरनेके निमित्त वैदिक अग्निमें (वेदके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कीहुई
अग्निमें) वा लौकिक अग्निमें (पदार्थ पकानेके निमित्त प्रज्वलित अग्निमें) वा हुतोच्छि-
ष्टमें (नित्य जिसमें होम किया हो ऐसी अग्निमें) अथवा जलमें वा पृथ्वीमें वैश्वदेव
करै ॥ २५३ ॥

कनीयान्गुणवांश्चैव श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ॥ पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं
धारयेद्बुधः ॥ २५४ ॥ ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्णात्यग्निं यवीयकः ॥ नित्यं
नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥ २५५ ॥

यदि बड़ा भाई निर्गुण हो, और छोटा सम्पूर्ण गुणोंसे विभूषित हो तो ज्ञानी छोटाभाई बड़े भाईसे प्रथम विवाह करके गृह्य अग्निको धारण करे ॥ २५४ ॥ परन्तु जब बड़े भाईमें कोई दोष नहीं है तब छोटा भाई जो (गृह्य) अग्निको ग्रहण करले तो उसको प्रतिदिन निःसंदेह ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ २५५ ॥

महापातकिसंस्पृष्टः स्नानमेव विधीयते ॥

संस्पृष्टस्य यदा भुंक्ते स्नानमेव विधीयते ॥ २५६ ॥

जिस मनुष्यको महापातकीने स्पर्श किया हो वह, और जिसने महापातकीके स्पर्श किये हुएके अन्नको भोजन किया हो वह दोनोंही स्नानकरनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ २५६ ॥

**पतितैः सह संसर्गं मासार्द्धं मासमेव च ॥ गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन वि-
शुद्ध्यति ॥ २५७ ॥ कृच्छ्रार्द्धं पतितस्यैव सकृद्भुक्ता द्विजोत्तमः ॥ अविज्ञा-
नाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्रं सातपनं चरेत् ॥ २५८ ॥ पतितानां यदा भुक्तं भुक्तं
चंडालवेश्मनि ॥ मासार्द्धं तु पिबेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २५९ ॥**

पतित मनुष्यका साथ जिसने एक पक्ष वा एक महीनेतक कियाहो वह मनुष्य पंद्रह दिनतक गोमूत्रसे सिद्धहुए जौका भोजन करे तब शुद्ध होता है ॥ २५७ ॥ जो ब्राह्मण पतित मनुष्यके यहां अन्नको जानकर भोजन करले तो वह आधाकृच्छ्र करे और बिना जानेहुए भोजन करले तो कृच्छ्रसातपन व्रतको करे ॥ २५८ ॥ शातातप मुनिने कहा है कि यदि जिस मनुष्यने पतितके यहांका भोजन किया हो, वा चांडालके घरमें भोजन किया हो तो वह पंद्रहदिनतक केवल जलहीको पीता रहै ॥ २५९ ॥

गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ॥

अग्निना न च संस्कारः शंखस्य वचनं यथा ॥ २६० ॥

गौ और ब्राह्मणके द्वारा निहतहुए और पतित मनुष्योंका अग्निसे संस्कार नहीं होता है; यही शंखत्रयिका वचन है ॥ २६० ॥

यश्चंडालो द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥

त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥ २६१ ॥

यदि ब्राह्मण कामदेवसे मोहित हो किसी चांडालकी स्त्रीके साथ भोग करले तो वह प्राजापत्य व्रतको कर तीन कृच्छ्रव्रतको करे तब शुद्ध होता है ॥ २६१ ॥

पतिताच्चात्रमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि ॥

भुक्त्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ॥ २६२ ॥

जो ब्राह्मणने पतितके यहांका अन्न ग्रहण किया हो तो उस अन्नकी त्यागदे और यदि ब्राह्मणने पतितके अन्नको भोजन किया हो तो उसको वमनद्वारा त्याग दे; और फिर अति-कृच्छ्रव्रतको करे (तब शुद्ध होता है) ॥ २६२ ॥

अंत्यहस्तात्तु विक्षिप्तं काष्ठलोष्टनृणानि च ॥

न स्पृशेत्तु तथोच्छिष्टमहोरात्रं समाचरेत् ॥ २६३ ॥

अंत्यज (चांडालादि) के हाथसे फेंकेहुए, काष्ठ, लोष्ठ, तृण और उच्छिष्टका स्पर्श न करै (और यदि करै) तौ अहोरात्रका व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २६३ ॥

चांडाल पतितं म्लेच्छं मद्यभांडं रजस्वलाम् ॥ द्विजःस्पृष्ट्वा न भुंजीत भुंजानो यदि संस्पृशेत् ॥ २६४ ॥ अतः परं न भुंजीत त्यक्त्वात्रं स्नानमाचरेत् ॥ ब्राह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषः समापयेत् ॥ २६५ ॥ भुंजानः संस्पृशेद्यस्तु वायसं कुकुटं तथा ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादयोच्छिष्टस्यहेण तु ॥ २६६ ॥

चांडाल, पतित, म्लेच्छ, मदिराका पात्र और रजस्वला स्त्री इनका स्पर्श करन ब्राह्मण भोजन न करै, और जो भोजन करते समय इनका स्पर्श होजाय तौ ॥ २६४ ॥ फिर भोजन न करै, और उस अन्नको त्यागकर स्नान करै, फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर तीन रात्र उपवास करै, और घृतके सहित जौका भोजन कर व्रतको समाप्त करै ॥ २६५ ॥ भोजन करते समय कौआ, या मुरगा छुजाय तौ तीन रात्रतक उपवास करै तब शुद्ध होता है और जो भोजनके अंतमें उच्छिष्ट अवस्थाके समयमें कौए या मुरगेका स्पर्श होजाय तौ एकदिनमें उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ २६६ ॥

आरूढो नैष्ठिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ॥

चांद्रायणं चरेन्मासमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६७ ॥

जो नैष्ठिक धर्ममें स्थित होकर फिर उसको त्याग देता है वह एक महीनेतक चांद्रायण व्रतको करै, यह शातातप ऋषिने कहा है ॥ २६७ ॥

पशुवेद्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥ गवां गमने मनुप्रोक्तं व्रतं चांद्रायणं चरेत् ॥ २६८ ॥ अमानुषीषु गोवर्जमुदकयायामयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २६९ ॥

जो मनुष्य पशु और वेद्यामें गमन करते हैं, वह प्राजापत्य व्रतको करै; और जो गौके साथ गमन करते हैं वह मनुजीके कहेहुए चांद्रायण व्रतको करै ॥ २६८ ॥ गौके अतिरिक्त पशुकी योनि, अयोनि, अर्थात् भूमि आदिमें वा जलमें वीर्य डालनेवाले मनुष्य कृच्छ्र सांतपन व्रतको करै ॥ २६९ ॥

उदक्यां सृतिकां वापि अंत्यजां स्पृशते यदि ॥

त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्याद्विधिरेष पुरातनः ॥ २७० ॥

रजस्वला, सृतिका, वा अंत्यजाका स्पर्श करनेवाला मनुष्य तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, यह पुरातन विधि है ॥ २७० ॥

संसर्गे यदि गच्छेच्चैदुदक्यया तथांत्यजैः ॥ प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥ २७१ ॥ एकरात्रं चरेन्मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ॥ दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥ २७२ ॥

जिस मनुष्यका रजस्वलाके साथ वा अंत्यजाके साथ स्पर्श होजाय तौ वह मनुष्य प्रायश्चित्त करनेके योग्य है, और प्रायश्चित्तके प्रथम स्नान करै ॥ २७१ ॥ और एक दिन गोमूत्र

पिये, और तीन दिनों गौका गोबर भक्षण करें, यदि विजातीय चांडाली आदि स्त्रीके साथ जल पिया हो तो तीन दिन गोमूत्र और तीन दिन गोबर भक्षण करें, यदि पूर्वोक्त स्त्रीके साथ मैथुन किया हो तो पांच तथा सात दिन गोमूत्र और गोबरका सेवन करनेसे दोष दूर होता है ॥ २७२ ॥

स्मृत्यंतरम् ॥ अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ॥

पूर्यते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥ २७३ ॥

अन्य स्मृतियोंमें भी कहा है कि अपनी जातिके स्वीकार करनेसे या ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे महापातकी पापीभी शुद्ध हो जाते हैं ॥ २७३ ॥

भोजने तु प्रसक्तानां प्राजापत्यं विधीयते ॥

दंतकाष्ठे त्वहोरात्रभेष शौचविधिः स्मृतः ॥ २७४ ॥

पूर्वोक्त विना शुद्धहुए पातकियोंके साथ भोजन करनेवाला पुरुष प्राजापत्य नामक व्रत करनेसे शुद्ध होता है; और उनके साथ दंतधावन करनेसे एक दिन रातमें शुद्ध होता है, यही पवित्र होनेको विधि है ॥ २७४ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचंडालवायसैः ॥ निराहारा भवेत्तावत्कालात्वा कालेन

शुद्ध्यति ॥ २७५ ॥ रजस्वला यदा स्पृष्टा उष्ट्रजंशुकशंवरैः ॥ पंचरात्रं निराहारा

पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २७६ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च

या ॥ एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २७७ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं

ब्राह्मण्या क्षत्रियी च या ॥ त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्रह्मसस्य वचनं यथा ॥ २७८ ॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसंभवा ॥ चतुरात्रं निराहारा पंचगव्येन

शुद्ध्यति ॥ २७९ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा ॥ षड्रात्रेण

विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मणी कामकारतः ॥ २८० ॥ अकामतश्चरेद्दूर्ध्वं ब्राह्मणी सर्वतः

स्पृशेत् ॥ चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥ २८१ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, कौआ, अथवा चांडाल छूले तो वह रजकी शुद्धितक निराहार रहै पीछे चौथे दिन शुद्ध स्नानको करके शुद्ध होजाती है ॥ २७५ ॥ जिस रजस्वला स्त्रीको ऊँट, गीदड़, वा शंवर स्पर्श करले तो वह पांच राततक निराहार व्रतकर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होती है ॥ २७६ ॥ यदि ब्राह्मणी रजस्वलाने ब्राह्मणी रजस्वलाको स्पर्श कर लिया हो तो वह एक रात्रितक निराहार रहकर पंचगव्यका पान करें तब शुद्ध होती है ॥ २७७ ॥ ब्राह्मणी रजस्वलाने क्षत्रीकी स्त्री रजस्वलाका स्पर्श कर लिया हो तो वह ब्राह्मणी तीन रात्रितक उपवास कर (पंचगव्यका पान करें) तब शुद्ध होती है यह व्यासजीका वचन है ॥ २७८ ॥ यदि वैश्यकी कन्या रजस्वलाको ब्राह्मणकी स्त्रीने स्पर्श किया हो तो वह ब्राह्मणी चार रात्रितक निराहार रहकर पंचगव्यका पान करनेसे शुद्ध होजाती है ॥ २७९ ॥ यदि ब्राह्म रजस्वला शूद्रा रजस्वलाका स्पर्श करले तो छः रात्रिमें शुद्ध होती है ॥ २८० ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणी सबको स्पर्श करसकती है, इस रीतिसे चारों वर्णोंकी शुद्धि कही है ॥ २८१ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ॥ भोजने मूत्रचारे च शंखस्य वचनं
यथा ॥ २८२ ॥ स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शं जपहोमौ तु क्षत्रिये ॥ वैश्ये नक्तं च कु-
र्वीत शूद्रे चैव उपोषणम् ॥ २८३ ॥ चर्मके रजके वैश्ये धीवरे नटके तथा ॥
एतान्स्पृष्ट्वा द्विजो मोहादाचामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥ २८४ ॥ एतैः स्पृष्ट्वा द्विजो
नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ॥ उच्छिष्टैस्तैस्त्रिरात्रं स्याद्धृतं प्राश्य विशुद्ध्य-
ति ॥ २८५ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मणने उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श कर लिया हो तो वह ब्राह्मण स्नान
करै, और भोजन वा मूत्र त्यागनेके समय स्पर्श किया हो तो स्नान करै, यदि इस प्रकारसे
क्षत्रियने स्पर्श किया हो तो जप, होम करै और इसी प्रकारसे वैश्यने स्पर्श किया हो तो नक्त-
व्रत करै, और जो शूद्रे स्पर्श किया हो तो उपवास करै यह शंख ऋषिका वचन है
॥ २८२ ॥ २८३ ॥ चमार, धीमर, धोबी, और नट जिस ब्राह्मणने इनका स्पर्श अज्ञानतासे
किया हो तो वह सावधान होकर आचमन करै ॥ २८४ ॥ यदि ये ब्राह्मणका स्पर्श करलें
तौ एक रात्र दूध पिये, और पूर्वोक्त चमार आदि उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श करलें तौ घृतको
खाकर ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥ २८५ ॥

यस्तु च्छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति ॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २८६ ॥

जो ब्राह्मण श्वपाककी छायामें चले तौ स्नान कर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होता
है ॥ २८६ ॥

अभिशास्तो द्विजोरण्ये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणम-
थापि वा ॥ २८७ ॥ वृथा मिथ्योपयोगेन भ्रूणहत्याव्रतं चरेत् ॥ अब्भक्षो
द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्ध्यति ॥ २८८ ॥

जो ब्राह्मण अभिशास्त (कलंकित) हो वह वनमें जाकर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करै, और
एक महीनेतक उपवास करै, या चांद्रायण व्रतको करै ॥ २८७ ॥ यदि झूटाही दोष लगाहो
तो भ्रूणहत्याका व्रत करै बारह दिनतक केवल जलहीको पीकर पराव्रतका अनुष्ठान करै
(तब शुद्ध होता है) ॥ २८८ ॥

शठं च ब्राह्मणं हत्वा शद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥

निर्गुणं च गुणी हत्वा पराकं व्रतमाचरेत् ॥ २८९ ॥

मूर्ख ब्राह्मणको मारकर शूद्रकी हत्याका प्रायश्चित्त करै और गुणी निर्गुणको मारकर पराक-
व्रतका अनुष्ठान करै ॥ २८९ ॥

उपपातकसंयुक्तो मानवो म्रियते यदि ॥

तस्य संस्कारकर्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ २९० ॥

जिसको उपपातक लगा हो यदि वह मनुष्य मरजाय तो उसका संस्कार करनेवाला दो
प्राजापत्यको करै ॥ २९० ॥

प्रभुं जानोऽतिसंज्ञेहं कदाचित्स्पृश्यते द्विजः ॥

त्रिरात्रमाचरेन्नक्तैर्निःसहमथवा चरेत् ॥ २९१ ॥

स्नेह सहित पदार्थको भोजन करते समय ब्राह्मणको कदाचित् कोई छूले तो तीन रात्रतक नक्तव्रत करे अथवा रुखा भोजन करे ॥ २९१ ॥

विडालकाकाद्युच्छिष्टं जग्ध्वाऽवनकुलस्य च ॥

केशकीटावपन्नं चं पिवेद्ब्राह्मीः सुवर्चलाम् ॥ २९२ ॥

बिल्ली, कौआ, कुत्ता, और नौलेकी उच्छिष्टको, केश और कीटयुक्त द्रव्यको भोजन करनेसे तेजकी बढ़ानेवाली ब्राह्मी औपधीका काथ बनायकर पान करे ॥ २९२ ॥

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ॥

स्नात्वा विप्रो जितप्राणः प्राणायामेन शुद्धयति ॥ २९३ ॥

ऊंट गाड़ीपर वा गधेकी सवारोपर बैठकर ब्राह्मण स्नानकर प्राणायाम करे तब शुद्ध होता है ॥ २९३ ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

त्रिः पठेद्वा यतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ २९४ ॥

क्रमानुसार प्राणोंको रोककर व्याहृति (भूः इत्यादि) ऊँकार और शिरो मंत्रयुक्त गायत्रीका तीनवार पाठ करे उसको प्राणायाम कहते हैं ॥ २९४ ॥

शकृद्द्विगुणगोभूत्रं सर्पिर्देद्याच्चतुर्गुणम् ॥

क्षीरमष्टगुणं देयं पंचगव्यं तथा दधि ॥ २९५ ॥

गोबरसे दूना गोमूत्र, चौगुना घी, अठगुना दूध और अठगुना दही डाले इसे पंचगव्य कहते हैं ॥ २९५ ॥

पंचगव्यं पिवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिबेत् ॥

उभौ तौ तुल्यदोषौ च वसतो नरके चिरम् ॥ २९६ ॥

पंचगव्यका पान करनेवाला शूद्र, मदिराका पान करनेवाला ब्राह्मण यह दोनों समान पापके अधिकारी हैं, यह दोनोंही मनुष्य चिरकालतक नरकमें बास करते हैं ॥ २९६ ॥

अजा गावो महिष्यश्च अमेध्यं भक्षयंति याः ॥

दुग्धं हव्ये च कश्ये च गोमयं न विलेपयेत् ॥ २९७ ॥

जो बकरी गौ और भैंस यह अपवित्र (विष्टा) इत्यादिका भोजन करती हैं तो उनके दूधको हव्यमें (जो देवताओंको द्रव्य दिया जाता है) और कश्यमें (जो पितरोंके निमित्त दिया जाता है) न लगावै, और इनके गोबरसे भी न छीप ॥ २९७ ॥

ऊनस्तनी अधीका वा या च स्वस्तनपायिनी ॥

तासां दुग्धं न होतव्यं हुतं चैवाहुतं भवेत् ॥ २९८ ॥

और जिनके थन छोटे वा बड़े हों अथवा चारसे अधिकहों अथवा जो अपना स्तनअ (नेही) धीतीहो तो उनके दूधकोहवनमें प्रहण न करे जो करेगा तो किया ना कियाबराबर होगा ॥ २९८ ॥

ब्राह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा ॥

जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २९९ ॥

ब्राह्मौदनमें, सोम यज्ञमें, सीमन्तोन्नयनमें, और जातकर्मके श्राद्ध और नवक श्राद्धमें जो भोजन करता है वह चांद्रायणव्रतको करे ॥ २९९ ॥

राजात्रं हरते तेजः शूद्रात्रं ब्रह्मवर्चसम् ॥

स्वसुतान्नं च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ ३०० ॥

राजाका अन्न तेजको और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको नष्ट करता है (इस कारण वह भोजन करनेके योग्य नहीं है) और जो मनुष्य अपनी कन्याके अन्नको भोजन करता है वह मानो पृथ्वीके मलको भोजन करता है (कन्याका अन्न और मल दोनोंही समान हैं) ॥ ३०० ॥

स्वसुता अप्रजाता चेन्नाश्रीयात्तदृहे पिता ॥

भुंक्ते त्वस्या माययान्नं पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ३०१ ॥

कन्याके संतानआदि उत्पन्न न हुई हो तो पिता उसके गृहमें भी भोजन न करे, और जो ऐसा करता है वह पूयनामक नरकमें प्राप्त होता है (इन दोनों वचनोंसे तो यह सिद्ध हुआ कि दौहित्र और दौहित्रीके जन्म होनेपर जमाईके घरमें और दौहित्र-इत्यादिके जन्म होनेके प्रथम अपने गृहमें कन्याके हाथसे खानेमें कोई बाधा नहीं है) ॥ ३०१ ॥

अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्टायां जायते कृमिः ॥ ३०२ ॥

चारों वेदोंका पढ़नेवाला, सर्वशास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला (ब्राह्मण) जो राजाके घरमें जाकर भोजन करता है (तो वह राजाके यहांका अन्न खानेवाला) विष्टाके कीड़े होकर जन्म लेता है ॥ ३०२ ॥

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ॥ पतंति पितरस्तस्य यो भुंक्तेऽना-

पदि द्विजः ॥ ३०३ ॥ चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥ त्रिपक्षे

चैव कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ३०४ ॥ आब्दिके पादकृच्छ्रं स्या-

देकाहः पुनराब्दिके ॥ ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषु पर्वसु ॥ ३०५ ॥

द्वादशाहे त्रिपक्षेऽब्दे यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥ पतंति पितरस्तस्य ब्रह्म के

गता अपि ॥ ३०६ ॥

जो ब्राह्मण विनाही आपत्तिके आयेहुए नवकश्राद्ध x तीन पक्षका श्राद्ध, षण्मासिक श्राद्ध मासिक और वार्षिक श्राद्धमें जो भोजन करता है उसके पितर गिरकर नरकको जाते हैं ॥ ३०३ ॥ जिसने नवक श्राद्धमें भोजन किया है वह चांद्रायण व्रतको करे, और जिसने मासिक श्राद्धमें भोजन किया है वह पराक व्रतको करे, और जिसने त्रिपक्षके श्राद्धमें

१ जो यशोपवीतके समय चावल वनते हैं ।

x मरनेके दिनसे चौथे, पाँचवे नौ और न्यारहवें दिन जो श्राद्ध होता है उसको नवक श्राद्ध कहते हैं ।

और छठे मासके श्राद्धमें भोजन किया है वह कृच्छ्रव्रतको करे ॥ ३०४ ॥ और जिसने वार्षिक श्राद्धमें भोजन किया है वह पादकृच्छ्रको करे, और दूसरे वार्षिक श्राद्धमें भोजन करनेवाला एक दिनतक उपवास करे, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यको न करके महीनेके श्राद्धमें पर्व (पूर्णमासीआदि) में ॥ ३०५ ॥ द्वादशाह श्राद्धमें [कुलाचारके अनुसार वा युक्त गणना-
के द्वारा आयुका भाव निर्णय होनेपर बारहदिनमें अर्थात् श्राद्धके दूसरे दिनमें जो कर्तव्य संपिंडीकरणान्त कार्य किया जाता है उसका नाम द्वादशाह श्राद्ध है] त्रिपक्ष श्राद्धमें और वार्षिक श्राद्धमें जो श्रेष्ठ ब्राह्मण भोजन करता है उसके पितर ब्रह्मलोकमें जाकर भी पतित होते हैं (वहाँसे गिरकर नरकको जाते हैं) ॥ ३०६ ॥

पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्रंति वै द्विजाः ॥

भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ३०७ ॥

जिसके घरमें पक्षमें अथवा महीनेमें जो ब्राह्मण भोजन न करते हों तो उस दुष्टचित्तके अन्नको खाकर ब्राह्मण चांद्रायण व्रतको करे ॥ ३०७ ॥

एकादशाहेहोरात्रं भुक्त्वा संचयेन त्र्यहम् ॥

उपोष्य विधिवद्विप्रः कूष्मांडी जुहुयादधृतम् ॥ ३०८ ॥

सृतकेके ग्यारहवें दिन भोजन करके अहोरात्र (एकरात एकदिन) और अस्थिसंचयके दिन भोजन करके तीन दिन विधिपूर्वक उपवास करके ब्राह्मण बैठे और घृतसं हवन करे ॥ ३०८ ॥

यत्र वेदध्वनिश्रांतं न च गोभिरलंकृतम् ॥

यत्र बालैः परिवृतं श्मशानमिव तद्रहम् ॥ ३०९ ॥

जो घर वेदकी ध्वनिते पवित्र नहीं, जो घर गौसे शोभायमान नहीं है, और जो घर बाल-
कोंसे परिपूरित नहीं है वह घर स्मशानके समान है ॥ ३०९ ॥

हास्येऽपि बहवो यत्र विना धर्मवदंति हि ॥

विनापि धर्मशास्त्रेण स धर्मः पावनः स्मृतः ॥ ३१० ॥

हास्यके समयमें भी बहुतसे मनुष्य धर्मके विरुद्ध कहते हैं तो धर्मशास्त्रके बिनाही वह धर्म पवित्र माना गया है ॥ ३१० ॥

हीनवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभिवादनम् ॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३११ ॥

जो मनुष्य अज्ञानतासे हीन वर्णको (अपनेसे अवम जातिको) अभिवादन करता है तो वह मनुष्य स्नानकर घृतका भोजन करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ३११ ॥

समुत्पन्ने यदा स्नानं भुंक्तं वापि पिबेद्यदि ॥

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ ३१२ ॥

जो (मनुष्य) स्नानके योग्य हो और वह बिनाही स्नान किये यदि भोजन करले या जलपान करले तो वह स्नान करके एकप्र चित्तसे आठ हजार गायत्रीका जप करे ॥ ३१२ ॥

अंगुल्या दंतकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ॥ मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांस-
भक्षणम् ॥ ३१३ ॥ दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च ॥ कार्पासं
दंतकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत् ॥ ३१४ ॥

जो मनुष्य उंगलीसे दंतौन करता है, और जो केवल लवणका भोजन करता है, जो मिट्टीका भोजन करता है, यह गोमांसभक्षणकी समान है (अर्थात् उपरोक्त तीनों कार्योंको जो मनुष्य करता है उसको गोमांस भक्षण करनेका पाप होता है) ॥ ३१३ ॥ दिनमें कैथकी छायाका निवास, रात्रिमें दहीका भोजन, शमी और कपासकी लकड़ीकी दंतौन करनेसे विष्णुकीभी लक्ष्मी हर जाती है ॥ ३१४ ॥

शूर्पवातो नखाग्रांश्च स्नानवस्त्रं घटोदकम् ॥ मार्जनीरजः केशांश्च देवतायतनोद्भ-
वम् ॥ ३१५ ॥ तेनावगुंठितं तेषु गंगांभःप्लुत एव सः ॥ मार्जनीरेणुकेशांश्च
हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ३१६ ॥

सूपकी पवन, नखोंके अग्रभागका जल, स्नानका वस्त्र, घटका जल, बुहारीकी धूरि, केशोंका जल यदि यह देवस्थानके हों ॥ ३१५ ॥ और जो मनुष्य इनमें लोटता है वह मानो गंगाजलमें लोटता है (देवस्थानको छोड़कर अन्यस्थानकी) उड़ीहुई बुहारीकी धूरि, और केशोंका जल इन दोनोंका संसर्ग मनुष्योंके दिनमें किये हुए पुण्योंका नाश करता है ॥ ३१६ ॥

मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके ऊपरस्थले ॥ अंतर्जले श्मशानान्ते वृक्षमूले
सुरालये ॥ ३१७ ॥ वृषभैश्च तथोत्खाते श्रेयस्कामैः सदा बुधैः ॥ शुचौ देशे
तु संग्राह्या शर्कराश्मविर्वर्जिता ॥ ३१८ ॥

पंचमईकी मट्टी, चुहोंके भट्टेकी मट्टी, जलमेंकी मट्टी, श्मशानकी मट्टी देवताओंके मंदिरकी मट्टी, ॥ ३१७ ॥ और जिसे ब्रह्मोंने खोदाहो ऐसी मट्टी इन सात स्थानकी मट्टीको कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ग्रहण न करे और पवित्रस्थानसे कंकर और पत्थर जिसमें न हों ऐसी शुद्ध मृत्तिकाको ग्रहण करे ॥ ३१८ ॥

पुरीषे मैथुने होमे प्रसावे दंतधावने ॥ स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समा-
चरेत् ॥ ३१९ ॥ यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुंक्ते मौनेन सर्वदा ॥ युगकोटिसहस्रेषु
स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२० ॥

विष्णुत्यागनेके समयमें, मैथुनमें, मूत्रत्याग, होम, और दंतौनके समयमें स्नान, भोजन, और जपकरनेके समयमें सदा मौन धारण करे ॥ ३१९ ॥ जो मनुष्य वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मौनको धारणकर भोजन करता है वह हजार करोड़ युगतक स्वर्गमें वास करता है ॥ ३२० ॥

स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥

प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ ३२१ ॥

प्रौढपाद (पँचपसारकर) स्नान, दान, जप, होम, भोजन, देवताओंकी पूजा, स्वाध्याय, और पितरोंका तर्पण न करे ॥ ३२१ ॥

सर्वस्वमपि यो दद्यात्पातयित्वा द्विजोत्तमम् ॥

नाशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं भवेत् ॥ ३२२ ॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणको पातक लगाकर सर्वस्वभी दान करताहै उसका सब (दानसे उत्पन्नहुआ फल) नष्टहोकर भ्रूणहत्याके फलको प्राप्त होताहै ॥ ३२२ ॥

ग्रहणोद्वाहसंक्रांतौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा ॥

दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि प्रशस्यते ॥ ३२३ ॥

ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति और स्त्रियोंको प्रसवकालमें (संतान होनेके समयमें) जो दान करनेको नैमित्तिकदान कहाहै इसकारण वह दान रात्रिमेंभी श्रेष्ठ है ॥ ३२३ ॥

क्षौमजं वाथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा ॥

यज्ञोपवीतं यो दद्याद्वस्त्रदानफलं लभेत् ॥ ३२४ ॥

जो मनुष्य रेशम, कपास, वा पट्टसूत्रके बनेहुए यज्ञोपवीतको दान करताहै वह वस्त्रदानके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३२४ ॥

कांस्यस्य भाजनं दद्याद्घृतपूर्णं सुशोभनम् ॥

तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३२५ ॥

घृतसे भरेहुए उत्तम काँसीके पात्रको भक्तिपूर्वक यथाविधिसे जो दान करताहै तो उसको अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त होताहै ॥ ३२५ ॥

श्राद्धकाले तु यो दद्याच्छोभने च उपानहौ ॥

स गच्छन्नन्यमार्गेऽपि अश्वदानफलं लभेत् ॥ ३२६ ॥

जो मनुष्य श्राद्धके समयमें उत्तम उपानहको दान करताहै वह कुमारगामी होकरभी अश्वदानके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३२६ ॥

तैलपात्रं तु यो दद्यात्संपूर्णं तु समाहितः ॥

स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ३२७ ॥

जो मनुष्य भक्तिसहित तेलसे भरेहुए पात्रको दानकरताहै वह निश्चयही स्वर्गमें जाताहै इसमें किंचित्भी संदेह नहीं ॥ ३२७ ॥

दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ॥

पानप्रदस्त्वरण्ये तु स्वर्गे लोके महीयते ॥ ३२८ ॥

दुर्भिक्षके समयमें अन्नका देनेवाला, सुकालके समयमें सुवर्णका दान करनेवाला, और वनमें (दुर्गम वन, जिसमें जल न हो) जलका देनेवाला मनुष्य स्वर्गको जाताहै ॥ ३२८ ॥

यावदध्वं प्रसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ॥

पृथिवी तेन दत्ता स्यादीदृशी गां ददाति यः ॥ ३२९ ॥

गौ जबतक अधव्याई हो (अर्थात् संतान सम्पूर्ण रूपसे पृथ्वीपर न आई हो) तो वह तबतक पृथ्वीकी समान है, जो मनुष्य इसप्रकारकी गौका दान करता है उसको पृथ्वीके दानकरनेकी समान फल प्राप्तहोताहै ॥ ३२९ ॥

तेनाग्नयो हुताः सम्यक्पितरस्तेन तर्पिताः ॥

देवाश्च यजिताः सर्वे यो ददाति गवात्रिकम् ॥ ३३० ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन गौको ग्रास (खानेको) देताहै वह [इस ग्रासके दानसेही] अग्नि-
होत्र, पितृवर्षण, और देवताओंकी पूजा इन सभीके फलको प्राप्तकरताहै ॥ ३३० ॥

जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ॥

तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥ ३३१ ॥

जन्मसे लेकर जितने पाप किये हैं वह, और मातापिताका जो अपराध कियाहै वह,
शीघ्रही वस्त्रदान करनेसे निःसंदेह नष्टहोजातेहैं ॥ ३३१ ॥

कृष्णाजिनं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥

उद्धरेन्नरकस्थानात्कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥ ३३२ ॥

जो मनुष्य शृंग आदिके सहित काली मृगजालाका दान करताहै वह नरकमें पड़ेहुए पूर्वपु-
रुषोंके एकसो एक कुलोंका उद्धार करताहै ॥ ३३२ ॥

आदित्यों वरुणो विष्णुब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥

शूलपाणिस्तु भगवानभिनंदति भूमिदम् ॥ ३३३ ॥

सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चंद्रमा, अग्नि और भगवान् महादेव; यह पृथ्वीके दानकरने-
वालेकी प्रशंसा करतेहैं ॥ ३३३ ॥

वालुकानां कृता राशिर्यावत्सप्तर्षिमंडलम् ॥ गते वर्षशते चैव पलमेकं विशी-
र्यति ॥ ३३४ ॥ क्षयं च दृश्यते तस्य कन्यादाने न चैव हि ॥ ३३५ ॥

सप्तर्षिमंडलपर्यन्तकी जो वालु (रेत) की राशि है वह सौवर्ष पीछे एक २ पल कमहोने
से नष्ट होजातीहै ॥ ३३४ ॥ परन्तु कन्याके दान करनेसे जो फल होताहै वह नष्ट
नहीं होता ॥ ३३५ ॥

आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च ॥ सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं
ततोधिकम् ॥ ३३६ ॥ पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवे ॥ सकामः स्व-
र्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३३७ ॥

दुःखकी अवस्थामें जो प्राणकी रक्षा करता है उसको दानके तीन [धर्म, अर्थ, और
काम] फल प्राप्तहोते हैं, समस्त दानके बीचमें विद्याका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ है ॥ ३३६ ॥
पुत्रादि आत्मीय मनुष्यको और ब्राह्मणको विद्याका दान दे और कपटी मनुष्यको विद्याका
दान न दे, किसी मनोरथसे विद्याका दान करनेवाला स्वर्गको और निष्काम विद्याका दाता
मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥ ३३७ ॥

ब्राह्मणे वेदविद्वधि सर्वशास्त्रविशारदे ॥ मातृपितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामि-
नि ॥ ३३८ ॥ शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥ तस्यैव दीयते दानं य-
दीच्छेच्छेय आत्मनः ॥ ३३९ ॥

अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य जो ब्राह्मण वेदका ज्ञाता, सबशास्त्रका
पारदर्शी, मातापिताका भक्त, ऋतुके समयमें अपनी ही जीमें गमनकरनेवाला, शीलवान्,
उत्तम आचरणोंसे युक्त, और प्रातःकालके समय [ब्राह्म सुहृत्तमें] स्नान करनेवाला हो उसी
को दान करके दे ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

संपूज्य विदुषो विप्रानन्येभ्योऽपि प्रदीयते ॥

तत्कार्यं नैव कर्तव्यं न दृष्टं न श्रुतं मया ॥ ३४० ॥

प्रथम विद्वान् ब्राह्मणका पूजन करके अन्य ब्राह्मणको दानदे, और ऐसे कार्यको न करे कि जिसे न कभी सुना और न कभी देखाहो ॥ ३४० ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजाः ॥

पितृणामक्षयं दानं दत्तं येषां तु निष्फलम् ॥ ३४१ ॥

इसके उपरान्त कहताहूँ कि श्राद्धकर्ममें जिन ब्राह्मणोंको पितरोंके निमित्त दान देनेसे अक्षय होताहै और जिन ब्राह्मणोंको दान देनेसे निष्फल होताहै ॥ ३४१ ॥

न हीनांगो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः ॥ नियं चानृतवादी च तांस्तु

श्राद्धे न भोजयेत् ॥ ३४२ ॥ हिंसारतं च कपटमुपगृह्य श्रुतं च यः ॥ किंकरं

कपिलं काणं श्वित्रिणं रोगिणं तथा ॥ ३४३ ॥ दुश्चर्मणं शीर्णकेशं पांडुरोगं जटा-

धरम् ॥ भारवाहिनं रौद्रं च द्विभार्य वृषलीपतिम् ॥ ३४४ ॥ भेदकारी भवे-

च्चैव बहुपीडाकरोपि वा ॥ हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥ ३४५ ॥

बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरबुद्धिमान् ॥ एतेषां नैव दातव्यः कदाचित्

प्रतिग्रहः ॥ ३४६ ॥

जो अंगहीन हैं, रोगी, वेद और धर्मशास्त्रोंको नहीं जानते, सर्वदा मिथ्या भाषण करते हैं, उनको श्राद्धमें भोजन करना योग्य नहीं ॥ ३४२ ॥ हिंसक, कपटो, वेदको छिपाने-वाला, नौकर, कपिल, काना, कुष्ठरोगी, ॥ ३४३ ॥ दुश्चर्मा (जिसके शरीरका चाम बिगड़-गयाहो) शीर्णकेश, (जिसके शिरके बाल गिरायेहों), पांडुरोगी, जटाधारी, वोक्षेका उठाने-वाला, भयानक, दो स्त्रियोंवाला, और वृषलीपतिको श्राद्धमें भोजन न करावे ॥ ३४४ ॥ जो मनुष्य परस्परमें भेद डलवानेवाला हो, अनेकोंको पीडादायक, अंगहीन, वा जिसका कोई अंग अधिक हो उसकोभी श्राद्धमें भोजन न करावे ॥ ३४५ ॥ बहुत भोजन करने-वाला, जिसके मुखमें दीनता हो, दूसरोंके गुणोंमें दोषोंको देखनेवाला, और क्रूरबुद्धि-वाले पुरुषको कदापि घनादि वा पात्रका अन्न दान करके न दे ॥ ३४६ ॥

अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शरीरैः पंक्तिदूषणैः ॥

अदृष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ ३४७ ॥

यदि कोई मनुष्य किसी शारीरिक अंगके विकारके वशसे पंक्तिको दूषित करनेवाला हो अर्थात् अंगहीन हो परन्तु वह वेद इत्यादि शास्त्रोंका जाननेवाला हो तो यन्मराजने उसको निर्दोषी मानकर पंक्तिको पवित्र करनेवाला कहाहै ॥ ३४७ ॥

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ॥

काणः स्यादेकहीनोपि द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तितः ॥ ३४८ ॥

श्रुति और स्मृतिही ब्राह्मणोंके दो नेत्र हैं जो एकका जाननेवाला है; (श्रुति और स्मृति, इन दोनोंमेंसे जो एकका जाननेवाला है) वह एकनेत्रसे हीन है, और जो दोनों विषयोंको नहीं जानताहै उसको अंधा कहाहै ॥ ३४८ ॥

१ शूद्रा, वन्ध्या, मृतवत्सा, और कन्यावस्थामें ऋतुमतीका नाम दृषदी है ।

न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः ॥

तस्य श्राद्धं न दातव्यं त्वंधकस्यात्रिब्रवीत् ॥ ३४९ ॥

जिसमें श्रुति, स्मृति, शास्त्र न हों, न शील हो, न कुल हो, उस अंधे और अधमको श्राद्धमें अन्नदान न करे यह अत्रिऋषिने कहा है ॥ ३४९ ॥

तस्माद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ॥

न चैकेनैव वेदेन भगवानात्रिब्रवीत् ॥ ३५० ॥

इसकारण वेद और धर्मशास्त्रोंसे ब्राह्मणोंमें ब्राह्मणत्व है, केवल वेदसेही ब्रह्मत्व प्राप्त नहीं होता, यह अत्रिका वचन है ॥ ३५० ॥

योगस्थैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रं च प्रपश्यति ॥ लौकिकज्ञैश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैषोऽ-
धरोत्तरम् ॥ ३५१ ॥ वेदैश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमाञ्छास्त्रवेदवित् ॥ व्रतिनं च
कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ॥ तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितृणामक्षयं भवेत् ॥
॥ ३५२ ॥ यावतो व्रसते ग्रासान्पितृणां दीप्ततेजसाम् ॥ पिता पितामह-
श्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ३५३ ॥ नरकस्था विमुच्यन्ते ध्रुवं यांति त्रिविष्टपम् ॥
तस्माद्विप्रं परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ॥ ३५४ ॥

योगशास्त्रके कथित जिसके नेत्र हों, और अपने चरणोंके जो अग्रभागको देखताहो, अर्थात् कहींभी कुछदिसे जो न देखताहो, लौकिक व्यवहारका जाननेवाला हो, शास्त्रमें कहे-
हुए ऊंच नीचको जो देखनेवाला हो ॥ ३५१ ॥ ज्ञानवान् हो शास्त्र और वेदका जाननेवाला हो
और जो व्रतकरनेवाला तथा कुलीन हो, वेद और स्मृतियोंमें सदा प्रीति रखनेवाला
हो, ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें जिमावे तौ पितरोंकी अक्षय्य दृष्टि होतीहै ॥ ३५२ ॥ जितने
प्रास उपरोक्त लक्षणयुक्त ब्राह्मण भोजन करता है उतनेही प्रकाशमान तेजस्वी पितर पिता,
पितामह और प्रपितामह नरकमें पड़ेहुए भी मुक्तहोकर शीघ्रही स्वर्गमें प्राप्त होतेहैं, इस-
कारण श्राद्धके समय यत्नपूर्वक ब्राह्मणकी परीक्षा करे ॥ ३५३ ॥ ३५४ ॥

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः ॥

इन्दुक्षये मासिमासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ॥ ३५५ ॥

जिस ब्राह्मणका पिता मरगयाहो वह यदि प्रत्येक महीनेकी अमावसके दिन श्राद्ध न करे
तौ प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ ३५५ ॥

सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ॥

धनं पुत्राः कुलं तस्य पितृनिःश्वासपीडया ॥ ३५६ ॥

जो गृहस्थ कन्याके सूर्य अर्थात् कन्यागतोंमें श्राद्ध नहीं करता उसका धन, पुत्र, और
वंश पितरोंके श्वासकी पीडासे नष्ट होजाता है ॥ ३५६ ॥

कन्यागते सवितरि पितरो यांति सत्सुतान् ॥ शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावदृश्चि-
कदर्शनम् ॥ ३५७ ॥ ततो वृश्चिकसंप्राप्तौ निराशाः पितरो गताः ॥ पुनः

स्वभवनं यांति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ३५८ ॥ पुत्रं वा भ्रातरं वापि दौ-
हित्रं पौत्रकं तथा ॥ पितृकार्ये प्रसक्ता ये ते यांति परमां गतिम् ॥ ३५९ ॥

कन्याराशिपर सूर्यके होनेसे सब पितर अपने उत्तम पुत्रोंके पास आजातेहैं, और जब-
तक शुद्धिकर्मी संक्रान्तिका दर्शन न हो तबतक भेतपुरी सूनी रहती है ॥ ३५७ ॥ और जब
सूर्य शुद्धिक राशिमें आतेहैं तब पितृगण [आद्वके बिना पायेहुए] उनको दारुण शाप
देकर अपने स्थानको चले जातेहैं ॥ ३५८ ॥ पितरोंके कार्यको पुत्र, भाई, धेनवा और
पोता यदि यह भक्तिमहित करतेहैं तौ यह श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होतेहैं ॥ ३५९ ॥

यथा निर्मथनादाग्निः सर्वकाष्ठेषु तिष्ठति ॥ तथा संदृश्यते धर्मः श्राद्धदानान्न
संशयः ॥ ३६० ॥ यः प्राप्नोति तदा सर्वं कन्यागते च गंगया ॥
सर्वशान्नाथगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ॥ ३६१ ॥ सर्वयज्ञफलं विद्या-
च्छ्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६२ ॥ महापातकसंयुक्तो यो युक्तश्चोपपातकैः ॥
धनैर्मुक्तो यथा भानू राहुमुक्तश्च चंद्रमाः ॥ ३६३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः संता-
पं च विलंभयेत् ॥ सर्वसौख्यमयं प्राप्तः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६४ ॥ सर्वेषां
मेव दानानां श्राद्धदानं विशिष्यते ॥ मेरुतुल्यं कृतं पापं श्राद्धदानं विशोचन-
म् ॥ ३६५ ॥ श्राद्धं कृत्वा तु मर्त्यो वै स्वर्गलोके महीयते ॥ अमृतं ब्राह्मण-
स्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ ३६६ ॥ वैश्यस्य चान्नमेवाज्यं शूद्रान्नं राधिरं
भवेत् ॥ एतत्सर्वं मया ख्यातं श्राद्धकाले समुच्यते ॥ ३६७ ॥

जिस प्रकारसे सम्पूर्ण काष्ठोंमें अग्नि सथन करनेसे जानी जातीहै वही प्रकारसे श्राद्ध करने-
से बिना धर्मका स्वरूप ज्ञात नहीं होता इसमें संदेह नहीं ॥ ३६० ॥ जो गंगाजीपर कन्याके सूर्यमें
श्राद्ध करताहै उसको सम्पूर्ण शास्त्रोंके पढनेका, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल, सब यज्ञों-
का फल, और विद्यादानका फल निःसंदेह प्राप्त होताहै ॥ ३६१ ॥ ३६२ ॥ जिसप्रकार
सूर्य भगवान् मेघोंके ग्राससे मुक्त होतेहैं, और चंद्रमा जिसप्रकारसे राहुके ग्राससे मुक्त
होताहै वही प्रकारसे श्राद्धके दानके प्रभावसे महापातकी मनुष्य भी सर्व पापोंसे तथा
उपपातकोंसे छूटकर सर्व प्रकारके सुखोंको प्राप्त करतेहैं इसमें कुछभी सन्देह नहीं ॥ ३६३ ॥
॥ ३६४ ॥ सब दानोंके बीचमें श्राद्धदानही श्रेष्ठ है कारण कि सुमेरुपर्वतकी समान किये हुए
पापोंकोभी श्राद्धका दान शुद्ध करदेताहै ॥ ३६५ ॥ मनुष्य श्राद्ध करनेसे स्वर्ग लोकमें
सन्मान पाताहै, श्राद्धके समय ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है, क्षत्रीका अन्न दूधकी
समान है, वैश्यका अन्न घृतरूप है, और शूद्रका अन्न राधिरकी समान है इन सबका वर्णन
मैंने तुमसे किया ॥ ३६६ ॥ ३६७ ॥

वैश्वदेव च होमे च देवताभ्यर्चनं जपेत् ॥ अमृतं तेन विप्रात्रमुग्धजुःसाम-
संस्कृतम् ॥ ३६८ ॥ व्यवहारानुपल्येण धर्मेण बलिभिर्जितम् ॥ क्षत्रियान्नं
पयस्तेन घृतान्नं यज्ञपालने ॥ ३६९ ॥

बलि, वैश्वदेव, होम, और देवताओंके पूजनमें वेदोक्त मंत्रोंको जपे, ऋक्, यजु, और
सामवेदके मंत्रोंसे अभिसंश्रित होनेके कारण ब्राह्मणका अन्न निर्मल अमृतरूप है ॥ ३६८ ॥

व्यवहारकी रीतिसे धर्मपूर्वक बलवानोंने जीतकर संचित किया है इस कारण क्षत्रीका अन्न

१ समान है, और यज्ञकी रक्षा करनेके कारण वैश्यका अन्न घृतरूप है ॥ ३६९ ॥

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः ॥

पशुर्लेच्छोऽपि चंडालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ॥ ३७० ॥

देव, मुनि, द्विज, राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ, चांडाल, यह दश प्रकारके ब्राह्मण कहे हैं ॥ ३७० ॥

संन्या ज्ञानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ॥ अतिथिं वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ३७१ ॥ शाके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ॥ निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ ३७२ ॥ वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत् ॥ सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ३७३ ॥ अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ॥ आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥ ३७४ ॥ कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ॥ वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ३७५ ॥ लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुमं क्षीरसर्पिषः ॥ विक्रेता मधुमां सानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ३७६ ॥ चोरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ॥ मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ३७७ ॥ ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥ तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३७८ ॥ वापीकूपतडागानामारामस्य सरःसु च ॥ निःशंकं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ३७९ ॥ क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ॥ निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चंडाल उच्यते ॥ ३८० ॥

जो प्रतिदिन संन्या, ज्ञान, जप, होम, देवपूजा अतिथिकी सेवा और जो वैश्वदेव करते हैं उनको “देव” ब्राह्मण कहते हैं [इन सब कर्मोंके करनेवाले ब्राह्मणकी देवसंज्ञा है] ॥ ३७१ ॥ शाक, पत्रे, फल, मूलको भक्षण करनेवाला और जो वनमें निवासकर नित्य श्राद्धमें रत रहता है ऐसे ब्राह्मणको “मुनि” कहा है ॥ ३७२ ॥ जो प्रतिदिन वेदान्तको पढ़ता है और जिसने सबका संग त्याग दिया है, सांख्य और योगके ज्ञानमें जो तत्पर है उस ब्राह्मणको “द्विज” कहा है ॥ ३७३ ॥ जिसने रणभूमिमें सबके सन्मुख धानवीर्योंको युद्धके आरंभमें जीता हो और अस्त्रोंसे परास्त किया हो उस ब्राह्मणको “क्षत्री” कहते हैं ॥ ३७४ ॥ खेतीके कार्यमें रत और गौकी पालनामें लीन, और वाणिज्यके व्यवहारमें जो ब्राह्मण तत्पर हो उसके “वैश्य” कहते हैं ॥ ३७५ ॥ लाख, लवण, कुसुम, धी, मिठाई, दूध, और मांसको जो ब्राह्मण बेचता है उसको “शूद्र” कहते हैं ॥ ३७६ ॥ चोर, तस्कर, [वलपूर्वक दूसरेके धनको हरण करनेवाला] सूचक, [निकट सलाहका देनेवाला,] दंशक [कडवा बोलनेवाला] और सर्वदा मत्स्य मांसके लोभी ब्राह्मणको “निषाद” कहते हैं ॥ ३७७ ॥ जो ब्रह्म वेद और परमात्माके तत्त्वकी कुछ नहीं जानता; और केवल यज्ञोपवीतके बलसे ही अत्यन्त गर्व प्रकाश करता है, इस पापसे उस ब्राह्मणको “पशु” कहते हैं ॥ ३७८ ॥ जो निःशंकभावसे (पापका भय न करके) बावड़ी, कूप, तालाब, बाग, छोटा तालाब इनको बन्द करता है उस ब्राह्मणको

‘म्लेच्छ’ कहा है ॥ ३७९ ॥ क्रियाहीन (संख्या इत्यादि नित्य नैमित्तिक कर्मोंसे हीन) मूर्ख, सर्व धर्म (सत्यवादिता इत्यादि) से रहित और सर्व प्राणियोंके प्रति जो निर्दयता प्रकाश करता है उस ब्राह्मणको ‘चांडाल’ कहते हैं ॥ ३८० ॥

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ॥

पुराणहीना कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥ ३८१ ॥

जिनको वेद नहीं आता वह शास्त्रको पढ़ते हैं, जिन्हें शास्त्र नहीं आता वह पुराणोंको पढ़ते हैं, और जिन्हें पुराण नहीं आता वह खेती करते हैं और जिनसे खेती नहीं होती वह चैरागी होजाते हैं ॥ ३८१ ॥

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः ॥

श्राद्धयज्ञे महादाने वरणीयाः कदाच न ॥ ३८२ ॥

ज्योतिषी, अथर्ववेदका ज्ञाता, कीर (जो तोतेकी समान केवल पढाई हुई बोली बोलता हो) और पुराणके पाठकरनेवालेको श्राद्ध, यज्ञ, और महादानमें कदापि वरण न करे ॥ ३८२ ॥

श्राद्धे च पितरो घोरं दानं चैव तु निष्फलम् ॥

यज्ञे च फलहानिः स्यात्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥ ३८३ ॥

उपरोक्त ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन करनेसे पितर घोर नरकमें जाते हैं, दान देनेसे दान निष्फल होता है, यज्ञमें वरण करनेसे फलकी हानि होती है, इसकारण इन कामोंमें ऐसे ब्राह्मणोंको वर्ज्य है ॥ ३८३ ॥

आविकीश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः ॥

चतुर्विधो न पूज्यते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८४ ॥

भैंसोंका पालनेवाला, चित्रकार, वैद्य, और नक्षत्रपाठक, (जो घर २ नक्षत्र तिथि बता-ताहुआ फिरता है) यह चार प्रकारके ब्राह्मण बृहस्पतिके समान पंडित होनेपरभी पूजनीय नहीं हैं ॥ ३८४ ॥

मागधो माथुरश्चैव कापटः कीटकानजौ ॥

पंच विमा न पूज्यते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८५ ॥

मागध देशके निवासी, माथुर, कपट देशका रहनेवाला, कीकट, और कान देशमें जो उत्पन्न हुआ हो, यह पांच ब्राह्मण बृहस्पतिकी समान पंडित होनेपरभी पूजनीय नहीं हैं ॥ ३८५ ॥

क्रयक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते ॥

तस्यां जाताः सुतास्तेषां पिदृषिडं न विद्यते ॥ ३८६ ॥

मोल लीहुई कन्या भार्या नहीं होसकती इसकारण उससे उत्पन्न हुए पुत्र पितरोंको पिंड देनेके अधिकारी नहीं हैं ॥ ३८६ ॥

अष्टशल्यागतो नीरं पाणिना पिबते द्विजः ॥

सुरापानेन तत्तुल्यं तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥ ३८७ ॥

जो ब्राह्मण अष्टशङ्कीके जलको अंजुलीसे पीताहै वह जल मंदिरा और गोमांसमक्षणकी समान है ॥ ३८७ ॥

उर्ध्वजंघेषु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥

तावच्चंडालरूपेण यावद्गंगां न मज्जति ॥ ३८८ ॥

जो ऊर्ध्वजंघ (जंघा ऊपरको करकै) ब्राह्मणके दोनों चरणोंको धोतेहैं वह जबतक गंगा स्नान नहीं करते तबतक चांडाल (अशुद्धि) अवस्थामें रहते हैं ॥ ३८८ ॥

दीपशय्यासनच्छायां कार्पासं दंतधावनम् ॥

अजाखुररजःस्पर्शः शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ३८९ ॥

दीपक, शय्या, और आसनकी छाया (जो ऊपर पड़े तो) कपासके वृक्षकी दंतौन और वकरीके खुरोंसे उड़ीहुई धूरि इसका स्पर्श इन्द्रकी भी लक्ष्मी हरताहै ॥ ३८९ ॥

गृहादशगुणं कूपं कूपादशगुणं तटम् ॥

तटादशगुणं नद्यां गङ्गासंख्या न विद्यते ॥ ३९० ॥

घरके स्नानकी अपेक्षा कुएका स्नान करनेसे दशगुणा फल होताहै, कुएसे दसगुणा तट-पर और तटसे दसगुणा नदीमें स्नान करनेसे फल मिलताहै, और गंगाके स्नानसे असंख्य पुण्य प्राप्त होताहै उसकी गणना नहीं होसकती ॥ ३९० ॥

स्रवद्यद्ब्राह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा ॥

वापी कूपे तु वैश्यस्य शौद्रं भांडोदकं तथा ॥ ३९१ ॥

ब्राह्मणोंको स्रोतोंका जल, क्षत्रियोंको सरोवरका जल, वैश्यको वापी कूपका जल, और शूद्रको वरतनका जल साधारण स्नानके उपयोगी है वा इस वचनसे वर्णानुसार इन सब जलोंके पार्थक्यके निर्णय करनेसे जाना जाताहै, स्रोतेका जल सबसे श्रेष्ठ है, सरोवरका जल उससे कम है, वापी और कुएका जल उससे अपक्व है और वरतनका जल सबसे निषिद्ध है ॥ ३९१ ॥

तीर्थस्नानं महादानं यच्चान्यात्तिलतर्पणम् ॥ अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपात-
तः ॥ ३९२ ॥ गंगा गया त्वमावास्या वृद्धिश्राद्धे क्षयेऽहनि ॥ मघा पिंडप्रदा-
नं स्यादन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ३९३ ॥

यदि किसीका मृगुपतन हो तो तीर्थका स्नान, महादान, और तिलसे तर्पण, एक वर्ष पर्यन्त न करै ॥ ३९२ ॥ गंगापर, गयामें, तथा अमावस्याके दिन अथवा क्षय तिथिमें और वृद्धिश्राद्ध अर्थात् नान्दीमुख श्राद्धके करनेमें पिंडदानका मघानक्षत्रके होनेपर कुछ दोष नहींहै इनके अतिरिक्त अन्य स्थलमें मघानक्षत्रमें श्राद्ध वर्जित है ॥ ३९३ ॥

घृतं वा यदि तैलं पयो वा यदि वा दधि ॥

चत्वारो ह्याज्यसंस्थाना हृतं नैव तु वर्जयेत् ॥ ३९४ ॥

१ जो पहाडके ऊपर मुक्तिके निमित्त गिरकर मरते हैं उसको महागुरुनिपातन अर्थात् मृगुप-तन कहते हैं ।

घृत, तेल, दूध, और दधि यह चार वस्तु चाहैं नीचसेभी प्राप्त हों तौभी इनके द्वारा हवन करनेमें किसीप्रकारका दोष नहीं है ॥ ३९४ ॥

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्भाषितानत्रिणा स्वयम् ॥ इदमूचुर्महात्मानं सर्वे ते धर्मनिष्ठिताः ॥ ३९५ ॥ य इदं धारयिष्यन्ति धर्मशास्त्रमतंदिताः ॥ इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यन्ति त्रिविष्टपम् ॥ ३९६ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो धनानि च ॥ आयुष्कामस्तथैवायुः ॥ श्रीकामो महर्ता श्रियम् ॥ ३९७ ॥

इति श्रीमदत्रिभर्षिस्मृतिः समाप्ता ॥ १ ॥

अत्रिजीने कहेहुए इन धर्मोंको सुनकर उन धर्मपरायण ऋषियोंने महात्मा अत्रिजीसे यह कहा ॥ ३९५ ॥ कि, जो मनुष्य आलस्यको छोडकर इस धर्मशास्त्रको धारण करेंगे (अर्थात् इसके मर्मको ग्रहण करेंगे) वह इस लोकमें यश प्राप्त कर अंतमें स्वर्गधामको प्राप्त होंगे ॥ ३९६ ॥ इसके पाठ करनेसे विद्यार्थी विद्याको और धनकी इच्छा करनेवाला धनको और आयुकी इच्छा करनेवाला आयुको सौन्दर्यश्रीकी इच्छा करनेवाला सौन्दर्यश्रीको प्राप्त करैगा ॥ ३९७ ॥

इति श्रीमदत्रिस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ॥ १ ॥



॥ श्रीः ॥

विष्णुस्मृतिः २.

भाषाटीकासमेता ।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ विष्णुप्रोक्तधर्मशास्त्रप्रारंभः ॥ विष्णुमेकाग्रमासीनं
श्रुतिस्मृतिविशारदम् ॥ पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे कलापग्रामवासिनः ॥ १ ॥ कृते
युगे ह्यपक्षीणे लुप्तो धर्मस्सनातनः ॥ तत्र वै शीर्यमाणे च धर्मो न प्रतिमा-
र्गितः ॥ २ ॥ त्रेतायुगेऽथ संप्राप्ते कर्तव्यश्चास्य संग्रहः ॥ यथा संप्राप्यतेऽ-
स्माभिस्तत्त्वन्नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमाणां यो धर्मो विशेषश्चैव यः
कृतः ॥ भेदस्तथैव चैषां यस्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ ऋषीणां समवेतानां
त्वमेव परमो मतः ॥ धर्मस्येह समस्तस्य नान्यो वक्तास्ति सुव्रत ॥ ५ ॥ श्रुत्वा
धर्मं चरिष्यामो यथावत्परिभाषितम् ॥ तस्माद्ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ धर्मकामा इमे
द्विजाः ॥ ६ ॥

एकाम चित्तसे धैठेहुए श्रुति और स्मृतियोंके जाननेवाले विष्णुजीसे कलापग्रामके निवासी
सम्पूर्ण मुनियोंने यह पूछा ॥ १ ॥ कि रतयुगके वीतजानेपर सनातनधर्म लोप होगया, और
उसके वीतनेपर किसिने धर्मका शोधन नहीं किया ॥ २ ॥ इससमय धर्मका संग्रह अवश्य
करना उचित है, कारण कि अब त्रेतायुग वर्तमान है; जिस रीतिसे वह धर्म हमको प्राप्त
होजाय, वह रीति आप हमसे कहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! वर्ण और आश्रमोंका धर्म
तथा इनके धर्मोंकी विशेषता ऋषियोंने कीहै; अथवा परस्परके धर्मका भेद, यह आप सब
हमसे कहो ॥ ४ ॥ यहांपर जितने ऋषि एकत्रित हुए हैं, उन सबमें तुम्हीं श्रेष्ठ माने गये
हो; हे सुव्रत ! इसकारण तुम्हारे अतिरिक्त सम्पूर्ण धर्मका वक्ता दूसरा नहीं है ॥ ५ ॥
आपके कहे हुए धर्मको सुनकर उसीके अनुसार हम सब आचरण करेंगे; यह सभी ब्राह्मण
धर्मके श्रवण करनेकी अभिलाषा कर रहे हैं; इसकारण हे द्विजोंमें उत्तम ! आप धर्मका
वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥

इत्युक्तो मुनिभिस्तैस्तु विष्णुः प्रोवाच तांस्तदा ॥ अनवाः श्रूयतां धर्मो वक्ष्य-
माणो मया क्रमाद् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव तथा परे ॥ एते-
षां धर्मसारं यद्वक्ष्यमाणं निबोधत ॥ ८ ॥

मुनियोंके इसप्रकार कहनेपर उससमय विष्णुजी बोले कि, हे पापरहितों ! मैं जिस धर्मको
क्रमानुसार कहूंगा उसको तुम सब श्रवण करो ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र तथा
इतर (प्रतिलोम सद्गुरु अन्त्यजादिक) इतने वर्ण लोकमें वर्तमान हैं, मेरे कहेहुए इन्हींके
धर्मके अनुसार धर्मको तुम सुनो ॥ ८ ॥

ऋतावृतौ तु संयोगाद्ब्राह्मणौ जायते स्वयम् ॥

तस्माद्ब्राह्मणसंस्कारं गर्भादौ तु प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

ऋतु (रजोदर्शनसे सोलहदिनके भीतर) में स्त्री और पुरुषके संयोगसे ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं, इसी निमित्त ब्राह्मणका संस्कार गर्भसे लेकर करै (यहाँपर गर्भावाननामक संस्कार भी अन्यत्र लिखा हुआ, वेदोक्त जान लेना) वह प्रथम संस्कार गर्भका है ॥ ९ ॥

सीमंतोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते ॥

गर्भस्यैव तु संस्कारो गर्भेगर्भे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

सीमंत (अठमासा) कर्म स्त्रीका संस्कार नहीं है, परन्तु गर्भकाही है, इसकारण प्रति-गर्भमें सीमंत संस्कार करै ॥ १० ॥

जातकर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते ययोदितम् ॥

वह्निर्निष्क्रमणं चैव तस्य कुर्याच्छिशोः शुभम् ॥ ११ ॥

पुत्रके उत्पन्न होनेपर वेद शास्त्रके अनुसार जातकर्म (दसठन) करै इसके पीछे उस बालकका मंगल सहित वह्निर्निष्क्रमण करै (घरसे बाहर ले जावे) ॥ ११ ॥

पष्टे मासे च संप्राप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् ॥

तृतीयेऽप्ये च संप्राप्ते केशकर्म समाचरेत् ॥ १२ ॥

जब छैः सहीनेका बालक होजाय तो उसका अन्नप्राशन करै और जब तीन वर्षका हो जाय तब केशकर्म (मुंडन) करै ॥ १२ ॥

गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ द्विजत्वे त्वयःसंप्राप्ते सावित्र्यामधि-
कारभाक् ॥ १३ ॥ गर्भादिकादशे सैके कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ॥ कारयेद्विजक-
र्माणि ब्राह्मणेन यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मणका गर्भसे लगाकर आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करै; कारण कि ब्राह्मण होनेपरही गायत्रीका अधिकारी होता है ॥ १३ ॥ क्षत्रियका यज्ञोपवीत गर्भसे लगाकर न्यारहवें वर्षमें करै; और वैश्यका यज्ञोपवीत बारहवें वर्षमें करना उचित है ॥ १४ ॥

१ यहाँपर पुंसवन संस्कारका कथन इसकारण नहीं किया कि वह पुत्रही होगा ऐसा किसी कारण से विदित होजाय तभी करना लिखा है ।

२ इसीको “चूड़ाकरण चौल संस्कार” भी कहते हैं ।

३ यह कालनियम अष्टम वर्षकाभी उपलब्धक (मूलक) है कारण कि “गर्भाष्टमेऽष्टमे वाच्चे ब्राह्मणस्योपनायनम्” ऐसा मनुका वचन है । ब्रह्मवर्चसकाम हो अर्थात् बालक प्रबुद्ध हो तो उसको शास्त्र ब्रह्मवर्चस्यै (ब्रह्मतेजःसम्पन्न) होनेके अर्थ पाँचवें वर्षमें भी उपनयन करदे क्योंकि “ब्रह्मवर्चस्य-
क्लमस्य कार्या विप्रस्य पंचमे” ऐसा मनुका वचन है; यह मुख्यकाल यहाँपर कहाई; गौणकाल गमले षोडश वर्षतकभी अन्यत्र कहा, ततःपर ब्रात्य (अर्थात् संस्कारसे हीन) होजाताई; ऐसा होनेपर ब्रात्य-
स्तोम यज्ञ करके उसका संस्कार होसकताई, एवं क्षत्रियादिकके विषयमें भी मुख्य कालसे द्विगुणा काल समझलेना ।

शूद्रश्चतुर्थो वर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ॥

उक्तस्तस्य तु संस्कारो द्विजे स्वात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥

और चौथा शूद्रवर्ण सम्पूर्ण संस्कारोंसे हीन है; उसका संस्कार केवल यही कहा है कि वह तीनों वर्णोंको आत्मसमर्पण करे; अर्थात् उनकी सेवा भली भाँतिसे करता रहे ॥ १५ ॥

यो यस्य विहितो दंडो मेखलाजिनधारणम् ॥

सूत्रं वस्त्रं च गृहीयाद्ब्रह्मचर्येण यन्त्रितः ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्य (यज्ञोपवीत होनेसे लेकर प्रथम आश्रम) में जिस वर्णका जो जो दंड, मेखला, (मूँजकी कौंधनी) मृगछाला, सूत्र, यज्ञोपवीत जनेऊ, वस्त्र, अन्यत्र (मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें) कहे हैं, उस २ का नियमसहित धारण करे ॥ १६ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चोपस्पृश्य पयस्तथा ॥ त्रिरायम्य ततः प्राणांस्तिष्ठेन्मौनी समाहितः ॥ १७ ॥ अव्यैद्वतैः पवित्रैस्तु कृत्वात्मपरिमार्जनम् ॥ सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदा सूर्योदयनात्पुरा ॥ १८ ॥

ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शुद्ध जलसे तीनवार आचमन और प्राणायाम करके सावधान होकर मौन धारण कर बैठे ॥ १७ ॥ अप् (जल) है देवता जिनकी ऐसे मंत्रोंसे देहका मार्जन (देहसे शिरपर्यन्त छीटा मार) कर (पूर्वमुख हो) सूर्योदयतक गायत्रीका जप करता हुआ बैठा रहे ॥ १८ ॥

अग्निकार्यं ततः कुर्यात्प्रातरेव व्रतं चरेत् ॥ गुरवे तु ततः कुर्यात्पादयोरभिवादनम् ॥ १९ ॥ समित्कुशांश्चोदकुंभमाहृत्य गुरवे व्रती ॥ प्रांजलिः सम्यगासीन उपस्थाय यतः सदा ॥ २० ॥

इसके पीछे अग्निहोत्र करे, और प्रातःकालके समय ही व्रत (महानान्त्यादि) करे; इसके उपरान्त गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे ॥ १९ ॥ समिध (हवनआदिकके अर्थ लकड़ी) कुशा, और जलका घड़ा गुरुके लिये लाकर हाथ जोड़ भलीभाँति जितेन्द्रिय हो गुरुके सन्मुख बैठकर गुरुकी स्तुति करके सावधानीसे रहाकरे; इस प्रकारसे सर्वदा नियम पालन करे ॥ २० ॥

यंयं ग्रंथमधीयीत तस्यतस्य व्रतं चरेत् ॥ सावित्र्युपक्रमत्सर्वमावेदग्रहणोत्तरम् ॥ २१ ॥ द्विजातिषु चरेद्भैक्ष्यं भिक्षाकाले समागते ॥ निवेद्य गुरवे शनीयात्संमतो गुरुणा व्रती ॥ २२ ॥ सायंसन्ध्यामुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ द्विकालभोजनार्थं च तथैव पुनराहरेत् ॥ २३ ॥

१ तीन वा चार घड़ी रात्रि शेष रहनेपर ।

२ यहां दो बार बिना मंत्रके तीसरे बार “ऋतञ्च सत्यञ्च” इस अधमर्पण सूक्तसे आचमन करना वाद श्रोत्र वंदन आदिक करके प्राणायाम सप्तव्याहृतिक सशिरस्क सावित्रीमंत्रसे करे, ऐसा मन्वादि में स्पष्ट लिखा है सो वहांसे जानलेना (यहांसे ब्रह्मचर्य धर्मको अध्याय समाप्त होनेतक कहेंगे)

३ “आपो हि घ्रा ” इत्यादिक इसका मंत्र है ।

४ यह अशक्तिपक्षमें बैठकर जपकरना लिखा है, शक्ति हो तो खड़ा होकर जपें क्योंकि “ गायत्र्यभिमुखी प्रोक्ता तस्मादुत्थाय तां जपेत् ” ऐसा वचन है ।

५ दहिने हाथसे गुरुके दहने चरणको और बांये हाथसे गुरुके वाम चरणको छुपे और शिर झुकावे ।

जिस २ ग्रन्थको पढ़ै उसी २ ग्रन्थका व्रत करै; और गायत्रीके उपदेशसे सम्पूर्ण वेदके पठनपर्यन्त ॥ २१ ॥ तीनों द्विजातियोंमें भिक्षाके समय भिक्षाटन करै, उस भिक्षाको गुरु-देवको निवेदन करके गुरुकी सम्मतिसे ब्रह्मचारी भोजन करै ॥ २२ ॥ सायंकालकी संध्या करने समय अष्टोत्तरशत गायत्रीका जप करै और सायंकालको भोजनके लिये उसी भाँति भिक्षाके निमित्त जाय ॥ २३ ॥

वेदस्वीकरणे हृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हितः ॥

निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकस्स उदाहृतः ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी वेद पढ़नेमें प्रसन्न और गुरुके आधीन तथा गुरुका हितकारी होताहै; और जो मृत्युकालतक गुरुके यहाँही निवास करता है उसीको नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहेंतहें ॥ २४ ॥

अनेन विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च ॥ गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गृहादुपागतः ॥ २५ ॥ अनेनैव विधानेन कुर्याद्धारपरिग्रहम् ॥ कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २६ ॥

इस प्रकारसे ब्रह्मचर्य धर्मको करके वेदको पढ़कर गुरुदेवके घरसे आकर गृहस्थ धर्मकी आकांक्षा करै ॥ २५ ॥ शास्त्रकी विधिके अनुसार इसीप्रकार स्त्रीका पाणिग्रहण (विवाह) करै, बड़े कुलमें उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्रीका ॥ २६ ॥

परिणीय तु षण्मासान्वत्सरं वा न संविशेत् ॥

औदुंबरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहे गृहे ॥ २७ ॥

विवाह करके जो छैः महीने अथवा एक वर्षतक स्त्रीका संग नहीं करताहै, उस ब्रह्मचारीको घर २ में औदुंबरायण नामसे पुकारते हैं ॥ २७ ॥

ऋतुकाले तु संप्राप्ते पुत्रार्थी संविशेत्तदा ॥

जाते पुत्रे तथा कुर्यादग्न्याधेयं गृहे वसन् ॥ २८ ॥

जिस समय स्त्री ऋतुमती हो तब पुत्रकी इच्छासे स्त्रीका संसर्ग करै; पुत्रके उत्पन्न हो जानेपर घरमें रहता हुआ भी अग्निहोत्र ग्रहण करै ॥ २८ ॥

पुत्रे जातेऽनृतौ गच्छन्संप्रदुष्येत्सदा गृही ॥ चतुर्थे ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठन् विस्मृतः ॥ २९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुत्र उत्पन्न होनेके पीछे स्त्रीको बिना ऋतुहृण स्त्रीसंग करनेसे गृहस्थी दांभी होताहै; और चौथे पुत्र होनेपर गृहस्थी होकेभी जान बूझकर ब्रह्मचर्यही रखे ॥ २९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्ममुत्तमम् ॥

प्राजापत्यपदस्थानं सम्यक्कृत्यं निबोधत ॥ १ ॥

अब मैं इसके आगे गृहस्थियोंके उत्तम धर्मको कहताहूँ, ब्रह्मलोकके स्थानके दाता उच्च धर्मको भलीभाँति सुनै ॥ १ ॥

सर्वः कल्पे समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ॥

स्नात्वा संध्यामुपासीत सर्वकालमर्तद्रितः ॥ २ ॥

प्रातःकालही सबजने उठकर शौचादि कार्यसे निश्चिन्त हो सदा आलस्यरहित स्नानकर संध्योपासन करै ॥ २ ॥

अज्ञानाद्यदि वा मोहादात्रौ यदुरितं कृतम् ॥

प्रातःस्नानेन तत्सर्वं शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥

मोहसे अथवा अज्ञानसे जो पाप रात्रिमें कियाहै उसको प्रातःकालके स्नान करनेसे ब्राह्मणोंमें उत्तम मनुष्य दूर करते हैं ॥ ३ ॥

प्रविश्याथामिहोत्रं तु हुत्वामिं विधिवत्ततः ॥ शुचौ देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥ ४ ॥ स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु, मंत्रवत् ॥ देवानृषीन्पितृन्श्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ५ ॥

फिर अग्निशालामें जाकर विधिसहित अग्निहोत्र कर शुद्धदेशमें बैठकर शक्तिके अनुसार वेदको पढ़ै ॥ ४ ॥ वेदके पाठ करचुकनेके पीछे वेदका पढ़नेवाला ब्राह्मण स्नान करके तिल और जलसे देवता ऋषि पितर इनका तर्पण करै ॥ ५ ॥

मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुंजीत वाग्यतः ॥

भुक्तोपविष्टो विश्रांतो ब्रह्म किंचिद्विचारयेत् ॥ ६ ॥

फिर मध्याह्न समयके आनेपर शिष्ट (बलिवैश्वदेवसे बचाहुआ) अन्नको मौन धारण कर-मोजन करै, मोजन करनेके उपरान्त कुछ विश्राम करके ब्रह्मका विचार करै ॥ ६ ॥

इतिहासं प्रयुंजीत त्रिकालसमये गृही ॥ काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा वहिः ॥ ७ ॥ आसीनः पश्चिमां संध्यां गायत्रीं शि तो जपेत् ॥ हुत्वा चाथामिहोत्रं तु कृत्वा चाग्निपरिक्रियाम् ॥ ८ ॥ बलिं च विधिवद्त्वा भुंजीत विधिपूर्वकम् ॥

दिनके तीसरे भागमें इतिहास (महाभारत आदि) काभी विचार करै, और संध्या होनेपर घरमें अथवा बाहर ॥ ७ ॥ पश्चिम दिशाके सन्मुख बैठकर संध्योपासन करै; और यथा शक्ति गायत्रीका जप करै, इसके पीछे अग्निहोत्र और अग्निकी प्रदक्षिणा ॥ ८ ॥ और विधिसहित बलिवैश्वदेव करके विधिपूर्वक मोजन करै;

दिवां वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वात्रजेद्यादि ॥ ९ ॥ तृणभूवारिवाग्निस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ॥ कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥ संनिवेश्याथ विभ्रं तु संविशेत्तदनुज्ञया ॥

१ यहाँपर उस स्थानसे पहलेके अर्घसे लेकर सब कृत्य पश्चिममुख होकर करै और उससे पहलेका कुछ कृत्य पूर्वमुखही होकर करै ।

२ दशवार वा अष्टाईस बार, वा अष्टोत्तर, इससे अधिक नहीं, कारण कि नित्यकर्मका निर्वाह इतनेमें ही होताहै अधिक (१०००) करनेसे रात्रि आजायगी उससे सूर्यके अभाव होनेसे गायत्री जप निषिद्ध है ।

जो दिनके समय या रात्रिके समय कोई अभ्यागत आजाय तौ ॥ ९ ॥ तृण (आसन) भूमि, जल, वाणीसे उसका भली भाँतिसे आदर सत्कार करै, आने जानेकी कथा (आपने बड़ी कृपा की आपका आना कहाँसे हुआ इत्यादि) से उसको सन्तुष्ट करके विद्याआदिका विचार करै ॥ १० ॥ पहली पहल उसे शयन कराकर उसकी आज्ञा लेकर पीछे आप शयन करै,

यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ॥ ११ ॥ योगिनं पूजयेन्नित्यम-
न्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ पुरे वा यदि वा ग्रामे योगी सन्निहितो भवेत् ॥ १२ ॥
पूज्या नित्यं भवन्त्येव सर्वे चैव निवासिनः ॥ तस्मात्संपूजयेन्नित्यं योगिनं
गृहभागतम् ॥ १३ ॥ तस्मिन्प्रयुक्ता पूजा या साक्षयापौपकल्पते ॥

जो भिक्षाके लिये योगी आवै तौ उसके सन्मुख बैठकर ॥ ११ ॥ योगीका नित्य पूजन करै, ऐसा न करनेसे पापका भागी होताहै, पुरमें अथवा ग्राममें यदि योगी आजाय ॥ १२ ॥ तौ उस योगीके आनेसे वहाँके निवासी सब पूजने योग्य होतेहैं, इस कारण जो योगी घरमें आवै तौ उसका नित्य पूजन करै ॥ १३ ॥ उसकी कीहुई पूजा अमय (अविनाशी) सुख देनेवाली होतीहै,

गृहमेधिनां यत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ॥

गृहस्थियोंका उत्तम स्वर्गका साधन जो कर्म है वह कर्म मैं तुमसे कहताहूँ कि ॥ १४ ॥
ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर उस (पूर्वोक्त) सम्पूर्ण कर्मका भली प्रकार आचरण करै,

चतुःप्रकारं भिद्यन्ते गृहिणो धर्मसाधकाः ॥ १५ ॥ वृत्तिभेदेन सततं ज्यायां-
स्तेषां परः परः ॥ कुसूलधान्यको वा स्यात्कुंभीधान्यक एव वा ॥ १६ ॥ ज्य-
हैहिको वापि भवेत्सद्यःप्रक्षालकोपि वा ॥ श्रौतं स्मार्तं च यत्किंचिद्विधानं
धर्मसाधनम् ॥ १७ ॥ गृहे तद्वसता कार्यमन्यथा दोषभागभवेत् ॥ एवं विप्रो
गृहस्थस्तु शांतः शुक्लांबरः शुचिः ॥ १८ ॥ प्रजापतेः परं स्थानं सम्प्राप्नोति
न संशयः ॥ १९ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

धर्मके सिद्ध करनेवाले गृहस्थी चार प्रकारके भिन्न २ होतेहैं ॥ १५ ॥ अपनी २ वृत्ति (जीविका) के भेदसे उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होताहै १ को कुसूलधान्य (कोठेमें तीन वर्षतक निर्वाह होजाय इतने अन्नको जो रक्खै) २ कुंभीधान्यक (एक वर्षतक निर्वाह होनेके लिये कुंडमें जो अन्नको रक्खै) ॥ १६ ॥ ३ ज्यहैहिक (तीन दिनका जो अन्न रक्खै) ४ सद्यःप्रक्षालक (उस दिनका उसीदिन उठानेवाला) वेद अथवा स्मृतियोंमें कहाहुआ जो धर्मका साधन कर्म है ॥ १७ ॥ घरमें रहनेवाले मनुष्यको वह समस्त करना चाहिये, कारण कि, न करनेवाला दोषका भागी होताहै, इस प्रकारसे शांत स्वभाव श्रेष्ठ वस्त्रोंवाला शुद्ध गृहस्थी ब्राह्मण ॥ १८ ॥ ब्रह्माके उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै; इसमें संदेह नहीं ॥ १९ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदा चरेत् ॥ चीरवल्कलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ॥ १ ॥ गत्वा च विजनं स्थानं पंचयज्ञान्न हापयेत् ॥ अग्निहोत्रं च जुहुया-
दन्ननीवारकादिभिः ॥ २ ॥

गृहस्थी, अथवा ब्रह्मचारी जिस सप्रय वनमें निवास करै तब चीर (चीथडे) अथवा बल्कल इनको धारण करै; और अकृष्टान्न (जो बिना जोते और बोये पैदा हो उस अन्नको) भक्षण करै और मौन होकर रहै ॥ १ ॥ अथवा निर्जन स्थानमें जाकरभी पंच यज्ञोंका परि-
त्याग न करै; अन्न अथवा नीवार (पसाईके चावल) आदिसे अग्निहोत्रभी करै ॥ २ ॥

श्रवणेनाग्निमाधाय ब्रह्मचारी वने स्थितः ॥

पंचयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतंद्रितः ॥ ३ ॥

और श्रावणके महीनेमें अग्निका आधानकर ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्यधर्ममें स्थित) वनमें रहता हुआ पंचयज्ञकी विधिसे आलस्यरहित हो यज्ञ करै ॥ ३ ॥

संचितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्भजे ॥

त्यजेदाश्वयुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ॥ ४ ॥

जो अपने भोजनके लिये वनका अन्न इकट्ठा कियाहै उसको कारके महीनेमें दानकरदे, और नये वनके अन्नको संग्रह करै ॥ ४ ॥

आकाशशायी वर्षासु हेमन्ते च जलाशयः ॥ ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन् ॥ ५ ॥ कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥ अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छुचिस्ततः ॥ ६ ॥

वर्षाऋतुमें आकाश (खुले ऊँचे) स्थान में; जाड़ोंमें जलमें शयन करै, ग्रीष्मऋतु (गरमी) में पंचाग्निके मध्यमें बैठकर वनमें वास करताहुआ मनुष्य सर्वदा रहै ॥ ५ ॥ और इसके पीछे कृच्छ्र, चांद्रायण, तुलापुरुष, अतिकृच्छ्र, इन व्रतोंको निष्काम होकर शुद्धतासे करै ॥ ६ ॥

त्रिसंध्यं स्नानमातिष्ठेत्सहिष्णुर्भूतजान्गुणान् ॥ पूजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचारी वनं गतः ॥ ७ ॥ प्रतिग्रहं न गृह्णीयात्परेषां किंचिदात्मवान् ॥ दाता चैव भवेन्नित्यं श्रद्धावानः प्रियंवदः ॥ ८ ॥ रात्रौ स्थण्डिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिनं क्षिपेत् ॥ वीरासनेन तिष्ठेद्वा क्लेशमात्मन्यर्चितयन् ॥ ९ ॥ केशरोमनखदंशून्त्रं छिद्यान्नापि कर्तयेत् ॥ त्यजञ्छरीरसौहार्दं वनवासरतः शुचिः ॥ १० ॥ चतुःप्रकारं भिद्यन्ते मुनयः शंसितव्रताः ॥ अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषां परः परः ॥ ११ ॥

१ अर्थात् लीसंगआदिक ऋतुकाल अन्य समयमें गृही पुरुष वानप्रस्थी हुआ न करै, जितेन्द्रिय होकर रहै ।

और पांचों भूतोंके गुणों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) को सहता हुआ त्रिकाल स्नान करै; वनमें प्राप्त हुआ ब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्यधर्ममें स्थित) पुरुष अतिथियोंका पूजन करै ॥ ७॥ और दान किसीसे न ले; केवल आत्माकोही जानता रहै, श्रद्धावान् और प्रियभाषी होकर प्रतिदिन यथाशक्ति दान दे ॥ ८ ॥ रात्रिमें स्वयं बनाये स्थण्डिल (चौतरे) पर शयन करै और पैरोसे फिरते २ सारादिन व्यतीत करै अथवा अपने मनमें किंचित् भी छेड़ित न हो; और बीरासनसे बैठा रहै ॥ ९ ॥ और केश, रोम, नख, दाढ़ी इनको न कतरे और न इनको छेदन करै; और वनवासमें तत्पर शुद्ध अपने शरीरकी प्रीतिको छोड़ दे; अर्थात् अपने शरीरसे किंचित् भी प्रेम न करै; और अपने पूर्वोक्त कर्मोंको करता रहै ॥ १० ॥ इस व्रतके करनेवाले मुनि चार प्रकारके होतेहैं, यह व्रत बड़ा कठिन है अनुष्ठान (अपने २ कर्तव्य) की विशेषतासे उनमें उत्तर उत्तर श्रेष्ठ होताहै ॥ ११ ॥

वार्षिकं वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वनस्थधर्ममातिष्ठन्नपेत्कालं जितेंद्रियः ॥ १२ ॥ भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् ॥ आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥ १३ ॥ षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पंचयज्ञक्रियापरः ॥ काले चतुर्थे भुंजानो देहं त्यजति धर्मतः ॥ १४ ॥ त्रिंशद्दिनार्यमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः ॥ निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च पष्ठेन्नभोजनः ॥ १५ ॥ दिनार्यमन्नमादाय पंचयज्ञक्रियारतः ॥ सद्यःप्रक्षालको नाम चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥ एवमेते हि वैमान्या मुनयः शंसितव्रताः ॥ १७ ॥

इति वैष्णवे धर्मशाले तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

प्रथम साल भरके लिये विधिपूर्वक वनके आहारको संग्रह कर वानप्रस्थोंके धर्ममें स्थित आलस्यको छोड़ और इन्द्रियोंको जीतकर जो समयको बिताता हो ॥ १२ ॥ इन सब कर्म के करनेवाले वानप्रस्थको भूरिसंवार्षिक कहते हैं । २ दूसरा मरण कालतक वनमें रहै; और मृत्युकी इच्छाभी न करै ॥ १३ ॥ और छैः महीनेतकके अन्नका संग्रह करै और पंचयज्ञ कर्ममें तत्पर रहै; चौथे काल (संध्या) में भोजन करताहुआ धर्मसे शरीरको त्यागता है ॥ १४ ॥ तीसरा एक महीनेअर्थात् तीसदिनके लिये शुद्धव्रत हो वनके अन्नका संग्रह कर, सम्पूर्ण कर्मोंको करके दिनके छठेभागमें भोजन करै ॥ १५ ॥ चौथा एक दिनके लिये अन्नका संग्रह करके पंचयज्ञ कर्ममें तत्पर रहै; यह सद्यःप्रक्षालक नामक चौथा कहा है ॥ १६ ॥ इस प्रकारसे चारों मुनि कठिन व्रत करनेवाले पूजनीय होते हैं ॥ १७ ॥

इति वैष्णवधर्मशाले भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

यथोत्तमानि स्थानानि प्राप्नुवंति दृढव्रताः ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ १ ॥

जिस प्रकारसे गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और यति यह चारों दृढव्रत करनेवाले उत्तम स्थान (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होते हैं वह यह है कि ॥ १ ॥

विरक्तः सर्वकामेषु पारिव्राज्यं समाश्रयेत् ॥ आत्मन्यग्नीन्स रोप्य दत्त्वा
चाभयदक्षिणाम् ॥ २ ॥ चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् ॥ आचार्येण
समादिष्टं लिंगं यत्नात्समाश्रयेत् ॥ ३ ॥ शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्माश्च शि-
क्षयेत् ॥

सब कामनाओंसे विरक्त होकर संन्यासको ग्रहण कर अपनी आत्मामेंही अश्रियोंको मान-
कर स्त्रीआदिकोंको अभयदक्षिणा (त्याग) देकर ॥ २ ॥ ब्राह्मण घरसे चलकर चौथे आश्रममें
गमन करे, आचार्यके बताये हुए चिन्होंको सावधान होकर धारण करे ॥ ३ ॥ संन्यास
आश्रमके धर्मोंको सीखे, शौच और संन्यासियोंके धर्मोंको सीखता रहे.

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफल्युता ॥ ४ ॥ दयां च सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यति-
श्चरेत् ॥ ग्रामाति वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥ ५ ॥ पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षा-
स्वेकत्र संविशेत् ॥ वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितः ॥ ६ ॥ ग्रामे
वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीताप-
हारिणीम् ॥ ७ ॥ पादुके चापि गृहीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ संभाषणं
सह स्त्रीभिरालम्भप्रेक्षणे तथा ॥ ८ ॥ नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्ज-
येत् ॥ वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ९ ॥ एकाकी विचरेन्नित्यं
त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ॥ याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम्
॥ १० ॥ साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥

अहिंसा, सत्य, चोरीको छोड़देना, ब्रह्मचर्य, अफल्युता (निरर्थकपन का त्याग) ॥ ४ ॥ समस्त
प्राणियोंपर दया करना, यति इतने कर्मोंको नित्यप्रति अवश्य करे ग्रामके निकट किसी वृक्ष-
के नीचे सदा अपना स्थान बनाकर रातभर रहे ॥ ५ ॥ वर्षाऋतुमें एक स्थानपर बैठा
रहे, और काँडेकी समान पृथ्वीपर भ्रमण करे, वृद्ध, रोगी, भयानक इनकी संगति न करे
॥ ६ ॥ वर्षाकालके समय ग्राममें अथवा नगरमें जो यति एक स्थान में रहता है वह दूषित
नहीं होता; कौपीन (लंगोटी) ओढ़ने का वस्त्र जिसमें कि शरदी न लगे, ऐसी कंथा
(गुदडी) ॥ ७ ॥ और खड्ग इनको ग्रहण करे, और इनसे इतरका संग्रह न करे स्त्रियों-
का स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप तथा देखना ॥ ८ ॥ नाच, गान, सभा, सेवा, नौकरी,
निन्दा, इनको छोड़दे वानप्रस्थ और गृहस्थी इनका संगभी यत्नसहित. त्यागदे ॥ ९ ॥ स-
म्पूर्ण परिग्रह त्यागकर केवल अकेला भ्रमण करे; मांगे या बिना मांगेसेही जो मिल जाय
उसी भिक्षासे अपना निर्वाह करे ॥ १० ॥ अच्छा कहकर लेनेवालेको याचित, बिना मांगे
जो मिले उसे अयाचित, कहते हैं ;

चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकव दकौ ॥ ११ ॥

हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥

यह संन्यासी चार प्रकारके होते हैं १ कुटीचक, २ वहुदक ॥ ११ ॥ ३ हंस, ४ परमहंस
इनमें जो २ पिछला है वही वही उत्तम है.

एकदंडी भवेद्वापि त्रिदंडी वापि वा भवेत् ॥ १२ ॥ त्यक्त्वा सर्वसुखास्ववादं
पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ॥ अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥ १३ ॥ ना-
न्यस्य गैहे भुंजीत भुंजानो दोषभागभवेत् ॥ कामं क्रोधं च लोभं च तथेर्ष्यासत्यमे
व च ॥ १४ ॥ कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ॥ भिक्षाटनादिकेऽशक्तो
यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥ १५ ॥ कुटीचक इति ज्ञेयः परित्राद् त्यक्तवांधवः ॥

एक दंडको धारण करै या तीन दंडको ॥ १२ ॥ सम्पूर्ण सुखोंके स्वादको छोड़कर पुत्रके ऐश्वर्य
(प्रताप) के सुखको त्यागदे; अपने लडकोंहीमें नित्य निवास करै; और व्रतनसहित ममताको
त्यागदे ॥ १३ ॥ दूसरेके घरमें भोजन न करै, जो परार्थे घरमें भोजन करताहै वह दोषका
भागी होता है और काम क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, क्षुब्ध, इन सबको ॥ १४ ॥ कुटीचक त्यागदं
और समस्त वस्तु (जो कि संभित की है) पुत्रके अर्थ छोड़दे; आप भिक्षाटनआदिमें अस-
मर्थ होकर संन्यासी अपने पुत्रोंकोही देहको सोंपदे ॥ १५ ॥ इस संन्यासीको कुटीचक
कहते हैं.

त्रिदंडं कुंडिकं चैव भिक्षाधारं तथैव च ॥ १६ ॥ सूत्रं तथैव गृहीयान्नित्यमेव
बहूदकः ॥ प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ॥ १७ ॥ विश्वरूपं हृदि
ध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥ ईपत्कृतकपायस्य लिंगमाश्रित्य तिष्ठतः ॥ १८ ॥
अत्रार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ॥

२ दूसरा बंधु जिसने अपने त्याग दिये हैं ऐसा संन्यासी त्रिदंड कुंडो और भिक्षाका
पात्र ॥ १६ ॥ यज्ञोपवीत इनको बहूदक नित्य ग्रहण करै, प्राणायाम में तत्पर रहै और
निरन्तर गायत्रीका जप करता रहै ॥ १७ ॥ हृदय में भगवान् का ध्यान कर इंद्रियोंको
जीतकर समय बिताता रहै, कुछेक गेरुवा वस्त्रोंको रंगकर एक चिह्न (संन्यासकी
पहचान) बनाकर स्थित हुए संन्यासीका ॥ १८ ॥ चिह्न अत्रके निमित्त कहा है, मोक्षके
लिये नहीं कहा, ऐसी मर्यादा है ॥

त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्ष-
न्हंसोऽभिधीयते ॥ कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥ अन्यैश्च
शोषयद्देहमाकांक्षन्ब्रह्मणः पदम् ॥ यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् ॥
॥ २१ ॥ अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥

२ तीसरे इसमें सम्पूर्ण पुत्रादिकोंको त्याग और योगमार्गमें स्थित रहकर ॥ १९ ॥ जो
इन्द्रिय और मनको वशमें करताहै उस संन्यासीको हंस कहते हैं । कृच्छ्रचांद्रायण, तुलापुरुष
॥ २० ॥ और इतर व्रतोंसे ब्रह्मपदकी इच्छा करता हुआ संन्यासी अपने शरीरको सुखादे;
यज्ञोपवीत, दंड, और जिससे मक्खी आदिक जीव शरीरपर न गिरै ऐसा वस्त्र ॥ २१ ॥
वेदके ज्ञाता हंसको यही परिग्रह है इतर नहीं ॥

आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥ २२ ॥ विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो
योगी नित्यं चरेन्महीम् ॥ आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥

चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभि रुदाहृतः ॥ त्रिदंडं कुंडिकां चैवं सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥ जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षरिदं त्यजेत् ॥ कौपीनाच्छादनार्थं च वासोऽथश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥ कुर्यात्परमहंसस्तु दंडमेकं च धारयेत् ॥ आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥ अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षुः समाहितः ॥ प्राप्तपूजो न संतुष्येदलामे त्यक्तमत्सरः ॥ २७ ॥ त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् ॥ देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्विजातिषु ॥ २८ ॥ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥

४: चौथा अपने आत्मा (देह) में व्यापक ब्रह्मको जपता और प्राणायामोंको करता हुआ, ॥ २२ ॥ सब संगोंसे रहित और आत्मामें स्थित, और जिसने युक्त होकर गृहआदिकोंको त्याग दियाहै, वह नित्य पृथ्वीपर विचरण करै ॥ २३ ॥ यह चौथा इन चारोंमें बड़ा और ध्यानभिक्षु (परमहंस) को कहाहै, त्रिदंड, कुंडी, यज्ञोपवीत, कपालिका (भिक्षाका पात्र) ॥ २४ ॥ जंतुओंकी निवारण करने योग्य वस्त्र इन सबको भिक्षुक त्यागदे, कौपीन ओढनेका वस्त्र, इनकाही केवल धारण ॥ २५ ॥ परमहंस करै, और एक दंडका धारण करै; और अपनी बुद्धिसे सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मोंको त्यागकर रहै ॥ २६ ॥ अपने चिह्नोंको छिपाकर और अप्रकट होकर सावधान हुआ विचरण करै; पूजा (वडाई) की प्राप्तिसे प्रसन्न न हो और जो पूजा न हो तो क्रोधभी न करै ॥ २७ ॥ तृष्णाको त्यागकर गृहकी समान मौन धारणकर पृथ्वीमें भ्रमण करै; और देहहीकी रक्षाके निमित्त भिक्षाको द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इन तीन जातियोंके घर) में मांगे ॥ २८ ॥ भिक्षुकका पात्र हाथही है उसीसे नित्य गृहोंमें विचरण करै; अर्थात् भिक्षा मांगै ॥

अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं कृप्तवान्मनुः ॥ २९ ॥

सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलावुमयानि च ॥

और मनुजीने भिक्षाके लिये विना धातु तुंवा आदिके पात्र रचे हैं ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण भिक्षुकोंको, काष्ठ तोंवी आदिकोंके पात्र कहें ॥

कांस्यपात्रे न भुंजीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥ मलाशाः सर्वे उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥ कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥ कांस्यभोजी यतिः सर्वं तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥

और विपत्तिके आजानेपर भी कांसीके पात्रमें भोजन न करै ॥ ३० ॥ जो यतिः कांसीके पात्रमें भोजन करते हैं, उन्हें विष्ठाका खानेवाला कहाहै; कांसीके पात्र बनानेवालेको और उसमें भोजन करनेवाले गृहस्थको जो पाप होताहै ॥ ३१ ॥ उन दोनोंका वह पाप कांसीके पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको मिलताहै ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ३२ ॥ उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्तयेद्यदि ॥ आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मवहिष्कृतः ॥ ३३ ॥ निंद्यश्च सर्वदेवानां पितॄणां च तथोच्यते ॥

जो ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ॥ ३२ ॥ उत्तम आचरणको स्वीकार कर फिर उसका त्याग करता है, उसे आरुढपतित जानना; और वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत (बाहर) है ॥ ३३ ॥ और वह सब देवता और पितरोंमें निहित कहाताहै ॥

त्रिदंडं लिंगमाश्रित्य जीवति बहवो द्विजाः ॥ ३४ ॥

न तेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमात्रोपजाविनाम् ॥

त्रिदंड (संन्यास) के आश्रयसे ब्रह्मतत्वे द्विज जीवन करते हैं ॥ ३४ ॥ लिंगमात्रसेही जीवनकरनेवालेको मोक्ष नहीं मिलती, ॥

त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥ आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३६ ॥

इति वैष्णवे धर्मशाले चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और जो लोक, वेद, विषय, इन्द्रिय, इनको त्यागकर ॥ ३५ ॥ आत्मके विषयही स्थित रहता है, वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥

इति वैष्णवधर्मशाले भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपरिकांक्षिणाम् ॥

वक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्त्वतस्तन्निबोधत ॥ १ ॥

पवित्र आचरणवाले धर्म अर्थ कामके अभिलाषी राजाओंका जो धर्म है उसका मैं कह-ताहूँ, तुम श्रवण करो ॥ १ ॥

तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता ॥ दानमौश्वरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ॥ तस्मात्सर्व-प्रयत्नेन रक्षयेन्पतिः प्रजाः ॥ ३ ॥

तेज, सत्य, धैर्य-दृढ़ता (चतुरता) संग्राममें न भागना, दान, ईश्वरता, (वयार्थ न्याय करना) यह क्षत्रियोंका धर्म कहाहै ॥ २ ॥ प्रजाओंका पालन करना क्षत्रियोंका परम धर्म है, इसकारण यत्नसहित राजा प्रजाओंका रक्षा करें ॥ ३ ॥

त्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः ॥

दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम् ॥ ४ ॥

और क्षत्री यत्नसहित तीन कर्मोंको करें, दान, पढ़ना, यज्ञ, और फिर योगमार्गका सेवन ॥ ४ ॥

ब्राह्मणानां च संतुष्टिमाचरेत्सततं तथा ॥

तेषु तुष्टेषु नियतं राज्यं कोशश्च वर्धते ॥ ५ ॥

सर्वदा ब्राह्मणोंको संतोष देनेवाला आचरण करता रहै, उनके प्रसन्न होनेपर राजाओंके राज्य और उनके खजानेकी वृद्धि होतीहै ॥ ५ ॥

वाणिज्यं कर्षणं चैव गवां च परिपालनम् ॥ ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥ खल्यज्ञं कृषीणां च गोयज्ञं चैव यत्नतः ॥ कुर्याद्वैश्यश्च सततं गवां च शरणं तथा ॥ ७ ॥

व्यवहार (लैन्दैन्), कृषि, गौओंकी पालना, ब्राह्मण और क्षत्रीकी सेवा यह तीन कर्म वैश्यके लिये कहे हैं ॥ ६ ॥ और कृषि (खेती) के खलियानके यज्ञ और गौओंके यज्ञको गौओंके शरण (घर) इनको वैश्य सर्वदा करै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेन्नित्यममत्सरः ॥ कुर्वन्तु शूद्रः शुश्रूषां लोकाञ्जयति धर्मतः ॥ ८ ॥ पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ॥ तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥ ९ ॥

शूद्र ईर्ष्याको त्याग कर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इनकी सर्वदा सेवा करै कारण कि इनकी शुश्रूषा धर्मसहित करनेवाला शूद्र स्वर्गलोकको जीतलेता है ॥ ८ ॥ और शूद्रको भी पंचयज्ञ करना कहा है; उसको भी परस्परमें नमस्कार करना कहाहै; इससे अन्योन्यमें सर्वदा नमस्कार शब्दसे व्यवहार करता हुआ शूद्र पतित नहीं होता ॥ ९ ॥

शूद्रोपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवेतरस्तथा ॥ श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः ॥ १० ॥ प्राणानर्थोस्तथा दारान्ब्राह्मणार्थं निवेदयेत् ॥

स शूद्रजातिर्भोज्यः स्यादभोज्यः शेष उच्यते ॥ ११ ॥

शूद्र दो प्रकारके हैं एक श्राद्धका अधिकारी और दूसरा अनधिकारी, उन दोनोंमेंसे श्राद्धके अधिकारीका अन्न भोजन करना उचित है और अनधिकारीका उचित नहीं ॥ १० ॥ जो शूद्र, अपनी स्त्री, धन, प्राण इनको ब्राह्मणकी सेवामें समर्पण करदे, उस शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य है, और शेष शूद्रका अन्न भोजन करने योग्य नहीं ॥ ११ ॥

कुर्याच्छूद्रस्तु शुश्रूषां ब्रह्मक्षत्रविशां कमात् ॥

कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ॥ १२ ॥

और शूद्र कमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनकी सेवाको करै, वैश्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, इनकी करै, और क्षत्री केवल ब्राह्मणही की सेवा करै ॥ १२ ॥

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥

पारिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ॥ १३ ॥

१ यद्वा ब्राह्मणादि त्रैवर्णिकका प्रतिदिन नमस्कार करना उसको कहाहै उसे करता हुआ शूद्र हानिको नहीं प्राप्त होसकताहै, इस कारण अवश्य प्रतिदिन उन्हें प्रणाम कराकरै—ऐसाभी अर्थ किन्ही २ का अभिमत है ।

वैश्य और क्षत्रिय, इनको तीन आश्रम कहें, अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमकी प्राप्ति तो केवल ब्राह्मणहीको कही है ॥ १३ ॥

आश्रमाणामयं प्रोक्तो मया धर्मः सनातनः ॥

यदत्राविदितं किञ्चित्तदन्येभ्यो गमिष्यथ ॥ १४ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यह चारों आश्रमोंका सनातन धर्म मैंने तुमसे कहा; इसमें जो कुछ जानता तुमको शेष रहा है उसको तुम इतर ग्रंथोंसे जान जाओगे ॥ १४ ॥

इति वैष्णवधर्मशास्त्रे मापाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विष्णुस्मृतिः समाप्ता ॥ २ ॥



श्रीः ॥

हारीतस्मृतिः ३.

भाषाटीकासमेता ।



प्रथमोऽध्यायः १.

(यहाँसे हारीतस्मृतिका आरम्भ है इसमें हारीतशिष्य और अन्यान्यऋषियोंका संवाद है ।
ऋषियोंका प्रश्न.)

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ॥ इति पूर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवः-
स्वर्दिजोत्तम ॥ १ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ॥ येन
संतुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥ २ ॥

भूः भुवः और स्वर्गलोकमें स्थित जिन सम्पूर्ण द्विजश्रेष्ठोंने वर्णाश्रमधर्मको अवलम्बन
किया, वह केशव भगवान्‌के भक्त हैं यह आपने प्रथम कहाथा ॥ १ ॥ इससमय वर्ण और
आश्रमका धर्म आप हमसे कहिये, जिससे सनातन नारसिंह देव सन्तुष्ट हों ॥ २ ॥

अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ॥

ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

(यह सुनकर हारीतशिष्यने उत्तर दिया कि) मैं इस समय पूर्वकालमें ऋषियोंके साथ
महात्मा हारीतका जो अति उत्तम संवाद हुआथा वह आपसे कहूंगा ॥ ३ ॥

हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ॥ प्रणिपत्याऽब्रुवन्सर्वे मुनयो धर्म-
कांक्षिणः ॥ ४ ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्त्तक ॥ वर्णानामाश्रमाणां च
धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ॥ ५ ॥ समासाद्योगशास्त्रं च विष्णुभक्तिकरं परम् ॥
एतच्चान्यच्च भगवन्ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥ ६ ॥

पूर्वकालमें धर्मके ज्ञाता सम्पूर्ण मुनि सब धर्मोंके जाननेवाले अधिकी समान दीप्तिमान् बैठे
हुए हारीत ऋषिको नमस्कार करके पूछते हुए ॥ ४ ॥ कि हे भार्गव ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हे
सर्वधर्मप्रवर्त्तक भगवन् ! हमसे वर्ण और आश्रमोंके धर्मको कहिये ॥ ५ ॥ और संक्षेपसे
विष्णुभक्तिकारक योगशास्त्र और जो अन्यान्यविष्णुभक्ति है उसेभी आप कहिये, कारण कि,
आप हम सबके परमगुरु हों ॥ ६ ॥

हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ॥ शृण्वन्तु मुनयः सर्वे धर्मान्व-
क्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ७ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च योगशास्त्रं च सत्तमाः ॥
सन्धार्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबंधनात् ॥ ८ ॥

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् हारीत मुनिने उत्तर दिया कि हे सज्जनश्रेष्ठ मुनि-
गण ! मैं वर्ण और आश्रमसमूहका नित्य धर्म योगशास्त्र कहताहूँ ॥ ७ ॥ इस धर्म और
योगशास्त्रको भलीभाँतिसे जानकर मनुष्य जन्म संसारके बंधनसे छूटजाताहै ॥ ८ ॥

पुरा देवो जगत्स्रष्टा परमात्मा जलोपरि ॥ सुष्वाप भोगिपर्यंके शयने तु
श्रिया सह ॥ ९ ॥ तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममभूत्किल ॥ पद्ममध्येऽभव-
द्ब्रह्मा वेदवेदांगभूषणः ॥ १० ॥ स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनःपुनः ॥
सोपि सृष्ट्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ११ ॥ यज्ञसिद्ध्यर्थमनवान्ब्राह्मणा-
न्मुखतोऽसृजत् ॥ असृजत्क्षत्रियान्बाह्वैर्विद्वान्पूरुदेशतः ॥ १२ ॥ शर्द्रांश्च
पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः ॥ यथा प्रोवाच भगवान्पद्मयोनिः पितामहः
॥ १३ ॥ तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं
स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥ १४ ॥

पूर्व कालमें सृष्टिके रचनेवाले जलके ऊपर लक्ष्मीके सहित शेषकी शय्यापर परमात्मा देव
भगवान् विष्णु योगनिद्रामें मग्न थे ॥ ९ ॥ उन सोतेहुए भगवान्की नाभिसे एक बड़ा कमल
उत्पन्नहुआ, उस कमलके बीचमेंसे वेद वेदांगोंके भूषण ब्रह्माजी उत्पन्नहुए ॥ १० ॥ देवा-
दिदेव भगवान् विष्णुजीने उनसे वारंवार जगत्की सृष्टि रचनेके लिये कहा; तब ब्रह्माजीने
भी देवता, असुर, मनुष्य इनके सहित सम्पूर्ण जगत्को रचकर ॥ ११ ॥ यज्ञकी सिद्धिके
लिये पापराहित ब्राह्मणोंको मुखसे उत्पन्न किया, इसके पीछे क्षत्रियोंको भुजाओंसे और
वैश्योंको जंघाओंसे रचा ॥ १२ ॥ और शूद्रोंको चरणोंसे रचकर भगवान् पद्मयोनिने उनसे
जो वचन कहे, हे द्विजोत्तमो ! उन वचनोंको मैं तुमसे कहता हूँ, तुम श्रवण करो; और वह
वचन धन, यश, अवस्था, स्वर्ग, मोक्ष फल, इनके देनेवाले हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ॥

तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंके गर्भमें ब्राह्मणके औरससे उत्पन्नहुआ मनुष्यही ब्राह्मण कहाताहूँ; उसके धर्म
और उसके रहनेयोग्य देशको कहता हूँ ॥ १५ ॥

कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्तते ॥

तस्मिन्देशे वसेद्धर्माः सिद्ध्यन्ति द्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥

हे द्विजसत्तमगण ! जिस देशमें कालामृग स्वभावसे ही विचरण करे उस देशमें ब्राह्मण
निवास करे, कारण कि किये हुये धर्म उसी देशमें सिद्ध होतेहैं ॥ १६ ॥

षट्कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥ तैरेव सततं यस्तु वर्तयेत्सुखमे-
धते ॥ १७ ॥ अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहश्चेति
षट्कर्माणीति प्रोच्यते ॥ १८ ॥

महात्मा ब्राह्मणोंके निजके छैः कर्म कहेहैं; जो उन छैः प्रकारके कर्मोंसे निरन्तर जीवन
व्यतीत करताहै, वही सुखी होताहै, अर्थात् धनवान् पुत्रवान् होता है ॥ १७ ॥ पढ़ाना,
पढ़ना, यज्ञकराना, और यज्ञकरना, दान और प्रतिग्रह ये छैः प्रकारके कर्म कहेहैं ॥ १८ ॥

अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् ॥ शुश्रूषाकरणं चेति त्रिविधं परि-
कीर्तितम् ॥ १९ ॥ एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्विजः ॥ तत्र विद्या न
दातव्या पुरुषेण हितैपिणा ॥ २० ॥ योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि
वर्जयेत् ॥ विदिताप्रतिगृहीयादृहे धर्मप्रसिद्धये ॥ २१ ॥ वेदत्रैवाभ्यसेन्नित्यं

शुचौ देशे समाहितः ॥ धर्मशास्त्रं तथा पाठयं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥ २२ ॥
वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशि ॥

इनमें पढ़ाना तीन प्रकारका है पहला धर्मके निमित्त दूसरा धनके निमित्त, और तीसरा सेवा शुश्रूषा के लिये ॥ १९ ॥ जो ब्राह्मण इन तीनोंमें से एकको भी नहीं करता वह वृथा-चारी कहाताहै, ऐसे कर्महीन ब्राह्मणको हितका अभिलाषी मनुष्य कभी विद्यादान न करै ॥ २० ॥ योग्य शिष्यको विद्या पढावै और अयोग्य शिष्यको त्यागदे, विदित (अर्थात् निष्पाप मनुष्यको जानकर) मनुष्यके निकटसे गृहस्थधर्मकी सिद्धिके लिये प्रतिग्रह ले ॥ २१ ॥ प्रतिदिन शुद्ध देशमें सावधान होकर वेदका अभ्यास करै, और शुद्ध मनवाले ब्राह्मणोंसे सर्वदा धर्मशास्त्र पढ़ना उचित है ॥ २२ ॥ धर्मशास्त्र भी वेदकी समान पढ़ना उचित है, रात-दिन धर्मशास्त्रको सुनना चाहिये;

स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥ २३ ॥ दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुल-
विनाशनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्विजः ॥ २४ ॥

श्रुति स्मृति इन दोनोंसे हीन ब्राह्मणको ॥ २३ ॥ जो दान देता है, या जो भोजन कराता है, उस दान और भोजनादिकर्मसे दाताका कुल नष्ट होजाता है; इस कारण ब्राह्मण सब प्रकारसे यत्नसहित धर्मशास्त्रको पढ़ै ॥ २४ ॥

श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ॥

काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्यः प्रकीर्तितः ॥ २५ ॥

श्रुति और स्मृति ब्राह्मणके दोनों नेत्र परमेश्वरके बनाये हुए हैं; इन श्रुति या स्मृतिरूप एक नेत्रके बिना हुए वह काना है, और श्रुति स्मृति रूप दोनोंसे जो हीन है उसे अंधा कहा है ॥ २५ ॥

गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतंद्रितः ॥ सायंप्रातरुपासीत विवाहाग्निं द्विजो-
त्तमः ॥ २६ ॥ सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिनेदिने ॥ अतिथीनागता
ञ्छुत्तया पूजयेदविचारतः ॥ २७ ॥ अन्यानभ्यागतान्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो
गही ॥ स्वदारानिरतो नित्यं परदारविर्जितः ॥ २८ ॥ कृतहोमस्तु भुञ्जीत
सायंप्रातरुदारधीः ॥ सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्म्मं वर्त्तयेन्मतिम् ॥ २९ ॥
स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ॥ सत्यां हितां वदेद्वाचं परलोकहितै-

१ तात्पर्य यह है कि, केवल प्रत्यक्षमें दो नेत्र होनेसे ब्राह्मण नेत्रवान् नहीं होसकते परन्तु वेद और शास्त्रके जाननेसे ही ब्राह्मण नेत्रवान् कहातेहैं, बाहिरी कामोंमें, अर्थात् मार्गादिकके चलनेमें हमारे यह बाहिरी नेत्र काम आतेहैं, परन्तु किस मार्गमें जानेसे हमारा कल्याण होताहै और किस मार्गमें जानेसे हमारा अमंगल होगा, इस बातके निर्णय करनेमें इनकी सामर्थ्य नहींहै, इसके निर्णय करनेमें श्रुति स्मृति रूपी दोनों नेत्र ही मार्ग दिखलानेवाले हैं, वरन् ब्राह्मणोंको सर्वदा बाह्य मार्ग त्यागकरके अन्तर (ज्ञान) के मार्गमें विचरण करना होताहै इस कारण श्रुति और स्मृतिरूपी नेत्रोंके बिना हुए ब्राह्मणोंको पृ २ पर अधेकी समान ठोकरें खानी पड़तीहैं ।

षिणीम् ॥ ३० ॥ एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ॥ धर्ममेव हि
यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ३१ ॥

आलस्यरहित होकर गुरुकी सेवा करै; प्रातःकाल और संध्याकालमें विवाहाग्निकी उपासना करै ॥ २६ ॥ और भली भाँतिसे स्नानकर प्रतिदिनही बलि वैश्वदेव करै और अपनी शक्तिके अनुसार घरपर आयेहुए आतिथियोंकी विना विचार कियेहुए (अर्थात् यह गुणवान् ह या निर्गुण हैं इस बातका विचार न कर) पूजा करै ॥ २७ ॥ और अन्य अभ्यागतोंकी भी गृहस्थी ब्राह्मण शक्तिके अनुसार पूजा करै, और सर्वदा अपनी स्त्रीमें रत रहै; पराई स्त्रीको त्यागदे ॥ २८ ॥ उदार बुद्धिवाला मनुष्य सायंकालमें और प्रातःकालमें होम करकै भोजन करै; सत्य बोलै श्रोषको जीतले अधर्ममें बुद्धिको न लगावै ॥ २९ ॥ अपने कर्मके समर्थमें प्रमादसे कर्मको न छोडै, और सत्य हितकारी, और परलोकमें सुखकारी ऐसी वाणीको कहै ॥ ३० ॥ यह संक्षेपसे ब्राह्मणोंका धर्म कहा; जो ब्राह्मण सर्वदा धर्माचरण करतेहैं वह ब्रह्मपद अर्थात् मुक्तिको प्राप्त करतेहैं ॥ ३१ ॥

इत्येष धर्मः कथितो मयायं पृष्ठो भवद्विस्त्वखिलापहारी ॥

वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान्पृथक्पृथक्बोधत विप्रवर्याः ॥ ३२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे द्विजोत्तमो ! जो धर्म तुमने मुझसे पूछाथा वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला धर्म मैंने तुमसे कहा; अब राजाओंके भी पृथक् २ धर्मोंको कहताहूँ. तुम श्रवणकरो ॥ ३२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥

येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ १ ॥

क्रमानुसार क्षत्री वैश्य और शूद्र इन तीनोंके धर्मोंको कहताहूँ, जिन धर्मोंके आचरण करनेसे क्षत्री आदि तीन वर्ण उत्तम गतिको प्राप्त होतेहैं ॥ १ ॥

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजद्यज्ञान्यथाविधि ॥ २ ॥ दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ॥ स्वभार्या-निरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥ ३ ॥

क्षत्री राजसिंहासनपर स्थित होकरभी धर्मके अनुसार प्रजापालनकर भली भाँतिसे वेद पढ़ै, और विधिसहित यज्ञको करै ॥ २ ॥ जो राजा सर्वदा धर्ममें बुद्धि करकै ब्राह्मणोंको दान देता है, और जो नित्य अपनी स्त्रीमे ही रत रहता है, वह राजा सदैव छठे भागके लेनेका अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

१ जिसमें विवाहका होम हो और जीनेतक बनीरहे उसीको विवाहाग्नि कहतेहैं उसीमें होम करे ।

२ अर्थात् आतिथ्योंसे भोजनादि सत्कार करनेसे प्रथम गोत्र शाखा आदिक नहीं पूंछे ।

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ॥ देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपर-
स्तथा ॥ ४ ॥ धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ॥ उत्तमां गतिमाप्नोति
क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥ ५ ॥

नीतिशास्त्रमें कुशल और संधि (मेल) विग्रह (लड़ाई) इनके तत्त्वको भी राजा
जाने—देवता और ब्राह्मणोंमें भक्ति रखे और पितरोंके कार्यमें भी तत्पर रहे ॥ ४ ॥ धर्मसे
यज्ञ करना और अधर्मको त्यागना उचित है, इन पूर्वोक्त कर्मोंके करनेसे क्षत्रियको उत्तम
गति प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ॥ दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां
च भोजनम् ॥ ६ ॥ दंभमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ॥ स्वदारनिरतो
दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥ धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ॥
अप्रभुत्वं च वर्तेत धर्मे चादेहपातनात् ॥ ८ ॥ यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नि-
त्यमतन्द्रितः ॥ पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्चनापरः ॥ ९ ॥ एतद्वैश्यस्य
धर्मोऽयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ॥ एतदाचरते यो हि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥ १० ॥

वैश्यका यह धर्म है; कि गौओंकी रक्षा करे, खेती और वाणिज्य करे यथाशक्ति दान
और ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ६ ॥ वैश्य दंभ और मोहरहित वाक्यके द्वारा दूसरेकी
ईर्ष्या न करे अपनी स्त्रीमें रत रहे, और पराई स्त्रीको त्यागदे ॥ ७ ॥ धनसे ब्राह्मणोंको और
यज्ञके समय ऋत्विजोंको जिमा (रुप) कर मृत्युकाल तक धर्ममें अपनी प्रभुताई न चलाकर
समय बितावे; ॥ ८ ॥ और प्रतिदिन आलस्यको छोड़कर यज्ञ, अध्ययन और दान करे, और
पितरोंके कार्य (श्राद्धआदि) और भगवान् नरसिंहजीके पूजनमें तत्पर रहे ॥ ९ ॥ यह
वैश्यका धर्म है; धर्मानुष्ठानमें रतहुआ जो वैश्य इसके अनुसार धर्माचरण करता है, वह
स्वर्गमें जाता है इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥ दासवद्राह्मणानाञ्च विशेषेण समा-
चरेत् ॥ ११ ॥ अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥ पाकयज्ञविधानेन
यजेद्देवमतन्द्रितः ॥ १२ ॥ शूद्राणामधिकं कुर्यादर्चनं न्यायवर्तिनाम् ॥
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥ १३ ॥ स्वदारेषु रतिश्चैव पर-
दारविवर्जनम् ॥ इत्थं कुर्यात्सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ १४ ॥
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥ १५ ॥

शूद्रका यही धर्म है कि वह यत्नपूर्वक ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी सेवा करे और विशेष
करके ब्राह्मणोंकी तो दासकी समान सेवा करे ॥ ११ ॥ बिना माँगे दे, और अपनी जी-
निर्वाहके लिये कष्ट सहन करे, और पाकयज्ञकी विधिसे आलस्यको छोड़कर देवताओंकी
पूजाकरे ॥ १२ ॥ और न्यायमें तत्पर हुए शूद्रका भी पूजन अधिकतासे करे, मन वचन
और शरीरकी क्रियासे, सर्वदा जीर्ण वस्त्रोंका धारण करे, और ब्राह्मणकी उच्छिष्टकी भोजन
करे ॥ १३ ॥ अपनी स्त्रियोंमें रमण करे; और पराई स्त्रीको त्यागदे; मन, वचन, कर्म, और

देहसे शूद्र इसी प्रकार करतारहै ॥ १४ ॥ इन सब कर्मोंके करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं, और पुण्यके प्रभावसे शूद्र इंद्रके स्थानको प्राप्त होजाता है; ॥ १५ ॥

वर्णेषु धर्म्मा विविधा मयोक्ता यथा तथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा ॥

शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥ १६ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पूर्वकालमें जिसप्रकार ब्रह्माजीने कहाथा, वही मैंने तुमसे सब वर्णोंके यथार्थ धर्म कहे हैं, हे मुनीन्द्रों ! इस समय मैं सनातन आश्रमधर्मको कहता हूँ, आप क्रमानुसार श्रवणकरो ॥ १६ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च ॥ गुरोः कुले प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा ॥ १ ॥ ब्रह्मचर्यमधः शय्या तथा वह्नेरुपासना ॥ उदकुंभान्गुरोर्दद्याद्दोग्रासं चैधनानि च ॥ २ ॥ कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि ॥ विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥ ३ ॥ यः कश्चिन्कुरुते धर्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान् ॥ न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥ ४ ॥ तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥ शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरु-सन्निधौ ॥ ५ ॥

यज्ञोपवीत होनेके उपरान्त वालक गुरुकुलमें निवास करै, और कर्म, मन, वाणीसे गुरुके कुलमें प्रीति रखै ॥ १ ॥ गुरुके घरमें वासकरनेके समय, ब्रह्मचर्य, पृथ्वीपर शयन, अभिहोत्र करता रहै और गुरुके लिये जलका घडा, और ईधन (लकड़ी) और गायोंके निमित्त घास दे ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी विधिपूर्वक वेदको पढ़ै, और जो बिना विधिसे अध्ययन करताहै उसे अध्ययन (पढ़ने) का फल प्राप्त नहीं होता ॥ ३ ॥ जो कोई दुरात्मा विधिको छोडके धर्मको आचरण करताहै, वह विधिभ्रष्ट पुरुष धर्मको आचरण करके भी उसके फलको प्राप्त होता नहीं ॥ ४ ॥ इसकारण स्वाध्यायकी (पढ़नेकी) सिद्धिके निमित्त गुरुकुलमें वेदके व्रतोंको करै, और गुरुके समीपसे सम्पूर्ण शौचादिके आचरण सखै ॥ ५ ॥

अजिने दंडकाष्ठं च मेखलाश्चोपवीतकम् ॥ धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समा-हितः ॥ ६ ॥ सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः ॥ आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्यादंतधावनम् ॥ ७ ॥ छत्रं चोपानहं चैव गंधमाल्यादि वर्जयेत् ॥ नृत्यं गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥ हस्त्यश्वारोहणं चैव संयजेत्संयतेन्द्रियः ॥ संध्योपास्तिं प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥ ९ ॥ अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः ॥ तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥ १० ॥

मृगछाला, दंड, मेखला, (मूंजकी कौंधनी) यज्ञोपवीत, इनको सावधान और अप्रमत्त हो कर धारणकरै ॥ ६ ॥ जितेन्द्रिय होकर भोजनकी प्राप्तिके निमित्त प्रातःकाल और संध्याके समय भिक्षाके निमित्त भ्रमण करै और नित्य सावधानीसे आचमन करने पीछे दंतधावन करै ॥ ७ ॥ छत्री, जूता, गंध, माला, नृत्य, गाना, निरर्थक बोलना और मैथुन इनको त्याग

दे ॥ ८ ॥ जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचारी हाथी और घोंडेपर न चढ़ें; और व्रतमें स्थित रहकर ब्रह्मचारी संध्योपासना करे ॥ ९ ॥ संध्या करनेके उपरान्त गुरुके दोनों चरणों में नमस्कार कर पीछे भक्तिसहित पिता और माताकी सेवा करे ॥ १० ॥

एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥

एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ११ ॥

जो ब्रह्मचारी तीन कर्मोंसे (अर्थात् गुरु, माता, पिता, इनकी सेवासे) नष्ट होजाय तौ उसपर सब देवता अप्रसन्न होते हैं इससे ईर्ष्यारहित होकर ब्रह्मचारी इनकी शिक्षामें स्थित रहे ॥ ११ ॥

अधीत्य च गुरोर्वेदान्वेदौ वा वेदमेव वा ॥

गुरुवे दक्षिणां दद्यात्संयमी ग्राममावसेत् ॥ १२ ॥

गुरुसे सम्पूर्ण चारों वेद अथवा दो वेद या एक वेदको पढ़कर उन्हें दक्षिणा दे; जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ग्राममें निवास करे ॥ १२ ॥

यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ॥ संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥ १३ ॥ तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्य्यं यावदायुषम् ॥ तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वायवा कुले ॥ १४ ॥

जिसकी जिह्वा, लिंग, इन्द्रिय, उदर (पेट) और हाथ भलीभाँतिसे वशमें है; वह ब्राह्मण संन्यासकी प्रतिज्ञाको करके ब्रह्मचारीके आचरणसे ॥ १३ ॥ उस आचार्य्य (गुरु) के यहां ही जितनी अवस्था है उतने समयको व्यतीत करे, यदि आचार्य्य न हो तौ उसके पुत्रके समीप, और पुत्रके न होनेपर उसके शिष्यके निकट; और शिष्यभी न हो तौ गुरुके कुलमें रहकर जन्म वित्तवै ॥ १४ ॥

न विवाहो न संन्यासो नैष्टिकस्य विधीयते ॥ इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देह-मतंद्रितः ॥ १५ ॥ नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १६ ॥

इस नैष्टिक ब्रह्मचारीको विवाह और संन्यास नहीं कहा; जो आलस्यरहित होकर उस विधिसे शरीर छोड़ता है ॥ १५ ॥ उस ब्रह्मचारीका पृथ्वीपर फिर जन्म नहीं होता; (अर्थात् उसको मोक्ष प्राप्त होताहै) ॥ १६ ॥

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ॥

संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं तु विंदति ॥ १७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो ब्रह्मचारी सावधान होकर विधिपूर्वक गुरुकी सेवा करताहुआ पृथ्वीमें भ्रमण करताहै वह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याण रूप विद्याको प्राप्त होकर उस विद्या के सुलभ फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ असमानापिगोत्रां हि कन्यां सभ्रा-
तृकां शुभाम् ॥ १ ॥ सर्वावयवसंपूर्णां सुवृत्तामुद्वेन्नरः ॥ ब्राह्मेण विधिना
कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥ २ ॥

वेदको ब्रह्मचर्यसे पढाहुआ और गुरुके मुखसे पढाहुआ शास्त्रके तात्पर्यका ज्ञाता, ब्राह्मण अपना (विवाहकरनेवाला पुरुषका) गोत्र और प्रवरके तुल्य गोत्र और प्रवर जिसके नहीं है ऐसी और जिसके भाई हो ऐसी अच्छी ॥ १ ॥ सुन्दर आचरणवाली, और देहके सम्पूर्ण अंगोंसे युक्त ऐसी कन्या से विवाह करे; और ब्राह्मण आठ विवाहोंके मध्यमें जो उत्तम ब्राह्मण विवाह है, उससे विवाह करे ॥ २ ॥

तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्मतः ॥

इसी प्रकारसे औरभी वर्णोंके विवाह धर्मानुसार बहुत कहे हैं.

औपासनं च विधिवदाहृत्य द्विजपुंगवाः ॥ ३ ॥

सायं प्रातश्च जुहुयात्सर्वकालमतन्द्रितः ॥

स्नानं कार्यं ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण विधिपूर्वक औपासनाग्नीको ग्रहण करके ॥ ३ ॥ आलस्यरहित हो सायंकाल और प्रातःकालमें प्रतिदिन होमकरे । और नित्य दंतधावन करके स्नान करे ॥ ४ ॥

उषःकालेऽसमुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ॥ मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो
नरः ॥ ५ ॥ तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेदन्तकाष्ठकम् ॥ करंजं खादिरं वापि
कदंबं कुरवं तथा ॥ ६ ॥ सप्तपर्णं पृथ्विपर्णी जंबूं निंबं तथैव च ॥ अपामार्गं च
विल्वं चार्कं चोदुंबरमेव च ॥ ७ ॥ एते प्रशस्ताः कथिता दंतधावनकर्मणि ॥
दंतकाष्ठस्य भक्ष्यस्य समासेन प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥ सर्वे कंठकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च
यशस्विनः ॥ अष्टांगुलेन मानेन दंतकाष्ठमिहोच्यते ॥ प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्ता-
न्विशोधयेत् ॥ ९ ॥ प्रतिपत्पर्वपष्टीपुं नवम्यां चैव सत्तमाः ॥ दंतानां काष्ठसं-
योगाद्दहत्यासप्तमः कुलम् ॥ १० ॥ अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिपिद्धदिनेषु च ॥
अपां द्वादशगंडूपैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥ ११ ॥

१ दांतोंकी शुद्धि पर्वोदिक निषिद्धकालसे अन्य कालमें “कण्टकक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलसंमितम् ।
कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं दन्तधावनमाचरेत् ॥” इस वाक्यवत्प्रोक्तवचनके अनुसार जिसमें कंठि हो वा दूष
हो उस वृक्षकी कनिष्ठा उंगलीकी बराबरमोटी बारहअंगुलकी लम्बी लकड़ीका लेकर उसके पूर्वार्द्धमें
कुंची बनाकर कियाकरै उसका मंत्र यह है “ॐ आयुर्वलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञां
च मेवाश्र त्वं नो देहि वनस्पते ॥ १ ॥” इसको पढ़कर दांतोंन करके उसको चीरकर जिह्वाकी शुद्धि
करके उसे धोवे फिर अपने सन्मुखसे बचाकर होमकरे तौ नैऋतकोणमें पड़ने दावे हाथकी फिर बांवे
हाथकीको फेंकदेवे ।

उपःकाल में उठकर यथाविधि शौचादि को करै, कारण कि मुखके पर्युषित रहनेसे मनुष्य नित्य अपवित्र रहताहै ॥ ५ ॥ इसकारण सूखी अथवा गीली दंतकाष्ठका भक्षण (दंतौन) करै और वह काष्ठ करंज वा, सैर, कदंब, मौलसिरीका होना श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ सप्तपर्ण, पृष्णिपर्णी जामन, नीम, आंगा, वेल, आक, गूलर, ॥ ७ ॥ इतने वृक्ष दंतौनके लिये उत्तम कहे हैं, और दंतौनके काष्ठका भक्षण इस भांति संक्षेपसे कहाहै ॥ ८ ॥ कांटेवाले वृक्ष और दूधवाले वृक्षोंकी लकड़ीकी दंतौन करनेसे पुण्य और यशकी वृद्धि होतीहै, आठ अंगुल, या दश अंगुली लम्बी लकड़ी दंतौनके लिये कहीहै, अथवा प्रादेशमात्र लम्बी [अंगूठेसे तर्जनीतक] दंतौनकी लकड़ीका प्रमाण है इससे दांतोंकी शुद्धि करै ॥ ९ ॥ हे सन्तोम ! उत्तमो ! पडवा, अमावस्या, छठ और नवमीतिथिमें जो दंतौन करता है उसके सात कुल दग्ध होजाते हैं ॥ १० ॥ इन दिनोंमें दंतौन न करकै दंतौनके अभावमें केवल जलसे चारह छुटे करकै मुख शुद्ध करै ॥ ११ ॥

स्नात्वा मंत्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥ मंत्रवत्प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकांजलिम् ॥ १२ ॥ आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥ युद्धयन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ १३ ॥ उदकांजलिनिःक्षेपाद्रायव्या चाभिमंत्रिताः ॥ निघ्नन्ति राक्षसान्सर्वान्मन्देहाख्यान्दिजेरिताः ॥ १४ ॥ ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ॥ मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्तु लंघयेत्संध्यां सायं प्रातः समाहितः ॥ उल्लंघयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

पहले मंत्रोंसे आचमन करकै पीछे स्नानकर आचमन करै, और मंत्रोंसे आत्मा (देह) को शुद्धकर जलकी अंजुली सूर्य भगवान्को दे ॥ १२ ॥ कारण कि अव्यक्तजन्मा भगवान् ब्रह्माजीके वरदानसे दीपतहो मंदेहा नामके राक्षसगण प्रातः कालके सूर्यके साथ युद्धकरते हैं ॥ १३ ॥ उस समय गाचत्रीके मंत्रोंसे अभिमंत्रित हुई ब्राह्मणोंकी दीहुई जलाखलि उन मंदेहनामक सम्पूर्ण राक्षसोंको नष्टकरतीहै ॥ १४ ॥ तिस जलांजलिसे ब्राह्मणोंके द्वारा तथा मरीचि आदि महाभागों और सनकादिक योगियोंसे सुरक्षित होकर सूर्यभगवान् (आकाश में) गमनकरते हैं ॥ १५ ॥ इसकारण द्विजातिगण सावधान होकर प्रातःकाल और सायंकाल की संध्याका उल्लंघन न करें जो मनुष्य मोहके वशसे संध्याका उल्लंघन करतेहैं वह निश्चयही नरकमें जाते हैं ॥ १६ ॥

सायं मंत्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥

दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्याज्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्ध्यति ॥ १७ ॥

सायंकालमें आचमन करनेके पीछे मंत्रोंसे अभिमंत्रित हुए जलको शरीरपर छिड़ककर सूर्यभगवान्को जलांजलि देकर (चारघार) उनकी प्रदक्षिणा करै, इसके पीछे जलको स्पर्शकर शुद्धि प्राप्तकरै ॥ १७ ॥

१ भक्षण इसवास्ते कहाहै कि व्रतादिकमें दन्तधावन काष्ठसे न करै ।

२ यह प्रमाण ध्रुवके अर्थ कहाहै, अथवा द्वादशांगुल (बारहअंगुल) नहीं मिलनेपरका है ।

३ यह प्रमाण वैश्यके अर्थ कहाहै ।

पूर्वा संध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥ गायत्रीमन्त्रसेत्तावद्यावदादित्य-
दर्शनात् ॥ १८ ॥ उपास्य पश्चिमां संध्यां सादित्यां च यथाविधि ॥ गायत्री-
मन्त्रसेत्तावद्यावत्ताराणि पश्यति ॥ १९ ॥

भलीभांतिसे नक्षत्र दीखतेहों उस समय प्रातःकालकी संध्या करै; और जयतक सूर्यभग-
वान्का दर्शन भलीभांतिसे न होजाय तबतक गायत्रीका जप करताहै ॥ १८ ॥ और सूर्यके
अस्तहोनेके पूर्व अर्थात् अर्धास्तमित समयमें विधिसे संध्या प्रारंभ करै जयतक कुछ २
तारोंका दर्शन न हो तबतक गायत्रीका जप करता रहै ॥ १९ ॥

ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः ॥

संचित्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ॥ २० ॥

इसप्रकार संध्यावन्दन करनेके उपरान्त बुद्धिमान् ब्राह्मण घरमें जाकर शास्त्रकी विधिके
अनुसार-स्वयं होम करै; इसके पीछे पोष्यवर्ग (पुत्र भृत्य आदि) के भरणके निमित्त
चिन्ताकरै ॥ २० ॥

ततः शिष्याहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ॥

ईश्वरं चैव कार्यार्थमभिगच्छेद्विजोत्तमः ॥ २१ ॥

इसके उपरान्त निश्चिन्त होकर ज्ञानी ब्राह्मण अपने शिष्यके कल्याणके लिये कुछ एक
स्वाध्याय (पढ़ाना) करै, और हे द्विजोत्तमों ! इसके पीछे कार्यके लिये राजाके यहाँको
जाय ॥ २१ ॥

कुशपुष्पेधनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ॥ ततो मध्याह्निकं कुर्याच्छुचौ देश
मनोरमे ॥ २२ ॥ विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात्पापनाशनम् ॥ स्नात्वा येन
विधानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ २३ ॥

दूरदेशमेंसे जाकर कुशा, फूल, ईधन (लकड़ी) आदिको लावै, इसके पीछे मनोरम शुद्ध-
देशमें जाकर मध्याह्निक (जो दुपहरको कियाजाताहै) कर्मको करै ॥ २२ ॥ संक्षेपसे पाप-
नाशक उसकी विधि कहताहूँ उसविधिके अनुसार स्नान करनेसे सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २३ ॥

स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह ॥ सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदी शुद्धजला-
धिकाम् ॥ २४ ॥ नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ॥ न स्नायादल्प-
तोयेषु विद्यमाने बहृदके ॥ २५ ॥ सरिद्धरं नदीम्नानं प्रतिस्नोतःस्थितश्चरेत् ॥
तडागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तदभावतः ॥ २६ ॥

शुद्ध अक्षत (चावल) और तिलोंके साथ स्नानके लिये मृदाको लेकर उदार मन होकर
शुद्ध और अधिक जलवाली नदीपर जा स्नानकरै ॥ २४ ॥ नदीके होतेहुए इतर जलमें स्नान
न करै, और अधिक जलवाले तीर्थके होते हुए अल्पजलवाले (कृपादि) में स्नान न करै ॥ २५ ॥
नदिर्धर्मं श्रेष्ठ गंगादि समुद्रवाहिनीमें सोत (प्रवाह) के सन्मुख स्थितहोकर स्नानकरै नदीके
न होनेपर तालावादिके जलमें स्नान करै ॥ २६ ॥

शुचिदेशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्सकलांबरम् ॥ मृतोयेने स्वकं देहं लिपेत्प्रक्षाल्य
यत्नतः ॥ २७ ॥ स्नानादिकं च समाप्य कुर्यादाचमनं बुधः ॥ सोऽन्तर्जलं प्रवि-
श्याथ वांग्यंतो नियमेन हि ॥ २८ ॥ हरिं संस्मृत्य मनसां मज्जयेच्चौरुमज्जले ॥

प्रथम शुद्धदेशमें जलको छिड़ककर सम्पूर्ण वस्त्रोंको रखदे, पीछे यन्नपूर्वक मट्टी और जलसे अपनी देहको लीपकर प्रक्षालन करै ॥ २७ ॥ स्नानादिको करके बुद्धिमान् मनुष्य आचमन करै; फिर वह पुरुष जलके भीतर प्रवेशकरके मौनहोकर नियम सहित ॥ २८ ॥ हरिका स्मरणकरके जंघातक जलमें गोतालगावै ॥

ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समंत्रतः ॥ २९ ॥ प्रोक्षयेद्धारुणैर्मंत्रैः पावमा-
नीभिरेव च ॥ कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥ ३० ॥ स्थोनापृथ्वी-
ति मृद्वात्रे इदंविष्णुरिति द्विजाः ॥ ततो नारायणं देवं संस्मरेत्प्रतिमज्जनम्
॥ ३१ ॥ निमज्ज्यांतर्जले सम्यक्क्रियते चाघमर्षणम् ॥

इसकेपीछे किनारेपर आकर मंत्रोंसहित जलसे आचमन करके ॥ २९ ॥ वरुणदेवताके मन्त्र अथवा पावमानी सूक्तसे शरीरका प्रोक्षणकरै; कुशाके अग्रके जलसे यन्नसहित देहका प्रोक्षण करके ॥ ३० ॥ स्थोनापृथ्वी इत्यादि मंत्रोंसे अथवा इदंविष्णु-इत्यादि मंत्रोंको पढ़कर देहमें मट्टी लगावै; इसके पीछे प्रत्येक गोतेमें नारायणका स्मरण करै ॥ ३१ ॥ इसके पीछे जलके बीचमें निमग्न हुए अघमर्षण मंत्र (ऋतंचसत्यमित्यादि) को जपै ॥

स्नात्वाक्षततिलैस्तद्वेदीपपितृभिः सह ॥ ३२ ॥ तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पी-
डय च समाहितः ॥ जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी ॥ ३३ ॥ परि-
धायोत्तरीयं च कुर्यात्क्लेशान्न धूनयेत् ॥

इसके पीछे स्नानकरके अक्षत और तिलोंसे देव ऋषि और पितरोंका ॥ ३२ ॥ तर्पणकरके किनारेपर आकर वस्त्रको निचोड़कर सावधानीसे सफेद वस्त्रोंको ॥ ३३ ॥ पहनकर दुपट्टा पहने; और वालोंको न झाड़े; अर्थात् शिखाको नहीं फटकारे कारण कि, उसके जलका अंग-पर गिरना अच्छा नहींहै ॥

न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं च प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ मलाक्तं गंधहीनं च वर्जये-
द्वरं बुधः ॥ ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृतोयेन विचक्षणः ॥ ३५ ॥

अत्यन्तलाल और नीलावस्त्र श्रेष्ठ नहींहै ॥ ३४ ॥ भैले कुचैले और गन्धहीन वस्त्रको त्यागदे; इसके पीछे बुद्धिमान् मनुष्य मट्टीके जलसे पैरोंको धोवै ॥ ३५ ॥

दक्षिणं तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः ॥ त्रिःपिवेदीक्षितं तोयमास्यं द्विः
परिमार्जयेत् ॥ ३६ ॥ पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठा-
नामिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशेत् ॥ ३७ ॥ तथैव पंचभिर्मूर्ध्नि स्पृशेदेवं स-
माहितः ॥ अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ॥ ३८ ॥ कुर्वीत दर्भ-

पाणिस्तूदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥ भाषायामत्रयं धीमान्यथान्यायमतं-
दितः ॥ ३९ ॥

इसके पीछे दहिने हाथका गौंके कानके समान आकार बनाय देखकर तीनवार जल पिये
(आचमन करे) फिर दोवार अंगूठेसे मुखमार्जन करे अर्थात् दोनों होठोंको पोंछे ॥ ३६ ॥
फिर पैर और शिरपर जलछिड़ककर बीचकी तीन अंगुलियोंसे मुखका स्पर्श करे, अंगूठे और
अनामिकासे दोनों नेत्रोंको स्पर्श करे ॥ ३७ ॥ इसप्रकार विधिसहित बुद्धिमान् मनुष्य साव-
धान होकर पांचों अंगुलियोंसे मस्तकका स्पर्श करे, शुद्ध मनवाला ब्राह्मण इस विधिसे आ-
चमन करे ॥ ३८ ॥ कुशा हाथमें लेकर पूर्व मुख हो आलसको छोडकर न्याससहित तीन
प्राणायाम करे ॥ ३९ ॥

अपयज्ञं ततः कुर्याद्वायत्रं वेदस्मात्तरम् ॥ त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं नि-
बोधत ॥ ४० ॥ वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥ त्रयाणामपि
यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥ ४१ ॥ यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥
मन्त्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥ ४२ ॥ शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ
प्रचालयेत् ॥ किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ ४३ ॥ धिया
पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ॥ शब्दार्थचित्तनाभ्यां तु तदुक्तं मानसं स्मृत-
म् ॥ ४४ ॥

इसके पीछे वेदोंकी माता गायत्रीको जपे और जपयज्ञ करे यह जपयज्ञ तीन प्रकारका है,
आपसे उसका स्वरूप कहता हूँ ॥ ४० ॥ वाचिक, उपांशु (धीमीवाणीसे) और मानसिक,
यह तीन प्रकारके जपके भेद हैं । इन तीनों जपयज्ञोंके बीचमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥
जिसका ऊँचा और नीचा उच्चारण स्पष्टपदाक्षरोंके शब्दोंसे मन्त्रपाठ कियाजाताहै उसी
जपको वाचिक कहते हैं ॥ ४२ ॥ और जिसमें कुछ २ होठ कंपित हों और धीरे २ मन्त्रका
उच्चारणहो, कुछ २ शब्द सुनाई आताहो, उसे उपांशु जप कहते हैं ॥ ४३ ॥ बुद्धिसेही
पद और अक्षरकी पंक्तिका स्मरणहो वर्ण और पदाक्षर सुनाई न आवें; केवल शब्द और
अर्थका विचारही जिसमें हो, उसका नाम मानसिक जपयज्ञ है ॥ ४४ ॥

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥ प्रसन्ने विपुलान्गोत्राभ्यामुवंति मनी-
षिणः ॥ ४५ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ॥ जपितान्नोपसर्प-
त दूरादेव प्रयांति ते ॥ ४६ ॥ छंदःश्रद्धादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमतं दितः ॥
जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ॥ ४७ ॥

१ अर्थात् उसमें फेन बुलबुले आदिक दुष्टवस्तु न हों ऐसा देखले ।

२ यहाँ यह बात जानना चाहिये कि अंगुष्ठ तर्जनीसे दोनों नासापुट, अंगुष्ठ मध्यमासे चक्षुसुगल,
अंगुष्ठअनामिकासे कर्णद्वय, अंगुष्ठकनिष्ठिकासे नाभि स्पर्श करके हाथ घो हृदयका सम्पूर्ण हस्ते स्पर्श
करे, फिर हाथ घो मूलोक्त अनुसारसे शिरका स्पर्श करके दोनों भुजाओंकामी उसीप्रकार स्पर्श करे इसको
श्रोत्रवन्दनकर्म कहते हैं ।

जपसे स्तुति कियेजाकर देवता प्रसन्न होतेहैं, देवताओंके प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको बहु-
तसी वंशकी वृद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ४५ ॥ जपकरनेसे भयंकर राक्षसगण, पिशाच और सर्प
यह निकट नहीं आसकते बरन् वह दूरसेही भाग जातेहैं ॥ ४६ ॥ छंद और ऋषिको जान-
कर आलस्यरहित होकर मन्त्रजपै, प्रतिदिन मनसे छन्द आदिको जानकर ब्राह्मण गाय-
त्रीको जपै ॥ ४७ ॥

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशवराम् ॥

गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥ ४८ ॥

सहस्र गायत्रीका जप श्रेष्ठ है, और शत (१००) गायत्रीका जप मध्यम, और दश-
का जप निकृष्ट (अधम) है, जो प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है वह पापसे लिप्त
नहीं होता ॥ ४८ ॥

अथ पुष्पांजलिं कृत्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ॥ उदुत्यं च जपेत्सूक्तं तच्चक्षुरिति
चापरम् ॥ ४९ ॥ प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ॥

इसके उपरान्त श्रीसूर्यनारायणको पुष्पसहित जलकी अंजुली (अर्घ) देकर ऊर्ध्वबाहुहो
(ऊपरको दोनों हाथउठा) कर “उदुत्यं जातवेदसम्, और “तच्चक्षुर्देवदितम्” इन सूक्तों-
[सूर्यकी स्तुतिके मंत्रों] को जपै ॥ ४९ ॥ इसके पीछे (७ सातवार वा तीनवार) प्रदक्षिण
करके सूर्यको नमस्कार करै ॥

तत्तत्तीर्थेन देवादीनाद्रिः संतर्पयेद्विजः ॥ ५० ॥ स्नानवस्त्रं तु निष्पीड्य पुनरा-
चमनं चरेत् ॥ तद्वस्त्रं जनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥

फिर द्विज, जलसे देवें आदिक तीर्थसे सूर्यदेवता आदिकोंका तर्पण करै ॥ ५० ॥ फिर
स्नानके वस्त्रको निचोडकर पुनर्वार आचमन करै, कारण कि इसीस्थानपर भक्तोंका स्नान
और दान कहा है ॥ ५१ ॥

दर्मासीनो दर्मपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥

प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ५२ ॥

श्रद्धायुक्त हो कुशाके आसनपर बैठकर कुशा हाथमें ले पूर्वमुख होकर ब्रह्मयज्ञकी विधिके
अनुसार ब्रह्मयज्ञ करै ॥ ५२ ॥

१ यहां जपके उपरान्त अर्घ देकर उपस्थान कहाहै परन्तु सो अन्यस्मृतिते विरुद्ध होताहै, अतः
प्राणायामके अनन्तर आपो हि धा इत्यादिक मंत्रसे मार्जनकरनेपर अधमर्पणसूक्त जपै, इसके उपरान्त
आचमन करके इस अर्घको दे वो उपस्थान करे, तत्पश्चात् जप करै, उपस्थानमें उर्ध्वबाहु होना मध्या-
ह्नीमें कहाहै, सायं प्रातः अंजुली बांधही कर करै ।

२ “कनिष्ठातर्जन्यंगुष्ठमूलान्यग्रं करस्य तु । प्रजापतिभितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात्” ऐसा मनुका वचन
है, अंगुलियोंके अग्रभागको देवतीर्थ कहतेहैं, उससे देवताओंको तर्पण करै अंगुष्ठतर्जनीको मध्यके पितृ
तीर्थ कहतेहैं उससे पितरोंका तर्पणकरै । अंगुष्ठमूलको ब्रह्मतीर्थ कहतेहैं उससे ऋषियोंका तर्पणकरै ।

ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥ उत्थाय मूर्द्धपर्य्यंतं हंसःशुचि-
षदित्यूचा ॥ ५३ ॥ ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ॥ विधिना
पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् ॥ ५४ ॥

इसके उपरान्त उठकर फिर तिल पुष्प और अक्षतोंसे अर्घको मस्तक पर्यन्त उठाकर 'हंस-
शुचिपत्' इत्यादि ऋचासे अभिमंत्रित करके सूर्यको दे ॥ ५३ ॥ फिर सूर्यभगवान्को नमस्कार
करके घरको जाय, वहां विधिसे पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षा इत्यादि १६ मंत्र) से विष्णुका
पूजन करे ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकर्म विधानतः ॥

गोदोहमात्रमाक्षेदतिथिं प्रति वै गृही ॥ ५५ ॥

इसके उपरान्त वैश्वदेवकी विधिसे अनुसार वैश्वदेवको बलिदेवै, जितने समयमें गौदुहल
होसकता है उतने समयतक गृहस्थी अतिथिकी वाट देखतारहै ॥ ५५ ॥

अदृष्टपूर्वमज्ञातमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् ॥ स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चांबुना
॥ ५६ ॥ स्वागतेनाग्रयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः ॥ आसनेन तु दत्तेन प्रीतो
भवति देवराट् ॥ ५७ ॥ पादशौचेन पितरः प्रीतिमाप्नोति दुर्लभाम् ॥ अन्न-
दानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥ ५८ ॥ तस्मादतिथये कार्यं पूजनं
गृहमेधिना ॥

जिसको पहले कभी न देखाहो ऐसे आये अतिथिकीभी स्वागतवचन (आप अच्छे हैं बड़ी
कृपाकारी जो दर्शन दिया इत्यादि) कहना आसन देना, देखकर उठना, जल आदिसे अतिथि-
की पूजा (सत्कार) करे ॥ ५६ ॥ स्वागत पूछनेसे गृहस्थी की अग्नि संतुष्ट होती है, आस-
नके देनेसे इन्द्र प्रसन्नहोतेहैं ॥ ५७ ॥ चरणोंके धोनेसे पितृगण दुर्लभ प्रीतिको प्राप्त होतेहैं
उत्तम अन्नके देनेसे प्रजापति ब्रह्माजी प्रसन्नहोतेहैं ॥ ५८ ॥ इसकारण गृहस्थियोंको अति-
थिका पूजन करना अवश्य कर्तव्यहै,

भक्त्या च शक्तितो नित्यं पूजयेद्विष्णुमन्वहम् ॥ ५९ ॥ भिक्षां च भिक्षवे
दद्यात्परिव्राट् ब्रह्मचारिणे ॥ अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यंजनसमन्विताम् ॥ ६० ॥
अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते ॥ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विस-
र्जयेत् ॥ ६१ ॥ वैश्वदेवात्कृतान्दोषाञ्छक्तौ भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ न हि भिक्षु-
कृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ६२ ॥ तस्मात्प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात्स-
माहितः ॥ विष्णुरेव यतिश्चायमिति निश्चित्य भावयेत् ॥ ६३ ॥

तथा गृहस्थी भक्ति और शक्तिसे सर्वदा विष्णुका पूजन करे ॥ ५९ ॥ अनंतर अन्नके
विभागसे पूर्वही व्यंजन (भाजी) सहित भिक्षा देवै ॥ ६० ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारी भिक्षुकको
बलिवैश्वदेवके लिये अन्नको निकालकर भिक्षा देकर विदाकरै ॥ ६१ ॥ कारण कि, वैश्व-
देवके न करनेसे जो पाप होताहै उसके दूर करनेको भिक्षुक समर्थ है और जो पाप भिक्षु-
कके निरादर करनेसे होताहै, उस पापको वैश्वदेव दूर नहीं करसकता ॥ ६२ ॥ इसकारण

जो अतिथि आवै उसे सावधान होकर भिक्षा दे और निःसन्देह संन्यासीको विष्णुका रूप विचारै ॥ ६३ ॥

सुवासिनीं कुमारीं च भोजयित्वा नरानपि ॥

बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुंजीत वा गृही ॥ ६४ ॥

गृहस्थी मनुष्य प्रथम, सुहागिनी, और कुमारी, बालक और वृद्ध इन मनुष्योंको भोजन कराकर पीछे शेष वचे अन्नको आप भोजन करै ॥ ६४ ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ॥ अन्नभादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ ६५ ॥ पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक्पृथक् ॥ ततः स्वादुकरान्नं च भुंजीत सुसमाहितः ॥ ६६ ॥

(भोजनको इसभांतिसे करै कि) पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर बैठे और मौन धारणकर अथवा परिमित बोलकर प्रसन्नचित्तहो प्रथम अन्नदेवको नमस्कारकर ॥ ६५ ॥ पीछे पृथक् पृथक् मन्त्रोंसे प्राणाहुति (प्राणाय स्वाहा इत्यादि) को करै, पीछे स्वादिष्ट अन्नको भलीभांतिसे सावधानहोकर भोजन करै ॥ ६६ ॥

आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ॥

इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥ ६७ ॥

भोजनके उपरान्त आचमन करके इष्टदेवताका स्मरण करताहुआ उदरका स्पर्श करै, इसके उपरान्त विद्वान् मनुष्य कुछेक समयको इतिहास और पुराणोंके सुननेमें वितावै ॥ ६७ ॥

ततः संध्यामुपासीत वहिर्गत्वा विधानतः ॥

कृतहोमस्तु भुंजीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥ ६८ ॥

फिर विधिविधानसहित ग्रामसे बाहर जाकर सन्ध्यावंदन करै; फिर होमकरके और अभ्यागतको भोजन कराकर आप रात्रिको भोजन करै ॥ ६८ ॥

सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥

नांतरा भोजनं कुर्यादमिहोत्रसमो विधिः ॥ ६९ ॥

सायंकाल और प्रातःकालमें भोजन करनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको वेदमें दीहै, इस बीच (दिनमें दुबारा) भोजन नहीं करै, कारण कि यह भोजनकी विधिभी अग्निहोत्रके तुल्य है ॥ ६९ ॥

शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥ स्मृत्युत्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः ॥ ७० ॥ महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु ॥ तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्विजः ॥ ७१ ॥ माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायां तु वर्जयेत् ॥ अध्यापनं समभ्यस्यन्त्नानकाले च वर्जयेत् ॥ ७२ ॥ नीयमानं शर्वदृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः ॥ न पठेदुदितं श्रुत्वा संध्यायां तु द्विजोत्तमाः ॥ ७३ ॥

शिष्योंको पढ़ावै, और अनध्यायके दिन न पढ़ावै, ब्राह्मण जो यह सम्पूर्ण अनध्याय अष्टमी चतुर्दशी आदिक धर्मशास्त्र और पुराणोंमें कहेहैं उनको पढ़ाना वर्जितकर दे ॥ ७० ॥

न्त्या महान्वमी, द्वादशी, भरणी नक्षत्र, पर्व, अक्षयतृतीया, इनमें भी द्विज शिष्योंको न पढ़ावे ॥ ७१ ॥ माघमहीनेकी रथसप्तमीको भी पढ़ाना उचित नहीं ज्ञानके समय पढ़ानेको वर्ज्य ॥ ७२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुरदेको लेजावे अथवा पृथ्वीपर पड़ेहुए देखकर वा रोनेके शब्दको सुनकर, और सन्ध्याके समयमें न पढ़े ॥ ७३ ॥

दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ॥

हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥ ७४ ॥

और हे ब्राह्मणों ! यह दानभी गृहस्थियोंको देने योग्य है, सुवर्णदान, गौदान, और पृथ्वीदान ॥ ७४ ॥

एवं धर्मो गृहस्थस्य सारभूत उदाहृतः ॥ य एवं श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्म-
णः पदम् ॥ ७५ ॥ ज्ञानोत्कर्षश्च तस्य स्यान्नरसिंहप्रसादतः ॥ तस्मान्मुक्ति-
मवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार गृहस्थीके सारभूत धर्मको मैंने तुमसे कहा; जो श्रद्धासहित इस धर्माचरणको करताहै, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै ॥ ७५ ॥ और नरसिंह भगवान्की कृपासे उसे अधिक ज्ञानकी प्राप्ति होतीहै; हे द्विजोत्तमों ! उस ज्ञानसे ब्राह्मण मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ७६ ॥

एवं हि विप्राः कथितो मया वः समासतः शाश्वतधर्मराशिः ॥

गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्मं कुर्वन्प्रयत्नाद्धरिमेति युक्तम् ॥ ७७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे विप्रगण ! संक्षेपसे मैंने तुमसे सनातनधर्मका समूह कहा; गृहस्थों यत्नसहित गृहस्थके पालनेयोग्य इस धर्मके करनेसे सर्वोत्तम विष्णु भगवान्को प्राप्त होताहै; अर्थात् उसकी मुक्ति होजातीहै ॥ ७७ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमाः ॥

धर्माश्रमं महाभागाः कथ्यमानं निबोधत ॥ १ ॥

हे महाभाग सत्तमगण ! अब मैं वानप्रस्थधर्मको कहताहूँ, तुम सावधान होकर मेरे कहे हुए उस आश्रमके धर्मको श्रवणकरो ॥ १ ॥

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्हृष्टा पलितमात्मनः ॥

भार्या पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥ २ ॥

गृहस्थी पुत्रपौत्रादिको और अपनी वृद्ध अवस्थाको देखकर पुत्रोंके ऊपर अपनी स्त्रीको खींचे या उसे अपने संग लेकर वनको चलाजाय ॥ २ ॥

नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ॥

धारयञ्जुहुयादग्निं वनस्थो विधिमाश्रितः ॥ ३ ॥

नख, केश, और सफेद गात्रकी त्वचाको धारण करताहुआ वनमें स्थितहो शास्त्रकी विधिके अनुसार अग्निहोत्र करै ॥ ३ ॥

धान्यैश्च वनसंभूतैर्नीवाराद्यैरनिदितैः ॥ शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥ ४ ॥ त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपस्तदा ॥ पक्षांते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपकमुक् ॥ ५ ॥ तथा चतुर्थकाले तु भुंजीयादष्टमेऽथवा ॥ षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥ ६ ॥ घर्मे पंचाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः ॥ हेमते च जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७ ॥

वनमें उत्पन्नहुए अथवा अनिदित नीवारादि अन्नसे शाक मूल फलोंसे यत्नसहित अपना निर्वाह और होमको करै ॥ ४ ॥ त्रिकाल स्नानकर तीक्ष्ण (कठिन) तपस्या करै, पक्षके अन्तमें वा महीनेके अन्तमें भोजन करै, और अपने आप भोजन बनाकर भक्षणकरै ॥ ५ ॥ चौथे पहरमें अथवा आठपहरमें या छठेपहरमें भोजनकरै, या वायुही भक्षणकरै रहै ॥ ६ ॥ घर्म (उष्णकाल) में पंचाग्निके मध्यमें और वर्षाकृतुमें निराश्रयमें, और शीतकालमें जलके मध्यमें बैठकर तप करता हुआ समय वितावै ॥ ७ ॥

एवं च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ॥ अग्निं स्वात्मानि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥ ८ ॥ आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ॥ स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥

जो क्रमानुसार इस प्रकार कर्मोंके करनेमें समर्थ होताहै वह धर्मात्मा अग्निको अपने आत्मामें रखकर उत्तरदिशामें जाय ॥ ८ ॥ पीछे वनमें जाकर शरीर छूटनेतक मौन धारण-कर जो तपस्वी अतीन्द्रिय (जिसको नेत्रआदि न जाने) ब्रह्मका स्मरण करताहै, वह ब्रह्म-लोकमें पूजित होताहै ॥ ९ ॥

तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतांतरात्मा ॥

विमुक्तपापो विमलः प्रशांतः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो वानप्रस्थ वनमें जाकर मनको वशमें कर समाधि लगाये तपकरताहै, वह पापोंसे रहित निर्मल और शांतिरूप वानप्रस्थ सनातन दिव्यपुरुषको प्राप्तहोताहै ॥ १० ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

१ यद्वापर चतुर्थकाल शब्दका अर्थ यह है कि, जिसप्रकार ब्राह्मणोंकी प्रातःकाल और सायंकालमें दोवार भोजनकरनेकी विधि कहीहै, प्रातःकाल भोजनका पहला काल कहाहै, उसी प्रकारसे सायंकालको दूसरा काल कहाहै, यदि कोई एकदिन व्रत रहकर दूसरे दिन मध्याह्नके समयमें भोजनकरै, तो उसने चौथे समयमें भोजन किया; कारण कि उसके उस भोजनके पहले उसके भोजनका तीनवारका समय व्रत चुकाहै; इस प्रकारसे आठवां और छटा कालभी समझना योग्य है ।

षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ॥

श्रद्धया तमनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बंधनात् ॥ १ ॥

इसके प्रीले उत्तम चौथेआश्रम (संन्यास) का धर्म कहताहूँ, श्रद्धासहित उस धर्मके अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य संसारके बंधनसे छूटजाताहै ॥ १ ॥

एवं वनाश्रमे तिष्ठन्पातयंश्चैव कित्विषम् ॥ चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासविधिना द्विजः ॥ २ ॥ दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ॥ दत्त्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥ ३ ॥ इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥ अग्निं स्वात्मेनि संरोप्य मंत्रवत्प्रज्जेत्पुनः ॥ ४ ॥

इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रममें स्थिति और पापोंको दूरकरता हुआ ब्राह्मण संन्यासकी विधिसे चौथे-आश्रममें जाय (संन्यास) को ले ॥ २ ॥ पितर, देवता और मनुष्य इनके निमित्त दानकरके और पितर मनुष्य अपनी आत्माके लिये श्राद्ध करके ॥ ३ ॥ पूर्व अथवा उत्तरको मुखकरके वैश्वानरी यज्ञ करै, फिर अपनेमें अग्निको मानकर मंत्रका ज्ञाता पुनः संन्यासको ग्रहण करै ॥ ४ ॥

ततः प्रभृति पुत्रादौ स्नेहाल्लपादि वर्जयेत् ॥ बंधूनामभयं दद्यात्सर्वभूताभयं तथा ॥ ५ ॥ त्रिदंडं वैष्णवं सम्यक् संततं समपर्वकम् ॥ वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमञ्चतुरंगुलम् ॥ ६ ॥ शौचार्थमासनार्थं च मुनिभिः समुदाहृतम् ॥ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतनिवारिणीम् ॥ ७ ॥ पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ एतानि तस्य लिंगानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥ ८ ॥

उसीसमयसे पुत्रादिकोंका स्नेह और संभाषणादिको त्याग दे, और अपने बंधु तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान करै ॥ ५ ॥ चार अंगुलका कपडा और काली गौके वालोंकी रस्सी लिपटी हो और जिसकी प्रांथि सम हों, ऐसा बांसका त्रिदण्ड ग्रहण करै ॥ ६ ॥ शौच और आसनके विचारके लिये मुनियोंकी कहींहुई कौपीन और शीतको दूरकरनेवाली गुदड़ी ॥ ७ ॥ और खडाऊं इनको ग्रहणकरै, अन्य वस्तुका संग्रह न करै; यह संन्यासीके सदैव कालके चिह्न कहेहैं ॥ ८ ॥

संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥ स्नात्वाचम्य च विधिवद्वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ ९ ॥ तर्पयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्भास्करं नमेत् ॥ आत्मानं प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ १० ॥ गायत्रीं च यथाशक्तिं जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥

“ पूर्वोक्त सम्पूर्ण वस्तुओंका संग्रह कर संन्यास लेनेवाला उत्तम तीर्थमें जाकर वस्त्रपूत (धुने) जलसे विधिसहित आचमन करै; और स्नान करै ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त देवताओंको

१ वैश्वानरी यज्ञ संन्यास लेतेसमय होताहै ।

तर्पणकर सूर्यभगवान्को तथा आत्माको नमस्कार करै, पूर्वको मुखकर मौन धारण कर तीन प्राणायाम करै ॥ १० ॥ पीछे यथाशक्ति गायत्रीका जपकरनेके उपरान्त परब्रह्मका ध्यान करै,

स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥ ११ ॥ सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ॥ सम्यग्याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥ १२ ॥ पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोषयेत् ॥ यावतात्रेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ॥ १३ ॥ ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ॥ चतुर्भिरंगुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥ १४ ॥ सर्वव्यंजनसंयुक्तं पृथक्पात्रे नियोजयेत् ॥ सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्त्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥ १५ ॥ भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥ वटकाश्वत्थपर्णेषु कुंभीतैन्दुकपात्रके ॥ १६ ॥ कोविदारकदंबेषु न भुञ्जीयात्कदाचन ॥ ।: सर्व उच्यंते यतयः कांस्यभोजिनः ॥ १७ ॥ कांस्यभांडेषु यत्पाको गृहस्थस्य तथैव च ॥ कांस्ये भोजयतः सर्वं किस्त्रिषं प्राप्नुयातयोः ॥ १८ ॥ भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥ न दुष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥ १९ ॥

प्रतिदिन अपनी जीविकाके निमित्त भिक्षाके लिये भ्रमण करै ॥ ११ ॥ सन्ध्याके समय ब्राह्मणके घरपर जाकर दहिने हाथसे भलीभांति केवल (ग्रास) मांगै ॥ १२ ॥ बांये हाथमें पात्रको रखकर उसे दहिने हाथसे खाली करै अर्थात् पात्रमेंसे जो निकाले; जितने अन्नसे अपनी तृप्ति होसके उतनीही भिक्षाका संग्रह करै ॥ १३ ॥ इसके पीछे फिर छैटकर उस पात्रको दूसरे स्थानपर रख और चारअंगुलसे ढककर सावधानीसे एक को ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण व्यंजनो सहित दूसरे पात्रमें रखलै, और उसको सूर्यआदि भूत देवताओंको देकर, और जलसे छिड़ककर ॥ १५ ॥ पत्तोंके दौने या पात्रमें संन्यासी मौन धारणकर भोजन करै: बड़, पीपल, अगस्त, तेंदु, ॥ १६ ॥ कनेर, कदंब इनके पत्तोंमें कभी भोजन न करै; जो संन्यासी कांसीके पात्रमें भोजन करतेहैं उनको मलीन कहा है ॥ १७ ॥ कांसीके पात्रमें जो भोजन पकाताहै और कांसीके पात्रमें जिमानेवाले गृहस्थीको जो पाप होताहै, उन दोनोंके कांसीके पात्रमें भोजन करनेवाले संन्यासीको लगताहै ॥ १८ ॥ संन्यासी जिस न करै उस पात्रको मंत्रोंसे प्रक्षालन (धोना) करै, वह पात्र यज्ञके चमसा (एक यज्ञका पात्र होताहै) की समान कभी अशुद्ध नहीं होता ॥ १९ ॥

अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेच्च भास्करम् ॥

जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥ २० ॥

इस उपरान्त आचमन और ध्यान करके भगवान् सूर्यदेवकी स्तुति करै; और विद्वान् मनुष्य शेष दिनको जप ध्यान और इतिहासोंमें व्यतीत करै ॥ २० ॥

कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ॥

हृत्पुंडरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥ २१ ॥

सायंकालमें सन्ध्यावन्दनादि करे घरमें रात्रिको बित्तवै; अपने हृदयरूपी कमलमें अवि-
नाशी आत्माका ध्यान करै ॥ २१ ॥

यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो वशी ॥

प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ २२ ॥

यदि संन्यासी इसप्रकारसे धर्ममें तत्पर और सब प्राणियोंमें समदर्शी, वशी (जिसके
इन्द्रिय वशमें हो) और शान्त हो तो वह उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै, वहां जाकर फिर उसे
इस संसारमें आना नहीं पड़ता ॥ २२ ॥

त्रिदंडभृद्यो हि पृथक्समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु वहिर्मुखाक्षः ॥

संयुज्य संसारसमस्तबंधनात् स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् ॥ २३ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जो त्रिदंडी संन्यासी पृथक् २ ऐसा आचरण करे और धीरे २ जिसकी इन्द्रिय
संसारसे विरक्त होजाय, वह संसारके सम्पूर्ण बंधनोंको तोड़कर अमृतरूपी विष्णुभगवान्‌के
पदको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम् ॥

येन स्वर्गापवर्गौ च प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ॥ १ ॥

वर्ण और आश्रमोंके धर्मोंका स्वरूप कहा, इस धर्मका अनुष्ठान करनेसे द्विजातिगण स्वर्ग
और मोक्षको पाते हैं ॥ १ ॥

योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम् ॥

यस्य च श्रवणाद्यांति मोक्षं चैव मुमुक्षवः ॥ २ ॥

इस समय संक्षेपसे योगशास्त्रका उत्तम सार कहताहूँ, जिसके सुननेसे मोक्षकी इच्छा
करनेवाले मनुष्य मुक्त होजातेहैं ॥ २ ॥

योगाभ्यासवलेनैव नश्येयुः पातकानि तु ॥

तस्याद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥ ३ ॥

योगाभ्यासके बलसेही सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं, इसकारण योगमें तत्पर होकर मनुष्य
उत्तम आचरणसे नित्य ध्यान करै ॥ ३ ॥

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम् ॥ धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं
मनः ॥ ४ ॥ एकाकारमनानंतं बुद्धौ रूपमनामयम् ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्याये-
ज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५ ॥

प्रथम प्राणायामसे वाणीको, प्रत्याहार (विषयोंसे इन्द्रियोंके हटाने) से इन्द्रियको, और
धारणा (स्थिरताके कर्म) से वशकरने अयोग्य मनको वशमें करके ॥ ४ ॥ एकाग्रचित्त

होकर देवताओंको भी अगम्य (प्राप्तिके अयोग्य) और सूक्ष्मसे सूक्ष्म जो जगत्के आश्रय विष्णु भगवान् हैं उनका ध्यान करै ॥ ५ ॥

आत्मना बहिरंतःस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ॥

रहस्येकांतमासीनो ध्यायेदामरणांतिकम् ॥ ६ ॥

जो ब्रह्म अपने स्वरूपसे बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सुवर्णकी समान जिसकी क्रांति है; ऐसे ब्रह्मका एकान्तमें बैठकर मरणसमयतक ध्यान करै ॥ ६ ॥

यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम् ॥

यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिंतयेत् ॥ ७ ॥

जो सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय है, जो सबके हृदयमें विराजमान है और जो सबके जानने योग्य है, वह परमात्मा मैंही हूं, ऐसा चिंतवन करै ॥ ७ ॥

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ॥

श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥ ८ ॥

जबतक आत्माके लाभका सुख न हो, तबतक शास्त्रकारोंने तप ध्यान श्रुति और स्मृतियों धर्म करना कहा है; आत्माकी प्राप्तिका विरोधी जो है उसको न करै ॥ ८ ॥

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ॥ एवं तपश्च विद्या च संयुत भवजं भवेत् ॥ ९ ॥ यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु वात्रेन संयुतम् ॥ उभाभ्यः पि पक्षोभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ १० ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥ ११ ॥ देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बंधनात् ॥ न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते कचित् ॥ १२ ॥

जिसप्रकारसे घोड़ेके बिना रथ और सारथीके बिना घोड़ा नहीं चलता और दोनोंही परस्परमें सहायक हैं; इसीप्रकारसे विद्याभी तपस्याके बिना साथहुए कुछ काम नहीं करसकती, विद्या (ज्ञान) तप यह दोनों मिलकर संसारके रोगकी औषधी है ॥ ९ ॥ जिसभांति मीठेसे युक्त अन्न और अन्नसे युक्त मीठा; और जैसे दोनों पंखोंसेही आकाशमें पक्षियोंकी गति (उड़ान) है ॥ १० ॥ उसीभांति ज्ञान और कर्म इन दोनोंसेही सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति होती है; ज्ञान और तपसे युक्त और ये तत्पर हुआ ब्राह्मण ॥ ११ ॥ दोनों देहों (स्थूल और सूक्ष्म) को शीघ्र छोड़कर बंधनसे छूटजाता है, इसभांति जिसका देह नष्ट होगया है उसका नाश कभी नहीं होता ॥ १२ ॥

मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ॥

संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥ १३ ॥

हे द्विजोत्तमो ! मैंने वर्ण और आश्रमके भेद और उनका सन धर्म संक्षेपसे तुमसे कहा ॥ १३ ॥

श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्ष प्रदम् ॥

प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वस्वमाश्रमम् ॥ १४ ॥

स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले धर्मको इसप्रकार सुनकर उन हारीतमुनिको नमस्कार करके सब मुनि प्रसन्न होकर अपने २ आश्रमको चलेगये ॥ १४ ॥

धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ॥

अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ १५ ॥

जो मनुष्य हारीतमुनिके कहेहुए धर्मशास्त्रको पढ़कर धर्मका आचरण करताहै वह मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म कथितं बाहुजस्य च ॥ ऊरुजस्यापि यत्कर्म कथितं पाद-
जस्य च ॥ १६ ॥ अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥ यो यस्याभि-
हितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ॥ १७ ॥ तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्य-
मनोपदि ॥ राजेन्द्र वर्णाश्रित्वारश्चत्वारश्चापि चाश्रमाः ॥ १८ ॥ स्वधर्मं येऽनुति-
ष्ठन्ति ते यांति परमां गतिम् ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रको जो कर्म इसमें कहाहै ॥ १६ ॥ उसके विरुद्ध वर्ताव जो करताहै, वह जातिसे शीघ्रही पतित होजाताहै, जो धर्म वर्णका कहाहै वह उसी प्रका-
रका उस वर्णका है ॥ १७ ॥ इसकारण ब्राह्मण आपदकालको छोड़कर अपने धर्मको करे,
हे राजाओंके स्वामी ! चार वर्ण और चारही आश्रम हैं ॥ १८ ॥ जो अपने धर्मको करतेहैं, वह
परम गतिको प्राप्त होतेहैं ।

स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रसीदति ॥ १९ ॥ न तुष्यति तथान्येन कर्मणा
मधुसूदनः ॥ अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमतन्द्रितः ॥ २० ॥ सहस्रानिक-
देवेशं नरसिंहं च सालयम् ॥ २१ ॥

भगवान् नरसिंहदेव जिसप्रकारसे अपने धर्ममें स्थित मनुष्योंपर प्रसन्न होतेहैं ॥ १९ ॥
उसीभांति अन्य कर्मसे प्रसन्न नहीं होते, इसकारण सर्वदा आलस्यरहित होकर समयपर कर्म
करताहुआ मनुष्य ॥ २० ॥ सहस्रों देवताओंके स्वामी समंदिर भगवान्को ॥ २१ ॥

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ॥ सत्यं खं रूपम-
नंतमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सर्वदा परब्रह्मको उत्पन्नहुए वैराग्यके बलसे क्रियावान् योगी जो ध्यान करताहै वह
ब्रह्मको त्यागकर सत्य सुखरूप अनंत विष्णुके पदको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति हारीतस्मृतिः समाप्ता ३.

॥ श्रीः ॥

औ १ स्मृतिः ४.

भाषाटीकासमेता ।

अथौशनसं धर्मशास्त्रम् ॥ उशना उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि जातिवृत्ति-
विधानकम् ॥ अनुलोमविधानं च प्रतिलोमविधिं तथा ॥ १ ॥ सांतरा सं-
युक्तं सर्वं संक्षिप्य चोच्यते ॥

अब जाति और वृत्तिका विधान अनुलोम (नीच जातिकी कन्यामें ऊँचे वर्णसे उत्पन्न)
की विधि तथा प्रतिलोम (ऊँचे वर्णकी कन्यामें नीच वर्णसे उत्पन्न) की विधि कहताहूँ ॥
॥ १ ॥ अंतरालक (जो इनके बीचमें उत्पन्न हुएहैं पुलिंदआदि) उन करके संयुक्त सम्पूर्ण
संक्षेपसे कहाजाताहै;

नृपाद्ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ॥ २ ॥ जातः सुतोऽत्र निर्दिष्टः प्रति-
लोमविधिर्द्विजः ॥ वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥ ३ ॥

क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें विवाह होनेपर जो उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥ वह सूत जाति
कहाताहै, यह प्रतिलोमविधिका द्विज होताहै, यह सूत वेदका अधिकारी नहीं होता; यह
केवल उन वेदोंके धर्मोंका उपदेष्टा (बतानेवाला) होताहै ॥ ३ ॥

सूतादिप्रसूतायां सुतो वेणुक उच्यते ॥

नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥ ४ ॥

सूतसे ब्राह्मणकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे वेणुक (बाढ) कहतेहैं और क्षत्रीकी
कन्यामें जो सूतसे पैदाहो उसे चमार कहतेहैं ॥ ४ ॥

ब्राह्मण्यां क्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारः प्रजायते ॥ वृत्तं च शूद्रवत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषि-
ध्यते ॥ ५ ॥ यानानां ये च वोढारस्तेषां च परिचारकाः ॥ शूद्रवृत्त्या तु जीवं-
ति न क्षात्रं धर्ममाचरेत् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणकी कन्यामें क्षत्रियसे चौर्यसे जो उत्पन्न हो उसे रथकार (वदई) कहते हैं इसका
धर्म ब्राह्मणका धर्म नहीं होता है, जो धर्म शूद्रका है वही धर्म इसका होताहै ॥ ५ ॥ जो यान
(सवारी) के उठानेवाले हैं, अथवा जो उनके सेवक होकर शूद्रकी जीविकासे निर्वाह कर-
तेहैं वहभी क्षत्रियके धर्मके आचरण न करें ॥ ६ ॥

ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाजातो मागध उच्यते ॥ वंदित्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां
विशेषतः ॥ ७ ॥ प्रशंसावृत्तिको जीवैद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा ॥

जो वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न हो उसे मागध (भाट) कहतेहैं, यह क्षत्री और ब्राह्मणोंका
वंदी (स्तुति करनेवाला) होताहै ॥ ७ ॥ उसकी जीविका प्रशंसाही है या वैश्यका दास
होकर रहै ॥

ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाज्जातश्चण्डाल उच्यते ॥ ८ ॥ सीसमाभरणं तस्य काष्णायसमथापि वा ॥ वध्री कंठे समाबद्ध्य झल्लरीं कक्षतोपि वा ॥ ९ ॥ मलापकर्षणं ग्रामे पूर्वाह्णे परिशुद्धिकम् ॥ नापराह्णे प्रविष्टोपि वहिर्ग्रामाच्च नैर्ऋते ॥ १० ॥ पिंडीभूता भवंत्यत्र नो चेद्बध्या विशेषतः ॥

ब्राह्मणीसे उत्पन्नहुआ शूद्र चांडाल कहाताहै ॥ ८ ॥ इसके आभूषण शीशे तथा लोहेके होतेहैं, यह गलेमें वध्री (चमड़ेका पट्टा) और कोखमें झालरी (झाडुदलिया) बांधकर ॥ ९ ॥ मध्याह्नकालसे पहले गाँवमें शुद्धिके लिये मलको उठावे, और मध्याह्नके पीछे गाँवमें प्रवेश न करे, परन्तु नैर्ऋत दिशामें गाँवसे बाहरही निवास करे ॥ १० ॥ और यह सब जने एकही स्थानपर रहें, और जो न रहें तो यह वधके योग्य हैं,

चण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥ ११ ॥

श्वमांसभक्षणं तेषां श्वान एव च तद्वलम् ॥

चांडालसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्नहुआ श्वपच कहाताहै ॥ ११ ॥ वह कुत्तेका मांसही भक्षण करतेहैं और उनका बल कुत्ता ही है,

नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगव इति स्मृतः ॥ १२ ॥ तंतुवाया भवंत्येव वसुकांस्योपजीविनः ॥ शीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥ १३ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो वैश्यसे उत्पन्न होताहै वह आयोगव (जुलाहा वा कोरी) कहाताहै ॥ १२ ॥ वह धुनकर और कांसीके व्यापारसे अपनी जीविका निर्वाह करे, इन्हींमेंसे जो वस्त्र निर्माणकरने (सूत रेशम आदिके कसीदे) से जो जीविका करतेहैं, वह शीलक कहाते हैं ॥ १३ ॥

आयोगवेन विप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः ॥

आयोगवसे जो ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न होतेहैं वह ताम्रोपजीवी (ठंडे) होतेहैं,

तस्यैव नृपकन्यायां जातः सूनिक उच्यते ॥ १४ ॥

और क्षत्रियकन्यामें आयोगवसे जो उत्पन्न हो उसे सूनिक (सोनी) कहतेहैं ॥ १४ ॥

सूनिकस्य नृपायां तु जाता उद्वंधकाः स्मृताः ॥

निर्णेजयेयुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवंत्यतः ॥ १५ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो सूनिकसे उत्पन्न हो उसे उद्वंधक कहतेहैं, यह वस्त्रोंको धोतेहैं और स्पर्श करने योग्य नहीं होते ॥ १५ ॥

नृपायां वैश्यतश्चौर्यापुलिंदः परिकीर्तितः ॥

पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्युस्तान्दुष्टसत्त्वकान् ॥ १६ ॥

जारीसे जो वैश्यद्वारा क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न हो वह पुलिंद कहातेहैं, पुलिंद दुष्ट जीवोंके मारनेवाले और पशुओंको मारकर मांसवृत्ति करते हैं ॥ १६ ॥

नृपायां शूद्रसंसर्गाज्जातः पुल्कस उच्यते ॥ सुरावृत्तिं समारुह्य मधुविक्रयकर्मणा ॥ १७ ॥ कृतकानां सुराणां च विक्रेता पाचको भवेत् ॥

शूद्रसे क्षत्रियकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे पुलकस (कलाल) कहतेहैं, वह मदिरासे जी करके मदिरा वा मीठा बेचते हैं ॥ १७॥ और यह मदिराको बनाताभी है और बनी ई मदिराकोभी बेचताहै,

पुलकसाद्वैश्यकन्यायां जातो रजक उच्यते ॥ १८ ॥

इस पुलकससे वैश्यकी कन्यामें जो उत्पन्न हो उसे रजक-कहतेहैं ॥ १८ ॥

नृपायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो रंजक उच्यते ॥

शूद्रद्वारा जारसे क्षत्रियकी कन्यामें जो उत्पन्न होताहै उसे रंजक (रंगरेज) कहतेहैं,

वैश्यायां रंजकाज्जातो नर्तको गायको भवेत् ॥ १९ ॥

वैश्यकी कन्यामें जो रंजकसे उत्पन्नहो उसे नर्तक (नट) वा गायक (कथक) कहतेहैं ॥ १९ ॥

वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहिकः स्मृतः ॥ अजानां पालनं कुर्यान्महिषीणां

गवामपि ॥ २० ॥ दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत् ॥

शूद्रसे जो वैश्यकी कन्यामें उत्पन्नहो उसे वैदेहिक (गढ़ारिया) कहतेहैं; वह गाय, भैंस, बकरी इतको पाले ॥ २० ॥ और जीविका उसको दही, घी, मट्ठा, इनका बेचना है,

वैदेहिकास्तु विमायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणीमें जो वैदेहिकसे उत्पन्नहो वह चर्मोपजीवी होताहै; अर्थात् चाम बेचकर जीविका करताहै ॥ २१ ॥

नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो वैदेहिकसे उत्पन्नहो उसे सूचिक (दरजी) अथवा पाचक (रसोई बनानेवाला) कहतेहैं,

वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याज्जातश्चक्री च उच्यते ॥ २२ ॥

तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन्पुनः ॥

चोरीसे जो वैश्यकी कन्यामें शूद्रसे उत्पन्नहो, वह चक्री (तेली) कहाताहै ॥ २२ ॥ इसकी जीविका, तिल, खल, अथवा लवणसे है,

विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायां तु समंत्रकम् ॥ २३ ॥ जातः सुवर्ण इत्युक्तः

सानुलोमद्विजः स्मृतः ॥ अथ वर्णक्रियां कुर्वन्नित्यनैमित्तिकी क्रियाम् ॥ २४ ॥

अथ रथं हस्तिनं च बाह्येद्वा नृपाज्ञया ॥ सेनापत्यं च भैषज्यं कुर्याज्जीवितु वृद्धिषु ॥ २५ ॥

जिस क्षत्रियकी कन्याका ब्राह्मणके साथ विधि विधान सहित विवाह हुआहै उस कन्यासे जो उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥ उसे अनुलोम सुवर्णद्विज कहतेहैं, यह नित्य नैमित्तिक (जात-कर्मादि) क्रियाको करताहुआ ॥ २४ ॥ घोडा, रथ, हाथी इनको राजाकी आज्ञासे चलाताहै; आर सेनापति बनकर अथवा औषधोंसे अपना निर्वाह करे ॥ २५ ॥

नृपायां विप्रतश्चौर्यात्संजातो यो भिषक्स्मृतः ॥ अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपाल्येतु वैद्यकम् ॥ २६ ॥ आयुर्वेदमथाष्टांगं तन्त्रोक्तं धर्ममाचरेत् ॥ ज्योतिषं गणितं वापि कायिकीं वृद्धिमाचरेत् ॥ २७ ॥

क्षत्रियकी कन्यामें चोरीसे जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै, वह भिषक् कहाताहै, वह राजाकी आज्ञासे वैद्यक करताहै ॥ २६ ॥ यह अष्टांग आयुर्वेद अथवा तन्त्रोक्त धर्मोंको करे और ज्योतिष अथवा गणितविद्यासे अपना निर्वाह करे ॥ २७ ॥

नृपायां विधिना विप्रज्जातो नृप इति स्मृतः ॥

क्षत्रियकी कन्यामें जो विधानपूर्वक ब्राह्मणसे उत्पन्न हो (अर्थात् उसका विवाह यथाशास्त्र करके पश्चात्) वह नृप होताहै;

नृपायां नृपसंसर्गात्प्रमादाद्ब्रूज्जातकः ॥ २८ ॥ सोऽपि क्षत्रिय एव स्यादभिषेकं च वर्जितः ॥ अभिषेकं विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकः ॥ २९ ॥ सर्वं तु राजवृत्तस्य शस्यते पदवन्दनम् ॥ पुनर्भूकरणे राज्ञां नृपकालीन एव च ॥ ३० ॥

और इस राजासे क्षत्रियकी कन्यामें प्रमादसे जो उत्पन्न हो, उसे गृह कहतेहैं ॥ २८ ॥ और वहभी क्षत्रिय होताहै परन्तु अभिषेक (राजतिलक) के योग्य नहीं होता; अभिषेककी अयोग्यतासे इसे गोज (गोल) कहतेहैं ॥ २९ ॥ सब प्रकारसे राजाके चरणोंकी वंदना (नमस्कार) करनाही श्रेष्ठ है; यह गोज राजाओंके पुनर्भू करणमें (दूसरा विवाह करनेमें) राजाके समान है; अर्थात् इसके यहां राजा दूसरा विवाह करले ॥ ३० ॥

वैश्यायां विधिना विप्रज्जातो ह्यंवष्ट उच्यते ॥ कृष्याजीवी भवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥ ३१ ॥ ध्वजिनीजीविका वापि अंवष्टाः शस्त्रजीविनः ॥

विधानसहित विवाहीहुई वैश्यकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै उसे अंवष्ट कहतेहैं, खेती अथवा आग्नेय (लकड़ी) यही उसकी जीविका है ॥ ३१ ॥ अंवष्टोंकी जीविका सेना अथवा शस्त्रकी है,

वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुम्भकारः स उच्यते ॥ ३२ ॥ कुलालवृत्त्या जीवेत

और चोरीसे वैश्यकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न हो उसे कुम्हार कहतेहैं ॥ ३२ ॥ इसकी जीविका कुलालकी वृत्ति (मट्टीके पात्र बनानेसे) होतीहै;

नापिता वा भवन्त्यतः ॥ सूतके प्रेतके वापि दीक्षाकालेऽथ वापनम् ॥ ३३ ॥

नाभेरूर्ध्वं तु वपनं तस्मान्नापित उच्यते ॥ कायस्थ इति जीवेत्तु विचरेच्च इतस्ततः ॥ ३४ ॥ काकाह्नौल्यं यमात्कौर्यं स्थपतेरथ कृतनम् ॥ आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थ इति कीर्तितः ॥ ३५ ॥

इसीसे नापित (नाई) उत्पन्न होतेहैं; जन्मसूतक अथवा मरणसूतकमें अथवा दीक्षाकालमें यह केशोंका छेदन करते हैं ॥ ३३ ॥ नाभी (दूंडी) के ऊपरके केशोंके काटनेसे उसे नापित कहतेहैं; और यह कायस्थ नामसे इधर उधर विचरण करताहुआ जीविका करताहै ॥ ३४ ॥ काक (कौआ) से चपलता, यमराजसे कूरता,

स्थपति (वढ़ई) से काटना इन तीनों अर्थके जतानेके लिये इन तीनों शब्दोंके पहले अक्षरको लेकर इसको कायस्थ कहाहै ॥ ३५ ॥

शूद्रायां विधिना विप्राज्जातः पारशवो मतः ॥ भद्रकादीन्समाश्रित्य जीवेशुः
पूतकाः स्मृताः ॥ ३६ ॥ शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथा मंडलवृत्तिभिः ॥

विधिसहित विवाहीहुई शूद्रकी कन्यामें जो ब्राह्मणसे उत्पन्न होताहै उसे पारवश (पारधी) कहतेहैं, यह भद्रक (अच्छे) पहाड़ों आदि पर रहकर जीविका करताहै और उसे पूतक कहातेहैं ॥ ३६ ॥ शिवादि आगम विद्या (पंचरात्र आदि) ओंसे अथवा यह मंडलवृत्तिसे जीताहै, उसी जातिमें (स्त्री पुरुष दोनों पारशव हों)

तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥ ३७ ॥

वने दुष्टमृगान्हत्वा जीवनं मांसविक्रयः ॥

उनके जो औरस पुत्र होताहै उसे निषाद कहातेहैं ॥ ३७ ॥ उसकी जीविका वनमें वनके दुष्ट मृगोंको मारकर उनके मांसका बेचना है,

नृपाज्जातोथ वैश्ययां गृह्यायां विधिना सुतः ॥

वैश्यवृत्त्या तु जीवेत क्षत्रधर्मं न चारयेत् ॥ ३८ ॥

जो पुत्र विधिसहित विवाही हुई वैश्यकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न होताहै, उसकी जीविका वैश्यकी वृत्तिसे है, और क्षत्रियके धर्मको वह न करै ॥ ३८ ॥

तस्यां तस्यैव चौर्येण मणिकारः प्रजायते ॥ मणीनां राजतां कुर्यान्मुक्तानां
वेधनक्रियाम् ॥ ३९ ॥ प्रवालानां च सूत्रित्वं शाखानां वलयक्रियाम् ॥

जो चोरीसे वैश्यकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न हो वह मणिकार (मीनाकार) होताहै मणियोंका रंगना वा मोतियोंका वेधनाही उसका काम है ॥ ३९ ॥ अथवा मूंगोंकी साखा या कड़े बनाताहै,

शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ॥ ४० ॥

नृपस्य दंडधारः स्यादंडं दंडश्रेषु संचरेत् ॥

ब्राह्मणके संसर्गसे जो शूद्रके घर उत्पन्नहो उसे उग्र कहतेहैं ॥ ४० ॥ वह राजाका दंडधारी (चौबदार) होताहै और दंडके योग्योंको दंड देताहै,

तस्यैव चावसंवृत्त्या जातः शुंडिक उच्यते ॥ ४१ ॥

जातदु न्समारोप्य शुंडाकर्मणि योजयेत् ॥

और जो चोरीसे ब्राह्मणसे शूद्रमें उत्पन्नहो वह शुंडिक (करार) कहाहै ॥ ४१ ॥ उत्पन्न होतेही राजा दुष्टोंके ऊपर अधिपति बनाकर उस शुंडिकको शुंडाकर्म (शूलीके देने) में नियुक्त करै,

शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचिकः स्मृतः ॥ ४२ ॥

विधिसहित विवाही हुई शूद्रकी कन्यामें जो वैश्यसे उत्पन्न हो उसे सूचिक (दरजी) कहते हैं ॥ ४२ ॥

सूचिकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते ॥

शिल्पकर्माणि चान्यानि प्रासादलक्षणं तथा ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणकी कन्यामें सूचिकसे जो उत्पन्न हो वह तक्षक (चढ़ई) कहावाहै, शिल्पकर्म (कारीगरी) वा प्रासादलक्षण (यकान बनानेका प्रकार) कामकरो कहावाहै ॥ ४३ ॥

नृपायामेव तस्यैव जातो यो मत्स्यबंधकः ॥

सूचिकसे जो क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न हो वह मत्स्यबंधक (धीवर) कहावाहै,

शूद्रायां वैश्यतश्चौर्यात्कटकार इति स्मृतः ॥ ४४ ॥

जो चोरीसे शूद्रकी कन्यामें वैश्यसे उत्पन्न हो उसे कटकार कहवेंहैं ॥ ४४ ॥

वशिष्ठशापात्रेतायां केचित्पारशवास्तथा ॥ वैखानसेन केचित्तु केचिद्रागवते
च ॥ ४५ ॥ वेदशास्त्रावलंवास्ते भविष्यंति कलौ युगे ॥ कटकारास्ततः पश्चा-
न्नारायणगणाः स्मृताः ॥ ४६ ॥ शाखा वैखानसेनोक्तास्तत्रमार्गविधिक्रियाः ॥
निषेधाद्याः श्मशानांताः क्रियाः पूजांगसूचिकाः ॥ ४७ ॥ पञ्चरात्रेण वा प्राप्तं
प्रोक्तं धर्म समाचरेत् ॥

वशिष्ठजीके शापसेभी त्रेतायुगमें कोई एक पारश्व हुएथे, वे वैखानस (हरिके गाने) से अथवा परमेश्वरकी भक्तिसे ॥ ४५ ॥ वे शापवाले पारश्व कलियुगमें वेदशास्त्रके जाननेवाले होंगे, इसके उपरान्त वह कटकार नामके नारायणके गण कहावेंगे ॥ ४६ ॥ तंत्रमार्गकी विधिसे जिनमें कर्म हैं वैखानस ऋषिने ऐसी शाखा कहीहै और गर्भसे लेकर श्मशानतक १६ संस्कारभी इनके होवेंहैं, इसी कारणसे यह सूचिक पूज्य (श्रेष्ठ) हैं ॥ ४७ ॥ ये नारदपांचरात्रमें कहेहुए धर्मको करें;

शूद्रादेव तु शूद्रायां जातः शूद्र इति स्मृतः ॥ ४८ ॥ द्विजशुश्रूषणपरः पाक-
यज्ञपरान्वितः ॥ सच्छूद्रं तं विजानीयादसच्छूद्रस्ततोऽन्यथा ॥ ४९ ॥

शूद्रकी कन्यामें शूद्रसे शूद्रही होताहै ॥ ४८ ॥ जो शूद्र द्विज (ब्राह्मणादि तीन वर्ण) की सेवामें पाकयज्ञ कर्ममें सावधान रहै, वह शूद्र उत्तम है, और जो न रहै उस शूद्रको असच्छूद्र (निन्दाके योग्य) जानना ॥ ४९ ॥

चौर्यात्काकवचो ज्ञेयश्चाश्वानां तृणवाहकः ॥ ५० ॥

शूद्रकी कन्यामें जो चोरीसे शूद्रसे उत्पन्न हो वह घोड़ोंकी घास लानेवाला तृणवाहक काकवच कहावाहै ॥ ५० ॥

एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं जातिवृत्तिविभागशः ॥

जात्येतराणि दृश्यन्ते संकल्पादित एव तु ॥ ५१ ॥

इत्यौशनसं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ४ ॥

यह मैंने भिन्न २ जाति और जीविकाके अनुसार संक्षेपसे कहा और जातिभी इनमेंहीं अपने संकरूपसे दीखतीहैं ॥ ५१ ॥

इति औशनसीस्मृतिमापायीका समाप्ता ॥ ४ ॥

औशनसीस्मृतिः समाप्ता ४.

॥ श्रीः ॥

आंगिरसस्मृतिः ५.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ गृहाश्रमेष धर्मेषु वर्णानामनुपूर्वशः ॥ प्रायश्चित्तविधिं दृष्ट्वा
अंगिरा मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥

महर्षि अंगिराजी चारों वर्णोंके गृहस्थ आश्रम आदि धर्मोंमें प्रायश्चित्तकी विधिकी विचार-
कर कहने लगे ॥ १ ॥

अंत्यानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः ॥

चांद्रं कृच्छ्रं तदर्धं तु ब्रह्मक्षत्रविशां विदुः ॥ २ ॥

चांडालके बनाये हुए सिद्ध अन्नको खाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको क्रमानुसार चां-
द्रायण, कृच्छ्र, अथवा आधा कृच्छ्र करना चाहिये ॥ २ ॥

रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥

कैवर्तमेदभिह्लाश्च सप्तैते चांत्यजाः स्मृताः ॥ ३ ॥

रजक, चमार, नट, बुरुड, कैवर्त, मेद, भील, यह सब जाति अंत्यज कही गई हैं ॥ ३ ॥

अंत्यजानां गृहे तोयं भांडे पर्युषितं च यत् ॥

यद्विजेन यदा पीतं तदैव हि समाचरेत् ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण अंत्यजोंके घरका जल या उनके पात्रका बासी जल यदि अज्ञानसे पीले, तो
शास्त्रमें कहेहुए प्रायश्चित्तको उसी समय करै ॥ ४ ॥

चण्डालकूपे भांडेषु त्वज्ञानात्पिबते यदि ॥ प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णं वर्णं वि-
धीयते ॥ ५ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥ तदर्धं तु चरेद्वैश्यः

पादं शूद्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥

यदि अज्ञानसे चांडालके कुए अथवा पात्रका जल पीले, तो प्रत्येक वर्णके (पीनेवालोंके
बीचमें) किस प्रकारका प्रायश्चित्त करना होगा ॥ ५ ॥ ब्राह्मण सांतपन करै, क्षत्रिय
प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य करै, और शूद्र चौथाई प्राजापत्यको क्रमानुसार करै ॥ ६ ॥

अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणस्त्वंत्यजातिषु ॥

अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानसे अंत्यज जातिके यहांका जल पीले तो वह एकदिन उपवास करके
दूसरे दिन पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ७ ॥

विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ आचांत एव शुद्ध्येत अंगिरा मु-
निरब्रवीत् ॥ ८ ॥ क्षत्रियेण यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥ स्नानं जप्यं तु

कुर्वीत दिनस्यार्द्धेन शुद्ध्यति ॥ ९ ॥ वश्येन तु यदा स्पृष्टः शुना शुद्धेन वा द्विजः ॥ उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥ अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टः स्नानं येन विधीयते ॥ तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ११ ॥

यदि ब्राह्मण कदाचित् उच्छिष्ट अवस्थामें, अर्थात् भोजन करके बिना आचमन किये ब्राह्मणको छूले तौ आचमन करनेसे शुद्ध होताहै, यह अंगिरा मुनिका वचन है ॥ ८ ॥ जो कमी ब्राह्मणको उच्छिष्ट अवस्थामें क्षत्रिय छूले तौ स्नान और जप करनेसे आधेदिनमें शुद्ध होताहै ॥ ९ ॥ यदि ब्राह्मणको उच्छिष्ट वैश्य, शूद्र, कुत्ता यह छूले तौ एकरात्रि उपवास करके पंचगव्यके पान करनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ १० ॥ जिसके अनुच्छिष्टके स्पर्श करनेसे स्नान कहाहै उसके उच्छिष्टको स्पर्श करनेपर प्राजापत्य व्रतको करै ॥ ११ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीशौचस्य वै विधिम् ॥ स्त्रीणां क्रीडार्थसंभोगे शयनीये न दुष्यति ॥ १२ ॥ पालनं विक्रयश्चैव तद्वत्स्या उपजीवनम् ॥ पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १३ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ स्पृष्ट्वा तस्य महापापं नीलीवस्त्रस्य धारणम् ॥ १४ ॥ नीलीरक्तं यदा व मलानेन तु धारयेत् ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १५ ॥ नीलीदारु यदा भिन्नाद्ब्राह्मणो वै प्रमादतः ॥ शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ १६ ॥ नीलीवृक्षेण पकं तु अन्नमश्नाति चेद्विजः ॥ आहारवमनं कृत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥ भक्षेत्प्रमादतो नीलीं द्विजातिस्त्वसमाहितः ॥ त्रिषु वर्णेषु सामान्यं चांद्रायणमिति स्थितम् ॥ १८ ॥ नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपदीयते ॥ नोपतिष्ठति दातारं भोक्ताभुक्ते तु किल्बिषम् ॥ १९ ॥ नीलीरक्तेन वस्त्रेण यत्पाके श्रपितं भवेत् ॥ तेन भुक्तेन विप्राणां दिनमेकमभोजनम् ॥ २० ॥ मृते भर्तारि या नारी नीलीवस्त्रं प्रधारयेत् ॥ भर्ता तु नरकं याति सा नारी तदनंतरम् ॥ २१ ॥ नील्या चोपहते क्षेत्रे सस्यं यत्तु प्ररोहति ॥ अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥ देवद्रोणे वृषोत्सर्गे यज्ञे दाने तथैव च ॥ अत्र स्नानं न कर्तव्यं दूषिता च वसुंधरा ॥ २३ ॥ वापिता यत्र नीली स्यात्तावद्धूरशुचिर्भवेत् ॥ यावद्वादशवर्षाणि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त नीली (नील) के शौचकी विधि कहाहै; स्त्रीकी क्रीडाके लिये भोग करनेकी शय्यापर नीला वस्त्र दूषित नहींहै ॥ १२ ॥ जो ब्राह्मण नीलको बेचताहै; और जो नीलके व्यापारवालेसे अपनी जीविका निर्वाह करताहै वह पापी होताहै, और तीन कृच्छ्रके करनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ १३ ॥ नीले वस्त्र धारणकर जो स्नान, ध्यान, जप, होम, वेदपाठ और पितरोंकी तर्पण करताहै, उसके छू लेनेसे भी महापाप होताहै ॥ १४ ॥ यदि अज्ञानसे जो मनुष्य नीले रंगे वस्त्रोंको पहनताहै वह एकरात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५ ॥ ब्राह्मण यदि प्रमादसे नीलके काठको भेदन करे और उसमेंसे क्षीरस-

७ । रस निकल आवै तौ वह चांद्रायण व्रतको करै ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण नीलके वृक्षसे
 धकेहुए अन्नको खाताहै वह उस खायेहुए अन्नको वमन करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥
 १७ ॥ यदि द्विजाति (तीनों वर्ण) असावधानी और अज्ञानसे नीलको खालें, तौ तीनों वर्णोंको
 चांद्रायण व्रत करना कर्तव्यहै ॥ १८ ॥ नीले रंगके वस्त्रको पहरेहुए जो अन्न परोसताहै
 और उस परसे हुए अन्नको जो खाताहै उस अन्नदानका फल दाताको नहीं मिलता; और
 अन्नका भोजनकरनेवालाभी पापका भागी होताहै ॥ १९ ॥ नीले वस्त्रको पहनकर जो
 पाक बनाया जाताहै उसका भोजन करनेवाला ब्राह्मण एक दिन उपवास करै ॥ २० ॥ जो
 स्त्री पतिके मरजानेपर नीले वस्त्रोंको पहरेतीहै, उसका पति नरकमें जाताहै, और फिर वह
 स्त्री भी नरकमें जातीहै ॥ २१ ॥ नील उत्पन्नहोनेके कारण जो खेत दूषित होगयाहो उसमें
 उत्पन्नहुआ अन्न द्विजातियोंके भक्षण करने योग्य नहीं, जो उस अन्नको खाताहै उसे चांद्रा-
 यण व्रत करना उचित है ॥ २२ ॥ जिस स्थानमें नील उत्पन्न हुआहै उस देवद्रोणमें वृषो-
 र्त्सर्ग, यज्ञ और दान कभी न करै स्नान भी न करै कारण कि (नीलके प्रभावसे) यह
 भूमि दूषित होगीहै ॥ २३ ॥ जिस खेतमें नील बोयागयाहै वह खेत बारह वर्षतक अशुद्ध
 रहताहै; इसके पीछे शुद्ध होताहै ॥ २४ ॥

भोजने चैव पाने च तथा चौषधभेषजैः ॥ एवं म्रियते या गावः पादमेकं समा-
 चरेत् ॥ २५ ॥ घंटाभरणदोषेण यत्र गौर्विनिपीड्यते ॥ चरेदूर्ध्वं व्रतं तेषां भूष-
 णार्थं तु यत्कृतम् ॥ २६ ॥ दमने दामने रोधे अवघाते च वैकृते ॥ गवां
 प्रभवतां घातैः पादोनं व्रतमाचरेत् ॥ २७ ॥ अंगुष्ठपर्वमात्रस्तु व मात्रप्रमा-
 णतः ॥ सपल्लवश्च साग्रश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ २८ ॥ दंडादुक्ताद्यदान्येन
 पुरुषाः प्रहरन्ति गाम् ॥ द्विगुणं गो तेषां प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २९ ॥
 शृंगभंगे त्वस्थिभंगे चर्मनिर्मोचने तथा ॥ दशरात्रं चरेत्कृच्छ्रं यावत्स्वस्थो भवे-
 त्तादा ॥ ३० ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं चोपजायते ॥ एतदेव हितं कृच्छ्र-
 मित्थमंगिरसा स्मृतम् ॥ ३१ ॥ असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः ॥
 यमुद्दिश्य चरेद्धर्मं पापं तस्य न विद्यते ॥ ३२ ॥ अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो
 वाप्यूनषोडशः ॥ प्रायश्चित्ताद्धर्महति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥ मूर्छिते
 पतिते चापि गवि यष्टिप्रहारिते ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ३४ ॥

यदि भोजन करानेसे या जल पिलानेसे तथा औषधी देनेसे गौ मरजाय तौ गौहत्याका
 चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ २५ ॥ जहां घंटा बांधनेके दोषसे गौ मरजाय वहांभी वही
 चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ २६ ॥ सरलतासे गौ वशमें न होतीहो
 तौ दमनकरने, रोकने और मारने पर गौओंके आघातोंसे चौथाई व्रत करै
 ॥ २७ ॥ अंगुलपर जिसमें नाँठें हों और दो हाथका जिसका प्रमाण हो, पत्ते भी हों और
 अप्रमाणभी हो उसे दंड कहतेहैं ॥ २८ ॥ यदि इस दंडसे अथवा और दंडसे गौको प्रहार-
 त् माँटें तौ दुगुने गोव्रत श्रित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २९ ॥ यदि मारनेसे
 सींग टूटजाय, उधड़जाय, हड्डी टूटजाय तौ दश रात्रि कृच्छ्र व्रत करै;

जबतक उसके सींग आदि अच्छे हों ॥ ३० ॥ गोमूत्रसे मिले हुए जोकाही अच्छा है, यह अगिराक्षविका वचन है ॥ ३१ ॥ जो बालक असमर्थ हो उसके घटले पिता अथवा गुरु जो प्रायश्चित्त करदे वह लड़का पापका भागी नहीं होता ॥ ३२ ॥ जिसकी अवस्था अरसी चर्बकी हो, और जो बालक सोलह वर्षकी अवस्थासे कम हो, और जो खी रोगी हो, यह आधे प्रायश्चित्तके अधिकारी है ॥ ३३ ॥ लठोंके आघातसे गौको मूर्छा होजाय या वह गिर पड़े; तो वह आठ हजार गायत्रीका जपरूप प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ ३४ ॥

ज्ञात्वा रजस्वला चैव चतुर्थेहि विशुद्ध्यति ॥ कुर्याद्रजसि निर्वृत्तेऽनिर्वृत्ते न कथंचन ॥ ३५ ॥ रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥ अशुद्धास्ता न तेन स्पृस्तासां वैकारिकं हि तत् ॥ ३६ ॥ साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते ॥ वृत्ते रजसि गम्या स्त्री गृहकर्मणि चेदिये ॥ ३७ ॥ प्रथमेऽहनि चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥ रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना शूद्रेण चैव हि ॥ उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३९ ॥ रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होतीहै; और वह रजोदर्शनकी निवृत्तिपरही स्नान करै, निवृत्तिके बिनाहुए स्नान न करै ॥ ३५ ॥ रोगवाली स्त्रियोंको अत्यन्त रज जाताहै इससे वह अशुद्ध नहीं होती कारण कि वह रज स्वामा-विक नहीं है ॥ ३६ ॥ जबतक रज निकलतारहै तबतक उत्तम आचरण (पूजन पाठ आदिक) न करै; और जब रज निवृत्त होजाय तब पुरुषका संग और घरका कामकान करै ॥ ३७ ॥ रजोदर्शनके पहले दिन रजस्वला स्त्री चण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी (धोवन) होतीहै और चौथे दिन शुद्ध होतीहै ॥ ३८ ॥ यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता वा शूद्र छूले तो वह एक रात्रितक उपवास करै और पंचगव्यको पीकर शुद्ध होती है ॥ ३९ ॥

द्रावेतावशुची स्यातां दंपती शयनं गतौ ॥

शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ ४० ॥

जबतक स्त्री पुरुष शय्यापर शयनकरै तबतक दोनों अशुद्ध रहतेहैं, इसके पीछे स्त्री को शय्यासे उठतेही पवित्र होजातीहै, परन्तु पुरुष तथापि शुद्ध नहीं होता ॥ ४० ॥

गंडूषं पादशौचं च न कुर्यात्कांस्यभाजने ॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥

काँसीके पात्रमें कमी कुंले न करै और पैरभी न धोवै (अब पात्रशुद्धि कहतेहैं) काँसीके पात्रकी शुद्धि भस्मसे और ताँबेके पात्रकी शुद्धि खटाईसे होतीहै ॥ ४१ ॥

रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥

भूमौ निःक्षिप्य षण्मासमत्यंतोपहतं शुचि ॥ ४२ ॥

१ चण्डाली आदिके यहांपर अस्पृश्यता धर्मका उल्लंघन अतिदेश करतेहैं, अर्थात् उसके तत्त्व असम्भाष्य और अस्पृश्य होतीहै ।

स्त्रीकी शुद्धि रजोदर्शनसे होतीहै, नदी बेगसे शुद्ध होतीहै, अत्यन्त दूषित पात्रादि पृथ्वीमें छैः महीनेतक रखनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ ४२ ॥

गवाघातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥

भस्मना दशभिः शुद्धयेत्काकेनोपहृते तथा ॥ ४३ ॥

जिन काँसीके पात्रोंको गौने सूँघलिया हो, या जिनमें शूद्रने भोजन कियाहो अथवा जिन्हें काकने स्पर्श करलियाहो उनकी शुद्धि दशदिनतक भस्मद्वारा मांजनेसे होतीहै ॥ ४३ ॥

शौचं सौवर्णरौप्याणां वायुनाकैंदुरश्मिभिः ॥

सुवर्ण और चांदीके पात्र वायु और सूर्य तथा चंद्रमाकी किरणोंके लगनेसेही शुद्ध होते हैं,

रजःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं च न शुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

अद्भिर्मृदा च यन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥

और जिस ऊनके वस्त्रमें स्त्रीका रज लगगयाहो या जिससे मुरदेका स्पर्श होगयाहो उसकी शुद्धि नहीं होती ॥ ४४ ॥ उनके वस्त्रमें पूर्वोक्त अष्टता हुईहो तो उतनेही स्थानको मट्टी और जलसे धोवै तभी उसकी शुद्धि होतीहै,

शुष्कमन्नमविप्रस्य भुक्त्वा सप्ताहमृच्छति ॥ ४५ ॥ अन्न व्यंजनसंयुक्तमर्द्धमा-
सेन शुद्ध्यति ॥ पयो दधि च मासेन षण्मासेन घृतं तथा ॥ तैलं संवत्स-
णैव कां जीर्यति वा न वा ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणसे भिन्नके सूखे अन्नको खाकर सातदिनतक उपवास करै ॥ ४५ ॥ और व्यंजन-
युक्त अन्नको खाकर एक पक्षतक उपवास करै और दूध दही खाकर एक महीनेतक उपवास
करै और घीको खाकर छैः महीनेतक उपवासकरने से शुद्ध होताहै, मनुष्यके पेटमें तेल एक
वर्ष में पचताहै अथवा नहीं भी पचता ॥ ४६ ॥

यो भुंक्ते हि च शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा
चाभिजायते ॥ ४७ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण च सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञाना-
गमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ४८ ॥ अप्रणामं गते शूद्रे स्वस्ति कुर्वति
ये द्विजाः ॥ शूद्रोपि नरकं याति ब्राह्मणोपि तथैव च ॥ ४९ ॥

जो प्रतिदिन महीनेभरतक शूद्रके अन्नको खाताहै; वह इसी जन्ममें शूद्र होजाताहै, और
सरकर उसे कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ४७ ॥ शूद्रका अन्न, शूद्रके साथ भेल और शूद्रके
संग एक आसनपर बैठना, शूद्रसे किसी विद्याका सीखना, यह प्रतापवान् मनुष्यकोभी
पतित करदेताहै ॥ ४८ ॥ शूद्रके बिना प्रणाम किये हुए जो ब्राह्मण आशिर्वाद देतेहैं वह
ब्राह्मण और शूद्र दोनोंही नरकको जातेहैं ॥ ४९ ॥

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ॥

पाक्षिकं वैश्य एवाहुः शूद्रो सेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥

जन्ममरणके सूतकसे ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होताहै, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पंद्रह
दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होताहै ॥ ५० ॥

अग्निहोत्री तु यो विप्रः शूद्रान्नं चैव भोजयेत् ॥

पंच तस्य प्रणश्यन्ति चात्मा वेदास्त्रयोऽभयः ॥ ५१ ॥

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाताहै उसकी देह वेद और तीनों अग्नि यह पांचों नष्ट होजातेहैं ॥ ५१ ॥

शूद्रान्नेन तु भुङ्क्तेनै यो द्विजो जनयेत्सुतान् ॥

यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रके अन्नको खाकर पुत्र उत्पन्न करताहै, वह पुत्र उसीके हैं जिसका वह अन्न था, कारण कि अन्नसेही वीर्यकी उत्पत्ति है ॥ ५२ ॥

शूद्रेण स्पृष्टमुच्छिष्टं प्रमादादथ पाणिना ॥

तद्विज्ञेभ्यो न दातव्यमापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ५३ ॥

शूद्रने जिसे अपने हाथसे छुलियाहो वह उच्छिष्टको ब्राह्मणको न दे यह वचन आपस्तम्ब मुनिका है ॥ ५३ ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुङ्क्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु ॥

वैश्येष्वपि भुङ्जीत न शूद्रेऽपि कदाचन ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणका अन्न सर्वदा खानेके योग्य है, क्षत्रियके अन्नको पर्व (यज्ञके) समयमें खाले, आपस्तम्बके आजानेपर वैश्यके अन्नको भोजन करै, परन्तु शूद्रके अन्नको कभी भोजन न करै ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणान्ने दरिद्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ॥ वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्ने नरकं
ध्रुवम् ॥ ५५ ॥ अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ वैश्यस्य चान्नमे-
वान्नं शूद्रान्नं रुधिरं ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मणके अन्नको भोजन करनेवाला दरिद्री, क्षत्रियके अन्नका भोजन करनेवाला पशु होताहै, और जो वैश्यके अन्नको खाताहै वह शूद्र होताहै और शूद्रके अन्नको खानेवाला निश्चयही नरकको जाताहै ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणका अन्न अमृतस्वरूप है, क्षत्रियका अन्न दूधकी स-
मान है, वैश्यका अन्न केवल अन्नही मात्र है; और शूद्रका अन्न निश्चयही रुधिर है ॥ ५६ ॥

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ॥

यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ॥ ५७ ॥

मनुष्य जो पाप करताहै वह अन्नमें रहताहै इसकारण जो जिसका अन्न भोजन करताहै वह उसके पापका भोजन करताहै ॥ ५७ ॥

सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेंद्रियः ॥ पिबेत्पानीयमज्ञानाद्भुङ्क्ते भक्तमथा-
पि वा ॥ ५८ ॥ उत्तार्याचम्य उदकमवतीर्य उपस्पृशेत् ॥ एवं हि स सुधा-
चारो वारुणेनाभिर्मन्त्रितः ॥ ५९ ॥

यदि जितेंद्रिय ब्रह्मचारी ब्राह्मण अज्ञानसे सूतकमें जल पीले अथवा मात खाले ॥ ५८ ॥
तौ वमन करके आचमन करै, और भलीभाँतिसे वरुणके मन्त्रोंके पढ़ेहुए जलसे शरीरको छिड़कै ॥ ५९ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥ आचरेज्जपकाले च पादुकानां विस-
र्जनम् ॥ ६० ॥ पादुकासनमारूढो गेहात्पंचगृहं व्रजेत् ॥ छेदयेत्तस्य पादौ
तु धार्मिकः पृथिवीगतिः ॥ ६१ ॥ अभिहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः ॥
एते वै पादुकैर्याति शेषान्दंडेन ताडयेत् ॥ ६२ ॥

अभिहोत्रशाला, गोशाला, देव और ब्राह्मणोंके निकट जपके समयमें खडाऊंओंको त्यागदे
॥ ६० ॥ जो मनुष्य खडाऊंओं पर चढ़कर अपने घरसे पांचघरतक भी जाय तौ राजाको
उचित है कि उसके पैरोंको कटवाढालै ॥ ६१ ॥ कारण कि अभिहोत्री, तपस्वी, श्रोत्रिय
(वेदोक्त कर्मोंका करनेवाला) और वेदका पार जाननेवाला यही खडाऊंपर चढ़कर चल्-
नेके अधिकारी हैं, और पुरुष राजाके ताडन करने योग्यहैं ॥ ६२ ॥

जन्मप्रभृतिसंस्कारे चूडांते भोजने नवे ॥

असपिंडे न भोक्तव्यं चूडस्यांते विशेषतः ॥ ६३ ॥

जन्मआदि संस्कारमें, चूडाकर्ममें, अन्नप्राशनमें अपने असपिंडके घर भोजन न करै; और
चूडाकर्ममें तौ कदापि न करै ॥ ६३ ॥

याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ॥

नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ६४ ॥

भिक्षुकका अन्न, नवश्राद्ध (जो मरनेके ग्यारहवें दिन होताहै) सूतकका अन्न, और
स्त्रीके पहले गर्भाधानमें अन्नका खानेवाला चांद्रायणव्रतका प्रायश्चित्त करै ॥ ६४ ॥

अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥

तस्य चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रगीयते ॥ ६५ ॥

जो कन्या एकको देकर फिर दूसरेको दीगई हो उसका अन्नभी भोजन करना उचित
नहीं, कारण कि यह कन्या पुनर्भू नामसे पुकारी गईहै ॥ ६५ ॥

पूर्वस्य श्रावितो यश्च गर्भो यश्चाप्यसंस्कृतः ॥ द्वितीये गर्भसंस्कारस्तेन शुद्धि-
र्विधीयते ॥ ६६ ॥ राजाद्यैर्दशभिर्मासैर्यावत्तिष्ठति शुर्विणी ॥ तावद्रक्षा विधात-
व्या पुनरन्यो विधीयते ॥ ६७ ॥

यदि किसी स्त्रीको अन्यसे गर्भ रह गयाहै ऐसा सुनाजाय तौ उस गर्भके संस्कार नहीं करै
और फिर दूसरे गर्भाधानके समय में संस्कार करनेसे उस स्त्रीकी शुद्धि होती है ॥ ६६ ॥
इतने वह स्त्री गर्भवती रहै तबतक उस स्त्रीकी शुद्धि नहीं इसवास्ते उसके हाथ दैविककार्यका
उपयोग नहीं ले परन्तु पुनः वह अपने पतिसे गर्भिणी होके उसके गर्भसंस्कार किये जाय
तबतक उसकी रक्षा करनी फिर अन्य गर्भ होताहै तब वह शुद्ध होतीहै ॥ ६७ ॥

भर्तृशासनमुल्लंघ्य या च स्त्री विप्रवर्तते ॥

तस्याश्चैव न भोक्तव्यं विज्ञेया कामचारिणी ॥ ६८ ॥

जो स्त्री पतिकी आज्ञा उल्लंघन करके वर्ताव करतीहै उसके यहांका अन्नभी भोजन करना
उचित नहीं, और उस स्त्रीको कामचारिणी जानना ॥ ६८ ॥

अनपत्या तु या नारी नाश्नीयात्तद्गृहेपि वै ॥

अथ भुंक्ते तु यो मोहात्पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ६९ ॥

जो स्त्री बाँझ हो उसके यहांभी भोजन करना उचित नहीं, यदि कोई उसके यहां मोहसे भोजन करलेताहै वह पूय (राघके) नरकमें जाताहै ॥ ६९ ॥

स्त्रिया धनं तु ये मोहादुपजीवन्ति मानवाः ॥

स्त्रिया यानानि वांसांसि ते पापा यांत्यधोगतिम् ॥ ७० ॥

जो मनुष्य मोहितहो स्त्रीके धनको भोगतेहैं, और स्त्रीकी सवारी या जो उसके वस्त्रोंको बर्तेहैं वह पापी अधोगतिको प्राप्त होतेहैं ॥ ७० ॥

राजात्रं हरते तेजः शूद्रात्रं ब्रह्मवर्चसम् ॥

सूतकेषु च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ ७१ ॥

इत्यंगिरःप्रणीतं धर्मशास्त्रं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

राजाका अन्न तेजको हरण करताहै, और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको हरताहै; और जो सूत-कमें खाताहै, वह पृथ्वीके मलको भक्षण करताहै ॥ ७१ ॥

इति आंगिरसस्मृतिमाषाढीका समाप्ता ॥ ५ ॥

इत्याङ्गिरसस्मृतिः समाप्ता ॥ ५ ॥



श्रीः ।

य स्मृतिः ६. भा टीकासमेताः ।



श्रुति मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः ॥

प्राब्रवीद्वर्षिभिः पृष्ठो मुनीनामग्रणीर्यमः ॥ १ ॥

चारों वर्णोंके श्रुति और स्मृतिमें कहेहुए धर्मको ऋषियोंके पूछनेसे मुनियोंमें मुख्य यमने से कहा ॥ १ ॥

यो भुंजानोऽशुचिर्वापि चंडालं पतितं स्पृशेत् ॥ क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य
वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ २ ॥, षड्रात्रं वा त्रिरात्रं वा यथासंख्यं समाचरेत् ॥
स्नात्वा त्रिषवणं विप्रः पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

जो भोजनके समय अथवा उच्छिष्ट अवस्थामें चांडाल पतितको क्रोध अथवा अज्ञानसे छू ले उसका प्रायश्चित्त कहताहूं ॥ २ ॥ तीनरात्रि या छैरात्रि क्रमसे प्रायश्चित्त करै, त्रिकाल स्नानकरके पंचगव्यके पीनेसे ब्राह्मण शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥

भुंजानस्य तु विप्रस्य कदाचित्सवते गुदम् ॥ उच्छिष्टत्वे शुचित्वे च तस्य शौचं
विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥ पूर्वं कृत्वा द्विजैः शौचं पश्चादप उपस्पृशेत् ॥ अहोरात्रो-
षितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ५ ॥ निगिरन्यादि मेहेत भुक्त्वा वा मेहने
कृते ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ६ ॥ यदा भोजनकाले
स्यादशुचिर्ब्राह्मणः कचित् ॥ भूमौ निधाय तद्ग्रासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात्
॥ ७ ॥ भक्षयित्वा तु तद्ग्रासमुपवासेन शुद्ध्यति ॥ आशित्वा चैव तत्सर्वं
त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ८ ॥

भोजनके समय यदि ब्राह्मणको कभी अघोवायुके साथ मलत्याग होजाय तौ उच्छिष्ट और अशुद्धिके निवारणके निमित्त शौच (शुद्धि) करै ॥ ४ ॥ ब्राह्मण पहले शौच करके पीछे जलसे आचमन करै, इसके पीछे अहोरात्र उपवास करै फिर पंचगव्यके पीनेसे वह शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥ भोजन करनेसे प्रथम अथवा भोजन करते समयमें यदि मूत्रत्याग होजाय तौ अहोरात्रि उपवास करके घीकी आहुतिसे होमकरै ॥ ६ ॥ यदि ब्राह्मण भोजन करते हुए में अशुद्ध होजाय तौ उस ग्रासको उसी समय पृथ्वीपर रखदे फिर स्नान करै तब शुद्ध होता है ॥ ७ ॥ यदि उस ग्रासको भी खालियाहो तौ उसकी शुद्धि एक उपवास करनेसे होतीहै, और जिसने सम्पूर्ण अन्न खालियाहो वह तीन रात्रितक अशुद्ध रहताहै ॥ ८ ॥

अन्नतश्चेद्विरेकः स्यादस्वस्थस्त्रिशतं जपेत् ॥

स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्याः शोधनं परम् ॥ ९ ॥

भोजन करते समयमें यदि वमन होजाय तौ अस्वस्थ (रोगी आदि) तौ तीन सौ गायत्री का जपकरै, और निरोगी मनुष्य तीनहजार गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ९ ॥

चंडालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः ॥

त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥ १० ॥

विष्टामूत्रकरकै पीछे जो चांडाल अथवा श्वपच द्विजका स्पर्श करले तौ तीन रात्रितक उपवास करनेसे, और उनको छूनेके पीछे वैसेही भोजनभी करले तौ छैः रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

उदक्यां सूतिकां वापि संस्पृशेदंत्यजो यदि ॥

त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादिति ज्ञातातपोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥

यदि अंत्यज रजस्वला अथवा सूतिका स्त्रीको छूले तौ उसकी शुद्धि तीन रात्रिमें होती है, यह वचन ज्ञातातप ऋषिका है ॥ ११ ॥

रजस्वला तु संस्पृष्टा श्वमातंगादिवायसैः ॥ निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्कालस्नानेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥ रजस्वले यदा नार्यावन्योन्यं स्पृशतः कचित् ॥ शुद्ध्यतः पंचगव्येन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि ॥ १३ ॥ उच्छिष्टेन च संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥ कृच्छ्रेण शुद्धिमाप्नोति शूद्रा दिनोपवासतः ॥ १४ ॥

कुत्ता, हाथी, काक, यदि रजस्वला स्त्री को छूले तौ वह स्त्री उस समय अशुद्ध अवस्थामें भोजन न करै; और चौथेदिन स्नान करै तब शुद्ध होतीहै ॥ १२ ॥ यदि परस्परमें दो रजस्वला स्त्री ब्रजाय तौ वह पंचगव्यका पान करै और ब्रह्मकूर्च (कुशाओंके मोटक) से अपने शरीरपर पंचगव्यको छिड़कै तब वह शुद्ध होतीहै ॥ १३ ॥ यदि किसी समय उच्छिष्टपुरुष रजस्वलाको छूले; तौ ब्राह्मणकी स्त्री कृच्छ्र करै तब शुद्ध होतीहै और शूद्रकी स्त्रीकी शुद्धि दान और उपवास करनेसे होतीहै ॥ १४ ॥

अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टे स्नानं येन विधीयते ॥

तैनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५ ॥

जिस अनुच्छिष्टके स्पर्श करनेसे स्नान करना कहाहै यदि वही उच्छिष्ट स्पर्शकरले तौ प्राजापत्यका प्रायश्चित्त करना कहाहै ॥ १५ ॥

ऋतौ तु गर्भं शंकित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥

अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं भूत्रपुरीषवत् ॥ १६ ॥

ऋतुके समयमें जो मैथुन गर्भकी इच्छासे कहाहै, उस समय स्नान करना कर्तव्य है; और अनृतुके अतिरिक्त समयमें स्त्रीका संसर्ग करनेसे मलमूत्रके समान शौच करना पडताहै ॥ १६ ॥

उभावप्यशुची स्यातां दंपती शयने गतौ ॥

शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ १७ ॥

जबतक स्त्री पुरुष दोनोंजने एकशय्यापर शयन करते हैं तबतक दोनों अशुद्ध हैं और जब शय्यासे उतरगये तब स्त्री शुद्ध और पुरुष अशुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ॥

दंड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥ १८ ॥

दुष्टभावसे जो स्त्री अपने पतिके शरीरकी सेवा नहीं करे उस स्त्रीको बारहवर्षतक दंड करे अर्थात् उसके साथ बारहवर्षतक व्यवहार नहीं करे और उसके पास धन अलंकार कुछभी नहीं रखे ॥ १८ ॥

त्यजंतोऽपतितान्बन्धुदंड्या उत्तमसाहसम् ॥

पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥ १९ ॥

जो पतित्यदोषहीन बांधवोंको त्याग देतेहैं उनको राजा उत्तम साहस अत्यन्त दंड दे और जो पिता पतित होजाय तो उसे भले त्याग दे; परन्तु माताका कभी त्याग न करे यह त्यागने योग्य नहीं है ॥ १९ ॥

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वाऽऽदिभिरुपक्रमैः ॥ मृतोऽमेध्येन लेप्तव्यो जीवतो
द्विशतं दमः ॥ २० ॥ दंड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिकं दमम् ॥ प्राय-
श्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रमचोदितम् ॥ २१ ॥

जो मनुष्य रस्सीसे अथवा अन्य किसी प्रकारसे आत्महत्या करे तो उसे गोवरसे लीपदे, और जो वह वचजाय तो उसे दोसौ रुपये दंड कहाहै ॥ २० ॥ और एक पणिक (मुद्रा-का) दंड उसके पुत्रमित्रोंको भी कहाहै, इसके पीछे वह सब जने शास्त्रके अनुसार प्राय-श्चित्त करे ॥ २१ ॥

जलाशुद्धं धनध्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ॥ विषप्रपतनं प्रायः शस्त्रघातहताश्च
ये ॥ २२ ॥ न चैत प्रत्यवसिताः सर्वलोकवाहिष्कृताः ॥ चांद्रायणेन शुद्ध्यन्ति
तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥ २३ ॥ उभयावसितः पापः श्यामाच्छवलकाच्छ्युतः ॥
चांद्रायणाभ्यां शुद्ध्येत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥ २४ ॥

जो मनुष्य मरनेके लिये जलमें डूबकर वचगयेहैं, या जो फौसी खाकर वचगये हैं और जो मनुष्य संन्यास धर्मको नाश करनेवाले और जिन्होंने उसे त्यागदियाहै और जो विष भक्षण करके या ऊंचेपरसे गिरकर तथा जो शस्त्रके लगनेसे मरगयेहैं ॥ २२ ॥ उपरोक्त पापियोंके घरमें भोजन करनेवाला पापी वा वासकरनेवाला अथवा मनुष्य उभयावसित कहाताहै उसको श्याम वा शवल (कबरे) रंगका बैल न मिले तो वह दो चांद्रायण व्रत करे, अथवा एक वछडेसहित गौका दान करनेसे शुद्ध होसक्ता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

श्वभृगालपुवंगाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना ॥

दष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा संध्यासु रात्रिषु ॥ २५ ॥

कुत्ता, सियार, वानर, यदि मनुष्योंको विना क्रीडाके किये ही काटखाँय तो दिनमें संध्याकरने और रात्रिमें शीघ्र स्नानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥

अज्ञानाद्राहणो भुक्त्वा चंडालान्नं कदाचन ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेनं विशुद्ध्यति ॥ २६ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानवासे चांडालके यहां के अन्नका भोजन करले तो पंद्रह दिन तक भोग्य और जोको खानेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ २६ ॥

गोब्राह्मणहनं दग्ध्वा मृतं चोद्धन्वनादिना ॥

पाशं छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद्भिजः ॥ २७ ॥

जिसने गौका वध कियाहो अथवा ब्राह्मणका वध कियाहो, और जिसने फौसी लगाकर प्राणत्याग हो उसको जो ब्राह्मण फूँके अथवा उसकी फौसीको काटै तो वह ब्राह्मण एक कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २७ ॥

चंडालपुलकसानां च भुक्त्वा गत्वा च योषितम् ॥

कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैद्वद्वयम् ॥ २८ ॥

चांडाल और पुलकस (चांडालका भेद) के यहां जानकर खानेवाला तथा इनकी स्त्रियों का संग करनेवाला मनुष्य एक वर्ष तक कृच्छ्र करै और जानकर उपरोक्त पातकोंका करनेवाला दो इन्दुकृच्छ्र करै ॥ २८ ॥

कापालिकान्नभोक्तृणां तन्नारीगामिनां तथा ॥

कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैद्वद्वयम् ॥ २९ ॥

जानकर कापालिक (खापर लेकर मारनेवाले) के यहां जिसने अन्न खायाहै अथवा जिसने उनकी स्त्रियोंके संग भोग कियाहै वह एक वर्ष तक कृच्छ्र करै, और अज्ञानसे करनेवाला दो इन्दुकृच्छ्र करै ॥ २९ ॥

अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे ॥

तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥

जो स्त्री गमनकरने योग्य नहींहै उसके साथ गमन करनेवाला, और मदिरा और गोमांसका भक्षण करनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र करकै मौर्वी (सूत्र) के होमसे शुद्ध होताहै ॥ ३० ॥

महापातककर्तारश्चत्वारोऽथ विशेषतः ॥

अग्निं प्रविश्य शुद्ध्यन्ति स्थित्वा वा महति क्रतौ ॥ ३१ ॥

चारों महापातक करनेवाले विशेषकरके तो अग्निमें प्रवेश करकै अथवा बड़े यज्ञ (अश्वमेधादि) में टिकनेसे शुद्ध होतेहैं ॥ ३१ ॥

रहस्यकरणेऽप्येवं मासमभ्यस्य पूरुषः ॥

अघमर्षणसुक्तं वा शुद्धयेदंतजले स्थितः ॥ ३२ ॥

इस मांसिके छिपकर (गुप्त) पालक करनेवाला मनुष्य अघमर्षण (ऋतं च सत्यम् इत्यादि) सुक्तका एक महीने भर तक जलमें बैठकर जपकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

रजकश्चर्मकश्चैव नटो वुरुड एव च ॥ कैवर्तमेदमिच्छाश्च सप्तैते अन्यजा स्मृताः ॥ ३३ ॥ भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वाऽपः प्रतिगृह्य च ॥ कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैद्वद्वयम् ॥ ३४ ॥

धोवी, चमार, नट, कैवर्त, वुरुड, मेद, भील इन सातोंको अत्यन्त कहाहै ॥ ३३ ॥ जानकर इनके यहां भोजन करनेवाला, इनकी स्त्रियोंमें गमन करनेवाला, इनके घरका जल पीनेवाला

इनका दान लेनेवाला पुरुष १ वर्षतक कृच्छ्र व्रत करै । और अज्ञानसे करनेवाला दो इन्दु-
कृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३४ ॥

मातरं गुरुपत्नीं च स्वमूर्द्धहितरं क्षुषाम् ॥

गतैताः प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते ॥ ३५ ॥

जो मनुष्य माता, गुरुकी स्त्री, भगिनी, लड़की, पुत्रवधू, इनमें गमन करताहै, वह अग्निमें
प्रवेश करनेसे (मरजातेसे) शुद्ध होताहै और किसी भांति उसकी शुद्धि नहीं है ॥ ३५ ॥

राज्ञीं प्रव्रजितां धार्त्रां तथा वर्णोत्तमामपि ॥

कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य रानी, संन्यासिनी, धाय और उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ गमन करता है तथा
अपने गोत्रकी स्त्रीके साथ रमण करताहै वह दो कृच्छ्र करै ॥ ३६ ॥

अन्यासु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि ॥

परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ३७ ॥

इतर जो सब माता और पिता के गोत्रकी स्त्री हैं इन सबके साथ गमन करनेवाला
सांतपन कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३७ ॥

वेद्याभिगमने पापं व्यपोहन्ति द्विजातयः ॥ पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पंचरात्रं कु-
शोदकम् ॥ ३८ ॥ गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ गोघ्नस्य चेदि-
च्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ॥ ३९ ॥

जिसने वेद्याके साथ गमन कियाहै उस पापको तीनों द्विजाति अत्यंत तपेहुए कुशाके
जलको पांचरात्रितक प्रतिदिन एकवार पीकर दूर करसके हैं ॥ ३८ ॥ कोई ऋषी गुरुकी
शय्यामें गमन करनेके व्रतकी कोई ब्रह्महत्याके व्रतकी कोई गोहत्याके प्रायश्चित्तकी और
कोई अवकीर्णी (अर्थात् ब्रह्मचर्यसे पतित हो उस) के प्रायश्चित्त करनेकी आज्ञा देतेहैं ।
अर्थात् वेद्यागामी पुरुष इनमेंसे कोई प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होसकौहै ॥ ३९ ॥

दंडाध्वप्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् ॥ द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं वि-
निर्दिशेत् ॥ ४० ॥ अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः ॥ सार्द्रश्च सपलाश
श्च गोदंडः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥ गवां निपातने चैव गर्भोपि संपतेद्यदि ॥
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं यथा पूर्वं तथा पुनः ॥ ४२ ॥ पादसुत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ गा-
त्रसंभवे ॥ पादौ न कृच्छ्रमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ ४३ ॥ अंगप्रत्यंगसंपू-
र्णं गर्भे रेतःसमन्विते ॥ एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रमेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ४४ ॥

गोदंडसे ऊँचे अर्थात् उपरसे कठिन आघातसे जो गायको सारै उसे गौहत्याका दुगुना
प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ४० ॥ गोदंड उसे कहते हैं अंगूठेके समान मोटा और जिसमें पत्तेलगे
हैं गीला हो और दो हाथका जिसका प्रमाण हो ॥ ४१ ॥ जो गौधोंके मारनेसे गर्भ गिर-
जाय तौ तीनों द्विजाति क्रमसे एक २ कृच्छ्र करै ॥ ४२ ॥ यदि गर्भ रहनेपरही गर्भ
गिरजाय तौ चौथाई कृच्छ्र करै, और जो गर्भके अंग प्रत्यंगके दनजानेपर गर्भ गिरजाय

तो आधा कृच्छ्र करै, और अचतन गर्भका पात होजाय तौ पौन कृच्छ्र करै ॥ ४३ ॥ अंग प्रत्यंगसे पूरे और वीर्यसमेत गर्भपात होजानेसे तीनों वर्णोंको एक कृच्छ्र करना उचित है यह प्रायश्चित्त गोहृत्यारोंका है ॥ ४४ ॥

बंधने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजा ॥

संपद्यते चेन्मरणं निमित्ती नैव लिप्यते ॥ ४५ ॥

यदि बांधनेसे, रोकने और पोषणकरनेसे रुग्ण होकर गौ मरजाय तौ बांधनेवालेको पाप नहीं लगता ॥ ४५ ॥

मूर्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतस्तथा ॥ उत्थाय पट्पदं गच्छेत्सप्त पंच द-
शापि वा ॥ ४६ ॥ ग्रासं वा यदि गृहीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥ पूर्वव्याधि-
प्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४७ ॥

यदि डंडके आघात लगनेसे जिस गौको मूर्छा आगई हो या गिर पड़ी हो, और फिर वह गौ या बैल उठकर छैः सात, पांच, अथवा दश कदम चलदे और घास आदिक खाकर जल पीले पीछे से मरजाय तौ पूर्व व्याधिसे मरेहुए उस बैल या गौका प्रायश्चित्त मनुष्य-को नहीं कहा है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

काष्ठलोष्टादमभिर्गोवः शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥ प्रायश्चित्तं कथं तत्र शास्त्रे शास्त्रे
निगद्यते ॥ ४८ ॥ काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्ट्रके ॥ तप्तकृच्छ्रं तु
पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ ४९ ॥

(प्रश्न—) लकड़ी, ढेला, पत्थर और शस्त्रसे यदि गौको मारडालें तौ वहां प्रत्येकके प्रति किसप्रकार प्रायश्चित्त करना कहा है ॥ ४८ ॥ (उत्तर—) लकड़ीसे मारनेवाला पुरुष सांतपन करै, ढेलेसे मारनेवाला प्राजापत्य करै पत्थरसे मारनेवाला तप्तकृच्छ्र करै और शस्त्रसे मारने-वाला अतिकृच्छ्र करै ॥ ४९ ॥

औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्ब्राह्मणेषु च ॥ दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न
विद्यते ॥ ५० ॥ तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे ॥ निःशल्यकरणे चैव
प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५१ ॥

यदि गौ और ब्राह्मणको औषध, स्नेह (घी आदिके) पिलाते समयमें वा भोजन कराते समयमें यदि विपत्ति (मरण वा कष्ट) होजाय तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५० ॥ तेल पिलाने अथवा औषधी खिलानेके समयमें और कांटाआदि निकालनेके समयमें यदि गौको कष्ट होजाय तौ उसका भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५१ ॥

वत्सानां कंठबंधे च क्रियया भेषजेन तु ॥

सायं संगोपनार्थं च न दोषो रोधबंधयोः ॥ ५२ ॥

यदि बछड़ेका गला बांधनेसे या औषधीके देनेसे अथवा रक्षाके लिये संध्याको रोकते और बांधते समयमें मरजाय तौ बांधनेवाला पापका भागी नहीं है ॥ ५२ ॥

पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥

त्रिपादे तु शिखावर्जं मूले सर्वं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

चौथाई कृच्छ्रमें रोमोंका मुंडन, अर्द्धकृच्छ्रमें दाढ़ीका मुंडन, पौनकृच्छ्रमें चोटीके अतिरिक्त समस्त शिरका मुंडन और पूर्ण कृच्छ्रमें चोटीसहित सब केशोंका मुंडन पुरुषको कराना उचित है ॥ ५३ ॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलद्वयम् ॥ एवमेव तु नारीणां मंडमुंडायनं स्मृतम् ॥ ५४ ॥ न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥ न च गोष्ठे निवासोस्ति न गच्छंतीमनुव्रजेत् ॥ ५५ ॥

स्त्रियोंका मुंड मुंडवाना यही कहा है कि, उनके सब बालोंको ऊपरको उभारकर दो अंगुल काटदे ॥ ५४ ॥ स्त्रियोंका मुंडन और वीरासनसे बैठना कर्तव्य नहीं और गौशालामें भी बैठना उचित नहीं चलती हुई गौके पीछे स्त्रीको चलना उचित नहीं ॥ ५५ ॥

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥

अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५६ ॥

राजा अथवा राजाका पुत्र या जिसने बहुत शास्त्र पढ़ें वह ब्राह्मण इनका मुंडन न वताकर केवल प्रायश्चित्त वतादे ॥ ५६ ॥

केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥ द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणैव तु दक्षिणा ॥ ५७ ॥ द्विगुणं चेन्न दत्तं हि केशांश्च परिरक्षयेत् ॥ पापं न क्षीयते हंतुर्दाता च नरकं व्रजेत् ॥ ५८ ॥

बालोंकी रक्षाके निमित्त दुगुना व्रत करावे और दुगुनाव्रत करनेपर दूनीही दक्षिणा दे ॥ ५७ ॥ यदि दूनी दक्षिणाके विनादिसे केशोंकी रक्षा करे तो मारनेवालेका पाप दूर नहीं होता और प्रायश्चित्तका दाता नरकमें जाता है ॥ ५८ ॥

अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ॥ तान्धर्मविघ्नकर्तृश्च राजा दंडेन पीडयेत् ॥ ५९ ॥ न चेत्तान्पीडयेद्राजा कथंचित्काममोहितः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ॥ ६० ॥

जो प्रायश्चित्त वेद और धर्मशास्त्रमें नहीं कहा है यदि उस प्रायश्चित्तको जो पुरुष वतावे तो उस धर्ममें विघ्न करनेवाले पुरुषको राजा दंडसे पीड़ित करे ॥ ५९ ॥ यदि मोहके वश होकर राजा अपनी इच्छासे उसको पीड़ा न दे, तो उस राजाको सौगुना पाप लगता है ॥ ६० ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥

विंशतिं वा वृषं चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥

फिर राजा प्रायश्चित्त करके बीस ब्राह्मणोंको जिमावे, और उन ब्राह्मणोंको बीस गाय और एक बैल दक्षिणामें दे ॥ ६१ ॥

कृमिभिर्ज्वरसंभूतैर्मक्षिकाभिश्च पातितैः ॥ कृच्छ्राद्धं संप्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ६२ ॥ प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ सुवर्णमाषकं दद्यात्ततः शुद्धिर्विधीयते ॥ ६३ ॥

यदि किसी मनुष्यके शरीरमें मक्खनी बैठनेके कारण घावमें कीड़े पड़जाय तो अर्द्ध कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होता है और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणामी दे ॥ ६२ ॥

प्रायश्चित्त कर ब्राह्मणोंको जिमाय एक मासा सुवर्ण देनेसे शुद्धि होता है ॥ ६३ ॥

चंडालश्रपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ॥ न वसन्तत्र रात्रौ तु यः स्नानं
शुद्ध्यति ॥ ६४ ॥ अथ वसेद्यदा रात्रौ अज्ञानादविचक्षणः ॥ तदा तस्य त
तत्प्रापं शतधा परिवर्त्तते ॥ ६५ ॥

यदि रात्रिके समयमें चंडाल अथवा श्रपच छूले तो स्नान करना उचित है; और फिर
वहां रात्रिमें निवास न करै शीघ्र स्नान करै ॥ ६४ ॥ जो मूर्ख अज्ञानतासे रात्रिमें वहां
निवास करले तो वह पाप उसको सौ गुना लगता है ॥ ६५ ॥

उद्वच्छंति हि नक्षत्राण्युपरिष्ठाच्च ये ग्रहाः ॥

संस्पृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदके स्नानमाचरेत् ॥ ६६ ॥

यदि आकाशमें दूटे हुए तारे तथा ग्रहोंकी किरणोंका स्पर्श होजाय तो जलमें स्नान करनेसे
शुद्ध होता है ॥ ६६ ॥

कुड्यांतर्जलवल्मीकमूपिकोत्करचर्मसु ॥

श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः ॥ ६७ ॥

दीवारके भीतरकी, जलके बीचमें की, बमईकी, चुहोंकी खोदी हुई; मार्गमेंकी, श्मशा-
नकी, और शौचसे बचीहुई इन सात स्थानोंकी मट्टीको ग्रहण न करै; अर्थात् यह ग्रहण
करनेके योग्य नहीं है ॥ ६७ ॥

इष्टापूर्तं तु कर्त्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तं मोक्षं समश्नुते ॥ ६८ ॥

इष्ट (यज्ञ आदि) पूर्त (कूप आदि) ब्राह्मणको बड़े यत्नसे करना उचित है; इष्टसे स्वर्ग
की प्राप्ति होतीहै, और पूर्तसे मोक्ष मिलता है ॥ ६८ ॥

वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते ॥

आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥ ६९ ॥

इष्टके भेद अनेक हैं; इष्ट द्रव्यके अनुसार होताहै, और तालाव, विशेष करके बाग और
देवद्रोणी (तीर्थ अथवा प्याऊ) इन्हींको पूर्त कहतेहैं ॥ ६९ ॥

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥

पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ७० ॥

कूप, वावढे, देवमंदिर, तालाव इनके टूटफूट जानेपर जो इनका उद्धार अर्थात् जो इनकी
मरम्मत करताहै, वह भी पूर्तके फलको पाताहै ॥ ७० ॥

शुक्लाया मूत्रं गृहीयात्कृष्णाया गोः शकृत्तथा ॥ ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेतायां
दधि चोच्यते ॥ ७१ ॥ कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् ॥ सर्वतीर्थे
नदीतोये कुशैर्द्रव्यं पृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥ आहत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन
च ॥ प्रणवेन समालोडय प्रणवेन तु संपिबेत् ॥ ७३ ॥ पालाशे मध्यमे पर्णे
भांडे ताम्रमये तथा ॥ पित्रेऽप्युष्करपर्णे वा ताम्रे वा मृन्मये शुभे ॥ ७४ ॥

(पंचगव्यलक्षण) सफेद गायका मूत्र, और काली गायका गोबर, लाल गायका दूध, और सफेद गायका दही ॥ ७१ ॥ और कपिला गायका घी ले, यह पंचगव्य महापातकोंका नाश करताहै, सम्पूर्ण तीर्थोंमें तथा नदीके जलमें गोमूत्र इत्यादि द्रव्योंको पृथक् २ कुशाओंसे ॥ ७२ ॥ छंकारको पढ़कर एकत्रित करै; और छंकारको पढ़कर पीजाय ॥ ७३ ॥ ढाकके बीचके पत्तोंमें वा ताँवेके पात्रमें या कमलके पत्तेमें तथा लाल मिट्टीके पात्रमें उस पंचगव्यका पान करै ॥ ७४ ॥

सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ॥

द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्ध्यति ॥ ७५ ॥

एक सूतकके होतेही यदि दूसरा सूतक होजाय तौ दूसरे सूतकका दोष नहींहै पहलेके साथही वह भी शुद्ध होजाताहै ॥ ७५ ॥

जातेन शुद्ध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा ॥

जन्म सूतकके साथ जन्म सूतककी और मरणसूतकके साथ मरणसूतककी शुद्धि होतीहै;

गर्भे संस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशुद्ध्यति ॥

महीनेके गर्भ पातमें तीन दिनका अशौच होताहै ॥ ७६ ॥ जितने महीनेका गर्भ पतितहो उतनीही रात्रियोंमें उसकी शुद्धि होतीहै;

रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ७७ ॥

और रजस्वला स्त्रीकी शुद्धि रजकी निवृत्ति होनेपर स्नानकरनेसे होतीहै ॥ ७७ ॥

स्वगोत्राद्भयते नारी विवाहात्सप्तमे पदे ॥

स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिंडोदकक्रिया ॥ ७८ ॥

विवाह होजानेपर स्त्री सप्तपदी क्रिये उपरान्त अपने (मातापिताके) गोत्रसे ग होजातीहै, उसका पिंड और जलदान आदि कर्म पतिके गोत्रसे ही करना उचित है ॥ ७८ ॥

द्वे पितुः पिण्डदानं स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामता ॥ षण्णां देयाः पिंडा एवं

दाता न मुह्यति ॥ ७९ ॥ स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुक्ता सदैवतम् ॥

पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥ ८० ॥

पिताको दो पिंड दे प्रत्येक पिंडोंमें दो नाम (सपत्नीक) आतेहैं, छैःको तीन पिंड देवे, इस-भांति करनेसे पिंडोंका दाता मोहित नहीं होताहै ॥ ७९ ॥ माता और पितामही (दादी) और प्रपितामही (परदादी) यह तीनों अपने पतियोंके साथ श्राद्धको भोग-तीहैं ॥ ८० ॥

वर्षेवर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ॥

अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ ८१ ॥

प्रत्येक वर्षमें पिता माताका श्राद्ध करै, देवताके (वैश्वदेवके) विना श्राद्ध जिमावै और एक पिंड देना उचित है ॥ ८१ ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् ॥

पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पंचविधं बुधैः ॥ ८२ ॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध, और पार्वण, यह पांच प्रकारके श्राद्ध पंडितोंको जानना उचित है ॥ ८२ ॥

ग्रहोपरागे संक्रांतौ पर्वोत्सवमहालयोः ॥

निर्वपेन्नीत्ररः पिंडानेकमेव मृतेहनि ॥ ८३ ॥

ग्रहणके दिन, संक्रांतिके दिन, पर्वके दिन, उत्सवमें, महालय (कन्यागतों) में मनुष्यको तीन पिंड दे; और जिसदिन माता पिताकी मृत्यु हुईहो उसदिन एकही पिंड देना उचित है ॥ ८३ ॥

अनूढा न पृथक्कन्या पिंडे गोत्रे च सूतके ॥

पाणिग्रहणमंत्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यते ततः ॥ ८४ ॥

जिस कन्याका विवाह न हुआहो उसका पिंड, गोत्र, सूतक, अलग नहीं है, विवाह होजा-नेपर विवाहके मंत्रोंसे अपने गोत्रसे वह अलग हो जातीहै ॥ ८४ ॥

येनयेन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ॥ तत्समं सूतकं याति तथा पिंडोद-
केपि च ॥ ८५ ॥ विवाहे चैवं संवृत्ते चतुर्थेहनि रात्रिषु ॥ एकत्वं सा ब्रजेद्भर्तुः
पिंडे गोत्रे च सूतके ॥ ८६ ॥

जिस वर्णके पुरुषके साथ कन्याका विवाह हुआहो उसी वर्णके समान सूतक पिंड और जलदान कन्याको मिलताहै ॥ ८५ ॥ विवाहके होजानेपर वह कन्या चौथे दिनके रात्रिमें पिंड, गोत्र, और सूतकमें पतिकी समानताको प्राप्त होजातीहै अर्थात्जिस वर्णके पतिके साथ उसका विवाह हुआहो उसी वर्णके अनुसार उसका पिंडआदिक होताहै ॥ ८६ ॥

प्रथमेद्वि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ॥ अस्थिसंचयनं कार्यं बंधुभिर्हितवु-
द्धिभिः ॥ ८७ ॥ चतुर्थे पंचमे चैव सप्तमे नवमे तथा ॥ अस्थिसंचयनं प्राक्तं
वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ८८ ॥

हितकारी बंधु पहिले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे दिन अस्थियोंका संचय करे (फूल-वीरें) ॥ ८७ ॥ क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रको चौथे, पांचवें, सातवें, और नववेंदिन अस्थिसंचयन करना उचित है ॥ ८८ ॥

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥

मुच्यते प्रेतलोकात्स्वर्गलोके महीयते ॥ ८९ ॥

जिसके मरनेपर ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाताहै. वह प्रेत, प्रेतलोकमें नहीं जाता उसकी पूजा स्वर्गलोकमें होतीहै ॥ ८९ ॥

नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदये नानुचितयेत् ॥ आगच्छंतु मे पितरो गृह्णत्वेता-
ञ्जलंजलीन् ॥ ९० ॥ हस्तौ कृत्वा तु संयुक्तौ परयित्वा जलेन च ॥ गोशृंगमा-
त्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥ ९१ ॥ आकाशे च क्षिपेद्धारि वारिस्थो दक्षि-
णामुखः ॥ पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक्तथैव च ॥ ९२ ॥ आपो देव-
गणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा ॥ तस्मादप्सु जलं देयं पितॄणां हित-
मिच्छता ॥ ९३ ॥

मनुष्य नाभिपर्यन्त जलमें निमग्न होकर इसभांति स्मरण करै कि, मेरे पितर आकर जलकी अंजुलीको ग्रहण करै ॥ ९० ॥ दोनों हाथोंकी अंजुली बना उसमें जलको भर गायकी सींगकी समान ऊपरको हाथ ऊँचा उठाकर जलके बीचमेंही उस अंजुलीके जलको डालदे ॥ ९१ ॥ मनुष्य जलमें खड़े होकर दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकर आकाशकी ओरको जलको फेंके, कारण कि पितरोंका स्थान आकाश और दक्षिण दिशा यह दोनों हैं ॥ ९२ ॥ देवता और पितरोंके गण जलरूपही हैं, इसकारण पितरोंकी इच्छा करनेवाला पुरुष जलमेंही तर्पण करै ॥ ९३ ॥

दिवा सूर्याशुभित्तप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः ॥ संध्योरधुभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९४ ॥ स्वभावयुक्तमव्याप्तममेध्येन सदा शुचि ॥ भांडस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९५ ॥

जल दिनमें तौ सूर्यकी किरणोंके तपनेसे और रात्रिमें नक्षत्र और पवनसे, और सन्ध्याके समय इन दोनोंसे सर्वदा पवित्र रहताहै ॥ ९४ ॥ जिसमें अपवित्र वस्तु न मिलीहों वह स्वाभाविक जल सर्वदा पवित्र है, पात्रका जल अथवा भूमिपरका जलभी सदा पवित्र है ॥ ९५ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलीन् ॥ असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याज्जलांजलीन् ॥ ९६ ॥ श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ॥ उभाभ्यां तर्पणे दद्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

इति यमप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ६ ॥

देवता और पितरोंके निमित्त जलकी अंजुली जलमेंही देनी उचित है; और जो बिना संस्कार हुए मरगये हों उनको स्थलमें देनी उचित है ॥ ९६ ॥ श्राद्ध और होमके समयमें तौ एक हाथसे अंजुली देनी उचित है और तर्पणके समयमें दोनों हाथोंसे अंजुली दे; यह धर्मकी रीति है ॥ ९७ ॥

इति यमस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ।

इति यमस्मृतिः समाप्ता ६.



श्रीः ॥

आपस्तम्बस्मृतिः ७.

भाषाटीकासमेताः ।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ आपस्तम्बं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ॥

दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १ ॥

क्रमानुसार दूषित वर्णों तथा पापियोंके हितके लिये आपस्तम्ब ऋषिके कहेहुए प्रायश्चित्त का निर्णय विशेषतासे करके कहताहूँ ॥ १ ॥

परेषां परिवादेषु निवृत्तमृषिसत्तमम् ॥ विविक्तदेश आसीनमात्मविद्यापरायणम् ॥ २ ॥ अनन्यमनसं शांतं तत्त्वस्थं योगवित्तमम् ॥ आपस्तम्बमृषिं सर्वमेत्य मुनयोब्रुवन् ॥ ३ ॥ भगन्मानवाः सर्वे असन्मार्गे स्थिता यदा ॥ चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥ ४ ॥ यतोऽवश्यं गृहस्थेन गवादिपरिपालनम् ॥ कृषिकर्मादिवपनं द्विजामंत्रणमेव च ॥ ५ ॥ बालानां स्तन्यपानादि कार्यं च परिपालनम् ॥ देयं चानाथकेऽवश्यं विप्रादीनां च भेषजम् ॥ ६ ॥ एवं कृते कथंचित्स्यात्ममादो यद्यकामतः ॥ गवादीनां ततोऽस्माकं भगवन्ब्रूहि निष्कृतिम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मज्ञानमें तत्पर ऋषियोंमें उत्तम एकांतमें बैठे हुए, दूसरोंकी निन्दासे रहित ॥ २ ॥ एकाम मनसे बैठेहुए शांतस्वरूप तत्त्वमें स्थित, और अत्यन्त योगके जाननेवाले आपस्तम्ब ऋषिसे पूर्ण मुनि कहने लगे ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! जिस समय सम्पूर्ण मनुष्य धर्ममें स्थित होकर यदि किसी प्रकारका असत् कार्य करें, तौ आप उनका प्रायश्चित्त कहिये ॥ ४ ॥ जिस कारण गृहस्थीको गौका पालन अवश्य करना, कृषिआदिका कर्म, अन्नका बोना, ब्राह्मणोंको भोजन कराना, अवश्य कर्तव्य है ॥ ५ ॥ बालकोंको दूधःपिलाना, बालकोंका पालन करना, अनाथको धन देना, ब्राह्मण आदिकी औषधी करना इतने कर्म अवश्य करने उचित हैं ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! इस भांति करनेपरमी यदि असावधानीसे गौ आदिका अपराध होजाय तौ उससे उद्धार होनेका प्रायश्चित्त आप हमसे कहिये ॥ ७ ॥

एव तः क्षणं ध्यात्वा प्रणिपाताद्दोषोः ॥

दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तम्बः सुनिश्चितम् ॥ ८ ॥

इस भांति पूछे जानेपर आपस्तम्ब मुनि क्षण काल तक ध्यान करके प्रणामसे नीचेको शिर झुकाये ऋषियोंको देखकर यह निश्चित वचन कहने लगे ॥ ८ ॥

बालानां स्तनपानादिकार्ये दोषो न विद्यते ॥

विपत्तावपि विप्राणामामंत्रणचिकित्सने ॥ ९ ॥

यदि बालकोंको दूध पिलाने समयमें और ब्राह्मणोंको भोजन कराते समयमें तथा उनके औषधी सेवन कराते यमें विपत्ति (मृत्यु) होजाय तौ इसमें कुछ दोष नहीं है ॥ ९ ॥

गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं तृणादिषु ॥ केचिदाहुर्न दोषोत्र स्नेहं लवणभेष-
जे ॥ १० ॥ औषधं लवणं चैव स्नेहं पुष्ट्यर्थभोजनम् ॥ प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं
प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥

यदि गौ आदि तृणादिसे मरजाय तौ उसके प्रायश्चित्तकी विधि कहताहूं, अनेकोंका यह कथन है कि स्नेह, लवण, और औषधीके देनेके समयमें यदि गौ मरजाय तौ इसमें दोष नहीं है ॥ १० ॥ औषधी, लवण, तेल, पुष्टिके लिये भोजन यह प्राणियोंकी प्राणरक्षाके निमित्त है (इस कारण इनके देनेमें यदि कोई मरजाय) तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ११ ॥

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत् ॥

अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥ १२ ॥

परन्तु यह भोजनसे अधिक न दे, परन्तु समयपर दे; यदि अधिक देनेके कारण कोई प्राणी मरजाय तौ उसको कृच्छ्र करना कहाहै ॥ १२ ॥

अहर्निरशनं पादः पादश्चायाचितं व्यहम् ॥ सायं व्यहं तथा पादः पादः प्रातस्त-
था व्यहम् ॥ प्रातः सायं दिनार्द्धं च पादोनं सायं वर्जितम् ॥ १३ ॥ प्रातः पादं
चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ॥ अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य
च ॥ १४ ॥ पादमेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥ योजने पादहीनं च
चरेत्सर्वं निपातने ॥ १५ ॥

तीन दिनतक भोजन न करे, यह पहला पाद है; और तीन दिन तक बिनामांगे जो भोजन मिले उसे खाय, यह दूसरा पाद है; और संध्याको तीन दिनतक न खाय यह तीसरा पाद है; और प्रातःकालमें तीन दिनतक न खाय यह कृच्छ्रका चौथा पादहै, प्रातः-
काल और सायंकालको न खाय, इसे दिनार्द्ध कहतेहैं, और सायंकालको छोडकर केवल दिनमें एकही बार भोजन करे उसे पादोन कहतेहैं ॥ १३ ॥ इस विषयमें शूद्रको प्रातःपाद करना उचित है, और वैश्यको सायंपाद करना चाहिये, क्षत्रिय अयाचित करे, और ब्राह्मणको त्रिरात्र करना कर्तव्य है ॥ १४ ॥ यदि गौ रोकनेके समयमें, या बांध-
नेके समयमें मरजाय तौ एक पाद और दोपाद क्रमसे करे योजन (जोडने वा कांजीहोद आदि में कैदकरने) से पादोन और निपातन (गिराने) में समस्त कृच्छ्र करना उचित है ॥ १५ ॥

घटाभरणदोषेण गोस्तु यत्र विपद्भवेत् ॥ चरेद्वैश्वतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि त-
त् ॥ १६ ॥ दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ॥ स्तंभशृङ्खलपाशैश्च
मृते पादोनमाचरेत् ॥ १७ ॥ पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ॥
निपातयन्ति ये पापास्तेषां सर्वं विधीयते ॥ १८ ॥ प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं
क्षत्रियस्तथा ॥ कृच्छ्रार्द्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ १९ ॥

गौके गलेमें घंटा बांधनेके समयमें गौको विपत्ति होजाय तो दिनार्द्ध कुछ करावे, कारण कि वह भूषणके लिये बांधाथा ॥ १६ ॥ यदि दमन करने, रोकने, योजनके लिये काष्ठघटा (जो लकड़ी गौके गलेमें लटका करतीहै) बांधनेसे घंटा, सांकल, रस्सीके डालनेसे जो गाय मरजाय तो पादोन करै ॥ १७ ॥ जो पापी मनुष्य पत्थर लाठी तथा अन्यान्य शस्त्रोंसे गौको मारताहै उसको सम्पूर्ण कुछ करना कर्तव्य है ॥ १८ ॥ ब्राह्मण सब प्रकारसे प्राजापत्य व्रतको करै, क्षत्रिय एक पादहीन प्राजापत्य व्रत करै वैश्यगण कुछछाढ़े करै, और शूद्र पादकुच्छ करै ॥ १९ ॥

द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ॥

द्वौ मासावेकवेलायां शेषकालं यथारुचि ॥ २० ॥

व्याई हुई गौका दूध उसके बछड़ेको दो महीनेतक पिलावे, और दो महीनेतक केवल दोही स्तनोंका दूध एकही समय दुहै, इसके पीछे अपनी इच्छानुसार दुहै ॥ २० ॥

दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते ॥

सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २१ ॥

व्यानेसे पंद्रह या दश दिनके बीचमेंही गौ मरजाय तो शिखासहित मुंडन कराकर प्राजापत्य करै ॥ २१ ॥

हलमष्टगवं धर्म्यं षड्ववं जीवितार्थिनाम् ॥

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं हि जिघांसिनाम् ॥ २२ ॥

आठ बैलोंका हल जो चलाते हैं, वह धर्मात्मा हैं, और जो छैः बैलोंका हल चलातेहैं, वह अपनी जीविकाके लिये करतेहैं, चार बैलोंका हल कठोरोंके लिये है, और जो दो बैलोंका हल चलाते हैं वह हत्यारे हैं ॥ २२ ॥

अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥

नदीपर्वतसंरोहे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २३ ॥

अधिक बोझ डालनेसे, या अत्यन्त दूहनेके कारण या नासिकाके छेदनसे, नदीमें या पर्वतके चढ़नेपर यदि गौ मृतक होजाय तो पादोन कुछ करै ॥ २३ ॥

न नारिकेलवालाभ्यां न मुंजेन न चर्मणा ॥ एभिर्गास्तु न बध्नीयाद्वद्धा परव-
शो भवेत् ॥ २४ ॥ कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्वृषभं दक्षिणामुखम् ॥

नारियलकी रस्सी, बाल, मूंज, और चमड़ा इनसे गौको न बांधै, कारण कि इनके बांधनेसे गौ पराधीन होजाती है ॥ २४ ॥ परन्तु कुशा और कांसोसे दक्षिण दिशाको मुखकर बैल को बांधै ॥

पादलमाहिदाहेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २५ ॥

पैरमें कंकड़ लगाजाय, सर्पने काटाहो, और जलकर जो गौ मरजाय उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ २५ ॥

व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेपि च ॥

भिषङ्मिथ्योपचारैश्च द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ २६ ॥

घरनेमें और वैद्यकी अन्यथा चिकित्सासे यदि गौ मरजाय तौ गोहत्याका दुगुना प्रायश्चित्त करै ॥ २६ ॥

श्रृंगभंगेऽस्थिभंगे च लांगूलस्य च कर्तने ॥ सप्तरात्रं पिबेद्वज्रं यावत्स्वस्थः पुन-
र्भवेत् ॥ २७ ॥ गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद्विजः ॥ एतद्विमिश्रितं वज्र-
मुत्तं चोशनसा स्वयम् ॥ २८ ॥

जो गायका सींग वा हाड टूटजाय; अथवा गौकी पूंछ कतरी जाय तौ सात रात्रितक वज्रपान करै जबतक गौ चंगी न हो ॥ २७ ॥ द्विज गोमूत्रसे मिलाकर जौ भक्षण करै गोमूत्रसे मिलेहुए जौको उशना ऋषिने “वज्र” नाम कहाहै ॥ २८ ॥

देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु च ॥

एषु गोषु विपन्नास्तु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २९ ॥

तीर्थ, वावडी और प्राचीन मंदिर इन स्थानोंमें यदि गौ मरजाय तौ प्रायश्चित्त नहींहै २९॥

एका कदा तु बहुभिर्देवाद्यापादिता कचित् ॥

पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ३० ॥

यदि किसी समय एक गौको बहुतसे मनुष्य मारें, तौ उन सबको गोहत्याका पाद २ पृथक् २ प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३० ॥

यंत्रणे याश्चिकित्सार्थं सूढगर्भविमोचने ॥

यत्ने कृते विपत्तिश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३१ ॥

गौ बांधने या उसके उदरमेंसे मरेहुए गर्भको निकालनेके समयमें यदि यत्न करनेपरभी मरजाय, तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३१ ॥

सरोभं प्रथमे पादे द्वितीये इमश्रुधारणम् ॥

तृतीये तु शिखा धार्या सशिखं तु निपातने ॥ ३२ ॥

पहले पादके प्रायश्चित्तमें रोमोंको, और द्विपाद प्रायश्चित्तमें डाढीका, और तीसरे पादमें चोटी मात्र रखकर और सब शिरका मुंडन है, गौके भारडालनेवाले पुरुषको शिखासमेत मुंडन कहाहै ॥ ३२ ॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्यच्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥

एवमेव तु नारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सम्पूर्ण केशोंको ऊपरको उभारकर दो दो अंगुल काटदे यह मुंडन स्त्रियोंके केशोंका कहाहै ॥ ३३ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

कारुहस्तगतं पण्यं यच्च पात्राद्विनिःसृतम् ॥ १

स्त्रीवालवृद्धचरितं सर्वमेतच्छुचि स्मृतम् ॥ १ ॥

कारीगरके हाथकी वनाईहुई वस्तु, और जो वस्तु वेचने योग्य हो; और जिसको पात्रसे बाहर निकाल लियाहो, स्त्री, बालक, वृद्ध, इनका आचरण सब शुद्ध है ॥ १ ॥

प्रपात्स्वरण्येषु जलेषु वै गिरौ द्रोण्यां जलं केशविनिःसृतं च ॥

श्वपाकचण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः ॥ २ ॥

प्रपा, (प्याऊ) का जल वनका जल, पर्वतका जल, द्रोणी या मझकका जल, बालोंका नितुड़ता हुआ श्वपाक और चांडालके घरका जो मनुष्य जल पीताहै वह पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥

न दुप्येत्संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुप्यंति कदाचन ॥ ३ ॥

निरन्तर निकलती हुई जलकी धारा, पवनसे उड़ी हुई धूलि, स्त्री, बालक, वृद्ध यह कभी दूषित नहीं होते ॥ ३ ॥

आत्मशय्या च वस्त्रं च जायापत्यं कमंडलुः ॥

आत्मनः शुचीन्येतानि परेषामशुचीनि तु ॥ ४ ॥

अपनी शय्या, अपनी स्त्री, अपने वस्त्र, अपनी सन्तान और अपनेही पात्र पवित्र हैं, दूसरे मनुष्योंके कभी शुद्ध नहीं हैं ॥ ४ ॥

अन्यैस्तु खानिताः कूपास्तडागानि तथैव च ॥

एषु स्नात्वा च पीत्वा च पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

दूसरोंके वनवाचेहुए कूप अथवा तालावादिके जलमें स्नान करनेसे पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५ ॥

उच्छिष्टमशुचित्वं च यच्च विष्ठानुलेपनम् ॥ सर्वं शुद्ध्यति तोयेन तत्तोयं केन

शुद्ध्यति ॥ ६ ॥ सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च ॥ गवां मूत्रपुरीषेण

तत्तोयं तेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

(प्रश्न—) उच्छिष्ट (जूठा) अशुद्धि और जिनमें मल लगाहो इनकी शुद्धि केवल जल-सेही होतीहै, वह जल किसके द्वारा शुद्ध होताहै? ॥ ६ ॥ (उत्तर—) सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे अथवा पवनके संयोगसे पवित्र होताहै, अथवा गोमूत्र और गोबरसे वह जल पवित्र होताहै ॥ ७ ॥

अस्थिचर्मादियुक्तं तु खरश्वानोपदूषितम् ॥

उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ ८ ॥

हड्डी और चमड़ेके पड़नेसे जो जल अपवित्र होगयाहो, या गधे तथा कुत्तेने जिसमें मुह डालकर दूषित कर दियाहो; तौ उस जलको पात्रमें से निकालकर पात्रको भली भाँतिसे माँजें ॥ ८ ॥

कूपो मूत्रपुरीषेण यवनेनापि दूषितः ॥ श्वसृगालखरोष्ठैश्च कन्यादैश्च जुगुप्सितः ॥ ९ ॥ उद्धृत्यैव च ततोयं सप्तपिंडान्समुद्धरेत् ॥ पंचगव्यं मृदा पूतं कूपे तच्छोधनं स्मृतम् ॥ १० ॥

कुएँका जलभी मूत्र, विष्ठा, पडनेसे और यवनके जलभरनेसे तथा कुत्ता, गधा, गीदड, ऊँट और मांस खानेवालोंसे अपवित्र हो जाताहै ॥ ९ ॥ उस कुएँके समस्त जलको निकलवाडाले, पीछे सात मिट्टीके (ढेले) पिंड कुएँमेंसे निकाले; और पंचगव्य तथा पवित्र मिट्टीको कुएँके भीतर डालदे तब वह कुआँ पवित्र होताहै ॥ १० ॥

वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥

कुंभानां शतमुद्धृत्य पंचगव्यं ततः क्षिपेत् ॥ ११ ॥

यदि बावडी, कुएँ, तालाव, यह अपवित्र होजाय; तो सौ घडे जल निकालकर पंचगव्यके डालनेसे इनकी शुद्धि होतीहै ॥ ११ ॥

यच्च कूपात्पिबेतोयं ब्राह्मणः शवदूषितात् ॥ कथं तत्र विशुद्धिः स्यादिति मे संशयो भवेत् ॥ १२ ॥ अक्लिन्नेन च भिन्नेन केवलं शवदूषिते ॥ नीत्वा कूपादहोरात्रं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥ क्लिन्ने भिन्ने श्वे चैव तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् ॥ शुद्धिश्चांद्रायणं तस्य तप्तकृच्छ्रमथापि वा ॥ १४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मुरदेसे स्पर्श हुए दूषित कुएँके जलको पीकर ब्राह्मण किस प्रकारसे शुद्ध होताहै, यह हमें संदेह उत्पन्न हुआहै ॥ १२ ॥ जिस मुरदेका शरीर रुधिरसे भीगा न हो, और जिसका कोई अंगही टूटाहो, ऐसे मुरदेसे दूषितहुएँ कुएँके अशुद्ध जलको पीनेवाला अहोरात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे पवित्र होताहै ॥ १३ ॥ यदि जिस कुएँमें रुधिरसे भीगाहुआ और टूटे फूटे अंगवाला मुरदा पडाहो उस कुएँके जलको पीनेवाला चांद्रायण अथवा तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अंत्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि ॥ तस्य ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥ १ ॥ चांद्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ॥ प्राजापत्यं तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥ २ ॥ यैर्भुक्तं तत्र पक्वान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत् ॥ तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

जिस मनुष्यके घरमें विना जानेहुएँ अंत्यज जातिका मनुष्य निवास करै और कुछ काल पीछे वह जानलिया जाय, और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह उस पर कृपाकर उसे दंड न दें ॥ १ ॥ तौ ब्राह्मणोंको चांद्रायण अथवा पराक व्रत करना उचित है; और शूद्र प्राजापत्य तथा अन्यजातियोंको अपनी २ जातिके अनुसार प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ २ ॥ जिन्होंने

ने वहां पक्काज खायाहो उनको कुछ् व्रत करना उचित है, और वहां पक्काज स्नानवालोंके यहाँ का अन्न जिन्होंने खायाहो उनको कुछ् पाद करावे ॥ ३ ॥

कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शसंसर्गदूषणात् ॥

तेपामेकोपवासेन पंचगव्येन शोधनम् ॥ ४ ॥

यवनके स्पर्शके दोपसे एक कुण्डका जल पीनेसे जो अशुद्ध हैं उनकी शुद्धि एकवार उपवास करने और पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ४ ॥

बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वायुपीडिता ॥

तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ॥ ५ ॥

बालक, वृद्ध, रोगी और वायुकी पीडावाली गर्भवती स्त्री इनको नक्तव्रत बताने, और बालकोंको दो पहरका उपवास कहाई ॥ ५ ॥

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाष्पूनपोडशः ॥

प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ६ ॥

अस्सी वर्षकी अवस्थावाला वृद्ध और सोलह वर्षकी अवस्थासे कम अवस्थाका बालक, रोगी, स्त्री, इन सबका प्रायश्चित्त आधा कहाई ॥ ६ ॥

न्यूनैकादशवर्षस्य पंचवर्षाधिकस्य च ॥ चरेदुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशो-
धनम् ॥ ७ ॥ अथैतैः क्रियमाणेषु येषामार्तिः प्रदृश्यते ॥ शेषसंपादनाच्छु-
द्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ॥ ८ ॥

ग्यारह वर्षसे कम और पांच वर्षसे अधिक अवस्थावाले बालककी शुद्धि गुरु अथवा मित्र करै ॥ ७ ॥ यदि यह बालकही अपना प्रायश्चित्त करै और इस बीचमें इनको कष्ट होजाय तो शेष प्रायश्चित्तको गुरुआदि करले; अथवा जिस भांति इन्हें कष्ट न हो उसी भांति वह अपना प्रायश्चित्त करले ॥ ८ ॥

क्षुधाव्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते ॥

येन रक्षन्ति वक्तारस्तेषां तत्किल्बिषं भवेत् ॥ ९ ॥

प्रायश्चित्तके करनेसे जिन रोगियोंको क्षुधासे पीडा होजाय, अथवा मरनेकी शंका उपस्थित होजाय तो धर्मके उपदेश करनेवाले उनके प्राणोंकी रक्षा नहीं करते अर्थात् उन्हें शक्तिके अनुसार प्रायश्चित्त नहीं बताते तो उस पापके भागी वह उपदेशही करनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥

पूर्णेपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना ॥ अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजा-
त्तमाः ॥ १० ॥ समाप्तमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित् ॥ विप्रसंपादनं
कर्म उत्पन्ने प्राणसंशये ॥ ११ ॥ संपादयन्ति ये विप्राः स्नानं तीर्थफलप्रदम् ॥
सम्पक्कर्तुरपायं स्याद्ब्रती च फलमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

समयका नियम पूरा होजानेपरभी ब्राह्मणोंके बिना उसकी शुद्धि नहीं होती, और कालका नियम बिना पूरा हुएही ब्राह्मण शुद्ध करदेतेहैं, अर्थात् ब्राह्मणोंके वचनमात्रमेंही शुद्धि है ॥ १० ॥

कारण कि जिस समय प्राणसंकट उपस्थित होता है उससमय कर्मका संपादन ब्राह्मणही करसकता है, इसमें तीनों वर्ण (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के विषयमें कभी भी कोई पुरुष किसीके कर्मको समाप्त होगया ऐसा न कहै ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण स्नान और तीर्थके फल देने-वाले कर्मको किसी और की शुद्धिके लिये दूसरों से करवाते हैं, उन भलीभाँतिसे; करनेवालों-को पाप नहीं होता, और ब्रती उसके फलको पाता है ॥ १२ ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

चंडालकूपभांडेषु योऽज्ञानापिबते जलम् ॥ प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णे वर्णे विधीयते ॥ १ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥ तदर्थं तु चरे-
द्रैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २ ॥

(प्रश्न-) चांडालके कुए अथवा उसके बरतनका अज्ञानसे जो मनुष्य जल पीता है उसका प्रायश्चित्त चारों वर्णोंमें किस प्रकारसे कहा है? ॥ १ ॥ (उत्तर-) ब्राह्मण सांतपन व्रत करे क्षत्रिय प्राजापत्य व्रत करे, वैश्य आधा प्राजापत्य करे, और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रत-को करे ॥ २ ॥

भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥ प्रमादात्स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुर्या-
द्रिशोधनम् ॥ ३ ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ जपंस्त्रिरात्रमन-
शनपंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

भोजन करनेके पीछे बिना आचमन किये यदि उच्छिष्ट अवस्थामें अज्ञानतासे वा श्वपचको छूले तौ उसको प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३ ॥ आठहजारवार गायत्रीका जप करै या एकसौवार द्रुपदामंत्रको जपकर तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥

चंडालेन यदा स्पृष्टो विण्मूत्रे कुरुते द्विजः ॥

प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥ ५ ॥

यदि ब्राह्मणको विष्टा और मूत्र करनेके पीछे चांडाल छूले तौ वह ब्राह्मण तीन रात्रितक उपवास करै, और भोजन करनेके उपरान्त उच्छिष्टको छूले तौ छै; रात्रितक उपवास करै ॥ ५ ॥

पाने मैथुनसंपर्के तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ संपर्के यदि गच्छेतु उर्द्वक्या चांत्यजै-
स्तथा ॥ एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ६ ॥ भोजने च त्रिरात्रं
स्यात्पाने तु त्र्यहमेव च ॥ मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ७ ॥
दिनमेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम् ॥ एकाहं तत्र निर्दिष्टं दंतधावन-
भक्षणे ॥ ८ ॥

(प्रश्न-) यदि ऋतुमती स्त्री, अंत्यजके साथ जलपान, मैथुन, मूत्र, विष्टा इनका स्पर्श हो जाय अथवा यह छूले तौ इनका श्चित्त किसप्रकारसे होता है? ॥ ६ ॥ (उत्तर-)

इनके यहाँका अन्न भोजन करनेमें तीन रात्रि उपवास करना कतव्य है और जलका पीने नाला तीन दिन उपवास करे, मथुनके समयमें स्पर्श होनेपर पाद छुछ करे इसी मोति विष्टा मूत्र करनेके समयमें ॥ ७ ॥ क्रमसे एक दिन और तीन दिन उपवास कहा है, इतान करनेमें एक दिन उपवास करे ॥ ८ ॥

वृक्षारूढे तु चंडाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति ॥ फलानि भक्षयस्तस्य कथं शुद्धिं विनिदिशेत् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ एकरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥

(प्रश्न-) जिस वृक्षके ऊपर यदि चंडाल चढ़ा हो उसी वृक्षके ऊपर ब्राह्मण चढ़कर फल खा ले तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे कहा है? ॥ ९ ॥ (उत्तर-) ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर बखोंसहित स्नान करे और एक रात्रि उपवास करके, पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ १० ॥

येन केनचिदुच्छिष्टोऽप्यमेध्यं स्पृशति द्विजः ॥
अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट अवस्थामें किसी अपवित्र वस्तुको छू ले तो अहोरात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ११ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे मापाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

चंडालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन ॥ अनभ्युक्ष्य पिबेत्तोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥ ब्राह्मणस्य त्रिरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ क्षत्रियस्य द्विरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥ अहोरात्रं तु वैश्यस्य पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

(प्रश्न-) यदि कदाचित् ब्राह्मण चंडालको छूकर बिना स्नान किये हो जल पीले तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होता है? ॥ १ ॥ (उत्तर-) ब्राह्मण तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होते हैं, क्षत्री दो दिनतक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होते हैं ॥ २ ॥ और वैश्यगण अहोरात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होते हैं ॥

चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ३ ॥ व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते ॥ पंचगव्यं न दातव्यं तस्य भद्रविर्वर्जनात् ॥ व्यापयित्वा द्विजानां तु शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

(प्रश्न-) चौथे वर्ण (शूद्र) का प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होता है? ॥ ३ ॥ कारण कि शूद्रजातिको व्रत नहीं, होम नहीं, तप नहीं, पंचगव्यभी नहीं दिया जासकता, कारण कि शूद्रकी वेदका अधिकार नहीं है, (उत्तर-) परन्तु शूद्र अपने अपराधको ब्राह्मणोंसे कहकर यथाशक्ति दान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ४ ॥

णोस्य यदोच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥ अहोरात्रं तु गायत्र्या जपं कृत्वा
विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥ उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुंक्ते ज्ञानाद्विजो यदि ॥ शंखपुष्पी-
पयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६ ॥

यदि ब्राह्मणने अज्ञानतासे ब्राह्मणकी उच्छिष्टको खालिया है वह अहोरात्र उपवास
करनेके पीछे गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होता है ॥ ५ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानतासे वैश्यकी
उच्छिष्टको खाले तो त्रिरात्रि उपवास कर शंखपुष्पी (औषधी विशेष) के जलको पीकर
शुद्ध होता है ॥ ६ ॥

ब्राह्मण्या सह योऽग्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ॥

न तत्र दोषं मन्यते नित्यमेव मनीषिणः ॥ ७ ॥

ब्राह्मण कदाचित् अपनी ब्राह्मणीके साथ भोजन करले, तो विद्वान् मनुष्य उसमें दोष
नहीं मानते ॥ ७ ॥

उच्छिष्टमितरस्त्रीणामग्नीयात्पृशतेऽपि वा ॥

प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानंगिराब्रवीत् ॥ ८ ॥

ब्राह्मणीके अतिरिक्त किसी अन्यजातिकी स्त्रियोंकी उच्छिष्ट खाने अथवा छूनेवालेको
प्राजापत्य व्रतसे शुद्धि होती है यह भगवान् (षड्विध ऐश्वर्यवाले) अंगिरा ऋषिने कहा है ॥ ८ ॥

अंत्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥

चांद्रायणं तदर्धार्थं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥ ९ ॥

अंत्यजोंके भोजनसे बचेहुए अन्नको जो ब्राह्मण भोजन करता है वह चांद्रायणका एक
पाद व्रत करै अर्द्धकृच्छ्र, पादकृच्छ्र, क्षत्रिय वैश्यादि क्रमानुसार करै ॥ ९ ॥

विष्णूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

श्वकाकोच्छिष्टगोभिश्च प्राजापत्याविधिः स्मृतः ॥ १० ॥

विष्ठा और मूत्रके भक्षण करनेवाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ्र करै, कुत्ता, काक और गौकी
उच्छिष्टका भोजन करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्य व्रतको करै ॥ १० ॥

उच्छिष्टं स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः ॥ शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभांडं
तथैव च ॥ ११ ॥ पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यद्यमेध्यं कदाचन ॥ अहोरात्रोषितो
भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण अज्ञानसे कुत्ते, मुरगे, शूद्र, मदिराके पात्र ॥ ११ ॥ और जिसपर
पक्षी बैठा हो ऐसी अपवित्र वस्तुको छूले तो अहोरात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे उस
की शुद्धि होती है ॥ १२ ॥

वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥

स्नानं जप्यं च त्रैकाल्यं दिनस्यांते विशुद्ध्यति ॥ १३ ॥

ब्राह्मणको यदि कोई उच्छिष्ट वैश्य छूले, तो त्रिकाल स्नान करके गायत्री मंत्रका जप
करै, इस प्रायश्चित्तसे एकदिनके अन्तमें शुद्ध होता है ॥ १३ ॥

विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छेद्येन कदाचन ॥

ज्ञानाति च विशुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ १४ ॥

इत्यापस्तम्बीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यदि ब्राह्मणको अन्य उच्छिद्य ब्राह्मण छूले तो ज्ञानके अन्तमें उसकी शुद्धि होती है वह आपस्तम्बमुनिका वचन है ॥ १४ ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पष्ठोऽध्यायः ६.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य यो विधिः ॥ स्त्रीणां क्रीडार्थसंभोगे शयनीयेन दुष्यति ॥ १ ॥ पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने ॥ पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥ ज्ञानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ पंचयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात् ॥ ३ ॥ नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणेणेषु धारयेत् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥ रोमकूपैर्यदा गच्छेद्दसो नील्यास्तु कर्हिचित् ॥ पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥ नीलीदारु यदा भिद्याद्ब्राह्मणस्य शरीरकम् ॥ शोणितं दृश्यते तत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ६ ॥ नीलीमध्ये यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणः कचित् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ॥ अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ८ ॥ भक्षयेद्यश्च नीलीं तु प्रमादाद्ब्राह्मणः कचित् ॥ चांद्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ९ ॥ यावत्या वापिता नीली तावती वाशुचिर्मही ॥ प्रमाणं द्वादशावदानि अत ऊर्ध्वं शुचिर्मवेत् ॥ १० ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इसके पीछे नीले वस्त्रके धारणकरनेकी विधि कहता हूँ, स्त्रियोंकी क्रीडाके समय, संभोगके समय और शय्याके ऊपर नीले वस्त्रका दोष नहीं है ॥ १ ॥ जो ब्राह्मण नीलको पाळता है, जो बेचता है और जो उससे अपनी जीविका निर्वाह करता है वह पतित होता है, इस कारण तीन कृच्छ्र व्रत करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ २ ॥ जो नीले रंगके वस्त्रको धारण कर स्नान, दान, तपस्या, होम, वेदका पाठ, पितरोंका तर्पण और पंचयज्ञ करता है उसका वह सब निष्फल होजाता है ॥ ३ ॥ यदि ब्राह्मण नीले रंगे हुये वस्त्रोंको शरीरपर धारण करे तो अहोरात्रि उपवास करनेके पीछे पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ यदि ब्राह्मणके रोमोंसे नीलका रंग जाकर शरीरमें पहुंचजाय तो ब्राह्मण पतित होता है, तब तीन कृच्छ्र व्रतके करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ५ ॥ यदि नीलके काष्ठसे ब्राह्मणके शरीरमें घाव होजाय और उसे घावसे रक्त निकलने लगे तो चान्द्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ ६ ॥ यदि ब्राह्मण अज्ञानसे नीलके स्वेतमें चलाजाय तो अहोरात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध

होताहै ॥ ७ ॥ जो नीले व ो पहनकर अन्न परोसताहै वह खाने योग्य नहीं है, जो ब्राह्मण उसे भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ८ ॥ यदि ब्राह्मण नसे नीलको खाजाय तौ चांद्रायण व्रत करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै, यह आपस्तंब मुनिका वचन है, ॥ ९ ॥ जहांतक पृथ्वीमें नील बोयागयाहो: वहांतककी पृथ्वी बारह वर्षतक अशुद्ध रहतीहै इसके पीछे शुद्ध होजातीहै ॥ १० ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

समोऽध्यायः ७.

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेहनि शस्यते ॥

वृत्ते रजसि गम्या स्त्री नानिवृत्ते कथंचन ॥ १ ॥

रजस्वला स्त्रीको चौथे दिन स्नान करना श्रेष्ठ है, स्त्रियें रजनिवृत्ति होनेपर स्वामीके साथ संभोग करने योग्य होतीहैं, विना रजकी निवृत्ति हुए नहीं होती ॥ १ ॥

रोगेण यद्रजः ॥ १ ॥ णामत्पर्यं हि प्रवर्तते ॥ अशुद्धास्तास्तु नैवेह तासां वैकारिको मदः ॥ २ ॥ साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते ॥ वृत्ते रजसि साध्वी स्याद्दृहकर्मणि चेंद्रिये ॥ ३ ॥ प्रथमेहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेहनि शुद्धंयति ॥ ४ ॥

यदि किसी रोगसे स्त्रियोंके रजकी निवृत्ति न हो तौ उस रजसे स्त्रियें अशुद्ध नहीं होतीं कारण कि उनका वह रज विकारयुक्त है ॥ २ ॥ जबतक रज रहै तब तक उत्तम आचरण (पूजा आदिक) न करै; कारण कि रजकी निवृत्ति होनेपर ही स्त्रियें घरके काम काज करने और पतिके संग करने योग्य होतीहैं ॥ ३ ॥ ऋतुमती होनेके पहले दिन स्त्री चांडालिनीकी समान है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन धोवन, और चौथे दिनमें पवित्र होती है ॥ ४ ॥

अंत्यजातिश्वपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ॥ अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥ त्रिरात्रमुपवासः स्यात्पंचगव्यं विशोधनम् ॥ निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकरां च कामयेत् ॥ ६ ॥ रजस्वलांत्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचेन च ॥ त्रिरात्रौपोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ प्रथमेहनि षड्रात्रं द्वितीये तु त्र्यहस्तथा ॥ तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥ ८ ॥

यदि रजस्वला स्त्रीको अंत्यज और श्वपाक छूले, तौ रजोदर्शनके दिनको विताकर प्रायश्चित्त करै ॥ ५ ॥ तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै फिर शुद्ध होनेकी रात्रिमें पुरुषका संसर्ग करै ॥ ६ ॥ कुत्ता, अंत्यज और श्वपच यदि रजस्वला स्त्रीको छूले तौ उसकी शुद्धि तीन रात्रितक उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे होतीहै ॥ ७ ॥ यदि रजोदर्शनके पहलेही दिन अंत्यज आदि छूलें तौ छै: रात्रि और दूसरे दिन छूलें तौ तीन दिनतक और तीसरे दिन छूलें तौ एक दिन उपवास करे, और चौथे दिन छूले तौ अभिके देखनेसेही उसकी शुद्धि होती है ॥ ८ ॥

विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा ॥ रजस्वला भवेत्कन्या संस्कारस्तु
कथं भवेत् ॥ ९ ॥ स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलंकृताम् ॥ पुनर्मध्या-
हुतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥ १० ॥

(प्रश्न-) विवाहके समयमें यज्ञ (होम) होताहो और कुछ संस्कार भी होचुका हो
इसी अवसरमें यदि कन्या अतुमती होजाय तौ शेष संस्कार किस भांति हो ॥ ९ ॥
(उत्तर-) उस कन्याका स्नान कराकर उसी समय अन्य वस्त्रोंसे शोभायमान करे और
पीछे पवित्र आहुति देकर शेष कर्मको करे ॥ १० ॥

रजस्वला तु संस्पृष्टा पुवकुक्कुटवायसैः ॥

सा त्रिरात्रोपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको वानर, मुरगा, कौआ छूले तौ वह त्रिरात्र उपवास कर पंचगव्यके
पीनेसे शुद्ध होती है ॥ ११ ॥

रजस्वला तु या नारी अन्योन्यं स्पृशते यदि ॥

तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि परस्परमें दो रजस्वला स्त्री छूले तौ शुद्धिके दिनतक उपवासी रहें और पीछे स्नान
करनेसे शुद्ध होतीहैं ॥ १२ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥

कृच्छ्रेण शुद्ध्यते विप्रः शूद्री दानेन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥

कदाचित् उच्छिष्ट पुरुष रजस्वला स्त्रीको छूले तौ ब्राह्मणी कृच्छ्रे करनेसे और शूद्र-
जातिकी स्त्री केवल दान करनेसेही शुद्ध होजातीहै ॥ १३ ॥

एकशाखां समारूढश्चंडालो वा रजस्वला ॥

ब्राह्मणश्च समं तत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १४ ॥

एकही वृक्षकी शाखाके ऊपर चांडाल, रजस्वला, और ब्राह्मण बैठेहों तौ यह तीनों एक-
वार वस्त्रोंसहित स्नान करें ॥ १४ ॥

रजस्वलायाः संस्पर्शः कथंचिज्जायते शुना ॥ रजोदिनानां यच्छेषं तदुपोष्य
विशुद्ध्यति ॥ १५ ॥ अशक्ता चोपवासेन स्नानं पश्चात्समाचरेत् ॥ तथाप्यशक्ता
चैकेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥

यदि किसी भांतिसे रजस्वला स्त्रीको कुत्ता छूजाय तौ रजके शेष दिनोंमें उपवास करनेसे
ही वह शुद्ध होतीहै ॥ १५ ॥ सामर्थ्यके न होनेपर एक उपवास कर स्नान करने और
सामर्थ्यवान् होनेपर एक उपवास और पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १६ ॥

उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम् ॥

मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत्कृच्छ्रं तदर्धं तु रजस्वलाम् ॥ १७ ॥

यदि मंदिरा, तथा रजस्वला स्त्रीको उच्छिष्ट ब्राह्मण छूले तौ वह क्रमानुसार कृच्छ्र आ-
र्ध कृच्छ्र व्रत करे ॥ १७ ॥

उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ॥

कृच्छ्राद्धं तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ १८ ॥

यदि उच्छिष्ट ब्राह्मण ऐसी रजस्वला को छूले जिसके बालक उत्पन्न हुआ हो तो ब्राह्मण कृच्छ्राद्ध करे, कारण कि प्रायश्चित्तसे ही शुद्धि होती है ॥ १८ ॥

चंडालः श्वपचो वापि आत्रेयीं स्पृशते यदि ॥

शोषाद्वा फालकृष्टेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥

चंडाल, श्वपच, रजस्वला को छूले तो रजोदर्शनके शेष दिनमें पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होती है ॥ १९ ॥

उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि ॥ अहोरात्रोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २० ॥ एवं तु क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणी चेद्रजस्वला ॥ सचैलं प्लवनं कृत्वा दिनस्यान्ते घृतं पिवेत् ॥ २१ ॥

रजस्वला ब्राह्मणी यदि शूद्रकी रजस्वला स्त्रीको छूले तो अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ २० ॥ ब्राह्मणी रजस्वला स्त्रीको क्षत्रिय अथवा वैश्यकी स्त्री छूले तो वस्त्रोंसहित स्नानकर एक दिन उपवास कर संध्याको घीका भोजन करे ॥ २१ ॥

सवर्णेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ॥

एवमेव विशुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २२ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अपने वर्णकी रजस्वला स्त्रीके छूजानेसे स्नानकरनेसेही उसकी शुद्धि होती है यह आपस्तंब मुनिने कहा है ॥ २२ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यज्ञ लिप्यते ॥ सुराविष्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्ध्यते ताप-
लेखनैः ॥ १ ॥ गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥ दश भस्मानि
शुद्ध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ॥ २ ॥

कांसीके पात्र अशुद्ध होजानेपर वह भस्मके मांजनेसे ही शुद्ध होजाता है, मदिरासे अशुद्ध हुआ पात्र भस्मसे शुद्ध नहीं होता, मदिरा और विष्टा मूत्रसे अशुद्ध हुआ पात्र अग्निमें तपाने और रितवानेसे शुद्ध होता है ॥ १ ॥ गौके सूंघे, और शूद्रके झूठे और कुत्ते या कौएने जिसमें गुंह डाला हो यह अपवित्र कांसीके पात्र दश बार भस्मके मांजनेसे शुद्ध होजाते हैं ॥ २ ॥

शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूर्यदुरश्मिभिः ॥ रेतःस्पृष्टं श्वस्पृष्टमाविकं तु प्रदु-
प्यति ॥ अद्रिमृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

सुवर्ण आर स्त्रीकी शुद्धि वायु सूर्य और चंद्रमाकी किरणोंसे होती है और शुक्र तथा श्वके स्पर्श होजानेसे जो वस्त्र अशुद्ध होगया है उसकी शुद्धि जल रेत और मट्टीके मांजने धोनेसे होती है ॥ ३ ॥

शुष्कमन्नमवेद्यस्य पंचरात्रेण जीर्यति ॥ अन्नं व्यंजनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्यति ॥ ४ ॥ पयस्तु दधि मासेन पण्मासेन घृतं तथा ॥ संवत्सरेण तैलं तु कोष्ठे जीर्यति वा नवा ॥ ५ ॥

शूद्रके यहांका सूखा अन्न पांच दिनमें पचताहै; और व्यंजनसहित अन्न पंद्रह दिनमें पचताहै ॥ ४ ॥ दूध और दही एक महीनेमें पचताहै, तेल एक वर्षमें पचे या नभी पचे इस बातका निश्चय नहीं है ॥ ५ ॥

भुंजते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं जायते ते : मृताः शुनि ॥ ६ ॥ शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ७ ॥ आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते ॥ तथा तस्य प्रणश्यति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽमयः ॥ ८ ॥ शूद्रात्रेण तु भुक्तेन मैथुनं योधिगच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य संभवः ॥ ९ ॥ शूद्रात्रेणोदरस्थेन यः कश्चिन्निजयते द्विजः ॥ स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण एक महीनेतक घरावर शूद्रके यहांके अन्नको खातेहैं, वह इस जन्ममेंही शूद्र होजातेहैं, और मरनेके पीछे उनको कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ६ ॥ शूद्रके यहांका अन्न भोजन, शूद्रके साथ एक आसन पर बैठना, शूद्रसे विद्या पढ़ना, यह सम्पूर्ण कार्य तेजस्वी पुरुषको भी पतित करतेहैं ॥ ७ ॥ जो ब्राह्मण नित्य होमके लिये अग्नि स्थापन करताहै, वह यदि शूद्रके यहां अन्न भोजन करना न छोड़ें तौ उसकी आत्मा वेद और तीनों अग्नि नष्ट होजातीहै ॥ ८ ॥ शूद्रके अन्नको भोजन कर जो स्त्रीसंगकर उसमें पुत्रादि उत्पन्न करताहै वह पुत्र शूद्रके ही हैं, कारण कि अन्नसे ही शुक्र उत्पन्न होताहै ॥ ९ ॥ शूद्रका अन्न पेटमें रहतेहुए जो ब्राह्मण मरजाताहै, वह उस जन्ममें गाँवका सूकर होताहै, अथवा उस शूद्रकेही कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ॥

वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोंका अन्न सर्वदा भोजन करनेयोग्य है; पर्वके समयमें क्षत्रियोंका अन्न भोजनकर यज्ञकर्ममें दीक्षित होनेपर वैश्यका अन्न भोजनकरै; और शूद्रका अन्न किसी समयमें भोजन करना उचित नहीं ॥ ११ ॥

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतम् ॥ वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ १२ ॥ वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥ अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यञ्जुःसामसंस्कृतम् ॥ १३ ॥ व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छलवर्जितम् ॥ क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पालनम् ॥ १४ ॥ स्वकर्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्यशक्तिः ॥ खल्यज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नं तेन संस्कृतम् ॥ १५ ॥ अज्ञानतिमिरांधस्य मद्यपानरतस्य च ॥ रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमंत्रविवर्जितम् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है, क्षत्रियका अन्न दूधकी समान है; वैश्यका अन्न अन्न है, और शूद्रका अन्न रुधिरकी समान है ॥ १२ ॥ वैश्वदेवके निमित्त दान, होम, देवताओंकी पूजा और जपसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मंत्रोंसे, शुद्धहुआ ब्राह्मणका अन्न अमृतकी समान है ॥ १३ ॥ व्यवहारके अनुकूल धर्मसे छलनारहित क्षत्रियका अन्न प्राणियोंका न करताहै, इस निमित्त क्षत्रियका अन्न दूधकी समान है ॥ १४ ॥ अपनी शक्तिके अनुसार अपने कर्मसे पशुओंकी रक्षासे और खरियानके आतिथ्यसे शुद्धिको प्राप्तहुआ वैश्यका अन्न अन्नही है ॥ १५ ॥ अज्ञानरूपी अंधकारसे अंधेहुए और मदिरा पीनेमें तत्परः शूद्रोंका अन्न विधि और मंत्रोंसे रहित है इसी कारण उसको रुधिरकी समान जानें ॥ १६ ॥

आममांसं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ॥

गुडस्तर्कं रसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥ १७ ॥

कच्चा मांस, सहत, घी, अन्न और दूध, गुड, मट्ठा, रस, यह सब वस्तुएं शूद्रके घरकी होनेपर भी मनुष्यको लेलेनेमें दोष नहींहैं ॥ १७ ॥

शाकं मांसं मृणालानि तुंबुरुः सक्तवस्तिलाः ॥

रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या द्विः सर्वतः ॥ १८ ॥

शाक (तरकारी) मांस, कमलकी बिस, तुंबी, सत्तू, तिल, रस, फल, पिण्याक (खल वा अंडके फल) यह सम्पूर्ण द्रव्य सब जातियोंसे लेने योग्य हैं ॥ १८ ॥

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ॥

मनस्तापेन शुद्धयेत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ १९ ॥

विपत्तिके आजानेपर भी यदि ब्राह्मण शूद्रके यहांका अन्न भोजन करताहै तो उसकी शुद्धि मनके पश्चात्तापसे तथा सौ बार "द्रुपदा" मंत्रके जपनेसे होतीहै ॥ १९ ॥

द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित् ॥

तद्विज्ञेन न भोक्तव्यमापस्तंबोऽर्धवीन्मुनिः ॥ २० ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

यदि ब्राह्मणके हाथमें किसी द्रव्यके स्थित होनेपर उच्छिष्ट शूद्र उस ब्राह्मणको छूले तो वह वस्तु ब्राह्मण न खाय, यह आपस्तंब मुनिका वचन है ॥ २० ॥

इति आपस्तम्बीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

भुंजानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ॥ उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥ पूर्वं शौचं तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥ अशित्वा सर्वमेवात्रमकृत्वा शौचमात्मनः ॥ मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ प्रसृतं यवसस्येन पलमेकं तु सर्पिषा ॥ पलानि पंच गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥ ४ ॥

(प्रश्न) कदाचित् ब्राह्मणके भोजन करते समयमें अघोवायु अथवा मलत्याग होजाय तो उच्छिष्ट अवस्थामें उस अशुद्ध ब्राह्मणका प्रायश्चित्त किस प्रकारसे होगा? ॥ १ ॥ (उत्तर) प्रथम शौच करके पीछे आचमन करे, इसके अनन्तर अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ २ ॥ देहको बिना शुद्ध किये यदि अज्ञानतासे जिसने समस्त भोजन खालियाहो तो वह तीन रात्रि जोको पीकर मलीभांति शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ एक प्रसूति जो एक पल (टके भर) धी, पांच पल गोमूत्र, इन सबको मिलाकर पीसकताहै इससे अधिक नहीं ॥ ४ ॥

अले । नामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे ॥ रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ५ ॥ पद्मोद्वरवित्वाश्च कुशाश्च सपलाशकाः ॥ एतेषामुदकं पीत्वा षड्रात्रेण विशुद्ध्यति ॥ ६ ॥ ये प्रत्यवसिता विमाः प्रव्रज्यामिजलादिषु ॥ अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं विकीर्षिताः ॥ ७ ॥ चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि वा ॥ जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनः संस्कारभागिनः ॥ तेषां सातपनं कृच्छ्रं चांद्रायणमथापि वा ॥ ८ ॥

(प्रश्न) भक्षणके, चाटनेके, पीनेके, और खानेके अयोग्य वीर्य, मूत्र, विष्टा इनके भक्षण करनेपर किस प्रकार प्रायश्चित्त होताहै? ॥ ५ ॥ (उत्तर) गूडर, वेळ, कुशा, ढाक, इनके जलको छे: रात्रितक पीकर शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥ जो ब्राह्मण गृहस्थ धर्मको त्यागकर संन्यास धर्मका आश्रय कर आग्नि और तर्पणको देहत्याग करनेकी इच्छासे उनसे निवृत्त होकर फिर गृहस्थ धर्ममें रहना चाहतेहैं ॥ ७ ॥ वह ब्राह्मण तीन कृच्छ्र व्रत अथवा तीन चांद्रायण व्रत करें, और जातकर्मसे लेकर उनका संस्कार फिर कराना उचित है अथवा उनको सातपन कृच्छ्र तथा चांद्रायण व्रत कराना चाहिये ॥ ८ ॥

यद्विष्टितं काकवलाकयोर्वा अमेघ्यालितं च भवेच्छरीरम् ॥

श्रोत्रे मुखे च प्रविशेच्च सम्यक्क्षानेन लेपोपहतस्य शुद्धिः ॥ ९ ॥

जिसका शरीर कौप, वगलेसे युक्त हो अथवा जो विष्टासे लिप्तहो, कान या मुखमें अशुद्ध वस्तुने प्रवेश कियाहो और जिसके शरीरमें अपवित्र वस्तु लगी हो उसकी मली भांति स्नान करनेसे शुद्धि होतीहै ॥ ९ ॥

ऊर्ध्व नाभेः करौ मुक्ता यदंगमुपहन्यते ॥

ऊर्ध्व स्नानमधः शौचमात्रेणैव विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

हाथोंके अतिरिक्त नाभिसे ऊपर जो अशुद्ध वस्तु शरीर पर लगजाय, तो ऊपरके भागमें हो तो स्नान करनेसे और नाभिसे नीचे अंगमें हो तो शौचसे ही शुद्धि हो जाती है ॥ १० ॥

उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते मुखम् ॥

मृत्तिकाशोधनं स्नानं पंचगव्यं विशोधनम् ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यके मुखमें जूते अथवा किसी अपवित्र वस्तुका स्पर्शहोजाय तो वह मनुष्य शरीरपर मट्टी मलकर स्नान करने और पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ११ ॥

दशाहाच्छुध्यते विप्रो जन्महानो स्वयोनिषु ॥

षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविदूशूद्रयोनिषु ॥ १२ ॥

ब्राह्मण अपनी जातिके जन्म मरणके अशौचमें दश दिनमें शुद्ध होताहै; और क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रजातियोंमें क्रमानुसार अशौच छैः दिन, तीन दिन, और एक दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम् ॥

अपीतवत्समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥ १३ ॥

भोजनके निमित्त, भोजन करनेवालेके निर्मित्त जो अन्न रक्खाजाताहै, यदि उस अन्नको खानेवाला न खाकर वैसेही छोड़दे तौ वह अन्न मृतकके अन्नको समान है ॥ १३ ॥

अन्ने भोजनसंपन्ने माक्षिकाकेशदूषिते ॥

अनंतरं स्पृशेदापस्तच्चात्र भस्मना स्पृशेत् ॥ १४ ॥

यदि भोजनके लिये घनायेहुए अन्नपर मक्खी पड़जाय या बाल पड़जाय तौ जलसे आचमन करके उस अन्नमें भस्म डालदे ॥ १४ ॥

शुष्कमांसमयं चान्नं शूद्रान्नं वाप्यकामतः ।

भुक्ता कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ १५ ॥

सूखा मांस अथवा बढई और शूद्रके यहांके अन्नको जो ब्राह्मण अज्ञानतासे खालेताहै वह एक कृच्छ्र करे, और जिसने जानकर खायाहो वह तीन कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै १५॥

अभुक्तो मुच्यते यश्च भुक्तो यश्चापि मुच्यते ॥ भोक्ता च मोचकश्चैव पश्चाद्-
रति दुष्कृतम् ॥ १६ ॥ यस्तु भुंजति भुक्तं वा दुष्टं वापि विशेषतः ॥ अहो-
रात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

जो मनुष्य बिना खायेही अथवा भोजन करके उठजाय, उस स्थानपर जो भोजन करताहै और जो भोजन करताहै वह दोनों मनुष्य पापके भागी होतेहैं ॥ १६ ॥ जो मनुष्य खाईहुई वस्तुको भोजन करताहै वह अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

उदके चोदकस्यस्तु स्थलस्यश्च स्थले शुचिः ॥ पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्यो-
भयतः शुचिः ॥ १८ ॥ उत्तीर्याचामेदुदकादवतीर्य उपस्पृशेत् ॥ एवं तु श्रेयसा
युक्तो वरुणेनाभिपूज्यते ॥ १९ ॥

जल और स्थलमें बैठाहुआ पुरुष शुद्ध है, और दोनों स्थानोंपर बैठाहुआ पुरुष दोनों स्थानोंपर पैर रखकर आचमन करनेसे ही शुद्ध होताहै ॥ १८ ॥ जलमें यदि पैर रक्खाहो तौ किनारा पर पैर निकालकर आचमन करे, ऐसे कल्याणकारी पुरुषकी पूजा वरुणभी करतेहैं ॥ १९ ॥

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥

स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥ २० ॥

अग्निशाला, गोशाला और ब्राह्मणोंके निकट, वेद पढ़नेके समय और भोजनके समयमें खड़ाऊंओंका त्याग करदे ॥ २० ॥

जन्मप्रभृति संस्कारे स्मशानांते च भोजनम् ॥

असपिंडैर्न कर्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥ २१ ॥

जन्मआदि संस्कारोंमें, या प्रेतकार्यमें विशेष करके चूडाकर्मके समयमें, असपिंड ब्राह्मण भोजन न करे ॥ २१ ॥

याजकान्नं नवश्राद्धं संग्रहे चैव भोजनम् ॥

स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्ता चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥

यज्ञ करानेवालेका अन्न, नवश्राद्ध संग्रहमें भोजन [जो मरनेपर ग्यारहवें दिन होताहै] और जो स्त्रियोंके पहले गर्भाधानमें भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतको करे ॥ २२ ॥

ब्रह्मौदनेवसाने च सीमंतोन्नयने तथा ॥

अन्नश्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्ता चांद्रायणं चरेत् ॥ २३ ॥

ब्रह्मौदन (जो भात यज्ञोपवीतके समयमें होताहै) अवसान (जिस समय ब्राह्मण भोजन करचुकेहैं) और सीमंतोन्नयन, अन्नका श्राद्ध, मरनेका श्राद्ध, इनमें जो मनुष्य भोजन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २३ ॥

अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्रियादेव तद्गृहे ॥

अथ भुंजीत मोहाद्यः पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ २४ ॥

जिस स्त्रीके सन्तान न होती हो उसके घर भोजन न करे, इन स्त्रियोंके घरमें अज्ञानसे जो मनुष्य खाताहै, वह मनुष्य पूय नामक नरकमें जाताहै ॥ २४ ॥

अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ॥

रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते ॥ २५ ॥

जो पिता कुछ भी धन लेकर कन्याको दान करताहै वह मनुष्य बहुत वर्षोंतक रौरव नरकमें निवास करके विष्टा मूत्रको खाता रहताहै ॥ २५ ॥

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवंति बांधवाः ॥

स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यांत्यधोगतिम् ॥ २६ ॥

जो स्त्रीका धन है ऐसे सुवर्ण और वस्त्रोंसे जो वंधु बांधव लोग अपनी जीविका निर्वाह करतेहैं वह सब पापी मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होतेहैं ॥ २६ ॥

राजान्नभोज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥

असंस्कृतं तु यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ २७ ॥

राजाका अन्न बलको नष्ट करताहै; और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको हरण करताहै; जो मनुष्य अपवित्र वस्तुको भोजन करताहै, वह पृथ्वीका मल भोजन करताहै ॥ २७ ॥

मृतके सूतके चैव ग्रहणे शशिभास्करे ॥

हस्तिच्छायां तु यो भुंक्ते स पापः पुरुषो भवेत् ॥ २८ ॥

मरणसूतकमें और जन्मसूतकमें, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें और गजच्छा-
यामें जो पुरुष भोजन करताहै वह पापी है ॥ २८ ॥

पुनर्भूः पुनरेता च रेतोधाः कामचारिणी ॥

आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २९ ॥

दो बार वियाही हुई पुनरेता और रेतोधा, जो जहां तहांसे वीर्यको धारण करतीरहै वह
व्यभिचारिणी है; इन सब स्त्रियोंके यहांका अन्न पहिले गर्भाधानके संस्कारमें जो मनुष्य
खाताहै वह चांद्रायण करै ॥ २९ ॥

मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥

विशेषाद्भुक्तभेतेषां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ३० ॥

माताका मारनेवाला, पिताका मारनेवाला, ब्राह्मणका मारनेवाला; और गुरुकी छाँके संग
रमण करनेवाला इनके यहांका जो मनुष्य अन्न खाताहै वह चान्द्रायणका प्रायश्चित्त करनेसे
शुद्ध होताहै ॥ ३० ॥

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ॥

भुक्तैषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चांद्रायणेन तु ॥ ३१ ॥

घोवो, व्याध, नट, वांस, और चामसे जीनेवाले इनके यहांके अन्नका ब्राह्मण भोजन करता
है, वह चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३१ ॥

**उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदाचिदुपजायते ॥ सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचि-
र्भवेत् ॥ ३२ ॥ उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूदेण वा द्विजः ॥ उपोष्य
रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३३ ॥**

यदि उच्छिष्ट मनुष्यको उसी जातिका उच्छिष्ट छूले तौ उसी समय उठ केवल आचमन
करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है ॥ ३२ ॥ यदि जिस ब्राह्मणको उच्छिष्टने छुलियाहो उसे
कुत्ता अथवा शूद्र छूले तौ एक रात्रि उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणस्य सदा कालं शूद्रे प्रेषणकारिणि ॥

भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणकी आज्ञाको पालन करनेवाले शूद्रको पृथ्वीपर ही अन्न खानेके लिये देना उचित
है; कारण कि जिस भाँति कुत्ता है वैसा ही यह भी है ॥ ३४ ॥

**अनुदकेष्वरण्येषु चौरव्याघ्राकुले पथि ॥ कृत्वा मूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तः कथं
शुचिः ॥ ३५ ॥ भूमावन्नं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथार्थतः ॥ उत्संगे गृह्य प-**

(१) जिस समय कृष्णपक्षकी त्रयोदशी हो और सूर्य हस्तनक्षत्र पर स्थित हों और चन्द्रमा मघा-
नक्षत्रके ऊपर हो उसे गजच्छाया योग कहतेहैं ।

कान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ॥ ३६ ॥ मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमा-
त्मनः ॥ मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु गव्यं पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३७ ॥

(प्रश्न) जलहीन स्थानोंमें, वनमें, चौर और सिंह जिसमें हों उन मार्गोंमें भोजन हाथमें लियेहुए जो मनुष्य मल मूत्र त्याग करताहै और उस वस्तुको खालेताहै उसकी शुद्धि किस प्रकार होतीहै? ॥ ३५ ॥ (उत्तर) वह मनुष्य पृथ्वीपर अन्नको रखकर और यथार्थ शौच करके गोदीमें पक्कात्र लेकर आचमन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मूत्र करके विना शौच किये हुए अज्ञानसे भोजन करलेता है वह तीन रात तक भलीभांति पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३७ ॥

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ॥

चांद्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ ३८ ॥

मदसे मोहितहुआ ब्राह्मण यदि रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करले तो चांद्रायण व्रत करे और बहुतसे ब्राह्मणोंके भोजन करानेसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥

भुदत्वोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥ प्रमादाद्यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञान-
दुर्बलः ॥ ३९ ॥ स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः ॥ स त्रिरात्रोषि-
तो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४० ॥

भोजनके उपरान्त विना ही आचमन किये उच्छिष्ट अवस्थामें यदि ब्राह्मणको अज्ञानसे श्वपच या चंडाल छूले ॥ ३९ ॥ तो त्रिकाल स्नान और ब्रह्मचारी हो, नित्य पृथ्वीपर शयन करताहो तो वह तीन रात्रि उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४० ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिबति द्विजः ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन
शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥ सायंप्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः ॥ सायं प्रातस्त-
थैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥ ४२ ॥ दिनद्वयं च नाश्रियात्कृच्छ्राद्धं तद्विधी
यते ॥ प्रायश्चित्तं लघुष्वेतत्पापेषु तु यथार्हतः ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य चंडालको छूकर जल पीताहै वह अहोरात्र उपवास करके त्रिकाल स्नान कर-
नेसे शुद्ध होताहै ॥ ४१ ॥ अहोरात्र (एक दिन) सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करे
इसको पादकृच्छ्र कहतेहैं; और एक दिन सायंकाल अथवा प्रातःकालमें भोजन न करे, और
दो दिन विना मांगे जो मिले उसे भोजन करे ॥ ४२ ॥ और दो दिन उपवास करे उसे
कृच्छ्राद्ध कहतेहैं लघु पापोंमें यह प्रायश्चित्त उचित है ॥ ४३ ॥

कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानां च विक्रयी ॥

प्रेतनिर्यातकश्चैव न भयः पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

काली मृगछाला, और तिल इनका दान लेनेवाला, हाथी और घोड़ेको बेचनेवाला और
मृतकदेहका मौललेकर उठानेवाला पुरुष इनकी गणना पुरुषोंमें नहीं होती ॥ ४४ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

आचांतोप्यशुचिस्तावद्यावन्नोद्ध्रियते जलम् ॥ उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावद्भूमिर्न
प्यते ॥ १ ॥ भूमावपि च लिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् ॥ आसनादु-
त्थितस्तस्माद्यावन्नाक्रमते महीम् ॥ २ ॥

आचमन करनेके पीछे मनुष्य तत्रतक अशुद्ध रहताहै जबतक पृथ्वीपर से वह जल न उठाया जाय, और पृथ्वी बिना लिपे अशुद्ध रहती है ॥ १ ॥ पृथ्वीके छीपेजानेपरभी जबतक अशुद्ध रहताहै जत्रतक कि आचमनके आसनसे उठकर उस लीपीदुई पृथ्वीपर न बैठे ॥ २ ॥

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते ॥

आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ॥ ३ ॥

यमराजको यम कहकर नहीं पुकारते परन्तु अपनी आत्माको ही यम कहतेहैं; जिस मनुष्यने मनको अपने वशमें कर लियाहै, यमराज उसका क्या कर सकताहै ॥ ३ ॥

न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ॥

यथा क्रोधो हि जंतूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥

खड्गभी ऐसा तीक्ष्ण नहीं है, और सर्पभी ऐसा भयंकर नहींहै जैसा कि प्राणियोंके शरीरमें क्रोध उनका नाश करनेवाला है [इस कारण सब भाँतिसे क्रोधको त्यागदे] ॥ ४ ॥

क्षमा गुणो हि जंतूनामिहामुत्र सुखप्रदः ॥ एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो त्रोपपद्यते ॥ यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ५ ॥

मनुष्योंमें क्षमाही एक गुण है, वह इस लोक और परलोकमें सुखकी देनेवालाहै क्षमावान् मनुष्योंमें एक दोषके अतिरिक्त दूसरा दिखाई नहीं देता (वह दोष क्या है उसे कहतेहैं) क्षमाशील मनुष्यको मूर्खजन असमर्थ विचारतेहैं ॥ ५ ॥

न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ॥ न भोजनाच्छादन-

तत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥ ६ ॥ एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवे-

त्प्रीतिनिवर्तकस्य ॥ अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यग्मोक्षो भवेन्नित्यमार्हिसकस्य ॥ ७ ॥

व्याकरण शास्त्रमें जिसका मन लवलीन होजाय उसकी और जिसका प्यारा रमणीक घर है उसकी और भोजन वस्त्रमें तत्पर हैं उनकी, और जो संसारके मनको वश करनेमें रत हैं उनकी मोक्ष नहीं होती ॥ ६ ॥ परन्तु जो एकान्तमें निवास करै और जो दृढ व्रतसे रहै और सबकी प्रीतिसें दूर रहै; जो दूसरेकी हिंसा न करै, और जो अध्यात्मयोगमें तत्पर रहै ऐसे मनुष्यकी मोक्ष होजातीहै ॥ ७ ॥

क्रोधयुक्तो यद्यजते यज्जुहोति यदर्चति ॥

सर्वं हरति तत्तस्य आमकुंभ इवोदकम् ॥ ८ ॥

क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करताहै, होम करताहै, जो पूजा करताहै वह कच्चे घड़ेकी समान नष्ट होजातेहैं अर्थात् जैसे कच्चे घड़ेमें जल नहीं ठहरता ॥ ८ ॥

अपमानात्तपोवृद्धिः संमानात्तपसः क्षयः ॥ अर्चितः प्रजितो विप्रो दुग्धा गौरिच
सीदति ॥ ९ ॥ आप्यायते यथा धेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥ एवं जपैश्च होमैश्च
पुनराप्यायते द्विजः ॥ १० ॥

अपमानसे तपस्याकी वृद्धि होतीहै, और सन्मानसे तपस्याका नाश होताहै पूजित और
सन्मानित ब्राह्मण अवसन्न होजाताहै; जिस भांति दुधारू गौ प्रतिदिन दुहनेसे खिन्न होजाती
है ॥ ९ ॥ जिस भांति वही गौ जलसे उत्पन्नहुई वासादिको खाकर पुष्टता पातीहै उसी
भांति ब्राह्मण भी जप होम और पुण्य कार्यके करनेसे फिर उन्नतिको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥

आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति ॥ ११ ॥

जो मनुष्य माताकी समान पराई स्त्रीको देखता, और पराये द्रव्यको लोष्ट (डेले) की
समान देखताहै और जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी समान देखताहै वह मनुष्यही यथार्थ
देखनेवाला है ज्ञानवान् है ॥ ११ ॥

रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् ॥

यो भुङ्क्ते भुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ १२ ॥

धोवी, व्याध, नट और बांस तथा जो चमड़ेसे जीविका निर्वाह करतेहैं, जो मनुष्य इन-
के यहांके अन्नको भोजन करताहै वह प्राजापत्यका प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥

शुद्धिं चांद्रायणं कृत्वा अथवान्ते तथैव च ॥ १३ ॥

गमन करनेके अयोग्य स्त्रीके साथ गमन, भक्षण करने अयोग्य के अर्थात् जो बढई आदि
के यहांका अन्न खाताहै उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रतसे होतीहै ॥ १३ ॥

अग्निहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत् ॥

तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चांद्रायणादृते ॥ १४ ॥

जो मनुष्य अग्निहोत्रको त्यागताहै; उस मनुष्यको वीरहत्याका पाप लगताहै, विना चांद्रा-
यणके करनेसे उसकी शुद्धि नहीं होती ॥ १४ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥ सद्यः शुद्धिं विजानीयात्पूर्वसंकल्पितं

च यत् ॥ १५ ॥ देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु प्रततेषु च ॥ कल्पितं सिद्ध-

मन्नाद्यं नाशौचं मृतसूतके ॥ १६ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

विवाह, उत्सव, यज्ञकार्यके होनेपर यदि जन्मसूतक अथवा मरणसूतक होनाय तो उसी
समय शुद्धि होजातीहै; कारण कि उस अन्नका संकल्प पहलेही कर दियाथा ॥ १५ ॥
देवद्रोणी, विवाह और बड़े यज्ञमें, मरण और जन्मसूतकमेंका बनाया हुआ पक्वान्न
अशुद्ध नहीं होता ॥ १६ ॥

इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

आपस्तंबस्मृतिः समाप्ता ७.

श्रीः ॥

अथ संवर्त्तस्मृतिः ८.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ संवर्त्तमेकमासीनं सर्ववेदांगपारगम् ॥ ऋषयस्तमुपागम्य
पप्रच्छुर्धर्मकाक्षिणः ॥ १ ॥ भगवच्छ्रोतुमिच्छामो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥
यथावद्धर्ममाचक्ष्व शुभाशुभविवेचनम् ॥ २ ॥ वामदेवादयः सर्वे तं पृच्छन्ति
महौजसम् ॥ तानब्रवीन्मुनीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ३ ॥

इकले बैठेहुए, सम्पूर्ण वेद और वेदांगोंके पारको जाननेवाले संवर्त्तमुनिके निकट
आकर धर्मके सुननेकी अभिलाषा करनेवाले मुनि पूछने लगे ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! ब्राह्म-
णोंके धर्मके साधनको हम सुननेकी इच्छा करतेहैं; जिससे शुभ और अशुभका पृथक् २
ज्ञान हमें होजाय ऐसे यथार्थ धर्मको विचारकर कहिये ॥ २ ॥ इस भाँति वामदेवादि ऋ-
षियोंके कहनेपर महातेजस्वी ऋषिश्रेष्ठ संवर्त्तमुनि प्रसन्नहोकर बोले कि, तुम श्रवण
करो ॥ ३ ॥

स्वभावाद्भिचरेद्यत्र कृष्णसारः सदा मृगः ॥

धर्मदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥ ४ ॥

काला मृग जिस देशमें सदा अपनी इच्छानुसार विचरण करै वह देश धर्मदेश है, और
ब्राह्मणोंके धर्मसाधनके लिये योग्य स्थान है ॥ ४ ॥

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत् ॥ स्रग्गंधमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्ज-
येत् ॥ ५ ॥ संध्यां प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥ सादित्यां पश्चिमां संध्या-
मर्द्धास्तामितभास्करे ॥ ६ ॥ तिष्ठन्पूर्वं जपं कुर्यात्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥ आ-
सीनः पश्चिमां संध्यां सम्यगृक्षविभावनात् ॥ ७ ॥ अभिकार्यं च कुर्वीत मेधावी
तदनंतरम् ॥ ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ८ ॥ प्रणवं प्राक्
प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ॥ गायत्रीं चालुपूर्य्येण ततो वेदं समारभेत् ॥ ९ ॥
हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जालुभ्यामुपरि स्थितौ ॥ गुरोरनुमतं कुर्यात्पठन्नान्यमति-
र्भवेत् ॥ १० ॥ सायं प्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ॥ निवेद्य गुरवेऽग्नी-
यात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ ११ ॥

यज्ञोपवीत होजाने पर ब्राह्मण प्रतिदिन गुरुदेवका हितकारी कार्य करै, ब्रह्मचारी माला,
गंध, मद्य, मांस, इनका त्याग करदे ॥ ५ ॥ नक्षत्रोंके बिना छिपेहुए प्रातःकालकी संध्या करै;
और सूर्यदेवके आगे अस्त होजाने पर सायंकालकी संध्या करै ॥ ६ ॥ जबतक सूर्यका
दर्शन भली भाँतिसे न होजाय तबतक खड़ा होकर बराबर गायत्रीका जप करतारहै; और

जबतक नक्षत्र भली भाँतिसे उदय न होजाय तबतक सायंकालमें बैठकर जप करता रहे ॥ ७ ॥
इसके पीछे ज्ञानवान् पुरुष अभिहोत्रको करे, फिर होमकार्यके पश्चात्तः गुरुदेवके मुखको देखता हुआ वेदको पढ़े, ॥ ८ ॥ सचसे आगे ओंकारका उच्चारण करे, इसके अनन्तर सात व्याहृति पढ़े, इसके उपरान्त गायत्रीको पढ़कर पीछे वेदका पढ़ना प्रारंभ करे ॥ ९ ॥
दोनों गोंडोंके ऊपर सावधानी से हाथ रखकर एकाग्र मनसे अनन्यशुद्धि हो गुरुदेवकी आज्ञा-
अनुसार वेदको पढ़े, पढ़ते समय बुद्धिको दूसरी ओर न लगावे ॥ १० ॥ ब्रह्मचारी तियन अवलम्बनपूर्वक प्रातःकाल और सायंकालमें भिक्षा माँगे; इसके उपरान्त उस भिक्षाको गुरु देवकी निवेदन कर पूर्वमुख हो मौनका धारणकर पवित्रभावसे भोजन करे ॥ ११ ॥

सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् ॥

नंतरा भोजनं कुर्यादभिहोत्री समाहितः ॥ १२ ॥

ब्राह्मणोंको सायंकाल और प्रातःकाल दिनमें दो संभय भोजन करना वेदने कहा है, इसमें सावधान मनोप्य बीचमें भोजन नहीं करे ॥ १२ ॥

आचम्यैव तु भुंजीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद्विजः ॥ अनाचं स्तु योऽश्नीयात्प्रायश्चि-
तीयते तु सः ॥ १३ ॥ अनाचांतः पिवेद्यस्तु योऽपि वा भक्षयेद्विजः ॥ गाय-
त्र्यष्टसहस्रं तु जपं कुर्वन्विशुद्ध्यति ॥ १४ ॥ अकृत्वा पादशीचं तु तिष्ठन्मुक्त-
शिखोऽपि वा ॥ विना यज्ञोपवीतिन त्वाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५ ॥

भोजनके पहले आचमन करे, भोजनके पीछे आचमन करे; और जो आचमन के बिना किये हुए भोजन करते हैं, उनको प्रायश्चित्त करना होगा ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण बिना आचमन किये हुए भोजन करता है या जल पीता है वह मनुष्य आठ हजार गायत्रीका जप करने से शुद्ध होता है ॥ १४ ॥ पैरोंके बिना धोये, अथवा चौटी में बिना गांठबाँधे यज्ञोपवीतके बिना जो मनुष्य आचमन करता है वह अशुद्ध रहता है ॥ १५ ॥

आचामेद्वहतीर्थेन चोपवीती बुदङ्मुखः ॥ उपवीती द्विजो नित्यं प्राङ्मुखो
वाग्यतः शुचिः ॥ १६ ॥ जले जलस्थश्चाचांतः स्थलाचांतो वहिः शुचिः ॥
बहिरंतःस्थ आचं एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ आमणिवंधादस्तौ च पादा-
वद्विर्विशोधयेत् ॥ परिमृज्य द्विरास्यं तु द्वादशांगानि च स्पृशेत् ॥ १८ ॥
स्नात्वा पीत्वा तथा क्षुत्वा भुक्त्वा स्पृष्ट्वा द्विजोत्तमः ॥ अनेन विधिना सम्य-
गाचांतः शुचितामियात् ॥ १९ ॥ शूद्रः शुद्धयति हस्तेन वैश्यो दंतेषु वारिभिः ॥
कंठागतैः क्षत्रियस्तु आचांतः शुचितामियात् ॥ २० ॥

उत्तरी ओरको मुख करके यज्ञोपवीतको धारणकर ब्रह्मतीर्थसे (यह झंगूटेकी जड़में होता है) आचमन करे; पूर्वकी ओरको मुख करके बैठा हुआ यज्ञोपवीतको धरे हुए मौन-
धारी ब्राह्मण नित्य शुद्ध होता है ॥ १६ ॥ जलमें स्थितहुआ पुरुष जलमें आचमनकरे; और स्थलमें बैठाहुआ पुरुष स्थलमें बैठकर आचमन करनेसे शुद्ध होता है, इस भाँति बाहिर और जलमें आचमन करनेसे शुद्धि प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ मणिवंधतक हाथ, पैरको जलसे धोवे,

पीछे दोवार मुखको पोंछकर बारह अंगोंका स्पर्श करै ॥ १८ ॥ स्नानके अनन्तर जलपान, छींक, भोजन और अपवित्र वस्तुका स्पर्श करके ब्राह्मण इस भांति आचमन करनेसे शुद्ध होवाहै ॥ १९ ॥ शुद्ध जलसे हाथ धोनेसे शुद्ध होताहै, और वैश्य दांतोंतक जलजानेसे शुद्ध होताहै; क्षत्रिय कंठतक जलके जानेसे (आचमनसे) शुद्ध होताहै ॥ २० ॥

आसनारूढपादस्तु कृतावसक्थिकस्तथा ॥

आरूढपादुको वापि न शुद्ध्यति कदाचन ॥ २१ ॥

आसनपर पैर रखकर, घुटनोंको उठाये हुए, जो खड़ाऊंपर चढ़कर आचमन करताहै; उसकी कभी शुद्धि नहीं होती ॥ २१ ॥

उपासीत न चेत्संध्यामभिकार्यं न वा कृतम् ॥

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यने संध्या और अभिहोत्र न कियाहो; वह सावधान होकर अष्टोत्तरसहस्र बार गायत्रीका जप करै ॥ २२ ॥

सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकं तथैव च ॥

ब्रह्मचारी तु योऽग्नीषात्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३ ॥

जो ब्रह्मचारी सूतकका अन्न, नवश्राद्ध और मासिक श्राद्धका अन्न खाता है उसकी शुद्धि त्रिरात्रमें होतीहै ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्त्रिंशं कामप्रपीडितः ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमथ त्वेकं सुयंत्रितः ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी कामदेवसे मोहित होकर स्त्रीका संग करताहै; वह सावधान होकर एक प्राजापत्य कृच्छ्र करै ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽग्नीयान्मधु मांसं कथंचन ॥

प्राजापत्यं तु कृत्वासौ मौंजी होमेन शुद्ध्यति ॥ २५ ॥

कदाचित् किसी ब्रह्मचारीने मद्य और मांसको खालिया हो तौ वह प्राजापत्यव्रत करके मौंजी (मूँजकी कौंधनी) के पहरनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥

निर्वपेतु पुरोडाशं ब्रह्मचारी तु पर्वणि ॥

मंत्रैः शाकलहोमांगैरग्रावाज्यं च होमयेत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी पर्वके दिन पुरोडाश दे, और शाकल होमके अंगभूत मंत्रोंसे घृतका हवन करै ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी तु यः स्कंदेत्कामतः शुक्रमात्मनः ॥

अवकीर्णिव्रतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्ध्येदकामतः ॥ २७ ॥

१ यह यज्ञोपवीतके समान प्रवर ग्रंथिसहित यज्ञोपवीतके समय पहनाई जातीहै; कहीं २ इसे गलेमें जनेऊकी तरह पहनातेहैं वो भूलचे, कारण कि “कटिप्रदेशे विवृतम्” इस गृह्यसूत्रमें कौंधनी करकेही उसका पहरना लिखाहै; भूलका कारण यज्ञोपवीतके समान होनाही है ।

जो ब्रह्मचारी जानकर अपने वीर्यको निकाले तो अवकीर्णनामक (ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होजानेपर के) प्रायश्चित्तसे शुद्ध होताहै; और यदि अज्ञान (स्वप्नादिक) से वीर्य निकल-जाय तो स्नान करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ २७ ॥

भिक्षाटनमटित्वा तु स्वस्थो ह्येकान्नमश्नुते ॥

अन्नात्वा चैव यो भुंक्ते गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ २८ ॥

जो भिक्षा मांगकर अपनी स्वस्थ (आरोग्य) अवस्थामें एकहीके यहाँका अन्न खाताहै; या जो बिना स्नानही किये खाताहै वह आठसौ गायत्रीके जपनेसे शुद्ध होताहै ॥ २८ ॥

**शूद्रहस्तेन योऽश्रीयात्पानीयं वा पिवेत्कचित् ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पंच-
गव्येन शुद्ध्यति ॥ २९ ॥ भुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्नं केशदूषितम् ॥**

**अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥ शूद्राणां भाजने भुक्त्वा
भुक्त्वा वा भिन्नभाजने ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥**

जो कभी भी शूद्रके हाथसे भोजन करताहै, या उसके हाथसे पानी पीताहै; उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होतीहै ॥ २९ ॥ घासी, उच्छिष्ट और जिसमें घालआदि पड़ेहों ऐसे अन्नको खानेवाला मनुष्य अहोरात्र उपवास करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होत है ॥ ३० ॥ जिसने शूद्रके यहाँके वरतनमें अथवा टूटेहुए वरतनमें भोजन कियाहै उसकी शुद्धि अहोरात्र उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे होती है ॥ ३१ ॥

दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथंचन ॥

स्नात्वा सूर्यं समीक्षेत गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ३२ ॥

कदाचित् ब्रह्मचारी दिनके समयमें सोजाय तो स्नानकरनेके उपरांत सूर्यदेवको दर्शनकर आठसौ गायत्रीके जपनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ॥

एवं संवर्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ३३ ॥

प्रथमआश्रमवासियोंका (ब्रह्मचारियोंका) यह धर्म कहागया, जो इसके अनुसार वर्ताव करताहै वह परम गतिको पाताहै ॥ ३३ ॥

**अतो द्विजः समावृत्तः सवर्णां स्त्रियमुद्गहेत् ॥ कुले महति संभूतां लक्षणैस्तु
समन्विताम् ॥ ३४ ॥ ब्राह्मेणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् ॥**

जो ब्राह्मण इस ब्रह्मचर्य आश्रमसे विमुख होगया हो वह ऐसी स्त्रीके साथ अपना विवाह करे जो अपने वर्णकी और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुईहो; और शुभ लक्षणवाली हो ॥ ३४ ॥ और रूप, शील, गुण यहभी सम्पूर्ण लक्षण उसमें विद्यमान हों ऐसी स्त्रीके साथ ब्राह्मविवाह करे;

१ उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनाकर विद्वान् और सुशील लड़केकी बुलाकर जो कन्यादीजाती है उसे ब्राह्म विवाह कहतेहैं ।

अतः पंचमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्दिजः ॥ ३५ ॥ न हापयेतु ताञ्छक्तः श्रेय-
स्कामः कदाचन ॥ हानिं तेषां तु कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥

इसके उपरान्त ब्राह्मण प्रतिदिन पंच महायज्ञ करै ॥ ३५ ॥ कल्याणकी इच्छा करनेवाला
ब्राह्मण उनका त्याग कभी न करै, परन्तु जिस समय जन्म मरणका सूतक होजाय उससमय
उनको न करै ॥ ३६ ॥

विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ॥ क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चद-
शैव तु ॥ ३७ ॥ शूद्रः शुद्धयति मासेन संवत्सर्वचनं यथा ॥ प्रेतायान्नं जलं
देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ ३८ ॥

उस सूतकमें ब्राह्मण दान और पढ़नेसे रहित दश दिनतक, क्षत्रिय बारह दिनतक, और
वैश्य पंद्रह दिनतक रहै ॥ ३७ ॥ और शूद्रकी शुद्धि संवत् ऋषिके वचनके अनुसार एकही
महीने में होतीहै सम्पूर्ण सगोत्री मिलकर प्रेतको अन्न और जल दै ॥ ३८ ॥

प्रथमेहि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ॥ चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः,
॥ ३९ ॥ ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥ चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै
क्षत्रियस्य त्र ॥ ४० ॥ अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः ॥

ब्राह्मण पहले, तीसरे, सातवें, नवमें अथवा चौथे दिन अस्थिसंचयन करै ॥ ३९ ॥ अस्थि-
संचयनके उपरान्त देहका किसीके साथ स्पर्श न करै, अर्थात् पहले किसीको न छुए, ब्राह्मण
का चौथे दिन में और क्षत्रियका छठे दिनमें ॥ ४० ॥ वैश्यका आठवें दिनमें और शूद्रका
दसवें दिनमें स्पर्शकरना कहा है.

जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव महर्षिभिः ॥ ४१ ॥

जन्मके सूतकमें बड़े २ ऋषियोंनें यही विधि देखी है ॥ ४१ ॥

दशरात्रेण शुद्धयेत विप्रो वेदविचर्जितः ॥

जिस ब्राह्मणने वेद न पढाहों वह दशरात्रिमें शुद्ध होताहै,

जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचलं तु विधीयते ॥ ४२ ॥ माता शुद्धयेदशोहेन स्ना-
नात्तु स्पर्शनं पितुः ॥ होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ४३ ॥ पंचयज्ञ-
विधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ॥ दशाहातु परं सम्यग्विप्रोऽधीयीत धर्म-
वित् ॥ ४४ ॥

जिस समय पुत्र पैदाहो उस समय पिताको बस्त्रादित स्नान करना कहाहै ॥ ४२ ॥ मा-
ताकी शुद्धि दशदिन में होतीहै, और पिताका स्पर्श स्नानकरनेसे भी उचित है, सूके अन्न वा
फलसे जन्मसूतकमें हवन करै ॥ ४३ ॥ पंच यज्ञ को जन्म और मरणसूतक में न करै, दश-
दिनके उपरान्त धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण भली भांतिसे पढ़ै ॥ ४४ ॥

दानं तु विविधं देयमशुभानां विनाशनम् ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यज्ञस्य दयितं
भवेत् ॥ ४५ ॥ तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ नानाविधानि द्रव्याणि

धान्यानि सुवह्नि च ॥ ४६ ॥ समुद्रे यानि रत्नानि नरा विगतकल्मषः ॥
 दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ गन्धमाभरणं माल्यं यः
 प्रयच्छति धर्मवित् ॥ समुगन्धः सदा हृष्टो यत्र तत्रोपजायते ॥ ४८ ॥ श्रोत्रि-
 याय कुलीनायाम्यर्थिने हि विशेषतः ॥ यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फ-
 लम् ॥ ४९ ॥ आहूय शीलसंपन्नं श्रुतेनाभिजनेन च ॥ शुचिं विप्रं महाप्राज्ञं
 हव्यकव्यैस्तु पूजयेत् ॥ ५० ॥ नानाविधानि द्रव्याणि रसवंतीप्सितानि च ॥
 श्रेयस्कामेन देयानि तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ५१ ॥

पापोंका नाशकरनेहारा अनेक भांतिका दान दे और संसारमें इस मनुष्यको जो २ इष्ट और धारा हैं अपने अक्षय पुण्यकी इच्छा करनेवाला पुरुष वही वह वस्तु विद्यवान् मनु-
 ष्यको दे; अनेक भांतिके द्रव्य और बहुतसे अन्न, मुद्रा और रत्न जो पापरहित मनुष्य इन्हें
 गुणवान् ब्राह्मणको देताहै; उसको महालक्ष्मी प्राप्त होतीहै ॥ ४७ ॥ जो धर्मेष्ट मनुष्य गंव,
 भूषण, फूल इनको देताहै, वह सुगन्धसाहित सर्वदा प्रसन्न हो जहां तहां उत्पन्न होताहै ॥ ४८ ॥
 वेद पढनेवाले कुलवान् और विशेष करके अभ्यागतोंको जो दान दियाजाता है, वह महाफल
 का देनेवाला होताहै ॥ ४९ ॥ शीलवान्, कुलवान्, वेदके जाननेवाले शुद्ध और अत्यन्त
 बुद्धिमान् ब्राह्मणकी हव्य (देवताओंके अन्न) से और कव्य (पितरोंके अन्न) से पुरुष
 पूजा करे ॥ ५० ॥ उत्तम रसयुक्त ऐसे नाना प्रकारके सम्पूर्णद्रव्य अक्षय स्वर्गकी कामना
 करनेवाले मंगलप्रार्थी मनुष्यको दान करनाउचित है ॥ ५१ ॥

वस्त्रदाता सुवेषः स्याद्रूप्यदो रूपमेव च ॥ हिरण्यदः समृद्धिं च तेजश्चायुश्च विंदति
 ॥ ५२ ॥ भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ दीर्घमायुश्च लभते सुखी
 चैव सदा भवेत् ॥ ५३ ॥ धान्योदकप्रदायी च सर्पिर्दः सुखमेधते ॥ अलंकृत-
 स्त्वलंकारं दाताप्नोति महत्फलम् ॥ ५४ ॥ फलमूलानि विप्राय शाकानि विवि-
 धानि च ॥ सुरभीणि च पुष्पाणि दत्त्वा प्राज्ञस्तु जायते ॥ ५५ ॥ तांबूलं चैव
 यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ॥ मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥ ५६ ॥
 पादुकोपानहौ छत्रं शयनान्यासनानि च ॥ विविधानि च यानानि दत्त्वा द्रव्यपति-
 भवेत् ॥ ५७ ॥ दद्याद्यः शिशिरे वह्निं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः ॥ कायाभिदीप्तिं प्रा-
 ज्ञत्वं रूपं सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगज्ञातये ॥
 दत्त्वा स्याद्रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥ ५९ ॥ इधनानि च यो दद्याद्विभे-
 म्यः शिशिरागमे ॥ नित्यं जयति संग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीव्यते ॥ ६० ॥

जो मनुष्य वस्त्रदान करताहै, वह सुन्दर वस्त्रोंसे शोभायमान होताहै, चांदीका देनेवाला
 मनुष्य रूपवान् होताहै, सुवर्णके देनेवालेकी बड़ी आयु होतीहै, और धनकी वृद्धि होतीहै
 ॥ ५२ ॥ प्राणियोंको अभयदान देनेसे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होतेहैं अथवा दीर्घायु और सुखी
 होताहै ॥ ५३ ॥ अन्न, जल और धीके दान करनेसे मनुष्य सुख भोगताहै और भूषणों-
 के दान करनेसे भूषणवाला बड़े फलको प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य फल, मूल तथा

नाना प्रकारके शाक और सुगंधवाले फूल इनको दान करताहै वह पंडित होताहै ॥ ५५ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य ब्राह्मणको ताम्बूल (पान) का दान करताहै वह विद्वान् और दर्शनीय तथा भाग्यवान् होताहै ॥ ५६ ॥ खड्गार्क, जूता, छत्री, शय्या आसन और अनेक भांतिकी सवारी इनका दैनेवाला धनवान् होताहै ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य शीतकालमें अग्नि और बड़े यत्नसे काष्ठ देताहै, वह जठराधिकी समान कांतिवाला, पंडित तथा रूपवान् और भाग्य-शाली होताहै ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य रोगियोंके रोगको दूर करनेके लिये औषधी, स्नेह (घृत) इनको मिलाकर भोजन देताहै, वह रोगरहित होकर सुखी और चिरंजीवी होताहै ॥ ५९ ॥ शीतकालमें मनुष्य ब्राह्मणोंको काष्ठ (ईंधन) देताहै; वह मनुष्य युद्धके समय शत्रुओंको जी-तताहै, और लक्ष्मीवान् होकर दीप्तिमान् होताहै ॥ ६० ॥

अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै ॥ ह्येन तु विवाहेन दद्यात्तां तु
सुप्रजिताम् ॥ ६१ ॥ स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विंदति पुष्कलम् ॥ साधुवा-
दं स वै सद्भिः कीर्तिं प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ६२ ॥ ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतं
शतगुणीकृतम् ॥ प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममंत्रैश्च संस्कृताम् ॥ ६३ ॥ तां दत्त्वा
तु पिता कन्यां भूषणाच्छादनाशनैः ॥ पूजयन्स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु
॥ ६४ ॥ रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुङ्क्तेऽथ कन्यकाम् ॥ रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वाः कुचौ
दृष्ट्वा तु पावकः ॥ ६५ ॥ अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥ दशवर्षा
भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव
च ॥ त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ६७ ॥ तस्माद्विवाहयेत्कन्यां
यावन्नर्तुमती भवेत् ॥ विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य भूषण वस्त्रादि पहराकर भली भांतिसे पूजितहुई कन्याको योग्य वरके हाथमें ब्राह्म विवाहकी रीतिके अनुसार देताहै ॥ ६१ ॥ वह कन्याके दानकरनेसे महाकल्याणको प्राप्त होताहै; और सज्जनोंमें बड़ाई पाकर उत्तम कीर्तिमान् होताहै ॥ ६२ ॥ होमके मंत्रोंसे संस्कार कीहुई कन्याके दानकरनेपर मनुष्य दश सहस्र ज्योतिष्टोम और अतिरात्र यज्ञके फलको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ वस्त्र, अलंकारोंसे जो मनुष्य कन्याकी पूजा, उत्सव और वृद्धि (पुत्रादिके जन्मसमयमें) करता है वह स्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ (अविवाहित कन्याके) रोमोंके निकल आनेके समयमें कन्याको चंद्रमा भोग करतेहैं और ऋतुमती होनेके समयमें गंधर्व भोगतेहैं, दोनों स्तनोंके ऊंचे होनेपर अग्नि भोगताहै ॥ ६५ ॥ आठवर्षतक कन्या गौरी है नवमें वर्षमें रोहिणी और दसवर्षमें कन्याको कन्या कहाहै, इसके उपरान्त कन्याकी संज्ञा रजस्वला होजातीहै ॥ ६६ ॥ कन्याको ऋतुमती हुआ देखकर बड़ा भाई, माता, पिता, यहाँ तीनों नरकमें जातेहैं ॥ ६७ ॥ इस कारण रजोदर्शनके बिनाहुएही कन्याका विवाह करना श्रेष्ठ है, और आठ वर्षकी कन्याका विवाह करना परम श्रेष्ठ है ॥ ६८ ॥

तैलामलकदाता च स्नानाभ्यंगप्रदायकः ॥

नरः प्रहृष्टश्चासीत् सुभगश्चोपजा ॥ ६९ ॥

तैल, आंवले, स्नानके निमित्त जल, और उबटन इनका दान जो मनुष्य करताहै; वह दा-आनन्दित होकर भाग्यवान् होताहै ॥ ६९ ॥

अनङ्गाहौ तु यो दद्याद्विजे सरीरेण संयुतौ ॥ अलंकृत्य यथाशक्त्या धूर्वहौ शुभ-
लक्षणौ ॥ ७० ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ॥ वर्षाणि वसते स्व-
र्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य उत्तम लक्षणवाले, जोतने योग्य दो बैलोंको अलंकृत कर हलके साथ ब्राह्मणको देताहै ॥ ७० ॥ वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर सत्र कामनाओंके साथ जितने रोम बैलोंके शरीरपर हैं उतनेही वर्षोंतक स्वर्गमें वासकरताहै ॥ ७१ ॥

धेनुं च यो द्विजे दद्यादलंकृत्य पयस्विनीम् ॥

कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥ ७२ ॥

काँसीके पात्र और वस्त्रोंसे अलंकृतकर दूध देनेवाली गौको जो मनुष्य ब्राह्मणको दान करताहै, वह स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ ७२ ॥

भूमिं सस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ गां दस्वर्द्धप्रसूतां च स्वर्गलोके मही-
यते ॥ ७३ ॥ यावन्ति सस्यमूलानि गौरोमाणि च सर्वशः ॥ नरस्तावन्ति वर्षा-
णि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७४ ॥ यो ददाति शर्फे रौप्यैर्हमशृङ्गीमरोगिणीम् ॥
सवत्सां वाससा पीतां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥ ७५ ॥ तस्यां यावन्ति रोमा-
णि सवत्सायां दिवं गतः ॥ तावन्ति वत्सरांतानि स नरो ब्रह्मणोति ॥ ७६ ॥

अन्न उत्पन्नहुई पृथ्वी और आधी व्याई गौ इन्हें वेदके पार जाननेवाले ब्राह्मणको देनेसे मनुष्य स्वर्ग लोकमें पूजित होताहै ॥ ७३ ॥ जितने अन्नके पौदोंकी जड़ दान की हैं और जितने गौके शरीरपर रोम हैं उतनेही वर्षतक वह मनुष्य स्वर्गमें पूजित होताहै ॥ ७४ ॥ चांदीके गुरोंवाली, सुवर्णके सींगवाली, बछड़े अथवा बछियावाली, रोगरहित, बखसे ढकीहुई, दूध देतीहुई सुशीला गौको जो दान करताहै ॥ ७५ ॥ उस गौ और बछड़ेके शरीरपर जितने रोम हैं उतनेही वर्षोंतक वह मनुष्य ब्रह्माके निकट निवास करताहै ॥ ७६ ॥

यो ददाति वलीवर्दभुक्तेन विधिना शुभम् ॥

अव्यंगमोप्रदानेन दत्तं दशगुणं फलम् ॥ ७७ ॥

पूत्रोंके विधिके अनुसार जो मनुष्य बैलको दान करताहै वह सविवान गौके दानसे दश-
गुने फलको प्राप्त होताहै ॥ ७७ ॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं धूर्वष्णवीसूर्यसुताश्च गावः ॥ लोकास्त्रयस्तेन भवंति
दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात् ॥ ७८ ॥ सर्वेषामेव दानानामेकजन्मा-
नुगं फलम् ॥ हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ७९ ॥

प्रथम पुत्र अग्निका सुवर्ण है और पृथ्वी वैष्णवी (विष्णुकी पुत्री) है, और सूर्यकी पुत्री गौ है; इसकारण जो मनुष्य सुवर्ण, गौ, पृथ्वी इनको दान करताहै, वह त्रिलोकीके दानके फलको पाताहै ॥ ७८ ॥ सम्पूर्ण दानोंका फल तो केवल दूसरे जन्ममेंही मिलवाहै; और सुवर्ण पृथ्वी, गौ इनका फल सात जन्मतक मिलताहै ॥ ७९ ॥

अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निभृतः सदा॥अंबुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः
॥८०॥सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम्॥सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं
परम् ॥८१॥यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजन्मभूः ॥ तस्मादन्नात्परं
दानं विद्यते न हि किंचन ॥ अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न संशयः ॥८२॥

जो मनुष्य अन्नका दान करताहै वह नित्य पुष्ट और तृप्त रहताहै, जलका दान करनेवाला सुखी और सम्पूर्ण कर्मोंसे युक्त रहताहै ॥ ८० ॥ सम्पूर्ण दानोंमें अन्नका दानही श्रेष्ठ है; कारण कि सब प्राणियोंका जीवन अन्नसेही है ॥ ८१ ॥ इसी कारणसे ब्रह्माजीने कल्प २ में सम्पूर्ण प्रजा अन्नसेही रचीहै, इससे उत्तम और कोई दान नहीं है; कारण कि अन्नसेही प्राणि-योंकी उत्पत्ति है और अन्नसेही उनका जीवन है इसमें किंचित्भी सन्देह नहीं ॥ ८२ ॥

मृत्तिकागोशकृद्भानुपवीतं तथोत्तरम् ॥

दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते ॥ ८३ ॥

मिट्टी, गोबर, कुशा और यज्ञोपवीत उत्तम है इनको जो मनुष्य बहुतसे गुणवान् ब्राह्म-णको दान करताहै वह बड़े कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ ८३ ॥

मुखवासं तु यो दद्यादंतधावनमेव च ॥

शुविर्गंधसमायुक्तो अवाग्दुष्टस्सदा भवेत् ॥ ८४ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको मुखवास (पानसुपारी इलायची) देताहै, या दंतौन देताहै, वह शुद्ध गंधवाला होताहै; और कभी भी वाग्दुष्ट (तोतला) नहीं होता ॥ ८४ ॥

पादशौचं तु यो दद्यात्तथा तु गुदालिंगयोः ॥

यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धबुद्धिः सदा भवेत् ॥ ८५ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको पैर, गुदा और लिंग इनके शौचके लिये जल देताहै उसकी बुद्धि सर्वदा शुद्ध होतीहै ॥ ८५ ॥

औषधं पथ्यमाहारं स्नेहाभ्यंगं प्रतिश्रयम् ॥

यः प्रयच्छति रोगिभ्यः स भवेद्याधिर्वर्जितः ॥ ८६ ॥

जो मनुष्य रोगियोंको औषधी, पथ्य, भोजन, तेलका उवटन, रहनेके लिये स्थान देताहै, वह रोगरहित रहताहै, अर्थात् उसे कभी कोई रोग नहीं होता ॥ ८६ ॥

गुडभिक्षरसं चैव लवणं व्यंजनानि च ॥

सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यंतं सुखी भवेत् ॥ ८७ ॥

गन्नेका रस, गुड, लवण और व्यंजन, वा सुगंधित पान इनका दान जो मनुष्य करताहै वह अत्यन्त सुखी रहताहै ॥ ८७ ॥

दानैश्च विविधैः सम्यक्फलमेतदुदाहृतम् ॥

यह अनेक प्रकारके दानोंका फल कहा;

विद्यादानेन सुमतिब्रह्मलोकं महीयते ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य विद्याका दान करताहै, वह श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें पूजनीय होता है ॥ ८८ ॥

अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः ॥

अन्योन्यं प्रतिगृह्णन्ति तारयन्ति तरन्ति च ॥ ८९ ॥

परस्परमें अन्नके देनेवाले, और परस्परमें पूजाके करनेवाले, और परस्परमें दान लेनेवाले ब्राह्मण दूसरोंको उद्धार करतेहैं और आपसी पार हो जातेहैं ॥ ८९ ॥

दानान्येतानि देयानि तथान्यानि विशेषतः ॥

दानार्द्धं कृपणार्थिभ्यः श्रेयस्कामेन धीमता ॥ ९० ॥

यह दान पूर्वोक्त (रीतिसे) देना उचित है और विशेष करके अन्य दानभी दे, धीन और अभ्यागतोंको कल्याणकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य अर्द्ध (क्षात्रपे कहेसे आया) दे ॥ ९० ॥

ब्रह्मचारियतिभ्यस्तु वपनं यस्तु कारयेत् ॥

नखकर्मादिकं चैव चक्षुष्माण्जायते नरः ॥ ९१ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचारी और संन्यासीका मुंडन कराताहै, या इनके नखोंको कटवाताहै, वह मनुष्य नेत्रोंवाला होताहै ॥ ९१ ॥

देवागारे द्विजातीनां दीपं दद्याच्चतुष्पथे ॥

मेवावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्मान्स सदा भवेत् ॥ ९२ ॥

जो मनुष्य देवताके मंदिरोंमें दीपक देताहै, जो ब्राह्मणोंके मंदिर तथा चौराहोंमें दीपक देताहै, वह ज्ञानवान् बुद्धिमान् तथा नेत्रोंवाला होताहै ॥ ९२ ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्ये तिलान्दद्यात् स्वशक्तिः ॥

प्रजावान्पशुमांश्चैव धनवान्प्रायते नरः ॥ ९३ ॥

जो मनुष्य नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्ममें अपनी शक्तिके अनुसार तिलोंका दान करताहै, वह मनुष्य प्रजा, पशुवाला और धनवान् होता है ॥ ९३ ॥

यो यदाभ्यर्थितो विभैर्यद्यत्संप्रतिपादयेत् ॥

तृणकाष्ठादिकं चैव गोप्रदानसमं भवेत् ॥ ९४ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मांगनेपर जिस समय जो वस्तु देताहै, तृण वा काष्ठ इत्यादि उसके वह सभी गोदानकी समान होतेहैं ॥ ९४ ॥

न वै शयीत तमसा न यज्ञे नानृतं वदेत् ॥

अपचदेन्न विप्रस्य न दानं परिकीर्तयेत् ॥ ९५ ॥

अंधकारमें शयन करे; यज्ञमें झूठ न बोलें; ब्राह्मणकी निन्दा न करे, और देकर उसे कहे भी नहीं ॥ ९५ ॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥

आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥ ९६ ॥

झूठ बोलनेसे यज्ञ नष्ट होताहै अभिमानसे तपस्या नष्ट होताहै, ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे अवस्थाका नाश होजाताहै, और कहनेसे दान नष्ट होजातेहैं ॥ ९६ ॥

चत्वार्येतानि कर्माणि संध्यायां वर्जयेद्भुवः ॥

आहारं भयुनं निद्रां तथा संपाठमेव च ॥ ९७ ॥

आहाराजायते व्याधिर्गर्भो वै रौद्र मैथुनात् ॥

निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः संपाठादायुषः क्षयः ॥ ९८ ॥

ज्ञानी मनुष्य संध्योके समयमें इन चार कामोंको न करै, भोजन, मैथुन, शयन और पढ़ना ॥ ९७ ॥ भोजन करनेसे रोग उत्पन्न होताहै, मैथुनसे भयंकर गर्भ रहताहै, शयन करनेसे दरिद्रता आतीहै, और पढ़नेसे अवस्थाका नाश हो जाताहै ॥ ९८ ॥

ऋतुमती तु यो भार्या संनिधौ नोपगच्छति ॥

तस्या रजसि तं मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ ९९ ॥

जो मनुष्य ऋतुवाली स्त्रीके समीप नहीं जाताहै उस मनुष्यके पितर उस महीनेमें ही उस स्त्रीके रजमें शयन करतेहैं ॥ ९९ ॥

कृत्वा गृह्याणि कर्माणि स्वभार्यापोषणे रतः ॥

ऋतुकालाभिगामी च प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १०० ॥

जो मनुष्य गृहस्थके कर्मोंके करतेहुए अपनी स्त्रीका पोषण भली भाँतिसे करतेहैं, और ऋतुके समयमें स्त्रीके संग गमन करतेहैं, उनको परम गति मिलतीहै ॥ १०० ॥

उषित्वैवं गृहे विप्रो द्वितीयादाश्रमात्परम् ॥

वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयं तु समाश्रयेत् ॥ १०१ ॥

इस भाँति दूसरे आश्रममें तत्पर हुआ पुरुष घरमें निवास कर वली (देहके चर्म लटक आनेपर) और पलित (सफेद बालोंके होनेपर) तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ) का आश्रय ग्रहण करै ॥ १०१ ॥

वनं गच्छेत्ततः प्राज्ञः सभार्यस्त्वेक एव वा ॥ गृहीत्वा चाग्निहोत्रं च होमं तत्र न हापयेत् ॥ १०२ ॥ कृत्वा चैव पुरोडाशं वन्यैर्मध्यैर्यथाविधि ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः ॥ १०३ ॥ कुर्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः ॥ इष्टिं पार्वीयणीयां तु प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु ॥ १०४ ॥

फिर इकला या स्त्रीके साथ वनको चलाजाय; और वनमें जाकर अग्निहोत्रको ग्रहण कर हवनका त्याग न करै ॥ १०२ ॥ और वनमें विधिसहित वनके कंदमूलोंसे पुरोडाशको बनाकर शाक मूल और फलादिकी भिक्षा भिखारीको दे ॥ १०३ ॥ निरन्तर हवन करनेमें रत होकर नित्य अध्ययन करै सब पर्वोंमें (पर्व अमावस आदि) में करने योग्य श्रुति (यज्ञ वा श्राद्ध) करै ॥ १०४ ॥

उषित्वैवं वने विप्रो विधिज्ञः सर्वकर्मसु ॥

चतुर्थमाश्रमं गच्छेजितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ १०५ ॥

सम्पूर्ण कर्मोंकी विधिकी जाननेवाला ब्राह्मण इसभाँति वनमें निवास करके क्रोध और इन्द्रियोंकी जीतकर चौथे आश्रम (संन्यास) को ग्रहण करै ॥ १०५ ॥

अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ॥ वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥ १०६ ॥ अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पंच वा ॥ अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वा भंजीत सुसमाहितः ॥ १०७ ॥ अरण्ये निर्जने तत्र पुनः

रासीत मुक्तवत् ॥ एकाकी चिंतयेन्नित्यं मनोवाक्यायकर्मभिः ॥ १०८ ॥ मृत्युं च नाभिनन्देत जीवितं वा कथंचन ॥ कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ॥ १०९ ॥ संसेव्य चाश्रमान्सर्वाञ्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थविद्विजः ॥ ११० ॥

आत्माभं अश्रिको स्थापित करके संन्यासी हो जाय; सदा वेदके अभ्यास और आत्म-विद्यामें तत्पर रहे ॥ १०६ ॥ विचारवान् संन्यासी आठ वा सात या पांच भिक्षाओं को ग्रहण करे, और फिर उस भिक्षापर जल छिड़ककर सावधानीसे भोजन करे ॥ १०७ ॥ फिर निर्जन वनमें मुक्तकी समान संन्यासी बैठे, और फिर मन, वचन, कर्मसे इच्छाहीन नित्य ब्रह्मका विचार करता रहे ॥ १०८ ॥ मरने और जीनेकी प्रशंसा कभी न करे, इस भांतिसे इतनी अवस्था समाप्त हो जाय, इस कारण समयकी प्रतीक्षा करता रहे ॥ १०९ ॥ जितेन्द्रिय हो क्रोधको जीतकर चारों आश्रमोंका सेवन करके वेद और शास्त्रके अर्थको जाननेवाला ब्राह्मण ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ११० ॥

आश्रमेषु च सर्वेषु प्रोक्तोऽयं प्राश्निको विधिः ॥

यह चारों आश्रमोंके प्रश्न (जो तुमने पूछे थे) उनकी विधि कही;

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ १११ ॥

इसके आगे प्रायश्चित्तकी शुभ विधि कहता हूं (श्रवण करो) ॥ १११ ॥

ब्रह्मव्रश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥

महापातकिनस्त्वेत तत्संयोगी च पंचमः ॥ ११२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोर, गुरुकी शय्या (स्त्री) में गमन करनेवाला यह चारों महापातकी होते हैं और जो इनका संगी है वह भी महापातकी होता है ॥ ११२ ॥

ब्रह्मव्रश्च वनं गच्छेद्भक्तवासा जटी ध्वजी ॥ वन्यान्पेय फलान्यश्वत्थसर्वकामविवर्जितः ॥ ११३ ॥ भिक्षार्थी विचरेद्भ्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ॥ चातुर्वर्ण्यं चरेद्भक्ष्यं वद्भगी संयतः सदा ॥ ११४ ॥ भिक्षास्त्वेवं समादाय वनं गच्छेत्ततः पुनः ॥ वनवासी स पापः स्यात्सदाकालमतन्द्रितः ॥ ११५ ॥ ख्यापयन्मुच्यते पापाद्ब्रह्मा पापकृत्तमः ॥ अनेन तु विधानेन द्वादशाब्दव्रतं चरेत् ॥ ११६ ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वभूतहिते रतः ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय ततो मुच्येत किल्बिषात् ॥ ११७ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला महापातकी मनुष्य बल्कलको धारण करके शिरपर जटा धारण कर ध्वजा (एक हत्यारेका चिह्न इस) को लेकर वनको चला जाय, और सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकरके वनके फल मूलकाही भोजन करे ॥ ११३ ॥ यदि वनफलोंसे जीविका निर्वाह न हो तब भिक्षा मांगनेके लिये गांवमें विचरण करे; यह मनुष्य हत्याके चिह्नका धारण कर चारों वर्णोंमें भिक्षा मांगे और अपने मनको सर्वदा व्रतमें करे ॥ ११४ ॥

फिर भिक्षाको लेकर वनमें चला जाय; और वह पापी सर्वदा आलस्यको छोड़कर सर्वदा वनमें निवास करे ॥ ११५ ॥ महापापी भी अपने पापको प्रतिद्ध करताहुआ पारसे छूटजाताहै; इस भांति वारह वर्षतक व्रत करे ॥ ११६ ॥ इन्द्रियोंको रोककर सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहै ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये पूर्वोक्त आचरण करै; तब पापसे मुक्त होजाता है ॥ ११७ ॥

अतः परं सुरापस्य निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥ गौडी माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ ११८ ॥ यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ सुराप-स्तु सुरां ततां पिबेत्तत्पापमोक्षकः ॥ ११९ ॥ गोमूत्रमभिवर्णं वा गोमयं वा त-थाविधम् ॥ घृतं वा त्रीणि पेयानि सुरापो व्रतमाचरेत् ॥ १२० ॥ मुच्यते तेन पापेन प्रायश्चित्ते कृते सति ॥ अरण्ये वा वसेत्सम्यक्सर्वकामविवर्जितः ॥ १२१ ॥ चांद्रायणानि वा त्रीणि सुरापव्रतमाचरेत् ॥ एवं शुद्धिः सुरापस्य भवेदिति न संशयः ॥ १२२ ॥

इसके उपरान्त मदिरापीनेवालेका प्रायश्चित्त श्रवण करो; मदिरा तीनप्रकारकी होती है, गौडी (गुडकी) माध्वी (सहत या महुएकी) तीसरी पैष्टी (पिसी दवा तथा चून आदिकी होती है) ॥ ११८ ॥ गौडी सुराके पीनेसे जो पाप होता है अन्य सुराओंके पीनेसेभी वैसाही पाप होता है; इसकारण ब्राह्मण कभी भी किसी मदिराको न पियै; यदि मदिरा पीकर ब्राह्मण उसके पापसे छूटनेकी इच्छा करे ॥ ११९ ॥ तौ तपाईहुई मदिराको पियै वा अभिसे तपाये गोमूत्र या गोबरको पीवै, या गरम घीको पियै यह तीन वस्तुही पीनेके योग्य हैं; इसके पीछे फिर मदिरा पीनेका व्रत करे ॥ १२० ॥ मनुष्य इस भांति प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त पापसे छूटजाता है अथवा भली भाँतिसे सब कामोंको छोड़कर वनमें निवास करै, ॥ १२१ ॥ अथवा मदिरा पीनेके तीन चांद्रायण व्रत से प्रायश्चित्त करै, मदिरा पीनेवालेकी शुद्धि इस प्रकारसे होती है; इसमें किंचित भी संदेह नहीं ॥ १२२ ॥

मद्यभांडोदकं पीत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

जो मनुष्य मदिराके पात्रमें जल पीता है वह फिर संस्कारके योग्य होता है;

स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य स्तेयं राज्ञे निवेदयेत् ॥ १२३ ॥ ततो मुशलमादाय स्ते-
नं हन्यात्सकृन्नुपः ॥ यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्रिमुच्यते ॥ १२४ ॥
अरण्ये चीरवासा वा चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥ एवं शुद्धिः कृता स्तेये संवर्तव्यं च यथा ॥ १२५ ॥

सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य उस चुराई हुई वस्तुको राजाको दे दे ॥ १२३ ॥ राजा मुशल लेकर उस चोरको एकबारही मारै; यदि वह चोर उस आघातसे जीवित रह जाय तौ अपने पापसे छूट जाता है ॥ १२४ ॥ या वनमें जाकर बलकल पहरकर ब्रह्महत्याका व्रत करै, संवर्त ऋषिके वचनानुसार इस प्रकारसे इनकी शुद्धि कही है ॥ १२५ ॥

गुरुतल्पे शयानस्तु तप्ते स्वप्यादयोमये ॥ समालिंगेत्स्त्रियं वापि दीप्तां कार्णा-
यसीकृताम् ॥ १२६ ॥ चांद्रायणानि कुर्याच्च चत्वारि त्रीणि वा द्विजः ॥ मुच्य-
ते च ततः पापात्प्रायश्चित्ते कृते सति ॥ १२७ ॥

गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला मनुष्य तपायेहुए लोहेके शय्यामें शयन करे या लोहेकी
झोई बना उसे अभिमें तपाकर स्पर्श करे ॥ १२६ ॥ और ब्राह्मण तीन अथवा चार चांद्रायण
करे, इस भांति प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त उस पापसे छूट जाता है ॥ १२७ ॥

एभिः संपर्कमायाति यः कश्चित्पापमोहितः ॥

तत्तत्पापविशुद्ध्यर्थं तस्य तस्य व्रतं चरेत् ॥ १२८ ॥

जो मनुष्य पापसे मोहित होकर इनका संबंध करता है; वह भी उसी २ पापकी शुद्धिके
लिये उसी २ पापका प्रायश्चित्त करे ॥ १२८ ॥

क्षत्रियस्य वधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ कुर्याच्चैवानुरूपेण त्रीणि कृ-
च्छ्राणि संयतः ॥ १२९ ॥ वैश्यहत्यां तु संप्राप्तः कथंचित्काममोहितः ॥ कृ-
च्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत स नरो वैश्यघातकः ॥ १३० ॥ कुर्याच्छूद्रवधे विप्रस्त-
कृच्छ्रं यथाविधि ॥ एवं शुद्धिमवाप्नोति संवर्त्तवचनं यथा ॥ १३१ ॥

जो ब्राह्मण क्षत्रियको मारता है वह तीनों कृच्छ्रोंके करनेसे भली भांति शुद्ध होता है, और
क्रमानुसार तीन कृच्छ्रोंको मनुष्य सावधान होकर करे ॥ १२९ ॥ जो मनुष्य कामसे मोहित
होकर यदि वैश्यकी हत्याकरे तो वह तीनकृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतके करनेसे शुद्ध होता है
॥ १३० ॥ शूद्रके मारनेवाला ब्राह्मण विधिसहित तप्त कृच्छ्र करे, तब संवर्त्त मुनिके वचनके
अनुसार इस प्रकारसे शुद्ध होता है ॥ १३१ ॥

गोघ्नस्यातः प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं तत्त्वतः शुभाम् ॥ १३२ ॥ गोघ्नः कुर्वीत
संस्कारं गोष्ठे गोरूपसन्निधौ ॥ तत्रैव क्षितिशायी स्यान्मासार्द्धं संयतेंद्रियः
॥ १३३ ॥ स्नानं त्रिषवणं कुर्यान्नखलोमाविवर्जितः ॥ सक्त्यावकभिक्षाशी पयोद-
धिशकृन्नरः ॥ १३४ ॥ एतानि क्रमशोऽश्वीयाद्विजस्तत्पापमोक्षकः ॥ गायत्रीं च
जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥ १३५ ॥ पूर्णं चैवार्द्धमासे च स विप्रान्भोज-
येद्विजः ॥ भुक्तवत्सु च विप्रेषु गां च दद्याद्विचक्षणः ॥ १३६ ॥ व्यापन्नानां बहूनां
तु रोधनेबंधनेऽपि वा ॥ भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ १३७ ॥

अब गोहत्याके करनेवालेका यथार्थ उत्तम प्रायश्चित्त कहता हूं ॥ १३२ ॥ गौका मारने-
वाला मनुष्य गौशाला और गौके समीप रहकर अपना संस्कार करे और पंद्रहदिनतक इन्द्रि-
योंको वशमें करके गौशालामेंही शयन करे ॥ १३३ ॥ इसके पीछे तीन समयमें स्नान करे,
और नख, लोम इनको न रक्खे, सत्तू, जौ, दूध, दही, गोबर ॥ १३४ ॥ क्रमानुसार इनको
गौहत्याके पापसे छूटनेकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण भोजन करे; और अपनी शक्तिके अनुसार
गायत्री आदि पवित्र मंत्रोंको निरंतर जपतारहे ॥ १३५ ॥ आधे महीनेके समाप्त होनेपर वह

ब्राह्मण ब्राह्मणोंको भोजन करावै; जिस समय ब्राह्मण भोजन करते हों उस समय गोदान भी करना उचित है ॥ १३६ ॥ रोकने, बांधने, या उलटी चिकित्सा करनेसे यदि बहुतसी गौ मरजायें तौ हत्याका दूना व्रत करै ॥ १३७ ॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्देवाद्यापादिता क्वचित् ॥

पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ १३८ ॥

यदि कभी एक गौको बहुतसे मनुष्योंने मारडालाहो तौ वह पृथक् २ गोहत्याके चौथाई प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होंगे ॥ १३८ ॥

यंत्रणे गोश्चिकित्सार्थे मूढगर्भविमोचने ॥ यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥ १३९ ॥ औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥ दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम् ॥ १४० ॥

चिकित्साके निमित्त वश करनेके समयमें अथवा मरेहुए गर्भ निकालनेके समयमें यदि किसीसे गौ मरजाय, तौ उसको पाप नहीं लगता ॥ १३९ ॥ यदि गौ और ब्राह्मण इनकी चिकित्सा करते समय औषधी, तथा घीको दे और वह तौ उस औषधादिसे न बचै किंतु मरजाय तौ उसका पाप नहीं होता वरन औषधादि चिकित्सा करनेसे पुण्यही होताहै ॥ १४० ॥

प्रायश्चित्तस्य पापं तु रोधेषु व्रतमाचरेत् ॥ द्वौ पादौ बंधने चैव पादोनं यंत्रणे तथा ॥ १४१ ॥ पाषाणैर्लगुडैर्दंडैस्तथा शस्त्रादिभिर्नरः ॥ निपातने चरेत्सर्वं प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ १४२ ॥

यदि गौ रोकनेसे मरजाय तौ चौथाई प्रायश्चित्त करै, और बांधनेसे मरजाय तौ आधा करै, और वशमें करनेसे मरजाय तौ पौन करै तब शुद्ध होताहै ॥ १४१ ॥ यदि पत्थर, सोंटा, दंड और शस्त्र इनसे गौ मरजाय तौ तीन दिनतक पूरा प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४२ ॥

हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकर्पास्तथा ॥

एषां वधे द्विजः कुर्यात्सप्तरात्रमभोजनम् ॥ १४३ ॥

जो ब्राह्मण हाथी, घोड़ा, भैंस, ऊंट, वानर इनको मारताहै वह सातदिनतक भोजन न करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १४३ ॥

व्याघ्रं श्वानं खरं सिंहमृक्षं सूकरमेव च ॥

एतान्हत्वा द्विजो मोहात्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १४४ ॥

जिस मनुष्यने अज्ञानतासे व्याघ्र, कुत्ता, गधा, सिंह, रीछ, सूकर इनको माराहै वह तीन रात्रिमें शुद्ध होताहै ॥ १४४ ॥

सर्वासामेव जातानां मृगाणां वनचारिणाम् ॥

अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४५ ॥

जो मनुष्य वनमें विचरण करते हुए सम्पूर्ण जातिके मृगोंको मारताहै वह अहोरात्र उपवास करै और 'जातवेदसे' इस मंत्रका जप करताहुआ स्थित रहै ॥ १४५ ॥

हंसं काकं बलाकां च बर्हिंकारंडवापि ॥ सारसं चाषभासौ च हत्वा त्रिदिवसं
क्षिपेत् ॥ १४६ ॥ चक्रवाकं तथा क्रौंचं सारिकाशुकतित्तिरीन् ॥ श्येनगृध्रानु-
लूकांश्च पारावतमथापि वा ॥ १४७ ॥ टिट्ठिभं जालपादं च कोकिलं कुक्कुटं
तथा ॥ एषां वधे नरः कुर्यादेकरात्रप्रभोजनम् ॥ १४८ ॥ पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां
हंसादीनामशेषतः ॥ अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४९ ॥

जो मनुष्य हंस, कौआ, मोर, कारंडव, सारस, चाप, भास इनको मारताहै वह तीनदिन
उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४६ ॥ जो मनुष्य चक्रवा, कूज, भैना, तोता, तीतर,
शिखरा, गीध, उल्लू, कचूतर, ॥ १४७ ॥ टट्टीरी, जालपाद (हंसमेद) कोयल, मुरगा,
इनको मारताहै वह मनुष्य एक रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १४८ ॥ पूर्वोक्त कहे-
हुए सम्पूर्ण जीव और विशेष करके हंसआदिके मारनेवाला अहोरात्र उपवास कर 'जातवेदसे',
मन्त्रका जप करता हुआ स्थित रहै ॥ १४९ ॥

मंडूकं चैव हत्वा च सर्पमार्जारमूषकान् ॥

त्रिरात्रोपोषितस्तिष्ठेत्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ १५० ॥

जो मनुष्य मंडूक, सांप, विलाव, मूसा, इनको मारताहै वह तीन उपवास कर ब्राह्मण
भोजन करानेसे शुद्ध होताहै ॥ १५० ॥

अनस्थो ब्राह्मणो हत्वा प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

अस्थिमतां वधे विप्रः किंचिदद्याद्विचक्षणः ॥ १५१ ॥

बिना हड्डीके जीवोंको मारनेवाला ब्राह्मण प्राणायामके करनेसेही शुद्ध होताहै; और हड्डी-
वाले छोटे २ जीवोंका मारनेवाला कुल एक दान करनेसेही शुद्ध होताहै ॥ १५१ ॥

यश्चण्डालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥ त्रिभिः कृच्छ्रैस्तु शुद्ध्येत प्राजा-
पत्यानुपूर्वकैः ॥ १५२ ॥ पुंश्चलीगमनं कृत्वा कामतोऽकामतोपि वा ॥ कृच्छ्र-
चांद्रायणे तस्य पावनं परमं स्मृतम् ॥ १५३ ॥ शैलूर्ध्वा रजकीं चैव वेणुचर्मो-
पजीविनीम् ॥ एता गत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ १५४ ॥ क्षत्रिया-
मथ वैश्यां वा गच्छेद्यः काममोहितः ॥ तस्य सांतपनः कृच्छ्रो भवेत्पापापनो-
दनः ॥ १५५ ॥ शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासाद्धमेव वा ॥ गोमूत्रयाव-
काहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ १५६ ॥ विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्येन
शुद्ध्यति ॥ स्वजनां तु द्विजो गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५७ ॥ क्षत्रियां
क्षत्रियो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत् ॥ नरो गोगमनं कृत्वा कुर्याच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १५८ ॥
मातुलानीं तथा श्वश्रूं सुतां वै मातुलस्य च ॥ एता गत्वा स्त्रियो मोहात्पराकेण
विशुद्ध्यति ॥ १५९ ॥ गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च ॥ तस्या दुहितरं
चैव चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १६० ॥ पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्यागमे तथा ॥
शुरुत्पव्रतं कुर्यात्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥ १६१ ॥ पितृभार्यां समारुह्य मातृ-

वर्जा नराधमः ॥ भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ॥ १६२ ॥
 एतास्तिस्रः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ कुमारीगमने चैतद्व्रतमेतत्समा-
 चरेत् ॥ १६३ ॥ पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥ सखिभार्यां समारुह्य
 श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ॥ १६४ ॥ मातरं योधिगच्छेच्च स्वसारं पुरुषाधमः ॥
 न तस्य निष्कृतिर्गच्छेत्स्वां चैव तनुजां तथा ॥ १६५ ॥ नियमस्थां व्रतस्थां
 वा योभिगच्छेत्स्त्रियः द्विजः ॥ स कुर्यात्प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ १६६ ॥
 रजस्वलां तु यो गच्छेद्भर्भिणीं पतितां तथा ॥ तस्य पापविशुद्धयर्थमतिकृच्छ्रो
 विधीयते ॥ १६७ ॥ वैश्यजां ब्राह्मणो गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ॥ एवं शुद्धिः
 समाख्याता संवर्तस्य वचो यथा ॥ १६८ ॥

जो ब्राह्मण कामदेवसे मोहित हो चांडालीके संग गमन करताहै वह क्रमानुसार प्राजाप-
 त्यआदि तीन कृच्छ्रोंके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५२ ॥ जो मनुष्य जानकर या बिना जाने-
 हुए व्यभिचारिणी स्त्रीके संग संभोग करताहै वह कृच्छ्र और चांद्रायण इन दोनोंके भली-
 भांति करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५३ ॥ जो ब्राह्मण मोहित होकर, नटनी, घोविन, वांस और चमड़ेसे
 जीविका करनेवाली स्त्रियोंके संग गमन करताहै, वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १५४ ॥
 जो ब्राह्मण क्षत्रियकी अथवा वैश्यकी स्त्रीके संग कामदेवसे मोहित होकर गमन करताहै;
 वह सांतपन कृच्छ्रके करनेसे उसके पापसे छूटसकताहै ॥ १५५ ॥ जो मनुष्य एक महीने
 अथवा पंद्रह दिनतक शुद्धकी स्त्रीके साथ गमन करताहै; वह पंद्रह दिनतक गोमूत्र और जौ-
 को खानेसे शुद्ध होताहै ॥ १५६ ॥ जो मनुष्य अन्य कुटुम्बकी ब्राह्मणीके साथ गमन
 करता है वह प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है; और अपने कुटुम्बकी स्त्रीके साथ गमन
 करनेवाला ब्राह्मण प्राजापत्यके करनेसे ही शुद्ध होता है ॥ १५७ ॥ क्षत्रिय क्षत्री स्त्रीके
 साथ गमन करनेसे प्राजापत्यके करनेसे शुद्ध होता है; जो मनुष्य गौके साथ गमन करता
 है वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै; ॥ १५८ ॥ मामाकी स्त्री; (माई) ,
 मामाकी पुत्री, जो मनुष्य अज्ञानसे इनके साथ गमन करताहै वह पराक व्रतके करनेसे भली
 भांति शुद्ध होताहै ॥ १५९ ॥ जो मनुष्य गुरुकी पुत्री, बुआके साथ, और बुआकी बेटी के
 साथ गमन करताहै वह चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १६० ॥ चाचा, और
 भाईकी बहूके साथ गमन करनेवाला मनुष्य गुरुकी स्त्रीके साथ गमनका प्रायश्चित्त करे ॥
 इसके अतिरिक्त उसके पापकी निवृत्ति नहीं होती ॥ १६१ ॥ माताके अतिरिक्त पिताकी
 अन्य स्त्री और माताकी शीलवती बहिन, और दूसरी मातामें उत्पन्न हुई सौतेली
 बहिन ॥ १६२ ॥ इन तीनों स्त्रियोंके साथ जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य गमन करताहै वह
 तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै; और जो कुमारी (बिना विवाही हुई) के साथ गमन
 करनेवाला मनुष्य यही तप्तकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १६३ ॥ जो मनुष्य पशु और
 वेश्याके साथ गमन करताहै वह प्राजापत्य करनेसे शुद्ध होताहै, मित्रकी स्त्री, सास, सालेकी
 स्त्री ॥ १६४ ॥ १, वहन, और अपनी लडकी, जो मनुष्योंमें नीच मनुष्य इनके साथ
 करताहै व प्रायश्चित्तही नहीं है ॥ १६५ ॥ जो ब्राह्मण नियम व्रतमें स्थित हुई स्त्रीके

साय गमन करताहै वह प्राकृत कृच्छ्रके करनेसे और दूध देतीहुई गौके दान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १६६ ॥ जो मनुष्य रजस्वला, गर्भवती और पतित स्त्रीके साथ गमन करताहै वह अतिकृच्छ्रके करनेसे अपने पापसे मुक्त होताहै ॥ १६७ ॥ वैश्यकी कन्याके साथ गमन करनेवाला ब्राह्मण एक कृच्छ्रके करनेसे संवत् मुनिके वचनके अनुसार शुद्ध होताहै ॥ १६८ ॥

कथंविद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १६९ ॥

कदाचित् क्षत्रिय, और वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करें, तो एक महीनेतक गोमूत्र और जौके खानेसे शुद्ध होतेहैं ॥ १६९ ॥

शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कदाचित्काममोहितः ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १७० ॥

यदि शूद्र कामदेवसे मोहित हो कदाचित् ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ गमन करें तो गोमूत्र और जौके खानेसे एकमहीनेमें शुद्ध होताहै ॥ १७० ॥

ब्राह्मणीं शूद्रसंपर्के कदाचित्समुपागते ॥ कृच्छ्राचांद्रायणं तस्याः पावनं परमं स्मृतम् ॥ १७१ ॥ चण्डालं पुल्कसं चैव श्वपाकं पतितं तथा ॥ एताञ्छ्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्युश्चांद्रायणत्रयम् ॥ १७२ ॥

यदि ब्राह्मणकीही स्त्री कदाचित् शूद्रका संग करे तो उस ब्राह्मणकी स्त्रीकी शुद्धि कृच्छ्र चांद्रायणके करनेसे होतीहै ॥ १७१ ॥ और जो श्रेष्ठ ब्राह्मण आदि उच्चम जातिकी स्त्री चांडाल, पुल्कस, श्वपाक इनके साथ गमन करें तो वह तीन चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १७२ ॥

अतः परं प्रदुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हय ॥ संन्यस्य दुर्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ॥ १७३ ॥ कुर्यात्कृच्छ्रं समानं तत्पण्मासांस्तदनंतरम् ॥ विषाग्निश्यामश-
वलास्तेषामेवं विनिर्दिशेत् ॥ १७४ ॥ स्त्रीणां तथा च चरणे ह्यधिमासगमे तथा ॥ पतनेष्वप्ययं दृष्टः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥ १७५ ॥ नृणां विप्रातिपत्तौ च पावनः प्रेत्य चेह च ॥

इससे आगे अत्यन्त दुष्टोंका प्रायश्चित्त श्रवण करो, यदि कोई दुष्टबुद्धि पुरुष संन्यास लेकर संतानके निमित्त स्त्रीका संग करताहै ॥ १७३ ॥ वह निरन्तर छः महीनेतक कृच्छ्र व्रत करे, और विष, और अग्निसे जो काले और कदरे हो जाय वहभी पूर्वोक्त कृच्छ्र व्रतके करनेसेही शुद्ध होतेहैं ॥ १७४ ॥ स्त्रियें भी संन्यास लेकर यदि संतानकी इच्छासे फिर गृहस्थकी इच्छामें रत होजाय तो वहभी एक महीनेसे अधिक पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करें ॥ १७५ ॥ मनुष्योंकी सम्पूर्ण विपत्तियोंमें पूर्वोक्त कृच्छ्रही इसलोक और परलोकमें पवित्र करने वालाहै;

गोविप्रमहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥ १७६ ॥

नैवाश्रुपतनं कार्यं सद्भिः श्रेयोभिकांक्षिभिः ॥

जो मनुष्य गौ और ब्राह्मणसे मराहो, या जो आत्मघातसे मराहो ॥ १७६ ॥ इनके मरजानेपर अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुष न रोवें;

एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७७ ॥ कृत्वा चोदकदानं तु चरेच्चांद्रा-
यणव्रतम् ॥ तच्छ्रवणं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पतितं यदि ॥ १७८ ॥ पूर्वकेष्वप्य-
कारी चेदेकाहं क्षपणं तथा ॥ महापातकिनां चैव तथा चैवात्मघातिनाम् ॥
॥ १७९ ॥ उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् ॥ नोपतिष्ठति तत्सर्वं
राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥ १८० ॥

और यदि कोई मनुष्य प्रेमके वश होकर श्मशानमें प्रेतको लेजाय अथवा जलादे ॥ १७७ ॥
तौ वह जलदान करके चांद्रायणव्रत करै; और केवल इन्हीं श्रावोंका स्पर्श करै जिनको कोई
न रोयाहो ॥ १७८ ॥ और यदि पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करनेमें असमर्थ हो तो एकदिन उपवास
करै, महापातकी और आत्मघाती ॥ १७९ ॥ इन मनुष्योंको जो जलदान पिंडदान और
जो श्राद्ध किया जाताहै, वह सब इनको नहीं मिलता, वरन उसे राक्षस नष्ट करदेतेहैं ॥ १८० ॥

चण्डालैस्तु हता ये तु द्विजा दंष्ट्रिसरीसृपैः ॥ श्राद्धं तेषां न कर्तव्यं ब्रह्मदंडहता
श्च ये ॥ १८१ ॥ कृत्वा मूत्रपुरीषे तु भुक्तवोच्छिष्टस्तथा द्विजः ॥ श्वादिस्पृष्टो
जपेद्देव्याः सहस्रं ज्ञानपूर्वकम् ॥ १८२ ॥

जो ब्राह्मण कुत्तेके काटनेसे मराहो, या जो सर्पके काटनेसे मराहो अथवा जो
ब्राह्मणके शापसे मराहो उसके लिये श्राद्धकरना उचित नहीं ॥ १८१ ॥ यदि भोजनसे
उच्छिष्ट ब्राह्मणको, और जिसने लघुशंका और मलका त्याग कियाहो उसको यदि कुत्ता
आदि छूजाय तौ वह ज्ञान कर एक हजार बार गायत्रीका जप करै ॥ १८२ ॥

चंडालं पतितं स्पृष्ट्वा श्वमंत्यजमेव च ॥

उदक्यां सूतिकां नारी सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १८३ ॥

जो मनुष्य चंडाल, पतित, श्व, अंत्यज, रजस्वला और सूतिका स्त्रीका स्पर्श करताहै
वह वस्त्रोंसहित स्नान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १८३ ॥

स्पृष्टेन संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥

ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥ १८४ ॥

इनके स्पर्श करनेवालेने यदि जिसका स्पर्श कियाहो वह स्नानही करके फिर आचमन
करै, और सम्पूर्ण वस्त्रादिकोंको जलसे छिड़कदे ॥ १८४ ॥

चंडालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्चेद्विजोत्तमः ॥

गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८५ ॥

यदि चंडाल आदि उच्छिष्ट ब्राह्मणको छूळें तौ गोमूत्र और जौके खानेसे तीन रात्रिमें
उसकी शुद्धि होतीहै ॥ १८५ ॥

शुना पुष्पवती स्पृष्ट्वा पुष्पवत्यान्यया तथा ॥

शेषाण्यहान्युपवसेत्स्नात्वा शुद्धयेद्घृताग्नात् ॥ १८६ ॥

जिस रजस्वला स्त्रीको कुत्तेका अथवा अन्य रजस्वला स्त्रीका स्पर्श हुवाहो वह बाकी रहे
रजोदर्शनके दिनोत्तक उपवास करै और स्नानकर घीके खानेसेही शुद्ध होतीहै ॥ १८६ ॥

चण्डालभांडसंस्पृष्टं पिवेत्कूपगतं जलम् ॥

गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

जिस कूपमें चांडालके पात्रका स्पर्श हुआ हो उस कूपके जलको जो मनुष्य पीता है वह गोमूत्र, और जोको खाकर तीनरात्रिमें शुद्ध होता है ॥ १८७ ॥

अंत्यजैः स्वीकृते तीर्थं तडागेषु नदीषु च ॥ शुद्ध्यन्ते पंचगव्येन पीत्वा तोयम-
क्रामतः ॥ १८८ ॥ सुराघटप्रपातोऽपि पीत्वा नालीजलं तथा ॥ अहोरात्रोपितो
भूत्वा पंचगव्यं पिवेद्द्विजः ॥ १८९ ॥ कूपे विण्मूत्रसंस्पृष्टाः प्राश्य चापो द्विजा-
तयः ॥ त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यन्ति कुंभे सांतपनं स्मृतम् ॥ १९० ॥

जो मनुष्य अज्ञानसे अंत्यजोंके स्वीकृत किये तीर्थ, तालाव, नदी इनके जलको पीता है वह पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ १८८ ॥ मदिराके घड़े प्याउ इनका और नालीसे जो ब्राह्मण जलको पीता है, वह अहोरात्र उपवास कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ १८९ ॥ जो ब्राह्मण विष्टा, अथवा मूत्र मिले हुए कूप अथवा घड़ेके जलको पीता है वह क्रमानुसार तीन दिन उपवास कर सांतपन कृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९० ॥

वापीकूपतडागानामुपहतानां विशोधनम् ॥

अपां घटशतोद्धारः पंचगव्यं च निक्षिपेत् ॥ १९१ ॥

कूप, तालाव, वावडी यदि इनका जल अशुद्ध होजाय तो उनमेंसे सौ घड़े जल निकाल कर उनमें पंचगव्य डाल दे तब उनकी शुद्धि होती है ॥ १९१ ॥

स्त्रीक्षीरमाविकं पीत्वा संधिन्याश्चैव गोः पयः ॥

तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानां चैव भक्षणे ॥ १९२ ॥

जो मनुष्य स्त्री, भेड़ और संधिनी (जो गर्भवती गौ दूध देनेवाली हो) गौ इनके दूधको पीता है वह त्रिरात्र उपवास कर ब्राह्मणोंको भोजन करावे तब उसकी शुद्धि होती है ॥ १९२ ॥ विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ श्वकाकोऽच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु त्र्यहं द्विजः ॥ १९३ ॥ विडालमूपिकोच्छिष्टे पंचगव्यं पिवेद्द्विजः ॥ शूद्रोच्छिष्टं तथा मुक्तां त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १९४ ॥

जो मनुष्य विष्टा और मूत्रका भक्षण करता है वह प्राजापत्य व्रत करे; और कुत्ता, डौआ, गौ इनकी उच्छिष्ट जिस ब्राह्मणने खाई हो वह तीन दिनतक उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९३ ॥ जो ब्राह्मण विलाव, चुहे इनकी उच्छिष्ट खाता है वह पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है; और शूद्रकी उच्छिष्ट खानेवाला तीन रात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९४ ॥

पलांडुं लशुनं जग्ध्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम् ॥

छत्राकं विड्वराहं च चरेत्सांतपनं द्विजः ॥ १९५ ॥

जो ब्राह्मण प्याज, लहसुन, और ग्राममेंका मुरगा, छत्री, और विष्टा खानेवाले सूकर को जो खाता है वह सांतपन करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९५ ॥

श्वविड खरोष्ठाणां कपेर्गोमायुकाकयोः ॥

प्राश्य मूत्रपुरीषे वा चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १९६ ॥

जो मनुष्य कुत्ता, बिलाल, गधा, ऊँट, बानर, गीदड़, कौआ इनके मूत्र व विष्ठाको खाता है वह चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९६ ॥

अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपद्रुतम् ॥

पतितैः प्रेक्षितं वापि पंचगव्यं द्विजः पिबेत् ॥ १९७ ॥

जो ब्राह्मण वासी अन्न, बालपड़े हों, अथवा जिसे पतितोंने देखाहो उस अन्नको खाने वाला पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ १९७ ॥

अंत्यजाभाजने भुक्त्वा उदकयाभाजने तथा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १९८ ॥

जो मनुष्य अंत्यज खोके या रजस्वलाके पात्रमें खाता है वह गोमूत्र और जौके खानेसे पंद्रह दिनमें शुद्ध होता है ॥ १९८ ॥

गोमांसं मानुषं चैव शुनो हस्तात्समाहृतम् ॥

अभक्ष्यं तद्भवेत्सर्वं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १९९ ॥

जो मनुष्य गौका मांस और मनुष्यका मांस तथा कुत्तेके द्वारा आयेहुए ऐसे अभक्षणीय मांसको खाता है वह चांद्रायणके करनेसे शुद्ध होता है ॥ १९९ ॥

चंडाले संकरे द्विप्रः श्वपाके पुल्कसेपि वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०० ॥

जो मनुष्य चंडाल, वर्णसंकर, श्वपाक, और पुल्कस इनके यहांका भोजन करता है उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होती है ॥ २०० ॥

पतितेन तु संपर्कं मांसं मासार्द्धमेव वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०१ ॥

जो मनुष्य पंद्रह दिन या एक महीनेतक पतितका संसर्ग करे तो गोमूत्र और जौको खाकर उसकी शुद्धि पंद्रह दिनमें होती है ॥ २०१ ॥

पतिताद्रव्यमादत्ते भुंक्ते वा ब्राह्मणो यदि ॥

कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद्विजः ॥ २०२ ॥

पतितके द्रव्यको जो ब्राह्मण लेता है अथवा उसके यहां जो भोजन खाता है वह वमन करके अतिकृच्छ्रके करनेसे शुद्ध होता है ॥ २०२ ॥

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥ तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या

प्रत्यहं द्विजः ॥ २०३ ॥ एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥

ब्राह्मण जिन २ कर्मोंमें अपने को पतित विचारै तो वह उन्हीं २ कर्मोंमें गायत्री और तिलोंसे प्रतिदिन हवन करता है ॥ २०३ ॥ मैंने यह प्रायश्चित्तकी उत्तम विधि सुनाई,

अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं न चोच्यते ॥ २०४ ॥

अब जो पाप शास्त्रमें नहीं कहे हैं उनका प्रायश्चित्तभी नहीं कहा है ॥ २०४ ॥
दानं ह्येवैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ॥ पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदान्यासात्र
संशयः ॥ २०५ ॥ सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ॥ नाशयत्याशु
पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥ २०६ ॥ तिलं धेनुं च यो दद्यात्संयताय द्विजा-
तये ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

ब्राह्मण दान, हवन, जप, प्राणायाम और वेदपाठ इनके करनेसे सर्वदा पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २०५ ॥ सुवर्ण, गौ, पृथ्वी, इनके दान करनेसे दूसरे जन्मके किये हुए पापभी शीघ्र नष्ट हो जातेहैं ॥ २०६ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय ब्राह्मणको तिल वा गौदान करताहै वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निःसन्देह छूटजाताहै ॥ २०७ ॥

माघमासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यामुपोषितः ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तिलान्दत्त्वा सर्वपापैः
प्रमुच्यते ॥ २०८ ॥ उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्यां तु कार्तिके ॥ हिरण्यं
वस्त्रमन्नं च दत्त्वा तरति दुष्कृतम् ॥ २०९ ॥ अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिन-
क्षये ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दत्ते भवति चाक्षयम् ॥ २१० ॥ अमावास्यां द्वादश्यां
च संक्रांतौ च विशेषतः ॥ एताः प्रशस्तास्तिययो आनुवारस्तथैव च ॥ २११ ॥
तत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ उपवासस्तथा दानमेकैकं
पावयेन्नरम् ॥ २१२ ॥

माघके महीनेकी पूर्णमासीके दिन जो मनुष्य उपवास करके तिलदान करताहै; वह सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २०८ ॥ कार्तिककी पूर्णमासीके दिन जो मनुष्य उपवास करके सुवर्ण, वस्त्र और अन्न इनका दान करताहै, उसके सन्पूर्ण पाप नष्ट हो जातेहैं ॥ २०९ ॥ उत्तरायण, और दक्षिणायन, और विषुव (तुला मेष) की संक्रान्ति, व्यतीपात, तिथिकी हानि, चन्द्रमा और सूर्यग्रहणके समयमें जो मनुष्य दान करताहै उसका वह दान अक्षय होजाताहै ॥ २१० ॥ अमावस्या, द्वादशी, संक्रांति, रविवार विशेष करके यह तिथिही अति उत्तम हैं ॥ २११ ॥ इनमें जो जप, हवन, स्नान, ब्राह्मणोंका भोजन, उपवास और दान कियाजाय वही मनुष्यको पवित्रताका देनेवाला है ॥ २१२ ॥

स्नातः शुचिर्धातवासाः शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ॥ सात्त्विकं भावमास्थाय दानं
दद्याद्रिचक्षणः ॥ २१३ ॥ सप्तव्याहृतिभिः कार्यो द्विजैर्होमो जितात्मभिः ॥
उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥ २१४ ॥ महापातकसंयुक्तो लक्षहोमं
सदा द्विजः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः ॥ २१५ ॥

स्नानवान् मनुष्य स्नान करके शुद्ध हो घुले हुए सफेद वस्त्रोंको पहन कर शुद्धमन हो इन्द्रियोंको जीत शीलवान् होकर दान करे ॥ २१३ ॥ मनको जीतनेवाले ब्राह्मण उस पात-
ककी शुद्धिके निमित्त एक हजार सात व्याहृतियोंसे हवन करे ॥ २१४ ॥ और महापातकी ब्राह्मण एक लाख गायत्रीसे हवन करे, कारण कि गायत्रीसेही पवित्र होकर सन्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ २१५ ॥

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ॥ गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशु-
द्धये ॥ २१६ ॥ स्नात्वा आचम्य विधिवत्ततः प्राणान्समापयेत् ॥ प्राणायामै-
स्त्रिभिः पूतो गायत्रीं तु जपेद्विजः ॥ २१७ ॥ अङ्घ्रिवासाः स्थलगः शुचौ
देशे समाहितः ॥ पवित्रपाणिचांतो गायत्र्या जपमाचरेत् ॥ २१८ ॥ ऐहि-
कामुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः ॥ पंचरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति
॥ २१९ ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥ महाव्याहृतिसंयुक्तां
प्रणवेन च संजपेत् ॥ २२० ॥ ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः ॥ गाय-
त्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२१ ॥ अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा
चात्रं विगर्हितम् ॥ गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ २२२ ॥ अह-
न्यहनि योऽधीते गायत्रीं वै द्विजोत्तमः ॥ मासेन मुच्यते पापादुरगः कंचुका-
द्यथा ॥ २२३ ॥ गायत्रीं यस्तु विप्रो वै जपेत् नियतः सदा ॥ स याति परमं
स्थानं वायुभूतः स्वमूर्तिमान् ॥ २२४ ॥

मनुष्य वनमें जाकर सम्पूर्ण पापोंकी शुद्धिके लिये वेदोंकी माता और पवित्र गायत्रीका
जप नदीके किनारेपर करै ॥ २१६ ॥ ब्राह्मण स्नान और आचमन करके प्राणोंको स्थिर
करै पहले तीन प्राणायाम करके पवित्र हो गायत्रीका जप करै ॥ २१७ ॥ गीले वस्त्रोंको
न पहरे और पवित्र स्थानमें बैठे, इसके पीछे सावधान होकर कुशाक्षोंकी पवित्री पहनकर
आचमनके उपरान्त गायत्रीको जपे ॥ २१८ ॥ जो मनुष्य पांच रात्रियों तक बराबर गायत्री
को जपता रहताहै, उसके इस जन्म और दूसरे जन्मके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ २१९ ॥
गायत्रीसे परे पापियोंकी शुद्धि नहीं है; इसी कारण महाव्याहृति और अङ्कारके साथ गायत्री
का जप करता रहै ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी भोजनको त्याग कर सबके कल्याणके हितके
निमित्त गायत्रीको एक लाख जपताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ २२१ ॥ जो मनुष्य
यज्ञकराने अयोग्य पुरुषको यज्ञकराता है अथवा जो निन्दित अन्नको खाताहै उसकी शुद्धि
आठ हजार गायत्री के जपकरनेसे होतीहै ॥ २२२ ॥ जो ब्राह्मण प्रतिदिन गायत्रीका जप
करता रहताहै; वह पापोंसे सौंपसे छोडी हुई कैचलीकी समान छूटजाताहै ॥ २२३ ॥ जो
ब्राह्मण जितेन्द्रिय होकर सर्वदा गायत्रीका जप करताहै वह वायु और आकाशरूपहो वैकु-
ण्ठको जाताहै ॥ २२४ ॥

प्रणवेन च संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः ॥ गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः
पिवेद्विजः ॥ २२५ ॥ निगृह्य चात्मनः प्राणान्प्राणायामो विधीयते ॥ प्राणायाम-
मंत्रं कुर्यान्नित्यमेव समाहितः ॥ २२६ ॥ मानसं वाचिकं पापं कायेनैव च
यत्कृतम् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति प्राणायामप्रभावतः ॥ २२७ ॥

ब्राह्मण अङ्कार सहित सात व्याहृति और शिरस मंत्रके साथ गायत्रीको तीनवार सर्वदा
पढे वायु पीवै ॥ २२५ ॥ प्राणोंको वशमें करनेहीका नाम प्राणायाम है, इसकारण मनुष्य
सावधान होकर प्रतिदिन तीन प्राणायाम करै ॥ २२६ ॥ मन, वाणी और देहसे किये हुए
सम्पूर्ण पाप प्राणायामके प्रभावसे नष्ट होजातेहैं ॥ २२७ ॥

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ॥ सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः
प्रमुच्यते ॥ २२८ ॥ पावमानां तथा कौत्सीं पौरुषं सूक्तमेव च ॥ जप्त्वा पापैः
प्रमुच्येत सपित्र्यं माधुच्छंदसम् ॥ २२९ ॥ मंडलं ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृह-
द्यथा ॥ वामदेव्यं बृहत्साम सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३० ॥

जो मनुष्य ऋग्वेद, यजुर्वेदकी शाखा और रहस्यसहित सामवेदका पाठ करताहै वह सब
पापोंसे छूटजाता है ॥ २२८ ॥ जो मनुष्य पावमानां और कौत्सी ऋचा, पुरुषसूक्त, पितरों-
के मंत्र, माधुच्छंदस मंत्र इनका जप करताहै वह समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ २२९ ॥
मंडल ब्राह्मण, रुद्रसूक्तकी ऋचां, बृहत् वामदेवके बृहत्सामवेदका जप करनेवाला मनुष्यभी
सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ॥ २३० ॥

चांद्रायणं तु सर्वेषां पापानां पावनं परम् ॥ कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव
च ॥ २३१ ॥ धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं संवर्त्तेन तु भाषितम् ॥ अथीत्य ब्राह्मणो
गच्छेद्ब्रह्मणः सन्न शाश्वतम् ॥ २३२ ॥

इति संवर्त्तप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे पवित्र करनेवाले उत्तम चांद्रायणव्रतको करताहै; उसको उत्तम
स्थान प्राप्त होताहै ॥ २३१ ॥ जो ब्राह्मण संवर्त्त ऋषिके कहेहुए धर्मशास्त्रको पढ़ताहै वह
सनातन ब्रह्मलोकमें जाताहै ॥ २३२ ॥

इति संवर्त्तस्मृतिभाषाटीका समाप्ता ।

संवर्त्तस्मृतिः समाप्ता ॥ ८ ॥



॥ श्रीः ॥

कात्यायनस्मृतिः ६

भाषाटीकासमेता ।

थमखंडः १.

श्रीगणेशायनमः ॥ अथातो गोभिलोक्तानामन्येषां चैव कर्मणाम् ॥

अस्पष्टानां विधिं सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदीपवत् ॥ १ ॥

इसके पीछे गोभिल ऋषिकी कहीहुई अन्यान्य कर्मोंकी विधि दीपकके समान प्रकाशमान भलीभांति से दिखाताहूँ ॥ १ ॥

त्रिवृद्ध्ववृतं कार्यं तंतुत्रयमधोवृतम् ॥ त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथि-
रिष्यते ॥ २ ॥ पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विदते कटिम् ॥ तद्वार्यमुपवीतं
स्यान्नातो लवं न चोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥ सदोपवीतिना भाव्यं सदा वद्वाशिखेन च ॥
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ ४ ॥

त्रिवृत् तीनवार एक डोरेके ऊपरको और तीनों त्रिवृत् नीचेको बनावै, तब यह यज्ञो-
पवीत होताहै और फिर उसमें एक ग्रंथि लगावै ॥ २ ॥ जनेऊ न बहुत लम्बा और न बहुत
छोटा हो इतना लम्बा हो जो कि पीठके बांस और नाभिपर रक्खाहुआ कमरतक आजाय,
ऐसा जनेऊ पहरना उचित है ॥ ३ ॥ सर्वदा यज्ञोपवीतको पहरे रहै, और चोटीमें गांठ
लगी रहै, जो (ब्राह्मण) बिना यज्ञोपवीत पहरे, या चोटीमें बिना गांठ लगाये हुए जो
कार्य करताहै; उसके वह कार्य न कियेकी समान होते जातेहैं ॥ ४ ॥

त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ॥ आस्पनासाक्षिकर्णाश्च नाभि-
वक्षःशिरोऽसकान् ॥ ५ ॥ संहताभिरुपगुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठेन
प्रदेशिन्यां घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रं पुनः
पुनः ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेनैव ॥ ७ ॥ सर्वाभिस्तु शिरः पश्चा-
द्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥

तीनवार आचमनकर दोवार मुख पोंछकर मुख नासिका, दोनों नेत्र, कान, नाभि, हृदय,
शिर, और कंधे इनका स्पर्श करै ॥ ५ ॥ बीचकी तीनों मिलीहुई अंगुलियोंसे मुखका स्पर्श
करै, इसी भांति अंगूठे और प्रदेशिनीसे नासिकाका स्पर्श करै ॥ ६ ॥ अंगूठे और अना-
मिकासे बारंवार नेत्र और कानोंका स्पर्श करै, कनिष्ठा और अंगूठेसे नाभिका स्पर्श करै
और हथेलीसे हृदयका स्पर्श करै ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण अंगुलियोंसे शिरका स्पर्श करै, इसके
उपरान्त हाथोंके अग्रभागसे दोनों भुजाओंका स्पर्श करना उचित है, १

यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरंगं न तूच्यते ॥ ८ ॥

दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥

जिस स्थानपर कर्म श्रावकी आज्ञा हो, और करनेवालेका आग न कहा हो ॥ ८ ॥ उस स्थानपर दहिना हाथ जो सम्पूर्ण कर्मोंको पूर्ण करता है इसको जानना उचित है;

यत्र दिङ्निमित्तो न स्यान्न्यहोमादिकर्मसु ॥ ९ ॥

तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐद्रीसौम्यापराजिताः ॥

जिस स्थानपर जप हवन आदि कर्मोंमें दिशाका नियम न हो ॥ ९ ॥ उस स्थानपर तीन दिशा कही हैं, पूर्व, उत्तर, पश्चिम;

तिष्ठन्नासीनः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदशः ॥

तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ॥ १० ॥

और फिर यह नियम भी नहीं है कि खड़ा हुआ, या बैठकर या झुककर बैठके इस कर्मको करे वहाँ उस कर्मको बैठकर करे, खड़े होकर या नीचेको झिरकर बैठकर न करना ॥ १० ॥

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥ देवसेना स्वधा स्वाहा मातरौ लोकमातरः ॥ ११ ॥ वृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ॥ गणेशेनाविका हेता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥ १२ ॥ कर्म्मोदिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाविपाः ॥ १३ ॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥ प्रतिमासु च शुभासु लिखित्वा वा परादिषु ॥ अपि वास्तवपुंजेषु नैवेद्यैश्च पूयन्विधैः ॥ १४ ॥ कुञ्जलतां वसोर्द्धारां सप्तधारां धृतेन तु ॥ कारयेत्पञ्चधारां वा नातिनीनां नचोच्छ्रिताम् ॥ १५ ॥ आयुष्याणि च शाल्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥ पङ्कज्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपक्रमेत् ॥ १६ ॥

गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातर, लोकमातर, ॥ ११ ॥ वृति, पुष्टि, तुष्टि, और आत्मदेवता, जिनमें अधिक गणेश हैं इन सोलह मातृकाओंको वृद्धि (नांदीमुखश्राद्ध) जो पुत्रके जन्म आदिकर्मों किया जाता है उसमें पूजे ॥ १२ ॥ और चतुर्पूर्वक सम्पूर्ण कर्मोंमें इन मातृकाओंको पूजा करे; कारण कि यह पूजाको प्राप्त होकर स्वयं पूजनेवालेकी पूजा करवाती है ॥ १३ ॥ इनकी पूजा सफेद मूर्तियोंमें या पट्टेपर लिखकर, अक्षतोंसे, और पुष्प नैवेद्यसे करे ॥ १४ ॥ द्वावारपर लगी हुई धीसे सात धारा वा पांच धारा करवावे वह धारा न बहुत नीची और न बहुत ऊँची हो ॥ १५ ॥ उन कर्मोंकी शान्तिके लिये सावधानीसे आयुके बढ़ानेवाले मंत्रोंको जपे, इसके उपरान्त भक्तिपूर्वक छैः पितरोंके उद्देश्य से श्राद्ध प्रारंभ करे ॥ १६ ॥

अनिष्टा तु पितृञ्छ्राद्धे न कुर्यात्कर्म वैदिकम् ॥ तत्रापि मातरः पूर्व पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ वसिष्ठोक्तो विधिः कुलत्रा द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत् ॥ १८ ॥

इति श्रीकात्यायनस्मृतौ प्रथमखंडः समाप्तः ॥ १ ॥

श्राद्धमें पितरोंकी चिता पूजा किये हुए वेदोक्त कर्मको न करे, यहाँभी यत्नसहित सबसे प्रथम माता (पोटिश मातृका) पूजनीया हैं ॥ १७ ॥ इस (श्राद्धमें) वशिष्ठ ऋषिकी कही-हुई (अर्थात् वशिष्ठस्मृत्युक्त) सन्पूर्ण विधि जानलेनेपर आभिष (मांस) को वर्जदेवै, इसके उपरान्त इसके विषयमें जो विशेष होगा उसे (दूसरे खंडमें) कहूंगा ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयखण्डः २.

प्रातरामन्त्रितान्विप्रान्युग्मानुभयतस्तथा ॥ उपवेश्ये कुशान्दद्यादृजुनैव हि पा-
णिना ॥ १ ॥ हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः ॥ समूलाः पितृद-
वत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः ॥ २ ॥ हरिता वै सपिञ्जलाः शुष्काः स्निग्धाः
समाहिताः ॥ रत्निमात्रप्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्तुताः ॥ ३ ॥ पिंडार्थं ये स्तुता
दर्भास्तर्पणार्थं तथैव च ॥ धृतैः कृते च विष्णून्ने त्यागस्तेषां विधीयते ॥ ४ ॥

प्रातःकालही निमंत्रण दियेहुए दो दो ब्राह्मणोंको दोनों पक्ष (पिता आदिक तीन, माता-मह आदिक तीन) में बैठालकर कोमल हाथोंसे कुशाओंको देवै ॥ १ ॥ हरे रंगकी कुशा सामान्य यज्ञमें, पीले वर्णकी कुशा पाकयज्ञमें, पितर और देवताओंके लिये जड़सहित कुशा होनी उचित है; और विश्वदेवताओंके निमित्त काली कुशा होनी ॥ २ ॥ हरी, पीली, शूकी, चिकनी, सावधानतासे रक्खीहुई रत्नि (मुट्ठी वंधे हाथ) के बराबर और पितृतीर्थ-से (अंगुष्ठ तर्जनीके मध्यमें होकर) रक्खीहुई ॥ ३ ॥ पिंड और तर्पणके निमित्त कुशाओंको रखकर यदि विष्टा और लवुशंका करै तौ उन कुशाओंका त्याग करदे ॥ ४ ॥

दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा ॥ पातयेदितरं जानुं पितृन्परिचरन्नपि
॥ ५ ॥ निपातो नहि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित् ॥ सदा परिचरेद्भक्त्या
पितृन्पुन्यत्र देववत् ॥ ६ ॥

देवताओंकी पूजा करनेके समयमें अनुप्य दहिनी जंघाको नवावै; और पितरोंकी पूजा करनेके समयमें बाई जांघको झुकावै ॥ ५ ॥ परन्तु वाम जंघाका झुकाना कहींभी नहीं है अतः पितरोंकाभी देवताओंकीही समान पूजन करै ॥ ६ ॥

पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान् ॥ गोत्रनामभिराजंय पितृनर्व्यं प्रदा-
पयेत् ॥ ७ ॥ नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥ पात्राणां पूरणादीनि
दैवैर्नैव हि कारयेत् ॥ ८ ॥ ज्येष्ठोत्तरकरान्युग्मान्कराग्राप्रपवित्रकान् ॥ कृत्वाव्यं
संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥ ९ ॥

“पितृभ्य इदं कुशासनं स्वधा” इस मंत्रसे दीहुई कुशाओं पर बैठालकर नाम और गोत्रसे झुलाकर पितरोंके निमित्त अर्घ्य दे ॥ ७ ॥ पात्रोंके पूरण आदि कर्म देवतीर्थके द्वाराही करै, इनमें अपसव्य करना नहीं है, और पितृतीर्थ नहीं है ॥ ८ ॥ दहिना हाथ आगेकर और दोनों हाथ तथा हाथोंके आगे पवित्री करके अर्घ्य दे, एक हाथसे अर्घ्य देना उचित नहीं ॥ ९ ॥

अनन्तर्गभिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ॥ प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्र-
चित् ॥ १० ॥ एतदेव हि पिंजूल्या लक्षणं समुदाहृतम् ॥ आन्यस्योत्पन्नार्थ-
यत्तदप्येतावदेव तु ॥ ११ ॥ एतत्प्रमाणामेवैके कौशमेवार्द्रमंजरीम् ॥ शुष्कां
वा शीर्णकुसुमां पिंजूलीं परिचक्षते ॥ १२ ॥

विना गर्भवाली कुशा, और अग्र भागवाली दो दलकी कुशा बनी हुई केवल विलस्ता मरकी-
वित्रीका अनेक कर्मोंमें व्यवहार करै ॥ १० ॥ पिंजूली कुशाकी भी यही पहचान है
और घृतकी पवित्र करनेवाली कुशाकी भी यही पहचान है ॥ ११ ॥ कोई २ ऋषि कहते
कि इतनेही प्रमाणकी कुशाओंकी पवित्री होती है, कुशा गीली हो या सूखी हो, परन्तु इनके
फल गिराये हों, उसकोही पिंजूली कहा है ॥ १२ ॥

पित्र्यमंत्रानुद्वेषण आत्मात्मभेदमेक्षण ॥ अधोवायुसमुत्सर्गं प्रहासेऽनृतभाषणे-
॥ १३ ॥ मार्जारमूषकस्पर्श आकुष्ठे क्रोधसंभवे ॥ निमित्तेष्वेव सर्वत्र कर्म-
कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वितीय खण्डः ॥ २ ॥

पितरोंके मंत्रोंसे अनुद्वेषण (जिन मंत्रोंको सुनकर पितर मग्न न हों) आत्मात्मन हों
या कोई नीच देखले, अथवा अधोवायु होजाय या झूठही बोलदे ॥ १३ ॥ धिलाव, चूहा
यही छूले, या कोई गाली कहीजाय या क्रोधही आजाय, यदि यह उपद्रव होजाय तो स-
न्धानोंमें कर्मोंको करनेवाला मनुष्य जलका स्पर्श करले ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ यापादीकायां द्वितीयखण्डः समाप्तः ॥ २ ॥

तृतीयखण्डः ३.

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम् ॥

अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥ १ ॥

विद्वानोंने कर्म करनेवालोंकी अक्रिया तीन प्रकारकी कही है, पहली अक्रिया (कर्मका न
करना) दूसरी परोक्त (किसीके कहनेसे कर्म करना) ३ तीसरी अयथाक्रिया (जिसप्रकार
होनी उचितहो उसमांति न करना) ॥ १ ॥

स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं च यः ॥

कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥

जो कुतुब्धि मनुष्य अपनी शाखाके कहे हुए कर्मोंको छोड़कर दूसरेकी शाखाके कर्मोंको
करनेमें प्रवृत्त होता है, उसके सम्पूर्ण कार्य निष्फल हो जावेगा ॥ २ ॥

यन्नाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ॥

विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमभिहोत्रादिकर्मवत् ॥ ३ ॥

जो अपनी शाखामें न कहाहो और जो अपने कर्मका विरोधी न हो, ज्ञानी मनुष्य दूस-
रेकी शाखामें कहे हुए उस कर्मको अभिहोत्रादिके सामान करे ॥ ३ ॥

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथंचन ॥ यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समाप-
येत् ॥ ४ ॥ समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् ॥ तावदेव पुनः कुर्या-
न्नावृत्तिः सर्व्वकर्मर्षणः ॥ ५ ॥ प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियते पुनः ॥
तदंगस्याक्रियायां च नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया ॥ ६ ॥

यदि जिस कर्मको प्रारंभ कियाहो और बिना पूराहुएही बीचमें अन्यथा होजाय तौ जिस
स्थानसे वह कर्म अन्यथा हुआहै वहांसेही फिर उस कार्यको आरंभ करके समाप्त करै ॥४॥
यदि कार्यके समाप्त होजानेपर यह विदित होजायकि यह कार्य मैंने अन्यथाही कियाथा; तौ
उतनाही उस कार्यको फिर करदे किन्तु सम्पूर्ण कार्यको फिर न करै ॥ ५ ॥ जहां प्रधान
कर्म नहीं कियाहो, वहां फिर सांग (सत्र) कर्मको करना उचित है, यदि उस कर्मका कोई
अंग न कियाहो तौ वहां सम्पूर्ण कार्य का प्रारंभ न करै ॥ ६ ॥

मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् ॥

गायत्र्यनंतरं सोऽत्र मधुमंत्रविवर्जितः ॥ ७ ॥

मधु, मधु, मधु, यह भोजन करनेवालोंका जो तीनवार जप है वह यहां (आद्धमें)
गायत्रीके पीछे 'मधुवाता' इत्यादि मन्त्रके बिना करना उचित नहीं ॥ ७ ॥

न चाभस्तु जपेदत्र कदाचित्पितृसंहिताम् ॥

अन्य एव जपः कार्य्यः सोमसामादिकः शुभः ॥ ८ ॥

ब्राह्मणोंके भोजन करते समयमें, आद्धके समयमें पितृसंहिताका जप न करै, अर्थात्
'उसका पाठ न करै; अन्यकाही सोम और सामआदिका शुभ पाठ करै ॥ ८ ॥

यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद्यववत्तथा ॥

उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः ॥ ९ ॥

तिल और जौके समान जो अन्नका प्रकर (विकिरपिंड) है वह उच्छिष्टके समीप दे, और
ब्राह्मणोंके तृप्त होनेपर जहां उच्छिष्ट नहो उस स्थानपर देना उचित है ॥ ९ ॥

संपन्नामिति तृप्ताःस्थ प्रभस्थाने विधीयते ॥

सुसंपन्नामिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ १० ॥

सम्पन्न, (भली भांतिसे किया) तृप्तहुए यह तौ यजमानके पूछनेके समय कहैं, जब
ब्राह्मण (भलीभांति तृप्तहुए) कहदे, तौ शेष अन्नको यजमान दे दे ॥ १० ॥

प्राग्ग्रेष्ण्वथ दर्भेषु आद्यमामंत्र्य पूर्व्ववत् ॥ अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिस्वेति पा-
त्रतः ॥ ११ ॥ द्वितीयं च तृतीयं च मध्यदेशाग्रदेशयोः ॥ मातामहप्रभृतीस्त्री-
नैतेषामेव वामतः ॥ १२ ॥ सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यंजनैरुपसिच्य च ॥ संयोज्य
यवकर्कशूदाधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥ १३ ॥ अवनेजनवात्पिण्डान्दत्त्वाः वित्त्वप्र-
माणकान् ॥ तत्प्राक्कालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥

पूर्वकी ओरको अग्रभागवाली कुशाओंके ऊपर आद्य (पिता) का पूर्वके समान आमंत्रण करके पात्रमें 'अवनेनिध्व' इस मंत्रसे कुशाओंकी जड़में जल डाले ॥ ११ ॥ पितामहको कुशाओंके मध्यमें जलदे, और प्रपितामहको कुशाओंके अग्र भागमें जलदे । मातामह (नाना) आदि तीनोंको भी इनकी बाई ओर जल दे ॥ १२ ॥ सब अन्नमेंसे निकालकर व्यंजनसे चुके कर, जौ, बेर, दही मिलाकर, पीछे पूर्व की ओर को मुख करके ॥ १३ ॥ बेलकी समान प्रमाणवाले पिंडोंको अवनेजन जहां २ दियाथा वहां २ देकर अवनेजनके पात्रको छोकर प्रत्यवनेजन दे ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयखण्डः समाप्तः ॥ ३ ॥

चतुर्थः खण्डः ४.

उत्तरोत्तरदानेन पिंडानामुत्तरोत्तरः ॥ भवेदधश्चाधराणामधरः श्राद्धकर्मणि ॥ १ ॥ तस्माच्छ्राद्धेषु सर्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च ॥ मूलमध्याग्रदेशेषु ईपत्सक्तृश्च निर्वपेत् ॥ २ ॥ गन्धादीन्निक्षिपेत्तूर्णानि तत आचामयेद्भिक्षान् ॥ अन्यत्रार्प्येष्वस्याद्यवादिरहितो विधिः ॥ ३ ॥ दक्षिणाप्लवने देशे दक्षिणाभिमुखस्य च ॥ दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पषोऽन्यत्र विधिः स्मृतः ॥ ४ ॥

क्रमानुसार उत्तर २ पिंडोंके देनेसे पिछला, नीचेको पतित होताहै, इस कारण श्राद्ध कर्ममें निचलोंको नीचे २ स्थानोंपर पिंड देने उचित है ॥ १ ॥ इस कारण वृद्धिके श्राद्ध वा इतर श्राद्धोंमें कुशाकी जड़के अग्रभागमें कुष्ठक लगेहुए पिंड दे ॥ २ ॥ मंत्रोंके बिनाही गंध आदि दे और इसके पीछे ब्राह्मणोंको आचमन करावे, इतर श्राद्धों (पार्वणश्राद्ध) में जौके बिना यही विधि होताहै ॥ ३ ॥ जो देश दक्षिणकी ओरको नीचाहो उस देशमें यजमानभी दक्षिणको मुख करके बैठे; और दक्षिणाग्रही कुशाओंके ऊपर पिंड आदि दे, यह विधि इतर श्राद्धोंमें कही गई है ॥ ४ ॥

अयाग्रभूमिमासिंचेत्सुसंप्रोक्षितमस्त्विति ॥ शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च ॥ ५ ॥ सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ॥ अक्षतं चारिष्टं चास्त्वित्यक्षतान्प्रतिपादयेत् ॥ ६ ॥ अक्षय्योदकदानं तु अर्घ्यदानवदिप्यते ॥ षष्ठ्यैव नित्यं तत्कुर्व्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥ ७ ॥ अर्घ्योदकयोदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने ॥ तत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ ८ ॥ प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्वस्वेव द्विजोत्तमैः ॥ पवित्रांतर्हितान्पिंडान्निक्षेपेदुत्तानपात्रकृत् ॥ ९ ॥ युग्मानेव स्वस्तिवाच्यमहुष्ठाग्रग्रहं सह ॥ कृत्वा धुप्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः ॥ १० ॥

फिर यजमान अपने आगेके पृथ्वीको जलसे "सुसंप्रोक्षितमस्तु" इससे और "शिवा आपः सन्तु" इस मंत्रसे सींचे, और बार २ ब्राह्मणोंको ॥ ५ ॥ "सौमनस्यमस्तु" इस मंत्रसे पुष्प दे "अक्षतं चारिष्टमस्तु" इस मंत्रसे अक्षत दे ॥ ६ ॥ अर्घ्य देनेके समान अक्षय जलका देना कहाहै, और उस अक्षय्योदकको पट्टी (पितुः आदि) विभक्ति बोलकर दे, और चतु-

र्थी (पित्रे) बोलकर कभी न दें ॥७॥ अर्घ, अक्षय्योदक, पिंडदान, अग्नेजन, और स्वर्घाके वचन इन कर्मोंमें तन्त्र (एक संकल्पमें सबको अर्घ आदि देने) को त्याग दे ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोंमें जो यजमानकी प्रार्थनाका उत्तर दियाहै उसके उपरान्त अर्घके पात्रोंको सीधा करके पवित्रियोंसे ढके हुए पिंडोंको सींचे ॥ ९ ॥ दो दो पिंडोंको सींचकर स्वस्तिवाचन करे और अंगूठोंका ग्रहण कर प्रथम मुख्य ब्राह्मणका करे, इसके अनंतर नमस्कार करके ब्राह्मणोंके पीछे चले ॥ १० ॥

एष श्राद्धविधिः कृत्स्न उक्तः संक्षेपतो मया ॥ ये विन्दन्ति न मुह्यन्ति श्राद्धकर्म-
ते कश्चित् ॥ ११ ॥ इदं शास्त्रं च गुह्यं च परिसंख्यानमेव च ॥ वसिष्ठोक्तं
च यो वेद स श्राद्धं वेद नेतरः ॥ १२ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

यह श्राद्धकी सम्पूर्ण विधि मैंने संक्षेपसे तुमसे कही, जो मनुष्य इस विधिको जानतेहैं, वह कभीभी श्राद्धके कर्ममें मोहित नहीं होते ॥ ११ ॥ इस शास्त्रको और शास्त्रकी गुप्त विधिको तथा वशिष्ठजीके कहे शास्त्रको जो जानताहै वह श्राद्धको जानताहै दूसरा नहीं ॥ १२ ॥
इति कात्यायनस्मृतिभाषाटीकायां चतुर्थखण्डः समाप्तः ॥ ४ ॥

पञ्चमः खण्डः ५.

असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन्कर्मकारिभिः ॥ प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्रा-
द्ध मेव च ॥ १ ॥ आधाने होमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च ॥ बलिकर्माणि दश
च पौर्णमासे तथैव च ॥ २ ॥ नवयज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ एक-
मेव भवेच्छ्राद्धमेषु न पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे
श्राद्धमिष्यते ॥ न सोष्यन्तीजातकर्म प्रोषितागतकर्मसु ॥ ४ ॥

कर्म करनेवाले जिन कर्मोंको बारंवार करतेहैं, उन प्रत्येक कर्मोंके समयमें यह षोडश मातृका और श्राद्ध (नांदीमुख) यह नहीं होता ॥ १ ॥ गर्भाधान, होम, बलिवैश्वदेव, बलिके देनेमें तथा अमावस और पूर्णमासीके कर्ममें ॥ २ ॥ और नवयज्ञमें यज्ञके जाननेवाले पंडित कहतेहैं कि एकही श्राद्ध होताहै, पृथक् २ नहीं होता ॥ ३ ॥ अष्टकाओंके समयमें एक और श्राद्धकेसमयमें दूसरा श्राद्ध नहीं होता; जो परदेशमें सोष्यन्ती (जिसके बालक उत्पन्न हुआहो) रहतीहो तो उसे जातकर्म करना उचित नहीं; पूर्व होआए कर्मोंमेंभी न करे ॥ ४ ॥

विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते ॥

विवाहादावेकमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥ ५ ॥

विवाह आदि कर्मोंका जो समूह कहाहै उसे और गर्भाधान इसको हमने सुना, इसके उपरान्त विवाहकी आदिमें एकही श्राद्ध होताहै प्रतिकर्मकी आदिमें नहीं होता ॥ ५ ॥

प्रदोषे श्राद्धमेकं स्याद्गौनिष्क्रामप्रवेशयोः ॥ न श्राद्धेयुज्यते कर्तुं प्रथमे पुष्टिक-
र्माणि ॥ ६ ॥ हलाभियोगादिषु तु षट्सु कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥ प्रतिप्रयोगमप्ये-
मादावेकं तु कारयेत् ॥ ७ ॥

एकही श्राद्ध प्रदोषमें होताहै; और गौके निकालने और प्रवेश करनेके समयमें भी प्रथम पुष्टिके लिये जो कर्म किया जाताहै उसमें श्राद्ध न करै ॥ ६ ॥ हल्के जोतने आदि छैः कर्मोंमें पृथक् २ श्राद्ध होताहै, इसकारण प्रत्येक कर्मकी आदिमें एक श्राद्ध करावै ॥ ७ ॥

बृहत्पत्रक्षुद्रपशुस्वस्त्यर्थं परिविष्यतोः ॥ सूर्येन्द्रोः कर्मणी ये तु तयोः श्राद्धं न विद्यते ॥ ८ ॥ न दशाग्रंथिके चैव विष्वदष्टकर्मणि ॥ कृमिदष्टचिकित्सायां नैव शेषेषु विद्यते ॥ ९ ॥

बड़े २ पक्षी, और छोटे २ पशु इनके कल्याणके निमित्त कियेहुए, और सूर्य तथा चन्द्र-माके परिवेषके समयमें किये हुए कर्ममें श्राद्ध न करै ॥ ८ ॥ दशा ग्रंथिक कर्ममें, विषले जन्तुके डसनेपर जो कर्म होताहै उसमें अथवा कीड़ेके डसेकी चिकित्सामें जो कर्म शेषहों उनमें श्राद्ध नहीं है ॥ ९ ॥

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् ॥ सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु ॥ १० ॥ यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः ॥

एकवारही बहुतसे किये हुए कर्मोंमें षोडश मातृकाओंका पूजन और कर्मकी आदिमें एकवारही श्राद्ध होताहै पृथक् २ कर्मोंकी आदिमें नहीं होता जिस स्थानपर श्राद्ध होताहै उस स्थानपर सोलह मातृकाएँ होतीहैं,

प्रासङ्गिकमिदं प्रोक्तमतः प्रकृतमुच्यते ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

यहांतक तो प्रसंगमें आयाहुआ कहा; और अब प्रकृत अर्थात् जिसका प्रकरण था उसे कहते हैं ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चमः खंडः समाप्तः ॥ ५ ॥

पष्ठः खण्डः ६.

आधानकाला ये प्रोक्तास्तथा याश्चाग्निमोनयः ॥

तदाश्रयोऽग्निमादध्यादग्निमानग्रजो यदि ॥ १ ॥

जो अग्निके आधानके समय हैं, और जो अग्निके कारण हैं, उन्हींमें अग्निहोत्री बड़ा भाई अग्निहोत्रको ग्रहण करै ॥ १ ॥

दारादिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्निमः ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ २ ॥ परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतो ध्रुवम् ॥ अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥ ३ ॥

बड़े भाईसे पहले जो छोटा भाई विवाह और अग्निहोत्र करताहै वह परिवेत्ता होताहै, और बड़ा भाई परिवित्ति कहाताहै ॥ २ ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता यह दोनों निश्चयही नरकमें जातेहैं; यदि यह दोनों जने प्रायश्चित्त करलें तो पादोन (तीनभाग) फलके भागी होतेहैं ॥ ३ ॥

देशान्तरस्थक्लीवैकवृषणानसहोदरान् ॥ वेद्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः
॥ ४ ॥ जडमूकान्धबधिरकुब्जवामनकुंडकान् ॥ अतिवृद्धानभार्याश्च कृषिसं-
कान्तनृपस्य च ॥ ५ ॥ धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा ॥ कुलटोन्मत्त-
चोरांश्च परिविन्दन्न दुष्यति ॥ ६ ॥

यदि बड़ा भाई परदेशमें चला गया हो, अथवा नपुंसक हो या जिसके एकही वृषण (अंड-
कोश) हो, या अपना सगाभाई न हो; वेद्यामें गमन करता हो, पतित हो, शूद्रके समान हो,
अत्यन्त रोगी हो ॥ ४ ॥ महाअज्ञानी हो, गूंगा हो, अंधा हो, बहिरा हो, कुवडा हो, वामन (विलं-
दिया) हो वा कुंडक (पिताके जीतेहुए जारसे उत्पन्न हुआ हो,) वा अत्यन्त वृद्ध हो, जिसके
स्त्री न हो, या जो राजाकी खेती करता हो ॥ ५ ॥ धनके बढ़ानेमें जो तत्पर हो; अपनी इच्छा-
नुसार कर्म करनेवाला वा कुलट (घर २ में फिरनेवाला) वा उन्मत्त तथा चोर हो, ऐसे
बड़े भाईके होते हुए परिवेदन (प्रथम अपना विवाह करनेमें या अभिहोत्र-ग्रहण करनेमें)
छोटे भाईको दोष नहीं लगता ॥ ६ ॥

धनवार्धुषिकं राजसेवकं कर्मकं तथा ॥ प्रोषितं च प्रतीक्षित वर्षत्रयमपि त्वरन्
॥ ७ ॥ प्रोषितं यद्यश्रुवानमन्दादूर्ध्वं समाचरेत् ॥ आगते तु पुनस्तस्मिन्पादं
तच्छुद्ध्ये चरेत् ॥ ८ ॥

यदि बड़ाभाई व्याजके द्वारा धनके बढ़ानेमें रत हो राजाका सेवक हो, अथवा परदेशमें
रहता हो तो विवाहके लिये शीघ्रता करनेवाला भी छोटाभाई ऐसे भाईकी तीन वर्षतक प्रतीक्षा
करतारहै ॥ ७ ॥ यदि बड़े भाईके परदेशमें रहने पर उसका कुछ समाचार न मिलता हो
तौ छोटाभाई एक वर्षके उपरान्त विवाह आदि करसकता है; और फिर यदि बड़ाभाई आजाय
तौ उस पापके लिये चौथाई प्रायश्चित्त करै ॥ ८ ॥

लक्षणे प्राग्गतायास्तु प्रमाणं द्वादशांगुलम् ॥ तन्मूलसक्ता योदीची तस्या
एतन्नवोत्तरम् ॥ ९ ॥ उदग्गतायाः संलम्बाः शेषाः प्रादेशमात्रिकाः ॥ सप्तस-
प्तांगुलांस्त्यक्त्वा कुशेनैव समुल्लिखेत् ॥ १० ॥

पूर्व कह आये हैं कुशाओंके लक्षणोंको इसकी परीक्षामें बारह अंगुलका प्रमाण है; और
कुशाओंकी जड़में फटी उदीची जो उत्तरकी ओर कुशा है उसका प्रमाण अधिकसे अधिक
नौ अंगुलका है ॥ ९ ॥ उस उदीचीसे लगी हुई जो और शेष कुशा हैं उनका प्रमाण प्रादेश
तक हो, सात अंगुलकी कुशाओंके अतिरिक्त कुशासे उल्लेखन करना उचित है ॥ १० ॥

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि ॥

मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः ॥ ११ ॥

जहां क्रियाका प्रमाण कहा हो, और प्रमाणके करनेवालेको न कहा हो, उस स्थानपर
विद्वानोंका यह कथन है कि प्रमाणका कर्ता तौ यजमानही होता है इसकारण यजमानकी
अंगुलियोंसे कुशाको नांपले ॥ ११ ॥

पुण्यवानादधीतामिं स हि सर्वैः प्रशस्यते ॥

अनर्द्धकत्वं यत्तस्य काम्यैस्तन्नीयते शमम् ॥ १२ ॥

पवित्र पुरुष अग्निमें हवन करै, कारण कि सभी अग्निकी प्रशंसा करते हैं, और उस अग्निके अनर्घकताको (संपूर्णताको) कामनाके समस्त कर्मोंसे शांत किया जाता है ॥ १२ ॥

यस्य दत्ता भवेत्कन्या वाचा सत्येन केनचित् ॥ सोऽन्यां समिधमाधास्यन्नाद-
धीतैव नान्यथा ॥ १३ ॥ अनूद्वैव तु सा कन्या पञ्चत्वं यदि गच्छति ॥ न
तथा व्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यां समुद्रहेत् ॥ १४ ॥ अथ चेन्न लभेतान्यां याच-
मानोऽपि कन्यकाम् ॥ तमग्निमात्मसात्कृत्वा क्षिप्रं स्यादुत्तराश्रमी ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

यदि किसी मनुष्यने सत्यवचनसे किसीको कन्या दानकी हो अर्थात् उसके साथ सगाई करदी हो; और फिर वही (वर) पिछली समिधोंका आधान (विवाहके हवन) करनेकी इच्छा करै तौ वह दूसरी स्त्रीके साथ नहीं करसकता अर्थात् जिसके साथ सगाई हुई थी उसी स्त्रीके साथ हवन कर सकता है ॥ १३ ॥ यदि वह कन्या विवाह होनेके पहलेही मरजाय, तौ इस पुरुषका व्रत लोप नहीं हो सकता वह उसी अग्निकी सहायतासे दूसरी स्त्रीके साथ विवाह करसकता है ॥ १४ ॥ यदि मांगनेपरभी दूसरी कन्या न मिलै तौ उस अग्नि-
को आत्मामें लीनकर संन्यास आश्रमको ग्रहण करै ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मायाटीकायां पष्ठः खण्डः समाप्तः ॥ ६ ॥

सप्तमः खंडः ७.

अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्व्वीसमुद्भवः ॥ तस्य या प्राङ्मुखी शाखा
वोदीची वोर्द्धगापि वा ॥ १ ॥ अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मय्येवोत्तरारणिः ॥
सारवदारवं चात्रमोविली च प्रशस्यते ॥ २ ॥ संसक्तमूलो यः शम्याः स शमी-
गर्भ उच्यते ॥ अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेदविलम्बितः ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिरंगुष्ठ-
दैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् ॥ चत्वार उच्छ्रये मानमरणयोः परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥
अष्टांगुलः प्रमन्थः स्याच्चक्रं स्याद्वादशांगुलम् ॥ ओविली द्वादशैव स्यादेतन्म-
थनयंत्रकम् ॥ ५ ॥ अंगुष्ठांगुलमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ॥ तत्र तत्र वृहत्पर्व-
ग्रंथिभिर्मनुयात्सदा ॥ ६ ॥ गोवालैः शणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ॥
व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात्प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥ ७ ॥

पवित्र भूमिमें उत्पन्नहुए अश्वत्थ (पीपल) शमीके गर्भसे युक्त उसकी जो पूर्व उत्तरकी ओरको गईहुई शाखा है ॥ १ ॥ उसकी नीचली और ऊपरकी अरणी (जिसमें दरमैको द्वा-
कर वरमा फेरते हैं सो) होती है, और दृढकाष्ठका चात्र और ओविली, यही श्रेष्ठ कहें ॥ २ ॥ पीपलमें लगीहुई शमी (जंट) की मूल (जड़) है उसे शमी गर्भ कहते हैं; कदाचित् शमी-
गर्भ न मिले तौ विना शमीगर्भके पीपलमेंसे अरणीके निमित्त शाखाको शीघ्र ग्रहण करले ॥ ३ ॥ दोनों अरणियोंका प्रमाण चौबीसअंगुलका लम्बा और छैः या चारअंगुलका मोटा कहा है ॥ ४ ॥ “प्रमंथ” (वर्मा) आठअंगुलका “चात्र” बारहअंगुलका और ओविलीभी बारहअंगुलकी होती है, इन सबके मिलनेसे मथनेका यंत्र होता है ॥ ५ ॥ जिस जिस

स्थानपर अंगूठे और अंगुलका प्रमाण कहा है, उसी स्थानको वृहत्पर्वसे सर्वदा नांपले ॥ ६ ॥
अणमिलेहुए गौके बालोंसे त्रिवृत्त करके निर्मल स्वरूप व्याम (३ हाथ) प्रमाणवाले नेत्र
(नतना) बनावै इसीसे अग्निको मंथै ॥ ७ ॥

मूर्द्धाक्षिकर्णवक्राणि कन्धरा चापि पञ्चमीं ॥ अंगुष्ठमात्राण्येताति व्यंगुष्ठं वक्ष
उच्यते ॥ ८ ॥ अंगुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यंगुष्ठमुदरं स्मृतम् ॥ एकांगुष्ठा कटिर्ज्ञेया
द्वौ वस्तिर्द्वे च गुह्यके ॥ ९ ॥ ऊरू जंघे च पादौ च चतुस्त्यैकैर्यथाक्रमम् ॥
अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥ १० ॥ यत्तद्गुह्यमिति प्रोक्तं देवयो-
निस्तु सोच्यते ॥ अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥ ११ ॥

शिर, नेत्र, कान, मुख, कंधरा (नाड) यह पांचों अंगूठेकी समान हो, और दो अंगूठेकी
बराबर छातीहो ॥ ८ ॥ एक अंगूठेके बराबर हृदय, तीन अंगूठेकी बराबर उदर, एक अंगूठेकी
बराबर कमर, दो अंगूठेकी बराबर वस्ति और गुह्य (उपस्थ और गुदा) होनी उचित हैं ॥ ९ ॥
ऊरू, जंघा, पाद, यह तीनों क्रमानुसार चार, तीन या एक अंगुलभरके होते हैं इन सबोंको
यज्ञकर्त्ताओंने अरणीके अवयव कहा है ॥ १० ॥ जो पूर्व गुह्य (उपस्थ) कहा है उसे अग्निको
योनि (कारण) कहते हैं इसमें जो अग्नि है उसीको कल्याण करनेवाला कहा है ॥ ११ ॥

अन्येषु ये तु मथन्ति ते रोगभयमाप्नुयुः ॥ प्रथमे मन्थने त्वेष नियमो नोत्त-
रेषु च ॥ १२ ॥ उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमथः सर्वदा भवेत् ॥ यो निसंकरदोषेण
युज्यते ह्यन्यमन्यकृत् ॥ १३ ॥

अन्य स्थानपर जो मनुष्य अग्निका मथन करते हैं उनको रोग और भयकी प्राप्ति होती
है, इनमें पहले मथनेकाही नियम है; वह चाहे जैसा क्यों न हो, दूसरीबार मथनेका नियम
नहीं है ॥ १२ ॥ प्रमथ सर्वदाही ऊपरकी अरणीसे उत्पन्नहुएका वनता है, जो अन्य प्रमथसे
करता है उसे यो निसंकरके दोषसे दूषित होना पड़ता है ॥ १३ ॥

आर्द्रा ससुषिरा चैव घूर्णांगी पाटिता तथा ॥

न हिता यजमानानामराणिश्चोत्तरारणिः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तमः खंडः ॥ ७ ॥

गीली ससुषिरा (छिद्रसहित) घुनी घूर्णांगी (गठीली) पाटिता (फटी) यह दोनों (पूर्व
और उत्तर) अर्थात् नीचे और ऊपरकी अरणी इनकी यजमान बनावै; तौ यह उसके
हितकारी नहीं होती ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमः खण्डः समाप्तः ॥ ७ ॥

अष्टमः खंडः ८ .

परिधायान्तं वासः प्रावृत्य च यथाविधि ॥ विभृयात्प्राङ्मुखो यंत्रमावृता
वक्ष्यमाणया ॥ १ ॥ चात्रबुधे प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः ॥ कृत्वोत्तरा-
ग्रामरणिं तद्बुधमुपरि न्यसेत् ॥ २ ॥ चक्राधः कीलकाग्रस्थामोविलीमुदग्र-

काम् ॥ विष्टंभाह्वारयेद्यंत्रं निर्ष्कम्पं प्रयतः शुचिः ॥ ३ ॥ त्रिरुद्वेष्टयाथ नेत्रेण चक्रं पत्न्योहतांशुकाः ॥ पूर्वं मर्शं त्यरप्यन्ताः प्राच्यमेः स्याद्यथा च्युतिः ॥ ४ ॥

नवीन वस्त्रोंको पहनकर यथाविधि यंत्रकी प्रदक्षिणाकर पूर्वकी ओरको मुख करके, जिसका वर्णन आगे करेंगे उसी आवृत्तसे यंत्रको धारण करै, ॥ १ ॥ चात्र और बुध तथा प्रथम का अग्रभाग इन सबको जोरसे पकड़कर ऊपरको अग्रभागवाला अरणीको उस करके उस बुधके ऊपर रखदे ॥ २ ॥ चात्रके नीचेकी कीलके अग्रभागमें स्थित ऊपरको अग्रभागवाली ओविलीको रक्खै, इसके अनन्तर सावधानहोकर यजमान यत्नपूर्वक निर्ष्कंपित हो यंत्रको पकड़े ॥ ३ ॥ नवीन वस्त्रोंको पहनकर (यजमानकी) स्त्री चात्रको तिनवार नेत्र (नेता) से लपेटकर जिससे अरणीके अग्रभागसे पूर्वदिशामें अभिगिरै इसभांति यजमानसे प्रथम मथै ॥ ४ ॥

नैकयापि विना कार्यमाधानं भार्यया द्विजैः ॥ अकृतं तद्विजानीयात्सर्वान्वा चारमन्ति यत् ॥ ५ ॥ वर्णज्यैष्ठ्येन बह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः ॥ कार्य-मभिच्युतेराभिः साध्वीभिर्मथनं पुनः ॥ ६ ॥ नात्र शूद्री प्रयुज्यते न द्रोहद्वेष-कारिणीम् ॥ न चैवाव्रतस्थां नान्यपुंसां च सह संगताम् ॥ ७ ॥ ततः शक्ततरा पश्चादासामन्यतरापि वा ॥ उपेतानां वान्यतमा मन्येदभिं निकामतः ॥ ८ ॥

यदि ब्राह्मणके एकभी स्त्री नहो तौ वह अग्निका आधान न करे, और यदि करै तौ वह करेकी समान है, जिस कारणसे स्त्री सब मनुष्योंको अपनी वाणीसेही वशमें करलेती है ॥ ५ ॥ ब्राह्मणकी यदि सवर्णा और असवर्णा बहुतसी स्त्रियाँ हों तौ जो अवस्थामें बड़ीहो वही अग्निका आधान करै, यदि मथनकरते समयमें अग्नि नष्ट होजाय, तौ साधुत्वभाववाली स्त्रियाँ फिर उसका मथन करै ॥ ६ ॥ शूद्री, हिंसा और द्रोहकरनेवाली, अन्यपुरुषके साथ सगमकरनेवाली, व्रतमें युक्त न हो इन स्त्रियोंको अग्निके मथनमें नियुक्त न करै ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर स्त्रियोंमें अत्यन्त सामर्थ्यवती स्त्री चाहै कोईसी हो, यज्ञमें प्राप्तहुई वह स्त्री इच्छानुसार अग्निको मथे ॥ ८ ॥

जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च ॥

आधाय समिधं चैव ब्राह्मणं चोपवेशयेत् ॥ ९ ॥

उत्पन्नहुई अग्निके लक्षण प्रगटकर उसे अग्निशालामें लावै इसकेपीछे प्रज्वालित करके और समिध (ढाककी लकड़ी) रखकर वहां ब्राह्मणोंको बैठाखदे ॥ ९ ॥

ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्वमंत्रसमन्विताम् ॥

गां दद्याद्यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥ १० ॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण मंत्रोंका पाठ करके पूर्णाहुति देकर, यज्ञके अन्तमें ब्राह्मणको गौ और दो बछ (दक्षिणामें) दे ॥ १० ॥

होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये सुवः स्मृतः ॥

पाणिरेवैतरस्मिस्तु सुचैवात्र तु ह्वयेत् ॥ ११ ॥

जहां कोई पात्र न कहा हो वहां होमका जहां धी आदि द्रव्य कहे हों तौ वहां पर सुव समझना, और इतर साकल्यमें हाथसे होमकरना ऐसा समझलना और यज्ञमें होम (सुवि) सेही होता है ॥ ११ ॥

खादिरो वाथ पालाशो द्विवितस्तिः सुवः स्मृतः ॥ जुग्वानुमात्रा विज्ञेया वृत्त-
स्तु प्रग्रहस्तयोः ॥ १२ ॥ सुवाग्रे प्राणवत्खातं व्यंगुष्ठपरिमंडलम् ॥ जुह्वाः
शराववत्खातं सनिर्व्वाहं षडंगुलम् ॥ १३ ॥ तेषां प्राक्शः कुशैः कार्यः संप्र-
मार्गो जुह्वता ॥ प्रतापनं च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥ १४ ॥ प्राञ्च
प्राञ्चमुदगग्रेरुदगग्रं समीपतः ॥ तत्तथाऽऽसादयेद्द्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥ १५ ॥

दो विलस्तका सुव खैर अथवा ढाकका कहा है; और एकमुजाकी सुक् होती है; इन दोनोंके पकडनेका स्थान गोल होता है ॥ १२ ॥ सुवके अग्रभागमें नासिकाकी समान गड्ढा अंगूठेकी बराबर करना और होमके पात्रके अग्रभाग में शराव (शरवे) के समान सनिर्व्वाह (पतनालेके समान) छैः अंगुलका गड्ढा करना उचित है ॥ १३ ॥ उनके पहिलेभागमें कुशाओंसे प्रमार्ग (साफ) हवन करनेवाला करै; यदि यह तीनों धृतआदिसे लिपे हों तो छणजलसे धोकर इनको तपाले ॥ १४ ॥ अग्रेके समीप उत्तरादिशामें पूर्व २ द्रव्यको इस भांतिसे रखै कि जिस २ क्रमसे वह द्रव्य नियुक्त किया जायगा ॥ १५ ॥

आज्यं हव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ॥

मंत्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ १६ ॥

यदि सम्पूर्ण होमोंमें जहां किसी हव्य (हवन करनेके) द्रव्यका नाम नहीं कहा है, वहां धृतकोही हव्य कहा है; जहां किसी मंत्रका देवता नहीं कहा, वहां प्रजापतिको ही समझना उचित है, यही मर्यादा है ॥ १६ ॥

नांगुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित् ॥ न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा
न पाटिता ॥ १७ ॥ प्रादेशान्नाधिका नोना न तथा स्याद्विशालिका ॥ न स-
पर्णा न निर्व्वीर्या होमेषु च विजानता ॥ १८ ॥ प्रादेशद्वयमिध्मस्य प्रमाणं
परिकीर्तितम् ॥ एवंविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्मसु ॥ १९ ॥

होमके कार्यमें अंगूठेसे अधिक मोटी और जिसपर त्वचा न हो, कीड़े हों, फटी हो ऐसी समिधको लेना उचित नहीं ॥ १७ ॥ जो अंगूठे और तर्जनीके प्रमाणसे अधिक वा न्यून हो; और जिसकी ढाली न हो, और जिसके पत्ते हों और जो घुनीहो, ज्ञानवान् मनुष्य ऐसी समिधाको हवनमें न ले ॥ १८ ॥ दो उक्त प्रादेश ईधनका प्रमाण कहा है, सब कर्मोंमें ऐसीही समिधें होती हैं ॥ १९ ॥

समिधोऽष्टादशेध्मस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ दर्शे च पौर्णमासे च क्रियास्वन्या-
सु विंशतिः ॥ २० ॥ समिदादिषु होमेषु मंत्रदैवतवर्जिताः ॥ पुरस्ताच्चोपरि
हीन्धनार्थं समिद्भवेत् ॥ २१ ॥

विद्वान् मनुष्य अमावस और पूर्णमासीके होममें (इध्म ईधन) की अठारह समिध कहते हैं और अन्यकर्मोंमें बीसको कहा है ॥ २० ॥ जो होम समिधोंसे किया जाता है

उनके पहले अथवा पीछे ईधनके लिये जो समिध होतीहै उसका मंत्र और देवता कोई भी नहीं होता ॥ २१ ॥

इध्मोऽप्येधार्थमाचार्यैर्विराहुतिषु स्मृतः ॥

ईधनके लिये इध्म (अठारह समिध) को भी आचार्यने कहा है कि यहभी आहुतियोंमें हवि (साकल्य) है ॥

यत्र चास्य निवृत्तिः स्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥ २२ ॥ अंगहोमसमित्तंत्रसो-
प्यन्त्याख्येषु कर्मसु ॥ येषां चैतदुपर्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च ॥ २३ ॥ अक्ष-
भंगादिविपदि जलहोमादिकर्मणि ॥ सोमादितिषु सर्वासु नैतेष्विध्मो विधी-
यते ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतावष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

और जिस कर्ममें यह इध्म नहींहै उसको मैं स्पष्ट करताहूँ ॥ २२ ॥ अंगहोम (बड़े यज्ञमें कर्तव्य छोटा यज्ञ जो होताहै) समित्तंत्रनामक कर्म गर्भाधान आदि संस्कार, प्रथम कह-
आये हुए कर्मोंमें, और उनके समान कर्मोंमें ॥ २३ ॥ नेत्रके भंग (फूटना) आदि विप-
त्तिमें जल (वृष्टि) के निमित्त जो होम किया जाताहै उसमें और सम्पूर्ण सोम (सोमलतासे साध्य) और अदितियज्ञोंमें इध्म नहीं कहाहै ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकावामष्टमः खण्डः समाप्तः ॥ ८ ॥

नवसखंडः ९.

सूर्येऽन्तर्जालमप्राप्ते पट्विंशद्भिः सदांगुलैः ॥ प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासां च
दर्शनात् ॥ १ ॥ हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद् गिरिं हित्वा न गच्छति ॥ तावद्धोम-
विधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥ २ ॥ यावत्सम्यङ्न भाव्यंते नभस्पृ-
क्षाणि सर्वतः ॥ नच लौहित्यमापेति तावत्सायं च हूयते ॥ ३ ॥

सूर्यके अस्ताचल जानेके समयमें जिस समय सूर्य छत्तीस अंगुल ऊपरहों उस समय सन्ध्याको और प्रातःकालकी किरणोंके दीखनेपर (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, इन तीन अभियोंको प्रज्वलित करे ॥ १ ॥ सूर्योदयपर होमकरनेवालोंकी होमविधि जबतक अष्ट नहीं होती कि जबतक उदयाचलसे हाथसे ऊपर सूर्य न पहुँचजाय, अर्थात् एकहाथ सूर्यके चढ़नेपरभी उदयकालही रहताहै ॥ २ ॥ आकाशमें नक्षत्र जबतक भलीभाँतिसे न दीखें और जबतक आकाशकी लाली दूर न हो तबतक सन्ध्याका होम करे ॥ ३ ॥

रजोनीहारधूमाभ्रवृक्षाग्रान्तरिते रवौ ॥

संध्यामुद्दिश्य जुहुयाद्भुतमस्य न लुप्यते ॥ ४ ॥

यदि सूर्य धूलि, कोहल, धूम, मेघ, वृक्ष इनसे ढक रहाहो तो जो मनुष्य सन्ध्या समझ-
कर हवन करेगा, उस करनेवालेका हवन नष्ट नहीं होता ॥ ४ ॥

न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम् ॥

वैरूपाक्षं च न जपेत्प्रपदं च विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

ब्राह्मण क्षिप्र (शीघ्रताकी) होमोंमें परिसमूहन (कुशाओंसे वेदीकी स्वच्छता) न करै; और विरूपाक्ष मंत्रका जप न करै, और प्रारंभभी न करै; अर्थात् उतनी आहुतिमात्रही अग्निमें देदेवै ॥ ५ ॥

पर्युक्षणं च सर्वत्र कर्तव्यमुदितेऽन्विति ॥

अंते च वामदेव्यस्य गानं कुर्याद्वचस्त्रिधा ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण होमोंकी आदिमें “ओं अदितेनु०” इत्यादि मंत्रसे पर्युक्षण (होमकी वस्तुओंको कुशाओंसे छिडके) और अंतमें “ओंकयानश्चित्र०” इत्यादिसे वामदेव ऋचाका तीनवार गान होताहै ६ अहोमकेष्वपि भवेद्यथोक्तं चंद्रदर्शनम् ॥ वामदेव्यं गणेष्वन्ते बल्यन्ते वैश्वदेविके ॥ ७ ॥ यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् ॥ एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधीनपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥ बर्हिःपर्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा ॥ कृत्वाहुतिषु सर्वासु त्रिकर्म तत्र विद्यते ॥ ९ ॥

जित पूर्णिमाओंमें हवन नहीं होता उनमें चंद्रमाओंका दर्शन जिस भांति होताहै इसी भांति सब यज्ञोंके अंतमें और त्रिल वैश्वदेवके अंतमें वामदेवसूक्त (सामवेदके मंत्रों) का जप होताहै ॥७॥ अधस्तरणके अंततक जितने कर्म हैं उनमें स्मरण नहीं होता, एक कार्यके होनेसे परिधीयों (जो कुंडके चारों तरफ मर्यादा की जातीहै उस) को भी उन कर्मोंमें न करै ॥८॥ बर्हिः (१६ कुशा) पर्युक्षण और वामदेव्यका जप, यह तीन कर्म सम्पूर्ण यज्ञोंकी आहुति में नहींहोते, अर्थात् कहीं होतेहैं कहीं नहीं होते ॥ ९ ॥

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु ब्रीहयः स्मृताः ॥

माषकौद्रवगौरादि सर्वालाभेऽभिवर्जयेत् ॥ १० ॥

सम्पूर्ण हविष्यों में जौ मुख्यहैं यदि वह न मिले तौ ब्रीहि (सट्टी के धान) होतेहैं यदि यह भी न मिले तौ उद्ध, कोदो, गेहूँ इनको वर्जदे और तिलआदिकी आहुति देदे ॥ १० ॥

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका कंसादिना चेत्सुवमात्रपूरिका ॥

दैवेन तीर्थेन च ह्वयते हविः स्वंगारिणि सर्वाचिषि तच्च पावके ॥ ११ ॥

हाथसे आहुति दे जिससे बारहपर्व चारों अंगुलियोंके भरजाय इस भांतिसे आहुतिका द्रव्य ले, यदि पात्रसे आहुतिको दे तौ सुवेको भरकर दे; और उस साकल्यको दैवतीर्थ (जो अंगुलियोंके अग्रभागमें होताहै उस) से अग्निमें इस भांति आहुति दे, जिसमें अंगारे और ज्वाला भलीभांतिसे होजाय ॥ ११ ॥

योऽनर्चिषि जुहोत्यमौ व्यंगारिणि च मानवः ॥ मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥ १२ ॥ तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ॥ आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यंतिकी पराम् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य ज्वाला और अंगारोंसे हीन अग्निमें हवन करताहै, वह मंदाग्नि, रोगी, और दरिद्री होताहै ॥१२॥ इसकारण, आरोग्य, अवस्था और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मीकी इच्छाकरनेवाला पुरुष भांतिसे जलती हुई अग्निमें हवन करै; और बिना जलती हुई अग्निमें हवन कभी न करै ॥ १३ ॥

होतव्ये च हुते चैव पाणिशुपस्स्यदारुभिः ॥ न कुर्यादभिधमनं कुर्याद्वा
व्यजनादिना ॥ १४ ॥ मुखेनैकं धमन्त्यग्निः मुखाद्व्येषोऽध्यजायत ॥ नामि
मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तम् ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

जिस अग्निमें हवन करनाहो वा कियाहो, उसको हाथ-सूप, रफ्या, (खैरका खड्गाकार
हस्त परिमित वेदीमें रेखाकरनेके अर्थ होताहै) काठ इनसे अग्निको प्रज्वलित न कर वरन
व्रीजेने आदिसेही करै ॥ १४ ॥ कोई २ मुखसेही अग्निको प्रज्वलित करतेहैं कारण कि यह
अग्नि मुखसेही उत्पन्न हुईहै; और कोई २ यहभी कहतेहैं कि मुखसे अग्निको न जलावै, वरन
का यह कहना लौकिक अग्निके विषयमें है, यज्ञकी अग्निके विषयमें नहीं ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मापाटीकायां नवमः खण्डः समाप्तः ॥ ९ ॥

दशमः खंडः १०.

यथाहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादनातुरः ॥

दन्तान्प्रक्षाल्य नद्यादी गृहे चेत्तदमन्त्रवत् ॥ १ ॥

जिस मांतिसे रोगरहित मनुष्य दिन (मध्याह्न) में स्नान करै उसी मांतिसे प्रातःकालमें
भी करै, नदी आदिमें दांतोंको धोकर और जो घरमें स्नान करै तो बिना मन्त्रोंके करै ॥ १ ॥

नारदाद्युक्तवार्क्षं यदष्टांगुलमपाटितम् ॥ सूत्रचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधाव-
येत् ॥ २ ॥ उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ परिजप्य च मन्त्रे-

ण भक्षयेदंतधावनम् ॥ ३ ॥ आयुर्वलं यशो वर्चः प्रजाः पशून्वसूनि च ॥

ब्रह्म प्रज्ञां च भेषां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ ४ ॥

दत्तौनके काष्ठको नारदादि ऋषियोंने (अपनी २ स्मृतियोंमें) जिस वृक्षका कहाहै वन
वृक्षकी आठ अंगुलीकी बिना फटी त्वचासहित दत्तौन बनावै; और उसके अग्रभागसे मली-
मांति दांतोंको धोवै ॥ २ ॥ उठकर नेत्रोंको जलसे धोकर सावधानीसे शुद्ध हो मन्त्रको जप-
कर दत्तौन करै ॥ ३ ॥ दत्तौनका मन्त्र यह है कि “हे वृक्ष ! तू मुझे आयु, धन, यश,
तेज, प्रजा (सन्तान), पशु, धन, वेद, और उत्तम बुद्धि आदिको दे” ॥ ४ ॥

‘मासद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः ॥ तासु ज्ञानं न कुर्वीत वर्जयित्वा
समुद्रगाः ॥ ५ ॥ धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते ॥ न ता नदीशब्दवहा
गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ ६ ॥

श्रावण, भादौ इन महीनोंमें सम्पूर्ण नदियें रजस्वला होजातीहैं; इसकारण समुद्रमें मिलनें
वाली नदियोंके अतिरिक्त अन्य रजस्वला नदियोंमें स्नान न करै ॥ ५ ॥ जो नदियें
हजार धनुपतक नहीं जातीहैं वह नदी शब्दसे बहनेवाली नहींहैं इस कारण वह नदी नहीं कहा
जाती, वरन उन्हें गर्त (गड्ढा) कहतेहैं ॥ ६ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न वि-
द्यते ॥ ७ ॥ वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ॥ जलाथिनोऽपि पि-

तरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥ ८ ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः ॥
पिपासुननुगच्छन्ति संतुष्टाः स्वशरीरिणः ॥ ९ ॥ समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्या-
दयो मलाः ॥ नूनं सर्व्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥ १० ॥

उपाकर्म, और उत्सर्ग में प्रेतके निमित्त स्नानकरनेमें चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें नदीका रजस्वलाहोना दोष नहीं है ॥ ७ ॥ वेद, सम्पूर्णछंद, ब्रह्मादि देवता, और जलकी इच्छा करनेवाले पितरगण और मरीचि आदि ऋषि ॥ ८ ॥ ये सब उससमय उनके पीछे चलते हैं जिस समय सन्तोषी ब्रह्मके ज्ञाता देहके धारणकरनेवाले उपाकर्म और उत्सर्गके स्नानकरनेके लिये जाते हैं ॥ ९ ॥ जिस स्थानमें इन वेदादिकोंका समागम है, उस स्थानमें ब्रह्महत्या इत्यादि सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं फिर नदीका रजदोष क्यों न नष्ट होगा ॥ १० ॥

ऋषीणां सिच्यमानानामन्तरालं समाश्रितः ॥ संपिवेद्यः शरीरेण पर्षन्मुक्तज-
लच्छटाः ॥ ११ ॥ विद्यादीन्ब्राह्मणः कामान्वरादीन्कन्यका ध्रुवम् ॥ आमु-
ष्मिकान्यपि सुखान्याप्नुयात्स न संशयः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य सींचे जाते (हुए) ऋषियोंके मध्यमें स्थित अपने शरीरके द्वारा पर्षद् छुटीहुई जलकी छटाओंको पीता है ॥ ११ ॥ वह यदि ब्राह्मण होय तो विद्या आदि सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होता है और कन्या वरको पाती है; और मनुष्य निश्चयही परलोकके सुखोंको प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं ॥ १२ ॥

अशुच्यशुचिना दत्तमाममन्नं जलादिना ॥

अनिर्गतदशाहास्तु प्रेता रक्षांसि भुञ्जते ॥ १३ ॥

(किसी सपिंड वा सगोत्र) के मरनेके उपरान्त दशदिनके भीतर अशुद्ध (उसके सपिंड वा सगोत्र) पुरुषसे दियाहुआ आम (अपक चावल आदिकभी) अन्न और जलादि हैं; वह अशुद्धही होते हैं, इसी कारण उसको प्रेत और राक्षस भोगते हैं ॥ १३ ॥

स्वर्धुन्यंभःसमानि स्युः सर्व्वाण्यम्भांसि भूतले ॥

कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ दशमः खण्डः ॥ १० ॥

इति कर्मप्रदीपे परिशिष्टे कात्यायनविरचिते प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

चंद्रमा और सूर्य ग्रहणके समयमें सम्पूर्ण पृथ्वीपरके कुओंका जल गंगाजलकी समान हो जाता है ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां दशमः खण्डः समाप्तः ॥ १० ॥

इति कात्यायनके निर्माण किये हुये कर्मप्रदीपमें प्रथम प्रपाठ पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

एकादशः खंडः ११.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि संध्योपासनकं विधिम् ॥

अनर्हः कर्मणां विप्रः संध्याहीनो यतः स्मृतः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त संध्यावन्दनकी विधि कहता है, जिसकारण ब्राह्मणोंको संध्याहीन होनेपर सम्पूर्ण कर्मोंका अनधिकारी कहा है ॥ १ ॥

सव्ये पाणौ कुशाभ्क्त्या कुर्यादाचमनक्रियाम् ॥ द्वस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घास्तु वर्हिषः ॥ २ ॥ दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः संध्यादिकर्मणि ॥ सव्यः सोपग्रहः काप्यौ दक्षिणः सपवित्रकः ॥ ३ ॥

बाँये हाथमें कुशाओंको लेकर आचमन करे, छोटी कुशा होनी चाहिये, बड़ी २ कुशाओंको वर्हि कहते हैं (वो यथासम्भव त्याज्य है) ॥ २ ॥ इसकारण संध्याआदि कर्ममें कुशाओंको पवित्र कहा है; बाँये हाथमें उपग्रह (सामवेदीको ९ कुशका यजुर्वेदीको ३ कुशका वेणीरूप उपयोगनकुश होता है उसे) ले, और दाहिने हाथमें पवित्री पड़े ॥ ३ ॥

रक्षयेद्धारिणात्मानं परिक्षिप्य सभंततः ॥ शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकं विन्दुभिः ॥ ४ ॥ प्रणवो भूर्भुवःस्वश्च सावित्री च तृतीयका ॥ अर्धैवत्यंज्यं चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥ ५ ॥

चारोंओरको जल फेंककर अपने शरीरकी रक्षाकरे; और जलको लेकर कुशाओंसे (गायत्रीको अभिमंत्रितकर) शिर का मार्जन करे ॥ ४ ॥ अकार, भूः भुवः स्वः तीसरी गायत्री जल है देवता जिनका ऐसी तीन ऋचा (आपोहिष्ठाआदि) यह चौथा मार्जन है ॥ ५ ॥

भूराद्यास्तिस्र एवैता महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥ महर्जनस्तपः सत्यं गायत्री च शिरस्तया ॥ ६ ॥ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरिति शिरः ॥ प्रतिप्रतीकं प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरसः ॥ ७ ॥ एता एतां सहानेन तथैभिर्दशभिः सह ॥ त्रिजपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ८ ॥

भूः भुवः स्वः ये तीन अव्यय (नष्ट न हो) महाव्याहृत हैं महाः जनः तपः, सत्य, और गायत्री और शिरः ॥ ६ ॥ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म, भूर्भुवः स्वः यह शिरमंत्र है, प्रत्येक मन्त्रके आगे और शिरः मन्त्रके पीछे अकारका उच्चारण करे ॥ ७ ॥ यह सात व्याहृति और गायत्री यह शिरः मन्त्र है अकारको और इन दशोंको प्राणोंको रोककर जो जप किया जाता है उसे प्राणायाम कहते हैं ॥ ८ ॥

करेणोद्धृत्य सलिलं प्राणमासज्य तत्र च ॥

जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाचमर्षणम् ॥ ९ ॥

हाथसे जल लेकर और नासिकासे लगाकर तीनवार या एकवार प्राणोंको रोककर वा न रोककर अघमर्षण (कृतं च सत्वम् इत्यादि) मन्त्रको जपे ॥ ९ ॥

उत्पायार्कं प्रतिमोहेत्रिकेणाञ्जलिनाम्भसः ॥

इसके पीछे उठकर जलकी अंजलिसे सूर्यके सन्मुख सदाहो अर्थात् अंजुली अर्घ्य दे,

१ यह चार मार्जन सामवेदीके अनुसार लिखा है; यजुर्वेदीको तीन यह और अ आपो हि षा मयो भुवः अ तान ऊर्जे दधात न, इस क्रमसे ९ मिलाकर १२ मार्जन होते हैं उसमें ११ वां भूमिमें और शिरपर जानना ।

ओं चित्रमृगद्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥ १० ॥ संध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहु-
र्मनीषिणः ॥ मध्ये त्वह्न उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥ ११ ॥ तदसंस्क-
पार्णिवा एकपादद्विपादपि ॥ कुर्यात्कृताञ्जलिर्वापि ऊर्ध्वबाहुरथापि वा ॥ १२ ॥
यत्र स्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ॥ भूयस्त्वं ब्रुवते तत्र कृच्छ्राच्छ्रे-
यो ह्यवाप्यते ॥ १३ ॥

फिर ॐ चित्रं इत्यादि दो ऋचाओंसे सूर्य भगवान्की स्तुति करै ॥ १० ॥ दोनों संध्या-
ओंके समयमें यही सूर्यका उपस्थान (स्तुति) है यह मनीषी (ज्ञानवान्) कहतेहैं; और
मध्याह्नके समयमें इस स्तुतिके उपरान्त अपनी इच्छानुसार विभ्राड् इत्यादिकी जपे ॥ ११ ॥ इस
स्तुतिके समयमें पृथ्वीपर ऐंढी न लगने पावै अथवा एकही पैरसे खड़ा रहै; या ऊर्ध्वचरणसे
खड़ा रहै इसके पीछे हाथ जोड़कर ऊपरकी दोनों भुजा उठाव सूर्यकी स्तुतिकरै ॥ १२ ॥
जिस कर्मके करनेमें अधिक कष्ट होताहै; उस कर्ममें कल्याणभी अधिक होताहै ॥ १३ ॥

तिष्ठेदुदयनात्पूर्वा मध्यमामपि शक्तिः ॥

आसीन उद्गमाच्चान्त्यां संध्यां पूर्वत्रिकं जपन् ॥ १४ ॥

प्रातःकालकी संध्या उदयसे पूर्व, और मध्याह्नकी संध्या अपनी शक्तिके अनुसार करै;
अर्थात् मध्याह्नमें अथवा प्रातःकाल खड़ा होकर और सायंकालकी सूर्यास्त होनेपर बैठके तीनों
सूर्यकी स्तुतिके मन्त्रको जपताहुआ करै ॥ १४ ॥

एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यत्र तिष्ठति ॥

यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥ १५ ॥

यह तीन संध्या कहीं; ब्राह्मण्य इन्हींमें स्थित है, जिनका इनमें आदर नहींहै वह ब्राह्मण
नहीं कहा जा सकता ॥ १५ ॥

सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ॥

तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥ १६ ॥

जो संध्याके न करनेसे भय करतेहैं और जो सदा नियमित स्नान करतेहैं सर्प जिस
भांति गरुडके सामने नहीं जाते, उसी भांति सम्पूर्ण दोष इनके समीप नहीं आते ॥ १६ ॥

वेदमादित आरभ्य शक्तितोऽहरहर्जपेत् ॥ उपतिष्ठेत्ततो रुद्रं सर्वाद्वा वैदिकाज-
पात् ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतवेकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

प्रतिदिन प्रथमसे आरंभ करके यथाशक्ति वेदका विचार करै; उसके पीछे वा पहिले
महादेवजीकी स्तुति करै ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशःखंडः समाप्तः ॥ ११ ॥

द्वादशःखंडः १२.

अथाग्निस्तर्पयेद्देवान्सतिलाभिः पितृनपि ॥

नमस्ते तर्पयामीति आदावोमिति च ब्रुवन् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त आदिमें ॐ और अंतमें नमस्तर्पयामि (ॐ ब्रह्मणे नमस्तर्पयामि इत्यादि) कहता हुआ मनुष्य जलसे देवताओंका तर्पण करे, और तिलसहित जलसे पितरोंका तर्पण करे ॥ १ ॥

ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं वेदान् देवांश्छन्दांस्यृषीन् पुराणाचार्यान् गंध-
वानितरान्मासं संवत्सरं सावयवं देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान् सागरान्पर्व-
तान् सरितो दिव्यान्मनुष्यानितरान्मनुष्यान् यक्षान्रक्षांसि सुपर्णान् पिशाचान्
पृथिवीमोषधीः पशून्वनस्पतीन् भूतश्रापं चतुर्विधमित्युपवीत्यथ प्राचीनावीती
यमं यमपुरुषान् कव्यवाहमनलं सोमं यममर्थ्यमणमग्निष्वात्तान् सोमपीथान्
बर्हिषदोऽथ स्वान् पितॄन् सकृत् सकृन्मातामहांश्चेति प्रतिपुरुषमभ्यस्येज्येष्ठ-
भ्रातृश्वशुरपितृव्यमातुलाश्च पितृवंशमातृवंशौ ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्ति
तांस्तर्पयामीत्ययमवसानाञ्जलिरथ श्लोकाः ॥ २ ॥

क्रम उसका यह है—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, वेद, देव, छंद, ऋषि, पुराणाचार्य, गंधर्व,
इतर, मास, सावयव, संवत्सर, देवी, अप्सरा, देवानुग, नाग, सागर, पर्वत, सरित्,
दिव्यमनुष्य, इतरमनुष्य, यक्ष, रक्षः, सुपर्ण, पिशाच, पृथ्वी, औषधी, पशु, वनस्पति, भूत-
श्राप, चतुर्विध, इनका तर्पण सव्य होकर (सीधे बाँये कन्धेपर जनेऊ रखकर) करे; फिर
अपसव्य हो (दहिने कंधेपर जनेऊ रख) कर यम, यमपुरुष, कव्यवाह, अनल, सोम,
यम, अर्थमा, अग्निष्वात्ता, सोमपीथ, बर्हिषद इनके अनंतर अपने पितरों (पिताः पितामह
अपितामह) का और मातामहों (मातामहों, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह) का एक २ बार
तर्पण करे; और पितरोंका नामले ज्येष्ठभ्राता, श्वशुर, पितृव्य, (चचा) मातुल (मामा)
फिर जो पिता माताके वंशमें उत्पन्नहुए हैं अथवा जो मृत्युको प्राप्तहोकर जलकी इच्छा
करते हैं उनको वृत्तकरताहूँ, यह कहकर सबसे पीछेकी अंजुली दे, इसके उपरान्त अब
श्लोक कहतेहैं ॥ २ ॥

छायां यथेच्छंछरदातपार्तः पयः पिपासुः क्षुभितोऽलमन्नम् ॥ वालो जनित्री
जननी च वालं योषित्पुमांसं पुरुषश्च योपाम् ॥ ३ ॥ तथा सर्वाणि भूतानि
स्थावराणि चराणि च ॥ विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्वाभ्युदयकृद्धि सः ॥ ४ ॥
तस्मात्सदैव कर्तव्यमकुर्वन्महत्तैनसा ॥ युज्यते ब्राह्मणः कुर्वन्निश्चमेतद्विभ-
र्त्ति हि ॥ ५ ॥

जिस भांति शरदऋतु (कारकार्तिक) में यह मनुष्य धूपसे दुःखितहो छायाकी इच्छा
करताहै उसी भांति वृषावाला मनुष्य जलकी, श्रुषावाला मनुष्य अन्नकी, वालक माताकी,
और माता वालककी, स्त्री पुरुषकी और पुरुष स्त्रीकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥ इसी प्रकार
स्थावर और जंगम यह सम्पूर्ण प्राणी ब्राह्मणसे जलकी इच्छा करतेहैं; कारण कि ब्राह्मण
सभीके अभ्युदयकरने (बढ़ाने) वाले हैं ॥ ४ ॥ इसकारण ब्राह्मण सर्वदा तर्पण करे; जो
तर्पण नहीं करताहै वह महापापका भागी होताहै; और जो करताहै; वह इस जगत् को
पालन करताहै ॥ ५ ॥

अल्पत्वाद्वोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥

प्रातर्न तनुयात्स्नानं होमलोपो हि गर्हितः ॥ ६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

हवनका समय बहुत थोड़ा है; और स्नानका कर्म अधिक है; इसकारण होमके पहले प्रातःकालमें विस्तार भावसे स्नान न करै कारण कि होमका लोप होना निर्दिष्ट है ॥ ६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशः खंडः समाप्तः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः खंडः १३.

पञ्चानामथ सत्राणां महतामुच्यते विधिः ॥

यैरिष्टा सततं विप्रः प्राप्नुयात्सन्न शाश्वतम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त उत्तम पांच यज्ञोंकी विधि कहताहूँ; जिनके निरन्तर करनेसे ब्राह्मण सनातन (वैकुण्ठ) स्थानको जाताहै ॥ १ ॥

देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् ॥

महासत्राणि जानीयात् एवेह महामखाः ॥ २ ॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ, क्रमानुसार इन पांच यज्ञोंको महासत्र जानना उचित है; और यही पांच इस गृहस्थआश्रममें महायज्ञ कहें ॥ २ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि-
पूजनम् ॥ ३ ॥ आर्द्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पित्र्यो बलिर्थापि वा ॥ यश्च श्रुति-
जपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥ ४ ॥ स चार्वाकतर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा
प्रातराहुतेः ॥ वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्रतीं निमित्तिकात् ॥ ५ ॥ अप्येकमा-
शयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ॥ अद्वैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमयापि वा
॥ ६ ॥ अप्युद्धृत्य यथाशक्त्या किंचिदन्नं यथाविधि ॥ पितृभ्योऽथ मनुष्ये-
भ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥ ७ ॥ पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत् ॥
हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदर्धे निनयेदपः ॥ ८ ॥

ब्रह्मयज्ञ पढ़ाना है, पितृयज्ञ तर्पण है, दैवयज्ञ हवन है, बलिर्बैश्वदेव यूनयज्ञ है और मनुष्ययज्ञ अतिथिका पूजन है ॥ ३ ॥ अथवा आर्द्धकी वा पितरोंकी बलिको पितृयज्ञ कहाहै; और जो कि श्रुतिका जप कहा है उसको ब्रह्मयज्ञ कहतेहैं ॥ ४ ॥ ब्रह्मयज्ञको तर्पणसे पहले करै, अथवा :कालके हवनसे और वैश्वदेवके पीछे करै; किसी विशेषकारणके विना अन्यसमयमें न करै ॥ ५ ॥ यदि (एकसे) अन्यमी (द्वितीयादिक ब्राह्मण) आर्द्धान्नका भोजनकर्ता वा भोजनकी सामग्रीही न मिले तौ विश्वदेवोंके विनाही एक ब्राह्मणको पितृयज्ञकी सिद्धिके निमित्त अवश्य भोजन करावै ॥ ६ ॥ (यदि इतनामी न होसकै तौ) तो अपनी शक्तिके अनु-
थोड़ासामी अन्न निकालकर विधिसहित पितर और मनुष्योंके निमित्त ब्राह्मणको प्रति-
दिन दे ॥ ७ ॥ “पितृभ्य इदम्” यह कहकर “स्वधा” शब्दका प्रयोगकरै; फिर उस अन्नमेंसे आधाअन्न हन्तकारके लिये जलसे मनुष्योंको दे ॥ ८ ॥

मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम् ॥ अहनि च तथा तमस्विन्यां
सार्द्धं प्रथमयामान्तः ॥ ९ ॥ सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बलिकर्म च ॥ अन-
श्नतापि सततमन्यथा किंविधी भवेत् ॥ १० ॥

मुनियोंने भूलोकवासी ब्राह्मणोंको दो समय (दिन और रात्रिमें) भोजन करना कहा है;
एक बार तौ डेढ़पहर दिन चढ़े तक दिनमें, और एकवार डेढ़पहर रात गयेतक ॥ ९ ॥
यदि भोजन न करै तौ भी सायंकाल और प्रातःकालको बलिवैश्वदेव करै, जो इसभांति नहीं
करताहै वह स्हापापका भागी होताहै ॥ १० ॥

अमुष्मै नम इत्येवं बलिदानं विधीयते ॥ बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारः कृतो
यतः ॥ ११ ॥ स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम् ॥ स्वधाकारः पि-
तृणां च हन्तकारो नृणां कृतः ॥ १२ ॥ स्वधाकारेण निनयेत्पित्र्यं बलिमतः
सदा ॥ तदप्येके नमस्कारं कुर्वन्ते नेति गौतमः ॥ १३ ॥

“अमुष्मै” (जिसको दान दिया जाताहै उसके नामका उल्लेख है) नमः कहकर बलि
देनेकी विधि कहीहै, कारणकि बलिके लिये नमस्कार किया गयाहै ॥ ११ ॥ देवताओंको
(देनेके समयमें) स्वाहा, वषट्, नमस्कार, और पितरोंको (देते समय) स्वधा और मनु-
ष्योंको (देते समय) में हन्तकार करना कहाहै ॥ १२ ॥ इस कारण स्वधा कहकर पित-
रोंको सर्वदा बलिदे, उसके पीछे नमस्कार करै कोई ऋषि तौ यह कहतेहैं; और गौतम ऋषि
यह कहतेहैं कि न करै ॥ १३ ॥

नावराद्ध्या बलयो भवंति महामार्जारश्रवणप्रमाणात् ॥

एकत्र चेदविकृष्टा भवंतीतरेतरसंसक्ताश्च ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

बलि अपनी ऋद्धिसे कम नहीं होती, सनातन मार्गका जो श्रवण (श्रुति) है, इसमें
वही प्रमाण है; यदि बिना व्यवधान हुए अथवा परस्पर सम्बन्ध हो तौ एक स्थानपरही
बलि देदे ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशः खंडः समाप्तः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः खंडः १४.

अतस्तद्विन्यासो वृद्धिर्पिंडानिवोत्तरांश्चतुरो बलीन्निदध्यात् ॥ पृथिव्यै वायवे
विश्वेभ्यो देवेभ्यः प्रजापतय इति सव्यत एतेषामेकैकमग्न्य ओषधिवनस्प-
तिभ्य आकाशाय कामायेत्येतेषामपि मन्यव इन्द्राय वासुकये ब्रह्मण इत्येते-
षामपि रक्षोजनेभ्य इति सर्वेषां दक्षिणतः पितृभ्य इति चतुर्दश नित्या आश-
स्यप्रभृतयः काम्याः सर्वेषामुभयतोऽग्निः परिपेकः पिंडवच्च पश्चिमाप्र-
तिपत्तिः ॥ १ ॥

इसके उपरान्त बलि देनेके क्रमको कहतेहैं; नांदीमुखके पिंडोंके समान चार बलि उत्तर-
दिशामें दे; पृथ्वी, वायु, विश्वेदेवा, प्रजापति ४ इनके दक्षिणमें जल, औषधि, वनस्पति,

आकाश, काम, और मनुष्य, इन्द्र, वासुकि, ब्रह्मा और रक्षोजन, और सबसे दक्षिणदिशामें पितरोंके लिये यह १४ सबही बलि नित्य (आवश्यक) है; और आकाश इत्यादि बल इच्छाकी देनेवाली हैं सम्पूर्ण बलियोंके दोनों पार्श्वोंको जलसे सींचे इससे पिछले कर्मको पिंडकी समान जानें ॥ १ ॥

न त्यातां काम्यसामान्ये जुहोतिबलिकर्मणी ॥ पूर्वं नित्यविशेषोक्तं जुहोति-
बलिकर्मणोः ॥ २ ॥ काममते भवेयातां न तु मध्ये कदाचन ॥ नैकस्मि-
न्कर्मणि तते कर्मान्यदापतेद्यतः ॥ ३ ॥ अग्न्यादिर्गोतमाद्युक्तो होमः शाकल
एव च ॥ अनाहिताग्नेरप्येष युज्यते बलिभिः सह ॥ ४ ॥

हवन और बलिकर्म यह सामान्य कर्ममें नहीं होते; कारण कि हवन और बलिकर्म को नित्यकर्मसे विशेष कहा है ॥ २ ॥ यदि इच्छा हो तो इन्हें मनुष्य कर्मके अंतमें कर सकता है, परन्तु बीचमें कभी नहीं कर सकता; कारण कि एक कर्मके प्रारंभ होनेपर दूसरे कर्मको प्रारंभ करनेकी विधि नहीं है ॥ ३ ॥ गौतमआदि ऋषिका कहा अग्नि, और शाकलक-
षिका कहा हवन और बलि वैश्वदेव इनको जो ब्राह्मण अग्निहोत्री न हो तो वहभी कर सकता है ॥ ४ ॥

स्पृष्ट्वा यो वक्ष्यमाणोऽग्निं कृताञ्जलिपुटस्ततः ॥ वामदेव्यजपात्पूर्वं प्रार्थयेद्ब्र-
विणोदयम् ॥ ५ ॥ आरोग्यमायुरैश्वर्यं धीर्धृतिः शं बलं यशः ॥ ओजो वर्चः
पशून्वीर्यं ब्रह्म ब्राह्मण्यमेव च ॥ ६ ॥ सौभाग्यं कर्मसिद्धिश्च कुलज्यैष्ठ्यं
सुकर्तृताम् ॥ सर्वमेतत्सर्वसाक्षिन्द्रविणोदरिरीहि नः ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त आचमनकर अग्निका दर्शन करता हुआ हाथ जोड़कर वामदेवके सूक्तके जपसे प्रथम ऐश्वर्यकी वृद्धिकी प्रार्थना करे ॥ ५ ॥ “आरोग्य, ऐश्वर्य, आयु, वृद्धि, धैर्य, मंगल, बल, यश, ओज, तेज, पशु, वीर्य, वेद, ब्राह्मणत्वं ॥ ६ ॥ सौभाग्य, कर्मकी सिद्धि, उत्तमकुल, उत्तमकर्तृव्यता यह सम्पूर्ण पदार्थ सबके साक्षी कुबेर हमें दे” ॥ ७ ॥

न ब्रह्मयज्ञादधिकोऽस्ति यज्ञो न तत्प्रदानात्परमस्ति दानम् ॥

सर्वे तदन्ताः क्रतवः सदाना नान्तोऽदृष्टः कैश्चिदस्य द्विकस्य ॥ ८ ॥

ब्रह्मयज्ञसे अधिक यज्ञ नहीं है और उसके दानसे अधिक दान नहीं है; इसकारणसे इन दोनोंके अंतको किसीने भी नहीं देखा ॥ ८ ॥

ऋचः पठन्मधुपयःकुल्याभिस्तर्पयेत्सुरान् ॥ घृतामृतौघकुल्याभिर्यजुंष्यापि पठ-
न्सदा ॥ ९ ॥ सामान्यापि पठन्सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ॥ मेदःकुल्याभिरपि
च अथर्वीगिरसः पठन् ॥ १० ॥

नित्य ऋग्वेदका पाठकर शहत और दूधकी कुल्याओंसे देवताओंको तर्पण करता है यजुर्वेदके पढ़नेसे घृत और अमृतकी कुल्याओंसे देवताओंको तर्पण करता है ॥ ९ ॥ प्रतिदिन सामवेदके पढ़नेसे सोम और घृतकी कुल्याओंसे अथर्वीगिरसके पढ़नेसे मेदकी कुल्याओंसे ॥ १० ॥

मांसक्षीरोदनमद्रुकुल्याभिस्तर्पयेत्पठन् ॥ वाकोवाक्यपुराणानि इतिहासानि
- चान्वहम् ॥ ११ ॥ ऋगादीनामन्यतममेतेषां शक्तितोऽन्वहम् ॥ पठन्मध्वा-

ज्यकुल्याभिः पितृनपि च तर्पयेत् ॥ १२ ॥ ते वृक्षास्तर्पयन्त्येनं जीवन्तं प्रेतमेव
च ॥ कामचारी च भवति सर्वेषु सुरसन्नासु ॥ १३ ॥ कुर्वप्येनो न तं स्पृशेत्-
क्तिं चैव पुनाति सः ॥ यं यं क्रतुं च पठति फलभाक्तस्य तस्य च ॥ १४ ॥
वसुपूर्णावसुमतीत्रिर्दानफलमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मयज्ञादपि ब्रह्मदानमेवातिरि-
च्यते ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्दशः खंडः ॥ १५ ॥

प्रतिदिन वाक्रोवाक्य पुराण और इतिहास इनके पढ़नेसे मांस, दूध, और ओदन, मधु इनकी
कुल्याओंसे मनुष्य देवताओंको तृप्त करताहै ॥ ११ ॥ ऋग्वेद इत्यादि इन सत्रके बीचमें
प्रतिदिन यथाशक्ति जो कोई शास्त्रके पढ़नेसे सहित बीकी कुल्याओंसे पितरोंको भी तृप्त करता
है ॥ १२ ॥ उत्ते देवता और पितृगण इस भांति तृप्त होकर तृप्त करानेवाले मनुष्यों
जीवित अवस्थामें और मृतक अवस्थामेंभी तृप्त करतेहैं; और वह मनुष्य अपनी इच्छानुसार
सम्पूर्ण देवताओंके (स्वर्गों) में जानेवाला होताहै ॥ १३ ॥ इसको कोई महापापभी स्पर्श
नहीं करसकता; और जिस पंडितमें धैर्यताहै उसको भी पवित्र करतेहैं; और जिस दयालुको
वह पढ़ताहै वह पाठकारी मनुष्य उसी २ यज्ञके करनेका फल प्राप्त करताहै ॥ १४ ॥
घनसे भरी हुई पृथ्वीके तीनवार दानकरनेके फलको पाताहै; ब्रह्मयज्ञसे अधिक एक ब्रह्म
(विद्या) काही दान है ॥ १५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशः खण्डः समाप्तः ॥ १४ ॥

पंचदशः खंडः १५.

ब्रह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्तिता॥ कर्मतिः॥ नुच्यमानापि पूर्णपात्रादिका
भवेत् ॥ १ ॥ यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णेन विद्यते ॥ नावराद्भयमतः कुर्या-
त्पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥ २ ॥

जिस कर्ममें जो दक्षिणा कही गईहै, कर्मके अन्तमें ब्रह्माको वही दक्षिणा दे, यदि किसी
कर्मके अन्तमें नभी हो तब वह दक्षिणा पूर्णपात्रकी होताहै ॥ १ ॥ जितने अन्नसे बहुत
खानेवाले मनुष्यकी तृप्ति हो उतनेही अन्नसे पात्रको पूर्णकरे; इससे कम न करे यह
नियम है ॥ २ ॥

विद्व्याद्धौत्रमन्यश्चैदक्षिणाद्धैहरो भवेत् ॥

स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥

यदि यह समझा जाय कि आधी दक्षिणा ब्रह्मा लेगा, और आधी होताकी होगी तब होता-
को ही ब्रह्मा, बनाले; यदि होता और ब्रह्माका कर्म स्वयंही करले तब किसी औरको दक्षि-
णारूप पूर्णपात्र देवे ॥ ३ ॥

१ जिसमें "किंस्विदावपनं महत्" (स्यान् कौनसा बड़ा है) "भूमिगवयनं महत्" (भूमि बड़ा स्यात्
है) इस प्रकारका प्रश्नोत्तर है उस ग्रन्थका नाम वाक्रोवाक्य है ॥

कुलं त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् ॥

नातिक्रमेत्सदा दिक्सन्य इच्छेदात्मनो हितम् ॥ ४ ॥

अपने हितकी इच्छा करनेवाला मनुष्य वेदपाठी कुलपुरोहित और धोरे बैठे हुए अथवा रहनेवाले हों तो कुलगुरुको त्यागकर दूसरेको दान न दे; अर्थात् इन्हींको दे ॥ ४ ॥

अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते ॥ नैतावपृष्टा ददतः पात्रेऽपि फलमस्ति हि ॥ ५ ॥ दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मन वरम् ॥ इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः ॥ ६ ॥

दान देनेके समयमें "मैं इनको देताहूँ" यह कहकर दान दिया जाता है इन (पूर्वोक्त) दोनोंके बिनापूछे हुए जो दान सुपात्रकोभी दिया जाय तो उसका फल दाताको नहीं होता ॥ ५ ॥ इन दोनोंके परदेशमें रहने पर उत्तम वस्तुको मनही मनमें इन दोनोंको अर्पणकरके पीछे दूसरे मनुष्यको दान करदे यह श्रेष्ठ दानकी विधि है ॥ ६ ॥

सन्निकृष्टमधीयानं ब्र णो यो व्यतिक्रमेत् ॥

यद्दाति तमुल्लंघ्य ततः स्तेयेन युज्यते ॥ ७ ॥

पढ़नेमें चतुर धोरे बैठे हुए अथवा रहनेवाले हों तो ऐसे ब्राह्मणको त्यागकर जो मनुष्य दूसरेको दान देता है; उस द्रव्यको जितना दिया है उतनेही द्रव्यको चोरीके फलको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

यस्य त्वेकगृहे सूखों दूरस्थश्च गुणान्वितः ॥ गुणान्विताय दातव्यं नास्ति सूखे व्यतिक्रमः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणाभिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मानि ह्रियते ॥ ९ ॥

सूखे जिसके घरमें है, और गुणी पुरुष दूर देशमें है, तो वह गुणवान् मनुष्यकोही दान करे, कारण कि सूखेके उल्लंघन करनेमें दोष नहीं कहा है ॥ ८ ॥ वेदसे रहित ब्राह्मणके उल्लंघन करनेमें दोष नहीं है, कारण कि प्रव्रलित अग्निको छोड़कर कोईभी भस्ममें आहुति नहीं देता ॥ ९ ॥

आज्यस्थाली च कर्तव्याः तैजसद्रव्यसंभवा ॥ महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥ १० ॥ आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामं तु कारयेत् ॥ सुदृढामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते ॥ ११ ॥

घृतकी सम्पूर्ण आहुतियोंमें तैजस द्रव्य (सुवर्णः आदि) की वा मिट्टीकी आज्यस्थाली (घीका पात्र) करना चाहिये ॥ १० ॥ आज्यस्थालीका प्रमाण अपनी इच्छानुसार करले परन्तु जो छिद्रहीन दृढ है उसेही विद्वान् आज्यस्थाली कहते हैं ॥ ११ ॥

तिर्यग्धूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी ॥ मृन्मय्यौदुंबरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥ १२ ॥ स्वशाखोक्तः प्र स्वन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः ॥ नचातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा ॥ १३ ॥

जो तिरछी और ऊँची समिधकी समान हो और दृढ हो, और मुख चौडों न हो वह चरुस्थाली (साकल्यपात्र) श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥ जिसे अपनी शाखा में कहा है;

जिसमें जल न टपकै; जला न हो, कड़ा न हो, देखनेमें सुन्दर हो, बहुतगीला न हो, और रसयुक्त हो, ऐसे चरुको पकावै ॥ १३ ॥

इध्मजातीयमिध्मार्धप्रमाणं भक्षणं भवेत् ॥ वृत्तं चांगुष्ठपृथ्वग्रमवदानक्रियाक्ष-
मम् ॥ १४ ॥ एवैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं द्रुवे ॥ दर्वी द्यंगुल-
पृथ्वग्रातुरीयोनं तु भक्षणम् ॥ १५ ॥

जिस काष्ठका इध्महो उसी काष्ठके इध्मकी बराबर गाल और अंगूठेकी समान मोटे अग्र-
भागवाला चरुके चलानेमें सामर्थ्यवान् हो ऐसा भक्षण (कलछी) होती है ॥ १४ ॥ इसीको
दर्वी कहते हैं, जो दर्वीमें विशेष है उसेभी मैं कहता हूँ, दर्वीका अग्रभाग दो अंगुल मोटा हो-
ता है; और भक्षण उससे सुटाईमें आधा अंगुल कम होता है ॥ १५ ॥

मुसलोलूखले वाक्षं स्वायते सुदृढे तथा ॥ इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव
च ॥ १६ ॥ दक्षिणं वामतो बाह्यमात्माभिमुखमेव च ॥ करं करस्य कुर्वीत
करणेन्यच्च कर्मणः ॥ १७ ॥

काठके मुसल और ओखल होते हैं; इन्हें चौड़ा और दृढ अपनी इच्छानुसार प्रमाणका
बनाले; और सूप बांसका होता है ॥ १६ ॥ दहिने हाथको बाँये हाथसे आगे अपने सन्मुख
रखलै; इन्हींको कर्मोंमें करना चाहिये ॥ १७ ॥

कृत्वाग्न्यभिमुखौ पाणी स्वस्थानस्थौ सुसंयतौ ॥ प्रदक्षिणं तथासीनः कुर्यात्प-
रिसमूहनम् ॥ १८ ॥ बाहुमात्रा परिधय ऋजवः सत्वचोऽग्रणाः ॥ त्रयो भव-
न्ति शीर्णाग्रा एकेषां तु चतुर्दिशम् ॥ १९ ॥ प्रागग्रावलिभिः पश्चादुदगग्रमथा-
परम् ॥ न्यसेत्परिधिमन्यं चेदुदगग्रः सपूर्वतः ॥ २० ॥

पूर्वाक्त रीतिके अनुसार यथावत् स्थित हुए सावधान हो दोनों हाथ अग्निके सन्मुख करके
दक्षिण दिशामें बैठकर परिसमूहन करै (चुहारै) ॥ १८ ॥ भुजाकी बराबर, वकलसहित
विनाघुनी हुई आगेसे फटी कोमल तीन परिधि होती है; किन्हीं २ ऋषियोंके मतके अनुसार
चारों दिशाओंमें चार होती हैं ॥ १९ ॥ एक वल्लिसे पीछे ऐसी परिधि होती है जिसका अग्रभाग
पूर्वदिशामें हो; और उत्तरको दूसरीका अग्रभाग होता है; और तीसरी परिधिका अग्रभा-
गभी उत्तरकी ओर को होता है; और यह पूर्वमें रखी जाती है; अर्थात् दक्षिणदिशामें
नहीं होती ॥ २० ॥

यथोक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ॥

यवानामिव गोधूमा ब्रीहिणामिव शालयः ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचदशः खण्डः ॥ १५ ॥

यदि शाखमें कहीहुई वस्तु न मिले, तौ उसके समानकोही ग्रहण करै, जैसे कि जौके
समान गेहूं है; और धानके समान सफेद चावल होते हैं ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशः खण्डः समाप्तः ॥ १५ ॥

षोडशः खंडः १६.

पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ॥

वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥ १ ॥

पिंडान्वाहार्यक (जो अमावसके दिन होता है) क्षीणचंद्रमाके दिन और दिनके तीसरे पहरमें होता है अति संध्याके समीप कालमें न करे ॥ १ ॥

यदा चतुर्दशी यामं तुरीयमनुपूरयेत् ॥ अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥ २ ॥ यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः ॥ अनयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥ ३ ॥ यच्चोक्तं दृश्यमानेपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया ॥ अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्व्वपेत् ॥ ४ ॥

जिसदिन चतुर्दशी तीनपहर वा तीन पहरसे कुछ अधिककालतक स्थित रहै; और अमावस्याकी हानि हो; उसीदिन श्राद्धकरना कहा है ॥ २ ॥ जिसदिन चंद्रमा न दीखे इसी (पूर्वोक्त) चतुर्दशीके दिन अमावसके अनुरोधसे क्षीण चन्द्रमाके दिन श्राद्धकरना उचित है, यह भी जानना कर्त्तव्य है ॥ ३ ॥ और किसीने ऐसाभी कहा है कि जिसदिन चन्द्रमा दिखाई न दे तौभी श्राद्धकरे, यह अनुरोधचतुर्दशीके अनुरोधसे है; परन्तु अमावसकी प्रतीक्षा देखे; अथवा चतुर्दशीके अंतमेंही पिंडदे ॥ ४ ॥

अष्टमेशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः ॥

अमावास्याष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः ॥ ५ ॥

जिस समय चतुर्दशीका आठवां भाग होता है उसी समय चन्द्रमा क्षीण होता है, और अमावस्याके आठमें भागमें अणु (सूक्ष्म) रूप होजाता है ॥ ५ ॥

आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् ॥ विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः ॥ ६ ॥ अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागो न कलावशिष्टः ॥ तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति ॥ ७ ॥ यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यव्यस्तस्मिंस्तृतीयया परिदृश्यो नोपजायते ॥ एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात् ॥ ८ ॥

चंद्रमाकी गतिके जाननेवाले कहते हैं कि अग्रहण और ज्येष्ठीकी अमावस इन दोनोंमें चंद्रमाकी गति विशेष होती है ॥ ६ ॥ (परन्तु) इन दोनों (अमावसों) में पहलेपहरमें तौ चंद्रमा रहवा है; और एककलाका चौथा भाग रहता है, इसके उपरान्त सम्पूर्णक्षय होजाता है, ऐसा ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले कहते हैं ॥ ७ ॥ तेरहमहीने जिस संवत् में हों उसमें तीसरे पहरके उपरान्त चौदसके दिन चंद्रमा दिखाई न दे तब इसभांति चंद्रमाकी गति जानकर क्षीण चंद्रमाके समयमें मध्याह्नके उपरान्त पिंड दे ॥ ८ ॥

सम्मिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत्कचित् ॥ खर्विता तां विदुः केचिद्रताध्वामिति चापरे ॥ ९ ॥ वर्द्धमानाममावास्यां लभेच्चेदपरेऽहनि ॥ यामांस्त्रीन-

धिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ १० ॥ पक्षादावेव कुर्वन्त सदा पक्षादिकं चरम् ॥ पूर्वाह्ण एव कुर्वन्ति विद्वेऽप्यन्ये मनीषिणः ॥ ११ ॥

यदि कदाचित् अमावस में चतुर्दशीका मेल होजाय तो उसे कोई तो खर्विता और कोई गताध्वा कहतेहैं ॥ ९ ॥ यदि दूसरे दिन तीन पहर वा उससे भी अधिक अमावस हो, तो उस दिन पितृयज्ञ (श्राद्ध) होताहै ॥ १० ॥ पक्षकी आदिका चरु (गोदुग्धमें पकाया सट्टीका चावल) पक्षकी आदि में मध्याह्नके समयमें पूर्वविद्धमें करै, यह किन्हीं मनस्वी ऋषिका कथन है ॥ ११ ॥

सपितुः पितृकृत्येषु हाधिकारो न विद्यते ॥

न जीवन्तमतिक्रम्य किंचिदद्यादिति श्रुतिः ॥ १२ ॥

वेदमें ऐसा लिखाहै कि मनुष्य पिताके जीवित रहतेहुए पितृकर्ममें अधिकारी नहीं है जीवित पिताको अन्नादि दान छोडके अन्य कुछभी पितृकर्म न करै ॥ १२ ॥

पितामहं जीवति च पितुः प्रेतस्य निर्व्वपेत् ॥ पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चै-
त्यपितामहः ॥ १३ ॥ पितुः पितुः पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च ॥ कुर्यात्पि-
ण्डत्रयं यस्य संस्थितः प्रपितामहः ॥ १४ ॥

पिता, पितामह, प्रपितामह इनतीनोंको तीन पिंड देने उचितहै; और यदि पिताकी मृत्यु होगईहो और प्रपितामह जीवितहो ॥ १३ ॥ तो वृद्धपितामह और पितामह, तथा अपना पिता इनके लिये वह मनुष्य तीन पिंड दान करै कि जिसका प्रपितामह मरगयाहो ॥ १४ ॥

जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायात्रोदके द्विजः ॥

पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्सपितेत्यपरा श्रुतिः ॥ १५ ॥

यह दूसरी श्रुति है कि जीतेहुएका उल्लंघनकर ब्राह्मण मरेहुएको अन्न और जलदे, और जीवितपितृकपुरुष अपने पिताके पितरोंको दे, कारण कि वे मरेहुएभी उसके पितां (रक्षाकरने-
जाले) हैं ॥ १५ ॥

पितामहः पितुः पश्चात्पंचत्वं यदि गच्छति ॥ पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं
श्राद्धषोडशम् ॥ १६ ॥ नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्पितामहः ॥

यदि पितामह पितासे पीछे मरै तो पोता एकादशाह आदि सोलह श्राद्धकरै, ॥ १६ ॥
परन्तु पितामहके यदि कोई और पुत्र हो तो पोता नहीं करै,

पितुःसपिण्डनं कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ १७ ॥

पिताकी सपिंडीकरणके पुत्रही प्रत्येक महीने २ में मासिक श्राद्धकरै ॥ १७ ॥

असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः ॥ पितरं तत्र सत्कुर्यादिति कात्या-
यनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥ पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा ॥ पिताम-
हेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः ॥ १९ ॥

यदि पितामह आदि संस्कारहीन हों तो पोते प्रपोते उनका संस्कार न करै, यदि पिता संस्कारहीन हो तो पुत्रको उसका संस्कार करना उचित है यह कात्यायन ऋषिका वचन है ॥ १८ ॥ यह तो निश्चयही है कि पापीभी शुद्धकी संगतसे शुद्धहोताहै, इसकारण यदि

पितामह पापीभी होय तौ उनके संगही पिताका संस्कार (श्राद्धआदि) करना पुत्रको उचित है ॥ १९ ॥

ब्राह्मणादिहते ते पतिते संगवर्जिते ॥

व्युक्तमात्र मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ २० ॥

यदि पिता ब्राह्मण आदिसे मराहो, पि हो वा संगसे हीन हो, या फौसीखाकर मराहो तौभी उन्हें और जिनको यह देतेहों उन्ही सबको दे ॥ २० ॥

मातुः सर्पिंडीकरणं पितामह्या सहोदितम् ॥

यथोक्तैर्नैव कल्पेन पुत्रिकाया न चेत्सुतः ॥ २१ ॥

माताकी, सर्पिंडी शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दादीके साथही करनी उचित है; यदि कन्याका (जो कि इस प्रतिज्ञासे विवाही जातीहै कि इसके जो लडका होगा उसे मैं लूंगा) उसका पुत्र नहो ॥ २१ ॥

न योषिद्वयः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते ॥

स्वभर्तृपिंडमात्राभ्यस्तुतिरासां यतः स्मृता ॥ २२ ॥

मृत्युके अतिरिक्त स्त्रियोंकी पतिले पृथक् (पिंडादि) न दे कारण कि अपने २ पतिके भागसेही उनकी वृत्ति होतीहै ॥ २२ ॥

मातुःप्रथमतः पिंडं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥

द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥ २३ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

पुत्रिकापुत्र पहिला पिंड माताको दूसरा नानाको और तीसरा पिंड पडनानाको दे ॥ २३ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशःखंडः समाप्तः ॥ १६ ॥

सप्तदशः खंडः १७.

पुरतो यात्मनः कुर्यात्सा पूर्वा परिकीर्त्यते ॥ मध्यमा दक्षिणेनास्यास्तदक्षि

उत्तमा ॥ १ ॥ वाय्वग्निदिग्मुखान्तास्ताः कार्य्याः सार्द्धांगुलान्तराः ॥ तीक्ष्णा-

न्ता यवमध्याश्च मध्यं नाव इवोत्किरेत् ॥ २ ॥

अपने सन्मुख जो कुशा रक्खी जातीहै उसे पूर्वा कुशा कहतेहैं; और जो पूर्वासे दक्षिणकी ओरको रक्खी जातीहै उसे मध्यमा कहतेहैं; और जो मध्यमासे दक्षिणकी तरफ रक्खी जाती हैं उन्हें उत्तमा कहतेहैं ॥ १ ॥ इन तीनोंको इसभांति क्रमानुसार रक्खै, वायव्यदिशामें जड, और अग्निदिशामें अग्रभाग हो; और डेढ अंगुलका बीच रहै; अग्रभाग तौ इन तीनोंका पैना, और बीचका भाग जौके समान हो; जिसभांति नावका आकार होताहै ॥ २ ॥

शंकुश्च खादिरः कार्य्यो रजतेन विभूषितः ॥

शंकुश्चैवोपवेशश्च द्वादशांगुल इष्यते ॥ ३ ॥

खैरका शंकु बनावै, फिर उसे चांदीसे भूषित करै, शंकु और उपवेश (पितृवेश पितरोंके बैठनेकी कुशा) का प्रमाण बारह अंगुलका है ॥ ३ ॥

अग्न्याशाग्रेः कुशैः कार्य्य कर्पूणां स्तरणं घनैः ॥

दक्षिणान्तं तदग्रैस्तु पितृयज्ञे परिस्तरेत् ॥ ४ ॥

कुशाओंका अग्रभाग अग्निदिशाकी ओर करके कुशाओंसे कर्पुओंको बिछावे और दक्षिणको अग्रभागवाली कुशाओंका कर्पु (कुशाओंका बिछौना) पितरोंके आद्वयें बिछावे ॥ ४ ॥

स्वगरं सुरभि ज्ञेयं चंदनादिविलेपनम् ॥

सौवीरांजनमित्युक्तं पिंजलीनां यदंजनम् ॥ ५ ॥

सुगंधित चन्दन आदिका लेपन अगर और पिंजलियोंके अंजनको सौवीरांजन कहते हैं ॥ ५ ॥

स्वस्तरे सर्वमासाद्य यथावदुपपुज्यते ॥

देवपूर्व ततः श्राद्धमत्वरः शुचिरारभेत् ॥ ६ ॥

जो वस्तु श्राद्धमें उपयुक्त हैं उन सम्पूर्ण वस्तुओंको अच्छे आसनपर रखकर शीघ्रताको विना कियेहुए देवताओंका पूजनआदि शुद्धतापूर्वक कर श्राद्धका प्रारंभ करे ॥ ६ ॥

आसनाद्यर्घपर्यन्तं वसिष्ठेन यथेरितम् ॥ कृत्वा कर्माथ पात्रेषु उक्तं दद्यात्तिलोदकम् ॥ ७ ॥ तूर्ण्णां पृथगपो दत्त्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम् ॥ गन्धोदकं च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु ॥ ८ ॥

वशिष्ठजीकी कहीहुई विधिके अनुसार आसनआदि अर्घपर्यन्त कर्मोंको करके पात्रोंमें प्रथम तिलोदक दे ॥ ७ ॥ प्रथम मौन धारणकर पृथक् २ जल दे फिर तिल और जल दे, इसके पीछे समीपताके क्रमसे फिर गन्धोदक दे ॥ ८ ॥

आसुरेण तु पात्रेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ॥ पितरस्तस्य नाश्रन्ति दशवर्षाणि पंच च ॥ ९ ॥ कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं मृन्मयं स्मृतम् ॥ तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत् ॥ १० ॥

जो मनुष्य आसुर पात्रमें करके तिलोदक देताहै, पितृगण उसके यहां पंद्रहवर्षतक भोजन नहीं करते ॥ ९ ॥ कुलालके चक्रसे बनायेहुए मिट्टीके पात्रका नामही आसुरपात्र है; और हाथसे बनायेहुए मिट्टीके पात्र स्थालीआदिका नाम दैविकपात्र है ॥ १० ॥

गंधान्नाह्नणसात्कृत्वा पुष्पाण्यृतुभवानि च ॥ धूपं चैवानुपूर्य्येण ह्यग्नौ कुर्याद-
नन्तरम् ॥ ११ ॥ अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना ॥ प्राङ्मुखेनैव देवभ्यो
जुहोतीति श्रुतिः श्रुता ॥ १२ ॥ अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन च ॥ निरूप्य
हविरन्यस्मा अन्यस्मै नहि हूयते ॥ १३ ॥ स्वाहाकुर्यान्न चात्रान्ते न चैव जुहुयाद्-
विः ॥ स्वाहाकारेण हुत्वाग्नी पश्चान्मंत्रं समापयेत् ॥ १४ ॥ पित्र्ये यः पंक्तिमू-
र्द्धन्यस्तस्य पाणावनाभिमान् ॥ हुत्वा मंत्रवदन्येषां तूर्ण्णां पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥
॥ १५ ॥ नो कुर्याद्भोममंत्राणां पृथगादिषु कुत्रचित् ॥ अन्येषां चाविकृष्टानां
कालेनाचमनादिना ॥ १६ ॥

क्रमानुसार गन्ध और क्रतुमें उत्पन्नहुए फलपुष्प और घृषादि ब्राह्मणोंको देकर इसके उपरान्त “अग्नौकरण” (एक अग्निहोत्र) करे ॥ ११ ॥ अग्नौकरण होम सच्च होकर करे;

और पूर्वकी ओरको मुख करके देवताओंके निमित्त हवन करै, यही वेदकी श्रुति है ॥ १२ ॥ अथवा दक्षिणको मुख करके अपसव्य होकर करै; और साकल्य एकके निमित्त देकर दूसरेको न दे ॥ १३ ॥ इस स्थानमें मन्त्रके अंतमें स्वाहा शब्दका प्रयोग न करै; और हविः का होम न करै केवल प्रथम स्वाहा कहकर पीछे मंत्रको पढ़े ॥ १४ ॥ पितरोंके कर्ममें जो मनुष्य पंक्तिमें मुख्य है, उसके हाथमें मंत्र पढ़कर आहुति दे; और जो मनुष्य अभिहोत्री न हो वह शेषोंके पात्रोंमें विना मंत्रके हविको रखे ॥ १५ ॥ कहीं २ होमके मंत्रोंकी आदिमें पृथक् ॐ न कहै, और अन्यान्यमनुष्य जो समीपमें हों उनके आचमनआदिसे ॥ १६ ॥

सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्र समुदीरितम् ॥ परिग्रहणमात्रं तत्सव्यस्यादिशति व्र-
तम् ॥ १७ ॥ पिंजल्याद्याभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात्करात् ॥ अन्वारभ्य च सव्ये-
न कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥ १८ ॥ यावदर्थमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम् ॥ च-
रुणा सह सन्नीय पिंडान्दातुमुपक्रमेत् ॥ १९ ॥ पितुरुत्तरकर्ष्वंशे मध्यमे मध्य-
मस्य तु ॥ दक्षिणे तत्पितुश्चैव पिण्डान्पर्वणि निर्वपेत् ॥ २० ॥ वाममावर्तनं
केचिदुदगंतं प्रचक्षते ॥ सर्वं गौतमशांडिल्यौ शांडिल्यायन एव च ॥ २१ ॥
आवृत्य प्राणमायम्य पितृन्ध्यायत्यथार्थतः ॥ जपंस्तेनैव चावृत्य ततः प्राणं
प्रमोचयेत् ॥ २२ ॥

जो सव्य-हाथसे कर्मकरना यहां कहाहै उसे दक्षिणहाथसे ग्रहण करके वह कर्म करै, यही निश्चय है ॥ १७ ॥ पिंजलीआदि कुशाओंको दाहिनेहाथसे पकड़कर, फिर बांयेहाथसे पकड़कर उल्लेखनकरै (वेदीपर सुबेसे कुछ लकीरें खेंचे) ॥ १८ ॥ प्रयोजनके अनुसार थोड़ी २ सी हविको लेकर उसे चरुके साथ मिलाकर पिंडदेना प्रारंभ करै ॥ १९ ॥ पूर्वके दिनोंमें उत्तर कर्पुमें पिताको और मध्यम कर्पुमें पितामहको, और दक्षिणकर्पुमें प्रापितामहको पिंडदान करै ॥ २० ॥ वामावर्तको उत्तरदिशातक करना (दक्षिणदिशासे प्राणोंको रोककर उत्तरतक लेजाना) यह गौतम शांडिल्य और शांडिल्यायन आदि सम्पूर्ण ऋषि कहतेहैं ॥ २१ ॥ प्रदक्षिणा करके पितरोंका ध्यान करताहुआ प्राणायाम और मनही मनमें प्राणायामके मंत्रको जपताहुआ फिर उस मार्गसे लौटकर श्वासको त्यागै ॥ २२ ॥

शार्कं च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यपि वा पवेत् ॥ यस्तु शाकादिको होमः का-
र्योऽपूपाष्टकावृतः ॥ २३ ॥ अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ ॥ वा-
र्कखंडिश्च सर्वासु कौत्सो मेनेष्टकासु च ॥ २४ ॥

फाल्गुन मासकी अष्टमीके दिन स्वयं वा स्त्रीभी शाकको पकावै; और जो शाकआदिका हवन है उसे अपूपाष्टका श्राद्धमें करै ॥ २३ ॥ गौतम और गोभिलने मध्यम अष्टकामें अन्वष्टका श्राद्ध करनेके लिये कहाहै; और वार्कखण्ड तथा कौत्सकपिका यह मत है कि सब अष्ट-
काओंमें करै ॥ २४ ॥

स्थ १पाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्यनुकल्पितम् ॥

अपयेतं सवत्सायास्तरुण्या गोपयस्यनु ॥ २५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तदशः खंडः ॥ १७ ॥

और जिस स्थानपर पशुका लेख हो वहां पशुके स्थानपर स्थालीपाक (भातआदि) करे और बल्लडेवाली नई गौके दूधमें सिद्ध करे ॥ २५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशः खण्डः समाप्तः ॥ २७ ॥

अष्टादशः खंडः १८.

सायमादिप्रातरंतमेकं कर्म प्रचक्षते ॥ दर्शांतं पौर्णमास्याद्यमेकमेव मनीषिणः ॥ १ ॥ ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपि वाग्निमः ॥ य आयाति स होतव्यः स एवादिरिति श्रुतिः ॥ २ ॥ ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः कुर्यात्सायं होमादनंतरम् ॥ वैश्वदेवं तु पाकांतं वलिकर्मसमन्वितम् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादभिरूपा-न्स्वशक्तितः ॥ यजमानस्ततोऽभियादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

बुद्धिमानोंने सायंकालसे प्रातःकालतक कर्मको एकही कहा है; और पूर्णमासीसे अमावसप-र्यन्तके जो कर्म हैं उन्हें भी कोई २ एकही कहते हैं ॥ १ ॥ विवाहकी पूर्णआहुतिके उपरान्त जो अमावस या पूर्णिमा आवै उसीमें हवन करे; कारण कि वेदमें इसीको आदि कहा है ॥ २ ॥ जब सायंकालके हवनसे पीछे पूर्णहुति दे चुके तब पाक होनेपर वलिवैश्वदेव करे ॥ ३ ॥ फिर अपनी शक्तिके अनुसार पंडित ब्राह्मणोंको भोजन करावै; इसके पीछे यजमान स्वयं भोजन करे, यह कात्यायन ऋषिका मत है ॥ ४ ॥

वैवाहिकामौ कुर्वीत सायंप्रातस्त्वतंद्रितः ॥

चतुर्थीकर्म कृत्वैतदेतच्छाट्यायनेर्मतम् ॥ ५ ॥

विवाहकी अभिमें चतुर्थी कर्मको करके आलस्यरहित हो वलिवैश्वदेव करे, यह शाट्यायन ऋषिका मत है ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः प्रातर्हुत्वा तां सायमाहुतिम् ॥

प्रातर्होमस्तदैव स्यादेव एवोत्तरो विधिः ॥ ६ ॥

उस सायंकालकी आहुति देनेके उपरान्त प्रातःकालकी पूर्णहुतिसे पीछे वलिवैश्वदेव करे तभी प्रातःहवन होता है; प्रतिदिन यही विधि जाननी उचित है ॥ ६ ॥

पौर्णमास्यत्यये हव्यं होता वा यदहर्भवेत् ॥ तदहर्जुहुयादेवममावास्यात्ययेऽपि च ॥ ७ ॥ अह्वयमानिऽनभ्रंश्चेन्नयेत्कालं समाहितः ॥ सम्पन्ने तु यथा तत्र ह्वयते यदिहोच्यते ॥ ८ ॥

अमावस पौर्णमासीके पीछे जिस दिन हव्य द्रव्य वा उत्तम होता मिले उसीदिन हवन करले ॥ ७ ॥ यदि होम होनेसे पहले मनुष्य उपवासी रहा हो, अर्थात् उतने समयको विना-भोजन करे बिताया हो, तब ऐसा करे, और जो भोजनकर लिया हो, तब उसकी विधि कहता है ॥ ८ ॥

आहुत्यः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाहुतीः सकृत् ॥

मंत्रेण विधिवद्भुत्वाधिकमेवापरा अपि ॥ ९ ॥

जितनी आहुति दी गई हैं, उतनीही गिनकर पात्रमें रखें और पीछे मन्त्रद्वारा विधिपूर्वक देकर और आहुति दे ॥ ९ ॥

यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् ॥ चतस्रस्तत्र विज्ञेयाः पाणि-
ग्रहणे यथा ॥ १० ॥ अप्यनाज्ञातमित्येषाः प्राजापत्यापि वाहुतिः ॥ होतव्यात्र
विकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

जहां प्रायश्चित्तके लिखित हवन व्याहृतियोंसे हो वहां और विवाहके समयमें चार आहुतियाँ देनी बचित हैं; ऐसा जानना ॥ १० ॥ अथवा “अनाज्ञातं” इस मन्त्रसे आहुति दे वा प्रजापतिके मन्त्रसे आहुति प्रदान करे, यहां इतनाही भेद है; और प्रायश्चित्तकी विधिभी यही कहो ॥ ११ ॥

यद्यग्निरग्निनान्येन संभवेदाहितः क्वचित् ॥ अग्नये विविचये इति जुहुयाद्वा
घृताहुतिम् ॥ १२ ॥ अग्नयेऽप्सुमते चैव जुहुयाद्वै घृतेन चेत् ॥ अग्नये शुचये
चैव जुहुयाच्च दुरग्निना ॥ १३ ॥

यदि हवनकी अग्नि कभी दूसरी अग्निके साथ मिलजाय तो “अग्नये विविचये” इस मन्त्रसे या केवल घृतसेही आहुति दे ॥ १२ ॥ यदि घृतसेही अग्नि बुझजाय तो “अग्नयेऽप्सुमते” इस मन्त्रसे आहुति दे, और दूसरी घुरी अग्निसे ढकीजाय तो “अग्नये शुचये” इस मन्त्रसे हवन करे ॥ १३ ॥

गृहदारामिनामिस्तु यष्टव्यः क्षमामवान्द्विजैः ॥ दावाग्निना च संसर्गे हृदयं यदि
तप्यते ॥ १४ ॥ द्विर्भूतो यदि संसृज्येत्संसृष्टमुपशमयेत् ॥ असंसृष्टं जागर-
येद्विरिशमैवमुक्तवान् ॥ १५ ॥

घरमें अग्निके लगजानेपर शांत होजाय तो ब्राह्मण अग्निका पूजन करे; और यदि दावा-
ग्निसे अग्निका रग होजाय और उससे हृदय दुःखी हो तो ॥ १४ ॥ दो बार संसर्ग करके
अग्निकी शांति करादे; और यदि संसर्ग न हुआ हो तो अग्निको जगाले, यह गिरिशर्माका
वचन है ॥ १५ ॥

न स्वेऽनावन्यहोमः स्यान्मुक्तवैकां समिदाहुतिम् ॥

स्वर्गवासक्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते ॥ १६ ॥

अपनी अग्निमें अन्यका केवल एक समिधके अतिरिक्त हवन नहीं होता जितने दिनोंतक
अपने स्वर्गवास योग्य सत्कर्म अग्निमें न हों ॥ १६ ॥

अभिस्तु नामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः ॥

नहि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति क्वचित् ॥ १७ ॥

सर्वत्र नामकरण आदि संस्कारोंमें लौकिक अग्नि होती है, और जिस अग्निको पिता लावे
वह पुत्रकी नहीं होसकती ॥ १७ ॥

१ ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, इस मंत्रसे ।

यस्याग्नावन्यहोमः स्यात्सः वैश्वानरदैवैतम् ॥

चरुं निरुप्य जुहुयात्प्रायश्चित्तं तु तस्य तत् ॥ १८ ॥

यदि जिस अग्निहोत्रीकी अग्निमें दूसरे मनुष्यका हवन होजाय तो उस अग्निमें देवताके चरुको बनाकर हवन करै उसका यही प्रायश्चित्त है ॥ १८ ॥

परेणामौ हुते स्वार्थं परस्यामौ हुते स्वयम् ॥ पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्व-
यस्य च ॥ १९ ॥ अनिष्टा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पतितान्नस्य
चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥ २० ॥

दूसरेका अग्निहोत्र आपकरै अथवा दूसरा अपना अग्निहोत्र करले, या पितृयज्ञका नाश हो-
जाय अथवा दौनो विश्वेदेवाओंका यज्ञ नष्ट होजाय ॥ १९ ॥ जो नवयज्ञ नवीन अन्नप्राशनमें
न करै, या जो पतितके अन्नका भोजन करले इन कर्मोंमें वैश्वानर चरु होताहै, अर्थात् उससे
हवन करै ॥ २० ॥

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्मसु ॥

पिंडनोद्रहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्कमात् ॥ २१ ॥

पिता अपने पुत्रके नामकरणआदि कर्मोंमें अपने पितरोंको पिंड दे; कारण कि वह उनके
पिंडोंका दाताहै; यदि पिता न हो तो पिताके क्रमसे जो अधिकारी हों वही पिंड दे ॥ २१ ॥

भूतिप्रवाचने पत्नी यद्यसन्निहिता भवेत् ॥ रजोरोगादिना तत्र कथं कुर्वति
याज्ञिकाः ॥ २२ ॥ महानसेऽन्नं या कुर्यात्सवर्णां तां प्रवाचयेत् ॥ प्रणवाद्यपि
वा कुर्यात्कात्यायनवचो यथा ॥ २३ ॥

(प्रश्न) यदि भूतिप्रवाचन (ऋत्विजोंसे आशिर्वादयादि लेंने) में यदि स्त्री ऋतुमती या
रोगग्रसित होनेके कारण समीप न आसकै तो यज्ञकरनेवाले मनुष्य किसभांति यज्ञकरें ॥ २२ ॥
(उत्तर) जो स्त्री रसोईमें अन्नपकावै, और वह अपनी जातिकी हो तो उससे भूतिप्रवाचन
कराले, या कात्यायनमुनिके वचनके अनुसार ऋकारआदि करले ॥ २३ ॥

यज्ञवास्तुनि मुष्ट्यां च स्तंवे दर्भवटौ यथा ॥

दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतावष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

यज्ञके घरमें, कुशमुष्टिमें, स्तंभमें दर्भके बटुमें और विष्टरके आस्तरणमें कुशाओंकी गिनती
नहींहै ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मायाटीकायामष्टादशः खण्डः समाप्तः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः खंडः १९.

निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यत्विजं तथा ॥ प्रवसेत्कार्यवान्विप्रो वृथैव न
चिरं क्वचित् ॥ १ ॥ मनसा नैत्यकं कर्म प्रवसन्नप्यतंद्रितः ॥ उपविश्य शुचिः
सर्वं यथाकालमनुब्रजेत् ॥ २ ॥

सांनिभिक ब्राह्मण विशेष प्रयोजनके होनेपर अपनी स्त्रीको अग्नि सौंपकर एक ऋत्विज निय-
तकर प्रवास (परदेश) को जाय, परन्तु वृथा चिरकाल कहीं भी नहीं रहे ॥ १ ॥ (परंतु)
प्रवासमेंभी यह आलस्य रहितहो यह अपने नित्यकर्मको करनेके निमित्त शुद्धहोकर स्थित-
रहे, और ठीक समयपर सम्पूर्ण कर्म मानस करै ॥ २ ॥

पत्न्या चाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽग्निर्विनीतया ॥ सौभाग्यवित्तावैधव्यकामया
भर्तृभक्त्या ॥ ३ ॥ या वा स्याद्दीरसूरासामाज्ञासंपादिनी प्रिया ॥ दक्षा प्रियं-
वदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ ४ ॥

पतिमें भक्ति करनेवाली, स्त्रीमी सौभाग्य और धन सम्पत्तिकी और पतिसे अवियोगको
चाहनेवाली नम्रभावसे अग्निकी सेवाकरै ॥ ३ ॥ बहुतसी स्त्रीवाला पुरुष जो वीरसू
(पुत्रवाली) आज्ञाकारिणी, प्यारी, प्रिय वचन कहनेवाली, चतुर और पवित्र ऐसी स्त्रीको
अग्निकी सेवामें नियुक्त करै ॥ ४ ॥

दिनत्रयेण वा कर्म यथाज्यैष्ठं स्वशक्तिः ॥ विभज्य सह वा कुर्युर्यथाज्ञानं
च शास्त्रवत् ॥ ५ ॥ स्त्रीणां सौभाग्यतो ज्यैष्ठ्यं विद्ययैव द्विजन्मनाम् ॥ नहि
ख्यात्या न तपसा भर्ता तुष्यति योषिताम् ॥ ६ ॥ भर्तुरादेशवर्त्तिन्या यथोमा
चतुर्भिर्नैतैः ॥ अग्निश्च तोषितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥ विन-
यावनतापि स्त्री भर्तुर्या दुर्भगा भवेत् ॥ अमुत्रोमाग्निभर्तृणामवज्ञातिः कृता
तया ॥ ८ ॥

अथवा सब स्त्री तीन २ दिनमें बड़ी स्त्रीके क्रमसे अपनी शक्तिके अनुसार विभाग कर
वा एकही साथ (मिलकर) अग्निकी सेवा करलें, या जैसा उनको शास्त्रका ज्ञानहो उसीभांति
सब करलें ॥ ५ ॥ सौभाग्यसेही स्त्रियोंकी बड़ाई है, विद्याके द्वारा ब्राह्मणोंकी बड़ाईहै; कारण
कि केवल लोकप्रसिद्धि और तपसेही स्वामी स्त्रियोंपर प्रसन्न नहीं होते ॥ ६ ॥ जिस पतिकी
आज्ञाकारिणी स्त्रीने बहुतसे व्रतकरके पार्वती और अग्निको प्रसन्न कियाहै वही स्त्री परलोकमें
सौभाग्यको प्राप्त करतीहै ॥ ७ ॥ जो स्त्री प्रेमसहित पतिमें नवतीहै, और देखनेमें पतिको
सुन्दर नहींहै उसने निश्चयही पूर्वजन्ममें वा परलोकमें पार्वती, अग्नि और अपने पतिकी
तिरस्कार कियाहै ॥ ८ ॥

श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितिं तथा ॥

प्रातरुत्थाय यः पश्येदापन्नः स प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

जो अनुप्य प्रातःकालही उठकर वेदपाठी, सुहागिनीस्त्री, गौ अग्निहोत्र इनका दर्शन करताहै,
वह सम्पूर्ण विपत्तियोंसे छूटजाताहै ॥ ९ ॥

पापिष्ठं दुर्भगामन्यं नमस्तुत्तनासिकम् ॥

प्रातरुत्थाय यः पश्येत्स कलैरुपयुज्यते ॥ १० ॥

और जो अनुप्य प्रातःकालही उठकर पापी, दुर्भागिनी (विधवा) अन्य नमपुरुष, या नकटे-
को देखताहै, वह कलहको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥

पतिमुल्लंघ्य मोहात्स्त्री किं किं न नरकं व्रजेत् ॥

कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥ ११ ॥

स्त्री अज्ञानतासे पतिका उल्लंघन करके किस २ नरकमें नहीं जाती, इसके पीछे बड़े कष्टोंको पाकर मनुष्य योनि मिलताहै उसमें वह किस २ दुःखको नहीं भोगती ॥ ११ ॥

पतिशुश्रूपयैव स्त्री कात्र लोकान्समश्नुते ॥

दिवः पुनरिहायाता सुखानामश्रुधिर्भवेत् ॥ १२ ॥

स्त्री केवल पतिकी श्रुषा करकेही सम्पूर्ण स्वर्गके सुखोंको भोगतीहै; और स्वर्गसे पुनर्जन्म मूलोकमें आकर सुखोंका समुद्र होताही ॥ १२ ॥

सदारोग्न्यान्पुनर्दारान्कर्तव्यचित्कारणांतरात् ॥ य इच्छेदग्निमान्कर्तुं क होमोऽस्य विधीयते ॥ १३ ॥ स्वेभ्रावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥ न ह्याहिताग्नेः स्वं कर्मालौकिकेभ्यो विधीयते ॥ १४ ॥ षडाहुतिकमन्येन जुहुयाद्भुवदर्शनात् ॥ न ह्यात्मनोऽर्थं स्यात्तावद्यावन्न परिणीयते ॥ १५ ॥

यदि सामिक मनुष्य किसी कारणसे अन्य स्त्रीके साथ विवाह करनेकी इच्छाकरले तो उसका हवनमें अधिकार नहीं रहता ॥ १३ ॥ अपनी अग्निमेंही होन होताहै, कदापि लौकिक अग्निमें हवन नहीं होता, कारण कि अग्निहोत्रीका निजकर्म लौकिक अग्निमें नहीं होताहै ॥ १४ ॥ भुवके दर्शन होनेपर जबतक छैः आवश्यक आहुति अन्य अग्निमें भी दें; और जबतक विवाह न करै तबतक अपने लिये न दें ॥ १५ ॥

पुरस्ताच्चिविकल्पं यथायश्चित्तमुदाहृतम् ॥

ततः षडाहुतिकं शिष्टैर्यज्ञविद्रिः प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृत्याविष्कोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

इति कात्यायनविरचितं कर्मप्रदीपे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

पहिले जो त्रिविकल्प प्रायश्चित्त कहाहै उसकोही यज्ञके जाननेवाले षडाहुतिक कहतेहैं ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृती मायादीकायानेकोनविंशः खंडः समाप्तः ॥ १९ ॥

(कात्यायनके निर्माण किये हुए कर्मप्रदीपमें दूसरा प्रपाठक पूर्णहुआ) ॥ २ ॥

विंशः खंडः २०.

असमक्षं तु दंपत्योर्होतव्यं नर्विगादिना ॥

द्वयोरप्यसमक्षं हि भवेद्धुतमनर्थकम् ॥ १ ॥

स्त्री और पुरुषके सामिप्य (उपस्थितहुए) के बिना अतिवक् आदि हवन न करें, कारण कि उन दोनोंके बिना हवन निष्फल होताहै ॥ १ ॥

विहायाग्निं सभायश्चेत्सीमामुल्लंघ्य गच्छति ॥

होमकालात्यये तस्य पुनराधानमिष्यते ॥ २ ॥

यदि अग्निको छोडकर खीसहित अभिहोत्री पुरुष ग्रामकी सीमाकी लांघकर चलाजाय और जो उसके हवनका समय बीतजाय तो वह फिर अभिक्का आधान करे ॥ २ ॥

अरण्योः क्षयनाशमिदाहेष्वग्निं समाहितः ॥

पालयेदुपशान्तेऽस्मिन्पुनराधानमिष्यते ॥ ३ ॥

अरण्योंके नाश और अग्निके दाहमें सावधान होकर अभिक्की रक्षाकरे यदि अग्नि शांत होजाय तो अभिक्का आधान फिर करले ॥ ३ ॥

ज्येष्ठा चेद्बहुभार्य्यस्य अतिचारेण गच्छति ॥

पुनराधानमत्रैक इच्छन्ति न तु गौतमः ॥ ४ ॥

जिसके बहुतसी खी हों यदि वह मनुष्य सबसे बड़ी खीको उल्लंघनकर गमन करे तो उस मनुष्यको कोई २ पुनर्वात् अग्निको आधान करनेके लिये कहते हैं और गौतम कवि नहीं कहते ॥ ४ ॥

दाहयित्वाग्निभिर्भार्य्या सहर्षाः प्रवसंस्थिताः ॥ पात्रैश्चाग्निमादध्यात्कृतदा-

रोऽविलंबितः ॥ ५ ॥ एवंवृत्तां सवर्णां खीं द्विजातिः पूर्वमारुणीम् ॥ दाहयि-

त्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६ ॥

अपने समानवर्णकी खीके पहले मरजाते पर उसको अग्निमें दग्ध कर पीछे शीघ्रही विवाह करके अभिक्का आधान करे ॥ ५ ॥ ऐसे आचरणवाली अपनी जातिकी खी और पहले मरीहुईको धर्मज्ञ पुरुष अभिहोत्रकी अग्निसे और यज्ञके पात्रोंसे दग्ध करे ॥ ६ ॥

द्वितीयां चैव यः पत्नीं दहेद्वैतानिकाग्निभिः ॥

जीवत्यां प्रथमायां तु ब्रह्मघ्नेन समं हि तत् ॥ ७ ॥

जो पुरुष दूसरी खीको भी हवनकी अग्निसे दग्धकरताहै, अथवा प्रथमखीके जीतेहुए दूसरी को हमकी अग्निमें जलाताहै, वह ब्रह्महत्याके समान है ॥ ७ ॥

मृतायां तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत् ॥

ब्रह्मोज्झितं विजानीयाद्यश्च कामात्समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

दूसरी खीके मरजानेपर जो मनुष्य अग्निहोत्रका त्याग करताहै उसको वेदका त्यागने वाली जानी ॥ ८ ॥

मृतायामपि भार्य्यायां वैदिकाग्निं न हि त्यजेत् ॥ उपाधिनापि तत्कर्म याव-

जीवं समापयेत् ॥ ९ ॥ रामोऽपि कृत्वा सौवर्णां सीतां पत्नीं यशस्विनीम् ॥

इजे यज्ञैर्वहुविधैः सह तन्नाश्रात्भिरच्युतः ॥ १० ॥ यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन

भार्य्या कथंचन ॥ सा खी संपद्यते तन भार्या वास्य पुमान्भवेत् ॥ ११ ॥

भार्य्यके मरजानेपर भी वैदिकाग्निका त्याग न करे, अपने जीवनपर्यन्त अग्निहोत्र कर्मको पूरा करे ॥ ९ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजीने भी यशस्विनी सीताजीकी सुवर्णकी मूर्ति बनाकर भाइयों सहित बड़े २ यज्ञोंसे भगवान्की पूजा कीथी ॥ १० ॥ जो मनुष्य अपने हवनकी अग्निसे कभी भी अपनी खीको दग्ध करताहै वह खी उसकी खी होतीहै और वह खी उसका दहन करे तो वह जन्मांतरमें पुरुष होतीहै ॥ ११ ॥

भार्या मरणमापन्ना देशांतरगतापि वा ॥

अधिकारी भवेत्पुत्रो महापातकिनि द्विजे ॥ १२ ॥

यदि स्त्री मर गई हो या परदेशको चली गई हो, अथवा अग्निहोत्री भी हो और उसे महापातक लग गया हो तो उसका पुत्र अग्निहोत्रका अधिकारी होता है ॥ १२ ॥

मान्या चेन्म्रियते पूर्व भार्या पतिविमानिता ॥

श्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥ १३ ॥

यदि निर्दोष माननीया स्त्री स्वामीसे अपमानित हो मर जाय तो यह स्त्री तीन जन्मतक पुरुष होती है और वह पुरुष स्त्री होता है ॥ १३ ॥

पूर्वैव योनिः पूर्ववत्पुनराधानकर्मणि ॥ विशेषोत्राग्न्युपस्थानमाज्याहुत्यष्टकं तथा ॥ १४ ॥ कृत्वा व्याहृतिहोमान्तमुपातिष्ठेत् पावकम् ॥ अध्यायः केवला-

ग्नेयः कस्तेजामिरमानसः ॥ १५ ॥ अग्निमीडे अग्न आयाह्यम आयाहि वीतये ॥

तिस्रोऽग्निज्योतिरित्याग्निं दूतमग्नेमृडेति च ॥ १६ ॥ इत्यष्टौवाहुतीर्दृत्वा यथा-

विध्यनुपूर्वशः ॥ पूर्णाहुत्यादिकं सर्वमन्यत्पूर्ववदाचरेत् ॥ १७ ॥

दूसरेवार अग्निके आधान (स्थापन करने) में पहलेही योनि (नीचेकी अरणी) और आधुत् (ऊपरकी अरणी) होते हैं, केवल (इसमें) अग्निकी स्तुति और आठ आहुतियोंका विशेष कार्य होता है ॥ १४ ॥ व्याहृतियोंसे हवन करके अग्निकी स्तुति करे और उस स्तुतिमें आग्नेय (अग्निका) अध्याय और कस्तेजामिरमानसः ॥ १५ ॥ अग्निमीडे, अग्न आयाहि, अग्न आयाहि वीतये तीन वे और अग्निर्ज्योतिः अग्निं दूतं और अग्नेमृड, ॥ १६ ॥ इन आठ आहुतियोंको क्रमानुसार विधिपूर्वक देकर पूर्णाहुतिआदि सम्पूर्ण कर्मको पक्के समान करे ॥ १७ ॥

अरण्योरल्पमप्यङ्गे यादत्तिष्ठति पूर्वयोः ॥ न तावत्पुनराधानमन्याऽरण्योर्विधी-
यते ॥ १८ ॥ विनष्टसुक्षुचं न्युञ्जं प्रत्यक्स्थलमुदधिपि ॥ प्रत्यगग्रं च मुसलं
प्रहरेज्जातवेदसि ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ विंशतितमः खण्डः ॥ २० ॥

जबतक पहली अरणियोंका कुछभी अंग शेष रहे तबतक अन्य दो अरणियोंका फिर आधान (स्थापन) न करे ॥ १८ ॥ नष्ट (बिसर कर कुछही शेष दशामें वर्तमान अथवा टूटे) हुए सुक्षु और सुवेको कुछ एक औंठा करके और नष्ट हुए मूशलोंसीधा करके अच्छी जलतीहुई अग्निमें डालदे अर्थात् जलादे ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मापाटीकायां विंशः खण्डः समाप्तः ॥ २० ॥

एकविंशः खंडः २१.

स्वयं होमासमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् ॥

तत्राप्यशक्तस्य ततः शयनाच्चोपवेशनम् ॥ १ ॥

(यदि पीडाके वशसे) स्वयं हवन करनेकी सामर्थ्य न हो तो अग्निके निकटही जा बैठे; और जो इसमेंभी असमर्थ हो तो शय्यासे नीचेही उतर बैठे ॥ १ ॥

दुतायां सायमाहुत्यां दुर्वलश्चेद्गृही भवेत् ॥

प्रातर्होमस्तदैव स्याज्जीवेच्चच्छुः पुनर्न वा ॥ २ ॥

यदि सार्यकालके हवन होजानेके उपरान्त गृहस्थी दुर्वल (मरनेके समान) होजाय तौ प्रातःकालका हवन उसी समय होगा कि जब वह जीवित होजायगा, नहीं तौ नहीं होगा ॥ २ ॥

दुर्वलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् ॥ दक्षिणाशिरसं भूमौ बहिष्मत्यां नि-
वेशयेत् ॥ ३ ॥ घृतेनाभ्यक्तमाध्वाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम् ॥ चंदनोक्षितसर्वांगं
सुमनोभिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥ हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्वा छिन्द्रेषु सप्तसु ॥
मुखेष्वथापि धायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥ ५ ॥ आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्नि-
पुरःसरम् ॥ एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पर्य्युत्सृजेद्भुवि ॥ ६ ॥ अर्द्धमाद-
हनं प्राप्त आसीनो दक्षिणामुखः ॥ सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पि-
ण्डदानवत् ॥ ७ ॥

दुर्वल (जो मरनेके समीपहो उस) को स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहनादे, इसके उपरान्त कुश विखरे हुए पृथ्वीमें दक्षिण दिशाकी ओर शिर करके ॥ ३ ॥ घीका उबटन कर स्नान करावै, और वस्त्र जमेऊ पहरावै, सब अंगपर चन्दन छिड़क कर उसको पुष्पोसे शोभायमान करै ॥ ४ ॥ और सातों छिद्रोंमें सुवर्णके टुकड़े डाल कर उस शवके मुखको ढककर पुत्रआदि श्मशान भूमिमें लेजाय ॥ ५ ॥ एक मनुष्य मिट्टीके कबे पात्रमें अन्न लेकर पीछे २ चले, और अधिको आगे करके प्रेतको पीछे ले जाय; और उस अन्नमेंसे आंधे अन्नको पुत्र मार्गके अर्थ भागमें पृथ्वीपर डालदे ॥ ६ ॥ जिस समय शव श्मशानभूमिके आंधे भागमें पहुंच जाय तब (पुत्र) दक्षिणको मुख करके बैठे; और बांये घुटनेको पृथ्वीमें टेक कर धीरे २ तिल सहित उस अन्नको पिंडदानकी विधिसे दे ॥ ७ ॥

अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्धारुचयं महत् ॥ भूप्रदेशे शुचौ देशे पश्चाच्चित्यादि-
लक्षणे ॥ ८ ॥ तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ॥ आज्यपूर्णां स्रुचं दद्या-
दक्षिणाग्रां नसि स्रुचम् ॥ ९ ॥ पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ॥ पार्श्व-
योः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥ १० ॥ मुसलेन सहन्पुञ्जमन्तरुर्वौ-
रुलूखलम् ॥ चात्रे विलीकमत्रैव मनश्चुनयनो विभीः ॥ ११ ॥ अपसव्येन कृत्वै-
तद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः ॥ अथाग्निं सव्यजान्वक्तो दद्यादक्षिणतः शनैः
॥ १२ ॥ अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥ असौ स्वर्गाय लो-
काय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥ १३ ॥ एवं गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥
यश्चैनं दाहयेत् सोऽपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥ १४ ॥

जो चिता बनानेके योग्यहो उस शुद्ध पृथ्वीमें इसके उपरान्त पुत्रआदि स्नान करके चिता बनावै ॥ ८ ॥ उस चितामें दक्षिणकी ओरको शिर करके अग्निहोत्रीको सीधा रखलै, और दक्षिणको अग्रभागवाली घीसे भरकर स्रुक्को मुखमें और स्रुवको नासिकामें रखदे ॥ ९ ॥ पैरोंमें नीचेकी अरणीको और छातीपर ऊपरकी अरणीको, और सूप और च को

बाँये दाँये करवटमें रखदे ॥ १० ॥ और निर्भयहो रोदनको त्यागकर पुत्र मृगल और ओखल तथा चन्न और ओविलीको जंघाओंके बीचमें रखदे ॥ ११ ॥ मौन धारण कर दक्षिणकी ओरको मुख करके अपसव्य हो पूर्वोक्त कर्मोंको कर बाँये घुटनेको नवाकर चित्तमें दक्षिण दिशाकी ओर धीरे २ अग्नि जलावे ॥ १२ ॥ और उस समय इस यजुर्वेदके मंत्रको पढ़े कि हे अग्नि ! तू इस देहसे उत्पन्न हुआया, और हे अग्नि ! अब तूझसेही यह देहआदि फिर उत्पन्नहो; इस कारण इस प्रज्वलित अग्निमें इस प्राणीको स्वर्गलोककी प्राप्तिके निमित्त यह स्वाहा है ॥ १३ ॥ गृहस्थीके इस भाँति करनेपर वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै, और जो मनुष्य उसे दाह करताहै वह उत्तम संतानको पाताहै ॥ १४ ॥

यथा स्वायुधधृक् पांथो हरण्यान्यपि निर्भयः ॥ अतिक्रम्यात्मनोभीष्टं स्थान-
मिष्टं च विन्दति ॥ १५ ॥ एवमेपोऽग्निमान्यज्ञपात्रायुधविभूषितः ॥ लोकान-
न्यानतिक्रम्य परं ब्रह्मैव विन्दति ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकविंशतितमः खंडः ॥ २१ ॥

जित भाँति अधिक अपने शस्त्रोंको साथमें लेकर निर्भय हो वनोंको लाँचकर अपने अभि-
लषित स्थानपर पहुँचजाताहै ॥ १५ ॥ वसी भाँति यह सामिक मनुष्यभी अपने यज्ञपात्र
रूप शस्त्रोंसे शोभायमान हो स्वर्ग आदि लोकोंको लाँच कर परब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृता भाषाटीकायामेकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः खंडः २२.

अधानिवेश्य च चितां सर्व एव श्वेस्पृशः ॥ ज्ञात्वा सत्रैलमाचम्य दधुरस्यो-
दकं स्थले ॥ १ ॥ गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनंतरम् ॥ दक्षिणाग्रान्कुशा-
न्कृत्वा सतिलं तु पृथक्पृथक् ॥ २ ॥ एवं कृतोदकान्सम्यक्सर्वोच्छादयत्सं-
स्थितान् ॥ आप्लुत्य पुनसचान्तान्श्वेदयुस्तेऽनुयायिनः ॥ ३ ॥

इसके उपरान्त चिताको न देखकर शवके स्पर्श करनेवाले सभी जन वहाँसे चलकर वन-
सहित स्थान कर आचमन करें, प्रेतको स्थल (जहाँ जल न हो उस पृथ्वीपर) जल दें ॥ १ ॥
प्रेतके गोत्र और नामके अंतमें, "तर्पयामि" कहें और दक्षिणकी कुशाओंका अग्रभाग करके
त्रिलिखित जल पृथक् २ दें ॥ २ ॥ सब जनें इस भाँति तर्पण करके फिर स्नान और आच-
मन करके उपरान्त बासवाली पृथ्वीपर बैठकर प्रेतके सब छुटुम्बी जो श्मशानमें गयेथे वह
पूजा कहें कि ॥ ३ ॥

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वस्मिन्प्राणधर्माणि ॥ धर्मं कुरुत यत्नेन या वः सह
गमिष्यति ॥ ४ ॥ मानुष्ये कदलीस्तंभे निःसारे सारमार्गणम् ॥ यः करोति

१ वहाँसे २२ खण्डसमाप्तिके गृहस्थी निराग्नि साग्न साधारणके विषयमें व्यवस्था करतेहैं, साग्नमें
जो कुछ विशेष है वह कहें लुकेहैं उसकी सूचना स्वयंप्रतिपत्त्यर्थ अग्नि २३ खण्डारम्भमें करेंगे,
एवमेवाहिताग्नेन्नु इत्यादि श्लोकोंसे ॥

स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ५ ॥ गन्त्री वसुमतीं नाशमुदधिर्देवतानि च ॥
केन प्रल्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥ ६ ॥ पंचधा संभृतः कायो
यदि पंचत्वमागतः ॥ कर्मभिः स्वशरीरोत्पैस्तत्र का परिदेवना ॥ ७ ॥
सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः ॥ संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं
हि जीवितम् ॥ ८ ॥ श्लेष्माश्रु बांधवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ॥ अतो न
रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥

“सम्पूर्ण प्राणी अन्तित्य हैं” इस कारण तुम शोक मत करो, यत्नपूर्वक धर्म कार्यको करो, यह धर्मही तुम्हारे साथ चलेगा ॥ ४ ॥ केलेके पिंडीके समान असार और जलके बुलबुलेकी समान मनुष्यलोकमें जो मनुष्य सार हुंढताहै वह अत्यन्त मूर्ख है ॥ ५ ॥ पृथ्वी, समुद्र, देवता, सभीका नाश है, तौ इस मृत्युलोकमें किसका नाश न होगा ॥ ६ ॥ पांच भूतोंसे बनाहुआ यह देह यदि देहधारण जनित कर्मोंके फलमें पंचत्वको प्राप्त होजाय, तौ इसमें शोक क्या है ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण संचयोंका अंतमें क्षय है; उन्नतिका शेष पतन है, संयोगका शेष वियोग है, और जीवनका शेष मरण है ॥ ८ ॥ जो “बंधु बांधव” रोदनके समय नेत्रोंसे आंसू ढालतेहैं; प्रेत अवश होकर उनका भोजन करताहै, इस कारण रोदन करना उचित नहीं वरन यत्नपूर्वक कर्म करना कर्तव्य है ॥ ९ ॥

एवमुक्त्वा व्रजेयुस्ते गृह्णन्त्युपुरःसराः ॥

ज्ञानाभिस्पर्शनाज्याशैः शुष्येयुरितरेतरैः ॥ १० ॥

इति कात्यायनस्मृतौ द्वाविंशतितमः खण्डः ॥ २२ ॥

इस प्रकार कहकर वह छोटे २ को आगे करके घरको चले; और बंधु बांधवोंसे अन्य मनुष्य ज्ञान और अधिक स्पर्शसे और आव्य (घृत) प्राशन करनेसेही शुद्ध होजातेहैं ॥ १० ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां द्वाविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः खंडः २३.

एवमेवाहिताग्नेस्तु पात्रन्यासादिकं भवेत् ॥

कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषः सूत्रचोदितः ॥ १ ॥

इसी भांति आहिताग्नि (अग्निहोत्री) काभी सब काम होताहै, केवल इसमें पात्र (खुद-सुव) आदिका रखना, और सूत्रमें कहीहुई काली मृगछाला आदिक इस (अग्निहोत्रीके दाह) में अधिक होतीहै ॥ १ ॥

विदेशमरणेऽस्थीनि ह्याहुत्याभ्यज्य सर्पिषा ॥ दाहयेदूर्णयाऽऽच्छाद्य पात्रन्यासा-
दि पूर्ववत् ॥ २ ॥ अस्थामलाम्भे पर्णानि सकलान्युक्तयावृता ॥ भर्जयेदस्थिसं-
स्थानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥ ३ ॥

यदि कोई विदेशमें मरजाय तौ उसकी अस्थियोंको लाकर घीसे छिडक ढककर दाह करै, और उसपर होमके पात्रोंको पूर्वकी समान रखदे ॥ २ ॥ यदि कदाचित् अस्थि न मिलें

तौ अस्थियोंकी समान पत्ते लेकर पूर्वाह्णोत्तिसे अर्थात् नराकृति बनाकर उसी जलादे अग्नि-
पुत्तलदहन करें, उसीदिनसे स्नानका आरंभ होताहै ॥ ३ ॥

महापातकसंयुक्तो देवात्स्यादग्निमान्यदि ॥

पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोपसंक्षयात् ॥ ४ ॥

यदि अग्निहोत्री मनुष्यको देववशसे महापातक लगजाय तौ उसका पुत्र जबतक उससे
पापका नाश न होजाय तबतक सावधान होकर अग्निकी रक्षा करतारहे ॥ ४ ॥

प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि ॥ गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्ये-
त्सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥ सादयेदुभयं वा ॥ ह्यद्रश्चोऽग्निरभवद्यतः ॥ पात्राणि
दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेव वा क्षिपेत् ॥ ६ ॥

जो महापातकी मनुष्य प्रायश्चित्त न करे अथवा करते २ ही मरजाय तौ गृह्य गार्हप-
त्याग्निको निर्वाप करे, और श्रुतिमें कही सकलसामग्रीसहित अग्निहोत्रको जलमें फेंकदे
॥ ५ ॥ अथवा अग्नि और पात्र दोनोंहीको जलमें सिरादे, कारण कि अग्नि जलसेही
उत्पन्न हुआहै, और सम्पूर्ण पात्र ब्राह्मणोंको देदे, या जलादे, वा जलमेंही गेरदे ॥ ६ ॥

अनयैवावृता नारी दग्धप्राया व्यवस्थिता ॥

अग्निप्रदानमंत्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥ ७ ॥

इसी रीतिसे अग्निहोत्रीकी स्त्रीके मरजानेपरभी उसका दाहकरे, केवल अग्निदेनेके समयमें
मंत्र न पढ़े, यही मर्यादा है ॥ ७ ॥

अग्निनैव दहेद्रार्या स्वतंत्रा पतिता न चेत् ॥

तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगंतिके ॥ ८ ॥

स्त्री यदि स्वाधीन हो और पतित न हो तौ अग्निहोत्रकी अग्निसेही उसका दाहकरे इसके
उपरान्त होमके सम्पूर्ण पात्र उस स्त्रीके समीप उत्तरादिशामें प्रथक् रखदे ॥ ८ ॥

अपरेद्युस्तृतीये वा अस्त्रां संचयनं भवेत् ॥ यस्तत्र विधिरादिष्टऋषिभिः सो-
ऽधुनोच्यते ॥ ९ ॥ स्नानांतं पूर्ववत्कृत्वा गव्येन पयसा ततः ॥ सिंचेदस्थीनि
सर्वाणि प्राचीनावीत्यभाषयन् ॥ १० ॥ शमीपलाशशाखाभ्यामुद्धृत्योद्धृत्य
भस्मनः ॥ आज्येनाभ्यज्य गव्येन सेचयेद्गंधवारिणा ॥ ११ ॥ मृत्पात्रसंपुटं
कृत्वा सूत्रेण परिवेष्टय च ॥ श्वश्रं खात्वा शुचौ भूमौ निखनेदक्षिणामुखः
॥ १२ ॥ पूरयित्वावटं पंकपिंडशैवालसंयुतम् ॥ दत्त्वोपरि समं शेषं कुर्या-
त्पूर्वाह्नकर्मणा ॥ १३ ॥

दूसरे वा तीसरे दिन अस्थिसंचयन (अस्थीका इकट्ठा करना) होताहै; ऋषियोंने इस
कार्यमें जो विधि वर्णन कीहै, उसे अब कहतेहैं ॥ ९ ॥ पूर्वकी समान स्नानतक कर्मकरके
दक्षिणको मुखकर अपसव्य हो मौन धारणकर गायके दूधसं सम्पूर्ण अस्थियोंको छिड़के ॥ १० ॥

१ इसीको पूर्णनरदाहमी कहतेहैं इसमें पत्तेकी संख्या अन्यत्र लिखीहै जिस २ अंगमें बितेन पत्ते
लगाना चाहिये ।

शमी और ढाककी शाखाकी भस्मसे अस्थियोंको निकालकर गौंके घी और सुगंधित जलसे उन्हें छिड़कै ॥ ११ ॥ मिट्टीके पात्रको संपुट (एकनीचे १ ऊपर बीचमें अस्थि) करके उसमें अस्थियोंको रखकर सूतसे लपेटदे फिर पवित्रभूमिमें गढा खोदकर दक्षिणको मुखकर उन्हें गाढदे ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त उस गढेको पाट उसपर पङ्क-शैवाल रखकर उसको एकसार करदे यहांका सब कार्य पूर्वाह्नमें करै ॥ १३ ॥

एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते ॥

नामिवाग्निदानं स्यादथातोऽनुक्तमुच्यते ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोविंशतितमः खण्डः ॥ ३३ ॥

अग्निहोत्रसे हीन मनुष्यकी दाहविधिभी इसी प्रकार है, स्त्रियोंकी समान उसको अग्नि दीजाताहै इसके उपरान्त न कहीहुई विधिको कहतेहैं ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः खण्डः २४.

सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ॥ होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेना-
पि वा फलैः ॥ १ ॥ अकृतं होमयेत्स्मात्तं तदभावे कृताकृतम् ॥ तं
होमयेदन्नमन्वारंभविधानतः ॥ २ ॥

सूतकेके होजनेपर सन्ध्या इत्यादि नित्यकर्मोंको न करै, यह नियम है और सूके अन्न या फलसे वेदमें कहेहुए हवनको करै ॥ १ ॥ स्मृतिमें कहेहुए कर्ममें अकृतकी, और यदि अकृत न मिलै तौ कृताकृतकी, अथवा कृतअन्नकी आहुतिदे परन्तु अन्वारंभ (ब्रह्मासे मिलकर) यह विधिसे करै ॥ २ ॥

कृतमोदनसक्त्वादि तंडुलादि कृताकृतम् ॥

ब्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥ ३ ॥

ओदन (भत) सत्तू आदिको कृत कहतेहैं, और तंडुल आदिको कृताकृत कहाहै; और ब्रीहिआदिको अकृत कहतेहैं विद्वानोंने यह तीनप्रकारका हव्य कहाहै ॥ ३ ॥

सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने ॥

एवमादिनिमित्तेषु होमयेदिति योजयेत् ॥ ४ ॥

सूतकमें, परदेशमें, असामर्थ्यमें, और श्राद्धके भोजनमें इन तीनों हव्योंसे आहुति दे ॥ ४ ॥
न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित् ॥ न दीक्षणात् परं यज्ञे न कुच्छ्रादि
तपश्चरन् ॥ ५ ॥ पितर्य्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् ॥ अशौचं क-
र्मणोऽस्ते स्यात्स्वहं वा ब्रह्मचारिणः ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारी सूतकमें भी कभी अपने कर्मोंको न छोड़े; और दीक्षालैनेसे प्रथम यज्ञमें और ऋच्छ्रादि तपस्यामें भी न छोड़े ॥ ५ ॥ पिताके मरजाने परभी इनको कदापि दोष नहीं होता; ब्रह्मचारीको कर्मके अन्तमें तीनदिन अशौच होताहै ॥ ६ ॥

श्राद्धमग्निमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि ॥ प्रत्याव्दिकं तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥ ७ ॥ द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं पाण्मासिके तथा ॥ सपिंडीकरणं चैव एतद्वै श्राद्धपोडशम् ॥ ८ ॥

अभिहोत्री मनुष्यका श्राद्ध दाहसे ग्यारहवें दिन करना कर्तव्य है; और फिर प्रत्येक वर्षमें भी मरनेके दिन सर्वदा श्राद्ध करे ॥ ७ ॥ और प्रत्येक महीनेके वारह (मासिक) श्राद्ध और आद्य श्राद्ध (एकादशाह श्राद्ध) दो पाण्मासिक (छमासी) और सपिंडी करण यह सोलह श्राद्ध होतेहैं ॥ ८ ॥

एकाहेन तु पाण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः ॥ न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां पाण्मासिके तदा ॥ ९ ॥ यानि पंचदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु ॥ एकस्मिन्नग्निं देयानि सपुत्रस्यैव सर्वदा ॥ १० ॥ न योपायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ॥ न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ॥ ११ ॥

यह दो पाण्मासिक श्राद्ध उस समय होतेहैं जब कि छैः महीने वा एक वर्षमें एक वा तीनदिन कमहों तब छठे महीनेमें दो श्राद्ध करने उचित हैं ॥ ९ ॥ पुत्रहीन मनुष्यके लिये प्रथम-कहे जो पंद्रह श्राद्ध हैं उनको एकही दिनमें करदे, और पुत्रवान् मनुष्यके श्राद्ध सर्वदा (पृथक् २ प्रतिमास विधिसे) करे ॥ १० ॥ पुत्रहीन स्त्रीका स्वामी कभी श्राद्ध में उसे पिंड न दे, और पिता पुत्रको न दे, बड़ा भाई छोटे भाईको न दे ॥ ११ ॥

एकादशेऽग्निं निर्वर्त्य अर्वागदर्शाद्यथाविधि ॥ प्रकुर्वीताग्निमान्पुत्रो मातापित्रोः सपिंडताम् ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् ॥ एकोद्दिष्टेन विधिना दद्यादित्याह गौतमः ॥ १३ ॥ कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धपोडशम् ॥ प्रत्याव्दिकं च शेषेषु पिंडाः स्युः पडिति स्थितिः ॥ १४ ॥

ग्यारहवें दिन अग्निहोत्रीपुत्र यथाविधि श्राद्ध करके अमावससे पहले कर्मको निवृत्तकर मातापिताकी सपिंडीकरणकरे ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणके उपरान्त एकोद्दिष्टकी विधिके अनुसार प्रत्येक महीनेमें पिंड न दे यह गौतमऋषिकाभी कथनहै कि श्राद्ध न करे ॥ १३ ॥ कर्षु (अर्घ्य) सहित आद्य और सोलह श्राद्ध और प्रत्याव्दिक (क्षयी) इतने श्राद्धोंके अतिरिक्त शेष श्राद्धोंमें छै' पिंड होतेहैं यह मर्यादा है ॥ १४ ॥

अर्घेऽक्षयोदके चैव पिंडदानेऽवनेजने ॥ तत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ १५ ॥ ब्रह्मदंडादियुक्तानां येषां नास्त्यग्निसत्क्रिया ॥ श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित् ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्विंशतितमः खंडः ॥ २४ ॥

१ इसको ऊनपाण्मासिक और ऊनवार्षिक कहतेहैं; पाण्मासिक और वार्षिक ती वारहमेंही आगयाहै, ऐसे १४ एकादशाह और सपिंडी मिलाकर षोडश श्राद्ध होतेहैं उसीको षोडशी कहतेहैं ।

अर्घ, अक्षय्योदक, पिंडदान, अग्नेजन, और स्वधावाचन इतने काम तंत्र (अर्थात् सभीको एकवार अर्घआदि देना इसविधि) से नकरै अर्थात् प्रत्येक २ दे ॥ १५ ॥ जिन मनुष्योंका ब्रह्मदंड (शाप) आदिसे युक्त होनेके कारण संस्कार नहीं कियागया; वह श्राद्धआदि सत्कर्मके भागी इंसंलोकमें कभी नहीं होसकते ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्विंशतितमः खण्डः समाप्तः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः खण्डः २५.

मंत्राम्नायेऽग्न इत्येतत्पंचकं लाघवार्थिभिः ॥ पठ्यते तत्रयोगे स्यान्मंत्राणामेव विंशतिः ॥ १ ॥ अग्नेः स्थाने वायुचन्द्रसूर्या बहुवद्ब्रह्म च ॥ समस्य पंचमीसूत्रे चतुश्चतुरिति श्रुतेः ॥ २ ॥ प्रथमे पंचके पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत् ॥ अपि पंचसु मंत्रेषु इति यज्ञविदो विदुः ॥ ३ ॥ द्वितीये तु पतिघ्नी स्यादपुत्रेति तृतीयके ॥ चतुर्थे त्वपसव्येति इदमाहुतिविंशकम् ॥ ४ ॥ धृतिहोमे न प्रयुज्याद्गोनामसु तथाष्टसु ॥ चतुर्थ्यामघ्न्य इत्येतद्गोनामसु हि ह्रियते ॥ ५ ॥

वेदके मंत्रोंमें जो अग्निइत्यादि पांच मंत्र लाघवकी इच्छा करनेवाले ऋषियोंने पढ़े हैं; उन मंत्रोंके प्रयोगमें बीस मंत्र होतेहैं ॥ १ ॥ कारण कि “अग्ने” इस पदके स्थानमें वायु, चंद्रमा, सूर्य इनको पढ़कर पंचमी सूत्रमें सब स्थान चार २ पर आहुति हुई इस श्रुतिसे ॥ २ ॥ प्रथम पंचकमें पापी लक्ष्मी पद पांचों मंत्रोंमें होताहै. यज्ञके जाननेवाले ऐसा जानतेहैं ॥ ३ ॥ दूसरे पंचकमें “पतिघ्नी” पद और तीसरे पंचकमें “अपुत्रा” और चौथे पंचकमें “अपसव्या” पद होताहै, यही बीस आहुति हैं ॥ ४ ॥ धृत्के होममें और आठों गोनामके होमोंमें इसका प्रयोग नहीं होता चौथे और गोनामोंमें “अघ्न्ये” इस मंत्रसे आहुति दीजातीहै ॥ ५ ॥

लताग्रपल्लवो गूढः गुंगेति परिकीर्त्यते ॥ पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मबंधुस्तथाऽश्रुतः ॥ ६ ॥ शलादुनीलमित्युक्तं ग्रंथः स्तवक उच्यते ॥ कपुष्पिकाभितः केशा मूर्ध्नि पश्चात्कपुच्छलम् ॥ ७ ॥ श्वाविच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः ॥ तिलतंडुलसम्पकः कृसरः सोऽभिधीयते ॥ ८ ॥

लताके आगका जो गुप्त पत्ताहै उसे गुंगा कहतेहैं, और पतिव्रताको व्रतवती और जिसने वेद न पढ़ाहो उसे ब्रह्मबंधु कहतेहैं ॥ ६ ॥ नीलकी शलादु और गुच्छेको ग्रन्थ कहते हैं, स्त्रीके शिरपरके दोनों ओरके केशोंको कपुष्पिका और पीछेके केशके जूड़ेको कपुच्छल कहतेहैं ॥ ७ ॥ सेहीको श्वावित् और शलाका और बाणको वीरतर कहतेहैं इकट्ठे पके तिल और चावलोंको कृसर कहते हैं ॥ ८ ॥

नामधेये मुनिवसुपिशाचा बहुवत्सदा ॥ यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्यातिथिदेवताः ॥ ९ ॥ आभेयाद्येऽथ सर्पाद्ये विशाखाद्ये तथैव च ॥ आषाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैव च ॥ १० ॥ इद्वान्येतानि बहुवदक्षणां सुहृद्यात्सदा ॥

द्वंद्वद्वयं द्विवच्छेषमवशिष्टान्यथैकवत् ॥ ११ ॥ देवतास्वपि हूयन्ते बहुवत्सार्व-
पित्तयः ॥ देवांश्च वसवश्चैव द्विषदेवाश्चिनौ सदा ॥ १२ ॥

मुनि, वसु, पिशाच, यक्ष, पितर, देव, और अतिथि देवता इनका पूजन बहुवचनांत नोम लेकर करै (जैसे मुनिभ्यो नम इति) ॥ ९ ॥ कृत्तिका, आश्लेषा, विशाखा, पूर्वाषाढा, और अभिनी ॥ १० ॥ यह सब नक्षत्रद्वंद्व (दो २) हैं इनको सर्वदा बहुवचन पदसे (यथा कृत्तिकाभ्यः स्वाहा इत्यादि) आहुति दे; और शेष दो द्वंद्वोंको द्विवचनांत पदसे और बाकी नक्षत्रोंको एकवचनांत पदसे आहुति दे ॥ ११ ॥ देवताओंमेंभी सवापितर और देव, वसु, द्विषदेव अश्विनीकुमार इनको बहुवचनांत पदसे ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारी समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि ॥

वाढमोमिति वा ब्रूयात्तथैवानूपपालयेत् ॥ १३ ॥

गुरु जिस व्रतके कर्ममें ब्रह्मचारी को आज्ञा दे उसमें “सत्य है” अथवा “अंगीकार है” इस भांति कहै और वैसेही करके आज्ञाका पालनभी करै ॥ १३ ॥

सशिखं वपनं कार्यमास्त्रानाब्रह्मचारिणा ॥ आशरीरविमोक्षायः ब्रह्मचर्यं न चे-
द्भवेत् ॥ १४ ॥ न गात्रोत्सादनं कुर्यादनापदि कदाचन ॥ जलक्रीडामलंकारा-
न्व्रती दंड इवाप्लवेत् ॥ १५ ॥

ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिका स्नान जघत्क न करै तबतक क्षौरके समय शिखा-
सहित मुंडन करावै, यह मुण्डन आदि जघ करै जबकि शरीरके मरणपर्यन्त उसका
ब्रह्मचर्य न हो ॥ १४ ॥ ब्रह्मचारी बिना आपत्तिके आये कदापि शरीरपर उवटना न
करै; और जलक्रीडा वा भूषण इत्यादिकोभी धारण न करै और मुसलवत् (गोता मारकर)
स्नान करै ॥ १५ ॥

देवतानां विपर्यासे जुहोतिषु कथं भवेत् ॥

सर्व-प्रायश्चित्तं हुत्वा क्रमेण जुहुयात्पुनः ॥ १६ ॥

यदि किसी समय हवनमें देवताओंका विपर्यास (आगेका पीछे पीछेका आगे) होजाय तौ
प्रायश्चित्तकी सब आहुति देकर फिर क्रमसे हवन करै ॥ १६ ॥

संस्कारा अतिपत्येरन्स्वकालाच्चैत्कथंचन ॥

हुत्वा तदैव कर्तव्या ये तूपनयनादधः ॥ १७ ॥

यदि यज्ञोपवीतसे पहले संस्कारोंकी अतिपत्ति होजाय तौ प्रायश्चित्तकी सब आहुति
देकर करै ॥ १७ ॥

अनिष्टा नवयज्ञेन नवान्नं योऽत्यकामतः ॥

वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचविंशतितमः खंडः ॥ २५ ॥

जो मनुष्य नवयज्ञके बिना किये हुए अज्ञानतासे नवान्नका भोजन करताहै उसका प्राय-
श्चित्त वैश्वानर (अश्विका) चरु है, अर्थात् उससे हवन करै ॥ १८ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चविंशः खंडः ॥ २५ ॥

षड्विंशः खण्डः २६.

चरुः समशनीयो यस्तथा गोयज्ञकर्मणि ॥ वृषभोत्सर्जने चैव अश्वयज्ञे तथैव च ॥ १ ॥ श्रावण्यां वा प्रदोषे यः कृष्यारंभे तथैव च ॥ कथमेतेषु निर्वापाः कथं चैव जुहोतयः ॥ २ ॥ देवतासंख्यया ग्राह्या निर्वापास्तु पृथक्पृथक् ॥ तूष्णीं द्विरेव गृह्णीयाद्वोमश्चापि पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ यावता होमनिर्वृत्तिर्भवेद्वा यत्र कीर्तिता ॥ शेषं चैव भवेत्किञ्चित्तावन्तं निर्वपेच्चरुम् ॥ ४ ॥ चरौ समशनीये तु पितृयज्ञे चरौ यथा ॥ होतव्यं भक्षणे वान्य उपस्तीर्याभिधारितम् ॥ ५ ॥ कालः कात्यायनेनोक्तो विधिश्चैव समासतः ॥ वृषोत्सर्गो यतो नात्र गोभिलेन तु भाषितः ॥ ६ ॥

(प्रश्न) जो समशनीय (खानेयोग्य) चरु है, गोयज्ञकर्ममें, वृषभोत्सर्गमें, अश्वमेधमें ॥ १ ॥ और श्रावणीमें, प्रदोषमें, कृषिके आरंभमें इतने स्थानोंपर निर्वाप आहुति किस भांति होती है ? ॥ २ ॥ (उत्तर) देवताओंकी संख्याके अनुसार उतनेही निर्वाप पृथक् २ ग्रहण करै; और आहुतिभी तूष्णीं (मन्त्रके बिना) दो पृथक् २ लैनी ॥ ३ ॥ जहाँ जितने होमको कहाहो, अथवा जितनेसे हवन होसकै और उसमेंसे कुछ शेष रहजाय तो उतनाही चरु बनावे ॥ ४ ॥ समशनीय चरुमें और होमके चरुमें तो भक्षणसे हवन करै; और अन्य चरुमें घीसे संयुक्तकरके उपस्तीर्णकिये (एकत्रकिये) से हवन करै ॥ ५ ॥ कात्यायन ऋषिनें काल और विधि संक्षेपसे कहीहै, वृषोत्सर्गमें गोभिल ऋषिनें नहीं कही ॥ ६ ॥

पारिभाषिक एव स्यात्कालो गोवाजियज्ञयोः ॥ अन्यस्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्य च ॥ ७ ॥ अथवा मार्गपाल्येऽह्नि कालो गोयज्ञकर्मणः ॥ नीराजनेऽह्नि वाश्चानामिति तत्रातरे विधिः ॥ ८ ॥ शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ॥ धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः ॥ ९ ॥ आश्वयुज्यां तथा कृष्यां वास्तुकर्माणि याज्ञिकाः ॥ यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवं प्रचक्षते ॥ १० ॥

गौ और अश्वके यज्ञमें वही समय है जो पारिभाषिक हो (अर्थात् जिसका समय स्वयं नियत कियाहो) यह स्वस्तर और आरोहणमेंभी अन्यऋषिके उपदेशसे होताहै ॥ ७ ॥ अथवा मार्गपालीदिनमें गोयज्ञकर्म और नीराजनेके दिनमें अश्वमेधका काल होताहै, यह शास्त्रान्तरोंकी विधि है ॥ ८ ॥ कोई २ ऋषि शरद और वसन्तऋतुमें नवयज्ञ कहतेहैं; और कोई अन्नके पकनेपर कइतेहैं; और वानप्रस्थको श्यामाक (समा) पकनेपर कहाहै ॥ ९ ॥ आश्विनकी पूर्णिमा, कृषि; और वास्तुकर्म इनमें यज्ञके तत्त्वके जाननेवाले ऋषि इसप्रकारके होम करनेको कहतेहैं ॥ १० ॥

द्वे पंच द्वे क्रमेणैता हविराहुतयः स्मृताः ॥

शेषा आज्येन होतव्या इति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥

दो २, पांच ५ फिर दो २ क्रमानुसार इतनीही आहुति हविकी और शेष आहुति घीकी दैनी, यह कात्यायनऋषिका वचन है ॥ ११ ॥

पयो यदाज्यसंयुक्तं तत्तृपातकमुच्यते ॥

दध्यैके तदुपासाद्य कर्त्तव्यः पायसश्चरुः ॥ १२ ॥

घीमिलेहुए दूधको तृपातक कहतेहैं, और किसीका यहभी कथन है कि उसमें दधि मिलाकर पायसचरु बनाले ॥ १२ ॥

ग्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्पपास्तिलाः ॥

यवाश्चोषधयः सप्त विपदं व्रंति धारिताः ॥ १३ ॥

ग्रीहि, वा शालि, मूंग, गेहूं, सरसों, तिल, जौ यह सात औषधी धारण करनेसे सम्पूर्ण विपत्ति दूर होजातीहैं ॥ १३ ॥

संस्काराः पुरुषस्यैते स्मर्यन्ते गौतमादिभिः ॥

अतोष्टकादयः कार्याः सर्वकालप्रमोदिनाम् ॥ १४ ॥

गौतमआदि ऋषियोंने पुरुषके संस्कार इसभांति कहेहैं, इसकारण अष्टका आदि सम्पूर्ण कर्म जिस समयमें कहेहैं उसीमें करने उचित हैं ॥ १४ ॥

सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात्कर्माणि यो द्विजः ॥

स पंक्तिपावनो भूत्वा लोकान्प्रेति घृतश्च्युतः ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण अष्टका आदिकर्मोंको एकबारभी करताहै, वह पंक्तिका पवित्र करनेवाला हो कर घृतसे सींचेहुए लोकों (स्वर्गादिकों) को प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

एकाहमपि कर्मस्थो योऽग्निशुश्रूषकः शुचिः ॥

नयत्यत्र तदेवास्य शताहं दिवि जायते ॥ १६ ॥

जो मनुष्य कर्ममें स्थितहोकर एकदिनभी पवित्रहोकर अग्निकी सेवा करताहै, वह उस समयसे एकसौ दिनतक स्वर्गमें सुख भोगताहै ॥ १६ ॥

यस्त्वाधायामिमांशास्य देवादीन्निभिरिष्टवान् ॥

निराकर्त्ताऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पञ्चविंशतितमः खण्डः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य अधिका आधानपूर्वक देवताओंके आग्नीर्वादकी आशासे इन यज्ञोंमें उनका पूजन करताहै, और फिर देवताओंका तिरस्कार करताहै उस मनुष्यको निन्दित जानना ॥ १७ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चविंशः खंडः समाप्तः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः खण्डः २७.

यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत् ॥

अमावास्यां द्वितीयं यदन्वाहार्यं तदुच्यते ॥ १ ॥

जो श्राद्धकर्मकी आदिमें होताहै और जो दक्षिणाकर्मके अंतमें होताहै और अमावसको जो दूसरा श्राद्ध होताहै उसे अन्वाहार्य कहतेहैं ॥ १ ॥

एकसाध्येषु वर्हिःषु न स्यात्परिसमूहनम् ॥

नोदगासादनं चैव क्षिप्रहोमा हि ते मताः ॥ २ ॥

पुष्क दिनके हवनमें बाहे और भिन्न २ कुशाओंमें परिसमूहन और उत्तर २ पात्रोंका रखना नहीं होता; कारणकि इसको श्विप्रहोम कहतेहैं ॥ २ ॥

अभावे व्रीहियवयोर्दध्ना वा पयसोपि वा ॥

तदभावे यवाग्वा वा जुहुयादुदकेन वा ॥ ३ ॥

जौहि और जौके अभावमें दही और दूधसे, और उनकेभी न मिलनेपर लपशी वा जल-सेही हवन करै ॥ ३ ॥

रौत्रे तु राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिसारिकम् ॥

उक्ता मंत्रं स्पृशेदाप अ भ्यात्मानमेवं च ॥ ४ ॥

भयंकर मन्त्र, राक्षसोंके मन्त्र, पितरोंके मन्त्र, असुरोंके मन्त्र, अभिचारके मन्त्र, मनको रोककर इनका उच्चारण करके आचमन करै ॥ ४ ॥

यजनीयेऽहि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते ॥

तत्र व्याहृतिभिर्दृत्वा दंडं दद्याद्विजातये ॥ ५ ॥

चन्द्रमा वा अमृतवल्ली यदि यन्त्रके दिन वरुण दिशामें दीखजाय तौ वहां व्याहृति (भूः आदि) ओसे हवनकरके द्विजातियोंकी दंड दे अर्थात् प्रायश्चित्त करावै ॥ ५ ॥

लवणं मधु मांसं च सारांशो येन ह्यते ॥

उपवासेन भुञ्जीत नोरु शत्रौ न किंचन ॥ ६ ॥

लवण, सहज, मांस, सारका भाग इनका जो हवन करताहै वह दिनमें उपवास करै और रात्रिमें अधिक न खाय, ॥ ६ ॥

स्वकाले सायमाहुत्या अप्राप्तौ होवृहव्ययोः ॥ प्राक्प्रातराहुतेः कालः प्रायश्चित्ते हुते सति ॥ ७ ॥ प्राक्सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः ॥ प्राक्पौर्णमासा-

दृश्यः प्राग्दर्शादितरस्य तु ॥ ८ ॥ वैश्वदेवे त्वत्क्रान्ते अहोरात्रमभोजनम् ॥

प्रायश्चित्तमथो दृत्वा पुनः सन्तनुयाद्व्रतम् ॥ ९ ॥ होमद्वयात्पये दर्शपौर्णमा-

सात्यये तथा ॥ पुनरेवाग्निमादध्यादिति भार्गवशासनम् ॥ १० ॥

यदि होता और हव्य सायंकालको समयपर न मिलै तौ प्रातःकालही प्रायश्चित्तकी आहुति के पीछे आहुति दे ॥ ७ ॥ और सायंकालकी आहुतिसे पहलेभी प्रायश्चित्तकी आहुति दे, इस भांति करनेसे हवनका समय उल्लंघन नहीं होता, पूर्णमासीसे प्रथम और अमावससे पहले पूर्णिमाके ॥ ८ ॥ वलि वैश्वदेवका उल्लंघन होजाय तौ अहोरात्र भोजन न करे फिर प्रायश्चित्तकी आहुति देकर व्रतका प्रारंभ करै ॥ ९ ॥ यदि दो हवनका उल्लंघन होजाय या अमावस वा पूर्णमासीका उल्लंघन होजाय तौ फिर अग्निका आधान करे, यह शिक्षा भार्गवकी है ॥ १० ॥

अनृचो माणवी ज्ञेय एणः कुण्णमृगः स्मृतः ॥

रुरुगौरमृगः प्रोक्तस्तत्तलः शोण उच्यते ॥ ११ ॥

अनृच माणवक को कहते हैं एणः काले मृगको और गौरको बिल और लाल को तम्बल कहतेहैं ॥ ११ ॥

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः ॥ ललाटसंमिती राज्ञः स्यात्
नासांतिको विशः ॥ १२ ॥ ऋजवस्ते तु वै स्युरवणाः सोम्यदर्शनाः ॥
अनुदेगकरा नृणां सत्वचोऽनभिद्विताः ॥ १३ ॥

ब्राह्मणका केशांतिक, क्षत्रियका मस्तकतक, नासिकातक वैश्यका दंड प्रमाणसे होता है ॥ १२ ॥ और वह दंड ऐसे ही कि सीधे देखनेमें अच्छे और घुने न हो, और मनुष्यों को बुरा न लगे ॥ १३ ॥

गौर्विशिष्टतमा विभेदेऽपि निगद्यते ॥ न ततोऽन्यद्वरं मातृत्वाद्भवेत्
तुच्यते ॥ १४ ॥ येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ॥ वरस्तत्र भवेत्
दानमपि वाऽऽच्छादयेद्वरम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंने गौको वेदोंमें भी उत्तम कहा है; इसी कारण गौसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है, इसी से गौको वर कहते हैं ॥ १४ ॥ जिन व्रतोंके अंतमें दक्षिणा नहीं कहा है वहां वर (गौ) दक्षिणा दे, अथवा गुत्तको वरोंसे ढकदे ॥ १५ ॥

अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ॥ प्रमादिकं श्रुतौ यत्स्याद्यात-
यामत्वकारि तत् ॥ १६ ॥ अत्यन्तं यदुपाकर्म सौत्सर्गं विविधाद्भिः ॥ क्रिय-
ते छन्दसां तेन पुनराध्यायनं भवेत् ॥ १७ ॥ अयातयामैश्छन्दोभिर्व्यक्तकर्म
क्रियते द्विजैः ॥ क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारकम् ॥ १८ ॥ गाय-
त्रीञ्च सगायत्रां वार्हस्पत्यमिति त्रिकम् ॥ शिष्येभ्योऽनूच्य विधिवदुपाकृत्या-
त्ततः श्रुतिम् ॥ १९ ॥

इनमें वेद अयातयाम (जिसमें सार न हो ऐसा) होजाते हैं वह यह है कि अस्थान (जिस स्थानसे बोलना चाहिये उससे वर्णका नहीं बोलना) ऊँचे श्वाससे बोलना, विच्छेदसे बोलना, बड़े शब्दसे बोलना, यदि वह प्रमादसे होजाय तो सारहीन होता है ॥ १६ ॥ प्रतिवर्षमें जो उपाकर्म वाऽऽत्सर्ग (जो श्रावणीमें होता है) इनको ब्राह्मण करते हैं, उससे फिर वेदोंकी आध्यायन (सारवा) होती है ॥ १७ ॥ ब्राह्मण जो कर्म क्रीडासहित अयातयाम वेदोंसे करते हैं वह कर्म उनकी सिद्धि करनेवाले होते हैं ॥ १८ ॥ तीनों व्याहृतिसहित गायत्री और गायत्र (पवमानसूक्त) और वार्हस्पत्य (बृहस्पतिका सूक्त इन तीनोंको शास्त्रके अनुसार शिष्योंको उपदेश देकर फिर वेदका उपाकर्म करे ॥ १९ ॥

छन्दसामेकविंशानां संहितायां यथाक्रमम् ॥ तच्छन्दस्काभिरेवर्गभराद्याभिर्हो-
म इष्यते ॥ २० ॥ पर्वभिश्चैव गानेषु ब्राह्मणेपूतरादिभिः ॥ अङ्गेषु चर्चाम-
न्तेषु इति षष्ठिर्जुहोतयः ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तविंशतितमः खण्डः ॥ २७ ॥

संहिताके क्रमसे इसीस प्रकारके छंद हैं चन्दी छंदोंकी कचाओंके मन्त्रोंसे होम करनेकी विधि है ॥ २० ॥ गानभाग, (सामवेद) ब्राह्मण भाग अंग और चर्चामंत्रोंके उत्तरादि पर्व से हवनकर, उपाकर्ममें यह छैः हवन किये जाते हैं ॥ २१ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ मापाटीकायां सप्तविंशः खण्डः समाप्तः ॥ २७ ॥

१ "मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" ऐसा पूर्वगीर्मासमें कैमिनिका सूत्र है.

अष्टाविंशः खंडः २८.

अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ॥

भृष्टास्तु व्रीहयो लाजा घटाः खाण्डिक उच्यते ॥ १ ॥

जौका नाम अक्षतहै व भुनेहुए जौके हौनेपर उसे धाना कहतेहैं और भुने व्रीहियोंको लाजा कहतेहैं और घडोंका नाम खाण्डिक है ॥ १ ॥

नाधीयीत रहस्यानि सान्तराणि विचक्षणः ॥ नचोपनिषदश्चैव षण्मासान्दक्षि-
णायनान् ॥ २ ॥ उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्म्मवित् ॥ उत्सर्गश्चैक एवैषां
तैष्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य व्यवधान (दूर बैठकर) रहस्यों और उपनिषदोंको न पढ़े और छेः महीनेतक दक्षिणायनमेंभी इनको न पढ़े ॥ २ ॥ धर्मका-जाननेवाला मनुष्य उपाकर्मको करके उत्तरायणमें वेदोंको पढ़े, और इनके उत्सर्ग कर्ममें ब्राह्मणोंके लिये तैषी (पौषी पूर्णिमा) में ना भाद्रपदमें एकही कहाहै ॥ ३ ॥

अजातव्यञ्जनाऽलोम्नी न तया सह संविशेत् ॥

अयुगुः काकवन्ध्याया जाता तां न विवाहयेत् ॥ ४ ॥

जिसको यौवनका चिह्न उत्पन्न नहीं हुआ हो और जिसके शरीर गुह्यस्थानमें लोम उत्पन्न नहीं हुए हों उस स्त्रीके साथ भोग न करे; और जो स्त्री अयुगु हो अथवा जिसकी माता काकवन्ध्या हो, अर्थात् उसको वही एक कन्या सन्तान हुई हो और उसके पीठपर दूसरी सन्तान उत्पन्न हुई न हो. तौ ऐसे उस काकवन्ध्या माताकी कन्याके साथ विवाह न करे ॥ ४ ॥

संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः ॥

स्मात्तं कर्म्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्युणोदितः ॥ ५ ॥

मिले हुए पदोंका उच्चारण यह त्रिपद प्रक्रम (प्रारंभ) जो सब स्मृतिमें कहेहैं उनमें होताहै और जो कर्म श्रुतिमें कहेहैं उनमें अध्वर्युके कथनके अनुसार होताहै ॥ ५ ॥

यस्यां दिशि बलिं दद्यात्तामेवाभिमुखो विशेत् ॥ श्रवणाकर्म्मणि भवेद्यच्च
कर्म्म न सर्वदा ॥ ६ ॥ बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनन्तथा ॥ प्रत्यहं न भवे-
यातामुल्मुकन्तु भवेत्सदा ॥ ७ ॥

जिस दिशामें बलि दे उसी दिशाकी ओरको मुख करके बैठे, और जो कर्म सर्वदा नहीं होते ऐसे कर्मोंको श्रावणीमेंही करले ॥ ६ ॥ बलिके शेषका हवन और अग्निका प्रणयन (स्थापन) यह प्रतिदिन नहीं होते परन्तु उल्मुक (उल्का) तौ प्रतिदिनही होताहै ॥ ७ ॥

१ जिसके एक बार सन्तान होगई हो; और फिर गर्भ न-रहाहो उसे काकवन्ध्या कहतेहैं ।

२ यह निषेध जिन जातियोंमें परपूर्वा (अर्थात् पुनर्विवाह कराना धर्म शालसे अनुमत होताहै उन) के अर्थ है, कन्यासे यहां अत्यन्त बालक ५।६। वर्षकी लेना, कारणकि आठवें वर्ष गर्भसुधा विवाहके योग्य माना गयाहै ।

पृषातकप्रेषणयोर्नवस्य हविषस्तथा ॥ शिष्टस्य प्राशने मन्त्रस्तत्र सर्वोपेक्षा-
रिणः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणानामसान्निध्ये स्वयमेव पृषातकम् ॥ अवैशेद्विषः शेष-
नवयज्ञेऽपि भक्षयेत् ॥ ९ ॥

पृषातक और प्रेषणमें, नवीन हविमें और हविके दोषके भोजनमें मन्त्रोच्चारणके समी-
प अधिकारी हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मणके समीप न होनेपर स्वयंही पृषातकका दर्शन करले और नव-
यज्ञमें शेष हविको भी भक्षण करे ॥ ९ ॥

फला बदरीशाखा फलवत्यभिधीयते ॥ अना विमिक्षतांशिका ॥ स्मृता ज्ञाता-
शिलास्तु ताः ॥ १० ॥ नष्टो विनष्टो मणिकः शिलान्ना तथैवैवैति दत्ता-
हृत्य संस्कार्यो नापेक्षेदाग्रहायणीम् ॥ ११ ॥

जिस बेरीकी शाखापर फल-छयेहो उसे फलवती कहते हैं और जिसमें और जिस-
पर रेतका संदेहही न हो उस बेरीकी शाखाको ज्ञातशिला कहते हैं (१०) ॥ अना जो
मणिक (पूरक पात्र सटका) नष्ट (अदर्शन) हो गयाहो अथवा नष्ट मिलवाही अथवा
विनष्ट (फटा) हो गयाहो या वैसेही शिलाका नाश हो गयाहो तो इसी समय उसे
संस्कार करले, आग्रहायणी (अग्रहण शुद्धी १५) की प्रतीक्षा न करे ॥ ११ ॥

अवणाकम् लुप्तचक्रयश्चिस्तकादिना ॥
आग्रहायणिकं कुर्याद्वलिवर्जमशेषतः ॥ १२ ॥

यदि किसी प्रकार सूतक आदिसे अवणीका कर्म न हुआ हो तो बलिर्कर्मको छोड़कर
सम्पूर्ण कर्म आग्रहायणीको करले ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वस्वस्तरशाथी स्यान्मासमर्द्धमयाऽपि वा ॥ सतरात्र त्रिरात्र वा एका वा
सद्य एव वा ॥ १३ ॥ तोद्ध मंत्रप्रयोगः स्यान्नाभ्यगारं नियम्यते ॥ नाहतास्त-
रणं चैव न पार्श्वं चापि दक्षिणम् ॥ १४ ॥ दृढश्चेदाग्रहायण्यामावृत्त्या वापि
कर्मणः ॥ कुम्भं मन्त्रवदासिचैत्यतिकुम्भमृचं पठेत् ॥ १५ ॥

इसके पीछे एकमहीना, वा पन्द्रहदिन, वा सातरात्रि या तीनरात्रि, वा एक दिन अथवा
उसी समय अपनी शक्ति अनुसार साफ विस्तर पर शयन करे ॥ १३ ॥ विस्तर पर
सोनेके उपरान्त मन्त्रका प्रयोग, अग्निशालाका नियम श्रेष्ठ विछोना और दहिनी करवट नहीं
लेनी चाहिये ॥ १४ ॥ यदि मनुष्यने दृढहोकर भी आग्रहायणीके दिन क्रमको न कर पावो
तो जो ऋतुसमयसे खींचे और अत्यंत बड़े पर-काचाको पड़े ॥ १५ ॥

अश्वानां चो विधीतः स्यात्स बाधो बहुभिः स्मृतः ॥ प्राणासम्मित इत्यादि वासि-
प्रबोधितार्थश्चाऽऽ ॥ १६ ॥ विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् ॥ तुल्य-
प्रमाणकत्वे तु न्याय एव प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥

छोटे कर्मके विधानका बहुतसे अपि 'बाध' कहते हैं, जिस भाँति प्राणसंमित (शक्ति
अनुसार) इत्यादि वाशेष कर्मका बाधित (बाध) है ॥ १६ ॥ जिस स्थानपर बच-
नोका परस्परमें विरोध हो, वही बहुतसे कर्मोंका बचन प्रामाणिक होता है और जहाँ
दोनोंमें समान प्रमाण हो वहाँ यह न्याय कहा है ॥ १७ ॥

त्रैयंवकं करतलमपूपा मंडकाः स्मृताः ॥ पालाशगोलकाश्चैव लोहचूर्णं च चीव-
रम् ॥ १८ ॥ स्पृशन्ननामिकाग्रेण कचिदालोकयन्नपि ॥ अनुमंत्रणीयं सर्वत्र
सदैवमनुमंत्रयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ अष्टाविंशतितमः खण्डः ॥ २८ ॥

किं त्रैयंवक हाथके तलको, और मंडक अपूपोंको, और गोलक ढाक्योंको और लोहके
चूर्णको चीवर कहतेहैं ॥ १८ ॥ किसी स्थानमें अनामिकाके अग्रभागसे स्पर्श करके वा किसी
कर्ममें इनको देखकरही सम्पूर्ण कर्मोंमें मन्त्र पढ़े और इसी भांतिसे सर्वदा पढ़े ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामष्टाविंशः खंडः ॥ २८ ॥

एकोनविंशः खंडः २९.

क्षालनं दर्भकूचैन सर्वत्र स्रोतसां पशोः ॥

तूष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वपार्ये प्राणदारुणि ॥ १ ॥

पशुके स्रोतोंको दर्भ (कुशा) के कूच (कूची) से धोवै और मौन धारणकर बिना
मन्त्रके अपनी इच्छानुसार क्रमसे अर्थात् चाहें जिस स्रोतको पहले धोले, वपाके लिये जो
वपा प्राणोंका काठ है (?) ॥ १ ॥

सप्त तावन्मूर्धन्यानि तथा स्तनचतुष्टयम् ॥

नाभिः श्रोणिरपानं च गोस्रोतांसि चतुर्दश ॥ २ ॥

गाँके चौदह स्रोत हैं सात तौ ऊपरके और चार थन नाभी (डोंडी) योनी और
गुदाके ॥ २ ॥

धुरो मांसावदानार्थः कृत्स्ना स्विष्टकृदावृता ॥

वपामादाय जुहुयात्तत्र मंत्रं समापयेत् ॥ ३ ॥

मांसके निकालनेका जो छुरा होता है उसको कृत्स्ना स्विष्टकृन् और आवृत कहतेहैं उस
आवृत्तसे वपाको लेकर हवन करे; और उस समय मन्त्रको समाप्त करे अर्थात् फिर
न पढ़े ॥ ३ ॥

हजिह्वाक्रोडमस्थीनि यकृदृक्त्रौ गुदं स्तनाः ॥ श्रोणिस्कंधसटापार्श्व पश्वंगानि प्रच-
क्षते ॥ ४ ॥ एकादशानामंगानामवदानानि संख्यया ॥ पार्श्वस्य वृक्कसक्थनोश्च
द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥ ५ ॥

हृदय, जिह्वा, छाती, हाड, यकृत, वृषण, गुदा, स्तन, श्रोणी, स्कंध और सटा (टांड)
के दोनों पार्श्व यह पशुके अंग हैं ॥ ४ ॥ इन ग्यारह अंगोंकी संख्यासे ग्यारह अवदान
होतेहैं, और पार्श्व वृषण (अंडकोश) और सक्थि (जांव) यह दो २ होतेहैं इसीकारणसे
पशुके चौदह अंग कहेहैं ॥ ५ ॥

चरितार्था श्रुतिः कार्य्या यस्मादप्यनुकल्पशः ॥

अतोऽष्टैवेन होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥ ६ ॥

कल्प २ में जिसमें श्रुतिको चरितार्थ करने हैं; तौ छागकी चरुमें भी आठ आचाओसे हवन होता है ॥ ६ ॥

अवदानानि यावन्ति क्रियेरन्प्रस्तरे पशोः ॥ तावन्तः पायसान्पिण्डान्पश्वभावेऽपि कारयेत् ॥ ७ ॥ ऊहनव्यंजनार्थं तु पश्वभावेऽपि पायसम् ॥ सद्रवं श्रपयेत्तद्वदन्वष्टक्येऽपि कर्मणि ॥ ८ ॥

पशुके यज्ञमें जितने अवदान किये जायें, यदि पशु न होय तौ उत्तनहा पायस खारक पिण्ड देवे ॥ ७ ॥ पशुके न होनेपर ऊहन व्यंजनके अर्थ पायस चरुको करे और अन्वष्टकाके कर्ममें उसी पायसको द्रव्यसहित ढीला पकावे ॥ ८ ॥

प्राधान्यं पिण्डदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ गयादीं पिण्डमात्रस्य दीयमानत्वं दर्शनात् ॥ ९ ॥ भोजनस्य प्रधानत्वं वदन्त्ये महर्षयः ॥ ब्राह्मणस्य परीक्षायां महायज्ञप्रदर्शनात् ॥ १० ॥ आमश्राद्धविधानस्य विना पिण्डैः क्रियाविधिः ॥ तदालम्बाप्यनध्यायविधानश्रवणादापि ॥ ११ ॥ विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद्धृदि स्थितम् ॥ प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्तस्मादेष समुच्चयः ॥ १२ ॥

कोई २ पंडित पिण्डदानकोही प्रधान कहते हैं, कारण कि गयाआदि तीर्थोंमें पिण्डही दिया जाता है ॥ ९ ॥ कोई २ अपि भोजनकोही प्रधान कहते हैं; कारण कि ब्राह्मणकी परीक्षाके विषयमें शास्त्रमें अनेक यत्न देखे गये हैं ॥ १० ॥ आमश्राद्धकी विधिका अनुष्ठान विना पिण्डसे होता है कारण कि यदि ब्राह्मण मिलभी जाय तौ भी अनध्यायकी विधि शास्त्रसे सुनी है ॥ ११ ॥ विद्वानोंके मतको संग्रह करके मैंने यह स्थिर किया है कि दोनों कार्यही प्रधान कहे जाय जिससे यह समुच्चय अर्थात् भोजन और श्रेष्ठ ब्राह्मण यह दोनों ही होने उचित हैं ॥ १२ ॥

प्राचीनावीतिना कार्यं पित्र्येषु प्रोक्षणं पशोः ॥ दक्षिणोद्वासनान्तं च चरोर्निर्वपणादिकम् ॥ १३ ॥ सन्नयश्चावदानानां प्रधानार्थो नहीतरः ॥ प्रधानं हवनं चैव शेषं प्रकृतिषद्भवेत् ॥ १४ ॥

पितरोंके कर्ममें पशुका प्रोक्षण (मंत्रोंसे छिड़कना) अपसव्य होकर (दक्षिण कंधेपर जनेऊ रखकर) करे ॥ १३ ॥ अवदानोंका सन्नय भी और प्रधान होम यही दोनों प्रधान प्रधान कर्मके लिये हैं अन्य नहीं हैं, और शेष कर्म प्रकृति यज्ञके समान होता है ॥ १४ ॥

द्वीपमुन्नतमाख्यातं शादा चैवेष्टका स्मृता ॥

कीलिनं सजलं प्रोक्तं दूरखातोदको मरुः ॥ १५ ॥

ऊँचे स्थानका नाम द्वीप है, और इष्टका ईंटोंका सादा है, और जलसहित स्थानका नाम कीलिन है; और जहां दूरतक खोदनेसे जल निकलता है उसे मरु (मारवाड) कहते हैं ॥ १५ ॥

द्वारे गवाक्षस्तम्भैः कर्दमभित्यन्तकोणवेधैश्च ॥

नेष्टं वास्तुद्वारं विद्धमनाक्रांतमार्यैश्च ॥ १६ ॥

वशं गमाविति व्रीहीश्चरुनश्चेति यवांस्तथा ॥

असावित्यत्र नामोक्त्वा जुहुयात्क्षिप्रं होमवत् ॥ १७ ॥

जिसमें गवाक्ष खिडकी हों और जिसकी दीवारें कर्दम गारेकी हों और कोनोंमें जिस के वेध हो, और जिसमें सज्जनोंका निवास नहो उस घरका वह दरवाजा अच्छा नहीं होता ॥ १६ ॥ “वशंगमौ” इस मंत्रसे ब्रीहि और “शंखश्च” इस मंत्रसे जौ का क्षिप्रह्वनके समान होम करै, परन्तु जो मंत्रमें ‘असौ’ पद है वहां जो नामहो उसे कहै ॥ १७ ॥

साक्षतं सुमनोयुक्तमुदकं दधिसंयुतम् ॥ अर्घ्यं दधिमधुभ्यां च मधुपर्कौ विधी-
यते ॥ १८ ॥ कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेदर्घ्यमंजलौ ॥ कांस्यापिधानं कांस्यस्थं
मधुपर्कं समर्पयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकोनत्रिंशत्तमः खण्डः ॥ २९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे तृतीयः प्रपाठकः समाप्तः ॥ ३ ॥

समाप्तेयं कात्यायनसंहिता ॥ ९ ॥

अक्षत, फल, जल, दही यह जिसमें हों वह अर्घ होता है, और जिसमें दही दूध हों उसे मधुपर्क कहते हैं ॥ १८ ॥ जिसमें अपने पूजनीयको अर्घ देना हो उसकी अंजुलीमें कांसीके पात्रसे अर्घ देना उचित है; और मधुपर्कको कांसीके पात्रसे ढककर कांसीके पात्रमें रखकर दे ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ भाषाटीकायामेकोनत्रिंशः खण्डः समाप्तः ॥ २९ ॥

(कर्मप्रदीपके परिशिष्ट वा तीसरा प्रपाठ समाप्त हुआ)

इति कात्यायनस्मृतिः समाप्ता ॥ ९ ॥



॥ श्रीः ॥

अथ बृहस्पतिस्मृतिः १०.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ बृहस्पतिस्मृतिप्रारंभः ॥ इष्टा क्रतुशतं राजा समाप्त-
वरदक्षिणम् ॥ भगवंतं गुरुं श्रेष्ठं पर्यपृच्छद्बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ भगवन्केन दानेन
सर्वतः सुखमेवते ॥ यदक्षयं महार्थं च तन्मे ब्रूहि महत्तम ॥ २ ॥ एवमिद्रेण-
पृष्ठोऽसौ देवदेवपुरोहितः ॥ वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्पतिरुवाच ह ॥ ३ ॥

देवराज इन्द्रने जिनकी श्रेष्ठ दक्षिणा हुई है ऐसे सौ यज्ञोंकी समाप्त करके भगवान् उत्त-
मगुरु बृहस्पतिजीसे पूछा ॥ १ ॥ कि हे भगवन् ! किस २ वस्तुके दान करनेसे सर्वदा
सुखकी वृद्धि होतीहै और जिस वस्तुके दानका अक्षय और महान्फल है उस दानकोभी हे
तपोधन ! मुझसे कहिये ॥ २ ॥ इन्द्रसे इस प्रकार पूछेजाकर देवराज पुरोहित पंडितश्रेष्ठ,
चाणीके पति बृहस्पति बोले कि ॥ ३ ॥

सुवर्णदानं भूदानं गोदानं चैव वाप्तव ॥

एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

हेइन्द्र ! सुवर्णदान, गोदान और पृथ्वीदानका करनेवाला मनुष्य सर्व पापोंसे छूट
जाताहै ॥ ४ ॥

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिं रत्नं च वाप्तव ॥ सर्वमेव भवेदत्तं वसुधां यः प्रय-
च्छति ॥ ५ ॥ फालकृष्ठां महीं दत्त्वा सवीजां सस्यमालिनीम् ॥ यावत्सूर्यकृता
लोकास्तावत्त्वर्गे महीयते ॥ ६ ॥ यत्किंचित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः ॥
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ दशहस्तेन दंडेन त्रिंशद्दंडा-
न्निवर्त्तनम् ॥ दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥ सवृषं गोस-
हस्रं तु यत्र तिष्ठत्यतंद्रितम् ॥ बालवत्साप्रसूतानां तत्रोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९ ॥
विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेंद्रियाय ॥ यावन्मही तिष्ठति
सागरांता तावत्फलं तस्य भवेदनंतम् ॥ १० ॥ यथा बीजानि रोहन्ति प्रक्षी-
णानि महीतले ॥ एवं कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमर्जिताः ॥ ११ ॥ यथाप्सु
पतितः शक्र तैलविंदुः प्रसर्पति ॥ एवं भूम्याः कृतं दानं सस्ये सस्ये प्ररोहति
॥ १२ ॥ अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ॥ स नरः सर्वदो भूप यो
ददाति वसुंधराम् ॥ १३ ॥ यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी ॥ स्वयं
दत्ता सहस्राक्ष भूमिर्भरति भूमिदम् ॥ १४ ॥ शंसं भद्रासनं छत्रं चरस्यावरवा-
रणाः ॥ भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरंदर ॥ १५ ॥ आदित्यो वरुणो

द्वित्रिंशो सोमो हुताशनः ॥ शूलपाणिश्च भगवानभिनंदति भूमिदम् ॥ १६ ॥
आस्फोटयति पितरः प्रवल्गति पितामहाः ॥ भूमिदाता कुले जातः स च ज्ञाता
भविष्यति ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जिस मनुष्यने पृथ्वीका दान कियाहै मानों उसने सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, मणि, रत्न इन सबका दान करलिया ॥ ५ ॥ हलसे जुती वीजयुक्त और जिसमें खेत शोभायमान हो ऐसी पृथ्वीके दान करनेवाला मनुष्य जबतक सूर्यका प्रकाश त्रिलोकी में रहैगा तबतक वह स्वर्गमें निवासं करैगा ॥ ६ ॥ जो मनुष्य अजीविाकासे दुःखी होकर कोईसा पाप करता है वह गोचर्मकी बराबर पृथ्वी दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥ ७ ॥ दश हाथ के दंडसे तीस दंडभर लंबी और चौड़ी पृथ्वीको गोचर्म कहाहै, यह महान् फलकी देनेवाली होतीहै ॥ ८ ॥ जहां हजार गौ और बैल आनंदसहित स्थित हों उन गौओंमें जो प्रसूता हो उसके बछिया बछडेभी ठहरें, उसे गोचर्म कहते हैं ॥ ९ ॥ जो इस पृथ्वीको गुणवान्, तपस्वी, जितेन्द्रिय, ऐसे ब्राह्मणको दान करताहै, उस पुरुषपर यह ससागरा पृथ्वी जबतक स्थितरहैगी ऐसे ब्राह्मणको दानका अनंत फल तबतक भोग करना होगा ॥ १० ॥ पृथ्वीके तल पर बोयेहुए बीज जिसभांति जम आतेहैं; उसी प्रकार पृथ्वी दानके द्वारा संवय कियेहुए सम्पूर्ण काम (इच्छा) जमतेहैं ॥ ११ ॥ हेइन्द्र ! जिसभांति जलमें पडतेही तेलकी वृंद उसी समय फैल जातीहै, उसीभांति भूमि दान खेत २ में जम जाताहै ॥ १२ ॥ अन्नका दान करनेवाला मनुष्य सर्वदा सुखी रहताहै, वस्त्रका दान करनेवाला रूपवान् होताहै और जो मनुष्य पृथ्वी दान करताहै वह सर्वदा राजा होता है ॥ १३ ॥ जिसभांति दूधवाली गौ दूध को छोडकर बच्चा पालन करतीहै उसी प्रकारसे हेइन्द्र ! अपने हाथसे दीहुई पृथ्वीभी अपने दाताको पुष्ट करतीहै ॥ १४ ॥ हेइन्द्र ! पृथ्वी दान करनेवालेको शंख, भद्रासन, (राजगद्दी) छत्र, चमर, श्रेष्ठहाथी यह पृथ्वीदानके पुण्यसे प्राप्त होते हैं और फल स्वर्ग है ॥ १५ ॥ सूर्य, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, होमकी अग्नि, शिव और विष्णु यह पृथ्वीके देनेवालेकी श्रंशंसा करतेहैं ॥ १६ ॥ पितर अपने हाथोंसे अपनी भुजाओंको मलोंकी समान वजातेहैं; और पितामह भली भांति आनंदित हो कहतेहैं कि हमारे कुलमें पृथ्वीका देनेवाला उत्पन्न हुआहै वही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥ १७ ॥

त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥

तारयंतीह दातारं जपवापनदोहनैः ॥ १८ ॥

गोदान, भूमिदान और विद्यादान इन तीन दानोंकोही श्रेष्ठ कहाहै, यह तीनोंदान दाताको क्रमानुसार दुहना, बोना, और जप करना, इनमें तार देतेहैं ॥ १८ ॥

प्रावृता वस्त्रदा यांति नग्ना यांति त्ववस्त्रदाः ॥

तृप्ता यांत्यन्नदातारः क्षुधिता यांत्यन्नदाः ॥ १९ ॥

वस्त्रका दाता वस्त्रोंसे आच्छादित होकर (परलोकमें जाताहै) जिसने वस्त्रदान नहीं किये वह मनुष्य गंगा रहताहै; अन्नका देनेवाला तृप्त होताहै; और जिसने अन्नदान नहीं किया वह क्षुधित होकर जाताहै ॥ १९ ॥

कांक्षन्ति पितरः सर्वं नरकाद्रपभीरवः ॥ गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भ-
विष्यति ॥ २० ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ यजेत वाश्व-
मेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ २१ ॥

नरकसे भयभीत हुए पितर सर्वज्ञ यह अभिलाषा करते रहते हैं कि जो पुत्र गया में जा-
यागा; वही हमारी रक्षा करनेवाला होगा ॥ २० ॥ बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा करें; यद्यपि
उनमेंसे एक तो अवश्य गयाको जाय वा एक अश्वमेध यज्ञको करे वा नीले बैलसे वृषो-
त्सर्ग करे ॥ २१ ॥

लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पांडुरः ॥ श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो
वृष उच्यते ॥ २२ ॥ नीलः पांडुरलंगूलस्तृणमुद्गरते तु यः ॥ पष्ठिवर्षसहस्रा-
णि पितरस्तेन तर्पिताः ॥ २३ ॥ यस्य शृगगतं पंकं कलातिष्ठति चोद्धृतम् ॥
पितरस्तस्य चाभन्ति सोमलोकं महाद्युतिम् ॥ २४ ॥ पृथोर्यदोर्दिलीपस्य नृग-
स्य नहुपस्य च ॥ अन्येषां च नरेन्द्राणां पुनरन्यो भविष्यति ॥ २५ ॥

जिसका रंग लाल वर्ण हो, और पूंछका अग्रभाग पीला हो, दोनों सींग सफेद हों उसे नील
बैल कहते हैं ॥ २२ ॥ जिसका रंग नीला हो, पूंछ पीली हो, और जो तृणोंको उखाड़ले
ऐसे बैलके दान करनेसे पितर साठ हजार वर्षतक तृप्त होते हैं ॥ २३ ॥ जिस बैलके सीं-
गपर नदीकूलसे उखाड़ा हुआ पंक (कीचड़) स्थित रहे ऐसे बैलके दान करनेवालेके पितर
प्रकाशमान चन्द्रमाके लोकको भोगते हैं ॥ २४ ॥ पृथु, यदु, दिलीप, नृग, नहुप, और अन्यान्य
राजाओंमें फिरकर मरनेके उपरान्त अन्यही राजा होता है ॥ २५ ॥

बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥ यस्य यस्य यथा भूमिस्तस्य तस्य
तथा फलम् ॥ २६ ॥ यस्तु ब्रह्मघ्नः स्त्रीघ्नो वा यस्तु वै पितृघातकः ॥ गवां
शतसहस्राणां हन्ता भवति दुष्कृती ॥ २७ ॥

बहुतसे सगर आदि राजाओंने पृथ्वीको मोगा, जिस २ की जैसी २ पृथ्वीहुई उस २ को
वैसाही फल हुआ ॥ २६ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्या करनेवाला और स्त्रीकी हत्या करनेवाला है
वह पापी लाख गौओं को मारनेवाला होता है ॥ २७ ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् ॥ श्वविष्टायां कृमिभूत्वा पितृभिः सह
पच्यते ॥ २८ ॥ आक्षेप्ता चानुमन्ता च तमेव नरकं व्रजेत् ॥ भूमिदो भूमिह-
ता च नापरं पुण्यपापयोः ॥ ऊर्ध्वं चाधोऽवतिष्ठत यावदाभूतसंश्रवम् ॥ २९ ॥

जो मनुष्य अपनी दीहुई, अथवा दूसरेकी दीहुई पृथ्वीको छीनलताहै वह कुत्तेकी विष्टामें
कीड़ा होकर अपने पितरों सहित पकाया जाता है ॥ २८ ॥ मारनेवाला और अनुमति देने-
वाला यह दोनों एकही नरकमें जाते हैं; पृथ्वीका दाता और पृथ्वीका हरनेवाला अपने २
पुण्य वा पापसे क्रमानुसार स्वर्ग और नरकमें प्रलयपर्यन्त स्थित होते हैं ॥ २९ ॥

१ “लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः । श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥”
जिसका लाल रंग हो, मुख और पूंछ पांडुवर्ण हों और खुर तथा सींग श्वेतवर्ण हों उसे नील-
वृष (बैल) कहते हैं । ऐसा स्मृत्यन्तरका पाठ है ।

अमरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्विष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥

लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात् ॥ ३० ॥

अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी विष्णुकी पुत्री है और गौ सूर्यकी पुत्री है, जो मनुष्य सुवर्ण, गौ, मही इनका दान करताहै उसने मानों तीनों लोक दान करलिये ॥ ३० ॥

षडशीतिसहस्राणां योजनानां वसुंधरा ॥

स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥

जिस मनुष्यने छयासी (८६) हजार योजन पृथ्वी स्वयं दान कीहै वह पृथ्वी उसके सब मनोरथ पूर्ण करतीहै ॥ ३१ ॥

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ॥

उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियत स्वर्गगामिनौ ॥ ३२ ॥

जो पृथ्वीका दान लेताहै, और जो पृथ्वीको देताहै वह दोनों पुण्यात्मा निरन्तर स्वर्गमें जातेहैं ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥

हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ३३ ॥

एकही जन्ममें सम्पूर्ण दानोंका फल मिलताहै और सात जन्मतक सुवर्ण, पृथ्वी, गौरी इनका फल मिलताहै ॥ ३३ ॥

यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥

तस्य देहाद्विद्युत्स्य भयं नास्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य "मैं सवका आत्मा हूं" यह जानकर, अंडज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज, इन चार प्रकारके भूतोंको दुःख नहीं देता उस जीवात्माको देहसे पृथक् होनेपरभी कभी भय नहीं होता ॥ ३४ ॥

अन्यायेन हृता भूमिर्येनैरपहारिता ॥ हरंतो हारयंतश्च हन्युरासप्तमं कुलम् ॥ ३५ ॥

हरते हारयेद्यस्तु मंदबुद्धिस्तमोवृत्तः ॥ स बद्धो वारुणैः पार्श्वैस्तिर्य-

ग्योनिषु जायते ॥ ३६ ॥ असुभिः पतितैस्तेषां दानानामवकीर्तनम् ॥

ब्राह्मणस्य हते क्षेत्रे हन्ति त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३७ ॥ वापीकूपसहस्रेण अश्वमे-

धशतेन च ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥ गामेकां

स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्धमंगुलम् ॥ हरन्नरकमायाति यावदाभूतसंख्यम् ॥ ३९ ॥

हुतं दत्तं तपोवीतं यत्किञ्चिद्धर्मसंज्ञितम् ॥ अर्थोगुलस्य सीमायां

हरणेन प्रणश्यति ॥ ४० ॥ गोवीर्यां ग्रामस्थपां च इमं शानं गोपेतं तथा ॥

संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंख्यम् ॥ ४१ ॥

जिन मनुष्योंने कन्याय करके पृथ्वी छीनलीहै, या भूमिके छीननेकी जिसने अनुमति दीहै; वह छीननेवाले और अनुमति देनेवाले दोनोंही अपने सात कुलोंको नष्ट करतेहैं ॥ ३५ ॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य भूमिको छीनताहै वा छिनवाताहै वह वरुण फौसमें बँधकर तिर्यग्योनिमें

उत्पन्न होत है ॥ ३६ ॥ कारण कि, उनके आँखू गिरनेसे सब दान भी नष्ट होजातेहैं । ब्राह्मणके खेतको हरण करनेवाले मनुष्यको तीन पीढ़ी नष्ट होजातीहैं ॥ ३७ ॥ पृथ्वीका हरनेवाला हजार बावड़ी और कुओंको बनावकर, सौ अश्वमेव यज्ञ करके एक करोड़ गौके दान करनेसेभी शुद्ध नहीं होता ॥ ३८ ॥ एक गौ, एक अक्षरफली, और अर्ध अंगुल पृथ्वी इनका हरनेवाला मनुष्य प्रलयतक नरकमें जाताहै ॥ ३९ ॥ हवन, दान, तपस्या, पढ़ना, और धर्मसे इच्छा कियाहुआ वह सभी आध अंगुलकी सीमा हरनेसे नष्ट होजाताहै ॥ ४० ॥ गौओंका मार्ग, ग्रामकी गली, इमशान और गोपित (गुप्त रक्ताहुआ) इनको तोड़नेसे मनुष्य प्रलयतक नरकमें जाताहै ॥ ४१ ॥

ऊपरे निर्जले स्थाने प्रास्तं सस्यं विवर्जयेत् ॥

जलाधारस्य कर्तव्यो व्यासस्य वचनं यथा ॥ ४२ ॥

ऊपर और जलहीन पृथ्वीमें खेतको न बोवें, और जलवाली पृथ्वीमें व्यासजीके वचनके अनुसार खेत करना उचित है ॥ ४२ ॥

पंच कन्यानृतं हन्ति दश हन्ति गवानृतम् ॥ शतमश्वानृतं हन्ति सहस्रं पुरुषानृतम् ॥ ४३ ॥ हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृतं हन्ति मास्य भूम्यनृतं वदीः ॥ ४४ ॥

कन्याके सम्बन्धमें झूठ बोलनेसे पांचको, गौके सम्बन्धमें झूठ बोलनेसे दशको, घोड़ेके, निमित्त झूठ बोलनेसे सौको और पुरुषके निमित्त झूठ बोलनेमें हजारको मारनेवाला होताहै ॥ ४३ ॥ सुवर्णके सम्बन्धमें जो झूठ बोलताहै, उसके कुलमें जो उत्पन्न हैं और जो उत्पन्न होगा वह उन सबको नष्ट करदेगा; और पृथ्वीके निमित्त झूठ बोलनेमें सबको मारताहै, अतएव पृथ्वीके विषयमें झूठ बोलना उचित नहींहै ॥ ४४ ॥

ब्रह्मस्वं न रतिं कुर्यात्प्राणैः कंठगतैरपि ॥ अनौषधमभैषज्यं विषमेतद्ब्रह्मलम् ॥ ४५ ॥ न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥ ४६ ॥ लोहचूर्णममचूर्णं च विषं च जरयेन्नरः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ४७ ॥

चाहें प्राणभी कंठतक आजाय परन्तु ब्राह्मणके धनको इच्छा कभी न करें अर्थात् उसको लेनेकी इच्छा न करें, ब्राह्मणका धन हलाहल विषकी समान है; इसकी न चिकित्सा है और न औषधीही है ॥ ४५ ॥ बृद्धिमानोंका कथन है कि विष विष नहीं हैं परन्तु ब्राह्मणका धन ही विष है कारणकि विषको खाकर तो एकही मनुष्य मरताहै परन्तु ब्राह्मणके धनको खाकर बेटे पोतेतक मृतक होजाते हैं ॥ ४६ ॥ लोहेका चूर्ण, पत्थरका चूर्ण और विष कदाचित् इनको ती मनुष्य एकबार पचाभी सकताहै परन्तु त्रिलोकीके बीचमें ऐसा कोई पुरुषभी सा-मन्थवाला नहीं जोकि ब्राह्मणके धनको पचा सके ॥ ४७ ॥

मन्युप्रहरणा विप्रा राजानः शस्त्रपाणयः ॥ शस्त्रमेकाकिनं हन्ति ब्रह्ममन्युः कुलत्रयम् ॥ ४८ ॥ मन्युप्रहरणा विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः ॥ चक्राती-व्रतरो मन्युस्तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ॥ ४९ ॥ अभिदग्धाः प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्त-

यैव च ॥ मनुष्यदग्धस्य विषाणामंकुरो न प्ररोहति ॥ ५० ॥ तेजसाग्निश्च दहति
सूर्यो दहति रश्मिना ॥ राजा दहति दंडेन विप्रो दहति मनुष्या ॥ ५१ ॥

जाश्रणोंका क्रोध अच्छ है, राजाओंके शस्त्र खड्ग इत्यादि हैं, इन दोनोंमें खड्ग तौ एकही मनुष्यको मारता है और ब्राह्मणका क्रोध तीनों कुलोंको नष्ट कर देता है ॥ ४८ ॥ क्रोध ब्राह्मणोंका प्रहरण है, चक्र विष्णुका प्रहरण है, चक्रसे क्रोध बड़ा तीक्ष्ण है; इस कारण ब्राह्मणको क्रोध न उत्पन्न करावे ॥ ४९ ॥ (वृक्षादि) कदाचित् अग्निसे दग्ध होकर या सूर्यकी किरणोंसे भस्म होकर जम आतेहैं, परन्तु ब्राह्मणोंके क्रोधसे दग्धहुए (मनुष्यों) का अंकुरतकभी नहीं जमता ॥ ५० ॥ अग्नि अपने तेजसे दग्ध करतेहैं, और सूर्य भगवान् अपनी किरणोंके द्वारा दग्ध करतेहैं; राजा दंडसे दग्ध करतेहैं और ब्राह्मण केवल अपने क्रोध के द्वाराही दग्ध करते हैं ॥ ५१ ॥

ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ॥ तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मवि-
नाशनम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ॥ गुरुमित्रहिरण्यं
च स्वर्गस्यमपि पीडयेत् ॥ ५३ ॥ ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ॥
प्रच्छादयति तच्छिद्रमप्यत्र तु विसर्पति ॥ ५४ ॥ ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साध-
नानि बलानि च ॥ संग्रामे तानि लीयन्ते सिकतासु यथोदकम् ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणके धनसे जो सुख होताहै; और देवताके धनसे जो रति होती है, वह धन कुल और आत्माको नष्ट करदेता है ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणका धन हरण करनेसे ब्रह्महत्या लगतीहै, दरिद्र और गुरुका धन हरण करनेसे, मित्रका धन हरण करनेसे और सुवर्णके चुरानेसे स्वर्गमें वास करनेवालाभी दुःख भोगताहै ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणके धन हरण करनेमें जो दोष है, वह किसी भांति नहीं मिटता; उसको जो किसी भांति छिपाभी ले तौभी वह प्रगट होजाताहै ॥ ५४ ॥ ब्राह्मणके धनसे पुष्ट हुए साधन (कारण) और सेना यह संग्राम में इस भांति नष्ट हो जाते हैं, जिसभांति रेतमें जल लीन होजाताहै ॥ ५५ ॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ॥ संतुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय
च ॥ ५६ ॥ वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ ईदृशाय सुरश्रेष्ठ
यदत्तं हि तदक्षयम् ॥ ५७ ॥

हेइन्द्र ! कुलवान् और दरिद्री वेदपाठी ब्राह्मणको तथा संतोषी, विनयी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हितकारीभी हो ॥ ५६ ॥ जो वेदका अभ्यास करनेवाला हो; तपस्या करताहो; और जितने इन्द्रियोंको रोक लिया है हेसुरश्रेष्ठ ! ऐसे मनुष्यको जो कुछ दान किया जायगा वह अक्षय होगा ॥ ५७ ॥

आमपात्रं यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं
विनश्यति ॥ ५८ ॥ एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥ अविद्रा-
न्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥ ५९ ॥

जिस भांति कच्चे पात्रमें रक्खा हुआ दूध, दही, घी, सहत यह पात्रकी दुर्बलता के कारण नष्ट होजातेहैं और वह पात्रभी नष्ट होजाताहै ॥ ५८ ॥ उसी भांति गौ, सुवर्ण, वस्त्र, पृथ्वी तिल, इनको जो सूर्य लेताहै; वह काष्ठके समान भस्म होजाताहै ॥ ५९ ॥

यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरं चापि बहुश्रुतः ॥

बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ६० ॥

जिस मनुष्यके घरमें मूर्ख निवास करताहै; और दूरपर विद्वान्का निवास है, तो पंडित मनुष्यको दान देनेके अर्थ मूर्खके वल्लभन करनेमें दोष नहीं होता, अर्थात् वह मूर्खको दान न देकर पंडितकोही दान दे ॥ ६० ॥

कलं तारयते धीरः सप्तसप्त च वासव ॥ ६१ ॥ यस्तद्भागं नवं कुर्यात्पुराणं वापि खानयेत् ॥ स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ६२ ॥ वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च ॥ पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौक्तिकं फलम् ॥ ६३ ॥

हे इन्द्र ! वह पंडितको देकर अपने इक्कीस कुलोंका चद्दार करताहै ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य नये तालावको बनाताहै या प्राचीनको खुदवादेताहै वह मनुष्य सम्पूर्ण कुलोंका चद्दार कर स्वर्ग लोकमें पूजित होताहै ॥ ६२ ॥ (प्राचीन) वावडी, कूप, तडाग, बाग, और उपवन (छोटाबाग) इनको जो मनुष्य फिरसे बनवाताहै, उस मनुष्यको नये बनवानेका फल मिलताहै ॥ ६३ ॥

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ॥ स दुर्गविषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाभुयात् ॥ ६४ ॥ एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम ॥ कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥ ६५ ॥

हे इन्द्र ! जिसके यहां ग्रीष्म कालमें भी जल रहताहै वह मनुष्य किसी दुःखजनक दुरवस्थाको नहीं भोगता ॥ ६४ ॥ हे राजसत्तम ! जिसकी खोदीहुई पृथ्वीमें एक दिनभी जल स्थित रहताहै वह जल उसके अगले भी सात कुलोंको तारताहै ॥ ६५ ॥

दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स-भवेन्नरः ॥

प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विंदति ॥ ६६ ॥

दीपकके दान करनेपर मनुष्यका शरीर उत्तम होताहै और जलके दान करनेसे स्मरण और बुद्धिमान् होताहै ॥ ६६ ॥

कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ॥

ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥ ६७ ॥

बहुतसे निंदित कर्मके करनेपरभी यदि जो मनुष्य भिक्षुकको और विशेष करके ब्राह्मणको अन्न दान करताहै, वह मनुष्य पापसे लिप्त नहीं होता ॥ ६७ ॥

भूमिर्गावस्तथा दाराः प्रसह्य द्वियते यदा ॥

न चावेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६८ ॥

जिस मनुष्यने बलकरकै पृथ्वी, गौ और स्त्री इनको हरण कियाहै वह ब्रह्महत्यार कहलाताहै ॥ ६८ ॥

निवेदितश्च राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युदीपितैः ॥

न निवारयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६९ ॥

कोधसे दीपितहुए ब्राह्मणोंकी प्रार्थनासे जो राजा उस हरनेवालेको निषेध नहीं करता उस राजाको ब्रह्मचाती कहतेहैं ॥ ६९ ॥

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ॥

मौहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः ॥ ७० ॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य उपस्थितहुए, विवाह, यज्ञ, इनमें मोहवश हो विघ्न करताहै वह मरनेके उपरान्त कीड़ेकी योगिमें जन्म लेताहै ॥ ७० ॥

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ॥

रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥

दानद्वारा धन सफल होताहै, जीवकी रक्षा करनेसे आयुकी वृद्धि होतीहै, जो मनुष्य हिंसा नहीं करता वह ऐश्वर्य और आरोग्यरूप अहिंसाके फलको भोगताहै ॥ ७१ ॥

फलमूलाशनात्पूजा स्वर्गस्त्येन लभ्यते ॥

प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वं च सुखमश्नुते ॥ ७२ ॥

नियमी होकर जो मनुष्य फल मूलका भोजन करताहै वह निश्चयही स्वर्गको प्राप्त होताहै और मरनेके निमित्त तीर्थआदिपर बैठनेसे राज्य और सम्पूर्ण सुखोंको भोगताहै ॥ ७२ ॥

गवाह्यः शक्र दीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ॥

स्त्रियस्त्रिषवणस्त्रायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ ७३ ॥

हेइन्द्र ! जो मनुष्य मन्त्रका उपदेश लेताहै वह गौओंसे युक्त होताहै; और जो मनुष्य वृणोंको खाताहै वह स्वर्गमें जाताहै. तीन कालमें स्नान करनेवाला बहुत स्त्रीवाला होताहै; और वायुको पीनेवाला यज्ञके फलको पाताहै ॥ ७३ ॥

नित्यस्त्रायी भवेदर्कः संध्ये द्वे च जपन्द्रिजः ॥

नवं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य नित्य स्नान करताहै, और जो दोनों संध्याओंमें जपकरताहै, वह सूर्यरूप होता है, और अनशन व्रत करताहै उसे नवीन राज्य और सर्वदा स्वर्गमें निवास प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोकं महीयने ॥

रसनाप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विंदति ॥ ७५ ॥

अग्निमें प्रवेश करनेवाला ब्रह्मलोकमें पूजित होताहै और जो अपनी जिह्वाको वशमें रखाताहै वह पशु और पुत्रोंको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ॥

सततं चैकशायी यः स लभेदीप्सितां गतिम् ॥ ७६ ॥

जो मनुष्य नियमपूर्वक उपवास करता है वह बहुत कालतक स्वर्गमें निवास करता है; और जो मनुष्य निरन्तर एकही शय्यापर शयन करताहै अर्थात् एकही स्त्रीके साथ भोग करताहै; उसको अभिलषित गति प्राप्त होतीहै ॥ ७६ ॥

वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः ॥

अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्युस्सर्वकामागमास्तथा ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य वीरासन, वीरशय्या, और वीरस्थानमें स्थित रहता है उसका सब लोक और सम्पूर्णकाम अक्षय्य होजाते हैं ॥ ७७ ॥

उपवासं च दीक्षां च अभिवेकं च वासव ॥

कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ ७८ ॥

हे वासव ! जो मनुष्य बारहवर्ष तक उपवास, दीक्षा, और अभिवेक इनको करता है वह स्वर्गमें उत्तम होता है ॥ ७८ ॥

अधीत्य सर्ववेदान्वै सद्यो दुःखात्ममुच्यते ॥

पावनं चरते धर्मं स्वर्गलोके महीयते ॥ ७९ ॥

सम्पूर्ण वेदोंका पढ़नेवाला शीघ्रही दुःखोंसे छूटजाता है, और पवित्र धर्मका करनेवाला स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥ ७९ ॥

बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठन्ति द्विजातयः ॥

चत्वारि तेषां वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ८० ॥

इति श्रीबृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ १० ॥
जो ब्राह्मण बृहस्पतिके पवित्र मतको पढ़ते हैं; उनकी आयु, विद्या, यश, बल इन चारोंकी वृद्धि होती है ॥ ८० ॥

इति बृहस्पतिस्मृतौ भाषाटीका संपूर्णा ॥ १० ॥



॥ श्रीः ॥
पाराशरस्मृतिः ११.
भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ पाराशरस्मृतिप्रारंभः ॥ अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुव-
 नालये ॥ व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥ मातुषाणां हितं धर्म-
 वर्तमाने कलौ युगे ॥ शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥

एकसमय पूर्वकालमें हिमाचलपर्वतके ऊपर देवदारोंके वृक्षोंसे अलंकृत वनके आश्रममें
 श्रीव्यासजी महाराज एकाग्रचित्तसे बैठे थे उससमय ऋषियोंने उनसे प्रश्न किया ॥ १ ॥ कि-
 हे सत्यवतीनंदन! कलियुगके समयमें जो धर्म, शौच, तथा आचार, मनुष्यों के हितका करने-
 वाला है वह हमसे विधिपूर्वक कहिये ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः ॥ प्रत्युवाच महातेजाः श्रुति-
 स्मृतिविशारदः ॥ ३ ॥ न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्प्रहम् ॥ अस्मत्पितै-
 वं प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त प्रवृत्त अग्नि और सूर्यकी समान तेजस्वी श्रुति और स्मृति शास्त्रमें पंडित
 श्रीव्यासजी ऋषियोंके ऐसे वचन सुनकर बोले ॥ ३ ॥ कि मैं तो सब तत्त्वोंको नहीं जानता
 किस प्रकार धर्मको कहूं, इसकारण मेरे पिता (पराशर) से पूछना उचित है, ऐसा उत्तर
 व्यासजीने दिया ॥ ४ ॥

ततस्ते ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकाक्षिणः ॥ ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता वदरि-
 काश्रमम् ॥ ५ ॥ नानापुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलंकृतम् ॥ नदीप्रस्रवणोपेतं
 पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥ मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवतायनावृतम् ॥ यक्षगंध-
 र्वसिद्धैश्च नृत्यगंगितैरलंकृतम् ॥ ७ ॥ तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ॥
 सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥ कृतांजलिपुटो भूत्वा व्यास-
 स्तु ऋषिभिः सह ॥ प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥

तब धर्मके तत्त्वकी अभिलाषा करनेवाले वह सम्पूर्ण ऋषि यह सुनकर श्रीव्यासजीको आगे
 कर वदरिकाश्रमको गये ॥ ५ ॥ यह आश्रम अनेक भांति पुष्पोंकी लताओंसे पूर्ण फल पुष्पों-
 से शोभायमान नदी और झरनोंसे विभूषित पवित्र तीर्थोंसे शोभायमान ॥ ६ ॥ मृग और
 पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान, देवमंदिरोंसे आवृत, यक्ष और गंधर्वोंके नृत्यगानसे शोभायमा-
 न और सिद्धगणों से अलंकृत था ॥ ७ ॥ उस आश्रममें शक्तिऋषिके पुत्र मुनिवर पराशरजी
 प्रधान २ मुनियों से युक्त होकर ऋषियोंकी सभामें सुखपूर्वक बैठे थे इस समय में ॥ ८ ॥
 व्यासजीने ऋषियोंके साथ जाकर हाथ जोड़कर उनकी प्रदक्षिणाकर प्रणामपूर्वक स्तुति करके
 पूजन किया ॥ ९ ॥

अथ संतुष्टहृदयः पराशरमहामुनिः ॥

आहं सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुंगवः ॥ १० ॥

इसके उपरान्त महामुनि पराशरजीने संतुष्ट मन होकर पूछा कि तुम भर्त्ता प्रकार कुशल-पूर्वक आये कुशल कहो ॥ १० ॥

कुशलं सम्पगित्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यनंतरम् ॥ यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहा-
दा भक्तवत्सल ॥ ११ ॥ धर्मं कथय मे तात अनुग्राह्यो ह्यहं तव ॥ श्रुता मे
मानवा धर्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा ॥ १२ ॥ गार्गीया गौतमीयाश्च तथा
चौशैनसाः स्मृताः ॥ अत्रेर्विष्णोश्च संवर्तादक्षादंगिरसस्तथा ॥ १३ ॥ शाता-
तपाश्च हारीताद्याज्ञवल्क्यात्तथैव च ॥ आपस्तंबकृता धर्माः शंखस्य लिखित-
स्य च ॥ १४ ॥ कात्यायनकृताश्चैव तथा प्राचेतसान्मुनेः ॥ श्रुता ह्येते भवज्यो-
क्ताः श्रौतार्था मे न विस्मृताः ॥ १५ ॥ अस्मिन्मन्वन्तरे धर्मा कृतत्रेतादिके
युगे ॥ सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ॥ १६ ॥ चातुर्वर्ण्यसमा-
चारं किञ्चित्साधारणं वद ॥ चतुर्णामपि वर्णानां कर्त्तव्यं धर्मकोविदैः ॥ १७ ॥
ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥

कुशलप्रश्नके उपरान्त सधर्माति कुशल है ऐसा कहकर व्यासजीने पूछा कि हे भक्तव-
त्सल ! आपके ऊपर मेरी कैसी भक्ति है यदि आप इस बातको जानते हैं अथवा मेरे ऊपर
यदि आपका स्नेह है ॥ ११ ॥ तौ हे पितः ! मुझसे स्नेहपूर्वक धर्मका वर्णन क्रीजिये, कारण
कि मैं आपकी कृपाका पात्र हूँ, इस कारण मुझपर अवश्यही कृपा करनी चाहिये, कारण
कि मैंने स्वायंभुवमनु, वाशिष्ठ, कश्यप ॥ १२ ॥ तथा गार्गाचार्य, गौतम, शुक्राचार्य, अत्रि,
तथा विष्णुकृपि, संवर्त, दक्ष, अंगिरा ॥ १३ ॥ शातातपः हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तंब,
तथा शंख, लिखित ॥ १४ ॥ कात्यायन, वाल्मीकि इत्यादि ऋषियोंके कहेहुए धर्मशास्त्र
और आपके कहेहुए वेदोक्त धर्म श्रवण किये हैं और वह मुझे स्मरणभी हैं ॥ १५ ॥ परन्तु इस
मन्वन्तरके त्रिपय कृतयुग और त्रेतादि युगोंके जो २ धर्म थे उन २ युगोंमें शक्तिकी विशेषता
होनेके कारण वह धर्म स्थित रहे; और अब कलियुगमें शक्तिकी हानि होगई है, इस कारण
वह सम्पूर्ण धर्म लोप होगये ॥ १६ ॥ इस कारण चारोंवर्णोंका पृथक् २ मुख्य धर्म तथा
चारोंवर्णोंका मिश्रित धर्म वर्णन क्रीजिये ॥ १७ ॥ हे धर्मस्वरूपके जाननेवाले ! चारोंवर्णोंमें जो
धर्म धर्मके जाननेवालोंको करने योग्य सूक्ष्म और स्थूल है उनका वर्णन विस्तारसहित क्रीजिये.

व्यासवाक्यावसानेषु मुनिमुख्यः पराशरः ॥ १८ ॥

धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥

व्यासजीके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ पराशरजी ॥ १८ ॥ सूक्ष्म और स्थूल इन दोनों धर्मोंका
निर्णय विस्तारसहित कहनेलगे ॥

वक्ष्यमाणधर्मतत्त्वग्रहणाय श्रोतृसावधानतां विधत्ते ।

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयस्तथा ॥ १९ ॥

इन धर्मोंको सुननेके लिये श्रोताओंको सावधान होना उचित है । इसवास्ते प्रथमतः कहतेहैं कि, हे पुत्र ! तथा हे सुनियों ! श्रवण करो ॥ १९ ॥

कल्पे कल्पे क्षये सत्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २० ॥

श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा ॥

कल्प २ में प्रलय होनेपरभी ब्रह्मा, विष्णु, और महेश यह तीनों विद्यमान रहतेहैं ॥ २० ॥ और वह सर्वदा श्रुति, स्मृति और सदाचारका निर्णय करतेहैं।

न कश्चिद्वेदकर्ता च वेदं स्मृत्वा चतुर्मुखः ॥ २१ ॥

तथैव धर्मान्स्मरति मनुः कल्पांतरेऽतरे ॥

कोई वेदका कर्ता नहींहै, कल्पकी आदिमें पूर्वकी समान वेदको स्मरणकर ब्रह्माजी चतुर्मुखोंके द्वारा प्रकाशित करतेहैं ॥ २१ ॥ और जो मनु कल्प २ में होतेहैं वह भी उसी प्रकार प्रथमकी समान धर्मोंको स्मरण कर प्रवृत्त करतेहैं;

अन्य कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे ॥ २२ ॥

अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपाऽनुसारतः ॥

शक्तिकी वृद्धि और हानि युगोंके अनुसारही हैं, उसीकारणसे कृतयुगमें मनुष्योंका धर्म और प्रकारका रहा, त्रेतामें और प्रकारका और द्वापरमें और प्रकारका रहा ॥ २२ ॥ इस समय कलियुगमें ऋषियोंने मनुष्योंकी शक्तिके अनुसारही और प्रकारके धर्म वर्णन कियेहैं ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ २३ ॥

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे ॥

कृतयुगमें शक्ति विशेष थी इसकारण उसमें तप श्रेष्ठ रहा; त्रेतामें ज्ञान रहा ॥ २३ ॥ द्वापरमें यज्ञ अधिक रहा, और अब कलियुगमें शारीरिक शक्ति न्यून है इस कारण इसमें ज्ञानकीही अधिकता है ॥

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥ २४ ॥

द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥

सतयुगमें तौ मनुजीके धर्म मुख्य थे त्रेतामें गौतमके ॥ २४ ॥ शंख और लिखित ऋषियोंके धर्म द्वापरमें मुख्य रहे; और इससमय कलियुगमें मुनि पराशरजीके कहेहुए धर्म अत्यन्तही उपयोगी हैं ॥

त्यजेदेशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ २५ ॥

द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥

सतयुगमें संसर्गके दोष लगनेके कारण पाप करनेवालेके देशकोभी त्याग देतेथे; ग्रामको त्रेतामें ॥ २५ ॥ और द्वापरमें पाप करनेवालेके कुलतककोभी छोड़ देतेथे; अब कलियुगमें केवल पापकर्त्ताकोही छोड़ देतेहैं ॥

कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥ २६ ॥

द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥

सतयुगमें तौ मनुष्य पापीके साथ वार्तालाप करनेसेही पतित होजाताथा, और त्रेतामें स्पर्शसे पतित होताथा ॥ २६ ॥ अन्नके लेनेसे द्वापरमें पतित होताथा; और कलियुगमें कर्म-करनेसे पतित होताहै ॥

कृते तात्क्षानिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥ २७ ॥

द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ॥

सतयुगमें शाप तत्कालही फलताथा, दशदिनमें त्रेतामें ॥ २७ ॥ और द्वापरमें एकमहीनिहे शाप फलीभूत होताथा, और अब कलियुगमें एकवर्षमें शापका फल होताहै ॥

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहुय दीयते ॥ २८ ॥ द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥ अभिगम्योत्तमं दानमाहुयैव तु मध्यमम् ॥ २९ ॥ अधमं याच-मानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥

कृतयुगमें श्रद्धा अधिक थी इसकारण दान आप जाकर देतेथे, श्रद्धासहित बुलाकर त्रेतामें दंतथे ॥ २८ ॥ याचना करनेवालेको द्वापरमें श्रद्धायुक्त हो देतेथे, और अब कलि-युगमें दान सेवा कराकर देतेहैं । जो दान आप जाकर दिया जाताहै वह उत्तम है; बुलाकर जो दान दिया जाताहै वह मध्यम है ॥ २९ ॥ और जो दान याचना करनेपर दिया जाताहै वह निष्कृष्ट है; और जो सेवा कराकर दान दिया जाताहै वह निष्फल है ॥

जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च ॥ ३० ॥ जिताश्चरैश्च राजानः स्त्रीः

भिश्च पुरुषा जिताः ॥ स्त्रीदंति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

कुमार्यश्च प्रसूयते तस्मिन्कलियुगे सदा ॥

कलियुगमें धर्मकी पराजय अधर्मसे होजातीहै, और सत्यकी पराजय झूठसे होताहै ॥ ३० ॥ बहुधा राजोंकी पराजय चोरोंसे होजातीहै; और स्त्रियें पुरुषोंका तिरस्कार करती-हैं; कलमें अग्निहोत्र और गुरुपूजन वह नष्टहुए जातेहैं ॥ ३१ ॥ कुमारीकन्याभी कलिके प्रभावसे सन्तान उत्पन्न करतीहैं ॥

कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाभिताः ॥ ३२ ॥

द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः ॥

सतयुगमें प्राण अस्थिगत थे, मांसके आश्रयसे त्रेतायुगमें रहे ॥ ३२ ॥ द्वापरमें रुधिरमें प्राण रहतेहैं; और कलियुगमें अन्नादिकमेंही प्राण स्थिति करतेहैं, अर्थात् अन्नके बिनामिले प्राण नष्ट होजातेहैं ॥

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ॥ ३३ ॥

तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥

जो २ धर्म प्रत्येक युगमें हैं और उन युगोंमें जो २ ब्राह्मण युगानुरूप हैं ॥ ३३ ॥ उनकी निन्दा करनी उचित नहीं कारण कि आचरण करनेवाले वह ब्राह्मण युगकेही अनुसार हैं ॥

युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ३४ ॥ पराशरेण चाप्युक्तं प्राय-श्चित्तं विधीयते ॥ अहमद्यैव तत्सर्वमनुस्मृत्य ब्रवीमि वः ॥ ३५ ॥

जैसी २ सामर्थ्य जिस २ युगमें रही वैसै २ ही प्रायश्चित्तादि धर्मोंका वर्णन मनु गौतमादि मुनीश्वरोंने किया ॥ ३४ ॥ मैं अब पराशरजीके कहेहुए सम्पूर्ण प्रायश्चित्तआदि धर्मोंको स्मरणकर तुमसे कहताहूँ ॥ ३५ ॥

चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वंतु ऋषिपुंगवाः ॥ पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ ३६ ॥ चितितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥

हे मुनीश्वरो ! परमपवित्र सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला मुनि पराशरजीका मत चारों वर्णोंका आचार जो ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणोंके निमित्त तथा धर्मको स्थापन करनेके लिये चितवन किया गयाहै; उसीको श्रवण करो ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ॥ ३७ ॥

आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥

आचारही चारों वर्णोंके धर्मोंका पालन करनेहारा है. कारण कि आचारके बिना किये केवल धर्मके कथनमात्रसेही धर्मका पालन नहीं होसकता ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य आचारसे भ्रष्ट हैं, और जिन्होंने धर्माचरण करना छोड़दिया उनसे धर्म विमुख होतातहै ॥

षट्कर्मभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥

हुतशेषं तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ३८ ॥

और जो ब्राह्मण षट्कर्ममें निरत और नित्य देवता अतिथियोंकी पूजा करता और हवनक शेषका भोजन करताहै उसको कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ ३८ ॥

संध्या ज्ञानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ॥

आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिनेदिने ॥ ३९ ॥

प्रतिदिन सन्ध्या, ज्ञान, जप, हवन, वेदाध्ययन, देवताओंका पूजन, अतिथिक्षेवा और वलिभैश्वदेव यह छैः प्रकारके कर्म करने उचित हैं ॥ ३९ ॥

इष्टो वा यदि वा द्वेष्टो मूर्खः पण्डित एव वा ॥ संप्राप्तो वैश्वदेवांति सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ४० ॥ दूराच्चोपगतं श्रान्तं वैश्वदेव उपास्थितम् ॥ अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥ ४१ ॥ नैकग्रामीणमतिथिं संगृहीत कदाचन ॥ अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥ अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ॥ तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ४३ ॥ श्रद्धया चान्नदानेन प्रियमभोत्तरेण च ॥ गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद्गृही ॥ ४४ ॥ अतिथिर्यस्य भमाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ पितरस्तस्य नाश्रंति दश वर्षाणि पंच च ॥ ४५ ॥ काष्ठभ्रासरहस्त्रेण घृतकुंभशतेन च ॥ अतिथिर्यस्य भ्राशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥ ४६ ॥ सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ॥ सुक्षेत्रे च सुपात्रे च छुप्तं दत्तं न नश्यति ॥ ४७ ॥ न पृच्छेद्गोत्रचरणे न स्वाध्यायं श्रुत तथा ॥ हृदये कल्पयेद्देवं सर्वदेवमयो हि सः ॥ ४८ ॥ अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा ॥ वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽर्ध्वं दिने दिने ॥ ४९ ॥ वैश्व-

देवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ॥ उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

भिन्न हो या शत्रु हो, पंडित हो या मूर्ख हो अतिथि के लक्षणों से युक्त जो पुरुष बलिष्वश्वदेव के अंत में आजाय उसकी सेवा के करने से स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ दूर से आया हुआ और थकित हुआ जो पुरुष बलिष्वश्वदेव के समय में आजाय, उसको अतिथि ही जानना; जो कभी पहले भी आया हो वह अतिथि नहीं है ॥ ४१ ॥ एक ग्राम के रहनेवाले को आतिथ्य में ग्रहण कभी न करे कारण कि, पहले जिसका दर्शन कभी नहीं हुआ, इसलिये उसे अतिथि कहते हैं ॥ ४२ ॥ जो अतिथि अपने स्थान पर आवे तो उसकी कुशल पूछकर आसन दे चरण धोकर पूजन करे ॥ ४३ ॥ जिस समय अतिथि अपने स्थान को जाने लगे तो गृहस्थ को उचित है कि, श्रद्धा सहित अन्न देकर प्रेम सहित कुशल प्रश्न करे और कुछ दूर तक पहुंचा आकर प्रीति उत्पन्न करे ॥ ४४ ॥ जिसके यहां से अतिथि निराश होकर जाता है उसके पितर पंद्रह वर्ष तक उसके दिये हुए श्राद्ध सम्बन्धीय अन्न को ग्रहण नहीं करते ॥ ४५ ॥ जिसके यहां से अतिथि निराश होकर जाता है उसका सहस्रभार काष्ठ और सौ कलश घृत से हवन करना निरर्थक है ॥ ४६ ॥ अच्छे खेत में बीज बोवे और सुपात्र को धन दान करे; अच्छे क्षेत्र में जो अन्न बोया जाता है और सुपात्र को जो दान दिया जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता ॥ ४७ ॥ अतिथि से गोत्र आचरण तथा अपने किन् २ शास्त्रों को पढ़ा या श्रवण किया है इत्यादि बातें न पूछे; कारण कि अतिथि देवस्वरूप है उसे देवता की समान जानकर उसका सन्मान करना उचित है ॥ ४८ ॥ व्रतों में रत ब्राह्मण, और नित्य वेदाभ्यासी ब्राह्मण और अतिथि यह तीनों दिन २ अपूर्व ही हैं अर्थात् इन तीनों का सन्मान नित्य करना उचित है ॥ ४९ ॥ वैश्वदेव के आरंभ करने के समय में यदि कोई भिक्षुक, संन्यासी, ब्रह्मचारी और अतिथि आजाय तो बलिष्वश्वदेव के निमित्त अन्न को अलग करके शेष अन्न में से भिक्षुक को भिक्षा देकर विदा करे ॥ ५० ॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वाभिनावुभौ ॥ तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥ दद्याच्च भिक्षा त्रितयं परिव्राज्य ब्रह्मचारिणाम् ॥ इच्छया च ततो दद्याद्भिभवे सत्यवारितम् ॥ ५२ ॥

यति और ब्रह्मचारी यह दोनों पक्वान्न की भिक्षा के अधिकारी हैं, इनको बिना अन्न दिये हुए जो भोजन करता है उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रत के करने से होती है ॥ ५१ ॥ तीन भिक्षा संन्यासी और ब्रह्मचारियों को अवश्य देनी उचित है; यदि अधिक ऐश्वर्यवान् हो तो निरंतर इच्छानुसार भिक्षा दे ॥ ५२ ॥

यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात्पुनर्जलम् ॥ तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ ५३ ॥ यस्य चतुर्त्रयं हयैश्च कुंजरारोहमृद्धिमत् ॥ पेंद्रस्थानमुपासीत तस्मात्तं न विचारयेत् ॥ ५४ ॥

प्रथम यतिके हाथ में जल दे इसके पीछे भिक्षा दे फिर जल दे, यह क्रम है, वह भिक्षा का अन्न सुमेरु पर्वत के तुल्य हो जाता है; और वह जल समुद्र के समान हो जाता है ॥ ५३ ॥

जिस संन्यासीके पास छत्र हाथी घोडा आदि वाहन हों और वह बुद्धिमान् इन्द्रके स्थानका अनुभव करताहो ऐसाभी संन्यासी हो तौ भी उसका संमान करनेयोग्यही है ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवकृतं प्रापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥ नहि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ५५ ॥

बलि वैश्वदेवके सम्बन्धमें जो पाप हुआहो उसको वह दूर करसकताहै; भिक्षुकके सम्मान करनेसे बलिवैश्वदेवकी विधिमें यदि कुछ त्रुटि रहजाय तौ वह पाप भिक्षुकके सम्मान करनेसे शांत होजाताहै; परन्तु यदि बलि वैश्वदेवके कारण भिक्षुकका सम्मान न होसकै तौ उस दोषको बलिवैश्वदेव दूर नहीं करसकता ॥ ५५ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु ये भुञ्जते द्विजातयः ॥ तेषामन्नं न भुञ्जीत काकयोनिं व्रजंति ते ॥ ५६ ॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जते ये द्विजाधमाः ॥ सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरकेऽंशुचौ ॥ ५७ ॥ वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन वहिष्कृताः ॥ सर्वे ते नरकं यांति काकयोनिं व्रजंति च ॥ ५८ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, विना बलिवैश्वदेवके किये भोजन करतेहैं उनको काककीं योनि मिलताहै, इसी कारण उनके अन्नका भोजन करना उचित नहीं है ॥ ५६ ॥ जो अधम ब्राह्मण बलिवैश्वदेवके विना किये भोजन करतेहैं उनके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजाते हैं; और वह अशुचिनामक नरकमें जाकर पडतेहैं ॥ ५७ ॥ जो बलिवैश्वदेवको नहीं करते, जो अतिथिकी सेवां नहीं करते वह सम्पूर्ण मनुष्य नरकगामी होतेहैं; और इसके पश्चात् उनको कौये की योनि मिलताहै ॥ ५८ ॥

शिरो वेष्टय तु यो भुंक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः ॥

वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मादिसे शिरको ढककर तथा बाँये चरण पर हाथ धरकर दक्षिण दिशाको मुख करके भोजन करते वह राक्षसी भोजन है, अर्थात् वह भोजन तामसी होजाताहै ॥ ५९ ॥

यतये कांचनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे ॥

चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥

जो दाता संन्यासीको सुवर्णआदिक धन दान करताहै; तथा ब्रह्मचारीको तांबूल और चोरोको अभय देताहै वह नरक को जावाहै ॥ ६० ॥

शुक्लवस्त्रं च यानं च तांबूलं धातुमेव च ॥

प्रतिगृह्य कुलं हन्यात्प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६१ ॥

जो संन्यासी श्वेद वस्त्र, वाहन, तांबूल तथा धन आदिका प्रतिग्रह लेते हैं, तो जिससे प्रतिग्रह लेते हैं उसके भी कुलका नाश करतेहैं ॥ ६१ ॥

चोरो वा यदि चंडालः शत्रुर्वा पितृघातकः ॥

वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ६२ ॥

चोर वा चंडाल, शत्रु या पितृघातीहो जो भी बलिवैश्वदेवके समयमें आजाय तौ वह अतिथि स्वर्ग प्राप्ति करानेवाला है ॥ ६२ ॥

न गृह्णाति तु यो विप्रो अतिथिं वेदपारगम् ॥

अदत्तं चान्नपात्रं तु भुक्त्वा भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ ६३ ॥

जो ब्राह्मण वेदके जाननेवाले अतिथिको अन्न जल न देकर स्वयं भोजनकरतेहैं वे पापका भोजन करतेहैं ॥ ६३ ॥

ब्राह्मणस्य सुखं क्षेत्रं निरुपममकंटकम् ॥ वापयेत्सर्वबीजानि सा कृषिः सर्व-
कामिका ॥ ६४ ॥ सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्भनम् ॥ सुक्षेत्रे च सुपात्रे
च ह्युतं तन्न विनश्यति ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणका सुख अनुपम कंटकादिरहित उत्तम क्षेत्र है उसमें सम्पूर्ण बीजांको बोवै, ब्राह्मण की मुखरूपी खेती सम्पूर्ण कामनारूप फलोंकी देनेवाली है ॥ ६४ ॥ मनुष्यको उचित है कि श्रेष्ठक्षेत्रमें बीज बोवै, सुपात्रको धनका दान करे, वह सुपात्रको धनका दान दिया और श्रेष्ठ क्षेत्रमें बीज बोयाहुआ कभी नष्ट नहीं होता ॥ ६५ ॥

अन्नता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ॥

तं ग्रामं दंडयेद्वाजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥ ६६ ॥

जिस ग्राममें व्रतसे रहित और वेदाध्ययनसे हीन ब्राह्मण भिक्षा मांगते हैं, राजा उन ग्रामवासियोंको दंड दे, नहीं तो वह राजाही चोरोंको भात देनेवाला है, कारण कि, जिस भांति धर्मके अनुसार प्रजा राजाको छठा अंश भाग देती है, उसी प्रकार तपस्वी ब्राह्मणोंको क्षत्रियआदिकोंसे भाग मिलना चाहिये; यदि क्षत्रिय आदिकही ब्राह्मणोंकी आजी-विका और उनकी सेवा न करेंगे; तो अवश्यही ब्राह्मण भिक्षावृत्ति करेंगे; इसकारण वह क्षत्रियादिके ग्रामके निवासी राजाके दंड देने योग्य हैं; ॥ ६६ ॥

क्षत्रियो हि प्रजा रक्षञ्छस्त्रपाणिः प्रदंडवान् ॥ निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं
धर्मेण पालयेत् ॥ ६७ ॥ न श्रीः कुलक्रमायाता भूषणोल्लिखिताऽपि वा ॥ खड्गे-
नाक्रम्य भुंजीत वीरभोग्यां वसुंधराम् ॥ ६८ ॥ पुण्यं पुण्यं विचिनुयान्मूलच्छेदं
न कारयेत् ॥ मालाकार इवाग्रामे न यथांगारकारकः ॥ ६९ ॥

क्षत्रिय प्रजाकी रक्षाकरे, और हाथ में शस्त्र लेकर शत्रुओंको पराजय करे, और धर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन करे ॥ ६७ ॥ जो लक्ष्मी अपने कुलके क्रमानुसार प्राप्त हुईहै वह लक्ष्मी वीरता न होनेके कारण स्थिर नहीं रहनी, और क्षत्रियोंकी शोभा बिना भूषण धारण किये नहीं होती, परन्तु पृथ्वी शूरीर राजाओंके भोगने योग्य है; इसकारण खड्गसे जीर्णहुई पृथ्वीको भोगै ॥ ६८ ॥ जिसभांति माली उपवनमेंसे फूल फलादिकोंको ग्रहण करता है परन्तु अग्नि लगानेवालेकी समान वृक्षोंकी जड़को नहीं काटना उभी भांति राजाओंको उचित है कि अपना भाग प्रजाओंसे थोडा २ लेकर प्रजाकी रक्षा और सर्वापहारी न हो ॥ ६९ ॥

लाभकर्म तथा रत्नं गद्यां च परिपालनम् ॥

कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहता ॥ ७० ॥

व्याज लेना, रत्नोंका क्रय विक्रय, गौका पालन, गौओंकी रक्षा और उनके बछड़े आदि-
कोंको प्येचकर जीविका करना, खेती और व्यापार यह वैश्यकी वृत्ति है ॥ ७० ॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते ॥

अन्यथा कुरुते किञ्चित्द्रव्येत्तस्य निष्फलम् ॥ ७१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनोंकी सेवासे निर्वाह करना परम धर्म है, इसके अतिरिक्त करनेमें शूद्रका अधिकार नहीं है ॥ ७१ ॥

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ॥

न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥ ७२ ॥

लवण, मधु, तेल, दही, मट्ठा और घृत दुग्धादि सम्पूर्ण रसोंके बेचनेका शूद्रको अधिकार है, ऐसा करनेसे शूद्रको दोष नहीं लगता ॥ ७२ ॥

विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥ कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥ कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ॥ वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ॥ ७४ ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

मदिरा, और मांसको शूद्र न बेचे, अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करे, और अगम्या स्त्रीके साथ गमन न करे, इन सम्पूर्ण कामोंके करनेसे शूद्र तत्काल पतित होता है ॥ ७३ ॥ कपिला गौका दूध पीनेसे, ब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे तथा वेदके अक्षरका विचार करनेसे शूद्र निश्चयही नरकको जाता है ॥ ७४ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ॥ सधर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥ तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पाराशरवचो यथा ॥

इसके उपरान्त कलियुगमें गृहस्थके कर्म, आचार, और यथाशक्ति चारों वर्ण तथा चारों आश्रमोंका मिश्रित धर्म ॥ १ ॥ जिसभांति पाराशरजीने कहा है उसे वर्णन करते हैं ॥

पट्कर्प्रसहितो विप्रः कृषिकर्मः च कारयेत् ॥ २ ॥ क्षुधितं दृषितं श्रातं बलीवर्धं न योजयेत् ॥ हीनांगं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥ ३ ॥ स्थिरांगं नीरुजं तप्तं सुनर्दं षष्ठवर्जितम् ॥ वाहयेद्विवसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥

पट्कर्ममें नियुक्तहुआ ब्राह्मण खेती करता हो ॥ २ ॥ वह क्षुधा तृषासे व्याकुल हुए बैल को हलमें न जोड़े; और जो बैल अंगहीन हो रोगी हो उसे भी हलमें न जोतें नपुंसक बैलकोभी हलमें न जोतें ॥ ३ ॥ जिसके अंग दृढ हों, रोमहीन, तृप्त, पुष्ट और नपुंसकतारहित ऐसे बैलको मध्याह्नतक जोतकर कार्य ले अधिक कार्य न ले इसके पीछे स्नानादिक करे ॥ ४ ॥

जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् ॥ एकद्वित्रिचतुर्विंशान्भोजयेत्स्नातका-
न्दिजः ॥ ५ ॥ स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितः ॥ निर्वपेत्पंचयज्ञांश्च
ऋतुदीक्षां च कारयेत् ॥ ६ ॥

इसके उपरान्त जप, देवपूजा, होम, वेदाध्ययनका अभ्यास करता रहे; और एक दो-तीन वा चार स्नातक ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ५ ॥ जो धान्य अपने जोतेहुए खेतमें उत्पन्न

हुए हों या जिन्हें अपने परिश्रमसे संचय किया हो; उन धान्योंसे पंचयज्ञोंको करे; और विशेष यज्ञादिकोंकोभी करले ॥ ६ ॥

तिला रसान विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समाः ॥

विप्रस्यैवविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ॥ ७ ॥

ब्राह्मणोंको उचितहै कि तिल सम्पूर्ण प्रकारके रस तथा, लोह, लाक्षादिक, फल, पुष्प, नील वा रक्तवर्णके वस्त्रोंको न बेचै ॥ ७ ॥

ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ॥ अष्टागवं धर्महलं पद्मवं वृत्तिलक्ष-
णम् ॥ ८ ॥ चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत् ॥ द्विगवं वाहयेत्पादं म-
ध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥ पद्मवं तु त्रियामाहोष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् ॥ न
याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विजः ॥ १० ॥ दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं
स्वर्गसाधनम् ॥

ब्राह्मणको खेती करनेसे बड़ा पाप होताहै, परन्तु आठ बैलोंवाला हल धर्मपूर्वक उत्तम है; छैः बैलोंका हल मध्यम है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य चार बैलोंको हलमें जोतते हैं वह दयाहीन है, और जो दो बैलोंका हल जोततेहैं वह गोहिंसक है; दो बैलोंवाले हलको पहरभर दिन चढेतक जोतना उचित है; और चार बैलवाले हलको मध्याह्नतक जोतें ॥ ९ ॥ हलमें छैः बैलोंको जोतकर तीसरे पहरतक कार्यले; और आठ बैलवाले हलको सायंकालतक जोतें, इस भांति आचरण करनेसे ब्राह्मण नरकमें नहींजाता ॥ १० ॥ इस ब्राह्मणको दियाहुआ दान प्रशंसनीय और स्वर्गका देनेवाला है ॥

संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥ ११ ॥ अयोमुखेन काष्ठेन तदेका-
हेन लागली ॥ पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ॥ १२ ॥ अ-
दाता कर्षकश्चैव पंचैते समभागिनः ॥

जो पाप वर्षदिनमें मत्स्यघात करनेसे होताहै ॥ ११ ॥ वही पाप एकही दिनमें हलके काष्ठके अग्रभागमें लोहा लगाकर जोतनेसे होताहै । जो बिना अपराध फांसी देताहै, जो मत्स्यघाती मृगादिकोंकी हिंसा करताहै तथा पक्षियोंको मारताहै ॥ १२ ॥ और जो खेती करनेवाला ब्राह्मण दान न करताहो, यह पांचोंजने पापकरनेमें बराबर हैं ॥

कंडनी पेपणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी ॥ १३ ॥ पंच सूना गृहस्थस्य अह-
न्यहनि वर्तते ॥ वैश्वदेवो वलिर्भिक्षा गोभ्रासो दंतकारकः ॥ १४ ॥ गृहस्थः
प्रत्यहं कुर्यात्सूनादोपैर्न लिप्यते ॥

ओखली, चक्री, चूल्हा, तथा जलसे भरेहुए पात्रोंके स्थान गुहारी ॥ १३ ॥ इन पांचों वस्तुओंसे नित्यप्रति हिंसा होतीहै, यदि गृहस्थी, नित्य नेमसे वलिर्वैश्वदेव और देवताका पूजन करता रहै; अतिथियोंको भिक्षा दे, और भोजन करनेसे पहले रसोईमेंके सम्पूर्ण पदार्थोंको थोड़ा २ गौभ्रासभी आदरसहित देताहै, तथा देवपितरोंके निमित्तभी सोलह ग्रासकी हंत-
कार निकालकर सुपात्र ब्राह्मण तथा गौआदिकको दे ॥ १४ ॥ तौ उस गृहस्थको उपरोक्त हिंसाओंके दोष नहीं लगते ॥

वृक्षं लुत्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान् ॥ १५ ॥

कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

खेतीकरनेसे वृक्षोंका छेदन और पृथ्वीका भेदन होताहै; और हलसे कृमिआदिक असंख्यों जीव मरतेहैं ॥ १५ ॥ इन पापोंसे मुक्त होनेके निमित्त खेतीकरनेवालेको खलयज्ञआदि अवश्य करने चाहिये ॥

या न दद्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ॥ १६ ॥

स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥

जो खेतीकरनेवाला मनुष्य अन्नके ढेरमेंसे प्रथम भाग सुपात्र ब्राह्मणको नहीं देता ॥ १६ ॥ वह चोर, पापी, और ब्रह्महत्या करनेवालेकी समान है ॥

राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकर्विशकम् ॥ १७ ॥

विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

राजाको छठा भाग, और देवताओंको इक्कीसवां भाग खेती करनेवालेको देना उचित है ॥ १७ ॥ और ब्राह्मणको तीसवां भाग दे, तौ वह समस्त पापोंसे मुक्त होजाताहै ॥

क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८ ॥

वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ॥

यदि खेतीकरनेवाला क्षत्रिय हो तौ वहभी इसी भांतिकरै, अर्थात् देवता ब्राह्मणादिको भाग दे ॥ १८ ॥ वैश्य और शूद्रभी खेती वाणिज्य और शिल्प कर्मको करें ॥

विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ॥ १९ ॥

भवन्त्यल्पायुषस्ते वै निरयं यात्यसंशयम् ॥

जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनकी सेवाको छोड़कर निपिद्ध कर्म करतेहैं ॥ १९ ॥ उनकी अवस्था अल्प होतीहै, और वह निःसन्देह नरकको जातेहैं ॥

चतुर्णामपि वर्णानामेव धर्मः सनातनः ॥ २० ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

चारों वर्णोंका सनातन धर्म यही है ॥ २० ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भापाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ॥ दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः

प्रेतसूतके ॥ १ ॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः ॥ शूद्रः शुद्ध्यन्ति

भासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥

इसके उपरान्त जन्ममरणके अशौचकी शुद्धि कहते हैं; मृतक आशौच में ब्राह्मण तीन दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ बारहदिन में क्षत्रिय शुद्ध होते हैं; वैश्य पंद्रह दिन से शुद्ध होताहै; और शूद्र एकमास से शुद्ध होता है ॥ २ ॥

उपासने तु विप्राणामंगशुद्धिश्च जायते ॥

ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥ ३ ॥

आशौचकालमें ब्राह्मणोंकी अग्नि उपासनाके समयतक अंगशुद्धी होजातीहै; और जननाशौचमें ब्राह्मणोंके देहका स्पर्श कहाहै, (वह अस्पर्शनीय नहीं होता) ॥ ३ ॥

जातौ विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥

वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो

दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥ जन्मकर्मपरिश्रष्टः पुण्ड्र्योपासनवर्जितः ॥ नामधारक

विप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥ ॥

जननाशौचमें ब्राह्मण दशदिन से शुद्ध होजाताहै, क्षत्रिय बारहदिनसे शुद्धहोताहै; वैश्य पंद्रह दिनसे शुद्ध होता है, और शूद्र एकमहीनेमें शुद्ध होता है ॥ ४ ॥ वेदपाठी ब्राह्मण और जो नित्य अग्निहोत्र करनेवाले हैं वह एकदिनमेंही शुद्ध होजातेहैं, और जो केवल वेदकरकेही पुक्त हैं वह तीन दिनमें शुद्ध होतेहैं, और जो वेद तथा अग्निहोत्र इन दोनोंको नहीं करते वह दशदिनतक अशुद्ध रहतेहैं ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण जन्मसेही नित्य वैमिश्रिक कर्मोंको नहीं करते, और संध्यावंदनभी नहीं करते वह नाममात्रके ब्राह्मण हैं, वह दशदिनतक अशुद्ध रहतेहैं ॥ ६ ॥

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणो नवसूतिका ॥

दशरात्रेण संशुद्ध्येद्भूमिष्ठं च नवोदकम् ॥ ७ ॥

बकरी, गाय, भैंस तथा प्रसूता स्त्री; और भूमिपर स्थित वर्षाका जल इनकी शुद्धि दश दिनमें होतीहै ॥ ७ ॥

एकपिंडास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः ॥ जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सू-

तकं भवेत् ॥ ८ ॥ तावत्तत्सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ॥ दायाद्विच्छेदमा-

प्नोति पंचमो वात्मवंशजः ॥ ९ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पुनिशाः पुंसि पंचमे ॥

पष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥

सपिंड दायाद अर्थात् धेटे, पोते वनादिका भागलेनवाले होतेहैं, चाहे वह पृथक् २ भी रहतेहों परन्तु तौभी इनको जन्ममरणमें अशौच होताहै ॥ ८ ॥ गोत्रमें दशदिनतकही सूतक रहताहै, चौथी पीढीतककी संतान अर्थात् एक प्रपितामहतककी संतान एकगोत्र में कहलातीहै और पांचवीं पीढीका मनुष्य वनादिके भागका अधिकारी नहीं होता; इसकारण उसे दश दिनतक सूतक नहीं होता कारणकि चौथी पीढीके उपरान्त वंश संज्ञा होतीहै ॥ ९ ॥ चौथी पीढीवाला पुरुष दशदिनमें, छैः दिनमें पांचवीं पीढीवाला, छठी पीढीका पुरुष चार दिनमें और सातवीं पीढीवाला मनुष्य तीन दिनमें शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

भृग्वभिमरणे चैव देशांतरमृते तथा ॥

वाले प्रेतं च सैन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥ ११ ॥

जो पुरुष पर्वतसे गिरकर या अग्नि में गिरकर मरजाय या जो परदेश में मरगया हो उसके सूतक में और बालक या संन्यासीकी मृत्यु होजानेपर शीघ्रही शुद्धि होजातीहै ॥ ११ ॥

देशांतरमृतः कश्चित्संगोत्रः श्रूयते यदि ॥

न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥

यदि कोई गोत्रकाही परदेशमें मरजाय तौ तीनदिनका अशौच नहा होता; परन्तु जब मृत्युका समाचार सुनले तब शीघ्र स्नान करनेसे एक दिनरातमेंही शुद्धि होजाती है ॥ १२ ॥

देशांतरगतो विप्रः प्रयासात्कालकारितात् ॥ देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥ कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥ उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ १४ ॥

यदि जो ब्राह्मण परदेशमें जाकर कालवश मृत्युको प्राप्त होगया हो और उसके मृत्युकी तिथि ज्ञात न हो ॥ १३ ॥ तौ कृष्णपक्षकी अष्टमी वा अमावस्या तथा कृष्णपक्षकी एकादशीको उसके निमित्त जलदान पिंडदान और श्राद्ध करना उचित है ॥ १४ ॥

अजातदंता ये बाला ये च गर्भादिनिःमृताः ॥

न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥

जिन बालकोंके दांत न निकले हों और जो गर्भमें से उत्पन्न होतेही मरजाय उनका अग्नि-संस्कार और अशौच तथा जलदान नहीं होता ॥ १५ ॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ॥ यावन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥ आचतुर्थाद्वेत्स्रावः पातः पंचमषष्ठयोः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यादशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥

यदि गर्भस्राव तथा गर्भपात होजाय तौ जितने महीनोंका गर्भ गिरैगा उतनेही दिनोंका सूतक होगा ॥ १६ ॥ चार महीनेका गर्भ गिरजानेपर उसे गर्भस्राव कहतेहैं, और पांच या छठेमहीनेमें गर्भ गिरनेको "गर्भपात" कहतेहैं । इसके पीछे छठे या दशमें महीनेतक प्रसव कहाताहै; प्रसवकालमें दशदिनका सूतक मानना उचित है ॥ १७ ॥

दंतजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ॥ अग्निसंस्कारणं तेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ १८ ॥ आदंताज्जन्मतः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ॥ त्रिरात्रमाव्रता- देशादशरात्रमतः परम् ॥ १९ ॥

दांत जमनेपर या चूडाकर्म होजानेपर यदि बालक मरजाय तौ उसका अग्निसंस्कार करना चाहिये और तीनदिनतक आशौच मानना कर्तव्य है ॥ १८ ॥ और बिना दांतोंके जमेही यदि बालक मरजाय तौ स्नान करनेसेही शीघ्र शुद्धि होजातीहै; चूडाकरणसे प्रथमही बालक मरजाय, तौ एक दिनरातमें शुद्धि होतीहै । यज्ञोपवीत बिनाहुए जिसकी मृत्यु होजाय तौ तीन दिनतक आशौच रहताहै; इसके पीछे यज्ञोपवीत होजानेपर दशदिनमें शुद्धि होतीहै ॥ १९ ॥

ब्र चारी गृहे येषां हृत्यते च हुताशनः ॥ संपर्कं चेन्न कुर्वति न तथा सूतकं भवेत् ॥ २० ॥ संपर्काद्बुध्यते विप्रो जनने मरणे तथा ॥ संपर्काच्च निवृत्तस्य न भेत् नैव सूतकम् ॥ २१ ॥

जिसके घरमें कोई मनुष्य ब्रह्मचारी हो और अग्निहोत्र करताहों, और वह प्रसूता वीसे स्पर्श न करताहो तो उसे अशौच नहीं होता ॥ २० ॥ ब्राह्मणको जन्म मरणमें स्पर्श करनेसे सूतक लगताहै, और जो स्पर्श नहीं करता उसे जन्म वा मरणका सूतक नहीं होता ॥ २१ ॥

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः ॥

राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥

(शिल्प कार्य करनेवाले, कारुक, हलत्राई इत्यादि) वैद्य, दासी, दास, नाई, राजा और वेदपाठी इन सबकी शुद्धि शीघ्र होजातीहै ॥ २२ ॥

सब्रतो मंत्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः ॥

राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ २३ ॥

जो ब्राह्मण पवित्रभावसे व्रत और यज्ञ करताहै, और नित्य अग्निहोत्र करताहै उस ब्राह्मणको, राजाको तथा राजा चाहे उसको सूतक नहीं लगता वह स्नानमात्रसेही शुद्ध होजातेहैं ॥ २३ ॥

उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमंत्रितः ॥

तदैव ऋषिभिर्दृष्टं यथा कालेन शुद्ध्यति ॥ २४ ॥

मृत्यु और दानमें नियुक्त, दुःखार्त होकर किसीसे निमंत्रण दिया हुआ ब्राह्मण समयके अनुसार शुद्ध होताहै ऐसा ऋषियोंका वचन है ॥ २४ ॥

प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात्संकरं यदि ॥

दशाहाच्छुद्ध्यते माता त्ववगाह्य पिता शुचिः ॥ २५ ॥

गृहस्थी ब्राह्मण अपने यहां सन्तान पैदाहोनेमें मेल (संकर) न करे अर्थात् विजातीय स्त्रीको छोड़कर स्वजातीय स्त्रीसेही सन्तान उत्पन्न होनेमें उस उत्पन्नहुए बालककी माता तो दशदिनमें शुद्ध होती है, और उस सन्तानका पिता केवल स्नान करने मात्रहीसे शुद्ध होजाताहै ॥ २५ ॥

सर्वेषां शिवमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ॥

सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ २६ ॥

सूतकका अशौच तो सारे कुटुम्बको होताहै; और जन्म सूतकका अशौच माता, पिता दोनोंको होताहै; इसमें सूतक केवल माताकोही लगताहै, कारण कि पिता तो केवल आचमन करनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २६ ॥

यदि पत्न्यां प्रसूतायां संपर्कं कुरुते द्विजः ॥ सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः

षडंगवित् ॥ २७ ॥ संपर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोस्ति वै द्विजे ॥ तस्मात्

त्सर्वप्रयत्नेन संपर्कं वर्जयेद्बुधः ॥ २८ ॥

प्रसूता स्त्रीका संसर्ग होनेसे ब्राह्मणको अवश्य सूतक लगताहै; चाहे वह ब्राह्मण वेदोंका जाननेवालाभी हो ॥ २७ ॥ ब्राह्मणको संसर्गमात्रसे ही दोष लगताहै; संसर्गके विनाहुए दोष नहीं लगता; इसकारण सम्पूर्ण यत्नसहित विद्वानोंको संसर्गकाही त्यागकरना उचितहै ॥ २८ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंतरा मृतसूतके ॥

पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥

यदि विवाह, उत्सव, और यज्ञादिके समय किसी सपिंडादिकी मृत्यु होनेके कारण सूतक होजाय; तौ प्रथम संकल्प कियाहुआ जो द्रव्य किसीको देनेके निमित्त रक्खाहै वह दूषित नहीं होता ॥ २९ ॥

अंतरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ॥

तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्पूर्वं न गच्छति ॥ ३० ॥

यदि दशादिनके बीचमेंही किसी दूसरे मनुष्यका जन्म वा मृत्यु होजाय तौ ब्राह्मण उसी समयतक अशुद्ध रहताहै कि जिस समयतक पहले मनुष्यके जन्ममृत्युसे अशुद्धि रहतीहै ॥ ३० ॥

ब्राह्मणार्थं विपन्नानां बंदीगोग्रहणे तथा ॥

आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३१ ॥

जिसकी मृत्यु गौब्राह्मणके निमित्त हुईहो अथवा जो संप्राममें मराहो उनको अशौच एक दिनरात्रमें होताहै ॥ ३१ ॥

द्राविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ ॥

परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ३२ ॥

संसारमें यह दो मनुष्यही सूर्य मंडलको भेदकर ब्रह्मलोकको जातेहैं; एक तौ योगी संन्यासी और दूसरा रणभूमिमें सन्मुख होकर जो मराहो ॥ ३२ ॥

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ॥

अक्षयौल्लभते लोकान्यदि क्त्वा न भाषते ॥ ३३ ॥

शत्रुओंसे घेरे जानेपरभी जो शूरवीर नपुंसकताके वचन नहीं कहते; उनकी मृत्यु चाहे जिस स्थानमें हुईहो परन्तु वह निश्चयही अक्षय लोकोंको प्राप्त होतेहैं ॥ ३३ ॥

संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ॥

एष मे मंडलं भित्त्वा परं स्थानं प्रयास्यति ॥ ३४ ॥

सूर्य भगवान् भी संन्यासी ब्राह्मणको देखकर अपने स्थानसे चलायमान होजातेहैं; वह यह विचारतेहैं कि, यह मेरे मण्डलको भेदन करके परमपदको प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥

यस्तु भग्रेषु सैन्येषु विद्रवस्तु समंततः ॥

परित्राता यदा गच्छेत्स च क्रतुफलं लभेत् ॥ ३५ ॥

जो रणमें भागवीहुई सेनाकी रक्षा करताहै, वह यज्ञके फलको पाताहै ॥ ३५ ॥

यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः ॥ देवकन्यास्तु तं वीरं हरन्ति रमयन्ति च ॥ ३६ ॥ देवांगनासहस्राणि शूरमायोधने हतम् ॥ त्वरमाणाः प्रधावन्ति मम भर्ता ममेति च ॥ ३७ ॥ यं यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः स्वर्गेषिणो वात्र

ययैव याति ॥ क्षणेन यात्येव हि तत्र वीराः प्राणान्सुयुद्धेन पारित्यजन्ति ॥ ३८ ॥
 नितेन लभ्यते लक्ष्मीमृतेनापि वरांगना ॥ क्षणध्वंसिनि कायेऽस्मिन्का चिता
 मरणे रणे ॥ ३९ ॥ ललाटदेशे रुधिरं वच्च यस्याहवे तु प्रविशत वक्रमा ॥
 तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥ ४० ॥

जिसकी शरीर रणस्थानमें झूल, मुहर, और लाठी आदिकोंसे क्षत हुआ हो उस वीरको देवकन्या लेजाती है ॥ ३६ ॥ जिसकी संग्राममें मृत्यु होती है उस वीरको देखकर सहस्रों देवांगना "यह मेरा पति हो" ऐसा कहती हुई शीघ्र उसके पासको जाती है ॥ ३७ ॥ स्वर्गकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण अनेक यज्ञ और तपकरके जिस भांति जिस स्थानको प्राप्त होते हैं; उसी प्रकार उस स्थानको रणमें प्राणत्यागन करनेवाले वीर क्षणमात्रमें प्राप्त होजाते हैं ॥ ३८ ॥ लक्ष्मीकी प्राप्ति रणमें विजय प्राप्त होनेसे होती है; और देवांगनाओंकी प्राप्ति मृत्यु होनेसे होती है। फिर यदि यह शरीर युद्धमें प्राप्त होजाय तो इसकी चिन्ताही क्या है कारण कि यह क्षणमें भंग होनेवाला है ॥ ३९ ॥ संग्राममूमिमें जिस वीरपुरुषके मस्तकसे रुधिर बहकर मुखमें चलाजाय, उसके निमित्त वह रुधिरका पान संग्रामरूपी यज्ञमें विधिपूर्वक सोमपान करनेकी समान है इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ॥ पदे पदे यज्ञफलमानुष्यार्णभन्ति ते ॥ ४१ ॥ न तेषामशुभं किंचित्पापं वा शुभकर्मणाम् ॥ जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४२ ॥ असगोत्रमवधुं च प्रेतीभूतं द्विजोत्तमम् ॥ वहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४३ ॥ अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ॥ स्नात्वा सन्नैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अनाथ ब्राह्मणके मरजाने पर उसे अपने कंधेपर लेजाते हैं; उनको एक २ पगपर एक २ यज्ञका फल मिलता है ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य मृतक हुए अनाथ ब्राह्मणको अपने कंधेपर रखकर स्मशानमें लेजाते हैं; उन श्रेष्ठकर्मकरनेवाले मनुष्योंको कुछ पाप या अमंगल नहीं होता, केवल जलमें स्नानकरनेसेही उनकी शुद्धि होजाती है ॥ ४२ ॥ अपने गोत्रसे पृथक् श्रेष्ठ ब्राह्मणके मरजानेपर जो उसे कंधेपर लेजाकर दाह करते हैं उनकी शुद्धि केवल प्राणायामसेही होजाती है ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य अपनी इच्छानुसार मृतक मनुष्यके पीछे जाय, वह अपनी जातिका हो या अन्यजातिका हो तो उसके पीछे जानेसे वस्त्रसहित स्नानकर अग्निका स्पर्श कर घृतके चाखनेसेही उसकी शुद्धि होती है ॥ ४४ ॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योनुगच्छति ॥

एकाहमशुचिर्भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४५ ॥

जो ब्राह्मण अज्ञानतासे क्षत्रियके मृतक शरीरके पीछे जाय, तो उसको एक दिन अशौच रहता है और पंचगव्यके पीनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ४५ ॥

शवं च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो ह्यनुगच्छति ॥

कृत्वा शौचं द्विरात्रं च प्राणायामान्यडाचरेत् ॥ ४६ ॥

वैश्यके पीछे अज्ञानतासे जानेपर तीनरात अशौच रहता है और छैः प्राणायाम करनेसे उसकी शुद्धि होती है ॥ ४६ ॥

मेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचि-
र्भवेत् ॥ ४७ ॥ त्रिरात्रे तु ततः पूर्णं नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥ प्राणायामशतं
कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४८ ॥

जो अज्ञानी ब्राह्मण शूद्रके मृतक देहके पीछे जाताहै वह तीन दिनतक अशुद्ध रहताहै
॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त समुद्रगामिनी नदीके किनारे जाकर सौ प्राणायामकर घृतका भो-
जन करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४८ ॥

विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकांतमुपस्थिताः ॥ द्विजैस्तदानुगंतव्या एष धर्मः स-
नातनः ॥ ४९ ॥ तस्माद्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् ॥ दृष्टे सूर्याव-
लोकेन शुद्धिरेषां पुरातनी ॥ ५० ॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जिससमय श्मशानसे लौटकर शूद्र जलके निकट आवे उस समय ब्राह्मण उनके समीप
जाँय यही सनातन धर्म है ॥ ४९ ॥ इसकारण ब्राह्मण मृतक शूद्रका स्पर्श तथा उसकी दाह
क्रिया न करै । जो मृतक शूद्रका दर्शन करताहै उसकी शुद्धि सूर्य नारायणके दर्शन करनेसे
होतीहै यही पुरातन शुद्धि है ॥ ५० ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अतिमानादतिक्रोधात्त्रेहाद्रा यदि वा भयात् ॥ उद्ध्वंसीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा
विधीयते ॥ १ ॥ पूयशोणितसंपूर्णे त्वंधे तमासि मज्जति ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि
नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातं च कारयेत् ॥ वो-
ढारोऽग्निमदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ॥ ३ ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह
प्रजापतिः ॥

जो स्त्री पुरुष अत्यन्त क्रोध, द्वेष वा लोकभयादिके कारण अपनेको फाँसी खाकर मार-
डालें तो उसकी गति इसप्रकार होतीहै ॥ १ ॥ वह मनुष्य रुधिर और पीवसे मरे हुए
अंघतामिसनामक नरकमें डूबता है और फिर साठसहस्र वर्षतक निवास करताहै ॥ २ ॥
उसका अशौच न माने अग्निसंस्कार न करै, उसको जलदान न करै, वरन उसके लिये
आंसुओंका जलभी न डालै; जो मनुष्य उस मृतकको लेजातेहैं, या जो दाह करतेहैं, या
जो पाश छेदन करतेहैं ॥ ३ ॥ उनकी शुद्धि तप्तकृच्छ्रेके करनेसे होतीहै, यह प्रजापति
ब्रह्मर्षिने कहाहै ॥

गोभिर्हतं तथोद्ध्वं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥ संस्पृशंति तु ये विप्रा वोढा-
रश्चाग्निदाश्च ये ॥ अन्ये ये चारगंतारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥ ५ ॥ तप्तकृच्छ्रेण
शुद्धास्ते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ अनहुत्सहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ ६ ॥

जिसको गौने या ब्राह्मणने माराहै अथवा जो फाँसी खाकर मरा है ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण
मृतकका स्पर्श करतेहैं वा श्मशानमें लेजाते हैं तथा उसका दाह करते हैं, या जो उसके

पीछे जातेहैं वा उसको पाश छेदन करतेहैं ॥ ५ ॥ उनकी शुद्धि तप्तकृच्छ्र व्रत कर सुपात्र ब्राह्मणको भोजन कराकर एक बैल और गौ दक्षिणामें देनेसे होतीहै ॥ ६ ॥

अथहमुष्णं पिबेद्वारि अथहमुष्णं पयः पिबेत् ॥ अथहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ७ ॥ षट्पलं तु पिबेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥ पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८ ॥

अब तप्तकृच्छ्रव्रतकी विधि कहतेहैं; तप्तकृच्छ्र करनेवाला पुरुष तीन दिनतक छैः पल उष्ण जलको पियै; इसके पीछे तीन दिनतक प्रतिदिन चार २ पल उष्ण दुग्ध पान करै; उसके पीछे तीन दिनतक एक पल उष्ण घृत पान करै; और तीन दिनतक वायु भक्षण करै अर्थात् निर्जल व्रत करै यह तप्तकृच्छ्रका विधान है ॥ ७ ॥ ८ ॥

यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः ॥ पंचाहं वा दशाहं वा द्वादशाहम-
श्वापि वा ॥ ९ ॥ मासार्द्धमासमेकं वा मासद्वयमथापि वा ॥ अष्टार्द्धमर्द्धमेकं
वा भवेदूर्ध्वं हि तत्समः ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण बिना इच्छाके पतितादिकोंसे ५ दिन १० दिन १२ दिन ॥ ९ ॥ अथवा १५ दिन तथा एक महीना वा दो महीना, या चार महीने तथा एक वर्ष संसर्ग करताहै; वह ब्राह्मण उसीके समान पतित होजाताहै ॥ १० ॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ॥ तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सात-
पनं चरेत् ॥ ११ ॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पंचमे मतः ॥ कुर्याच्चांद्रायणं
षष्ठे सप्तमे त्वेदवद्वयम् ॥ १२ ॥ शुद्धचर्यमष्टमे चैव षण्मासात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥ १३ ॥

यदि पांच दिनतक पतितोंका संसर्ग कियाहो तो उसकी शुद्धि तीन दिनतक उपवास कर-
नेसे होतीहै; और जो दसदिन संसर्ग करताहै उसकी शुद्धि कृच्छ्रव्रतके करनेसे होतीहै; और
जो बारह दिन संसर्ग करताहै वह तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ११ ॥ पंद्रह दिन संसर्ग
करनेसे दशदिनतक उपवास करै; और एक महीनेतक संसर्ग होनेसे पराकव्रतकरै दोमहीने
संसर्ग होनेपर चांद्रायणव्रत करै; और चार महीने संसर्ग होनेसे दो चांद्रायणव्रत करै ॥ १२ ॥
यदि एक वर्षतक संसर्ग रहाहो तो छैः महीनेतक कृच्छ्रव्रत करै; और जितने पक्षतक संसर्ग
रहाहो उतनीही सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होतीहै; पूर्वोक्त प्रकारसे पड़ला पक्ष ५ दिनका
है ऐतेही १० । १२ । १५ दिन । १ मास । २ मास । ४ मास । और एक वर्षके क्रमसे ८
पक्षका जानना ॥ १३ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति ॥

सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥

जो ऋतुमती होनेके पीछे स्नान करके स्त्री अपने स्वामीके समीप नहीं जाती वह मृत्युके
उपरान्त नरकको जातीहै, और नरक भोगनेके उपरान्त बारंबार विधवा होतीहै ॥ १४ ॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्या सन्निधौ नोपगच्छति ॥

घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

और जो मनुष्य अपनी ऋतुस्नाता स्त्रीके समीप नहीं जाता वह घोर गर्भहिंसाके पापसे युक्त होताहै इसमें किंचित्भी संदेह नहीं ॥ १५ ॥

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यावमन्यते ॥ सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥ १६ ॥ पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥ अपृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् ॥ सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥ बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ॥ गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्कचित् ॥ १९ ॥ यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने ॥ प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ २० ॥

जो स्त्री अपने दरिद्री, रोगी, वा धूर्त पतिके होने पर उसका तिरस्कार करती है वह मृत्युके उपरान्त बारंबार कूकरी वा शूकरीकी योनिको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ जो स्त्री अपने पतिके जीवित रहते हुए निराहार व्रत करतीहै, वह पतिकी आयु हरण करतीहै, और मरनेके उपरान्त नरकको जातीहै ॥ १७ ॥ जो स्त्री बिना पतिकी आज्ञाके व्रतकरतीहै उसका फल राक्षस लेजातेहैं, और वह व्रत निष्फल होजाताहै मनुजीका यह वचन है ॥ १८ ॥ जो स्त्री अपने बंधुबांधवोंसे अथवा अपनी जातिवालोंसे दुराचरण करतीहै, या जो गर्भपात करती है उस स्त्रीसे कभी वार्तालाप न करे ॥ १९ ॥ जो पाप ब्रह्महिंसामें होताहै उससे दुगुना पाप गर्भ गिरानेमें होताहै उसका प्रायश्चित्त नहीं है इस कारण उस स्त्रीका त्यागही करना उचित है ॥ २० ॥

न कार्यमावसथ्येन नाभिहोत्रेण वा पुनः ॥

• स भवेत्कर्मचांडालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः ॥ २१ ॥

जो मनुष्य गृहस्थीके कर्मोंको नहीं करताहै अथवा जो अभिहोत्र नहीं करताहै या जो धर्म से विमुख रहकर कर्म करताहै वह चांडाल होताहै ॥ २१ ॥

ओषवाताहतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति ॥ स क्षेत्री लभते बीजं न बीजीं भागमर्हति ॥ २२ ॥ तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ ॥ पत्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तरि गोलकः ॥ २३ ॥

यदि जल और पवनके वेगसे किसी मनुष्यका बीज दूसरे मनुष्यके खेतमें जाकर उत्पन्न होजाय तो उस बीजके फलका भागी खेतवाला ही होताहै, बीजवालेको भाग नहीं मिलता ॥ २२ ॥ इसी भांति कुंड और गोलक दो पुत्र जो परस्त्रीसे उत्पन्न होते हैं वह स्त्रीकेही पुत्र हैं, वीर्य देनेवालेके नहीं पतिके जीवित रहतेहुए जारसे उत्पन्न हुए पुत्रको कुंड कहतेहैं और पतिकी मृत्यु होनेके पीछे उत्पन्न हुए पुत्रको गोलक कहते हैं ॥ २३ ॥

औरसः क्षेत्रश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ॥

दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥

औरस, क्षेत्रज, तथा दत्त और कृत्रिम यहभी पुत्र हैं; जो पुत्र माता और पिताने किसी को दियाहो वह दत्तक कहलाताहै ॥ २४ ॥

परिवितिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते ॥ सर्वे ते नरकं याति दातृयाजक-
पंचमाः ॥ २५ ॥ द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ॥ कृच्छ्राति-
कृच्छ्रौ दातृस्तु होता चांद्रायणं चरेत् ॥ २६ ॥ कुब्जवामनषट्पु गद्वदपु
जट्टेषु च ॥ जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिविदतः ॥ २७ ॥ पितृव्यपुत्रः
सापलः परनारीसुतस्तथा ॥ दारामिहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥ २८ ॥
ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् ॥ अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य
वचनं यथा ॥ २९ ॥

परिवित्त, और परिवेत्ता, तथा जो कन्या परिवेत्तासे विवाही जाय, कन्यादान करने
वाला और याजक यह पांचों नरकमें जातेहैं, यदि बड़े भाईसे पहले छोटे भाईका विवाह
होगयाहो, तो वह दोनों भाई दो कृच्छ्रव्रत करें तब उनकी शुद्धि होतीहै, और
विवाहिता कन्या एक कृच्छ्रव्रत करै, और कन्यादान करनेवाला कृच्छ्र और अति-
कृच्छ्र व्रतकरै; और होता (इवनका करनेवाला) चांद्रायण व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै
॥ २५ ॥ २६ ॥ जो बड़ा भाई, कुबड़ा, बौना, नपुंसक अथवा तोतला; मुख,
जन्मसे अंधा, बहिरा वा गूंगा हो तो वह छोटा भाई परिवेदनके दोषका भागी नहींहै
॥ २७ ॥ यदि चचेरा व तपेरा भाई अथवा सपत्नीका पुत्र या दूसरी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ
पुत्र बड़ाभाई हो तो सन्तान उत्पत्ति वा अग्निहोत्रके लिये विवाह करनेमें कुछ दोष नहींहै
॥ २८ ॥ बड़े भाईके होतेहुए छोटाभाई अग्निहोत्रको ग्रहण न करै वरन शंखके वचनानुसार
उसकी आज्ञा लेकर अग्निहोत्रके ग्रहणकरनेका अधिकारी है ॥ २९ ॥

नष्टे मृते प्रवजिते क्लीबे च पतिते पतौ ॥

पंचस्वापस्तु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३० ॥

जिस कन्याका वाग्दान होगयाहो और विवाह न हुआहो यदि इसी समयमें उसका पति
मरजाय, या नष्ट होजाय अथवा संयासी या नपुंसक होजाय, तो उस कन्याका विवाह
दूसरे पतिके साथ करदेना चाहिये ॥ ३० ॥

मृते भर्तारि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ॥ सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते-
ब्र चारिणः ॥ ३१ ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि लोमानि मानवे ॥
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥ ३२ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं
बलादुद्धरते विलात् ॥ एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ ३३ ॥

॥ इति पाराशरे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पतिके मरजानेपर जो स्त्री ब्रह्मचर्य नियममें स्थित हो, वह मरनेके उपरान्त ब्रह्मचारीकी
समान स्वर्गमें जातीहै ॥ ३१ ॥ और स्वामीके मरनेके उपरान्त जो स्त्री अपने पतिके साथ
सती होजातीहै वह स्त्री मनुष्यके शरीरमें जितने रोम हैं उतनेही वर्षतक स्वर्गमें निवास
करतीहै; अर्थात् सती स्त्री साढ़े तीन करोड़ वर्षतक स्वर्गमें वास करतीहै ॥ ३२ ॥ सर्पका
पकड़नेवाला जिसभांति सर्पको गड्डेमेंसे बलपूर्वक निकालताहै उसी प्रकार वह स्त्री अपने
पतिके पापोंसे उद्धार कर उसके साथ आनंद करतीहै ॥ ३३ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे मापाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

वृकश्चानश्रृगालादिदष्टो यस्तु द्विजोत्तमः ॥

स्नात्वा जपेत्स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ १ ॥

जिस ब्राह्मणको भेडिये, कुत्ते, तथा गीदड़ आदिने काटाहो वह स्नानकर गायत्रीका जप करै, कारण कि गायत्री परम पवित्र और वेदोंकी माता है ॥ १ ॥

गवां शृंगोदकस्नानान्महानद्योस्तु संगमे ॥ समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः
शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि ॥ सहिरण्योदके
स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपाव-
सेत् ॥ घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥ अव्रतः सव्रतो वापि
शुना दष्टो भवेद्विजः ॥ प्रणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः ॥ ५ ॥ शुना
व्राताऽवलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ॥ अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोप-
चूलनम् ॥ ६ ॥

जिसको श्वानआदिकोंने काटा हो वह गोशृंगसे शुद्ध कियेहुए जलसे स्नान करनेसे तथा पवित्र नदियोंके संगममें स्नान करनेसे अथवा समुद्रका दर्शन करनेसेही शुद्ध होजाताहै ॥ २ ॥ यदि व्रतानुष्ठाथी ब्राह्मणको कुत्तेने काटा हो, तो वह सुवर्णसे शुद्ध किये जलसे स्नान करै और घृतका भोजन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण तीन दिनका व्रत कर रहाहो यदि उसको कुत्ता काटे तो वह घृत और कुशोदकके पानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥ जिस ब्राह्मणको कुत्तेने काटाहो वह व्रती हो या व्रतहीन हो परन्तु ब्राह्मणोंको प्रणाम करकै उनकी दृष्टिमात्रसेही शुद्ध होजाताहै ॥ ५ ॥ जिसको श्वानने चाटाहो या सूंघा हो वा नखोंसे आघात कियाहो तो उसको जलसे धोकर अग्निसे तप्त करै तब उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ६ ॥

ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥ उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः
शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ॥ यां दिशं
व्रजते सोमस्तां दिशं चाऽवलोकयेत् ॥ ८ ॥

जिस ब्राह्मणीको श्वान, शृगाल तथा वृकादिने काटाहो तो वह उदय होते हुए सूर्य चन्द्रमादि ग्रह और नक्षत्रोंका दर्शन करै तब उसकी शुद्धि होजातीहै ॥ ७ ॥ कदाचित् कृष्णमाका दर्शन कृष्णपक्षमें न भी हो तो उस दिन जिस दिशामें चन्द्रमा उदयहो उस दिशाकाही दर्शन करले ॥ ८ ॥

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः ॥

वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥

अष्ट ब्राह्मण जिस ग्राममें न हो और किसी ब्राह्मणको कुत्ता काटे तो वह स्नानकरकै वृषभकी प्रदक्षिणा करनेसे शीघ्रही शुद्ध होजाताहै ॥ ९ ॥

चंडालेन श्वाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ॥ आहिताग्निर्भूतो विप्रो विषेणात्मा
हतो यदि ॥ १० ॥ दहेत्तं वा णं विप्रो गोकामो मंत्रवाजितम् ॥ स्पृष्ट्वा च
च दग्ध्वा च सर्पिडेषु च सर्वदा ॥ ११ ॥ प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्रानामनु-
शासनात् ॥ दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृहीतैः प्रक्षालयेद्भिजः ॥ १२ ॥ स्वेनाग्निना
स्वमंत्रेण पृथगेतत्पुनर्दहेत् ॥

जिस अग्निहोत्री ब्राह्मणको चंडाल वा श्वपचने मारडालाहो या उसे गौ वा आ नि
माराहो; या स्वयं विप खाकर मरगयाहो ॥ १० ॥ तौ उसका सर्पिडी पुरुष जो की
क्रिया करे वह उस ब्राह्मणको विना मन्त्रके लौकिक अग्निमें दाह करे; और उसे स्पर्श करके
तथा उसके विमानको छठाकर उसे दाह करे तौ ॥ ११ ॥ ब्राह्मणोंकी आज्ञासे प्राजापत्य मंत्र
करले और दाह करनेके उपरान्त उसकी अस्थियोंको दूधमें धोवै ॥ १२ ॥ फिर इसके
पीछे उन अस्थियोंको मंत्रपूर्वक अग्निमें पृथक् दाह करे ॥

आहिताग्निर्भिजः कश्चित्प्रवसन्कालचोदितः ॥ १३ ॥ देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याऽ-
ग्निर्वसते गृहे ॥ प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतां मुनिपुंगवाः ॥ १४ ॥ ण्णा-
जिनं समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम् ॥ षट्शतानि शतं चैव पलाशानां च
वृंततः ॥ १५ ॥ चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कंठे तु विन्यसेत् ॥ बाहुभ्यां
दशकं दद्यादंगुलीषु दशैव तु ॥ १६ ॥ शतं तु जघने दद्याद्विशतं तूदरे तथा ॥
दद्यादष्टौ वृषणयोः पंच मेढ्रे तु विन्यसेत् ॥ १७ ॥ एकविं तिमूकभ्यां द्विशतं
जानुजंघयोः ॥ पादांगुष्ठेषु दद्यात्पद् यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् ॥ १८ ॥ शम्या
क्षिप्रे विनिक्षिप्य आरणं मुष्कयोरपि ॥ जुह्वं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभूतं
न्यसेत् ॥ १९ ॥ पृष्ठे तूलूखलं दद्यात्पृष्ठे च मुशलं न्यसेत् ॥ वरसि क्षिप्य दृषदं तंडु-
लान्यतिलान्मुखे ॥ २० ॥ श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः ॥ कणे
नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् ॥ २१ ॥ अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र वि-
न्यसेत् ॥ असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्येकाहुतिं सकृत् ॥ २२ ॥ दद्यात्पुत्रोऽथवा
भ्राताऽप्यन्यो वापि च बांधवः ॥ यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणैः
॥ २३ ॥ ईदृशं तु विधिं कुर्याद्ब्रह्मलोके गतिः स्मृता ॥ दहति ये द्विजास्तं तु ते
याति परमां गतिम् ॥ २४ ॥ अन्यथा कुर्वते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः ॥
अवत्यल्पापुष्पस्ते वै पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ २५ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वरो ! जो अग्निहोत्री ब्राह्मण परदेशमें कालके वशसे ॥ १३ ॥ मरजाय और
उसकी अग्निहोत्रकी अग्नि उसके घरपर स्थित हो, तौ उसका अग्निसंस्कार जिस भांति होना
कर्तव्य है उसे श्रवण करो ॥ १४ ॥ चित्वाकी भूमिपर काली मगडाला विठाकर
ऊपर पुरुषके आकारकी भांति कुशाओंको बिछावै; और उस कुशाके पुरुषके ऊपर सात

दाककी डालियें इस प्रकार स्थापित करै ॥ १५ ॥ चालीस तौ शिरपर रखै, सौ कंठमें, दश मुजाओंमें और दश अंगुलियोंपर रखै ॥ १६ ॥ सौ नाभिपर, दोसौ वदरपर और आठ डालियें दोनों वृषणोंपर, और पांच लिगपर स्थापित करै ॥ १७ ॥ इक्कीस ऊरके ऊपर दो सौ जानु और जंघाओंके ऊपर और छैः पैरोंके अंगूठेके ऊपर रखै; इसके पीछे अग्निहोत्र के पात्रोंको स्थापित करै ॥ १८ ॥ शमीको शिदनके ऊपर, और अंडकोशके ऊपर अरणि-को स्थापित करै, दहिने हाथमें खुवा, बांये हाथमें उपभृत्को स्थापित करै ॥ १९ ॥ पीठके नीचे ऊखल और मूसल रखै, हृदयमें सिल, मुखमें चावल, घृत और तिल ॥ २० ॥ कानमें प्रोक्षणी, आंखेंमें आज्यस्थाली, कान और नेत्र और मुखमें सुवर्णके टुकड़े रखै ॥ २१ ॥ इसप्रकार अग्निहोत्रकी सम्पूर्ण वस्तुएँ स्थापित कर मृतक अग्निहोत्रीका पुत्र वा भ्राता तथा जो कोई उसका बांधव हो वह "असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा" इस मंत्रसे एक आहुति दे इसके उपरान्त दाहसंस्कारकी विधिके अनुसार दाहक्रिया करै ॥ २२ ॥ २३ ॥ इस भांति विधिके अनुसार करनेसे उस मृतकको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होतीहै; और जो ब्राह्मण इस मृतक-का दाह करते हैं वहभी परम गतिको पातेहैं ॥ २४ ॥ और जो अपनी बुद्धिके अनुसार इसके विपरीत करतेहैं वह अल्पायु होतेहैं, और अन्तमें अशुचिनामक नरकको जातेहैं ॥ २५ ॥
इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम् ॥

पराशरेण पूर्वोक्तां मन्वर्थेपि च विस्तृताम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त सम्पूर्ण प्राणियोंकी हिसाका प्रायश्चित्त वर्णन करतेहैं; पराशरजीने जो पहले वर्णन कियाहै, और मनुने भी विस्तारसहित वर्णन कियाहै ॥ १ ॥

कौंचसारसहंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् ॥ जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥ बलाकाटिट्टिभौ वापि शुकपारावतावापि ॥ अटीनवकपाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥ वृककाककपोतानां सारीतित्तिरघातकः ॥ अंत-जले उभे संध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥ गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः ॥ अपकाशी दिनं तिष्ठेन्निकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥ वरगुलीटिट्टिभा-नां च कोकिलाखंजरीटके ॥ लाविकारक्तपक्षेषु शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥ कारंडवचकोराणां पिंगलाकुररस्य च ॥ भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं संपूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ भेरुंडचापभासांश्च पारावतकर्पिजलौ ॥ पाक्षिणां चैव सर्वे-षामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥

कुंज, सारस, हंस, चक्रवा, कुक्कुट और जालपाद, तथा जिन पक्षियोंके चरण जुड़े हैं, जिनके हड्डी हो इनका मारनेवाला एकदिनरातके उपवास करनेसेही शुद्ध होताहै ॥ २ ॥ चगली, टटीरी, तोता तथा पारावत, मछली, और बगला इनका मारनेवाला नक्तभोजन व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ भोडिया, काक, कवूर, मैना, तीतर इनका मारनेवाला

दोनों संध्याओंके समय जलमें स्थित होकर प्राणायामकरनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥ जिस मनुष्यने गिद्ध, वाज, खरगोश तथा उल्लू इन जीवोंकी हिंसा की हो वह सारेदिन कुछ न खाये केवल चायुभक्षण करकेही रहै ॥ ५ ॥ चटका, मोर, कोकिला, ममोला, तथा बटेर और लाल पंखवाले पक्षियोंकी हिंसा करनेवाला मनुष्य नक्तभोजनव्रतसे शुद्ध होताहै ॥ ६ ॥ सुर्गावी, चकोर, चिमगादर, टटीरी, पपीहा इनमें किसीकी भी हिंसा हुई हो तो वह शिवजीका पूजन करनेसेही शुद्धहोजाताहै ॥ ७ ॥ भेरुंड, नीलकंठ, भास, और पारावत तथा कपिजल इन समस्त पक्षियोंमें से जिस किसीने एककीभी हिंसा कीहो उसकी शुद्धि एक दिनरात निराहार व्रत करनेसे होतीहै ॥ ८ ॥

हत्वा मूषकमार्जारसर्पाऽजगरहुंडुभान् ॥ कृसरं भोजयेद्विप्राँल्लोहदंडं च दक्षिणाम् ॥ ९ ॥ शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्लकम् ॥ वृंताकफलभक्षी वाप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १० ॥

चूहा, बिल्ली, सर्प, अजगर तथा जलसर्प इनकी हिंसाकरनेवाला मनुष्य सुपात्र ब्राह्मणको खिचडीका भोजन कराने और लोहदंडकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ९ ॥ शिशुमार, गोह, तथा कच्छप, और शिल्लू साँप इनकी हिंसा करनेवाला मनुष्य और बैंगनके फलको खानेवाला अहोरात्र व्रतकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

वृकजंबुकक्रक्षाणां तरक्षूणां च घातकः ॥ तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ११ ॥ गजस्य च तुरंगस्य महिषोष्टूनिपातने ॥ प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ १२ ॥ कुरंगं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन् ॥ शुद्ध्यते त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥ मृगरोहिद्वराहाणामवेर्वस्तस्य घातकः ॥ अफालकृष्टमश्रीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥ १४ ॥

भेडिया, गादड, रीछ तथा व्याघ्रको मारनेवाला सुपात्र ब्राह्मणको एकप्रस्थ (१ सेर छः तोले) तिल देकर तीन दिनतक निर्जल व्रतकरनेसे शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ हाथी, घोडा, बैसा तथा ऊंटकी हिंसाकरनेवाला अहोरात्र व्रतकर तीनों संध्याओंमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ मृग, वानर, तथा सिंह, चीता और व्याघ्रकी हिंसा करनेवाला मनुष्य तीन दिनतक उपवासकर सुपात्र ब्राह्मणोंको भोजन जिमावै ॥ १३ ॥ मृग, रोहित, सूकर, तथा भेड और बकरीकी हिंसा करनेवाला अहोरात्र उपवास कर विनाहलसे जुतेहुए अन्नको खाकर शुद्ध होता है ॥ १४ ॥

एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम् ॥

अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १५ ॥

इसी भांति चौपाये और वनचर जन्तुओंकी हिंसा करनेवाला गायत्रीका जप करता हुआ अहोरात्र व्रत करै ॥ १५ ॥

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥ प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा ॥ १६ ॥ वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिघातयेत् ॥ सोति-

कृच्छ्रद्वयं कुर्याद्गोविंशदक्षिणां ददेत् ॥ १७ ॥ वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं
द्विजोत्तमम् ॥ हत्वा चांद्रायणं तस्य त्रिंशद्वाश्वैव दक्षिणा ॥ १८ ॥ चंडालं
हतवान्कश्चिद्ब्राह्मणो यदि कंचन ॥ प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां
ददेत् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य, शिल्पी, कारीगर, शूद्र, तथा स्त्रीको मारताहै वह दो प्राजापत्य करके ग्यारह
वैलोंका दान करे तब उसकी शुद्धि होती है ॥ १६ ॥ निरपराधी वैश्य वा क्षत्रियकी हिंसा
करनेवाला मनुष्य दो अतिकृच्छ्रव्रतकर बीस गौ दक्षिणा में देनेसे शुद्ध होता है ॥ १७ ॥
और जो मनुष्य अपने धर्मकी क्रियामें आसक्त हुए वैश्य वा शूद्रको तथा कुकर्मि ब्राह्मणको
मारता है उसकी शुद्धि चांद्रायण व्रतके करने और तीस गौयें दान करनेसे होती है ॥ १८ ॥
जिस ब्राह्मणने चंडालकी हिंसा की हो तौ वह कृच्छ्र और प्राजापत्य व्रतकर दो गौयें दक्षि-
णामें दे तब शुद्ध होता है ॥ १९ ॥

क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण च ॥

चंडालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्राद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २० ॥

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तथा किसी अन्यजातिने यदि चंडालकी हिंसा की हो तो वह अर्द्ध-
कृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ २० ॥

चोरः श्वपाकश्चंडालो विभेणाभिहतो यदि ॥

अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २१ ॥

यदि चोरीकरनेवाले श्वपच या चंडालकी हिंसा ब्राह्मणने की हो तो वह अहोरात्र व्रत
कर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २१ ॥

श्वपाकं चापि चंडालं विप्रः संभाषते यदि ॥ द्विजसंभाषणं कुर्यात्सावित्रीं च
सकृजपेत् ॥ २२ ॥ चंडालैः सह सुप्तं तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥ चंडाल-
कपयं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥ चंडालदर्शने सद्य आदित्यमवलोक-
येत् ॥ चंडालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥ चंडालखात-
वापीषु पीत्वा सलिलमग्रतः ॥ अज्ञानाच्चैकनक्तैः त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति
॥ २५ ॥ चंडालभांडं संपृष्ट्वा पीत्वा कूपगतं जलम् ॥ गोमूत्रयावका-
हारखिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥ चंडालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिवते
द्विजः ॥ तत्क्षणाक्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २७ ॥ यदि न
क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति ॥ प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥
॥ २८ ॥ चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यमनंतरः ॥ तदर्थं तु चरेद्वैश्यः पादं
शूद्रस्य दापयेत् ॥ २९ ॥ भांडस्थमंत्यजानां तु जलं दाधि पयः पिवेत् ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ३० ॥ ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजा-
तीनां तु निष्कृतिः ॥ शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तिः ॥ ३१ ॥

भुंक्तेऽज्ञानाद्विजश्रेष्ठचंडालानं कथंचन ॥ गोमूत्रयावकाहारो दशरोत्रेण
शुद्ध्यति ॥ ३२ ॥ एकैकं ग्रासमग्नीयाद्रोमूत्रे यावकस्य च ॥ दशाहं नियम-
स्यस्य व्रतं तच्च विनिर्दिशत् ॥ ३३ ॥

यदि श्वपच या चांडाल से ब्राह्मण वार्तालाप करे तो वह दूसरे ब्राह्मणसे वार्तालापकर
एकवारही गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य चांडालोंके साथ
एकस्थान वा एकवृक्षकी छायामें शयन करता है तो उसकी शुद्धि एक दिनरात उपव्र करने-
से होती है; और जो चांडालके साथ मार्ग चलता है और स्नानकरता है वह जितने पग
चलाहो उतने गायत्री मंत्रोंका स्मरण करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ३३ ॥ चांडालका दर्शन
करनेवाला सूर्यमगवान्का शीघ्रही दर्शन करले; और चांडालको छूनेवाला मनुष्य बख़ोसहित
स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३४ ॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य यह अज्ञानतासे चांडालका
बनाई हुई बावडी में जल पीले तो सारेदिन निराहार रहकर एकदिनमें शुद्ध होजातेहैं ॥ ३५ ॥
जिस कुएँमें चांडालके पात्रका जल गिरगयाहो उस कुएँके जलको पीनेसे तीनदिन तक गो-
मूत्र पिये और जौका भोजन करनेसे शीघ्र शुद्ध होता है; यदि कोई ब्राह्मण विना जानेहुए
चांडालके बड़ेका जल पीलेता है; यदि उसने जल पीकर उसी समय उगलदिया था वमनकर
दीहै तो वह प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्धि प्राप्त करसकता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ परन्तु उस
जलको न उगलकर वह जल शरीरमेंही पचजाय तो प्राजापत्यव्रतके करनेसे उसकी शुद्धि
नहीं होगी वह सातपनव्रतके करनेसे शुद्ध होगा ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण सातपन व्रत करे, क्षत्रिय
प्राजापत्य व्रत करे, वैश्य अर्द्धप्राजापत्य करे और शूद्र चौथाई प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध हो-
जाताहै ॥ ३९ ॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वा शूद्र यह विनाजानेहुए अन्त्यजोंके पात्रका
जल, दही, दूध यह पीले ॥ ३० ॥ तो ब्रह्मकूर्चके उपवास करनेसे उनकी शुद्धि होती है;
और शूद्र एक दिन उपवास करनेसे और यथाशक्ति ब्राह्मणों को दान देनेसे शुद्ध
होता है ॥ ३१ ॥ जिस ब्राह्मणने अज्ञानतासे चांडालके यहांका अन्न भोजन कियाहो;
उसकी शुद्धि दश दिन गोमूत्र और यवका भोजन करनेसे होतीहै ॥ ३२ ॥ वह प्रतिदिन
दशदिनतक गोमूत्र और यवका एक २ ग्रास भक्षणकर नियमसहित व्रत करे तब दशदिनमें
शुद्ध होता है ॥ ३३ ॥

अविज्ञातस्तु चंडालो यत्र वेदमनि तिष्ठति ॥ विज्ञाते उपसंन्यस्य द्विजाः
कुर्यन्नुग्रहम् ॥ ३४ ॥ मुनिवक्त्रोद्गतान्धर्मान्गार्प्यतो वेदपारगाः ॥ पतंतमुद्ध-
रेयुस्तं धर्मज्ञाः पापसंकरात् ॥ ३५ ॥ दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावे-
कम् ॥ भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥ त्र्यहं भुंजीत दध्ना
च त्र्यहं भुंजीत सर्पिषा ॥ त्र्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥ ३७ ॥
भावदुष्टं न भुंजीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ॥ दधिक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं
घृतस्य तु ॥ ३८ ॥

यदि किसी ब्राह्मणके घर चांडाल विना जाने रहजाय, और इसके उपरान्त वह घरवाले
उसे निकालदे; तो जिसके घर चांडाल रहा था उसपर ब्राह्मण कृपा करे ॥ ३९ ॥ अर्थात्

पारंगत धर्मज्ञ ब्राह्मण मुनियोंके मुखसे कहे हुए धर्मोंको गाकर उस पतित होतेहुए पुरुषका उद्धार करें ॥ ३५ ॥ अब उस पतितहुएका प्रायश्चित्त कहते हैं; वह पुरुष अपने कुटुम्ब और सेवकोंके साथ दही, घृत और दूधके साथ यवान्नका भोजन करे; और गोमूत्रका पान करे, तथा त्रिकालमें स्नान करनेसे शुद्ध होता है ॥ ३६ ॥ तीन दिनतक दहीसे खाय, और तीन दिनतक घृतके साथ भोजन करे, और तीन दिनतक दुग्धके साथ भोजन करे इसी भांति एक २ वस्तुसे एक २ दिन भोजन करे ॥ ३७ ॥ जिस मनुष्यका अंतःकरण दुष्ट हो उसका अन्न, उच्छिष्ट अन्न, और जो कृमिआदिकोंसे दूषित होगयाहो ऐसे अन्नका भोजन न करे; तीनपल दही और दूध और एकपल घृत इसभांति भोजन करे ॥ ३८ ॥

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः कांस्यत योः ॥ जलशौचेन व गां परित्यागेन मृन्मयम् ॥ ३९ ॥ कुसुमगुड पांसलवणं तैलसर्पिणी ॥ द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्वैश्वमनि पावकम् ॥ ४० ॥ एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ त्रिशतं गा वृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४१ ॥ पुनर्लपनखातेन होमजाप्येन शुद्ध्यति ॥ आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥ ४२ ॥

अब जिस स्थानमें वह ने निवास कियाहो उस स्थानकी तथा उस स्थानमें स्थित द्रव्योंकी शुद्धि कहतेहैं । काँसीके पात्र और ताँबेके पात्रोंकी शुद्धि भस्मद्वारा मौँजनेसे ही होजाती है; और मिट्टीके पात्रोंका त्याग करना उचित है; और वस्त्रोंको जलसे धोडालें ॥ ३९ ॥ कुसुम, गुड, कपास, लवण, तेल तथा धान्यादिकोंको घरमेंसे बाहर निकालकर घरमें अग्नि लगादे; अर्थात् घरकी सम्पूर्ण भूमिको अग्निसे तपावै ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त घरको गोमयादिसे शुद्ध करके आप पूर्वोक्त वस्तुसे शुद्ध हो उस घरमें सुपात्र ब्राह्मणोंको भोजन करावै; पीछे तीनसौ गौ और एक बैल उनको दक्षिणामें दे ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त उस घरको लोपपोतकर उसमें हवन करे तब उस पृथ्वीकी शुद्धि होती है; ब्राह्मणोंके आधारेसे भूमिदोष नहीं होता, अर्थात् लिपीहुई पृथ्वीके ऊपर ब्राह्मण बैठजाय तब वह पृथ्वी अशुद्ध नहीं रहती; अन्य जातिके बैठनेसे पृथ्वी अशुद्ध होजाती है, इसकारण उसे फिर शुद्ध करना उचित है ॥ ४२ ॥

चंडालैः सह संपर्क मासं मासार्द्धमेव वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ ४३ ॥

यदि चंडालके साथ एक महीने या एकपक्षतक संसर्ग रहाहो तो पंद्रह दिनतक गोमूत्र पान करे और यवका भोजन करनेसे उसकी शुद्धि होतीहै ॥ ४३ ॥

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी ॥ चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञातानुतिष्ठति ॥ ४४ ॥ ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु ॥ गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥

यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रके घरमें धोवन, चमारी, लुब्धकी, अथवा दासका कार्य करनेवाली अज्ञानतासे रहजाय ॥ ४४ ॥ तब जाननेके उपरान्त जो प्रायश्चित्त चंडा-

लकी स्थिति करनेपर पहले कह आये हैं उससे आधा प्रायश्चित्त करै, सारा प्रायश्चित्त और केवल गृहदाह न करै ॥ ४५ ॥

गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेच्चंडालो यदि कस्यचित् ॥ तमागारादिनिःसार्य मृद्गांडं
तु विसर्जयेत् ॥ ४६ ॥ रसपूर्णं तु मृद्गांडं न त्यजेत्तु कदाचन ॥ गोमयेन
तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद्गृहं तथा ॥ ४७ ॥

यदि किसीके घरमें चांडाल चलाजाय, तो उसे घरसे बाहर निकालकर मिट्टीके पात्रोंको त्याग दे ॥ ४६ ॥ जिन मिट्टीके पात्रोंमें घृतादि रस भराहो उनको न त्यागै । इसके ऊपर गोबरसे घरको लीपडाले ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे ॥ कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं
भवेत् ॥ ४८ ॥ गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा ॥ त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा
च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ४९ ॥ क्षत्रियोपि सुवर्णस्य पंच मासान्प्रदाय तुं ॥
गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥ ५० ॥ शूद्राणां नोपवासः
स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥

(प्रश्न) यदि ब्राह्मणके व्रणमें पीव और रुधिर होकर उसमें कृमी होजाय तो उसका प्रायश्चित्त क्या है ? ॥ ४८ ॥ (उत्तर) जिस ब्राह्मणको व्रण में कृमि हो वह गौंके मूत्र, गोबर, दही, दूध और घृतमें तीन दिनतक स्नान करै और इन्हीं पांचों वस्तुओंको मिलाकर पीनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ४९ ॥ क्षत्रियके व्रणमें यदि कृमी पढगये हों तो सुपात्र ब्राह्मणको पांच मासे सुवर्ण दान दे तथा वैश्य गोदान और उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ ५० ॥ शूद्रको उपवास करनेकी आज्ञा नहीं है उसकी शुद्धि केवल दान देनेसेही होजाती है ॥

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥ ५१ ॥ प्रणम्य शिरसा ग्राह्यम-
ग्निष्टोमफलं हि तत् ॥ जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥ ५२ ॥
सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥

जब ब्राह्मण “अच्छिद्रमस्तु” यह वचन उच्चारण करै ॥ ५१ ॥ तब मस्तक नवाय प्रणाम कर उस वचनको ग्रहण करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है । यदि किसी जपमें छिद्र हो अथवा तपमें छिद्र हो अथवा जो कुछ यज्ञकर्ममें छिद्र हो ॥ ५२ ॥ तथापि यदि ब्राह्मण उसे “अच्छिद्रमस्तु” ऐसा कह दे तो वह सम्पूर्ण कर्म निश्छिद्र होजाते हैं ॥

व्याधिव्यसनानि श्रान्तिं दुर्भिक्षे डामरे तथा ॥ ५३ ॥ उपवासो व्रतं होमो
द्विजसंपादितानि वा ॥ अथ वा ब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वे कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥ ५४ ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति द्विजसंपादितैरिह ॥

यदि व्याधि, व्यसन, थकावट तथा दुर्भिक्ष या किसीका भय हो तो ॥ ५३ ॥ जो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उपवास, व्रत तथा हवन इत्यादिक किये जाय और वह विधिसहित न होसके तो समस्त ब्राह्मण उपवास करनेवालेके ऊपर अनुग्रहकर प्रसन्नहो “अच्छिद्रमस्तु” ऐसा वचन कहें ॥ ५४ ॥ तो उन उपवासादिकोंसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्ति होजाती है;

दुर्वलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बालवृद्धयोः ॥ ५५ ॥ ततोऽन्यथा भवेदोषस्तस्मानुग्रहः स्मृतः ॥ स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्वा दानं ततोऽपि वा ॥ ५६ ॥ कुर्वत्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥

दुर्वल तथा बालक और वृद्धके ऊपर कृपा करनी योग्य है ॥ ५५ ॥ इसके अतिरिक्त अन्यपुरुषके व्रत होम आदिकमें कृपा करनेसे दोष होता है; स्नेह, लोभ, अथवा भय तथा अज्ञानसे ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य अनुग्रह करते हैं वह पाप उन्हींको होता है;

शरीरस्याऽन्ये प्राप्ते वदन्ति नियमं तु ये ॥ ५७ ॥ महत्कार्योपरोधेन नास्वस्थस्य कदाचन ॥ स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति वदन्ति नियमं तु ये ॥ ५८ ॥ ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

अब शरीरके नाश प्राप्त होनेपर जो नियम कहते हैं ॥ ५७ ॥ महत्कार्यके अपराधसे स्वस्थको भी नियम कहते हैं और जो मंदबुद्धि पुरुष स्वस्थों के निमित्त नियमका उपदेश नहीं करते ॥ ५८ ॥ जो मनुष्य उनके प्रायश्चित्तमें विघ्नकरते हैं वह अशुचिनामक नरक में जाते हैं;

स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥ ५९ ॥

वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणकी विना आज्ञालिये स्वयंही प्रायश्चित्तके निमित्त व्रत करते हैं ॥ ५९ ॥ उनका वह व्रत निष्फल होजाता है, उनको व्रत करनेका पुण्य नहीं होता;

स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद्विजः ॥ ६० ॥

कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु अन्यथा भ्रूणहा भवेत् ॥

एक ब्राह्मणभी जिस नियमकरनेके लिये आज्ञा देदे ॥ ६० ॥ तौ वह नियम करना योग्य है; जो इनका वचन उल्लंघनकरता है उसको भ्रूणहिसाका पाप होता है;

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः ॥ ६१ ॥ तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥

॥ ६२ ॥ सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ॥ उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ॥ ६३ ॥ विप्रैः संपादितं यस्य संपूर्णं तस्य तत्फलम् ॥

ब्राह्मण जंगमतीर्थस्वरूप है और साधुभी तीर्थस्वरूप है ॥ ६१ ॥ पापी पुरुष उन ब्राह्मणोंके वचनरूपी जलसे शुद्ध होजाते हैं; उत्तम ब्राह्मणोंके वचनको देवताभी मानते हैं ॥ ६२ ॥ वेदाभ्यासी सद्वाचरयुक्त सर्वदेवमय हैं, उनका वचन निष्फल नहीं होता, ब्राह्मण जिसके उपवास व्रत तथा स्नान तीर्थ अथवा जप तप आदिको ॥ ६३ ॥ यह समाप्त होजाय इसभांति कहें उन उपवासादिके करनेवालेको पूर्णफल प्राप्त होता है;

अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ॥ ६४ ॥

तदंतरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥

कृमि, और मक्खीआदिसे जो अन्न दूषित होजाय या जिसमें बाल पड़जाय तौ ॥ ६४ ॥ जलसे हाथ धो डाले, और अन्नपर किंचितमात्रही भस्म डालदे तब शुद्धि होजाती है;

भुंजानश्चैव यो विप्रः प्रादं हस्तेन संस्पृशेत् ॥ ६५ ॥

स्वमुच्छिष्टमसौ भुंक्ते यो भुंक्ते भुक्तभाजने ॥

जो ब्राह्मण भोजन करतेसमयमें अपने पैरोंको छुए तो ॥ ६५ ॥ और उच्छिष्ट पात्रमें जो भोजन करता है, वह अपने उच्छिष्ट को खाता है;

पादुकास्थो न भुंजीत पर्यंकस्थः स्थितोऽपि वा ॥ ६६ ॥

श्रानचण्डालदृक्चैव भोजनं परिवर्जयेत् ॥

खड़ाऊं पहरकर या पलंगपर बैठकर भोजन न करे ॥ ६६ ॥ कुत्ते और चांडालको देख-
ताहुआ भोजन न करे;

यदन्नं प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥ ६७ ॥

यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः ॥

जो अन्न निषिद्ध है उसकी शुद्धि ॥ ६७ ॥ जिसभांति पराशरजीने कही है उसीभांति मैं तुमसे कहताहूँ;

शृतं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्चानोपचातितम् ॥ ६८ ॥ केनेदं शुद्ध्यते चेति

ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ काकश्चानावलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ॥ ६९ ॥

वेदवेदांगविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥ प्रस्थाद्वा त्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो विप्रस्य

आढकः ॥ ७० ॥ ततो द्रोणाऽऽढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः ॥ काकश्चानावलीढं

तु गवात्रातं खरेण वा ॥ ७१ ॥ स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् ॥

अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत् ॥ ७२ ॥ सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुता-

शनैव तापयेत् ॥ हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ॥ ७३ ॥ विप्राणां

ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ॥

द्रोणकी बराबर अन्न और आढकभर शृत (पकायेहुए) अन्नको यदि काक श्रान दूषित करजाय ॥ ६८ ॥ तौ उस अन्नको ब्राह्मणोंके आगे घर उनसे पूछे कि इसकी शुद्धि किसभांति होगी, फिर जिसभांति वह बतलावें उसीभांति करले और उस अन्नको न फेंके ॥ ६९ ॥ वेद वेदांगके जाननेवाले, और धर्मशास्त्रके अनुकूल जो ब्राह्मण आचरण करते हैं, उनका कथन है कि बत्तीस प्रस्थका एक द्रोण होता है, और बत्तीस प्रस्थका एक आढक कहाताहै ॥ ७० ॥ इसभांति द्रोण और आढक अन्नको श्रुति और स्मृति के ज्ञाताही जानते हैं द्रोण और आढक-भर अन्नको यदि कौंधे और कुत्तेन चाटाहो या गौ या गधेने सूंघ लिया हो ॥ ७१ ॥ तौ उसकी शुद्धि उसमेंसे किंचित् अन्नके निकालनेसेही होजाती है, जितने अन्नमें उनकी राख टपकी है उतने अन्नको निकालकर शेषको ॥ ७२ ॥ सुवर्णके जलसे छिड़ककर अग्निमें तपावे, कारण कि अग्निमें तपाने और सुवर्णका जल छिड़कनेसे ॥ ७३ ॥ तथा ब्राह्मणोंके वेदमंत्र पढ़नेसे वह अन्न खानेके योग्य होजाता है,

स्नेहो वा गोरसो वापि तत्र शुद्धिः कथं भवेत् ॥ ७४ ॥ अल्पं परित्यजेत्तत्र

स्नेहस्योत्पवनेन च ॥ अनलज्वालाया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ॥ ७५ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे पट्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

(प्रश्न) स्नेह (घृतआदि) गोरस अन्न (दुग्ध आदि) वह यदि अशुद्ध होजाय तो इनकी शुद्धि किसभाँति होती है ॥ ७४ ॥ (उत्तर) उनमें से थोड़ासा अलग निकालकर स्नेहादिक को उछालकर शुद्ध करले; और गोरसकी आग्नि में तप्तकरने से शुद्धि होजाती है ॥ ७५ ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां पद्योऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथातो द्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचो यथा ॥

दारवाणां तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥

इसके उपरान्त अब पराशरजीके वचनके अनुसार द्रव्योंकी शुद्धिका विधान कहते हैं, काठके बनायेहुए पात्रोंको छाल डालनेसेही शुद्धि होजाती है ॥ १ ॥

मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च ॥ २ ॥ चरुणां सुक्खुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥ भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

और यज्ञके कर्ममें यज्ञपात्रोंकी केवल हाथके मांजनेसेही शुद्धि होजाती है; तथा चमस और ग्रहके पात्रोंकी शुद्धि जलसे धोनेपर होजाती है ॥ २ ॥ चरु, सुक्क, और सुवेकी शुद्धि केवल गरम जलसेही होजाती है काँसीके पात्र भस्मसे और ताँबेके पात्र खटाईसे पवित्र होजाते हैं ॥ ३ ॥

रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति ॥

नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥ ४ ॥

यदि जो स्त्री नीचजातिके साथ संगति न करे तो वह ऋतुमती होनेपर शुद्ध होजाती है; यदि नदीमें कोई अशुद्ध वस्तु नदीखती हो तो वह प्रवाहसे पवित्र होजाती है ॥ ४ ॥

वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथंचन ॥

उद्धृत्य वै कुम्भशतं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

वापी, कूप, तडागादि यदि यह किसी भाँति अशुद्ध होगये हों, तो उनमेंसे सौ घड़े जल निकालकर उनमें पंचगव्यके डालनेसे उनकी शुद्धि होजाती है ॥ ५ ॥

अष्टवर्षा भवेद्वैरी नववर्षा तु रोहिणी ॥ दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥ प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ॥ मांसि मांसि रजस्तस्याः पिबंति पितरोऽनिशम् ॥ ७ ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥ त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ८ ॥ यस्तां समुद्ब्रहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ असंभाष्यो ह्यपांतेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥ यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥ स भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

आठ वर्षकी कन्याको गौरी और नौ वर्षकी कन्याको रोहिणी कहते हैं, और दशवर्षकी कन्या कन्याही कहाती है उसके उपरान्त रजस्वला होजाती है ॥ ६ ॥ कन्याके वरह

चर्प होनेपर यदि कन्याका दान न कियाजाय तो उस मनुष्यके पितर प्रत्येक महीनेमें उसके रजका पान करतेहैं ॥ ७ ॥ कन्याको (जिसका विवाह न हुआहो) रजस्वलाहुई देखकर माता, पिता, और बड़ाभाई यह तीनों नरकको जाते हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण अज्ञानतासे मोहित होकर उस कन्याके साथ विवाह करताहै वह वृषलीपति कहाता है; उससे संभाषण करना उचित नहीं, और पंक्तिसे बाहर कर देना योग्य है ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण एक-रात्रिभी वृषलीका सेवन करता है तो वह तीनवर्षतक भिक्षात्रका भोजन करताहुआ गायत्री मन्त्रके जपनेसे शुद्ध होता है ॥ १० ॥

अस्तंगते यदा सूर्ये चंडालं पतितं स्त्रियः ॥ सूतिकां स्पृशते चैव कथं शुद्धि-
विधीयते ॥ ११ ॥ जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च ॥ ब्राह्मणानु-
मतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

(प्रश्न) सूर्यके अस्तहोनेपर जो ब्राह्मण पतित मनुष्यका वा सूतिका स्त्रीका स्पर्श करले तो उसकी शुद्धि किसप्रकार होगी ॥ ११ ॥ (उत्तर) ब्राह्मणकी आज्ञासे स्नानके उपरान्त अभि, सुवर्ण और चन्द्रमाका दर्शन करे; यदि उससमय चन्द्रमा उदय न हुआहो तो जिस दिशामें चन्द्रमा हो उसी दिशाका दर्शन करले तब शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणीं तथा ॥ तावत्तिष्ठेत्रिराहारा त्रिरात्रे-
णैव शुद्ध्यति ॥ १३ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रियां तथा ॥ अर्द्ध-
कृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा ॥ १४ ॥ स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणीं
वैश्यजां तथा ॥ पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥ १५ ॥ स्पृष्टा रजस्व-
लान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजां तथा ॥ कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन
शुद्ध्यति ॥ १६ ॥

यदि दो ब्राह्मणी रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श करलें तो प्रत्येक स्त्री तीन २ दिन व्रत करे तब शुद्ध होगी ॥ १३ ॥ यदि ब्राह्मणी और क्षत्रिया यह दोनों रजस्वला होकर परस्परमें स्पर्श करलें तो ब्राह्मणी अर्द्धकृच्छ्र करे और क्षत्रिया चौथाई कृच्छ्र करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १४ ॥ यदि ब्राह्मणी और वैश्यकी स्त्री इन दोनोंके ऋतुमती होनेपर आपसमें एक दूसरीका स्पर्श करले, तो ब्राह्मणी पादोन (पौन) कृच्छ्र व्रत करे, और वैश्यकी स्त्री चौथाई कृच्छ्र व्रत करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ १५ ॥ यदि ब्राह्मणी और शूद्रकी पुत्री रजस्वला होकर परस्परमें एक दूसरेका स्पर्श करले तो ब्राह्मणी पूर्ण कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होतीहै और शूद्रकी पुत्री दान करनेसे ही शुद्ध होजातीहै ॥ १६ ॥

स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेहनि शुद्ध्यति ॥

कर्पाद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपितृयादिकर्म च ॥ १७ ॥

यद्यपि रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होजातीहै परन्तु रजकी निवृत्ति होने-
परही दैवकर्म तथा पितृकर्म करसकती है ॥ १७ ॥

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्त्तते ॥

नाऽशुचिः सा ततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकं मलम् ॥ १८ ॥

जिस स्त्रीको रोगके कारण प्रतिदिन रजःस्राव हो वह स्त्री उस रजसे अशुद्ध नहीं होती, कारण कि वह रज स्वामाविक नहीं है ॥ १८ ॥

साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते ॥

रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥ १९ ॥

जबतक स्त्रीको रजकी प्रवृत्ति रहती है तबतक उसका अधिकार सत्कर्ममें नहीं है; और पतिके साथ सहवास करने योग्य और घरके कामकाज करनेयोग्य भी नहीं होती ॥ १९ ॥

प्रथमेऽहनि चंडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥

तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ २० ॥

स्त्री रजस्वला होनेपर पहले दिन चांडाली और दूसरे दिन ब्रह्महत्यारी तीसरे दिन धोविनि की समान होती है और चौथे दिन स्नान करनेसे शुद्ध होती है ॥ २० ॥

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ॥

स्नात्वास्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्यत्यस आतुरः ॥ २१ ॥

पुरुष अथवा स्त्री रोगी होजाय और उसी अवस्था में उसको स्नानकी आवश्यकता हो तौ निरोग मनुष्य क्रमानुसार दशवार स्नान करके उस रोगीको स्पर्श करले तब वह रोग युक्त पुरुष अथवा स्त्री शुद्ध होजाते हैं ॥ २१ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः ॥

उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२ ॥

यदि किसी उच्छिष्ट शूद्र अथवा श्वानसे कोई पुरुष स्पर्श करके ब्राह्मणको स्पर्श करले तौ वह ब्राह्मण एक रात्रि उपवास कर पीछे पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते ॥

तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २३ ॥

अनुच्छिष्ट शूद्रके स्पर्श होजानेसे ब्राह्मणको स्नानकरना उचित है यदि कोई उच्छिष्ट पुरुष स्पर्शकरले तौ प्राजापत्य व्रत करे ॥ २३ ॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यत्र लिप्यते ॥ सुरामात्रेण संस्पृष्टः शुद्ध्यतेऽग्न्यु-

पलेपनैः ॥ २४ ॥ गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च ॥ शुद्ध्यति

दशभिः क्षारैः शूद्रेच्छिष्टानि यानि च ॥ २५ ॥ गंडूषं पादशौचं च कृत्वा वै

कांस्यभाजने ॥ षण्मासान्भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥ २६ ॥

जिस कांसीके पात्रमें सुराका स्पर्श न हुआहो वह भस्मसे मार्जन करनेपर शुद्ध होजाता है और यदि जिसमें मदिराका स्पर्शभी होगयाहै वह बारंवार अग्नि डालकर मांजने से ही शुद्ध हो जाताहै ॥ २४ ॥ गौके सूवेहुए, काकके चोंचलगाये हुए, कुत्तेके चाटेहुए तथा शूद्रके उच्छिष्ट कांसीके पात्र दशवार खटाई आदि क्षार पदार्थसे रगड़कर धोवै तब उनकी शुद्धि हो जातीहै ॥ २५ ॥ यदि कांसीके पात्रमें किसीने कुत्ता करदियाहो तौ उस पात्रको छैः महीनेतक पृथ्वीमें गाढदे इसके पीछे उखाड कर व्यवहारमें लावै ॥ २६ ॥

आयसेष्वायसानां च सीसस्याग्नौ विशोधनम् ॥ दंतमस्थि तथा शृंगं रीप्यं
सौवर्णभाजनम् ॥ २७ ॥ मणिपात्राणि शंखश्चेत्येतान्प्रक्षालयेज्जलेः ॥

लोहेके पात्रको त्याग देने से और शीशेके पात्रको तपाने से तथा दांत, अस्थि, सींग, चांदी और सुवर्णका पात्र ॥ २७ ॥ मणि, रत्नोंके पात्र और शंखको जल से धो लेने पर उनकी शुद्धि हो जाती है,

पाषाणे तु पुनर्घर्ष एषा शुद्धिरुदाहता ॥ २८ ॥

और पत्थरके पात्रको जल से धोनेके उपरान्त मांज डालना और घर्षण करना भी उचित है तब उसकी शुद्धि होती है ॥ २८ ॥

मृन्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि ॥

मट्टीके पात्रकी शुद्धि जलाने से होती है; और धान्योंको भलीभांति मलकर धोवें तब शुद्ध होजाते हैं,

वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥ २९ ॥

और्णनेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३० ॥

बांस, वल्कल, फटेवस्त्र, रेशमी वस्त्र, सूतीवस्त्र ॥ २९ ॥ ऊनी वस्त्र, नेत्रपटः (सनके वस्त्र) यह धोने से ही शुद्ध होजाते हैं ॥ ३० ॥

मुंजोपस्करशूर्पाणां शणस्य फलचर्मणाम् ॥

तृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकान्मुक्षणं मतम् ॥ ३१ ॥

मूँज, उपस्कर, शूर्प, (छाज) सन, फल, चर्म, तृण, काष्ठ, रस्ती इनकी शुद्धि केवल जल छिड़कने से ही होजाती है ॥ ३१ ॥

तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च ॥

शोषयित्वा र्कतापेन प्रोक्षणाच्छुद्धतामियुः ॥ ३२ ॥

तौलक, तर्किया, शय्या, लालवस्त्र, इन्हें धूपमें सुखाकर जल छिड़कने से इनकी शुद्धि होजाती है ॥ ३२ ॥

मार्जारमक्षिकाकीटपतंगकृमिदुर्गाः ॥

मेध्यामेध्यं स्पृशंतो ये नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३३ ॥

धिडाल, मक्खी, कीट, पतंग, कीड़े, भेंड़क यह सदा शुद्ध अशुद्ध वस्तुओंका स्पर्श करते रहते हैं, इस कारण इनके स्पर्श से कोई वस्तु अपवित्र नहीं होती, यह मनुजीका वचन है ॥ ३३ ॥

महीं स्पृष्ट्वा गतं तोयं याश्चाप्यन्योन्यविमुपः ॥

भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३४ ॥

जो जल पृथ्वीको स्पर्श करके अन्यत्र जलमें मिल गया है; और जो एक से उछलकर दूसरेके ऊपर छीटे गई है, यदि भुक्तोच्छिष्ट होय तो भी अपवित्र नहीं होता, इसी भांति भुक्तोच्छिष्ट वेलभी अशुद्ध नहीं होता, यह मनुजीका मत है ॥ ३४ ॥

तांबूलेक्षुफलान्येव भुक्ते स्नेहानुलेपने ॥

मधुपर्कं च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः ॥ ३५ ॥

तांबूल, इक्षु, फल, तेल, अनुलेपन, मधुपर्क तथा सोमरस इनमें उच्छिष्टता नहीं होती यह मनुजीका कथन है ॥ ३५ ॥

रथ्याकर्हमतोयानि नावः पंथास्तृणानि च ॥

मारुतार्केण शुद्ध्यति पकेष्टकचितानि च ॥ ३६ ॥

मार्गकी कीच, और जल, नाव, मार्ग, तृण, तथा पकी ईंटोंकी चिनाई यह सब वायु और सूर्यके संयोगसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ३६ ॥

अदुष्टा संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥

स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥ ३७ ॥

पवनसे उड़ीहुई धूरि, और चारों ओर फैली हुई निर्मल धारा वृद्ध स्त्री और बालक यह कदापि दूषित नहीं होते ॥ ३७ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥

पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ ३८ ॥

छोंकनेपर, झुकनेपर, दांतोंसे किसी अंगके उच्छिष्ट होजानेपर, मिथ्या बोलने पर या पतितोंके साथ सम्भाषण करनेपर अपने दहिने कानका स्पर्श करै ॥ ३८ ॥

अमिरापश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ॥ एते सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३९ ॥ प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥ विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥

कारण कि, अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य, पवन, यह सब ब्राह्मणोंके दहिने कानमें नि करतेहैं ॥ ३९ ॥ प्रभासआदि तीर्थ और गंगा इत्यादि नदियें यह ब्राह्मणोंके दहिने कानमें स्थिति करतीहैं, यह वचन मनुजीका है ॥ ४० ॥

देशभंगे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥ रक्षदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्म समाचरेत् ॥ ४१ ॥ येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥ उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥ आपत्काले तु निस्तीर्णे शौचाऽऽचारं न चिन्तयेत् ॥ शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ ४३ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

देशका नाश होनेके समय, परदेशमें रोगयुक्त होनेपर और आपत्तियोंके आनेपर पहले सब प्रकारसे अपने शरीरकी रक्षा करनी उचित है इसके उपरान्त धर्माचरण करै ॥ ४१ ॥ अपने ऊपर विपत्ति आनेपर कोमल वा कठोर वा जिसकिसी उपायसे होसकै अपने दीन आत्माका उद्धार करै; इसके पीछे सामर्थ्ययुक्त होकर धर्मका अनुष्ठान करै ॥ ४२ ॥ आपत्तिकाल उपस्थित होनेपर शौचाचारका विचार न करै, पहले अपना उद्धार करै, इसके पीछे स्वस्थ होकर धर्माचरण करै ॥ ४३ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अ मोऽध्यायः ८.

गवां बंधनयोक्त्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः ॥ अकाम तपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥ वेदवेदांगाविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ॥ स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥ २ ॥

(प्रश्न-) यदि कोई गौ खूँटेमें बँधीहुई अकामतः मृत्युको प्राप्त होजाय तौ उस अकाम-कृत पापका प्रायश्चित्त किसभांति होना उचित है? ॥ १ ॥ (उत्तर) जो वेद वेदांगके जान-नेवाले धर्मशास्त्रके पारदर्शी और सर्वदा अपने कर्तव्य कर्ममें निरत ऐसे ब्राह्मणोंसे वह पापी पुरुष अपना पाप निवेदन करदे ॥ २ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ॥ उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशं समर्हति ॥ ३ ॥ सद्यो निःसंशये पापे न भुंजीतानुपस्थितः ॥ भुंजानो बद्धयेत्पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥ ४ ॥ संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ॥ प्रमादस्तु न कर्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥ कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं विवर्द्धते ॥ स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ६ ॥ तेषां पाप-कृता वैद्या हंताश्चैव पाप्मनाम् ॥ व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमंतो रुजा-पहाः ॥ ७ ॥

उस पापीको किस अवस्थासे उन ब्राह्मणोंके पास जाना होगा सो कहतेहैं, न्यायसार्गसे अपने पास आयेहुए उस पापीको ब्राह्मण व्रतकरनेकी आज्ञा दें ॥ ३ ॥ यदि निश्चयही पाप कियाहै, यह विदित होजाय तौ उस पापको धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके अर्थ निवेदन किये बिना भोजन न करै; यदि बिना परिपदके निकट गये भोजन करले तौ पापकी वृद्धि होतीहै ॥ ४ ॥ यदि पाप करनेमें सन्देह होजाय तौ उसका निश्चय बिना हुए भोजन न करै; और जबतक उसका निश्चय न होजाय तबतक असावधानभी रहना उचित नहीं ॥ ५ ॥ कियेहुए पापको कभी न छिपावै, कारण कि छिपानेसे पापकी वृद्धि होतीहै, पाप थोडा हो चाहै बहुत हो उसे धर्मके जाननेवाले ब्राह्मणोंके आगे निवेदन करदे ॥ ६ ॥ कारण कि उसके पापोंको जानकर जिसभांति बुद्धिमान् वैद्य रोगीकी पीडाको दूरकरताहै, उसी प्रकार ब्राह्मण उसके पापको नष्ट कर देनेका उपाय कहदेंगे ॥ ७ ॥

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने क्षीमान्सत्यपरायणः ॥ मुहुरार्जवसंपन्नः शुद्धिं गच्छेत् मानवः ॥ ८ ॥ सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ॥ क्षत्रियो वाय वैश्यो वा ततः पर्षदमाव्रजेत् ॥ ९ ॥ उपस्थाय ततः शीघ्रमार्तिमान्धरणिं व्रजेत् ॥ गात्रैश्च शिरसा चैव न च किंचिदुदाहरेत् ॥ १० ॥

(इसभांति परिपदकी आज्ञानुसार) पापका प्रायश्चित्त करनेपर लज्जाशील, सत्यपरायण, सरलस्वभाव, पुरुष शीघ्रही शुद्धि प्राप्त करतेहैं ॥ ८ ॥ चाहै क्षत्रिय हो चाहै वैश्य हो पापका संसर्ग होतेही मौन धारणकर वस्त्रोंसहित स्नानकरै, और गीले वस्त्रोंको पहरेहुएही सावधानीसे परिपदके निकट जाय ॥ ९ ॥ पापी इसभांति शीघ्रताके साथ परिपदके समीप जाकर विनयपूर्वक साष्टांग प्रणामकरै, और कुछ न बोलै ॥ १० ॥

सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः संध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ॥ अज्ञानात्कृषिकर्तारो ब्राह्मणा
नामधारकाः ॥ ११ ॥ अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥ सहस्रशः
समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १२ ॥ यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममत-
द्विदः ॥ तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृनधिगच्छति ॥ १३ ॥ अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि
प्रायश्चित्तं ददाति यः ॥ प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः कित्पिषं पर्षदि व्रजेत् ॥ १४ ॥

जो ब्राह्मण वेद और गायत्रीको नहीं जानते, और सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र नहीं
करतेहैं; सर्वदा स्वेतीके कार्यमेंही लगे रहतेहैं वह केवल नाममात्रके ब्राह्मण हैं ॥ ११ ॥ ऐसे
व्रतमन्त्रसे रहित और जातिके नाममात्रसे जीविका करनेवाले इकट्ठेहुए सहस्रों ब्राह्मणोंको
परिषद् नहीं कहा जासकता ॥ १२ ॥ अज्ञानरूपी अन्धकारसे ढके मूढ धर्मशास्त्रको न
जाननेवाले मूर्ख ब्राह्मण यदि प्रायश्चित्तकी व्यवस्था करदें तो वह पापी पापसे छूट ती
जाताहै, परन्तु वह पाप सौगुना होकर उन व्यवस्था देनेवालोंके शरीरमें प्रवेश करताहै
॥ १३ ॥ जो विना धर्मशास्त्रके जानेहुए प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देतेहैं पापी पुरुष तो उस
व्यवस्थाके अनुसार शुद्ध होजाताहै, परन्तु वह पाप व्यवस्था देनेवाले परिषद्के शरीरमें
प्रवेश करताहै ॥ १४ ॥

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ॥ स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु
सहस्रशः ॥ १५ ॥ प्रमाणमार्गं मार्गतो येऽधर्मं प्रवदन्ति वै ॥ तेषामु-
द्विजते पापं सद्रूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥ यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुता-
केण शुद्ध्यति ॥ एवं परिषदादेशान्नाशयेत्तत्र दुष्कृतम् ॥ १७ ॥ नैव
गच्छति कर्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ॥ मारुतार्कादिसंयोगात्पापं नश्यति
तोयवत् ॥ १८ ॥ चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवंतोऽग्निहोत्रिणः ॥ ब्राह्मणानां
समर्था ये परिषत्सा विधीयते ॥ १९ ॥ अनाहितामयो येन्ये वेदवेदांगपा-
रगाः ॥ पंच त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २० ॥ मुनीनामा-
त्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ॥ वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भ-
वेत् ॥ २१ ॥

चारजने या तीन जने वेदके जाननेवाले ब्राह्मण जो व्यवस्था देतेहैं उसीको यथार्थ धर्म
जानै, अन्य सहस्रों मनुष्योंका वचनभी धर्मस्वरूप नहीं होसकता ॥ १५ ॥ जो प्रमाणके
मार्गको ढूँढकर अर्थात् सम्पूर्ण वचनोंका प्रमाण संग्रहकर धर्मशास्त्रकी व्यवस्था देतेहैं उनसे
पाप भयभीत होताहै, वास्तवमें वही धर्मके कहनेवाले हैं ॥ १६ ॥ जिसभांति पत्थरके ऊपर
रक्खा हुआ जल वायु और सूर्यके उच्चापसे सूखजाताहै, उसी भांति परिषदकी आज्ञासे
सम्पूर्ण पापोंका नाश होजाताहै ॥ १७ ॥ और न वह पापकर्ताके शरीरमें रहतेहैं और
परिषद्के शरीरमेंभी प्रवेश नहीं करते वायु और सूर्यके संयोगसे सूखेहुए जलकी समान नष्ट
हो जातेहैं ॥ १८ ॥ वेदवेत्ता अग्निहोत्री ब्राह्मण तीन अथवा चार होनेसे परिषद् होतीहै ॥ १९ ॥

जो ब्राह्मण वेद वेदांगके पारगामी धर्मज्ञ हैं और अभिहोत्र करनेवाले नहीं हैं, तौ इन पांच वा सीन पुरुषोंके समूहकोभी परिपद् कहाई ॥ २० ॥ ध्यानधारणादि द्वारा आत्मतत्त्वको जानने वाले मुनि, यज्ञ करनेवाले तथा स्नातक इनमेंका एक पुरुषभी परिपद् हो सकताहै ॥ २१ ॥

पंच पूर्व मया प्रोक्तास्तेषां चासंभवे त्रयः ॥

स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिपत्सा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥

ऊपर कह आयेहैं कि पांच वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी एकत्रित होनेपर परिपद् होतीहै परन्तु यदि ऐसे पांच ब्राह्मण न मिलें तौ शास्त्रोक्त निज वृत्तिमें संतुष्ट उनके मिलनेपर परिपद् होसकतीहै ॥ २२ ॥

अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ॥ परिपत्त्वं न तेष्वस्ति सहस्र-
गुणितेष्वपि ॥ २३ ॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥ ब्रा-
ह्मण-स्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥ ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा

कूपस्तु निर्जलः ॥ यथा हुतमनमौ च अमंत्रो ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥

यथा पटोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरुपराऽफला ॥ यथा चाज्ञोऽफलं दानं तथा
विप्रोऽनृचोऽफलः ॥ २६ ॥ चित्रकर्म यथानैकं रंगैरुन्मील्यते शनैः ॥ ब्राह्म-
ण्यमपि तद्विद्वि संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः ॥ २७ ॥

इसके अतिरिक्त जो केवल नाममात्रके ब्राह्मण हैं वह सहस्रों एकत्रित होनेपरभी परिपद् नहीं होसकती ॥ २३ ॥ जिसभांति काठका हाथी, जैसा चर्म का मृग, वेदको न जानने-
वाला ब्राह्मणभी उसीप्रकार है, यह तीनों केवल नाममात्रके धारण करनेवाले हैं ॥ २४ ॥
जिसभांति शून्य ग्राम, निर्जल कूप, और अभिहीन भस्मके ढेरमें हवन करना निष्फल है उसी
भांति विनामंत्रोंका जाननेवाला ब्राह्मणभी निष्फल है ॥ २५ ॥ जिसभांति नपुंसकका स्त्रीके
साथ संभोग निष्फल होजाताहै, जिसभांति ऊपर भूमि निष्फल है, जिसभांति मूर्खको दान
देना निष्फल है उसीभांति वेद मंत्रोंको न जाननेवाला ब्राह्मण निपिद्ध है ॥ २६ ॥ चित्र-
कारीके काम में नानाभांतिके रंग शनैः २ भरे जातेहैं उसीभांति अनेक संस्कारोंसे मन्त्रोंके
द्वारा ब्राह्मणत्व होताहै ॥ २७ ॥

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ॥

ते द्विजाः पापकर्माणः सभेता नरकं ययुः ॥ २८ ॥

नाममात्रके ब्राह्मण प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देतेहैं वह पापी हैं और उनको नरककी प्राप्ति
होतीहै ॥ २८ ॥

ये पठन्ति द्विजा वेदं पंचयज्ञरताश्च ये ॥ त्रैलोक्यं तारयंत्येव पंचेन्द्रियरता
अपि ॥ २९ ॥ संप्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः ॥ तथा च वेद-
विद्विप्रः सर्वभक्षोऽपि दैवतम् ॥ ३० ॥ अमेध्यानि तु सर्वाणि प्रक्षिप्यन्ते
यथोदके ॥ तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षिपेच्च द्विजानले ॥ ३१ ॥

जो ब्राह्मण वेदको पढतेहैं, और जो नित्य पंचयज्ञ करनेमें तत्पर रहतेहैं ये यद्यपि पंच-
निह्यपरायण हों तथापि त्रिलोकीको धारण करतेहैं ॥ २९ ॥ श्मशानमें प्रदीप्त हुई अग्नि

मंत्रोंसे संस्कार होनेके कारण जिसभांति सर्वभोक्ता है उसीभांति ब्रह्मज्ञानको प्राप्तकर संस्कारको प्राप्तहुआ ब्राह्मण सर्वभुक् और देवरूप है ॥ ३० ॥ जिसभांति सम्पूर्ण अपवित्र वस्तुओंको जलमें डालदिया जाताहै, उसीप्रकार सम्पूर्ण पापोंको निर्मल ब्राह्मणोंके ऊपर डाल देना उचित है ॥ ३१ ॥

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ॥

गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥ ३२ ॥

गायत्रीहीन ब्राह्मण शूद्रसेभी अधिक अपवित्र है; और जो ब्राह्मण गायत्रीनिष्ठ और ब्रह्मतत्त्वको जानतेहैं वह श्रेष्ठ और पूजनीय हैं ॥ ३२ ॥

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः ॥

कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवर्ती खरीम् ॥ ३३ ॥

दुःशील होनेपरभी ब्राह्मण पूजनीय हैं; और शूद्र जितेन्द्रिय होनेपरभी पूजनीय नहीं होसकता, ऐसा कौन मनुष्य है जो देख भाल करभी दूषित अंग गोकुल त्यागकर शीलवर्ती गधेयाको दुहैगा ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥ ३३ ॥

धर्मशास्त्रधारुढा वेदस्त्रुधरा द्विजाः ॥

क्रीडार्थमपि यद्व्यूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ ३४ ॥

जो ब्राह्मण धर्म शास्त्ररूपी रथपर चढ़कर वेदरूपी खड्गको धारण करतेहैं वह यदि हँसीसेभी जोकुछ कहें उसकोही परम धर्म जानना ॥ ३४ ॥

चातुर्वेद्योऽविकल्पी च अंगविद्वर्मपाठकः ॥

त्रयश्चाश्रमिणो मुख्यः पर्वदैषा दशावरा ॥ ३५ ॥

चारों वेदोंका जाननेवाला, निश्चिन्त ज्ञानयुक्त वेदके अंगोंका पाठदर्शी और धर्मशास्त्र पढानेवाला इकलाही श्रेष्ठ परिपक्व होसकताहै, प्रवान आश्रमीके दश हंनिपरभी वह मध्यमही परिपक्व होती है ॥ ३५ ॥

राज्ञश्चानुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ स्वयमेव न कर्तव्यं कर्तव्या

स्वल्पनिष्कृतिः ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणास्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति ॥

तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥

इसकारण ब्राह्मण राजाकी आज्ञानुसारही प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दे; अपने आपसे कदापि न दे ॥ ३६ ॥ यदि ब्राह्मणकी विना सम्मतिके लिये राजा कोई व्यवस्था देदे तो उस पापका पाप सौगुना बढ़कर राजाके शरीरमें प्रवेश करजाताहै ॥ ३७ ॥

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः ॥ आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद्द्वै

वेदमातरम् ॥ ३८ ॥ सशिवं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ गवां मध्ये

वसेद्रात्रौ दिवा गाश्चाप्यनुव्रजेत् ॥ ३९ ॥ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते

वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तिः ॥ ४० ॥

आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेथवा खले ॥ भक्षयन्ती न कथयेत्पिबन्ती

चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥ पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत् ॥ पतितार्ता
पेकलमां वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥

यदि ब्राह्मण देवमंदिरके सन्मुख बैठकर व्यवस्था दे दे तो वेदमाता गायत्रीका जप करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ प्रायश्चित्त करनेके समयमें पहले शिखासहित शिरका मुंडन करावै, त्रिकालमें स्नान करे और दिनमें गौके पीछे २ फीरै और रात्रिके समय गोशालामें शयन करै ॥ ३९ ॥ चाहै गरम पवन चलै; चाहै ठंडी हवा चलै चाहै आंधी चलतीहो, चाहै वर्षा होतीहो परन्तु अपनी रक्षाकी ओर ध्यान न देकर अपनी शक्तिके अनुसार गौकी रक्षा करना अवश्य कर्तव्य है ॥ ४० ॥ अपने या दूसरेके घरमें अथवा खेतमें वा खलमें यदि गौ कुछ धान्यादिक खातीहो तो कुछ न बोलै, और जो बछड़ा गौका दूध पीताहो तो भी कुछ न कहै ॥ ४१ ॥ गौके जलपान करनेपर पीछे आप जलपिये, गौके शयन करनेपर पीछे आप शयन करै, और यदि गौ किसी भांति गिरपडै या कीचड़में फँसजाय तो; यथा-शक्ति उसको उठावै ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥

मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मण और गौके निमित्त अपने प्राण त्याग करताहै वह और ब्राह्मण और गौकी रक्षा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाताहै ॥ ४३ ॥

गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥ प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं विभजेत्
चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥ एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः ॥ अयाचिता-
श्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥ ४५ ॥ दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिनं नक्तभोजनः ॥
दिनद्वयमयाची स्याद्विदिनं मारुताशनः ॥ ४६ ॥ त्रिदिनं चैकभक्ताशी त्रिदिनं
नक्तभोजनः ॥ दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥ ४७ ॥ चतुरहं
त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः ॥ चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः
॥ ४८ ॥ प्रायश्चित्ते ततस्तीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ विप्राणां दक्षिणां दद्यात्प-
वित्राणि जपेद्विजः ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु गोघ्नः शुद्धयेन्न संशयः ॥ ५० ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गोवधके प्रायश्चित्तके निमित्त प्राजापत्यके व्रतकी व्यवस्थाकरै; और प्राजापत्यनामक कृच्छ्रव्रतको चारभागोंमें विभक्त करै ॥ ४४ ॥ एक दिन एक रात्रिमें एकभुक्त भोजन करै; अयाचित पदार्थका भोजन करै, और एक दिन केवल वायुकाही सेवन करै ॥ ४५ ॥ दूसरे प्राजापत्यकी यह विधि है; दो दिन एकभुक्त रहै; दो दिनरात्रिमें भोजन करै, दो दिन अयाचित वस्तुका भोजन करै, और दो दिन केवल वायुही भक्षण करै ॥ ४६ ॥ तीसरे प्रकारके प्राजापत्यका नियम यह है कि तीन दिन एकभुक्त रहै, तीन दिन रात्रिमें भोजन करै; तीन दिन अयाचित पदार्थका भोजन करै; और तीन दिनतक केवल वायुही सेवन करै ॥ ४७ ॥ चौथे प्रकारका प्राजापत्य यह है कि चार दिनतक रात्रिमें भोजन करै और चार दिनतक अयाचित वस्तुका भोजन करता रहै, और चार दिन केवल पवनही सेवन करै

रहै ॥ ४८ ॥ इस भांति चार प्रकारके प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान पूर्ण होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावै; और दक्षिणा देकर ब्राह्मण पवित्र मंत्रोंका जप करता रहै ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसेही गो बधकरनेवाला शुद्ध होजायगा इसमें किंचित्सी संदेह नहीं है ॥ ५० ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥

तद्वत् तु न तं विद्यात्कामाकामकृतं तथा ॥ १ ॥

भलीभांति रक्षा करनेकी इच्छासे गौको बांधने या रोकनेमें यदि गोहत्या होजाय तौ इसमें दोष नहीं है और उस अवस्थामें वह कामकृत वा अकामकृत गोबध नहीं कहा जासकता ॥ १ ॥

दंडादूर्ध्वं यदान्येन प्रहाराद्यदि पातयेत् ॥

प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोबधे चरेत् ॥ २ ॥

इस दंडके अतिरिक्त जो पुरुष अन्य दंडसे गौको मारताहै उसको प्रायश्चित्त करना उचित है और यदि इस प्रहारसे गौकी मृत्यु होजाय तौ दुगुना प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ २ ॥

रोधबंधनयोक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम् ॥ एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने

चरेत् ॥ ३ ॥ योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥ गोघाटे वा गृहे वापि

दुर्गोष्प्यसमस्थले ॥ ४ ॥ नदीष्वथ समुद्रेषु त्वन्येषु च नदीमुखे ॥ दग्धदेशे

मृता गावःस्तंभनाद्रोध उच्यते ॥ ५ ॥ योक्त्रदामकरारैश्च कंठाभरणभूषणैः ॥

गृहे चापि वने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥ ६ ॥ तदेव बंधनं विद्यात्कामा-

कामकृतं च यत् ॥ हले वा शकटे पंक्तौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः ॥ ७ ॥ गोपति-

मृत्युमाप्नोति योक्तो भवति तद्वधः ॥ मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः

॥ ८ ॥ कामाकामकृतक्रोधो दंडैर्हन्यादथोपलैः ॥ प्रहता वा मृता वापि

तद्वि हेतुर्निपातने ॥ ९ ॥

रोध, बन्धन, जोत और घात इन चारप्रकारसे गौको पीडा देनेपर प्रायश्चित्त करै, रोकने-पर एकपाद प्रायश्चित्त करै, बांधनेपर दो पाद प्रायश्चित्त करै, जोतनेमें तीव्रपाद प्रायश्चित्त करै, और प्रहारसे प्राण नाश करनेपर समस्त चतुष्पाद प्रायश्चित्त करै । यदि गौकी मृत्यु गौओंके चरानेके स्थानमें, गृहमें, धरमें, दुर्गम स्थानमें, नदीमें, गडहमें, गुहामुखमें और जलतेहुए स्थानमें स्थित गौके रोकनेसे गोबध होजाय, तौ उसको रोध कहतेहैं ॥३॥४॥५॥ यदि रस्सी, जोतकी रस्सी आर और घंटे आदि कंठके भूषण बांधनेसे गौ या बैलकी मृत्यु घरमें अथवा वनमें होजाय तौ ॥ ६ ॥ उसे बंधन कहतेहैं, यह बंधन दो भांतिका होताहै, एकतौ कामकृत दूसरा अकामकृत हलमें चलानेसे वा गाडीमें जोतनेसे अथवा पंक्तिमें, पीठमें मनुष्योंद्वारा पीडाको प्राप्तहोकर ॥७॥ यदि बैल मरजाय तो उस बधको योक्त कहतेहैं- यदि मत्त, प्रमत्त,

उन्मत्त, चेतन, वा अचेतन होकर कामकृत या अकामकत क्रोधित हो दंड या पत्थरसे गौके ऊपर प्रहार करताहै, उससे अत्यन्त पीडित होनेके कारण यदि गौकी मृत्यु होजाय तो उसको निपातन वा प्रहारके द्वारा गोवध कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः ॥

आर्द्रस्तु सपलाशश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

अंगूठेकी समान मोटी एकहाथकी लम्बी और गीली तथा पत्तोंसे युक्त वृक्षकी शाखाको दंड कहतेहैं ॥ १० ॥

मूर्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतः स तु ॥ उत्थितस्तु यदा गच्छेत्पंच सप्त दशाथ वा ॥ ११ ॥ ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥ पूर्वव्याधु-
पसृष्टश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १२ ॥

दंडके प्रहारसे पीडित होकर यदि गौ मूर्छित होजाय या गिरपड़े और वह गौ फिर मूर्छासे जागकर पांच या सात पग चलसके ॥ ११ ॥ अथवा उठकर एकग्रास खा ले वा जल पीले वा प्रथम उसे कोई रोग हो तो उसका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ॥ १२ ॥

पिंडस्थे पादमेकं तु द्वौ पादौ गर्भसंमिते ॥ पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचे-
तनम् ॥ १३ ॥ पादौऽगरोमवपनं द्विपादे इमश्रुणोऽपि च ॥ त्रिपादे तु शिखा-
वर्जं सशिखं तु निपातने ॥ १४ ॥ पादे वस्त्रपुगं चैव द्विपादे कांस्यभाजनम् ॥
त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥ १५ ॥ निष्पन्नसर्वगात्रेषु दृश्यते
वा सचेतनः ॥ अंगप्रत्यंगसंपूर्णो द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ १६ ॥

पिंडकी समान गौका गर्भ नष्ट करनेपर एकपाद, गर्भमें स्थित वछडे आदिके यदि अंग प्रत्यंग घन गये हों उसके नष्ट करनेपर दोपाद, और चैतन्यहीन पूरे गर्भके वधेको नष्ट कर-
नेपर मनुष्यको तीनपाद व्रतका अनुष्ठान करनां कर्तव्यहै ॥ १३ ॥ एकपादके व्रतमें तो शरी-
रके रोम दूर करदे, दोपादके प्रायश्चित्तमें डाढी मूँछतकको मुडादे और पादोन प्रायश्चित्तमें शिखाके अतिरिक्त समस्त मुंडन करवै, और निपातन अर्थात् चतुष्पादके प्रायश्चित्तमें शिखा सहित सम्पूर्ण मुंडन कराना चाहिये ॥ १४ ॥ वस्त्रका जोडा एकपादके प्रायश्चित्तमें और कांसीका पात्र दो पादके प्रायश्चित्तमें, एक वैल पादोन प्रायश्चित्तमें और सम्पूर्ण चतुष्पद प्रायश्चित्तमें दो गौओंको दे ॥ १५ ॥ जो मनुष्य अंग प्रत्यंगयुक्त गौके सम्पूर्ण चेतनयुक्त गर्भ-
को गिराताहै वह मनुष्य गोवधसे दूना प्रायश्चित्त करे ॥ १६ ॥

पाषाणेनैव दंडेन गावो येनाभिघातिताः ॥ शृंगभंगे चरेत्पादं द्वौ पादौ नेत्रघा-
तने ॥ १७ ॥ लांगूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभंजने ॥ त्रिपादं चैव कर्णे
तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ १८ ॥ शृंगभंगेऽस्थिभंगे च कटिभंगे तथैव च ॥
यदि जीवति षण्मासान्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १९ ॥

जिस मनुष्यने पत्थरसे या दंडके प्रहारसे गौके सींगोंको तोड़ दियाहै वह एकपाद-
व्रतकरै और नेत्रको फोड़नेवाला दोपाद व्रत करे ॥ १७ ॥ उसी प्रहारसे पूंछ तोड़नेवाला

एकपाद कृच्छ्र व्रत करै, हड्डी तोड़नेवाला दोपाद कृच्छ्र व्रत करै, कानके दूटनेपर तीनपाद कृच्छ्र व्रत करै, और यदि समस्त शरीरही भग्न होजाय तौ पूर्ण मनुष्यपाद व्रत करै ॥ १८ ॥ सींग दूटने, हड्डी दूटने याः कमरके दूटनेपर उसके उपरान्त यदि गौ छैः महीनेतक जीवित रहजाय तौ प्रायश्चित्त नहीं होताहै ॥ १९ ॥

व्रणभंगे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यंगस्तु पाणिना ॥ यवसश्चोपहर्तव्यो यावद्वृद्धवलो भवेत् ॥ २० ॥ यावत्संपूर्णसर्वांगस्तावत्तं पोषयेन्नरः ॥ गोरूपं ब्राह्मणस्याग्रे नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥ २१ ॥ यद्यसंपूर्णसर्वांगो हीनदेहो भवेत्तदा ॥ गोधा- तकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥

यदि प्रहारसे गौके शरीरमें घाव होजाय तौ जबतक वह अच्छा नहो तबतक उस व्रणमें स्वयं अपने हाथसे घृत तेलादि लगाता रहै, जबतक वह गौ भली भाँतिसे चंगी और बल-वती न होजाय, तबतक उसके निमित्त हरी २ घास लाला कर खिलाना कर्तव्य है ॥ २० ॥ जबतक गौ निरोगता प्राप्त न करे तबतक उसका भली भाँतिसे पोषण करतारहै, इसके उपरान्त ब्राह्मणको नमस्कार कर उस निरोग गौ को छोड़दे ॥ २१ ॥ यदि वह गौ पहलेकी समान चंगी भली न हुई हो, शरीरके किसी अंगमें हानिहो तौ उस मनुष्यको गोहत्याके प्रायश्चित्तसे आधा प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ २२ ॥

घृलोष्टकपाषाणैः शस्त्रैर्नैवोद्धतो बलात् ॥ व्यापादयति यो गां तु तस्य द्विं विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥ चरेत्सांतपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥ तप्त- कृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रैर्नैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥ पंच सांतपने गावः प्राजा- पत्ये तथा त्रयः ॥ तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥ २५ ॥

यदि जो उद्धत पुरुष लकड़ी, लोष्ट, पत्थर अथवा शस्त्रसे बल करके गौको मारताहै तौ उसकी शुद्धि किसप्रकार होती है, उसे कहते हैं ॥ २३ ॥ लकड़ीसे हत्याकरनेवाला मनुष्य सांतपन व्रत करै; लोष्टसे हत्या करनेवाला मनुष्य प्राजापत्य व्रत करै, पत्थरसे हत्या करने-वाला मनुष्य तप्तकृच्छ्र करै, और शस्त्रसे गोहत्या करनेवाला मनुष्य अतिकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ सान्तपन व्रतमें पांच गौ दान करनी; तीन गौ प्राजा-पत्य व्रतमें दान करनी, आठ गौ तप्तकृच्छ्र में दान करनी उचित हैं, और अतिकृच्छ्र व्रतमें तेरह गौओंका दान करना कर्तव्य है ॥ २५ ॥

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ॥

तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥

गौआदिके प्रायश्चित्तके परिमाणके अनुसार उसकेही अनुरूप गौ आदिकोंको दान करै अथवा उसका मूल्य दे दे यह मनुजीका कथन है ॥ २६ ॥

अन्यत्राक्रानलक्ष्मभ्यां वाहने मोचने तथा ॥

सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधवंधयोः ॥ २७ ॥

भार वा गाड़ी आदिको लेचलनेके लिये चरनेके लिये छोड़नेके निमित्त और संभ्याको रक्षाके निमित्त यदि गौके शरीरमें कोई विशेष चिह्न करनेको रोध अथवा वंचन कियाजाय तो उसमें कोई दोष नहीं होताहै ॥ २७ ॥

अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ॥ नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्तं विनिर्दि-
शेत् ॥ २८ ॥ अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ॥ नासिक्ये पाद-
हीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ २९ ॥ दहनात्तु विपद्येत अनङ्गान्योऽक्रयंत्रितः ॥
उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥ ३० ॥

दागते समयमें यदि अधिक दग्ध होजाय, या अधिक धोझ लेजानेके निमित्त लांदा जाय, नाथाजाय, या कष्ट देनेवाले नदी पर्वतके मार्गसे लेजाया जाय तो प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ २८ ॥ अधिक दग्ध करनेपर एकपाद प्रायश्चित्त करै बोझा अधिक लादनेपर दोपाद प्रायश्चित्त करै नासिकाके छेदनेपर तीनपाद, और मारनेमें पूर्ण चतुष्पादका प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ २९ ॥ यदि जोतमें बंधा धैल अग्निसे मरजाय तो विधिसहित एकपाद प्रायश्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै, यह पराशर मुनिका वचन है ॥ ३० ॥

रोधनं वंधनं चैव भारप्रहरणं तथा ॥

दुर्गप्रेरणयोऽक्रं च निमित्तानि वधस्य पट् ॥ ३१ ॥

जोत, वंधन, रोध, अधिक बोझा लादना, प्रहार और जोतकर नदी पर्वत इत्यादि दुर्गम मागोंमें लेजाना, यह छैं हौं, प्रत्येक वधका मूल है ॥ ३१ ॥

बंधपाश गुप्तांगोऽघ्नियते यदि गोपशुः ॥

भुवने तस्य पापी स्यात्प्रायश्चित्ताद्धमर्हति ॥ ३२ ॥

यदि रस्सीमें बंधनेके कारण जो गौ मरजाय तो गृहस्थीको अर्द्धकृच्छ्र व्रत करना उचित है ॥ ३२ ॥

न नारिकेलैर्न च शाणवालैर्न चापि मौंजैर्न च वल्कशृंखलैः ॥

एतैस्तु गावो न निबंधनीया वद्धा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ॥ ३३ ॥

नारियलकी रस्सी, सनकी रस्सी, मूखकी रस्सी, अथवा लोहेकी जंजीरसे गौ और बैलको कदापि न बांधै, और जो यदि बांध भी दे तो फरसे को हाथमें लेकर सर्वदा उनके सन्मुख बैठे रहै ॥ ३३ ॥

कुशैः काशैश्च वध्नीयाद्रोपशुं दक्षिणामुखम् ॥

पाशलमामिदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३४ ॥

गौ अथवा अन्य पशुको दक्षिणकी ओरको मुखकर कुश अथवा काशसे बाँधै, यदि किसी कारणसे उसमें अग्नि लगकर पशुका शरीर जलजाय; तो इस स्थानपर प्रायश्चित्त करनेकी विधि नहींहै ॥ ३४ ॥

यदि तत्र भवेत्काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥

जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिपात् ॥ ३५ ॥

यदि उस स्थानके काष्ठमें तृणोंके रस्सीकी अग्नि लगकर पशुके प्राणोंका नाश करदे तौ पवित्र करनेवाली गायत्रीका जप करनेसे पापसे छूट सकता है ॥ ३५ ॥

प्रेरयन्कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ॥

गवाशनेषु विष्णंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥ ३६ ॥

कूपें या वावही या तालाबमें गौको प्रेरण करनेपर, या वृक्षोंको काटकर गौके ऊपर डालनेपर, या किसी गोभक्षणकारी मनुष्यके हाथ गौको बेचनेपर पूरा गौहत्याका पाप होता है ॥ ३६ ॥

आराधितस्तु यः कश्चिद्विन्नकक्षो यदा भवेत् ॥ श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूपसंकटे ॥ ३७ ॥ कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः ॥ स एव म्रियते तत्र ग्रीवपादास्तु समाचरेत् ॥ ३८ ॥

यदि इस अवस्थामें गौको विपत्तिसे उद्धार करनेके लिये पूर्वोक्त किसी कारणसे वक्षःस्थल, कान, श्वाया हृदयका कोई भाग भग्न होजाय या गौ कुएआदिमें गिरपड़े और उसको कुएमेंसे निकालनेके समयमें, उस गौके पैर, गरदन आदि टूटजायें इस विपत्तिमें उसी समय या कुछ समय उपरान्त उसकी मृत्यु होजाय तौ उस पापसे छूटनेके लिये तीनपाद प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कूपखाते तटावंधे नदीवंधे प्रपासु च ॥ पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३९ ॥ कूपखाते तटाखाते दीर्घखाते तथैव च ॥ स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४० ॥

कुएके निकटके चौबन्धमें, सरोवरमें, नदीके बंधेहुए घाटपर पौके ऊपर यदि गौ जलपीनेके लिये गई हो और उसी स्थानपर उसकी मृत्यु होजाय तौ किसी भ्रांतिका प्रायश्चित्त करना उचित नहीं है ॥ ३९ ॥ यदि कुएके निकटके चौबन्धमें नदी या जलाशयके निकटके गड्ढेमें दीर्घखात वा साधारण जल पीनेके गड्ढेमें गिरकर यदि गौ मरजाय तौ उसके निमित्त कुछ प्रायश्चित्त न करै ॥ ४० ॥

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ॥

स्वकार्ये गृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥

जिसने अपने घरके द्वारपर गड्ढा खोदा है या घरके भीतर खोदा है, या अपने कार्यके लिये वा साधारणके निमित्त तथा स्थान बँधानेके लिये खोदा है उसी गड्ढेमें यदि गौ गिरकर मरजाय तब अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४१ ॥

निशि बंधनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ॥ अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४२ ॥ ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभंगनिपातने ॥ अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४३ ॥ संग्रामेऽपहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च ॥ दावाम्निग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४४ ॥ यंत्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ॥ यत्रे कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४५ ॥

यदि रात्रिके समय रोक कर बाँधनेपर, या संपंके काटनेसे या अग्नि तथा गिजलीके गिरनेसे गौकी मृत्यु होजाय तौ प्रायश्चित्त करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है ॥ ४२ ॥ यदि ग्राम बाणोंसे पीडित होजाय; या घर टूटकर गिरपड़े तथा अत्यन्त वर्षाहो इन तीनों में यदि किसी कारणसे गौकी मृत्यु होजाय, तौ इस समयमें प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४३ ॥ संग्राममें, घरमें अग्नि लगनेके समय किसी ग्रामवासीके घेर लेनेपर वा, दावागिसे जो गौ मरम होकर मरजाय तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४४ ॥ यदि चिकित्सा करनेके समय में गौको पीडा दीजाय अथवा दूषित गर्भके गिरानेपर अनेक यत्न करनेपरभी गौकी मृत्युहो जाय तौ उसका प्रायश्चित्त नहीं होता ॥ ४५ ॥

व्यापन्नानां वधूनां च रोधने बंधनेऽपि वा ॥

भिषङ्मिथ्यापचारेण प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥

बहुतसी गौ और बैलोंको एकसाथ बांधकर रोकनेपर उनकी अनभिज्ञ चिकित्सकसे चिकित्सा करानेमें यदि गौ वा बैलकी मृत्यु हो जाय तौ गोवधका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ४६ ॥

गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः ॥

अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥ ४७ ॥

गौ अथवा बैलकी अकालमृत्युको अपने नेत्रोंसे देखकर भी उसको उस आसन्न मृत्युसे छुटानेकी जो मनुष्य चेष्टा नहीं करते वह गोहत्या पापके भागी होतेहैं ॥ ४७ ॥

एको हतो येर्वहुभिः समेतिर्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिधातात् ॥

दिग्ध्वेन तेषामुपलभ्य हंता निवर्त्तनीयो नृपसन्निभः ॥ ४८ ॥

यदि किसी गौ या बैलकी बहुतसे पुरुष इकट्ठे होकर ईंट पत्थर मारकर उसको पीडित करै तौ उससे पशुकी कदाचिन् मृत्यु होजाय और यह निश्चय न होसके कि किस पुरुषके प्रहारसे गौकी मृत्यु हुई तौ राजाको उचित है कि वह अपने कर्मचारियोंके द्वारा प्रत्येक पुरुषको सौगन्ध दिलाकर उस पशुकी हत्याकरनेवालेका निश्चय करले ॥ ४८ ॥

एका चेद्रहुभिः काचिद्देवाद्यापादिता क्वचित् ॥

पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥

यदि एक गौ बहुतसे पुरुषोंके आघातसे मर गई हो तौ उन प्रहार करनेवालोंमें प्रत्येकको गोवधका चतुर्थांश प्रायश्चित्त करना कर्तव्य है ॥ ४९ ॥

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत् ॥ लाला भवति दंष्ट्रेषु एवमन्वे-
पणं भवेत् ॥ ५० ॥ आसार्थं चोदितो वापि अध्वानं नैव गच्छति ॥ मनुना
चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ॥ प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोघ्नश्चांदायणं
चरेत् ॥ ५१ ॥

गौके मारनेपर उसके रुधिरके चिह्नसे हत्या करनेवालेको जानले, या उन सवमेंसे जो रोगी होजाय, दुर्बल होजाय या जिसके दाढ़ोंमेंसे लार गिरनेलगे, जो प्रेरणा करनेपरभी आसके निमित्त घरसे बाहर न जाय ऐसी हत्या करनेवालेकी खोज करले, सम्पूर्ण शास्त्रोंके

जाननेवाले अद्वितीय भगवान् मनुजीने गोहत्यामात्रमें चांद्रायण व्रतको करनेकी व्यवस्था दी है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥ ५२ ॥ राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥ अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥ यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ॥ तत्पापं तस्य तिष्ठेत् त्यक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥

गोहत्याके प्रायश्चित्तके समयमें जो केश रखने चाहैं उसको दुगना प्रायश्चित्त करना उचित है और दुगने प्रायश्चित्तकी दुगनीही दक्षिणा देनी चाहिये ॥ ५२ ॥ राजा, राजपुत्र अथवा वेदोंका जाननेवाला ब्राह्मण केशोंका मुंडन न कराकरभी प्रायश्चित्त कर सकता है ॥ ५३ ॥ जिस पुरुषने केशोंकी रक्षा की है और दुगना प्रायश्चित्त वा दुगनी दक्षिणा नहीं दी है उसका पाप पहलेकी समान होगा वह अपने पापसे मुक्त नहीं होगा और जो इस भांति व्यवस्था करनेकी अनुमति देगा वहभी नरकको जायगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ५४ ॥

यत्किंचित्क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ॥ सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥ ५५ ॥ एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥ न स्त्रियां केशवपनं न दूरे शयनासनम् ॥ ५६ ॥

प्राणिमात्रके सम्पूर्ण किये हुए पाप केशोंमेंही निवास करतेहैं इस कारण वालोंको हाथमें पकड़कर उनके अग्रभागके भागको दो २ अंगुल कटवादे ॥ ५५ ॥ यह रीति केवल कुमारी कन्या और सुहागिन स्त्रियोंके लिये है, कारण कि, इन स्त्रियोंको मुंडन और स्वतंत्र शयन अथवा स्वतंत्र भोजनका विधान नहीं है ॥ ५६ ॥

न च गोष्ठे वसेद्वात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ॥ नदीषु संगमे चैव अरण्येषु विशेषतः ॥ ५७ ॥ न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ॥ त्रिसंध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ॥ ५८ ॥ बंधुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्रचांद्रायणादिकम् ॥ गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ५९ ॥

इन स्त्रियोंको रात्रिके समय गोशालामें शयन और दिनके समय गौके पीछे २ जानकर उचित नहीं, और विशेष करके नदीके ऊपर, जनसमूहके स्थानमें और जंगलमेंभी इनके जानेका निषेध है ॥ ५७ ॥ स्त्रियोंको मृगचर्म ओढनेकी आवश्यकता नहीं वह तीनों कालमें स्नान कर देवताओंका पूजन करती रहैं ॥ ५८ ॥ स्त्रियोंको कृच्छ्र चांद्रायण व्रत अपने बंधु बांधवोंके बीचमें ही करना उचित है वह अपने घरमें स्थित रह कर सर्वदा पवित्र नियमोंका पालन करती रहैं ॥ ५९ ॥

इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ॥ स याति नरकं धोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥ ६० ॥ विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ॥ ह्रीवो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वै नरः ॥ ६१ ॥ तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ॥ स्त्रीबालभृत्यरोगार्तेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इस लोकमें गोवध करके उस पापको छिपानेकी इच्छा करता है वह निश्चयही कालसूत्रनामक घोर नरकमें जाता है ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त उस भयानक नरकसे छूटकर फिर इसी मृत्यु लोकमें मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है और फिर जन्म लेकर बहिरा, दुःखी, कोढ़ी होकर क्रमानुसार सातजन्म उसको व्यतीत करने पड़ते हैं ॥ ६१ ॥ इस कारण पाप करके उसको छिपानेकी चेष्टा कदापि न करे प्रकाश करदे, और स्त्री, बालक, सेवक, गौ तथा इनके ऊपर क्रोध कदापि न करे ॥ ६२ ॥

इति श्रीपाराशरीये धर्मशास्त्रे मापाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥

अगम्यागमने चैव शुद्धौ चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंके पापसे छूटनेका उपाय कहते हैं, अगम्य स्त्रीमें गमन करनेसे जो पाप होता है वह चांद्रायणव्रतके करनेसे मुक्त होता है ॥ १ ॥

एकैकं ह्रासयेद्भासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ॥ अमावस्यां न भुंजीत ह्येष चांद्रायणो विधिः ॥ २ ॥ कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत् ॥ अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्ध्यते ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक ग्रास कमती करता रहे, और शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन एक ग्रासको चढ़ावे और अमावस्याके दिन कुछभी न खाय यह चांद्रायण व्रतकी विधि है ॥ २ ॥ एक २ ग्रासको मुरगीके अंडोंकी समान बड़ा बनावे, इसके अन्यथा करनेसे न धर्म है और न शुद्धिही होती है ॥ ३ ॥ प्रायश्चित्तका अनुष्ठान शेष होजानेपर ब्राह्मणभोजन करावे, और दो गौ और एक जोड़ा वस्त्र ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे ॥ ४ ॥

चंडालीं वा श्वपाकीं वा अनुगच्छति यो द्विजः ॥ त्रिरात्रमुपवासी च विप्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥ सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ब्रह्म च ततः कृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ६ ॥ गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिश्रुण्डयम् ॥ विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥

जो ब्राह्मण चंडाली वा श्वपाकीं गमन करता है वह ब्राह्मण ब्राह्मणोंकी आज्ञानुसार तीनरात्रि उपवास करे ॥ ५ ॥ इसके पीछे शिखासहित सम्पूर्ण केशोंका मुंडन करावे और दो प्राजापत्य व्रत करे, इसके पीछे ब्रह्मकूर्चका पान करके भोजनादिद्वारा ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे ॥ ६ ॥ इसपीछे वह नित्य गायत्रीका जपकरता रहे, फिर एक गौ और एक बैल ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे, तो वह निस्संदेह शुद्धि प्राप्त कर सकता है ॥ ७ ॥ यह पाराशरजीका वचन है कि दो गौ दक्षिणामें देनेसे शुद्धि होती है,

क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा चण्डालीं गच्छतो यदि ॥ ८ ॥

प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥

यदि कोई क्षत्रिय वा वैश्य किसी चांडालीमें गमन करै तो ॥ ८ ॥ वह दो प्राजापत्य व्रत करै और ब्राह्मणोंको एक गौ और एक बैल दक्षिणामें दे;

श्वपार्की वाथ चण्डालीं शूद्रो वा यदि गच्छति ॥ ९ ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ॥ १० ॥

यदि शूद्र श्वपार्की और चांडालीके साथ गमन करै तो ॥ ९ ॥ एक प्राजापत्य व्रतकर ब्राह्मणोंको चार गोमिथुन दक्षिणामें दे ॥ १० ॥

मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥ एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि संचरेत् ॥ ११ ॥ चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिरश्छेदेन शुद्ध्यति ॥

अपनी माता, बहन और पुत्रीमें जो मनुष्य अज्ञानतासे गमन करताहै वह तीन कृच्छ्रव्रत करै ॥ ११ ॥ वा तीन चांद्रायण करै पीछे शिर छेदन करनेसे शुद्धि होतीहै;

मातृष्वसृगमे चैव आत्ममेहनिकृतनम् ॥ १२ ॥ अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चांद्रायणद्वयम् ॥ दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत् ॥ १३ ॥

और माताकी बहनके साथ गमन करनेवाला अपनी लिङ्गेन्द्रिय काटनेपरही शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥ यदि जो पुरुष अज्ञानतासे मौसीके विषय गमन करताहै वह दो चांद्रायण व्रत करै, और दस गौ और दश बैल ब्राह्मणोंको दान करै तब शुद्ध होताहै, यह पराशरजीका कथन है ॥ १३ ॥

पितृदारान्समारुह्य मातुरातां च भ्रातृजाम् ॥ गुरुपत्नीं स्तुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च ॥ १४ ॥ मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥ गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

जो पुरुष सौतेली मातामें, माताकी सखीमें, भाईकी लडकीमें, गुरुकी स्त्रीमें, पुत्रकी स्त्रीमें, भ्राताकी स्त्रीमें ॥ १४ ॥ मामाकी स्त्रीमें या अपने गोत्रकी कन्याके साथ गमन करताहै वह तीन प्राजापत्यव्रत कर दो गौ दक्षिणामें देनेसे निःसन्देह शुद्ध हो जाताहै ॥ १५ ॥

पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रयौ कर्पी तथा ॥

खरीं च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १६ ॥

पशु, वेश्या, महिषी (भैंस) ऊंटनी, बानरी, गर्दभी, शूकरीके साथ गमन करनेवाला प्राजापत्यव्रत करै ॥ १६ ॥

गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददेत् ॥

महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

गौके साथ गमन करनेवाला तीनरात्रि उपवास कर ब्राह्मणोंको एक गौ दान करै । महिषी, ऊंटनी और गर्दभीके साथ गमन करनेवाला एक रात्रिदिन उपवास करनेसे शुद्ध हो जाताहै ॥ १७ ॥

डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ॥

वन्दिग्राहे भयार्तो वा सदा स्वर्त्त्रा निरीक्षयेत् ॥ १८ ॥

मारामारी वा काटाकाटीके समयमें, युद्धके समय, दुर्भिक्षके समय, जनक्षयके समय, भय प्राप्त होनेके समय, कोई आक्रमण करनेवाला यदि पकड़कर या बन्दी करके लेजाय तो उस समय सर्वदा अपनी स्त्रीकी ओर दृष्टि रखनी उचित है ॥ १८ ॥

चण्डालैः सह संपर्कं या नारी कुरुते ततः ॥ विप्रान्दशवरान्कृत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् ॥ १९ ॥ आकंठसंमिते कूपे गोमयोदककंदमे ॥ तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् ॥ २० ॥ सशिखं वपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ॥ त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत् ॥ २१ ॥ शंखपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम् ॥ सुवर्णं पंचगव्यं च काथयित्वा पिबेज्जलम् ॥ २२ ॥ एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥ व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसते वहिः ॥ २३ ॥ प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥

जो स्त्री चांडालके साथ सहवास करे; तो वह अपने पापको श्रेष्ठ इस ब्राह्मणोंके निकट प्रकाशित करदे ॥ १९ ॥ गोबरके जल व कीचसे भरेहुए कूपमें गलेतक मग्न होकर बिना भोजन करे एक रातदिन रहकर निकल आवे ॥ २० ॥ फिर दिखासहित सारे शिरका मुंडन कराकर जघपके हुए यवका भोजन करे, इसके उपरान्त तीन रात्रि उपवास कर एकरात्रि जलमें निवास करे ॥ २१ ॥ पीछे शंखपुष्पी औपवीकी जड़, पत्ते, फूल, फल और सुवर्ण तथा पंचगव्य इन सबको एकत्र पीसके औंटाकर उसका जलपान करे ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त जयतक ऋतुमती हो तबतक पकेहुए अन्नका भोजन दिनमें एक बार करे, जयतक यह व्रत समाप्त न होजाय तबतक शरकृत्यसे बाहर रहे ॥ २३ ॥ इस भांति प्रायश्चित्तके समाप्त होनेपर ब्राह्मण भोजन कराकर दो गौ दक्षिणामें दे तब शुद्धि होतीहै यह पाराशरजीका वचनहै ॥ २४ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चांद्रायणव्रतम् ॥

यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ॥ २५ ॥

यदि चारों वर्णोंकी स्त्रियें दोषयुक्त होजायें तो कृच्छ्र चांद्रायण व्रत करें; पृथ्वी और स्त्री दोनोंही समान हैं इसकारण उनको दूषित न करे ॥ २५ ॥

वन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्धा बलाद्गयात् ॥ कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं शुद्धयेत्पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥ सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छंती पापकर्माभिः ॥ प्राजापत्येन शुद्धयेत् ऋतुप्रसवणेन च ॥ २७ ॥

जिस स्त्रीको बन्दी करके अन्य पुरुष भोगतेहैं, अथवा जिस स्त्रीको प्रहार कर कैद करके सब दिखाकर बलात्कार करके भोगाहै पराशरजीका कथनहै कि, वह स्त्री कृच्छ्र सांतपन व्रतके करनेसे शुद्ध होतीहै ॥ २६ ॥ जिस स्त्रीकी बिना इच्छाके पापी पुरुषोंने बलपूर्वक एकबारभी भोगाहै वह प्राजापत्य व्रत करके ऋतुमती होनेपर शुद्ध होजातीहै ॥ २७ ॥

पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ॥ पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ २८ ॥ गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २९ ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ३० ॥

जो स्त्री सदिरा पान करती है उसका आधा शरीर पतित होजाता है; इस प्रकारसे जिसका शरीर पतित होगया है उसकी शुद्धि नहीं है, वह नरकको जाती है इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥ कृच्छ्र सांतपन व्रतके आचरण करनेके समय निरन्तर गायत्रीका जप करता रहै ॥ २९ ॥ गोमूत्र, गौका गोधैर, दूध, दही, घृत, और कुशका जल, यह पंचगव्य पानकर एकरात्रि उपवास करै, यह सांतपन कहाता है ॥ ३० ॥

जारेण जनयेद्गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ॥

तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥ ३१ ॥

पतिके त्याग करनेसे या पतिके मरजानेसे स्त्री अन्य पुरुषके संयोगसे गर्भवती होजाय तो उस पापिनी पतित स्त्रीको अन्यराज्यमें छोड़ आवै ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा समन्विता ॥ सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्या गमनं पुनः ॥ ३२ ॥ कामान्मोहान्च या गच्छेत्त्यक्त्वा बंधून्सुतान्पतिम् ॥

सापि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥ ३३ ॥

यदि कोई ब्राह्मणी पर पुरुषके साथ निकलजाय तो उसको नष्ट हुई जानो, उसको किसी प्रकारभी घरमें रखना उचित नहीं ॥ ३२ ॥ यदि कोई स्त्री काम या मोहके बशीभूत होकर पति, पुत्र, तथा बंधु बांधवोंको त्याग कर घरसे चलीजाय, तो वह परलोकमें तथा मनुष्य समाजमें नष्ट होजाती है ॥ ३३ ॥

मदमोहगता नारी क्रोधादंडादिताडिता ॥

अद्वितीयं गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥ ३४ ॥

जो स्त्री मद वा मोहसे अथवा क्रोधसे दंडके ताड़न करनेसे बिना किसीके पास गये घर लौट आवै ॥ ३४ ॥

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ दशाहं न त्यजेन्नारी त्यजेदष्टश्रुतां

तथा ॥ ३५ ॥ भर्ता चैव चरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बांधवाः ॥ तेषां भुक्त्वा

च पीत्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३६ ॥

यदि उस स्त्रीको गये हुए घरसे दश दिन बीत जायँ तो प्रायश्चित्त नहीं वह पतितही होती है कारण कि, दश दिनतक स्त्रीका त्याग न करै, परन्तु यदि उसको नष्टा सुनाजाय तो उसका त्याग करदे ॥ ३५ ॥ और उसके पतिको कृच्छ्र व्रत और उसके बंधु बांधवोंको अर्द्धकृच्छ्र व्रत करना चाहिये, और उनके घरका जिसने भोजन कियाहो वा जलपान किया हो वह अहोरात्र उपवास करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा विवर्जिता ॥

गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ॥ ३७ ॥

यदि कोई ब्राह्मणों नियम करनेपर भी परपुरुषके संग चलीजाय वह स्त्री यदि दूसरे पुरुषका संग करके शीघ्र अपने पतिके निकट चली आवे तो सगोत्रियोंको उसको त्यागदेना उचित है ॥ ३७ ॥

पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदाऽशुद्धं गृहं भवेत् ॥ पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ॥ ३८ ॥ उल्लिख्य तद्गृहं पञ्चात्पञ्चगव्येन सेचयेत् ॥ त्यजेच्च मृन्मयं पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत् ॥ ३९ ॥ संभाराञ्छोधयेत्सर्वान्गोकेशैश्च फलोद्भवान् ॥ ताम्राणि पञ्चगव्येन कांस्थानि दशभस्मभिः ॥ ४० ॥ प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादयेत् ॥ गौद्वयं दक्षिणां दद्यात्प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ४१ ॥ इतरेषामहोरात्रं पञ्चगव्यं च शोधनम् ॥ उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः ज्ञानसंभार्यचनादिभिः ॥ ४२ ॥ जपहोमदयादानैः शुद्धयन्ते ब्राह्मणादयः ॥ आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम् ॥ ४३ ॥ न दुप्यंति च दर्भाश्च यज्ञेषु चमसा यथा ॥ ४४ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यदि वह स्त्री जारपुरुषके घरमेंसे चली आवे तो पतिका घर और उस स्त्रीके पिता और माताका घर अशुद्ध होजाताहै ॥ ३८ ॥ उस घरको खोदकर पीछे पञ्चगव्यको छिड़के, और मिट्टीके पात्रोंको फेंकदे और वस्त्र तथा काष्ठके पात्रोंकी शुद्धि करे ॥ ३९ ॥ फलोंकी सामग्रियोंको तो गौके चूँचरासे शुद्ध करे और ताँबेकी वस्तुओंको पञ्चगव्यसे शुद्ध करे और काँसीकी वस्तुको दशवार भस्मसे माँजकर शुद्ध करना उचित है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणोंके कहे हुए प्रायश्चित्तको वह ब्राह्मण करे, और दो गौ दक्षिणामें दे और दो प्राजापत्यव्रत करे ॥ ४१ ॥ और उसके अन्यान्य वंधु अहोरात्र व्रतकर पञ्चगव्य पान करके तथा, उपवास, व्रत, पुण्य, ज्ञान, सन्ध्या, पूजनआदिसे ॥ ४२ ॥ और जप होम दया दान इनसे ब्राह्मण-आदि शुद्ध होजातेहैं ॥ आकाश, पवन, अग्नि, और पृथ्वीमें पड़ा हुआ जल ॥ ४३ ॥ तथा कुशा यह किसी भाँति अशुद्ध नहीं होते, जिस भाँति यज्ञमें चमसा अशुद्ध नहीं होताहै ॥ ४४ ॥

इति श्रीपराशर्ये धर्मशास्त्रे मायादीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अमेध्यरेतो गोमांसं चंडलान्नमयापि वा ॥ यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥ क्षत्रियो वाय वैश्यश्चेदर्थकृच्छ्रं च कायिकम् ॥ २ ॥ पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद्विजः ॥ एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद्विमाद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

यदि ब्राह्मणने अशुद्ध पदार्थ, वीर्य, गौका मांस, और चांडालके यहाँका अन्न भक्षण कर लियाहो तो चांद्रायण व्रतके करनेसे उसकी शुद्धि होताहै ॥ १ ॥ और यदि क्षत्रीने इन वस्तुओंको खा लिया हो तो वह अर्द्धकृच्छ्र चांद्रायण व्रत करनेसे शुद्ध होताहै; और वैश्य इन वस्तुओंके खानेसे प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥ और शूद्र तो पञ्चगव्यका पान

करै, और ब्राह्मण ब्रह्मकूर्चको पीले, फिर ब्राह्मणआदि चारोंवर्ण क्रमानुसार एक, दो, तीन और चार गौओंका दान करें ॥ ३ ॥

द्रान्नं तक्रान्नं च अभोज्यस्यान्नमेव च ॥ शंकिंतं प्रतिषिद्धान्नं, पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥ यदि भुक्तं तु विभ्रेण अज्ञानादापदापि वा ॥ ज्ञात्वा समाचरे-
त्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

शुद्धकौ अन्न, सूतकका अन्न, अभोज्यका अन्न, शंकिंत अन्न, निषिद्ध अन्न, उच्छिष्ट अन्न ॥ ४ ॥ इन अन्नोको यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे या विपत्ति आनेके समय खाले तौ उसको जानकर कृच्छ्रव्रत करै और पवित्र करनेवाले ब्रह्मकूर्चका पान करै ॥ ५ ॥

व्यालैर्नकुलमार्जारैरन्नमुच्छिष्टं यदि ॥

तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

जिसे सर्प, नौला, विलावआदिने जूठा करदिया हो वह तिल और कुशाका जल छिड़कनेसे निःसन्देह उस अन्नकी शुद्धि होजातीहै ॥ ६ ॥

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्तान्नं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

क्षत्रियो चापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

अभोज्य अन्नको खानेवाला शूद्रभी पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै; यदि अभोज्य अन्नको क्षत्रिय तथा वैश्य खाले तौ वह प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ७ ॥

एकपंत्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ॥ यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥ मोहाद्भुंजीत यस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ॥ प्रायश्चित्तं चरे-
द्विप्रः कृच्छ्रं सांतपनं तथा ॥ ९ ॥

एक पंक्तिमें एकसाथ भोजन करते हुए ब्राह्मणोंमेंसे यदि कोई ब्राह्मण भोजन करनेसे खड़ा होजाय तौ उस शेष अन्नको कोई ब्राह्मण भी न खाय ॥ ८ ॥ यदि इस अवस्थामें कोई ब्राह्मण अज्ञानतासे उस पंक्तिमें उच्छिष्टको खाले; तौ उस ब्राह्मणको सांतपन कृच्छ्रका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ९ ॥

पीयूषं श्वेतलहसुनं वृताकफलगृजने ॥ पलांडुं वृक्षनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥ उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरमज्ञानाद्भुंजते द्विजः ॥ त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्ये-
न शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

पेवची, श्वेतलहसन, वैगन, गाजर, ध्याज, वृक्षका गोंद, देवताका द्रव्य, कवक (पृथ्वीकी ढाल) ॥ १० ॥ उंटनी, तथा भेडका दूध, जो ब्राह्मण इन वस्तुओंको अज्ञानतासे खाता है वह तीनरात्रि उपवासकर पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ११ ॥

मंडूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च ॥

ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

जो ब्राह्मण जानबूझ कर मंडक और मूँसेके मांसको खाताहै वह अहोरात्रमें जौके खा-
नेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ ॥

तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥ १३ ॥

क्षत्री हो या वैश्य हो जब कि वह क्रियाकरनेवाले धर्माचरणकारी और पवित्रात्मा है तब उनके यहां हव्य कन्यमें सर्वदा भोजन करसकता है ॥ १३ ॥

घृतं क्षीरं तथा तैलं गुडं तैलेन पाचितम् ॥ गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्र-
भोजने ॥ १४ ॥ मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् ॥ तं शूद्रं षर्जयेद्विप्रः
श्वपाकमिव दूरतः ॥ १५ ॥ द्विजशुश्रूषणरतान्मद्यमांसविवर्जितान् ॥ स्वक-
र्मनिरतान्नित्यं ताञ्छूदान्न त्यजेद्विजः ॥ १६ ॥

ब्राह्मण नदीके किनारे जाकर शूद्रके पात्रमें घी, दूध, तेल, और तेलसे पके हुए गुडको खाले ॥ १४ ॥ जो शूद्र मदिरा मांस खाता, नीचकर्म करताहो उस शूद्रको श्वपाककी समान दूरसेही त्यागदे ॥ १५ ॥ जो शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवा करताहो, मदिरा मांसको न खानेवाला अपने कर्ममें तत्पर हो उस शूद्रका ब्राह्मणोंको त्याग करना उचित नहीं ॥ १६ ॥

अज्ञानाद्भुजते विप्राः सूतके सूतकेऽपि वा ॥ प्रापश्चित्तं कथं तेषां वर्णं वर्णं वि-
निर्दिशेत् ॥ १७ ॥ गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके ॥ वैश्ये पंचस-
हस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥ १८ ॥ ब्राह्मणस्य यदा भुंक्ते द्विसहस्रं तु दापयेत् ॥
अथवा वामदेव्येन साम्रा चैकेन शुद्धयति ॥ १९ ॥

(प्रश्न) यदि जो ब्राह्मण अज्ञानतासे सूतक वा सूतकमें भोजन करतेहैं तो वर्ण वर्णके प्रति उनका किस प्रकारसे प्रायश्चित्त कहाहै? ॥ १७ ॥ (उत्तर) शूद्रके यहां सूतकमें भोजन करनेसे आठहजार गायत्री जपकरनेसे शुद्धि होतीहै, वैश्यके यहां सूतकमें भोजन करनेसे पांचहजार गायत्रीका जपकरै, और क्षत्रियके यहां सूतकमें भोजन करनेसे तीनहजार गायत्रीका जपकर-
नेसे शुद्धि होताहै ॥ १८ ॥ परन्तु ब्राह्मणके यहां सूतकमें खानेसे दोहजार गायत्रीका जप करै अथवा वामदेव ऋषिके कहेहुए साममंत्रसेही शुद्धि होताहै ॥ १९ ॥

शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेपेण आहृतम् ॥ पक्वं विप्रगृहे भुंक्ते भोज्यं तं मनुर-
ब्रवीत् ॥ २० ॥ आपत्काले तु विप्रेण भुंक्ते शूद्रगृहे यदि ॥ मनस्तापेन शुद्धये-
त द्रुपदां वा सकृजपेत् ॥ २१ ॥

शूद्रके यहांका अन्न, गोरस, और जेह (घीआदि) यह यदि शूद्रके यहांसे लाकर ब्राह्मण घर पकाकर खाले तो वह भोजनके योग्य है, यह मनुजीका वचन है ॥ २० ॥ यदि आपत्तिके समयमें ब्राह्मणने शूद्रके यहां भोजन करलिया हो तो वह मनके पश्चात्तापसेही शुद्ध होताहै, और फिर एकवार द्रुपदा मन्त्रका जप करै ॥ २१ ॥

दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥

एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं विधीयते ॥ २२ ॥

दास, नाई, गोपाल कुलका मित्र अर्द्धसीरी इन सबके यहांका और अपने आप स्वयं इस भांति कहे कि मैं आपका हूं, उसके यहांका अन्न भोजन करनेके योग्य है ॥ २२ ॥

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥ असंस्काराद्देवदांसः संस्कारादेव
नापितः ॥ २३ ॥ क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ॥ स गोपाल इति
ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २४ ॥ वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु सं-
स्कृतः ॥ स ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २५ ॥

जो सन्तान ब्राह्मणसे शूद्रकी कन्यामें उत्पन्न हो यदि उसका संस्कार न हो तो वह दास कहाता है, और जो यदि संस्कार होजाय तो वह नाई होताहै ॥ २३ ॥ जो पुत्र शूद्रकी कन्यामें क्षत्रियसे उत्पन्न हो, वह गोपाल कहाताहै, उसके यहां ब्राह्मण निस्संदेह भोजन करे ॥ २४ ॥ जो पुत्र ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें उत्पन्न हो और उसका संस्कार होजाय उसे आर्द्धिक कहते हैं, उसके यहांभी ब्राह्मणको भोजन करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ २५ ॥

भांडस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ॥ अकामतस्तु यो भुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा उपसर्पति ॥ ब्रह्मकूर्चो-पवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥ २७ ॥ शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ २८ ॥

(प्रश्न) जिनके यहांका भोजनकरना अनुचित है उनके पात्रमें रक्खा जल, दही, घी, दूध इनको जो मनुष्य खाता है उसका प्रायश्चित्त किस भांति से हो ? ॥ २६ ॥ (उत्तर) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यदि यह खालें तो यज्ञके योग्य तीनों वर्णोंका प्रायश्चित्त ब्रह्मकूर्च उपवास करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ २७ ॥ शूद्रको उपवास करना उचित नहीं शूद्र तो दान करनेसेही शुद्ध होजाता है श्वपाक अहोरात्रका उपवास करनेसेही शुद्ध होसकता है ॥ २८ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ निर्दिष्टं पंचगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ २९ ॥ गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥ पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ३० ॥ कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कपिल-मेव वा ॥ मूत्रमेकपलं दद्यादंगुष्ठार्धं तु गोमयम् ॥ ३१ ॥ क्षीरं सप्तपलं दद्या-दधि त्रिपलमुच्यते ॥ घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥ गायत्र्या-दाय गोमूत्रं गंधद्वारेति गोमयम् ॥ आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्यस्तथा दधि ॥ ३३ ॥ तेजोसि शुक्रमित्पाज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥ पंचगव्यमृचा पृतं स्थापयेदभिसन्निधौ ॥ ३४ ॥ आपोहिष्ठेति चालोह्य मानंस्तोकेति मंत्रयेत् ॥ सप्तावरोसु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुंकाक्विपः ॥ ३५ ॥ एतैरुद्धृत्य होतव्यं पंच-गव्यं यथाविधि ॥ इरावती इदंविष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥ ३६ ॥ एताभि-श्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद्विजः ॥ आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु ॥ ३७ ॥ उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु ॥ यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मकूर्चं दहेत्सर्वं यथैवाभिरिक्त्वंधनम् ॥ पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवता-भिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ॥ वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः ॥ दधि वायुः समुद्विष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥ ४० ॥

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशका जल यही सम्पूर्ण पापोंका नाशकारी पवित्र पंच-गव्य कहाता है ॥ २९ ॥ काली गौका मूत्र, सफेद गौका गोबर, ताँबेके रंगकी गौका दूध, लाल गौका दही, ॥ ३० ॥ कपिला गौका घी, अथवा सम्पूर्ण वस्तुएँ कपिलाहीकी लेले; एक पल गोमूत्र, आधे अंगुठेभर गोमय, ॥ ३१ ॥ सात पल दूध, तीन पल दही, एक पल घी और एक पल कुशका जल हो ॥ ३२ ॥ गायत्री पढ़कर गोमूत्र ग्रहण करे, “गंधद्वारां” इस मंत्रसे गोबर “आप्यायस्व” इस मंत्रसे दूध “दधिक्राव्य” इससे दही ले ॥ ३३ ॥ “तेजोसिशुक्रं” इस मंत्रसे घी ले “देवस्य त्वा” इस मंत्रसे कुशका जल ले इसभाँति ऋचाद्वारा पवित्रकिये

पंचगव्यको अग्नि के सन्मुख रक्खै ॥ ३४ ॥ “आपोहिष्ठा” इस मंत्रसे चलावे “मानस्तोके” इस मंत्रसे मथै, कमसे कम सात, और तातेके समान रंगवाली अमभागयुक्तः ॥ ३५ ॥ उन कुशाओंसे त्रि हित उठाकर पंचगव्यका हवन करै “इरावती” “इद्विष्णु” “मानस्तोके” “शंवती” ॥ ३६ ॥ इन ऋचाओंसे हवन करै और देशको ब्राह्मण पान करै, ओंकारसेही चलाकर और ओंकारसेही मथकर ॥ ३७ ॥ ओंकारसेही उठावै और ओंकारसेही पिये । जो त्वचा और अस्थियोंमें देहधारियोंका पाप स्थित है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मकूर्च उसको इस भांति दग्ध करदेता है जिसभांति ईधनको अग्नि भस्म करदेती है; यह पंचगव्य तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला और देवताओंसे अधिष्ठित है कारण किं ॥ ३९ ॥ वरुण गोमूत्रमें, अग्नि गोवरमें, पवन दहीमें, चंद्रमा दूधमें, और सूर्य धीमें निवास करते हैं ॥ ४० ॥

पिवतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ॥

अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ४१ ॥

यदि मनुष्यके जल पीतेहुए समयमें मुँहमेंसे जल निकलकर पात्रमें गिरपड़े तो वह जल पीने योग्य नहीं रहता; और जो यदि उसे पीभी ले तो वह चांद्रायण व्रतकरनेसे शुद्ध होता है ॥ ४१ ॥

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वसृगालौ च मर्कटम् ॥ अस्थिचर्मादिपतितः पीत्वाऽभेध्याः
अपो द्विजः ॥ ४२ ॥ नारं तु कुणपं काकं विडूराहं खरोष्ट्रकम् ॥ गावयं सौप्र-
तीकं च मायूरं खड्गकं तथा ॥ ४३ ॥ वैयाघ्रमार्क्षं सैहं वा कूपे यदि निमज्जति ॥
तडागस्याऽप्यदुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥ ४४ ॥ प्रायश्चित्तं भवेत्पुंसः क्रमे-
णैतेन सर्वशः ॥ विप्रः शुष्येत्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥ ४५ ॥ एकाहेन
तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ॥

जिस कुएमें कुत्ता, गीदड़, बंदर, अस्थि, चर्म यह गिरगई हो उस कुएके अपवित्र जलको पीनेवाला ब्राह्मण ॥ ४२ ॥ और मनुष्यका शरीर, कौआ, विष्टा खानेवाला सुकर, गधा, ऊँट, गाय (नीलगाय) हाथी, मोर, गैंडा, ॥ ४३ ॥ भेड़िया, रील, सिंह, यदि यह कुएमें डूबजायँ, और निषिद्ध तालावके जलको पीनेवाला मनुष्य ॥ ४४ ॥ इन सबका क्रमानुसार प्रायश्चित्त इस भांति है, ब्राह्मण तीनरात्रि उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, क्षत्रिय दो दिनोंके उपवास करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४५ ॥ वैश्य एकही दिन उपवास करनेसे शुद्ध होताहै, शूद्र नक्तव्रतके करनेसे शुद्ध होजाता है ॥

**परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥ ४६ ॥ अपचस्य च भुक्त्वा त्रं द्विजश्चां-
द्रायणं चरेत् ॥ अपचस्य तु यद्दानं दातुरस्य कुतः फलम् ॥ ४७ ॥ दाता प्रति-
गृहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥**

जो परपाकनिवृत्त (इसका लक्षण आगे कहेंगे) हो उसका अन्न, और जल परपाकरत (इसका लक्षण आगे कहेंगे) हो उसका अन्न ॥ ४६ ॥ और अपच (लक्षण आगे कहेंगे) का अन्न खानेसे ब्राह्मणको चांद्रायण व्रत करना उचित है, जो मनुष्य अपचको दान देताहै उसका फल दाताको नहीं होता ॥ ४७ ॥ उसका देनेवाला और लेनेवाला यह दोनों नरकको जातेहैं;

**गृहीत्वाग्निं समारोप्य पंचयज्ञान्नं निर्वपेत् ॥ ४८ ॥ परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः
परिकीर्तितः ॥ पंचयज्ञान्स्वयं कृत्वा परात्रेनोपजीवति ॥ ४९ ॥ सततं प्रातरु-
त्थाय परपाकरतस्तु सः ॥ गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ॥ ५० ॥
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः ॥**

अग्निहोत्रका नियम करके पंचयज्ञ न करै ॥ ४८ ॥ दूसरेके पकायेहुए अन्नको भोजन करै, सुनियोंने इसे परपाकनिवृत्त कहाहै; और जो स्वयं पंचयज्ञ करके पराये अन्नसे जीवन व्यतीत करतेहैं ॥ ४९ ॥ और नित्य प्रति प्रभातकालको उठकर परपाकमें रत हो उसको परपाकरत कहते हैं गृहस्थ धर्ममें जो ब्राह्मण हो और दान न देता हो ॥ ५० ॥ धर्म तत्त्वके जाननेवाले ऋषियोंने उसे अपच कहाहै,

युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः ॥ ५१ ॥

तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥

जो धर्म युग २ में स्थित हैं; और जो ब्राह्मण युग २ में हैं ॥ ५१ ॥ उनकी निन्दाकरनी उचित नहीं कारण कि वह ब्राह्मण युगकेही अनुरूप हैं;

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥ ५२ ॥ ज्ञात्वा तिष्ठन्नहःशेषम-
भिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कंठे बद्धापि वाससा ॥ ५३ ॥

विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ अवगूर्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षिति-
पातने ॥ ५४ ॥ अतिकृच्छ्रं च रुधिरं कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ॥

अत्यन्त बड़े ब्राह्मणको हुंकार और त्वंकार कहकर ॥ ५२ ॥ जितना दिन शेष हो उतने दिन स्नानकरके बैठारहै; और उन्हें नमस्कार कर प्रसन्न करै, यदि कोई तिनकेसे ब्राह्मणको ताडन करै, या उसके गलेमें बल्ल बाँधै ॥ ५३ ॥ अथवा विद्याके द्वारा उसको पराजित कर दे तौ प्रणामादि द्वारा उस ब्राह्मणको प्रसन्न करना उचित है; और यदि ब्राह्मणको झटकदे तब अहोरात्र उपवास करै, और पृथ्वीपर गिरानेसे तीनरात्रि उपवासकरना उचित है ॥ ५४ ॥ रुधिर निकालनेपर अतिकृच्छ्र व्रत करै और रुधिरके न निकलनेपर कृच्छ्र करना उचित है ॥

नवाहमतिकृच्छ्री स्यात्पाणिपूरात्रभोजनः ॥ ५५ ॥

त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥

एक अंजुलीभर अन्नको नौ दिन तक खाय वह अतिकृच्छ्र कहाताहै ॥ ५५ ॥ और तीन रात्रि उपवास करै उसे कृच्छ्र कहतेहैं ॥

सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥

दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥ ५६ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

यदि एकहीसमय सम्पूर्ण पापोंका सम्मिलन होजाय तौ ॥ दश हजार गायत्रीका जप करनेसे परमशुद्धि प्राप्त होतीहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वांते वा क्षुरकर्मणि ॥

मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते ॥ १ ॥

पमन, क्षौरकर्म, मैथुन, प्रेतका धुंआ, इनके स्वप्न देखनेके उपरान्त स्नान करना कहाहै ॥ १ ॥

अज्ञानात्माशय विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेवच ॥ पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा
द्विजातयः ॥ २ ॥ अजिनं मेखला दंडो भैक्षवर्पा व्रतानि च ॥ निवर्त्तते द्विजा-
तीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानतासे विष्टा, मूत्र, और जिसमें मदिरा मिलीहो इनको खाले तो तीनों वर्ण फिर संस्कारके योग्य होजातेहैं ॥ २ ॥ द्विजातियोंको पुनर्বার संस्कारके कर्ममें मृगछाला, कौष्ठी, दंड, भिक्षाका मांगना यह सम्पूर्ण निवृत्त होजातेहैं ॥ ३ ॥

विण्मूत्रस्य च शुद्धचर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ॥

पंचगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥

विष्टा मूत्रका खानेवाला प्राजापत्य करै, और पंचगव्य बनाकर स्नान करके पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥

जलाम्पितने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ॥ प्रत्यवसितवर्णानां कथं शुद्धिर्विधी-
यते ॥ ५ ॥ प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च ॥ वृषैकादशदानेन वर्णाः
शुद्ध्यन्ति ते त्रयः ॥ ६ ॥

(प्रश्न) जल और अग्निमें पड़कर संन्यास धर्मको नष्टकरनेवाले उन धर्मसे पतितहुए वर्णोंकी शुद्धि किसमाँति होतीहै? ॥ ५॥ (उत्तर) दो प्राजापत्यके करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे ग्यारह वैलोंका दानकरनेसे क्रमानुसार तीनोंवर्ण शुद्ध होजातेहैं ॥ ६ ॥

ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथे ॥ सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं
चरेत् ॥ ७ ॥ गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ मुच्यते तेन
पापेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥

अब ब्राह्मणका प्रायश्चित्त कहतेहैं; वह ब्राह्मण वनमें जाकर चौराहेमें शिखासमेत मुंडन कराकर दो प्राजापत्य व्रतकरै ॥ ७ ॥ और दक्षिणामें दो गौ दे तब शुद्ध होताहै यह पराशरमुनिका वचन है. और उस पापसे छूटकर फिर ब्राह्मणही होजाताहै ॥ ८ ॥

स्नानानि पंच पुण्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः ॥ आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं
दिव्यमेव च ॥ ९ ॥ आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ॥ आपोहि-
ष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥ १० ॥ यत्तु स्नातपवर्षेण स्नानं तद्दि-
व्यमुच्यते ॥ तत्र स्नात्वा तु गंगायां स्नातो भवति मानवः ॥ ११ ॥

बुद्धिमानोंने पांच स्नानोंको पवित्र कहाहै १ आग्नेय, २ वारुण, ३ ब्राह्म, ४ वायव्य, ५ दिव्य ॥ ९ ॥ जो भस्मसे मार्जन कियाजाताहै वह आग्नेय स्नान कहाताहै, जलसे जो स्नान किया जाताहै वह वारुण कहाताहै, 'आपो हिष्ठा' इन तीन ऋचाओंसे जो स्नान है उसे ब्राह्म कहतेहैं, और जो गौओंकी रजसे स्नान कियाजाताहै उसे वायव्य कहतेहैं ॥ १० ॥ धूपके निकलनेपर भी जो वर्षा होतीहो उस मेघोंकी वृद्धोंसे जो स्नान कियाजाताहै उसे दिव्य स्नान कहतेहैं इस दिव्य स्नानसे मनुष्य गंगास्नानके फलको पाताहै ॥ ११ ॥

स्नातुं यातं द्विजं सर्वे देवाः पितृगणैः सह ॥ वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृपार्ताः
सलिलार्थिनः ॥ १२ ॥ निराशास्ते निवर्त्तते वस्त्रनिष्पीडने कृते ॥ तस्मान्न
पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥ १३ ॥

जिस समय ब्राह्मण स्नान करनेके लिये जाताहै, उस समय पितर और देवता तृष्णासे आ-
तुर हो जलपीनेके लिये वायुरूप धारणकर उसके संगसंग जातेहैं ॥ १२ ॥ यदि वह ब्राह्मण स्नानकर बिना तर्पण कियेही वस्त्र निचोड़ डाले तब वह निराश होकर लौट आतेहैं, इसका-
रण पितरोंका तर्पण बिना किये वस्त्रको पहले कभी न निचोड़े ॥ १३ ॥

रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ तर्पितास्तेन ते सर्वे रुधिरं मलेन च ॥ १४ ॥ अवधूनीति यः केशान्जात्वा प्रस्रवतो द्विजः ॥ आचामेद्वा जल-स्थोपि स बाह्यः पितृदैवतैः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य रोमोंके छिद्रोंको पोंछकर पितरोंका तर्पण करताहै उसनें मानों रुधिर और पितरोंको वृत्तकिया ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मण स्नान करनेके पीछे केशोंको झाड़ताहै या उनमेंसे जल टपकाताहै, या जो जलमें बैठकर वा खड़े होकर आचमन करताहै, वह मनुष्य पितर और देवताओंके कर्म करने योग्य नहींहै ॥ १५ ॥

शिरः प्रावृत्य कंठं वा मुक्तकक्षशिखोऽपि वा ॥

विना यज्ञोपवीतेन आचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य शिर वा कंठको फेरकर और लम्बी शिखाको खोलकर, या जनेऊके विना आचमन करता है वह आचमन करकैभी शुद्ध नहीं होता, अर्थात् अशुद्धही रहताहै ॥ १६ ॥

जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्चेद्बहिः स्थले ॥

उभे स्पृष्ट्वा समाचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥ १७ ॥

मनुष्य स्थलमें बैठकर जल में और जलमें बैठकर स्थलमें आचमन न करे परन्तु दोनों जगह बैठा दोनों जगहहीं आचमन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ १७ ॥

ज्ञात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ॥

आचांतः पुनराचामिद्वा सो विपरिधाय च ॥ १८ ॥

आचमनकरनेके पीछे, स्नानकरनेके उपरान्त जलपीनेके पीछे, छींकनेके उपरान्त सो कर उठनेके पीछे, खानेके पीछे, या गलीमें चलनेके पीछे वा वस्त्र पहननेके पीछे फिर आचमन करले ॥ १८ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथाऽनृते ॥

पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ १९ ॥

छींकना, थूकना, दांतोंका उच्छिष्ट, अथवा झूठ बोलना, व पतितोंके साथ संभाषणकरना इन कर्मोंके करनेसे दाहिने कानका स्पर्श करले ॥ १९ ॥

भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते ॥

अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥ २० ॥

दिनका स्नान सूर्यकी किरणोंसे पवित्र है, और राहुके दर्शनोंको छोड़कर रात्रिका स्नान अशुभ कहाता है ॥ २० ॥

मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाथ देवताः ॥

सर्वे सोमे प्रलीयन्ते तस्माद्दानं तु संग्रहे ॥ २१ ॥

मरुत, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह सूर्य और देवता यह ग्रहणके समयमें सब चंद्रमा में लीन होताते हैं, इससे ग्रहणके समय में दानदेना अवश्य कर्तव्य है ॥ २१ ॥

खलुयज्ञे विवाहे च संक्रांतौ ग्रहणे तथा ॥ शर्वर्य्या दानमस्त्येव नाऽन्यत्र तु विधीयते ॥ २२ ॥ पुत्रजन्मानि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि ॥ राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥ २३ ॥ महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ॥ प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत्स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥

खलयाग, विवाह, संक्रांति और ग्रहण इन अवसरोंमें रात्रिके समय में दानकरै; अन्यसमय में न करै ॥ २२ ॥ पुत्रका जन्म, यज्ञ, मृतकका कर्म, राहुका दर्शन इनमें रात्रिके समय में दान उत्तम कहाहै, और कर्मों में नहीं कहा ॥ २३ ॥ रात्रिके बीचमें दो पहरोंको महानिशा कहते हैं, इसकारण सूर्यास्तके और पिछले पहरमें दिनकी समान स्नानकरै ॥ २४ ॥

चैत्यवृक्षश्रितिः पूयश्वंडालः सोमविक्रयी ॥

एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥ २५ ॥

चैत्यका वृक्ष (इसकी पूजा बौद्धमतवाले करतेहैं) चितारोघ, चांडाल, सोमलताका वेचने-वाला; इन सबका स्पर्शकरनेसे ब्राह्मण वस्त्रों सहित स्नान करै ॥ २५ ॥

अस्थिसंचयनापूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ॥

अंतर्दशाहे विप्रस्य ह्यर्धमाचमनं स्मृतम् ॥ २६ ॥

अस्थिसंचयनके पहले रुदनकरके स्नानकरना उचित है और ब्राह्मणोंको मरनेसे दसदिन उपरान्त आचमनकरना उचित है ॥ २६ ॥

सर्वं गंगासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥

सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २७ ॥

सूर्य या चंद्रमाको जिससमय राहु ग्रसले उससमय सभी जल, स्नान, दान आदि कर्मोंमें गंगाकी समान होजाते हैं ॥ २७ ॥

कुशैः पूतं भवेत्स्नानं कुशेनोपस्पृशद्विजः ॥

कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानसमं भवेत् ॥ २८ ॥

कुशासे पवित्रहुए जलसे स्नानकरै, और कुशाओंसेही ब्राह्मण आचमनकरै, कारण कि कुशासे उठायाहुआ जल अमृतपानकरनेकी समान होजाताहै ॥ २८ ॥

अभिकार्यात्परिध्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः ॥ वेदं चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥ २९ ॥ तस्माद्वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥ ३० ॥ शूद्रान्नरसपुष्टस्याधीयमानस्य नित्यशः ॥ जपतो जुह्वतो वापि गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥ ३१ ॥

जो ब्राह्मण अभिहोत्रसे अष्ट होगये हैं और जो संध्याउपासनासे वर्जित हैं; जो वेदको नहीं पढते उनको शूद्र कहाहै ॥ २९ ॥ इसकारण शूद्रहोनेके भयसे यदि ब्राह्मण सब वेदोंको न पढसकै तो एक वेदको तो अवश्यही पढे ॥ ३० ॥ शूद्रके अन्नसे पुष्टहोकर जो ब्राह्मण नित्य वेदपाठ हवन और जप करता है परन्तु तौभी उसको सद्गति नहीं प्राप्तहोती ॥ ३१ ॥

शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ॥ शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ३२ ॥ यः शूद्राया पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी ॥ वर्जितः पितृदेवभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥ ३३ ॥ मृतसूतकपुष्टांगं द्विजं शूद्रान्नभोजिनम् ॥ अहं तं न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥ ३४ ॥ गृध्रो द्वादशजन्मानि दशजन्मानि सूकरः ॥ श्वयोनौ सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥

शूद्रका अन्न, शूद्रके साथ मेल, शूद्रके साथ एकजगह बैठना, शूद्रसे ज्ञान लेना, यह अता-पवान मनुष्यकोभी पातित करदेते हैं ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रीसे भोजन बनवाताहै, या जिसकी स्त्री शूद्रीहो; वह ब्राह्मण पितर और देवताओंसे वर्जित है, और अन्तमें रौरव नरकको जाताहै ॥ ३३ ॥

है ॥ ३३ ॥ मृतकके सूतकमें खानेसे जिसका अंग पुष्टहुआहो, और जो शूद्रके यहांका अन्न भोजन करता हो वह न जाने किस २ योनिमें जन्म लेताहै ॥ ३४ ॥ परन्तु मनुने इस भांति कहाहै कि बाहर जन्मोत्तक गीध, दश जन्मोत्तक सूकर सात जन्मतक वह मनुष्य कुत्तेकी योनिमें जन्म लेताहै ॥ ३५ ॥

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ॥

ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३६ ॥

जो ब्राह्मण दक्षिणाके निमित्त शूद्रकी हविका हवन करताहै; वह ब्राह्मण शूद्र होताहै; और वह शूद्र ब्राह्मण होताहै ॥ ३६ ॥

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद्विजः ॥ भुञ्जानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥ अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् ॥ हतं दैवं च पित्र्यं च आत्मानं चोपघातयेत् ॥ ३८ ॥ भुञ्जानेषु तु विप्रेषु योऽप्रे पात्रं विमुञ्चति ॥ स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥ ३९ ॥ भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वति ये द्विजाः ॥ न देवास्तृप्तिमायांति निराशाः पितरस्तथा ॥ ४० ॥ अस्नात्वा वै न भुञ्जीत तथैवामिमपूज्य च ॥ न पर्णपृष्ठे भुञ्जीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥ ४१ ॥

मौन व्रतको धारणकर जो ब्राह्मण बैठे वह न बोलै; और जो भोजन करतेमें बोलै तौ उस अन्न को त्याग दे ॥ ३७ ॥ आधा भोजन करनेके उपरान्त जो ब्राह्मण उसी भोजनके पात्रमें जल पीताहै; उसके देवता और पितरोंके किये हुए सम्पूर्ण कर्म नष्ट होजाते हैं; और वह स्वयं अपनी आत्माकोभी नष्ट करताहै ॥ ३८ ॥ जो ब्राह्मणोंके भोजन करते समयमें पहले पात्र छोड़कर खड़ा होजाताहै; वह मूढ महापापी और ब्रह्महत्यारा कहाताहै ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण भोजन करते समयमें स्वस्ति कहते हैं उनपर देवता तृप्त नहीं होते, और उसके पितरभी निराश होजातेहैं ॥ ४० ॥ स्नान विना किये, और विना अग्निका पूजन किये भोजन करना उचित नहीं और रात्रिके समयमें पत्तेकी पीठपर दीपक के विना भोजन न करै ॥ ४१ ॥

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचितयेत् ॥ पोष्यवर्गार्थसिद्धयर्थं न्यायवर्ती स बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥ न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ॥ अन्यायेन तु यो जीवेत्सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥ ४३ ॥ अग्निचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ॥ दृष्टमात्राः पुनंत्येते तस्मात्पश्येत् नित्यशः ॥ ४४ ॥ अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमाणं घृतम् ॥ तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षेयत् ॥ ४५ ॥

दयावान् गृहस्थ सर्वदा धर्मकी चिन्ताकरै, और अपने पुत्र वा भृत्यआदिके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये बुद्धिमान् सर्वदा न्यायका वर्ताव करता रहै ॥ ४२ ॥ न्यायसे उपार्जन किये हुए धनसे अपनी रक्षाकरै, जो अन्यायसे जीवन व्यतीत करताहै, वह धर्मसे रहित है ॥ ४३ ॥ अग्निसे हवन करनेवाला, कपिलागौ, यज्ञकरनेवाला, राजा, भिक्षुक, समुद्र; यह देखनेसेही पवित्र करतेहैं, इसकारण इनका दर्शन सर्वदा करै ॥ ४४ ॥ अरणि, काला विलाव, चन्दन, उत्तम मणि, घी, तिल, काली मृगछाला, वकरी इनकी रक्षा अपने घरमें करै ॥ ४५ ॥

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम् ॥ तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम् ॥ ४६ ॥ ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोषा यकर्मभिः ॥ एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४७ ॥ कुटुंबिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ॥

यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं भकारकम् ॥ ४८ ॥ वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेय-
शतेर्मखैः ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्धयति ॥ ४९ ॥

जिस स्थानपर सौ गौ और एक बैल यह दशगुने अर्थात् दशहजार गौ और सौ बैल यह बिना बाँधे ठिक उस क्षेत्रको गोचर्म कहते हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य इस गोचर्ममात्र पृथ्वीका दानकरताहै वह मनुष्य मन वचन देह और कर्मोंसे कियेहुए ब्रह्महत्याइत्यादि पापोंसे छूटजाताहै ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य कुटुंबी, दरिद्री विशेष करके वेदपाठी इनको दान देताहै, वह शुभका करनेवाला है ॥ ४८ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीहरण करताहै वह वावडी, कूप तालाव और सौरे वाजपेय यज्ञोंके करनेसे और कोटि गौओंके दान करनेसे भी शुद्ध नहीं होता ॥ ४९ ॥

अष्टादशदिनादर्वाक्स्नानमेव रजस्वला ॥ अत ऊर्ध्व त्रिरात्रं स्यादुशना मुनि-
रब्रवीत् ॥ ५० ॥ युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम् ॥ चण्ड सूतिकोद-
क्यापतितानामधः क्रमात् ॥ ५१ ॥ ततः संधिमात्रेण सचैलं स्नानमाच-
रेत् ॥ स्नात्वावलोकयेत्सूर्यमज्ञानात्स्पृशते यदि ॥ ५२ ॥

यदि जो रजस्वला स्त्री रजोदर्शनसे अठारहदिन पहले पूर्व कहे हुए चांडालआदिका स्पर्श करले तौ स्नानही करै; आठ अठारह दिनसे आगे तीनरात उपवास करै यह उशना मुनिका वचनहै ॥ ५० ॥ यदि क्रमानुसार चार दिन, आठदिन बारह दिन सोलहदिन चांडाल सूतिका रजस्वला पतित इनके ॥ ५१ ॥ निकट रहजाय तौ उसको वखोंसहित स्नानकरना उचित है, और यदि अज्ञानसे स्पर्शभी करलियाहो तौ स्नान करके सूर्यका दर्शन करै ॥ ५२ ॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥

तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

जो ब्राह्मण हाथोंके होतेहुएभी पात्रमें मुखलागाकर जल पीताहै उसको अवश्यही कुत्तेकी योगे मिलतीहै ॥ ५३ ॥

यस्तु क्रुद्धः पुमान्ब्रूयाज्जायायास्तु अगम्यताम् ॥ पुनरिच्छति चेदेनां विप्रमध्ये तु
श्रावयेत् ॥ ५४ ॥ श्रांतः क्रुद्धस्तमोऽधो वा क्षुत्पिपासाभयादितः ॥ दानं पुण्य-
मकृत्वा वा प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ ५५ ॥ उपस्पृशेन्नृषिवर्णं महानद्युपसंगमे ॥
चीर्णाति चैव गां दद्याद्ब्राह्मणाभोजयेद्दश ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य क्रोधित होकर अपनी स्त्रीसे इसभांति कहताहै कि तू मेरे गमनकरने योग्य नहीं है, और फिर किसी समय उस स्त्रीकी इच्छा करै, तौ वह अपनी यह बात ब्राह्मणोंके निकट प्रकाश करदे ॥ ५४ ॥ थका, या क्रोधी, अथवा अज्ञानतासे अंधा; क्षुधातृष्णासे दुःखी उस ब्राह्मणको दान पुण्यकरना उचित नहीं वह केवल तीनदिनतकही प्रायश्चित्त करै ॥ ५५ ॥ और तीनों सद्यमें महानदीके संगममें स्नानकर आचमन करै, और प्रायश्चित्त करनेके उपरान्त त्रिकाल गोदान करै, और दश ब्राह्मणोंको जिमावै ॥ ५६ ॥

दुराधारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ॥

अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥ ५७ ॥

जो ब्राह्मण दुराचारी और निषिद्ध आचरण करनेवाले ब्राह्मणके अन्नको खाताहै वह एकदिन भोजन न करै ॥ ५७ ॥

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदांगवेदिनः ॥

भुक्त्वा न्नं मुच्यते पापादहोरात्रांतरात्ररः ॥ ५८ ॥

और जो मनुष्य उत्तम आचरण करनेवाले वेद वेदांतके जाननेमें निपुण ब्राह्मणके अन्नको खाताहै वह मनुष्य अहोरात्रके उपरान्त सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होताहै ॥ ५८ ॥

वौच्छिष्टमधोच्छिष्टमंतरिक्षमृतौ तथा ॥ कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत अशौचमरणे
तथा ॥ ५९ ॥ कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ॥ पुण्यतीर्थं नार्द्रशिराः
द्वादशसंख्यया ॥ ६० ॥ द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम् ॥

यदि कोई ऊर्ध्वोच्छिष्ट अवस्थामें मरजाय, या अधोच्छिष्ट अवस्थामें मरजाय, या अन्त-
रिक्षमें मरजाय उसके अशौचके अन्नको और मृतकके अशौचके भोजनको जो मनुष्य खाताहै
वह तीनकृच्छ्र ब्रतकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५९ ॥ दशहजार गायत्री, दोसौ प्राणायाम, और
पवित्र तीर्थमें बारहवार शिर भिगोकर स्नान, यह एककृच्छ्रका फल देतेहैं ॥ ६० ॥ और
दो योजनतक तीर्थकी यात्राकोभी एक कृच्छ्र कहाहै;

गृहस्थः कामतः कुर्याद्व्रतसः स्वलनं यदि ॥ ६१ ॥

सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ॥

जो गृहस्थी पुरुष अपने वीर्यको जानकर गिराताहै ॥ ६१ ॥ वह तीन प्राणायामकर एक-
हजार गायत्रीका जप करै.

चतुर्विधोपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ॥ ६२ ॥ समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं समा-
दिशत् ॥ सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत् ॥ ६३ ॥ वर्जयित्वा विकर्म-
स्थांश्छत्रोपानहवर्जितः ॥ अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ॥ ६४ ॥ गृह-
द्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ॥ गोकुलेषु वसेज्जैव ग्रामेषु नगरेषु च
॥ ६५ ॥ तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रसवणेषु च ॥ एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं
गत्वा तु सागरम् ॥ ६६ ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ रामचंद्र-
समादिष्टं नलसंचयसंचितम् ॥ ६७ ॥ सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥
सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥ ६८ ॥ यजेत वाश्वमेधेन राजा
तु पृथिवीपतिः ॥ पुनः प्रत्यागतो वेदम वासार्थमुपसर्पति ॥ ६९ ॥ सपुत्रः स-
हभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ गाश्वैकशतं दद्याच्चातुर्विधेषु दक्षिणाम् ॥
॥ ७० ॥ ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥

जो चारों विद्याओंसे युक्त हो यदि उसने ब्रह्महत्या की हो ॥ ६२ ॥ उसे सेतुबंध रामेश्वर
जानेका प्रायश्चित्त बताना कर्तव्य है; और वह सेतुबंध जानेके समय चारों वर्णोंसे भिक्षा मांगे
॥ ६३ ॥ केवल दुष्कर्म करनेवाले मनुष्योंसे भिक्षा न मांगे, उससमय जूता और छत्रीको
न रखे और वह भिक्षाके समयमें यह कहै कि मैंने अत्यन्त दुष्कर्म कियाहै, मैं महापापी
हूँ ॥ ६४ ॥ मैंने ब्रह्महत्या कीहै भिक्षाके निमित्त “तुम्हारे द्वारपर खड़ाहूँ” और गोशाला,
ग्राम, नगर इनमें निवास करै ॥ ६५ ॥ तपोवनके तीर्थोंमें वसे; और जहां नदीके प्रवाह हैं
वहां इनसे अपने पापोंको प्रगट करताहुआ पवित्र समुद्रपर जाय ॥ ६६ ॥ दश योजन चौड़े
और सौ योजन लम्बे श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे नल वानरके बनायेहुए ॥ ६७ ॥ समुद्रके
दर्शनकरै तब उसीसमय ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होताहै इसके उपरान्त समुद्रके पुलका
दर्शनकर पवित्रमन हो स्नानकरै ॥ ६८ ॥ और यदि पृथ्वीपति राजाही ब्रह्महत्या करै तो वह
अश्वमेध यज्ञको करै, इसके उपरान्त घर लौटकर आवे और निवासकरै ॥ ६९ ॥ इसके पीछे
पुत्र और भृत्योंसमेत ब्राह्मणोंको भोजन करावै; और चारों विद्याओंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको
सौ गौ दक्षिणामें दे ॥ ७० ॥ ब्राह्मणोंकी प्रसन्नतासेही मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूटजाताहै.

विंध्यादुत्तरतो यस्य संवासः परिकीर्तितः ॥ ७१ ॥

पराशरमतं तस्य सेतुबंधस्य दर्शनात् ॥

जो विंध्याचलसे उत्तरमें निवास करताहै ॥ ७१ ॥ उसे पराशर ऋषिने सेतुबंधका दर्शन करना कहाहै;

सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य प्रसूता स्त्रीको मारताहै; वह ब्रह्महत्यामें कहेहुए व्रतका आचरण करे ॥ ७२ ॥

सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥ चांद्रायणं ततश्चीर्णं कुर्याद्ब्राह्मण-

भोजनम् ॥ ७३ ॥ अनहुत्सहितां गां च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥

जो ब्राह्मण मदिरा पीताहै वह समुद्रगामिनी नदीके तटपर जाकर चांद्रायण व्रतकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ७३ ॥ और एक बैल और एक गौ ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे;

रापानं सकृत्कृत्वा अमिवर्णां सुरां पिबेत् ॥ ७४ ॥

स पावयेदिहात्मानमिह लोके परत्र च ॥

एकवार मदिराको पीकर, अग्निके समान रंगवाली मदिराका जो पान करताहै ॥ ७४ ॥ वह इस लोक और परलोकमें अपने आत्माको पवित्रकरताहै;

अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ॥ ७५ ॥ गच्छेन्मुश्लमादाय

राजानं स्ववधाय तु ॥ हतः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽसौ मुक्त एव च ॥ ७६ ॥

कामतस्तु कृतं यत्स्यान्नान्यथा वधमर्हति ॥

ब्राह्मणके सुवर्णको चुरानेवाला स्वयंही ॥ ७५ ॥ मूसलको अपने मारनेके लिये लेकर राजाके निकट जाय, फिर राजासे प्रहार खाकर वह शुद्ध होजाताहै, और इसके उपरान्त उसकी मुक्ति भी होजातीहै ॥ ७६ ॥ यदि जानकर अपराध कियाहै तब तो वह मारनेके योग्य है, इसके अतिरिक्त नहीं;

आसनाच्छयनाद्यानात्संभाषात्सहभोजनात् ॥ ७७ ॥ संक्रामंतीह पापानि तैल-

विंदुरिवांभसि ॥ चांद्रायणं यावकं च तुलापुरुष एव च ॥ ७८ ॥ गवां चैवा-

नुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

एक आसनपर बैठनेसे, सोनेसे, गमन करनेसे, बोलनेसे, भोजनसे ॥ ७७ ॥ पाप इस-मांति लिप्त होतेहैं जिसमांति जलमें पड़ीहुई तेलकी वृंद; चांद्रायण, यावकभोजन, तुलापुरुष-व्रत ॥ ७८ ॥ और गौओंके पीछे जाना, इससे सम्पूर्ण पाप नाश होताहै;

एतत्पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपंचकम् ॥ ७९ ॥ द्विनंवत्या समायुक्तं धर्म-

शास्त्रस्य संग्रहः ॥ यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ॥ ८० ॥ अध्येत-

व्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गकामिना ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्तनिर्णयो नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

यह पांचसौ वानवे श्लोकयुक्त पराशर मुनिके कहेहुए धर्मशास्त्रका संग्रह है ॥ ७९ ॥ जिस-मांति अध्ययनके कर्म हैं उसी मांति यह धर्मशास्त्र है ॥ ८० ॥ स्वर्गकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषोंको इसका पाठ यत्नसहित करना कर्तव्य है ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्तनिर्णये पं० श्यामसुन्दरलालत्रिपाठिकृत

भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

पाराशरस्मृतिः समाप्ता ॥ ११ ॥

॥ श्रीः ॥

व्यासस्मृतिः १२.

भाषाटीकासमेता ।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रिगणे य नमः ॥ अथ व्यासस्मृतिः ॥ वाराणस्यां सुखासीनं वेदव्यासं तपो-
निधिम् ॥ पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान्वर्णव्यवस्थितान् ॥ १ ॥ स स्पृष्टः
स्मृतिमास्मृत्वा स्मृतिं वेदार्थगर्भिताम् ॥ उवाचाथ प्रसन्नात्मा मुनयः
श्रूयतामिति ॥ २ ॥

काशीक्षेत्रमें श्रीवेदव्यासजी सुखसहित बैठे थे इस समय मुनियोंने उनके समीप जाकर
चारोवर्णोंके धर्मको पूछा ॥ १ ॥ सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान् वह वेदव्यासगुनि मुनियोंके इसभांति
पूछनेपर सम्पूर्ण वेदका अर्थ और स्मृति शा ी स्मरणकर प्रसन्न हो कहने लगे ॥ २ ॥

यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा ॥

चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितुमर्हति ॥ ३ ॥

जिन २ देशोंमें इच्छातुसार काला मृग सर्वदा विचरण करै उन्हीं उन्हीं स्थानोंमें वेदोक्त
आचरण करना उचित है ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ॥

तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वेषे स्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥

जहां श्रुति, स्मृति, और पुराणोंका विरोध हो वहां वेदोक्त कर्मही प्रधानहैं, और जहां स्मृति
और पुराणमें विरोध देखाजाय वहां स्मृतिके विषयही बलवान हैं; अर्थात् स्मृतिके कहेहुए
करना चाहिये ॥ ४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविश्रव्यो वर्णा द्विजातयः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु
नेतरे ॥ ५ ॥ शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥ वेदमंत्रस्वधास्वाहावष-
ट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजातिहैं, यह तीनों वर्णही श्रुति स्मृति और
पुराणमें कहेहुए धर्मके अधिकारी हैं; दूसरा नहीं ॥ ५ ॥ शूद्रजाति चौथा वर्ण है, इसीकारण
धर्मका अधिकारी है परन्तु वेदमंत्र, स्वधा, स्वाहा और वषट्कारादि शब्दोंके उच्चारणका
अधिकारी नहींहै ॥ ६ ॥

विप्रवद्विप्रवित्रासु क्षत्रवित्रासु क्षत्रवत् ॥ जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु
शूद्रवत् ॥ ७ ॥ वैश्यासु विप्रक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥

ब्राह्मणके साथ विधिपूर्वक जो ब्राह्मणकन्या विवाही गईहै उसकी सन्तानके जातकर्म
आदि संस्कार ब्राह्मणोंके समान हैं, और क्षत्रियके कुलसे जो विवाही गईहै उसकी सन्तानके

संस्कार क्षत्रियोंकी समान हैं, और जो शूद्रकुलसे विवाहीगर्ह्य है, उसकी सन्तानके संस्कार शूद्रकी समान होतेहैं ॥ ७ ॥ जिस वैश्यका ब्राह्मण या क्षत्रियने विवाह किया है, और वैश्यने शूद्रकी साथ विवाह किया है इन दोनोंकी सन्तानके कर्म शूद्रकी समान होतेहैं;

अधमादुत्तमायां तु जातः शूद्राधमः स्मृतः ॥ ८ ॥

नीचे वर्णसे उत्तम वर्णकी कन्यामें जो सन्तान उत्पन्नहो वह शूद्रसेभी नीचे कहातीहै ॥ ८ ॥

ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चंडालो धर्मवर्जितः ॥ ९ ॥ कुमारीसंभवस्त्वेकः सगो-

त्रायां द्वितीयकः ॥ ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ॥ १० ॥

ब्राह्मणीमें जो शूद्रसे उत्पन्नहो वह चांडाल होता है, उसको किसी धर्मका अधिकार नहीं ॥ ९ ॥ वह चांडाल तीन प्रकारका है; एक तो वह जो कि कुमारीसे उत्पन्नहो और दूसरा वह जो कि सगोत्र पुरुषद्वारा विवाहिता सगोत्रास्त्रीमें (व्यभिचारधर्मसे) उत्पन्नहो; और तीसरा वह जो कि ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्नहो ॥ १० ॥

वर्द्धकिर्नापितो गोप आशायः कुंभकारकः ॥ वणिकिरातकायस्थमालाकारकुटुं-
विनः ॥ वरटो मेदचंडालदासश्वपचकोलकाः ॥ ११ ॥ एतैस्त्यजाः समाख्याता

ये चान्ये च गवाशनाः ॥ एषां संभाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥ १२ ॥

वर्द्धकी (वडही) नापित (नाई) और गोप (ग्वाल) कुंभकार वणिक (जो लेनदेन करे और निषिद्ध जाति हो) किरात, कायस्थ, माली, वरट, मेद, चांडाल, कैवर्त, श्वपच, कोलक कुटुम्बी (कूटामाली) ॥ ११ ॥ और जो गोमांस भक्षण करतेहैं वह सभी अन्त्यज हैं, इन सबके साथ सम्भाषण करनेसे स्नानकरना उचित है; और इनके देखनेसे सूर्यभगवान्का दर्शन करे ॥ १२ ॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च ॥ नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपन-

क्रिया ॥ १३ ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः ॥ केशांतः स्नानमु-

द्वाहो विवाहान्निपरिग्रहः ॥ १४ ॥ त्रेतामिसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥

नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्ज क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥ विवाहो मंत्रतस्तस्याः

शूद्रस्यामंत्रतो दश ॥

१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमंत, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ मुण्डन, ॥ १३ ॥ ९ कर्णवेध, १० यज्ञोपवीत, ११ वेदारंभ, १२ केशांत (ब्रह्मचर्य समाप्त होनेपर १६ वें वर्षमें क्षौर), १३ स्नान (समावर्तन अर्थात् ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके यथाशास्त्र स्नान करना), १४ विवाह, १५ विवाहकी अग्निका ग्रहण, ॥ १४ ॥ १६ त्रेता (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय-इन तीन) अग्नि (अग्निहोत्र) का ग्रहण यह गर्भाधानादि सोलह संस्कार कहेहैं; कर्णवेधतक जो नौ संस्कार हैं वह स्त्रीके विनामंत्र

१ प्रथममें (९ श्लोकमें) इसीको सबसे निकट होनेके कारण उत्तम चांडाल कहकर फिर उसीके साथ और दो प्रकारके चांडालकरके दिखानेसे उन दोनोंमें चांडालसादृश्य (तुल्यता) दिखाकर निधत्त्वबोधन करतेहैं अर्थात् आगेके १२ श्लोकमें ११ श्लोकोक्त कर्त्तव्य असंशुद्ध महाशूद्रको श्वपचादि-
कोंके साथ पाठ किया है उसकाभी उनमें निधत्त्वबोधन करनेहीमें तात्पर्य जानलेना ।

होतेहैं ॥ १५ ॥ (ब्राह्मणी) स्त्रीकाभी विवाह मन्त्रोंसे होताहै और शूद्रोंके यह दशो विनामन्त्र होतेहैं;

गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥ १६ ॥ सीमंतश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ॥ एकादशेऽग्नि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥ १७ ॥ पष्ठे मास्यन्नमश्रीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ॥ कृतचूडे च वाले च कर्णवेधो विधी-
यते ॥ १८ ॥ विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्र एकादशे तथा ॥ द्वादशे वैश्यजातिस्तु
व्रतोपनयमर्हति ॥ १९ ॥ तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्विगुणाधिकः ॥ वेदव्र-
तच्युतो ब्राह्म्यः स ब्राह्म्यस्तोममर्हति ॥ २० ॥

गर्भाधानं प्रथम रजोदर्शनमें होताहै; जब तीनमहीनेका गर्भ होजाय तब पुंसवन संस्कार होताहै ॥ १६ ॥ सीमंत आठमें महीनेमें होताहै; और पुत्र उत्पन्न होनेपर जातकर्म, ग्यारहवें दिन नामकरण, चौथे महीने घरसे बाहर निकालकर बालकको सूर्यदेवका दर्शन कराना होताहै ॥ १७ ॥ और छठेमहीने अन्नप्राशन होना, और मुंडन अपने कुलकी रीतिके अनु-
सार करना उचित है; बालकका जब मुंडन होजाय तब कर्णवेध करना उचित है ॥ १८ ॥ ब्राह्मणका यज्ञोपवीत आठवें वर्ष करना; क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें, और वैश्यका बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ १९ ॥ यदि यज्ञोपवीत होनेकी नियत कीहुई अवस्था निकलजाय वरन उससे दूनी अवस्था वीतजाय और यज्ञोपवीत न हुआहो तो यह वेदके अतसे पतिव्रत होजातेहैं उनको “ब्राह्म्यस्तोम” यज्ञकरना उचित है ॥ २० ॥

द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः ॥ द्वितीयं छंदसां मातुर्ग्रहणा-
द्विधिवहुरोः ॥ २१ ॥ एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्यदोषतः ॥ श्रुतिस्मृति-
पुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २२ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, इन तीनों जातियोंके जन्म दो होतेहैं, पहला जन्म माताके गर्भसे, दूसराजन्म गुरुके निकट विधिसहित वेदमाता (गायत्री) को ग्रहण करनेसे ॥ २१ ॥ इस भांतिसे यह द्विजत्वको प्राप्तहोकर अन्यदोषोंसे रहित होकर श्रुति स्मृति और पुराण इनके पढ़ने योग्य होताहै ॥ २२ ॥

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥ विभृयाड्ङकौपीनोपवीताजिनमेख-
लाः ॥ २३ ॥ पुण्येऽग्निं गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राहुतिक्रियः ॥ स्मृत्वोकारं च गाय-
त्रीमारभेद्वेदमादितः ॥ २४ ॥ शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः ॥
पठेत् गुरुतः सम्यग् मं तद्विष्टमाचरेत् ॥ २५ ॥ ततोऽभिवाद्य स्थविरान्गुरुं
चैव समाश्रयेत् ॥ स्वाध्यायार्थं तदापन्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥ २६ ॥ नाप-
क्षिप्तोऽपि भाषेत नावनेताडितोऽपि वा ॥ विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनं
चार्कवीक्षणम् ॥ २७ ॥ तौर्ग्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलंक्रियाम् ॥ अज्ञानो-
द्धर्तनादर्शसंश्लेषनयोषितः ॥ २८ ॥ वृथादनमसंतोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥

ईषञ्जलितमध्याह्नानुज्ञातो-गुरुणा स्वयम् ॥ २९ ॥ अलोलुपश्चरेद्देशं वृत्ति-
पूतमवृत्तिषु ॥ सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपसृशेत् ॥ ३० ॥
कृतमाध्याह्निकोऽश्रीयादनुज्ञातो यथाविधि ॥ नाद्यादेकात्रमुच्छिष्टं भुक्त्वा
चाचामितामियात् ॥ ३१ ॥ नान्यद्विशितमादद्यादापन्नो द्रविणादिकम् ॥
अनिद्यामंत्रितः श्राद्धे पैत्रेऽद्यादुरुचोदितः ॥ ३२ ॥ एकामन्नप्यविरोधे व्रतानां
प्रयमाश्रमी ॥ भुक्त्वा गुरुमपासीत कृत्वा संवृक्षणादिकम् ॥ ३३ ॥ समिधो-
ऽग्नावादर्थात् ततः परित्यजेद्गुरुम् ॥ शयीत गुर्वनुज्ञातः प्रह्वश्च प्रथमं गुरोः
॥ ३४ ॥ एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतं चरेत् ॥ हितोपवादः प्रियवा-
कमुप्यगुर्वर्थसाधकः ॥ ३५ ॥

यज्ञोपवीत होजानेपर सावधान होकर गुरुके कुठमें निवास करे, और बंद, कोसीत, यज्ञोपवीत, मुमछाळा और मग्नला इनको धारण करे ॥ २३ ॥ इसके पीछे पवित्रदिनमें गुरुकी आज्ञा लेकर मन्त्रोंसे हवन करे, पहले "अकार" को उच्चारण करनाहुना गायत्रीको स्मरणकर वेदका प्रारंभ करे ॥ २४ ॥ शीघ्र और आचारेके जाननेके निमित्त वेदशास्त्रकोभी पढ़े; और गुरुदेवके कर्मको भीअधिकारसे करे ॥ २५ ॥ इसके पीछे वृद्धोंको नमस्कारकर भर्त्तामांतिसे सावधानहो पड़े, और सर्वदा गुरुके द्विके निमित्त आचरण करता रहे ॥ २६ ॥ यदि किसीसमय गुरुदेव विरक्तारभी करे तो उनके सम्मुख कुठ न बैठे; और गुरुकी ताडना करनेपरभी वहांसे न भागे, बर (किसीके साथ शयना), पैशुन्य (जुगलन), हिंसा, सूर्यका दर्शन ॥ २७ ॥ तौरात्रिक (गानावजाना) झूठ, उन्माद, निंदा, मृषण, अंजन, उवटन (आदेश, शोभका) देवता, माछा चन्दनआदिका ल्गाना, और स्नान ॥ २८ ॥ वृथा फिरना, असंतोष इनका त्रयचारी त्यागकरे; और मध्याह्न समय उपस्थित होनेपर स्वयंही गुरुकी आज्ञासे ॥ २९ ॥ चपलताको छोडकर उत्तम आचरण करने-वाली जातियोंमें भिक्षालांगे; और शीघ्रही भिक्षाको लेकर वनकी समान उसका उपमयी (रक्षा) करे ॥ ३० ॥ इसके पीछे मध्याह्न कार्यको समाप्तकर गुरुकी आज्ञानुसार विवि-सहित भोजन करे; एक मनुष्यके यहांके अन्न और उच्छिष्ट इनका भोजन न करे, और जो यदि खाते तो आचमन करते ॥ ३१ ॥ आपत्ति आजानेपरभी भिक्षाके अन्नके अतिरिक्त दूसरेका अन्न न ले; और अनिय (शुद्ध) के निमन्त्रण देनेपर गुरुकी आज्ञानुसार पितरोंके आद्धमें भोजन करते ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारीके व्रतमें जो एक मनुष्यके यहांका निषिद्ध अन्नह उसको खानेसे सन्वृक्षण (मार्जन) आदि करके गुरुकी सेवा करतारहे ॥ ३३ ॥ पहले अग्निमें समिधें रखे, पीछे गुरुकी सेवाकरे और (रात्रिकाळ होनेपर) गुरुको नमस्कारकर उनकी आज्ञासे शयन करे ॥ ३४ ॥ इस भांति प्रतिदिन अभ्यास करता हुआ ब्रह्मचारी व्रतोंको करे और मयुरवाणीसे वार्तालाप करे; और भर्त्तामांतिसे गुरुके कार्यको साधन करता रहे ॥ ३५ ॥

नित्यमाराधयेदेनमासमांतः श्रुतिग्रहात् ॥ अनेन विधिनाश्रीतो वेदमंत्रो द्विजं नयेत् ॥ ३६ ॥ शापानुग्रहसामर्थ्यमृषाणां च सलोकताम् ॥ पयोऽमृतान्यां

मधुभिः साज्यैः प्रीणांति देवताः ॥ ३७ ॥ तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत् ॥
यदंगं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ॥ ३८ ॥ व्यतिक्रमादसंपूर्णमनहंकृतिरा-
चरेत् ॥ परत्रेह च तद्ब्रह्म अनधीतमपि द्विजम् ॥ ३९ ॥

वेदके समाप्त होनेतक सर्वदा गुरुकी सेवा करतारहै; जो ब्राह्मण इसभांतिसे वेदमंत्र पढ-
ताहै ॥ ३६ ॥ वह शापदेनेमें और अनुग्रह करनेमें सामर्थ्यवान् और ऋषियोंके लोकमें
जानेयोग्य होताहै; दूध, अमृत, सह्य, घृत इनसे देवता प्रसन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ इसका-
रण अनध्यायतिथिको छोडकर प्रतिदिन वेद पढ़ै; और गुरुके वचनोंको मानकर वेदके
सम्पूर्ण अंगोंको अनध्यायोंमें पढता रहै ॥ ३८ ॥ व्यतिक्रमकरने (उलट पुलट करने) से
असंपूर्णही रहताहै, इसकारण अहंकारसे रहित हो गुरुके वचनके अनुसार कार्य करै, वह
ब्राह्मण चाहै वेदको न भी पढ़ै, परन्तु तौमी इसलोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है ॥ ३९ ॥

यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रतमाचरेत् ॥

स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमामुयात् ॥ ४० ॥

जो ब्रह्मचारी यज्ञोपवीतसे लेकर मृत्युपर्यन्त इस व्रतको करताहै वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी
ब्रह्मसायुज्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥

उपकुर्वाणंको यस्तु द्विजः षड्विंशवार्षिकः ॥

केशांतकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रतः ॥ ४१ ॥

जो छत्तीस वर्षका ब्राह्मण केशान्त कर्मतक शास्त्रोक्त व्रतोंको करताहै उसे उपकुर्वाणक
कहतेहैं ॥ ४१ ॥

समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ॥

स्नायीत गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥ ४२ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इसप्रकार चारों वेद या दो वेद तथा एकही वेदको समाप्तकर गुरुकी आज्ञासे अपनी-
शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर स्नान (जो गृहस्थमें आनेके समावर्तन कर्ममें है उसे)
करै ॥ ४२ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

एवं स्नातकर्ता प्राप्तो द्वितीयाश्रमकांक्षया ॥

प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसंभवात् ॥ १ ॥

इसप्रकार वेदको पढकर गुरुकी आज्ञासे स्नातकताको प्राप्त होकर गृहस्थआश्रमकी अभि-

1 करनेवाला ब्राह्मण पवित्रव्रतमें उत्पन्नहुई कन्याके साथ विवाह करनेकी चेष्टाकरै ॥ १ ॥

अरोगादुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम् ॥ सवर्णामसमानार्थममातृनितृगोत्रजाम्

॥ २ ॥ अनन्यपूर्विकां लघ्वां शुभलक्षणसंयुताम् ॥ धृताधोवसनां गौरीं विख्यात-

दशरूपाम् ॥ ३ ॥ स्थातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः ॥ दातुमि-
च्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोदहेत् ॥ ४ ॥

जिस कन्याको कोई रोग न हो और वंशभी उत्तम हो; जिसका पिता कुल नष्ट न हो जो अपने वर्णकी हो और मातापिताके गोत्रकी न हो ॥ २ ॥ पहले जिसकी सगाई न हुई हो छोटी और पतली हो; और शुभलक्षणोंसे युक्त अघोत्रक (लहंगा) पहनती हो, - गौरी (आठ-वर्षकी अवस्थावाली) हो और जिसके बड़े दशपुरुषतक विख्यात हो ॥ ३ ॥ और प्रसिद्ध नामवाले पुत्रवान् अच्छे आचरण करनेवाले और जो कन्या देनेकी इच्छा करता हो उसकी पुत्रीके साथ धर्मसहित विवाह करले ॥ ४ ॥

ब्राह्मोद्वाहविधानेन तद्भावे परो विधिः ॥

दातव्येषा रुद्रक्षाय वयोविद्यान्वयादिभिः ॥ ५ ॥

और ब्राह्म विवाहकी रीतिसे विवाह ब्राह्मविवाहके अभावमें दूसरी (ईशआदि विवाहोंकी) विधि कही है; और यह कन्या उसे देनेी जो अवस्था विद्या और वंशमें समान हो ॥ ५ ॥

पितृतत्पितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिभावेषु ॥

प्राग्भावे परो दद्यात्सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ॥ ६ ॥

पिता, पितामह, भाई, चाचा, जातिके मनुष्य, माता, इनमें प्रथम २ के अभावमें ऊपर २ दे यदि इनमें कोई न हो तो कन्या आपही पतिके यहां चली जाय ॥ ६ ॥

यदि सा दातृवैकल्याद्भजः पश्येत्कुमारिका ॥

भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तद्रपदः ॥ ७ ॥

यदि वह कन्या देनेवालेकी असावधानतासे रजको देखले तो; जो बार वह कृतुमनी हो स्वर्णही भ्रूणहत्या देनेवालेको लगती है; इसकारण ऐसी कन्याका विवाह न करे विवाह करनेसे वह पतित होजाता है ॥ ७ ॥

तुभ्यं दास्याम्यहमिति गृहीप्याप्नोति यस्तयोः ॥

कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दंडभाक् ॥ ८ ॥

"मैं तुझे कन्या दूंगा" और "मैं प्रदण कर्तंगा" इस भांति लेनेवाले और देनेवाले प्रतिज्ञा करले और फिर यदि उस प्रतिज्ञापर दोनोंमेंसे कोई न रहे वही दंडका भागी है ॥ ८ ॥

त्यजन्नदुष्टां दंडयः स्याददृष्यंश्चाप्यदृषिताम् ॥ ऊढायां हि सवर्णायामन्यां वा काममुदहेत् ॥ ९ ॥ तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात्प्रहीयते ॥

जो मनुष्य निर्दोष स्त्रीका त्यागकरता है; और जो निर्दोषको दण्ड लगाता है यह दोनों दंडके भागी हैं; यदि अपने वर्णकी एक स्त्रीसे विवाह करलिया हो तो दूसरे वर्णकी अन्य-स्त्रीसे भी इच्छानुसार विवाह करले ॥ ९ ॥ उस अन्य वर्णकी स्त्रीसे जो पुत्र होता है वह सवर्णही होता है;

१ पुत्रवान् कहनेसे पुत्रिकार्षर्षकी शंकाको दूरकरते हैं, अर्थात् कन्याश्रयको यदि पुत्र न होगा तो वह "भत्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति" इस विधिसे प्रथम पुत्रसन्तानिका श्राद्ध ही जायगा ।

उद्गहेत्क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम् ॥ १० ॥

न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाथमः पूर्ववर्णजाम् ॥

ब्राह्मण क्षत्रिया और वैश्याको विवाह, और क्षत्रिय वैश्याको विवाह ॥ १० ॥ और ब्राह्मण शूद्राको; और नीच वर्ण उत्तम वर्णकी कन्याको न विवाह;

नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी ॥ ११ ॥

धर्माधर्मेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तरुण स्वजातिषु ॥

अनेक वर्ण की धियोंमें जो सवर्णा है वही सहचारिणी है ॥ ११ ॥ धर्म वा अधर्ममें है परन्तु वह धर्मिष्ठा है वही अपनी जातिमें बड़ीभी है;

पातितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा ॥ १२ ॥ पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्यो-

ऽभूवानिति श्रुतिः ॥ यावन्न विंदते जायां तावद्वर्द्धो भवेत्पुमान् ॥ १३ ॥

नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ॥ गुर्वी सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ॥ १४ ॥ यतस्ततोन्वहं भूत्वा खवशो विभृयाच्च ताम् ॥

हे ब्राह्मणों ! यह एक देह पहले ब्रह्मानें फाड़ा है ॥ १२ ॥ आधे देहसे पति और आधेसे स्त्री हुई है यह श्रुतिमें प्रमाण है; जबतक पुरुषका विवाह नहीं होता है तबतक वह असम्पूर्ण है ॥ १३ ॥ ब्रह्मासे कुछ सम्पूर्ण पुरुषही आधे नहीं होते, यहभी श्रुति है । वह स्त्री धर्म अर्थ कामकी बड़ी भारी पृथ्वी है, उसे पतिके अतिरिक्त दूसरा नहीं विवाह सकता ॥ १४ ॥ जिस स्त्रीको दूसरा न विवाहसकै इसकारण प्रतिदिन स्वतंत्र होकर उस स्त्रीकी पालना करता रहै;

कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ॥ १५ ॥ स्वकृतं वित्तयासाद्य

वैतानाग्निं न हापयेत् ॥ स्मार्तं वैवाहिके बहौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु ॥ १६ ॥

कर्म कुर्यात्प्रतिदिनं विधिवत्प्रीतिपूर्वकः ॥

इसके पीछे विवाह करके अग्नि और स्त्रीके साथ पुरुष घरको निर्माणकर घरमें निवास करै ॥ १५ ॥ अपने उपार्जन कियेहुए धनको पाकर वैतानाग्निको न त्यागै, स्मृतिमें कहेहुए कर्म विवाहकी अग्निमें और वेदोक्तकर्म वैतानाग्निमें ॥ १६ ॥ प्रतिदिन विधिसहित उक्त कर्मोंको करता रहै;

सम्यग्धर्मार्थकामेषु दंपतिभ्यामहर्निशम् ॥ १७ ॥ एकचित्ततया भाव्यं समा-

नव्रतयुत्तितः ॥ न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गाविधिसाधनम् ॥ १८ ॥ भावतो

ह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्रविधिः परः ॥

स्त्री पुरुष धर्म अर्थ कामोंमें रातदिन भलीभांति ॥ १७ ॥ एकमन, एकव्रत, और एक-युत्तिसे रहै; स्त्रियोंको त्रिवर्ग विधिसाधन अर्थात् धर्म अर्थ काम प्रदायक अनुष्ठान स्वामीसे पृथक् न करना चाहिये ॥ १८ ॥ भावसे वा आज्ञासे यही शास्त्रकी उत्तम विधि है;

अप्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ॥ १९ ॥ उत्थाप्य शयनाद्यानि

कृत्वा वेश्मविशोधनम् ॥ मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य सामिशालं स्वसंगणम् ॥ २० ॥

शोधयेदमिकार्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥ प्रोक्षण्यैरिति तान्येव यथा-स्थानं प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥ इंद्रपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् ॥

शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ॥ २२ ॥ महानसस्य पात्राणि
 वहिः प्रक्षाल्य सर्वथा ॥ मृद्धिश्च शोधयेच्चूर्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्ततः ॥ २३ ॥
 स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च ॥ कृतपूर्वाह्नकार्या च स्वगुरुन-
 भिवादेयेत् ॥ २४ ॥ ताभ्यां भर्तृपितृभ्यां वा भ्रातृमातुलवांधवैः ॥ वस्त्रालंका-
 ररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥ २५ ॥ मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुव-
 र्तिनी ॥ छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु ॥ २६ ॥ दासीवादिष्टका-
 र्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् ॥ ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत् ॥
 ॥ २७ ॥ वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ॥ पतिं चैवाभ्यनुज्ञाता सिद्ध-
 मन्नादिनात्मना ॥ २८ ॥ भुक्त्वा नयेदहःशेषमायव्ययविचिंतया ॥ पुनः सायं
 पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ॥ २९ ॥ कृतान्नसाधना साध्वी सुभृशं भोजयेत्-
 पतिम् ॥ नातितृप्त्या स्वयंभुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥ ३० ॥ आस्तीर्य
 साधु शयनं ततः परिचरेत्पतिम् ॥ सुप्ते पतौ तदभ्याशे स्वपेत्तद्रतमानसा ॥
 ॥ ३१ ॥ अनन्ना चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेंद्रिया ॥ नोच्चैर्वदेन्न परुषं न
 बहून्पत्युरप्रियम् ॥ ३२ ॥ न केनचिद्विवेदञ्च अप्रलापविलापिनी ॥ न चापि
 व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ॥ ३३ ॥ प्रमादोन्मादरोषेर्प्यावंचनं चाति-
 मानिताम् ॥ पैशुन्यहिंसाविद्वेषमदाहंकारधूर्तताः ॥ ३४ ॥ नास्तिक्यं साहसं
 स्तेयं दंभान्साध्वी विवर्जयेत् ॥ एवं परिचरन्ती सा पतिं परमदैवतम् ॥ ३५ ॥
 यशः शमिह यात्येव परत्र च सलोकताम् ॥ योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्ति-
 कमथोच्यते ॥ ३६ ॥

स्त्री पतिसे प्रथम उठकर देहकी शुद्धिको करके ॥ १९ ॥ शय्याआदिको उठाव धरका शोधन
 कर, मार्जन और लीपनेसे अग्निकी शाला और अपने आंगनको ॥ २० ॥ पवित्र करे-
 इसके उपरान्त गरमजलसे अग्निके उपयुक्त पात्रोंको ग्रीष्मणीयों से धोकर यथास्थानपर रखदे
 ॥ २१ ॥ जोड़ेके पात्रोंको कभी पृथक् न रखे, इसके पीछे पात्रोंको शुद्धकर जलआ-
 दिसे भरकर रखदे ॥ २२ ॥ इसके पीछे चौकेसे बाहर रसोईके सब पात्र धोकर मिट्टीसे
 चूल्हेको लीप उसमें अग्निको रखदे ॥ २३ ॥ वर्तनेके पात्रोंको और रसके द्रव्यको स्मरण
 करके पूर्वाह्नका कामकरके अपने माता पिताओंको नमस्कार करे ॥ २४ ॥ माता, पिता,
 पति, भ्रातृ, भाई, मामा, बांधव इनके दियेहुए वस्त्रोंको और आभूषणोंको धारण करे ॥ २५ ॥
 वह पतिव्रता स्त्री पतिकी आज्ञानुवर्तिनी होकर मन, वचन और कायसे पवित्र स्वभाव प्रका-
 शकर छायाकी समान पतिके पीछे चले, निर्मल चित्तवाली सखीकी समान पतिका हित
 करे ॥ २६ ॥ स्वामीकी आज्ञापालन करनेके विषयमें दासीकी समान व्यवहार करे
 इसके उपरान्त भोजन बनाकर पतिको निवेदन करे ॥ २७ ॥ वल्लिभैश्वदेवादि कार्यके
 समाप्त करनेपर उस अन्नसे जिमानेके योग्यों (पुत्रआदिकों) को भोजन करा-
 कर फिर पतिको जिमावे; और फिर स्वामीकी आज्ञासे शेष वचेहुए अन्नको अप खाए

॥ २८ ॥ भोजन करनेके उपरान्त शेष दिनको आमदनी और खर्चकी चिन्तासे व्यतीत करै; इसके उपरान्त फिर सन्ध्यासमय और प्रातःकाल घरकी शुद्धिकरकै ॥ २९ ॥ इसके पीछे व्यंजनादि बनाकर साध्वी स्त्री अत्यन्त प्रीतिसे पतिको भोजन करावै; और फिर स्वयं भी पतिके बिना आप खाकर गृहस्थकी नीतिको करकै ॥ ३० ॥ उत्तम शय्याको बिछाकर पतिकी सेवाकरै । पतिके सोजानेपर पतिमेंही चित्तवाली वह स्त्री पतिके निकट सोजाय ॥ ३१ ॥ निद्राके समयमें नंगी न हो; प्रमत्त न होकर इन्द्रियोंको जीते रहै; ऊँची और कठोर वाणी न कहै; पतिको अप्रिय वचन न कहै ॥ ३२ ॥ किसीके साथ लड़ाई झगडा न करै; अनर्थकारी और वृथा न बोलै; व्यय (खर्च) में अपना मनलगाये रखै; धर्म और अर्थका विरोध न करै ॥ ३३ ॥ असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्ष्या, ठगई, अत्यन्तमान, जुगलपन, हिंसा, वैर, मद, अहंकार, धूर्तपन ॥ ३४ ॥ नास्तिकपन, साहस, चोरी, दंभ, साध्वी स्त्री इन सबका त्याग करदे; इसप्रकार परमदेवस्वरूप पतिकी सेवाकरनेसे वह स्त्री ॥ ३५ ॥ इसलोकमें कीर्ति और यश तथा सुखको भोगकर परलोकमें पतिके लोकको प्राप्त होतीहै; स्त्रियोंके इसप्रकार नित्यकर्म कहै, इसके आगे नैमित्तिक कर्म कहतै ॥ ३६ ॥

रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् ॥ सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितांतर्गृहं वसेत् ॥ ३७ ॥ एकांवरावृत्ता दीना स्नानालंकारवर्जिता ॥ मौनान्यधोमुखी चक्षुःपाणिपद्मिरचंचला ॥ ३८ ॥ अशनीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने ॥ स्वपेद्रूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥ स्नायीत च त्रिरात्रांते संचैलमुदिते रवौ ॥ विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ ४० ॥ कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्चरन् चरेत् ॥

ऋतुमती होनेपर दोषके भयसे सबको त्यागदे; जहां कोई न देखसकै लज्जावती होकर इसभांति निर्जन घरमें निवास करै ॥ ३७ ॥ एक वस्त्रको पहनकर स्नान और आभूषणोंको त्यागकर, दीनकी समान मौन धारणकर नेत्र तथा हाथ पैर इनको न चलावै ॥ ३८ ॥ रात्रिके समयमें एक अन्नका मट्टीके पात्रमें भोजन करै; अप्रमत्ता हो पृथ्वीपर शयनकरै इसभांति तीनदिन बितावै ॥ ३९ ॥ इसभांति तीनदिनके उपरान्त चौथेदिन सूर्यदेवके उदय होनेपर वस्त्रोंसहित स्नानकरै; इसके पीछे पतिका दर्शनकर धर्मसे शुद्ध होतीहै ॥ ४० ॥ शौचजनक कार्यको समाप्तकर वह स्त्री पहलेकी समान सम्पूर्ण कार्योंको करै;

रजोदर्शनतो याः स्यू रात्रयः षोडशर्तवः ॥ ४१ ॥ ततः पुंवीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥ चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥ गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्रंक्षराक्षसान् ॥

रजोदर्शनसे लेकर सोलहरात्रियोंतक ऋतुकाल रहताहै ॥ ४१ ॥ इन रात्रियोंमें पुरुषका बीज बिनाक्षेप शुद्ध क्षेत्रमें जमतहै; इसभांति पर्वके चारदिनोंमें गमनकरना निषिद्ध है ॥ ४२ ॥ युग्म (सम) रात्रियोंमें रेवती, मघा, आश्लेषा इन नक्षत्रोंमें गमन करै;

प्रच्छादितादित्यपथे पुमान्गच्छेत्स्वयोषितः ॥ ४३ ॥ क्षमालंकृदवाप्नोति पुत्रं पृजितलक्षणम् ॥ ऋतुकालेभिगम्यैवं ब्रह्मचर्यं व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥ गच्छन्नपि यथा मं न दुष्टः स्यादनन्यकृत ॥

और अपनी स्त्रीके संग जिस स्थानमें सूर्यकी किरण न आतीहो ऐसे स्थानमें गमन करै ॥ ४३ ॥ तब वह पुरुष शुभलक्षणयुक्त प्रशंसा करने योग्य पुत्रको प्राप्त करताहै पूर्वाक्तरी-
तिके अनुसार स्त्रीमें गमन करनेसे ब्रह्मचारीही रहता है ॥ ४४ ॥ दुष्ट नहीं होता यदि वह
निन्दितकर्म आदि न करै;

भ्रूणहत्यामवाप्नोति ऋतौ भार्यापराङ्मुखः ॥ ४५ ॥ सा त्ववाप्यान्यतो गर्भं
त्याज्या भवति पापिनी ॥ महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ॥ ४६ ॥

और जो पुरुष ऋतुके समय अपनी स्त्रीके साथ गमन नहीं करताहै वह भ्रूणहत्याके
पापका भागी होताहै ॥ ४५ ॥ जो ऋतुमती स्त्री यदि अन्यपुरुषसे गर्भधारण करले तो वह
पापिनी त्यागनेके योग्यहै ॥ ४६ ॥

सद्वृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः ॥

महापातकदुष्टोऽपि स प्रतीक्ष्यस्तया पतिः ॥ ४७ ॥

यदि कोई पुरुष उत्तमचरित्रवाली स्त्रीको त्यागताहै वह महापातकके पापमें लिप्त होताहै;
और महापातकसे दुष्ट पतिको शुद्धितकभी वह स्त्री प्रतीक्षा करतीरहै ॥ ४७ ॥

अशुद्धे क्षयमादूरं स्थितायामनुचिन्तया ॥ व्यभिचारेण दुष्टानां पतीनां दर्शना-
द्वृते ॥ ४८ ॥ धिक्कृतायामवाच्यायामन्यत्र वासयेत्पतिः ॥ पुनस्तामातर्वस्त्रा-
तां पूर्ववद्व्यवहारयेत् ॥ ४९ ॥ धूर्ता च धर्मकामघ्नीमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् ॥
सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत् ॥ ५० ॥ अधिविन्नामपि विभुः स्त्रीणां
तु समतामियात् ॥

महापातककी शुद्धिपर्यन्त व्यभिचारी जो दुष्ट पति है उसके दर्शनको छोड़कर दूरस्था-
नमें चिन्तासे टिकी स्त्रीको ॥ ४८ ॥ या जिसे धिक्कार देदीहो, या जिसके साथ बोलना
छोड़ दियाहो उसे दूसरे स्थानमें रखदे; और जब वह ऋतुमती हो तब पूर्वके समान वर्ताव
करै ॥ ४९ ॥ जो स्त्री धूर्त हो; जो धर्म और कामको नष्ट करनेवाली हो; और जिसके पुत्र
न हो, जिसे कोई रोग हो, जो अत्यन्त दुष्ट हो, जिसे कुछ व्यसनभी हो जो अपना हित
न चाहतीहो, इन स्त्रियोंका अधिवास न करे, अर्थात् इनके ऊपर दूसरा विवाह करले ॥ ५० ॥
वह अधिविन्ना स्त्री जिसपर दूसरा विवाह भी कियागयाहै पतिकी अन्य स्त्रियोंकीही
समान होतीहै;

विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ॥ ५१ ॥

पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥

वह अधिविन्ना स्त्रीभी मलिनवर्ण दीनमुख देहके संस्कार उवटना आदिको त्यागदे ॥ ५१ ॥
और पतिमें व्रत रखै, निराहार रहै, पतिके परदेश चलेजानेपर शरीरको सुखादे,

मृतं भर्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ॥ ५२ ॥

जीवन्ती चैत्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्बभुः ॥

और पतिके मरजानेपर वह ब्राह्मणी पतिके साथ अभिमें प्रवेशकरै अर्थात् सती होजाय ॥ ५२ ॥ यदि जीवित रहै तौ वालोंको मुडादे, और तपस्या करके शरीरको शुद्धकरै,

सर्वावस्थामु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ॥ ५३ ॥

तदेवानुक्रमात्कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥

स्त्रियोंकी सभी अवस्थाओंमें रक्षा नहीं करना योग्य नहीं है ॥ ५३ ॥ इसकारण क्रमानुसार तीनों अवस्थाओंमें पिता, पति, पुत्रआदि स्त्रियोंकी रक्षाकरै;

जाताः सुरक्षिताः पापात्पुत्रपौत्रप्रपौत्रकाः ॥ ५४ ॥

ये यजन्ति पितृन्यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयैः ॥

पापसे जिन स्त्रियोंकी रक्षा कीजाय उनसे उत्पन्न हुए जो पुत्र पौत्र और प्रपौत्र हैं ॥ ५४ ॥ वे मोक्ष देनेवाले बड़ा उदय देनेवाले यज्ञोंकरके पितरोंकी पूजा करतेहैं;

मृतानामभिहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥

दाहयेदविलंवेन भार्या चात्र व्रजेत सा ॥ ५५ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और मरेहुए पतिके अभिहोत्र करके उसकी स्त्रीको भी विधिसहित दग्धकरै, और जिस स्त्रीको इसी अभिहोत्रकी अभिमें दाह किया जाताहै वह भी स्वर्गमें निवास करतीहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति कर्म त्रिधा मतम् ॥

त्रिविधं तच्च वक्ष्यामि गृहस्थस्यावधार्यताम् ॥ १ ॥

गृहस्थमात्रको नित्य, नैमित्तिक और काम्य यह तीन प्रकारके कर्म कहेंहैं. उन तीनों कर्मोंको कहताहूं तुम श्रवणकरो ॥ १ ॥

यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् ॥

आलोक्य मंगलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥ २ ॥

रात्रिके पिछले पहरमें उठकर विष्णुका स्मरणकरै, इसके पीछे मंगल द्रव्योंको देखकर आवश्यकीय कर्मोंको करै ॥ २ ॥

कृतशौचो निषेव्याग्नीन्दन्तान्प्रक्षाल्य वारिणा ॥

स्नात्वोपास्य द्विजः संध्यां देवार्दींश्चैव तर्पयेत् ॥ ३ ॥

इसके पीछे शौचक्रियाको करकै आग्निकी सेवाकरै; इसके उपरान्त जलसे दांतोंको धोकर स्नानकर ब्राह्मण सन्ध्या करनेके उपरान्त देवता और पितरोंका तर्पण करै ॥ ३ ॥

वेदेवेदांगशास्त्राणि इतिहासानि चाभ्यसेत् ॥ अध्यापयेच्च सच्छिष्यान्सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥ ४ ॥ अलब्धं प्रापयेच्छ्रद्धा क्षणमात्रं समापयेत् ॥ समर्थो हि र्थेन नाविज्ञातः कचिद्वसेत् ॥ ५ ॥

इसके पीछे वेद वेदाङ्ग शास्त्र और इतिहास इनका अभ्यासकरै; फिर अच्छे शिष्य और उत्तम ब्राह्मणको पढावै ॥ ४ ॥ फिर अलव्य वस्तुकी प्राप्तिका उपायकरै; और उस वस्तुके मिलनेपर क्षणकालके निमित्त पढानेको समाप्त करदे; और सामर्थ्यवान् होकर किसीकी सामर्थ्यके बिनाजाने निवास न करै, अर्थात् जिस जगह अपनेको कोई न जानताहो स्थानपर निवास न करै ॥ ५ ॥

सरित्सरः वापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु ॥ स्नायीत यावदुद्धृत्य पंचपिंडानि वारिणा ॥ ६ ॥ तीर्थाभावेऽप्यशक्तो वा स्नायात्तोयैः समाहृतैः ॥ गृहांगणगतस्तत्र यावदंबरपीडनम् ॥ ७ ॥

नदी, सरोवर, वावडी, कुण्ड, झरने इनमें स्नान जब करै जब कि पहलै पांच पिंड मिट्टीके बाहर निकालदे ॥ ६ ॥ तीर्थके न होने या जानेकी सामर्थ्य न होनेपर कुण्डमेंसे जलको निकालकर स्नान करले; और घरके आंगनमें जितने जलसे बख भीजजाय उत-नेही जलसे ॥ ७ ॥

स्नानमन्वेदवतैः कुर्यात्पावनैश्चापि मार्जनम् ॥

मंत्रैः प्राणांस्त्रिराचम्य सौरैश्चार्कं विलोकयेत् ॥ ८ ॥

जलही है देवता जिनका ऐसे मन्त्रोंसे स्नानकरै, इसके उपरान्त पवित्र करनेवाले मन्त्रोंसे मार्जन करै; और मन्त्रोंसे तीन प्राणायामकर सूर्यके मन्त्रोंसे सूर्यका दर्शन करै ॥ ८ ॥

तिष्ठन्निस्थत्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत् ॥ ऋचां च यजुषां साम्नामथर्वागिरसामपि ॥ ९ ॥ इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः ॥ शक्त्या सम्यक्पठेन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १० ॥ स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात् ॥ तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥ ११ ॥

इसके पीछे खडा होकर वेदमाता गायत्रीका और वेदका अभ्यासकरै ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ॥ ९ ॥ इतिहास पुराण वेद और उपनिषद् इनके अल्पभागकोभी समाप्ति होनेतक जो ब्राह्मण अपनी शक्तिके अनुसार भलीभांतिसे पढताहै ॥ १० ॥ वह यज्ञ दान और तप इनके सम्पूर्ण फलको पाताहै इसकारण ब्राह्मण प्रतिदिन मौनधारणकर वेदका पाठकरै ॥ ११ ॥

धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तिः पठेत् ॥ कृतस्वाध्यायः प्रथमं तर्पयेच्चाथ देवताः ॥ १२ ॥ जान्वाच्य दक्षिणां दर्भैः प्रागग्रैः सयवैस्तिलैः ॥ एकैकांजलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥ १३ ॥ समजानुद्वयो ब्रह्मसूत्रहार उदङ्मुखः ॥ तिर्यग्दर्भैश्च वामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥ १४ ॥ अंभोभिरुत्तराक्षितैः कनिष्ठा-मूलनिर्गतैः ॥ द्वाभ्यां द्वाभ्यामंजलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥ १५ ॥ दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वाच्य द्विगुणैः कुशैः ॥ तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भाद्विनिःसृतैः ॥ १६ ॥ दक्षिणांसोपवीतः स्यात्कमेणांजलिभिस्त्रिभिः ॥ संतर्पयेदिव्यपितृस्तत्परांश्च पितृन्स्वकान् ॥ १७ ॥ मातृमातामहांस्तद्वन्निवेनं हि

त्रिभिस्त्रिभिः ॥ मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ॥ १८ ॥ तानेकां-
जलिदानेन तर्पयेच्च पृथक्पृथक् ॥ असंस्कृतप्रमीता ये भेतसंस्कारवर्जिताः
॥ १९ ॥ वस्त्रनिष्पीडितांभोभिस्तेषामाप्यायनं भवेत् ॥ अतर्पितेषु पितृषु
वस्त्रं निष्पीडयेच्च यः ॥ २० ॥ निराशाः पितरस्तस्य भवन्ति सुरमानुषैः ॥
पयोदर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥ २१ ॥ सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि
वृथा विना ॥ अन्यचित्तेन यद्दत्तं यद्दत्तं विधिवर्जितम् ॥ २२ ॥ अनास-
नस्थितेनापि लं रुधिरायते ॥ एवं संतर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पय-
न्ति च ॥ २३ ॥

और सम्पूर्ण धर्म तथा इतिहासभी अपनी सामर्थ्यके अनुसार पढ़ै स्वाध्यायको करके
प्रथम देवताओंको तर्पण इसप्रकारसे करै ॥ १२ ॥ पूर्वको मुखकर दहिने घुटनेको नवाकर;
पूर्वको अग्रभागवाली । और जौ तिल आदिको लेकर स्वाभाविकरूपसे यज्ञोपवीतकी
धारणकर दो अंजलि देकर तर्पण करै ॥ १३ ॥ दोनों घुटनोंको बराबरकर जनेऊ कंठमें पहरे
उत्तरको मुखकर बाईं ओरको अग्रभागवाली तिरछी कुशा और तिल मिलेहुए जैसे ॥ १४ ॥
कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे उत्तरमें जो गिरै ऐसे जल द्वारासे दो २ अंजलियोंसे फिर मनु-
ष्योंका तर्पणकरै ॥ १५ ॥ दक्षिणकी ओरको मुखकर बांये घुटनेको नवाय द्विगुण कुशाओंसे
तिल और देशिनीके मूल और कुशासे गिरते जलोंसे ॥ १६ ॥ दहिने कंधेपर जनेऊ रख
क्रमानुसार तीन २ अंजुली देकर देवतारूप पितरोंका तर्पणकर फिर अपने पितरोंका तर्पण
करै ॥ १७ ॥ इसके पीछे माता और मातामहआदि तीनोंका भी इसी भांति २
अंजुलियोंसे तर्पण करै और जो मातामहके गोत्रके अन्य दाहसे वर्जित हैं ॥ १८ ॥ उनका
भी पृथक् २ दो २ अंजुली देकर तर्पण करै; और जो विना संस्कारके हुए ही मरणयेहैं;
जिनका दाहादिक संस्कार नहीं हुआहै ॥ १९ ॥ उनकी तृप्ति वस्त्र निचोडनेसे ही होजातीहै; जो
पुरुष पितरोंकी विना तृप्ति किये हुए वस्त्रको निचोडता है ॥ २० ॥ उसके पितर देवता और
मनुष्योंसमेत निराश होजातेहैं; स्वधा, गोत्र, नाम, तिल इनसे जो जल दियाजाताहै ॥ २१ ॥
वह श्रेष्ठ है; और वस्त्रके निचोडनेसे ही वह सब निष्फल होजाताहै; अन्यत्र मन लगाकर वा
विधिसे रहित जो जल दियाजाताहै ॥ २२ ॥ या विना आसनपर बैठकर जो दियाजाताहै,
वह सब रुधिरके समान होजाताहै, उपरोक्त नियमोंके अनुसार पितरोंका तर्पण करनेपर पितृ
प्रसन्न होकर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करतेहैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रावरुणनामभिः ॥ पूजयेल्लक्षितैर्मन्त्रैर्जलमंत्रोक्तदेवताः ॥
॥ २४ ॥ उपस्थाय रविं क । पूजयित्वा च देवताः ॥ ब्रह्माग्नीन्द्रौषधीजीववि-
ष्णूनां निहतांहसाम् ॥ २५ ॥ तत्तन्मन्त्रैश्च सत्कारं नमस्कारैः स्वनामभिः ॥
कृत्वा मुखं समालभ्य स्नानमेवं समाचरेत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आदित्य, मित्र, वरुण यह नाम जिन मन्त्रोंमें हों, उन मंत्रोंसे जलके
मंत्रोंमें कहीहुई विधिसे देवताओंका पूजन करै ॥ २४ ॥ पूर्वदिशाका पूजन कर सूर्यकी
स्तुति करके ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, औषधी, जीव, विष्णु इन दोपनाशकोंको ॥ २५ ॥

उन उनके मन्त्रोंसे नमस्कार कर और उन उनके नामोंसे सत्कार करके मुखको पोंछ इस भांति स्नान करै ॥ २६ ॥

ततः प्रविश्य भवनमावसथ्ये हुताशने ॥ पाक्यज्ञांश्च चतुरो विदध्याद्विधिव-
द्विजः ॥ २७ ॥ अनाहितावसथ्यामिरादायान्नं घृतशृतम् ॥ शाकले न विधानेन
जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥ २८ ॥ व्यस्ताभिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः पर-
म् ॥ षड्भिर्देवकृतस्येति मंत्रविद्विर्यथाक्रमम् ॥ २९ ॥ प्राजापत्यं, स्विष्ट-
कृतं हुत्वैवं द्वादशाहुतीः ॥ ओंकारपूर्वः स्वाहांतस्त्यागः स्विष्टविधानतः ॥ ३० ॥
इसके उपरान्त भवनमें जाकर घरकी अग्निमें चतुर ब्राह्मण विधिसहित पाक्यज्ञ करै
॥ २७ ॥ जिसमें घरकी अग्निमें अग्निहोत्र ग्रहण न कियाहो वह ब्राह्मण घृतसे भरेहुए
अन्नको लेकर शाकल ऋषिकी विधिके अनुसार लौकिक अग्निमें हवन करै ॥ २८ ॥ पुथक् २
व्याहृतियोंसे और फिर सम्पूर्ण व्याहृतियोंसे छैः आहुति “देवकृतस्य” इस मंत्रमे क्रमा-
नुसार देकर ॥ २९ ॥ इसके पीछे ‘स्विष्टकृत’ प्राजापत्यकी बारह आहुति देकर स्विष्टकी
धिसे पहले ॐकार और अंतमें स्वाहा हो, इस भांतिसे आहुतिका त्याग होताहै (ॐ
प्राजापतये स्वाहा) ॥ ३० ॥

भुवि दर्भान्समास्तीर्य बलिकर्म समाचरेत् ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्य इति सर्वेभ्यो
भूतेभ्य एव च ॥ ३१ ॥ भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित् ॥ दद्या-
द्वलित्रयं चाग्ने पितृभ्यश्च स्वधानमः ॥ ३२ ॥ पात्रनिर्णेजनं वारि वायव्या दि-
शि निःक्षिपेत् ॥ उद्धृत्य षोडशग्रासमात्रमन्नं घृतोक्षितम् ॥ ३३ ॥ इदमन्नं
मनुष्येभ्यो हंत्युक्त्वा समुत्सृजेत् ॥ गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चाग्नि-
शक्तितः ॥ ३४ ॥ षड्भ्योऽन्नमन्वहं दद्यात्पितृयज्ञविधानतः ॥ वेदादीनां पठे-
त्किंचिदल्पं ब्रह्मखातये ॥ ३५ ॥ ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्य भवनाद्बहिः ॥
काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्राक्षिपेद्वासमेव च ॥ ३६ ॥ उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद्या-
वन्मुहूर्तकम् ॥ अप्रमुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धः प्रतीक्षकः ॥ ३७ ॥

पृथ्वीपर कुशा बिछाकर उसके ऊपर बलि वैश्वदेव करै और “विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः”
“सर्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः” ॥ ३१ ॥ और “भूतानां पतये नमः” इस भांति शास्त्रका जानने-
वाला पुरुष तीन बलि अन्न (द्वार) भागमें दे; “पितृभ्यः स्वधा नमः” इस मन्त्रसे पितरोंको
दे ॥ ३२ ॥ पात्रोंके धोनेका जल वायुकोणमें फैकदे फिर सोलह ग्रास भर धीसे
छिड़केहुए अन्नको निकालकर ॥ ३३ ॥ “इदमन्नं मनुष्येभ्यो हंत” यह कहकर (हंत-
कार) देदे; और फिर गोत्र नाम स्वधा कहकर पितरोंको भी दे ॥ ३४ ॥ पितृयज्ञकी
विधिके अनुसार छैः (३ पितृपक्षके ३ मातृपक्षके) को नित्य अन्न दे, इसके पीछे यज्ञकी
प्राप्तिके निमित्त कुछ वेद आदिको भी पढ़े ॥ ३५ ॥ इसके पीछे अन्य अन्नको ग्रहणकर घरके
बाहर जाकर काक, कुत्ते इतको भी ग्रासदे, और गौको भी ग्रासदेना उचित है ॥ ३६ ॥
इसके पीछे घरके द्वारपर बैठकर पवित्र भावसे अतिथिकी प्रतीक्षा करता हुआ दो घड़ीतक
रहै जबतक आप भोजन न करै ॥ ३७ ॥

गतं दूरतः श्रान्तं भोक्तुकामं किंचनम् ॥ दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्र-
यार्चनैः ॥ ३८ ॥ पादधावनसंमानाभ्यंजनादिभिरर्चितः ॥ त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो-
यज्ञस्याभ्यधिकोऽतिथिः ॥ ३९ ॥ कालागतोऽतिथिर्दृष्ट्वेदपारो गृहागतः ॥
द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥ ४० ॥ विवाहस्रातकक्षमाभृदाचा-
र्यसुहृद्विजः ॥ अर्घ्या भवन्ति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ॥ ४१ ॥ गृहागताय
सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि ॥ भक्त्योपकल्पयेदेकं महाभागं विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥
विसर्जयेदनुव्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन् ॥ मित्रमातुलसंबंधिबांधवान्समुपाग-
तान् ॥ ४३ ॥ भोजयेद्गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति ॥ स्वाद्वन्नमश्र-
स्वादु ददद्गच्छत्यधोगतिम् ॥ ४४ ॥ गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु ॥
बुभुक्षितेषु भुञ्जानो गृहस्थोऽश्नाति किल्बिषम् ॥ ४५ ॥ नाद्याद्गृह्येन्नपाकाद्यं
कदाचिदनिमंत्रितः ॥ निमंत्रितोऽपि निंदेत प्रत्याख्यानं द्विजोऽर्हति ॥ ४६ ॥

जो दूरसे आयाहो, श्रान्त हो, भोजन करनेकी इच्छा करताहो और अकिंचन हो
(जिसके पास कुछ न हो) ऐसे अतिथिको देखकर उसी समय उसके सम्मुख जाकर उसे
घर ले आवै; और विनयसहित पूजन सत्कार करै ॥ ३८ ॥ अतिथिके चरण धोने, भली-
भांति सत्कार करने और उबटनआदि मलनेसे यज्ञसे भी अधिक स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै
॥ ३९ ॥ उचित समयपर आयाहुआ अतिथि और वेदके पार जाननेवाला (किसी निमि-
त्तसे) यह दोनों घरपर आयेहुए पूजित हों तो स्वर्गमें लेजातेहैं, और जो इचकी पूजा नहीं
करता, उसे नरकमें लेजातेहैं ॥ ४० ॥ जिसका विवाह अपने यहां हुआहो और जो ब्रह्मच-
र्यको समाप्त करके गृहस्थाश्रममें जानेको उद्यत हो, राजा, आचार्य, मित्र, ऋत्विज् यह
सबके घरपर आयेहुए प्रतिवर्ष धर्मसे पूजने योग्य हैं ॥ ४१ ॥ जो वेदपाठी घरपर आवै
उसका भलीभांति सत्कार कर श्रद्धासे एक बड़ाभाग देकर विदा करदे ॥ ४२ ॥ वेदपाठीके
भलीभांति तृप्त होनेपर उसके पीछे २ कुछ दूर चलकर उसे विदा करदे । इसके पीछे,
मित्र, मामा, सम्बन्धि बांधव इनके घर आनेपर ॥ ४३ ॥ भोजन करावै; भिक्षुक गृहस्थकी
सन्मानसे दीहुई भिक्षाको ग्रहण करै और जो गृहस्थी स्वयं स्वादिष्ट अन्नका भोजन कर
अस्वादिष्ट अन्न भिक्षुक वा अतिथिको देताहै वह अधोगतिको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥ गर्भ-
वती स्त्री, रोगी, भृत्य, बालक, और वृद्ध इनके भूखे रहते जो गृहस्थी भोजन करताहै वह
महान् पापका भागी होताहै ॥ ४५ ॥ बिना निमंत्रणके पक्वान्न आदिका भोजन न करै;
और न उसकी अभिलाषा करै, यदि कोई पुरुष निमंत्रण देभी दे तौभी ब्राह्मण नि-
वारण करसकताहै ॥ ४६ ॥

शूद्राभिषस्तवार्युष्यवाग्दुष्टकूरतस्कराः ॥ ऋद्धापविद्धबद्धोऽग्रवधबंधनजीवि-
नः ॥ ४७ ॥ शैलूषशौंडिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः ॥ नमनास्तिकनिर्ल-
ज्जापिशुनव्यसनान्विताः ॥ ४८ ॥ कदर्यस्त्रीजितानार्यपरवादकृता नराः ॥
अनीशाः कीर्तिमंतोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥ ४९ ॥ शयनासनसंसर्गकृतक-

भ्रादिदूषिताः ॥ अश्रद्धानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥ अभोज्यान्नाः स्यु-
रन्नादो यस्य यः स्यात्स तत्समः ॥ ५० ॥

शूद्र, जिसे शाप लगाहो, व्याजलेकर निर्वाह करनेवाला, वांगदुष्ट, गूंगा, अथवा निरन्तर झूठ बोलनेवाला, कठोरहृदय, चोर, क्रोधी, पतित, और वंध्यन वडीहिसा वंध्यनसे जो जीविका करतेहैं ॥ ४७ ॥ नट, कलाल, उन्नद्ध, उन्मत्त, ब्राह्म, जिसने व्रतको छोड़ दिया हो; 'नंगा, नास्तिक, निर्लेज, चुगल, व्यसनी, ॥ ४८ ॥ जिसे कामदेव और स्त्रियोंने जीताहो; असज्जन, दूसरेकी निंदा करनेवाला असमर्थ और कीर्तिमान् होकरभी जो राजा और देवताके द्रव्यको हरण करले ॥ ४९ ॥ शय्या, आसन, संसर्ग, व्रतकर्म इनमें जो किसी भ्रांति दूषित हो और श्रद्धाहीन, पतित, भ्रष्टाचार, नट आदि यह सम्पूर्ण अभोज्यान्न कहेहैं; अर्थात् इनके यहांके अन्नको न खाय, कारण कि जो जिसके यहांके अन्नको खाताहै वह उसीके समान होजाताहै ॥ ५० ॥

नापितान्वयमित्रार्द्धसीरिणो दासगोपकाः ॥ शूद्राणामप्यमीपां तु भुक्तानं
नैव दुष्यति ॥ ५१ ॥

नार्ह, वंशका मित्र, अर्द्धसीरी दास और गोप इन शूद्रोंके अन्नको खाकर भी दोष नहीं लगता ॥ ५१ ॥

धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ॥ ५२ ॥ स्ववृत्तोपार्जितं
मेध्यमाकरस्थममाक्षिकम् ॥ अश्वलीढमगोघ्रातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ॥ ५३ ॥
अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेव च ॥ अम्लानवाह्यमन्नाद्यमाद्यं नित्यं सुसं-
स्कृतम् ॥ कृसरापूपसंयावपायसं शण्कुलीति च ॥ ५४ ॥

द्विजांको परस्परमें यदि: वंश (कुल) विदित हो तौ धर्म करके एक दूसरेके अन्नको भोजन करसकतेहैं ॥ ५२ ॥ परन्तु उस अन्नको खाय जिसको वह खाने वा खिलानेवालेने अपनी जीविकासे संचय कियाहो, और शहतको छोड़कर आकरकी वस्तु और जिसको कुत्तेने न सूंघाहो और जिसे गौने न सूंघाहो; जिसे शूद्र और काकने न छुआहो यह सभी पवित्रहैं ॥ ५३ ॥ उच्छिष्ट न हो, वासी न हो, दुर्गन्धि न आतीहो इस प्रकार भली-भांति बनायेहुए अन्नको नित्य खाले, खिचडी, मालपुष्ट, मोहनभोग, खीर, पूरी इनको भी खाले ॥ ५४ ॥

नाश्रीयाद्ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथंचन ॥ क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्रन्प-
तति द्विजः ॥ ५५ ॥ मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥ क्षत्रियो द्वा-
दशोऽनं तत्कीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः ॥ ५६ ॥

ब्राह्मण श्राद्धादिकमें विना नियुक्त मांसभोजन कदापि न करै परन्तु यज्ञमें वा श्राद्धमें नियुक्त होकर ब्राह्मण यदि मांसभोजन न करै तौ पतित होताहै ॥ ५५ ॥ क्षत्रिय मृगया करके लायेहुए मांससे पितर और देवताओंको पूजकर उसमेंसे आप भी भोजन करै, और उसमेंसे चारहवें भागको मोल लेकर वैश्य भी खाले तौ अधर्म नहीं है ॥ ५६ ॥

द्विजो जग्ध्वा वृथामांसं हत्वाप्यविधिना पशून् ॥

निरयेष्वक्षयं वासमाम्रोत्याचन्द्रतारकम् ॥ ५७ ॥

जो ब्राह्मण वृथामांस खाताहै, या जो बिना विधिके पशुओंको मारताहै, वह अनंत काल-
तक नरकमें निवास करताहै, जबतक चन्द्रमा और तारागण आकाशमें स्थिति करतेहैं तभी-
उसका नरकमें वास है ॥ ५७ ॥

सर्वान्कामान्समासाद्य फलमश्वमेधस्य च ॥

मुनिसाम्यमवाप्नोति गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः ॥ ५८ ॥

(वृथामांसको वैर्जदेनेसे) सम्पूर्ण कामना और अश्वमेधके यज्ञके फलको प्राप्त होकर
गृहस्थी भी ब्राह्मण मुनियोंकी समान होजाताहै ॥ ५८ ॥

द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिष्याणि पयांसि च ॥

निर्देशासंधिसंबंधिवत्सवंतीपयांसि च ॥ ५९ ॥

गाय और भैंसका दूध ब्राह्मणोंके खाने योग्य होताहै; और वह खाने योग्य दूध है जो
ग्यानेसे दशदिनके पीछेका हो, तथा वह गौ असंधिनी (जो ग्याभन न) हो; और उसके
बछड़े वा बछिया हों ॥ ५९ ॥

पलांडुं श्वेतवृंताकं रक्तमूलकमेव च ॥ गुंजनारुणवृक्षासृजंतुगर्भफलानि च

॥ ६० ॥ अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैदवं चरेत् ॥ वाग्दूषितमविज्ञातम-

न्यपीडितकार्यपि ॥ ६१ ॥

प्याज, सफेद बैंगन, लाल मूली, गाजर, वृक्षका लाल गोंद, गूलरके फल ॥ ६० ॥ विना
समयके फूल जो ब्राह्मण इनको खाताहै वह ऐंदव इन्दुका (चन्द्रदेवताका) पाकरूप प्राय-
श्चित्त करनेसे शुद्ध होताहै, और वाणीसे दूषित (गोभी आदिक) और जिसे जानता न हो
वह, और जिससे दूसरेको दुःख हो ऐसा पदार्थ खानेवालाभी ऐंदव प्रायश्चित्त करै ॥ ६१ ॥

भूतेभ्योऽन्नमदत्त्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत् ॥

जो बिना भूतोंके दिये अन्न खाताहै वह यह सब अन्न गृहस्थीको दग्ध करतेहैं,

हैमराजतर्कास्येषु पात्रेष्वद्यात्सदा गृही ॥ ६२ ॥ अभावे धुगन्धेषु लोधद्रुम-

च ॥ पलाशपद्मपात्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥ ६३ ॥ ब्रह्मचारी यति-

श्रैव श्रेयो यद्भोक्तुमर्हति ॥ ६४ ॥

गृहस्थी सदा सुवर्ण चांदी काँसी इनके पात्रोंमें भोजन करले ॥ ६२ ॥ पात्रोंके अभावमें
गृहस्थी अच्छी सुगंधवाले देवदारु, ढाक और कमलके पत्तोंमें भोजन करनेयोग्य है ॥ ६३ ॥
ब्रह्मचारी और यतिको भी उक्त पत्तोंमें ही भोजन करना उचित है ॥ ६४ ॥

अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारैर्भुवि दद्याद्वलित्रयम् ॥ भूपतये भुवः पतये भूतानां

पतये तथा ॥ ६५ ॥ अपः प्राश्य ततः पश्चात्पंचप्राणाहुतीः क्रमात् ॥ स्वाहा-

कारेण जुहुयाच्छेषमद्याद्यथासुखम् ॥ ६६ ॥ अनन्यचित्तो भुंजीत वाग्यतोऽन्न-

मकुत्सयन् ॥ आतृतेरन्नमश्रीयादक्षुण्णं पात्रमुत्सृजेत् ॥ ६७ ॥ उच्छिष्टमन्नमु-
द्धृत्य ग्रासमेकं भुवि क्षिपेत् ॥ ६८ ॥ आचांतः साधुसंगेन सद्विद्यापठनेन च ॥
वृत्तवृद्धकथाभिश्च शेषाहमतिवाहयेत् ॥ ६९ ॥

अन्नको “ॐ तेजोऽसि” इस मन्त्रसे छिडककर नमस्कार करे; इसके पीछे पृथ्वीमें तीन बली (थोडा २ अन्न) दे किं, “भूपतये नमः, भुवः पतये नमः, भूतानां पतये नमः” ॥ ६५ ॥ फिर अपोशन “ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा” इस मन्त्रसे आचमन करके पांच प्राणोंकी आहुति स्वाहा कहकर दे, और फिर मुखसहित शेष अन्नको खा ले ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त मौन धारण कर अन्नकी निन्दाको न करताहुआ मनुष्य एकाग्र मनसे तृप्तिपर्यन्त भोजन करे; और पात्रको खाली न छोड़े, अर्थात् उसमें कुछ अन्न रहने दे ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त “ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा” इस मन्त्रसे प्रत्यपोशन अर्थात् पुनराचमन लेकर उस बचेहुए उच्छिष्ट अन्नमेंसे एक ग्रास उठाकर (किंचिन् दो जगह, “ॐ इयामाय नमः “ॐ शबलाय नमः” इस मंत्रसे) पृथ्वीपर रख दे ॥ ६८ ॥ इसके पीछे आचमन करके साधुओंकी संगति और उत्तम विद्याको पढ़कर जो सदाचारमें रहें उनकी कथाओंसे शेष दिनको व्यतीत करे ॥ ६९ ॥

सायं संध्यामुपासीत हुत्वाग्निं भृत्यसंयुतः ॥

आपोशानक्रियापूर्वमग्नीयादन्वहं द्विजः ॥ ७० ॥

इसके पीछे सायंकालको सन्ध्या करे, और अग्निहोत्र कर भृत्योंसमेत भोजनसे पहले आचमन करके नित्यशः भोजन करे ॥ ७० ॥

सायमप्यतिथिः पूज्यो होमकालागतोऽतिशम् ॥

श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपृजितः ॥ ७१ ॥

होमके समय आयाहुआ अतिथि सन्ध्याके समयभी अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धासहित अवश्य पूजने योग्य है, पूजा न करनेसे वह अतिथि उसके पुण्यको नष्ट करत है ॥ ७१ ॥

नातिवृत्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥ अग्रत्यगुत्तरशिखाः शयीत शयने
शुभे ॥ शक्तिमानुदिते काले स्नानं संध्यां न हापयेत् ॥ ७२ ॥ ब्राह्मे सुहृते
चोत्थाय चिंतयेद्धितमात्मनः ॥ शक्तिमान्मतिमान्निर्त्यं व्रतयेत्तत्समाचरेत् ॥ ७३ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अत्यन्त तृप्त नहीं हुआ चरणोंको धोकर पवित्र हो वह मनुष्य उत्तम शय्यापर शयन करे, पश्चिमकी ओरको शिर न करे, शक्तिके अनुसार सूर्योदयके समय स्नान और सन्ध्याको न त्यागे ॥ ७२ ॥ ब्राह्मसुहृत् (४ घड़ी रात शेष रहते) में उठकर अपने हितकी चिन्ता करे । समर्थ बुद्धिमान् मनुष्य नित्य इस प्रकारका कार्य करे ॥ ७३ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

“१ॐ प्राणाय स्वाहा १ ॐ अयानाय स्वाहा २ ॐ उदानाय स्वाहा ३ ॐ समानाय स्वाहा ४ ॐ व्यानाय स्वाहा ५ ” इनको पांच प्राणोंकी आहुति कहते हैं ।

चतुर्थोऽध्यायः ४.

इति व्यासकृतं शास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ॥ आश्रमे यानि पुण्यानि मोक्षधर्मा-
श्रितानि च ॥ १ ॥ गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ॥ सर्वती-
र्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥ २ ॥

यह व्यासजीका कहाहुआ शास्त्र धर्मोंका सारयुक्त है; आश्रममें जो पुण्य है और जो पुण्य मोक्षके धर्मोंमें है ॥१॥ उन सबमें गृहस्थाश्रमसे श्रेष्ठ धर्म दूसरा नहीं है यह व्यासजीने चार २ कहा है, जो गृहस्थ यथोक्त गृहस्थधर्मके अनुसार पालन करता है; वह घरमेंही सम्पूर्ण तीर्थोंके फलको पाता है ॥ २ ॥

गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः ॥ नित्यजापी च होमी च संत्यवादी
जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥ स्वदारे यस्य संतोषः परदारनिर्वर्तनम् ॥ अपवादोऽपि नो
यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥ ४ ॥

जो गृहस्थी गुरुमें भक्ति करनेवाला, भृत्योंका प्रतिपालक, दयालु, निन्दा न करनेवाला, सर्वदा जप होम करनेवाला, सत्यभाषी और जितेन्द्रिय है ॥ ३ ॥ जिसे अपनी स्त्रीसे ही सन्तोष है, पराई स्त्रीकी इच्छा न करनेवाला, जिसकी कहीं निन्दा न हो उस गृहस्थीको घरमें बैठेही तीर्थका फल मिलता है ॥ ४ ॥

परदारान्परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ॥

सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥ ५ ॥

जो गृहस्थी प्रतिदिन पराई स्त्री और पराये धनको हरण करता है; उसके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी पाप नष्ट नहीं होते ॥ ५ ॥

गृहेषु सवनीयेषु सर्वतीर्थफलं ततः ॥

अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भागेन लिप्यते ॥ ६ ॥

इस कारण सवन (यज्ञ वा संतान) युक्त घरोंमें सब तीर्थोंका फल मिलता है; जिसके अन्नसे श्राद्ध आदि किया जाता है तीन भाग पुण्यके उसको भी मिलते हैं, और जो उक्त कर्मोंको करे उसको एक भाग मिलता है ॥ ६ ॥

प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानां च तर्पणम् ॥ न पापं संस्पृशेत्तस्य बलिभिक्षां
ददाति यः ॥ ७ ॥ पादोदकं पादधृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥ यो ददाति
ब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥ ८ ॥

जो गृहस्थी ब्राह्मणोंको जीविका प्रदान, तथा वृत्ति करता उनके चरण धोता है और जो बलि वैश्वदेव करता है उस मनुष्यको पाप स्पर्शतक भी नहीं करसकता ॥ ७ ॥ जो गृहस्थी ब्राह्मणोंको प्रतिश्रय अर्थात् रहतेको जगह और पैरोंके धोनेके लिये जल पादधृत (जूता वा खड़ाऊं) दीपक अन्नदान और आश्रय देता है, यमराज उसके निकट नहीं आसकते ॥ ८ ॥

विप्रपादोदकलिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥

तावत्पुष्करपात्रेषु पिबति पितरोऽमृतम् ॥ ९ ॥

जिस गृहस्थीके घरमें ब्राह्मणोंके चरणोंके धोनेके जलसे पृथ्वी जवतक गीली रहती है तबतक कमलके पत्तोंमें उसके पितर अमृत पीतेहैं ॥ ९ ॥

यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे ॥ तत्फलं हृष्यः श्रेष्ठा विप्राणां पाद-
शोधने ॥ १० ॥ स्वागमेनाग्नयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः ॥ पितरः पादशौ-
चैन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ ११ ॥

हे ऋषिश्रेष्ठो ! कपिलागौंके दान करनेसे जो फल होता है, कार्तिककी पूर्णमासीको पुष्कर-
में स्नान करनेसे जो फल होता है वही फल केवल ब्राह्मणोंके चरण धोनेसे होताहै ॥ १० ॥
ब्राह्मणोंका स्वागत करनेसे अग्निदेव प्रसन्न होतेहैं, आसन देनेसे इन्द्र प्रसन्न होते हैं; चरण धोने-
से पितर प्रसन्न होतेहैं, और अन्नादि दान करनेसे प्रजापति ब्रह्माजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ११ ॥

मातापित्रोः परं तीर्थं गंगा गावो विशेषतः ॥

ब्राह्मणात्परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥

माता और पिता यही प्रधान तीर्थ हैं, यद्यपि गंगा और गौ यहभी तीर्थ हैं, परन्तु ब्राह्मणों-
से बढ़कर तीर्थ न हुआ और न होगा ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः ॥ तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करा-
णि च ॥ १३ ॥ गंगाद्वारं च केदारं सन्निहत्य तथैव च ॥ एतानि सर्वतीर्थानि
कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंको वशमें कर गृहस्थाश्रममें जो मनुष्य वास करता है उसको घरमें ही कुरुक्षेत्र
नैमिष और पुष्कर ॥ १३ ॥ हरिद्वार, केदार, सन्निहत्य (कुरुक्षेत्र) यह सम्पूर्ण तीर्थ हैं, वह
इन सब तीर्थोंके प्रभावसे सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ १४ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च चातुर्वर्ण्यस्य भो द्विजाः ॥

दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ॥ १५ ॥

हे द्विजगण ! व्यास मुनिने जिस प्रकार कहा उसीके अनुसार चारों वर्णों और चारों
आश्रमोंके दानका फल कहताहूँ ॥ १५ ॥

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाशनाति दिनेदिने ॥ तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्या-
पि रक्षति ॥ १६ ॥ यद्ददाति यदशनाति तदेव धनिनो धनम् ॥ अन्ये मृतस्य
क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥ १७ ॥ किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः ॥
यद्धर्द्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशश्वतम् ॥ १८ ॥ अशाश्वतानि गात्राणि वि-
भवो नैव शाश्वतः ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १९ ॥
यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये ॥ यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं
न दीयते ॥ २० ॥ जीवन्ति जीविते यस्य विप्रमित्राणि बांधवाः ॥ जीवितं
सफलं तस्य आत्मार्यं को न जीवति ॥ २१ ॥ पशवोऽपि हि जीवन्ति केव-
लात्मोदरभराः ॥ किं कायेन गुप्तेन बलिना चिरजीविना ॥ २२ ॥ ग्रासाद्ध-

मपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ॥ इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥ २३ ॥

जो धन प्रतिदिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दिया जाता है जो स्वयं भोगता है उसी धनको मैं धन मानता हूँ; और जो दान नहीं करता, भोग नहीं करता, उसकी रक्षाही करता है, वह उसका नहीं है ॥ १६ ॥ जो धन दान दिया जाता है, भोगा जाता है वही धनीका धन है, मृतकके धन रखजाने पर अन्य पुरुष उसके स्त्री वा धनसे झीड़ा करते हैं ॥ १७ ॥ धनको रखकर जो मरजाते हैं, वह उस धनसे आत्माका क्या उपकार करेंगे, धनको भोगकर जिस शरीरको पुष्ट करनेकी इच्छा करते हैं सो वह शरीर भी सर्वदा रहनेवाला नहीं ॥ १८ ॥ देह और धन सर्वदा रहनेवाला नहीं, सर्वदा मृत्यु सन्मुख खड़ी रहती है, इस कारण धर्मका संग्रह करना उचित है ॥ १९ ॥ जो धन सम्पत्ति धर्मके निमित्त, या अभिलाषा पूरणके निमित्त तथा कीर्तिके निमित्त न हुई उस धनको त्यागकर परलोक जाता होगा; फिर उस धनको किस कारण दान नहीं करता ॥ २० ॥ जिस मनुष्यके जीवित रहनेसे ब्राह्मण मित्र तथा बंधु बांधव जीवित रहते हैं उन्हींका जीवन सफल है, अपने लिये कौन नहीं जीता ॥ २१ ॥ केवल अपने पेट भरनेके लिये तौ पशुभी जीवन धारण करते हैं (जो मनुष्य धनसे दानादि सत्कार्य नहीं करते) उन्हें मलीमांसी शरीरकी रक्षा करनेसे या बलवान् होने तथा चिरजीवी होनेसे ही क्या फल है ॥ २२ ॥ यदि एक ग्रास वा आधा ग्रास भी अभ्यागतको न दे (और यह कहै कि जब इच्छानुसार धन मिलेगा तब दौं) सो इच्छानुसार धन कब मिला और किसके होता है ॥ २३ ॥

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ॥

दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुंचति ॥ २४ ॥

अदाता (न देनेवाला ही) पुरुष त्यागी है कारण कि वह धनको छोड़कर जाता है, परन्तु मैं दाताको कृपण मानता हूँ कारण कि दाता मरकर भी धनको नहीं छोड़ता, अर्थात् मरनेपर भी उसे धन मिलता है ॥ २४ ॥

प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न स मृतः ॥

अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ॥ २५ ॥

एक दिन अवश्यही प्राणत्याग करने होंगे परन्तु जो कृतार्थ है वह मृतक नहीं हुआ; और जो बिना धर्मकिये मरा है वह गधेकी समान है ॥ २५ ॥

अनाहूतेषु यदत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ॥ भविष्यति युगस्यांत स्यातो न भविष्यति ॥ २६ ॥ मृतवत्सा यथा गौश्च कृष्णा लोभेन दुह्यते ॥ परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥ २७ ॥ अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते ॥ पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनंतकम् ॥ २८ ॥

बिना मांगे जो दान दिया है, युगका तौ अन्त हो जायगा परन्तु उस दानका अन्त नहीं होगा ॥ २६ ॥ मरे बछड़ेवाली काली गौको जिस मांति दुहते हैं परन्तु उसके दूधसे देवकार्य नहीं होता, इसीमांति परस्परके दानका भी कोई फल नहीं होता, केवल लोकाचारकी रक्षा होती है, परन्तु उससे पुण्य नहीं होता ॥ २७ ॥ जो मनुष्य पापको न देखकर (अर्थात्

किसी पापके लिये न दे) वा दानके भोक्ताको न देखकर (यह इच्छा न करे कि इसका फल मुझे मिले) और यह भी अभिलाषा न करे कि मैं फिर इस संसारमें आऊंगा, उस समयमें दानका फल अनन्त होताहै अर्थात् जो दान निष्काम होकर कियाजाताहै वही सफल होताहै ॥ २८ ॥

मातापितृषु यदद्याद्भ्रातृषु श्वशुरेषु च ॥ जायापत्येषु यदद्यात्सोऽनन्तः
स्वर्गसंकमः ॥ २९ ॥ पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते ॥ भगिन्यां
शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ ३० ॥

माता, पिता, भाई, श्वशुर, स्त्री, पुत्र वा पुत्री जो इनको दान करताहै वह अनन्तकाल-
तक स्वर्गमें निवास करताहै ॥ २९ ॥ पिताको दान करनेसे सहस्रगुणा फल मिलताहै,
माताको दान करनेसे हजारगुना फल मिलताहै; और भगिनीको जो दान दियाजाताहै वह
लाखगुना होताहै, और जो भाईको दिया जाताहै उसका कभी भी नाश नहीं होता ॥ ३० ॥

अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणेषु मुनीश्वराः ॥ आगामिष्यति यत्पात्रं तत्पात्रं तार-
यिष्यति ॥ ३१ ॥ किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ॥ पात्राणामुत्तमं
पात्रं शूद्रात्रं यस्य नोदरे ॥ ३२ ॥

हेमुनीश्वरो ! दिन ३ ब्राह्मणोंको दान करे, कारण कि, जो पात्र आजायगा वही तारदेगा
॥ ३१ ॥ यत्किञ्चित् पात्र तो वेदपाठी वा तपस्वी होताहै, और पात्रोंमें उत्तम पात्र वह
है जिसके उदरमें शूद्रका अन्न नहो ॥ ३२ ॥

यस्य वैव गृहे मूर्खो दूरे चापि गुणान्वितः ॥

गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ३३ ॥

जिसके घरमें मूर्खका निवास हो और भिद्वान् दूर रहताहो तो वह मनुष्य गुणीको बुला-
कर दान करे, मूर्खके उलंघन करनेमें कुछ दोष नहीं है ॥ ३३ ॥

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ॥ कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण
च ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवाजिते ॥ ज्वलंतमग्निमुत्सृज्य
न हि भस्मनि हृत्यते ॥ ३५ ॥ सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ॥
भोजने चैव दाने च हन्यान्निपुरुषं कुलम् ॥ ३६ ॥

देवताके द्रव्यका नाश, ब्राह्मणके धनकी चोरी और ब्राह्मणका उलंघन इनसे अच्छे
कुलभी दुष्ट कुल होजातेहैं ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण वेदको नहीं जानता उसका उलंघन नहीं
होता; कारण कि प्रज्वलित अग्निको छोड़कर भस्ममें ध्वन नहीं कियाजाता ॥ ३५ ॥ भोजन
और दानके समयमें जो अपने समीपके पडेहुए ब्राह्मणका उलंघन करताहै वह तीन पीढीतक
अपने कुलको नष्ट करताहै ॥ ३६ ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते ना-
मधारकाः ॥ ३७ ॥ ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ॥ यश्च वि-
प्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३८ ॥

जिस भांति काठका हाथी, और जैसा चमड़ेका मृग होता है उसी भांति बिना पढ़ा ब्राह्मण है; यह तीनों नाममात्रधारी हैं; अर्थात् निरर्थक हैं ॥ ३७ ॥ शून्य ग्रामस्थान, और जलहीन कुआ जिस प्रकार किली अर्थका नहीं उसी भांति बिना पढ़ा ब्राह्मण है. यह तीनों नाममात्रकेही धारण करनेवाले हैं ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणेषु च यद्वत्तं यच्च वैश्वानरे द्रुतम् ॥

तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥ ३९ ॥

जो धन ब्राह्मणोंको दिया जाताहै, या जिस धनसे हवन कियाजाताहै; वही धन यथार्थ धन कहाहै; और सम्पूर्णधन वृथा है ॥ ३९ ॥

समं समब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ सहस्रगुणमाचार्यं ह्यनन्तं वेदपारगे ॥ ४० ॥ ब्रह्मवीजसमुत्पन्नो भंत्रसंस्कारवर्जितः ॥ जातिमात्रोपजीवी च स भवेद्ब्राह्मणः समः ॥ ४१ ॥ गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च ॥ नाध्यापयति नाधीते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ ४२ ॥ अग्निहोत्रो तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ॥ सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥ इष्टिभिः पशुबंधैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येन चेष्टं स इष्टवान् ॥ ४४ ॥ मीमांसते च यो वेदान्पङ्क्तिभिर्गैः सविस्तरैः ॥ इतिहासपुराणानि स भवेद्देवपारगः ॥ ४५ ॥

अब्राह्मणको जो दियाजाय वही सम (उत्तनाही रहताहै) और जो (सामान्य) ब्राह्मण-ब्रुवको दिया जाय वह दुगुना होताहै, और आचार्यको दियाजाता है वह सौगुना होताहै; और वेदके पारको जो जानता है उसके देनेसे अनन्त फल होता है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न होकर जो गायत्रीआदिका जप न करै, और जो ब्राह्मण जातिही कहकर उदरपोषण करै, उस ब्राह्मणको सम ब्राह्मण कहतेहैं ॥ ४१ ॥ जिस ब्राह्मणकी संतानके यथा-शास्त्र गर्भाधानादि संस्कार हुएहैं; यज्ञोपवीत और वेदपाठ भी रीतिके अनुसार हुआहै परन्तु उनको न पढ़े और न पढ़ावे उसको ब्राह्मणब्रुव कहतेहैं ॥ ४२ ॥ जो ब्राह्मण नित्य हवन करताहो, तपस्वी हो, कल्प और रहस्यसहित जो वेदोंको पढ़ताहो उस ब्राह्मणको आचार्य कहते हैं ॥ ४३ ॥ यज्ञीय पशुको बांधकर जो चातुर्मास्य अग्निष्टोमादि यज्ञ करताहै और जो देव-ताओंकी पूजा करताहै उसे इष्टवान् कहतेहैं; अर्थात् उन्होंने पूजाकरी ॥ ४४ ॥ विस्तार सहित छैः अंग, चारों वेद और इतिहास पुराण इनका जो विचार करता है उसको वेद-पारग कहते हैं ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणा येन जीवन्ति नान्यो वर्णः कथंचन ॥ ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि दैवतम् ॥ प्रत्यक्षं चैव लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥ ४७ ॥

जिससे ब्राह्मण जीतेहैं उससे और वर्ण कभी नहीं जीते अर्थात् जो ब्राह्मणोंको दान देकर पालन पोषण करताहै, अन्य वर्ण नटवेद्यादिकों को अपना द्रव्य देकर पोषण नहीं करताहै, ऐसे इस मार्गमें स्थित होनेवालेको कौन परित्याग करनेकी इच्छा करै अर्थात् कोई भी नहीं- ॥ ४६ ॥ वह ब्राह्मण देवताका भी देवता है और प्रत्यक्ष जगत्का कारण ब्रह्मतेजही है ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणस्य सुखं क्षेत्रं निष्कर्करमकंटकम् ॥ वापयेत्तत्र बीजानि सा कृषिः सार्वकामिकी ॥ ४८ ॥ सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे दापयेद्धनम् ॥ क्षेत्रे च सुपात्रे च क्षिप्तं नैव हि दुष्यति ॥ ४९ ॥ विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गृहमागते ॥ क्रीडंत्योपधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥ ५० ॥ नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवाजिते ॥ दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृतं कृतम् ॥ ५१ ॥ वेदपूर्ण-सुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ॥ न च मूर्ख निराहारं पंड्यान्मुपवासिनम् ॥ ५२ ॥ यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठन्ति भो द्विजाः ॥ तानि तस्य प्रयोज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥ ५३ ॥ यस्य देहे सदाश्रन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥ कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ ५४ ॥ यदुक्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः ॥ दातुः फलमसंख्यातं प्रतिजन्मत दक्षयम् ॥ ५५ ॥

ब्राह्मणका मुखही कंकर और कंटोंसे रहित क्षेत्र है उसीमें बीज बोवें, कारण कि वह खेती सब मनोरथोंकी देनेवाली है ॥ ४८ ॥ अच्छे क्षेत्रमें बीज बोवें, सुपात्रको धन दे कारण कि अच्छे खेतमें फेंकाहुआ बीज और सुपात्रको दियाहुआ धन दूषित नहीं होता ॥ ४९ ॥ जिस समय विद्या और विनयसे युक्त होकर ब्राह्मण घरमें आवें उस समय सब औपधी क्रीडा करतीहैं कि हम परम गतिकी प्राप्त होंगी ॥ ५० ॥ जो ब्राह्मण नष्टशौच है वा जो व्रतसे भ्रष्ट है, तथा जो वेदसे हीन है; उसको दियाहुआ अन्न भय मानकर रोताहै कि इसने बुरा किया जो दिया ॥ ५१ ॥ वेदसे पूर्ण वृत्त ब्राह्मणको भी जिमावें; और निराहार छैः रातके उपासे मूर्ख ब्राह्मणको कदापि न जिमावें ॥ ५२ ॥ हे द्विजो ! पवित्र वस्तु जिसके उदरमें रहै, अर्थात् वही २ वस्तु उस ब्राह्मणको देनी; अन्यथा देहधारियोंका देह किसी प्रयोजनका नहीं है ॥ ५३ ॥ जिस ब्राह्मणके शरीरमें देवता हव्य और पितर कव्य सर्वदा भोजन करते रहतेहैं, उससे परे और कौन होगा ॥ ५४ ॥ वेदका जाननेवाला और अपने कर्ममें तत्पर ब्राह्मण जो खाताहै, दाताको उसका फल अनगिन्त होताहै और जन्म २ में वह अश्रय होताहै ॥ ५५ ॥

हस्त्यश्वरथयानानि केचिदिच्छन्ति पंडिताः ॥ अहं नेच्छामि मुनयः कस्यताः सर्वसंपदः ॥ ५६ ॥ वेदलांगलकृष्टेषु द्विजश्रेष्ठेषु सत्सु च ॥ यत्पुरा पातितं बीजं तस्यैताः सस्यसंपदः ॥ ५७ ॥

हे मुनियों ! हाथी, रथ, घोडा, यान, पालकी इनको ऐसा कौन पंडित ब्राह्मण लेनेकी इच्छा करेगा, इनके लेनेकी कोई विद्वान् भी इच्छा नहीं करता, कारण कि यह संपदा किसकी खेतीकी है ॥ ५६ ॥ वेदरूप हलसे जुते जो सत्पात्र ब्राह्मणोंमें उत्तम हैं उनमें जो पूर्वजन्मसे बीज बोयागया हो उसीकी यह अन्न आदि खेतीकी संपदा है ॥ ५७ ॥

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः ॥ वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ॥ ५८ ॥ न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनाच्च पंडितः ॥ न वक्ता वाक्पटु-त्वेन न दाता चार्थदानतः ॥ ५९ ॥ इंद्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पंडितः ॥ हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः ॥ ६० ॥

सौंभे एक शूर वीर, हजारभे एक पंडित और लाखमें एक वक्ता होताहै; और दाता :तो हो या न हो ॥ ५८ ॥ रणको जीतनेसे ही शूर वीर नहीं होता, पढनेसे ही पंडित नहीं होता, वाणीसे ही वक्ता नहीं होता, और धनके दानसे ही दाता नहीं होता ॥ ५९ ॥ परन्तु जो इन्द्रियोंको जीतताहै वही शूर है, जो धर्माचरण करताहै वही पंडित है जो हितकारी और प्रिय वचन कहै वही वक्ता है; और जो मनुष्य सम्मानपूर्वक दान करै, वही दाता है ॥ ६० ॥

यद्येकपत्तयां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः ॥ वेदेषु दृष्टं दृषिभिश्च
गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥ ६१ ॥ ऊखरे वापितं वीजं भित्रभांडेषु
गोदुहम् ॥ हुतं भस्मनि हव्यं च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥ ६२ ॥

यदि स्नेह या भयसे या घनके लोभसे एक पंक्तिमें बैठेहुए ब्राह्मणोंको विषम न्यूनाधिक देताहै उसको ब्रह्महत्याका पाप होताहै, यह वार्ता मुनियोंने भी कहीहै और वेदोंमें भी देखी गईहै, और ऋषिभी वही कहतेहैं ॥ ६१ ॥ ऊपर भूमिमें बोयाहुआ वीज, फूटे पात्रमें दुहाहुआ दूध, भस्ममें कियाहुआ हवन, और मूर्खको दिया हव्य और दान यह सभी निष्फल हैं, ॥ ६२ ॥

मृतमृतकपुष्टांगो द्विजः शूदान्नभोजने ॥ अहमेवं न जानामि कां योनिं स ग-
मिष्यति ॥ ६३ ॥ शूदान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ॥ स भवेत्सूकरो
नूनं तस्य वा जायते कुले ॥ ६४ ॥ गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्तजन्मानि सूकरः ॥
श्वानश्च सप्तजन्मानि इत्येवं मनुर्व्रवीत् ॥ ६५ ॥

जो ब्राह्मण जन्म मरणके मृतकमें अन्न खाकर अपना शरीर पुष्ट करतेहैं और जो शूद्रके यहांका भोजन करतेहैं वह ब्राह्मण परलोकमें जाकर किस योनिमें जन्म लेंगे; व्यासदेवजी कहतेहैं कि यह मैं स्थिर नहीं करसका ॥ ६३ ॥ शूद्रका अन्न उदरमें रहतेहुए जो ब्राह्मण मरजाताहै वह परलोकमें सूकरकी योनिमें जन्मलेताहै अथवा शूद्रकेही कुलमें जन्मलेताहै ॥ ६४ ॥ वह वारह जन्मतक गीध, सात जन्मतक सूकर, और सात जन्मों-तक कुत्ता होताहै, यह मनुका वचन है ॥ ६५ ॥

अमृतं ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च ॥

वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूदान्नान्नरकं व्रजेत् ॥ ६६ ॥

ब्राह्मणका अन्न उदरमें स्थित रहनेपर यदि मरजाय तौ उसकी मोक्ष होतीहै, क्षत्रियका अन्न उदरमें रहनेपर मृतक होजाय तौ दरिद्र होताहै, वैश्यका अन्न उदरमें रहनेपर मरजाय तौ शूद्र होताहै, और शूद्रके अन्नसे नरककी प्राप्ति होतीहै ॥ ६६ ॥

यश्च भुंक्तेऽथ शूदान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥ इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव
जायते ॥ ६७ ॥ यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ॥ वर्जितः पितृदे-
वैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥ ६८ ॥

जो ब्राह्मण निरन्तर एक महीनेतक शूद्रका अन्न खाताहै, वह इसी जन्ममें शूद्र है और मरकर उसे कुत्तेकी योनि मिलतीहै ॥ ६७ ॥ जिस ब्राह्मणके यहां शूद्रा खी रसोई बनाती-

हो अथवा जिसकी स्त्री शूद्रा हो वह द्विज पितर और देवताओंसे त्यागाहुआ है और मृत्युके उपरान्त रौरव नरकको जाता है ॥ ६८ ॥

भांडसंकरसंकीर्णा नानासंकरसंकराः ॥

योनिंसंकरसंकीर्णा निरयं यांति मानवाः ॥ ६९ ॥

पात्रोंके संकरसे जो संकीर्ण हैं; जिसतिसके पात्रमें खाले, और जिनका भेल अनेक संकरोंमें है, और योनिंसंकरसे जो संकीर्ण हैं, चाहैं जिसके साथ विवाह करलें, यह सभी मनुष्य नरकमें जातेहैं ॥ ६९ ॥

पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ॥

आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥

जो पंक्तिमें भेद करताहो और जो वृथापाकी बलिवैश्वदेव न करे, अपने लियेही अन्न पकावै, ब्राह्मणोंकी निन्दा करताहो और वेदको बेचताहो, जो आज्ञाको करताहो, अथवा कुछ द्रव्यके लोभसे पढावे या जपकरे वह पांचों ब्रह्महत्यारे कहेहैं ॥ ७० ॥

इदं व्यासमतं नित्यमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥

एतदुक्ताचारवतः पतनं नैव विद्यते ॥ ७१ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति व्यासस्मृतिः समाप्ता ॥ १२ ॥

व्यासजीके विरचित धर्मशास्त्रके संग्रहको मनुष्योंको प्रतिदिन पढ़ना आवश्यक है, व्यासजीके कहेहुए आचरणोंको जो करताहैं उसका पतन नहीं होता, अर्थात् इस शास्त्रोक्त आचरणको करनेसे धर्मकी प्राप्ति होतीहै, और अधर्मका संपर्क नहीं होता ॥ ७१ ॥

इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

व्यासस्मृतिः समाप्ता १२.



॥ श्रीः ॥

शङ्खस्मृतिः १३.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शंखस्मृतिप्रारंभः ॥

स्वयंभुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ॥

चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखः शास्त्रमकल्पयत् ॥ १ ॥

सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयंभू ब्रह्माजीको नमस्कार करके चारों वर्णोंके कल्याणके निमित्त शंखरुद्धिने शास्त्रको निर्माण किया ॥ १ ॥

यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया ॥ प्रतिग्रहं चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दि-
शेत् ॥ २ ॥ दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ॥ क्षत्रियस्य च वैश्यस्य
कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥ क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ॥ कृषि-
गोरक्षवाणिज्यं विश्वं परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पा-
नि वाप्यथः ॥

यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और पढाना, प्रतिग्रह और पढना यह छैः कर्म ब्राह्म-
णोंके कहेहैं ॥ २ ॥ दान, पढना, और विधिके अनुसार यज्ञकरना; यह तीन कर्म क्षत्रिय और
वैश्योंके हैं ॥ ३ ॥ क्षत्रिय जातिका विशेष कर्म प्रजाकी पालना करनाहै, और वैश्यका खेती,
गौओंकी रक्षा तथा लैन देन कहाहै ॥ ४ ॥ और तीनों जातियोंकी सेवा करना और सम्पूर्ण
कारागरी यह शूद्रका कर्म है,

क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥

विशेष करके क्षमा, सत्य, शौच यह चारों वर्णोंके समान कर्म हैं ॥ ५ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं
मौजिवंधनम् ॥ ६ ॥ आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ॥ ब्राह्मण-
क्षत्रियविशां मौजीबंधनजन्मनि ॥ ७ ॥ वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विच-
क्षणैः ॥ यावदेदे न जायंते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥ ८ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंको द्विजाति कहते हैं, इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवी-
तसे जानना ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंके यज्ञोपवीतके जन्ममें आचार्य
पिता और माता गायत्री कहाहै ॥ ७ ॥ जबतक इनको वेद शास्त्रका अधिकार न हो तबतक
पंडित इनको शूद्रकी न जानें; और वेदपाठप्रारंभ अर्थात् यज्ञोपवीत होजानेपर ब्राह्मण
जानना उचित है ॥ ८ ॥

इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

गर्भस्य स्फुटताज्ञानं निषेकः परिकीर्तितः ॥ पुरा तु स्यंदनात्कार्यं पुंसवनं वि-
चक्षणैः ॥ १ ॥ पष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो जाते वै जातकर्म च ॥ आशौचे च
व्यतिक्रांते नामकर्म विधीयते ॥ २ ॥

गर्भके मलीभांदिसे प्रकाश पानेपर, निषेककर्म करना कहा है, और गर्भके स्यंदन (गर्भके चलने) से प्रथम पंडितोंको पुंसवन संस्कार करना चाहिये ॥ १ ॥ छठे या आठवें महीनेमें सीमन्त और सन्तानके उत्पन्न होनेपर जातकर्म और सूतकसे निवृत्त होनेपर नामकरण संस्कार करना उचित है ॥ २ ॥

नामधेयं च कर्तव्यं वर्णानां च समाक्षरम् ॥ मांगल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य
बलान्वितम् ॥ ३ ॥ वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ शर्मांतं
ब्राह्मणस्योक्तं वर्मांतं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥ धनांतं चैव वैश्यस्य दासान्तं
चांत्यजन्मनः ॥

चारोंवर्णोंका नाम समअक्षरयुक्त रखना उचित है; ब्राह्मणके नामके उच्चारणमें मंगल शब्द हो, क्षत्रियके उच्चारणमें बलयुक्त नाम हो ॥ ३ ॥ वैश्यके नाममें धनयुक्त नाम हो, और शूद्रजातिके नाममें निन्दायुक्त शब्द हो; ब्राह्मणके नामके पीछे शर्मा और क्षत्रियके नामके पीछे वर्मा ॥ ४ ॥ वैश्यके नामके अन्तमें धन और शूद्रके नामके अन्तमें दास होना उचित है,

चतुर्थे मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥

पष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चडा कार्या यथाकुलम् ॥

चौथे महीनेमें बालकको सूर्यका दर्शन करावे ॥ ५ ॥ छठे महीनेमें अन्नप्राशन संस्कार करना कर्तव्य है, और सुंडन अपनी २ कुलश्री रीतिके अनुसार करे;

गर्भाष्टमेऽन्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥ गर्भादिकादशे राज्ञो गर्भा-
द्वादशमे विशः ॥ षोडशाब्दानि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ॥ ७ ॥ विंशतिः
सच्चतुष्का तु वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥ नातिवर्तेत सावित्रीमत ऊर्ध्वं निवर्तेते
॥ ८ ॥ विज्ञातव्याख्योऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥ सावित्रीपतिता ब्राह्म्याः
सर्वधर्मबाहिष्कृताः ॥ ९ ॥

गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना उचित है ॥ ६ ॥ क्षत्रियका गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत करे और वैश्यका गर्भसे बारहवें वर्षमें करे; ब्राह्मणकी सोलह वर्षतक, क्षत्रियकी बारह वर्षतक ॥ ७ ॥ और वैश्यकी चौबीस वर्षतक गायत्री निवृत्त नहीं होती; यह शास्त्रका वचन है, इसके आगे निवृत्त होजाती है ॥ ८ ॥ जिनका अपने २ समयके अनुसार संस्कार नहीं हुआ है, वह तीनों वर्ण गायत्रीसे पतित और सम्पूर्ण धर्मकर्मोंसे वर्जित हैं; अर्थात् शूद्रकी समान हो जाते हैं ॥ ९ ॥

मौंजीज्याबंधनानां तु क्रमान्मौंज्यः प्रकीर्तिताः ॥ मार्गवैयाव्रवास्तानि चर्माणि
ब्रह्मचारिणाम् ॥ १० ॥ पर्णपिप्पलविल्वानां क्रमादंडाः प्रकीर्तिताः ॥ केश-

देशललाटास्यतुल्याः प्रो १ः क्रमेण तु ॥ ११ ॥ अवकास्सत्वचःसर्वे अनग्न्ये-
धास्तथैव च ॥ वस्त्रोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथ मम् ॥ १२ ॥ आदिम-
ध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥ भैक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं वर्णानामनुप-
र्वशः ॥ १३ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

और गुंज, प्रत्यंघा, ब्राधना (वृणविशेष) इनकी क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी मेखला, और मृग, व्याघ्र, भेड़ इनका चर्म तीनों जातिके ब्रह्मचारियोंको कहा है ॥ १० ॥ ढाक, पीपल, बेल इनके दंड क्रमानुसार कहे हैं; और वह दंड शिखा, माथा, मुखतफके प्रमाणसे तीनों वर्णोंको लेने उचित हैं ॥ ११ ॥ सीधे, त्वचासहित और जले न हों इन तीनोंके ब्रह्म और जनेऊ क्रमसे कपास अलसीकी सन और ऊनके होने उचित हैं ॥ १२ ॥ फिर आदि, मध्य और अंतमें भवतीशब्द लगाकर इस भांतिके वचनसे क्रमानुसार भिक्षा मांगै; अर्थात् ब्राह्मण “भवति भिक्षां देहि” यह कहै, क्षत्रिय “भिक्षां भवति देहि” और वैश्य “भिक्षां देहि भवति” इस भांति कहै ॥ १३ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥

आचारमभिकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ १ ॥

इसके उपरान्त आचार्य शिष्यको यज्ञोपवीत संस्कार कराकर प्रथम शौच, आचार, अभि-
का कार्य और सन्ध्योपासनादिकी शिक्षा करै ॥ १ ॥

स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥

भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥ २ ॥

जो शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर वेद पढाता है उसे गुरु कहते हैं, और जो कुछ द्रव्य लेकर पढाता है उसे उपाध्याय कहते हैं ॥ २ ॥

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयास्सदा नृणाम् ॥

क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यैते नादृतास्त्रयः ॥ ३ ॥

मनुष्योंको सर्वदा माता, पिता और गुरु यह तीनों पूजने योग्य हैं; कारण कि, जो इन तीनोंका आदर नहीं करता है, उसके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजाते हैं ॥ ३ ॥

प्रयतः कल्य उत्थाय स्नातो हुतहुताशनः ॥ कुर्वीत प्रणतो भक्त्या गुरुणाम-
भिवादनम् ॥ ४ ॥ अनुज्ञातस्तु गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ॥ कृत्वा ब्रह्मांजलिं

१ अपनी मातापे प्रथम भिक्षा मांगै, उसमें तो “मातर्भिक्षां मे देहि” ऐसाही वचन कहै, कारण कि “सप्तभिरक्षरैर्मातुः सकाशाद्भिक्षां याचेत्” ऐसा सूत्र है; और औरोंसे मांगनेमें यह भवति शब्द-
चटति वाक्य उच्चारण करै तहांकी यह व्यवस्था लिखते हैं ।

पश्यन्गुरोर्वदनमानतः ॥ ५ ॥ ब्रह्मावसाने प्रारंभे प्रणवं च प्रकीर्तयेत् ॥ अन-
ध्यायेष्वध्यायनं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥ ६ ॥

प्रत्यूपकालमें (तड़केही) उठकर प्रयत्न (मलमूत्रादिक करके शुद्ध) हो स्नान और
होम करनेके उपरान्त भक्तिपूर्वक गुरुओंको नमस्कार करै ॥ ४ ॥ इसके पीछे गुरुकी
आज्ञासे ब्रह्मांजलि करके गुरुके मुखको दर्शन कर नम्रभावसे वेदको पढ़े ॥ ५ ॥ वेद
पढ़नेके प्रारंभ और अन्तमें, अङ्कारका उच्चारण करै, और अन्ध्यायके दिन यत्नपूर्वक
न पढ़े ॥ ६ ॥

चतुर्दशी पंचदशीमष्टमी राहुसूतकम् ॥ उल्कापातं महीकंपमाशौचं ग्रामवि-
प्लवम् ॥ ७ ॥ इन्द्रप्रयाणं श्वहतं सर्वसंघातनिश्चयम् ॥ वाद्यकोलाहलं युद्धम-
नध्यायान्विवर्जयेत् ॥ ८ ॥ नाधोपीताभियुक्तोऽपि यानगो न च नौगतः ॥
देवायतनवलमीकश्मशानश्वसन्निधौ ॥ ९ ॥

चौदस, पूर्णमासी, अष्टमी, ग्रहण, उल्का, बिजलीका पात, भूकंप, अशौच, ग्रामका उप-
द्रव ॥ ७ ॥ इन्द्रप्रयाण, (वर्षाकालमें धनुषका दर्शन) कुत्तेका मरण, श्वके समूहका शब्द,
वाजोंका कुलाहल, और युद्ध इन दिनोंमें न पढ़े ॥ ८ ॥ सवारी, और नावमें, देवमंदिरमें,
वासीमें, श्मशानमें और श्वके निकट बैठकर किसीके कहनेपर भी न पढ़े ॥ ९ ॥

भैक्ष्यचर्या तथा कुर्याद्ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥

गुरुणा चाप्यनुज्ञातः प्रादनीयात्प्राङ्मुखः शुचिः ॥ १० ॥

और ब्राह्मणोंसे विधिसहित भिक्षा मांगै, फिर पवित्र हो पूर्वकी ओरको मुख करके गुरु-
देवकी आज्ञा लेकर भोजन करै ॥ १० ॥

हितं प्रियं गुरोः कुर्यादहंकारविवर्जितः ॥ उपास्य पश्चिमां संध्यां पूजयित्वा
हुताशनम् ॥ ११ ॥ अभिवाद्य गुरुं पश्चाद्गुरोर्वचनकृद्भवेत् ॥ गुरोः पूर्वं समु-
तिष्ठेच्छयीत चरमं तथा ॥ १२ ॥

अहंकाररहित होकर गुरुदेवका प्यारा और हितकारी कार्य करै, इसके पीछे सायंकाल
होनेपर सन्ध्या और अश्विनी पूजा करके ॥ ११ ॥ पीछे गुरुको नमस्कार कर गुरुके वच-
नोंका पालन करै, और गुरुसे प्रथम उठै और पीछे सोवै ॥ १२ ॥

मधु मांसांजनं श्राद्धं गीतं नृत्यं च वर्जयेत् ॥

हिंसां परापवादं च स्त्रीलीलां च विशेषतः ॥ १३ ॥

मधु (सहज आदिक मीठापदार्थ वा मदिरा), मांस, अंजन, श्राद्धका भोजन, गान, नाच,
हिंसा, पराई-निन्दा और विशेषकर स्त्रियोंकी लीला इन्हें त्यागदे ॥ १३ ॥

मेखलामजिनं दंडं धारयेच्च विशेषतः ॥

अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १४ ॥

१ “अथाञ्जलिः । पाठे ब्रह्माञ्जलिः” ऐसा अमरकोशमें लिखा है, इसका अर्थ यह है कि वेदादिपाठके
समय जो अञ्जलि बांधना है उसे ब्रह्माञ्जलि कहते हैं ।

मूजआदिकी मेखला (कौंधनी) मृगछाला, दंड, विशेषकर इनको धारण करै, और ब्रह्मचारी सावधानीसे पृथ्वीपर शयन करै ॥ १४ ॥

एवं व्रतं तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः ॥

गुरुवे च धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वेदके पढ़नेके समयमें बुद्धिमान् ब्रह्मचारी इसप्रकार व्रत और नियमको करै; और फिर गुरुको धन देकर गुरुकी आज्ञासे स्नान करै अर्थात् गृहस्थाश्रममें वास करै ॥ १५ ॥

इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

विंदेत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् ॥

मातृतः पंचर्षी चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त अपने गोत्र और प्रवरसे रहित स्त्रीके सहित विधिसहित विवाह करै अथवा जो अपनी माताके भंशज पूर्व पुरुषसे पांचवीं पीढ़ीकी और पिताके पूर्वपुरुषसे सातवीं पीढ़ीकी हो उसके साथ विवाह करै ॥ १ ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चा-

ष्टमोऽधमः ॥ २ ॥ एभ्यो म्भर्षास्तु चत्वारः पूर्व ये परिकीर्तिताः ॥ गांधर्वो

राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य तु शस्यते ॥ ३ ॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस, और पैशाच यह आठप्रकारके विवाह हैं, इनमें आठवां पैशाच अधम है ॥ २ ॥ पूर्व कहेहुए इनमें चार धर्म्य विवाह हैं, और गांधर्व, राक्षस यह दोनों क्षत्रियोंके लिये श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ॥ यज्ञस्यायत्विजे दैव आदायार्पस्तु

गोद्वयम् ॥ ४ ॥ प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ॥ आसुरो द्रविणा-

दानाद्गांधर्वः समयान्मिथः ॥ ५ ॥ राजसो गुद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥

जो विवाह बड़े यत्न और प्रार्थना करनेसे हो उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं, और जो कन्या यज्ञमें बैठे अतिविजको दीजाय उसे दैव विवाह कहते हैं; और वरसे दो गौ लेकर जो कन्या दीजाय उसे आर्षविवाह कहते हैं ॥ ४ ॥ कन्या देनेके निमित्त जहां वरकी प्रार्थना कीजाय उस विवाहको प्राजापत्य कहते हैं; और धन लेकर जिसका विवाह कियाजाय उस विवाहको आसुर कहते हैं; और जो विवाह कन्या और वरकी सम्मतिसे हो उसे गांधर्व विवाह कहते हैं ॥ ५ ॥ युद्धमें हरीहुई कन्याके साथ विवाह करनेका नाम राक्षस विवाह है, और छल करके कन्याके साथ विवाह कियाजाय उस विवाहको पैशाच विवाह कहते हैं,

१ मातृवंशज जिन पुरुषोंमें कन्या पांचवीं पड़ै उसे लेना यह भी मुन्यन्तरसम्मत नहीं है कारण कि “मातृतः पंचमं त्यक्त्वा पितृतः षष्ठकं त्यजेत्” ऐसा मन्यादिकोंका वचन है, इससे ऊपर हो ती दोष नहीं ।

तिस्रस्तु भार्या विप्रस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ॥ ६ ॥ एकैव भार्या वैश्यस्य
तथा शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या विप्रभार्याः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥
क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ॥ वैश्या च भार्या वैश्यस्य शूद्रा
शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ८ ॥

ब्राह्मणके तीन (ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या) स्त्री, और क्षत्रियके दो (क्षत्रिया, वैश्या)
स्त्री होती हैं ॥ ६ ॥ वैश्य और शूद्रके एक २ ही स्त्री होती हैं, ब्राह्मणी, क्षत्रिया, और वैश्या
यही तीन ब्राह्मणकी भार्या कही हैं ॥ ७ ॥ क्षत्रियकी क्षत्रिया और वैश्या यह दो भार्या हैं,
और वैश्यकी वैश्या और शूद्रकी शूद्राही भार्या होती हैं ॥ ८ ॥

आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजन्मना ॥

तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९ ॥

विपत्तिकाल होनेपरभी द्विजाति शूद्रकी कन्याके साथ विवाह न करे, कारण कि शूद्र-
कन्यासे उत्पन्न हुई सन्तानका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है, अर्थात् वह पतित होजाता है ॥ ९ ॥

तपस्वी यज्ञशीलस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥

ध्रुवं शूद्रत्वमायाति शूद्रश्चाद्धे त्रयोदशे ॥ १० ॥

तपस्वी, यज्ञशील और सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रेष्ठ होनेपरभी ब्राह्मण शूद्रके त्रयोदशाह श्राद्धकर-
नेसे निश्चयही शूद्रकी समान होजाता है ॥ १० ॥

नीयते तु सपिंडत्वं येषां शूद्रः कुलोद्भवः ॥ सर्वे शूद्रत्वमायांति यदिः स्वर्गजि-
तश्च ते ॥ ११ ॥ सपिंडीकरणं कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम् ॥ श्राद्धद्वादशकं

कृत्वा श्राद्धे प्राप्ते त्रयोदशे ॥ १२ ॥ सपिंडीकरणं चाहंन च शूद्रः कथंचन ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्या विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

जो शूद्र कुलमें उत्पन्न होकर जिनकी सपिंडी करता है वह चाहे स्वर्गके जीतनेवालेभी
क्यों नहीं परन्तु सब शूद्र होजाते हैं ॥ ११ ॥ इसकारण कुलमें उत्पन्नहुओंका द्वादशाहका
श्राद्ध करके त्रयोदशाह श्राद्धके दिन अवश्य सपिंडन करे ॥ १२ ॥ शूद्र कभीभी सपिंडी
करनेके योग्य नहीं है, इसकारण यत्नपूर्वक शूद्रास्त्रीका त्याग करदे ॥ १३ ॥

पाणिग्राह्यस्सवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥

वैश्या प्रतोदमादद्याद्धेदेन त्वग्रजन्मनः ॥ १४ ॥

१ पर कहीं २ चारोंवर्णोंकी कन्या लेनेकी आज्ञा ब्राह्मणोंको है, जैसे शबरस्वामीजीको चारोंवर्णकी
कन्यामें संतान—

“ब्राह्मण्याममवद्वत्सहस्रिहो ज्योतिर्विदामग्रणी राजा भर्तृहरिश्च विक्रान्तपुः शत्रात्मजायामभूत् ।

वैश्यायां हरिचंद्रवैद्यतिलको जातश्च शंकुः कृती, शूद्रायाममरः पडेव शबरत्वामिद्विजस्यात्मजाः ॥”

ऐसे लिखे पद्यांसे पाईजाती है; परंतु यह,—

“तेजीयसां न दोषाय बह्वेः सर्वभुजो यया”

इसीके अनुमोदक वाक्य है, शबरस्वामी सहस्रशाखा सामवेदको ‘अर्थतः पाटतश्च’ जानतेथे और
वेदोंका तो कहनाही क्या है । “सहस्रशाखा अर्थतो वेद शबरः” ये भाष्यकारका सचन है ।

ब्राह्मणके विवाहकरनेमें ब्राह्मणी हाथको ग्रहण करै, क्षत्रियाश्रको, वैश्या प्रतोद (चा-
बुक) को ग्रहण करै ॥ १४ ॥

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥ भार्या या पतिप्राणा सा
भार्या या प्रजावती ॥ १५ ॥ लालनीया सदा भार्या ताडनीया तथैव च ॥
ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

जो स्त्री घरमें चतुर हो, जो पतिव्रता हो, वा जिसके प्राण पतिमें वसतेहों, और जिसके
संतान हो वही भार्या है ॥ १५ ॥ भार्याका सर्वदा लालन करता रहै और ताडनाभी करै
कारणकि लालना और ताडना करनेसेही वह स्त्री लक्ष्मीकी समान होजाती है इसमें
अन्यथा नहीं ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ॥ कंडनी चोदकुंभश्च तस्य पापस्य
शांतये ॥ १ ॥ पंचयज्ञविधानं तु गृही नित्यं न हापयेत् ॥ पंचयज्ञविधानेन
तत्पापं तस्य नश्यति ॥ २ ॥

गृहस्थीमें सर्वदा पांच हत्या होती हैं- चूल्हा, चक्को, बुहारी, ओखली, और जलका घडां,
इन हत्याओंके पापकी शांतिके निमित्त ॥ १ ॥ गृहस्थी किसीदिनभी पंचयज्ञकर्मका त्याग न
करै, कारण कि पांचयज्ञके करनेसे उन हत्याओंका पाप नष्टहोजाता है ॥ २ ॥

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ॥ ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पंचयज्ञाः प्रकीर्तिताः
॥ ३ ॥ होमो दैवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिंडक्रिया स्मृतः ॥ स्वाध्यायो ब्रह्मय-
ज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ४ ॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ यह पांचप्रकारके यज्ञ कहेहैं ॥ ३ ॥
हवनको देवयज्ञ, बलिवैश्वदेवको भूतयज्ञ, पिंडदानको पितृयज्ञ, वेदपाठको ब्रह्मयज्ञ, और
अतिथिके पूजनको मनुष्ययज्ञ कहा है ॥ ४ ॥

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ॥ गृहस्थस्य प्रसादेन जीवत्येते
यथाविधि ॥ ५ ॥ गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तपते तपः ॥ ददाति च गृह-
स्थश्च तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥ ६ ॥

वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, यती यह तीनों द्विजाति गृहस्थीके प्रसादसे यथाविधि (यथार्थसे)
जीवन निर्वाह करते हैं ॥ ५ ॥ गृहस्थीही यज्ञ करता है, गृहस्थीही तपस्या करताहै, गृहस्थीही
दानदेता है, इसकारण गृहस्थाश्रमही सबसे श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥

अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥ ७ ॥

जिसप्रकार स्वामीही स्त्रियोंका रक्षक है, और जिसभांति चारों वर्णोंका रक्षक ब्राह्मण है उसीप्रकार गृहस्थीका स्वामी अतिथि कहलै ॥ ७ ॥

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ॥ नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ ८ ॥ न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः ॥ राजा स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥ ९ ॥ न स्नानेन न मौनेन नैवाग्निपरिचर्यया ॥ ब्रह्मचारी दिवं याति संयाति गुरुपूजनात् ॥ १० ॥ नाग्निशुश्रूषया क्षांत्या स्नानेन विविधेन च ॥ वानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥ ११ ॥ न दंडैर्न च मौनेन शून्यागाराश्रयेण च ॥ यतिः सिद्धिमवाप्नोति योगेनाप्त्यनुत्तमम् ॥ १२ ॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा ॥ गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम् ॥ आहारशयनाद्येन विधिवत्प्रतिपूजयेत् ॥ १४ ॥

व्रत, उपवास, और अनेकभांति के धर्मकरनेसे स्त्रीको स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती; परन्तु केवल एकमात्र पतिके पूजन से स्वर्गको जाही है ॥ ८ ॥ व्रत, उपवास और अनेकप्रकारके यज्ञोंको करके राजाको स्वर्ग प्राप्त नहींहोता परन्तु एक प्रजाकी रक्षा करनेसेही स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ ब्रह्मचारी स्नान, मौन और नित्य अग्नि की सेवा करनेसेही स्वर्गको नहीं जाता परन्तु एकमात्र गुरु की सेवा करनेसेही स्वर्गको जाताहै ॥ १० ॥ वानप्रस्थ अग्नि की सेवासे या क्षमासे तथा अनेकप्रकारके स्नानकरनेसे स्वर्गको नहीं जाता, केवल एक भोजनके त्याग करनेसेही स्वर्गको जाता है ॥ ११ ॥ संन्यासी दंड, मौन, और शून्य स्थानमें रहकरही सिद्धि को प्राप्त नहीं होता परन्तु योगसेही सर्वोत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ गृहस्थी दक्षिणावाली यज्ञोंकी और अग्नि की सेवा करनेसे स्वर्गको नहींजाता केवल एक अतिथिके पूजनसेही स्वर्ग प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ इसकारण गृहस्थीको यत्नपूर्वक अतिथिको भोजन और शय्या-आदिसे पूजाकरनी उचित है ॥ १४ ॥

सायंप्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शं च पौर्णमासं च जुहुयाद्विधिवत्तथा ॥ १५ ॥ यजेत पशुर्वधैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ॥ त्रैवर्षिकाधिकालस्तु पिवेत्सोममतद्रितः ॥ १६ ॥ इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्तथा चात्पथनो द्विजः ॥ न भिक्षेत धनं शूद्रात्सर्वं दद्याच्च भिक्षितम् ॥ १७ ॥

विधिपूर्वक सायंकाल और प्रातःकाल में अग्निहोत्र करे और दर्श (अमावस) तथा पूर्णमासीकोभी हवन करे ॥ १५ ॥ अश्वमेधादि यज्ञ और चातुर्मास्य यज्ञोंसे ईश्वरका पूजन करे और तीनवर्षसे अधिक अन्नवाला पुरुष आलस्यरहित होकर सोम (अमृतनामकी एकलता) का पान करे ॥ १६ ॥ थोड़े धनवाला ब्राह्मण वैश्वानरी यज्ञ करे, और शूद्रसे धनको कदापि न माँगे और भिक्षाके सम्पूर्ण धनका दान करे ॥ १७ ॥

वृत्तं तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव च ॥ कर्मणा जन्मना शुद्धं विद्यया च
वृणीत तम् ॥ १८ ॥ एतैरेव गुणैर्युक्तं धर्माजितधनं तथा ॥ याजयीत सदा
विप्रो ग्राह्यस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

विद्वान् मनुष्य उस ऋत्विजका त्याग न करै जिसको कि बरा हो परन्तु जन्म और कर्ममें
शुद्ध उसी ऋत्विजका वरण करै ॥ १८ ॥ उक्तगुणोंसे युक्त जिसने न्यायसे धनका संचय
कियाहो उस मनुष्यको ब्राह्मण सर्वदा यज्ञ करावै; और उसीसे प्रतिग्रह ले ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६ अध्यायः ६

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥

गृहस्था मनुष्य जिससमय देखै कि शरीरका मांस सूखगया है अर्थात् बुढ़ापा आगया है,
और, पौत्रको देखले तब वानप्रस्थआश्रमको ग्रहण करनेके निमित्त वनको चलाजाय ॥ १ ॥

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तथा वानुगतो वनम् ॥ अग्नीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमा-

हरेत् ॥ २ ॥ यदाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥ तेनैव पूजयेन्नित्यम-

तिथिं समुपागतम् ॥ ३ ॥ ग्रामादाहत्य वाश्रीयादष्टौ ग्रासान्समाहितः ॥

स्वाध्यायं च तथा कुर्याजटाश्च विभृयात्तथा ॥ ४ ॥ तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयं

चैव कलेवरम् ॥

व्री [यदि वनको जानेके लिये सम्मत न हो] तौ उसे पुत्रोंको सोंपकर वनको चला-
जाय (और जो वनजानेके लिये सम्मत हो तौ) उसको अपनेसाथ लेजाकर अग्निकी सेवा
करै; और वनमें उत्पन्नहुए कंद मूल फलादिकाही भोजन करै ॥ २ ॥ वनवासके समय जो
अन्न आप भोजन करै उससेही पितर और देवता तथा अतिथिका पूजन करै ॥ ३ ॥ साव-
धानचित्त होकर ग्रामसे आठ ग्रास लाकर भोजन करै और वेदको पढ़ै तथा जटोंओंकोभी
वारण करै ॥ ४ ॥ प्रतिदिन तपस्याद्वारा अपनी देहको सुखावै,

आर्द्रवासास्तु हेमन्ते ग्रीष्मे पञ्चतपास्तथा ॥ ५ ॥ प्रावृष्याकाशशायी च

नक्ताशी च सदा भवेत् ॥ चतुर्थकालिको वा स्यात्पष्ठकालिक एव वा ॥ ६ ॥

वृक्षैर्वापि नयेत्कालं ब्रह्मचर्यं च पालयेत् ॥ एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्मा-

श्रमी भवेत् ॥ ७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शीतकालमें गीले वस्त्रोंको पहरे, और ग्रीष्मऋतुमें पंचा ॥ ५ ॥ वर्षाक
भेदानमें शयन करै और सर्वदा नक्तमेंही भोजन करै, अथवा चौथे कालमें वा छठे कालमें
भोजन करै ॥ ६ ॥ अथवा वृक्षों के तलेमेंही अपने समयको व्यतीत करै और ब्रह्मचर्यका
पालनकर ब्राह्मण अपने समयको व्यतीतकर संन्यास आश्रमको ग्रहण करै ॥ ७ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

कृत्वेष्टिं विविचत्पश्चात्सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥

आत्मन्यमीन्समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ १ ॥

इसके उपरान्त सर्ववेदसदक्षिणानामक इष्टि करके अपनी देह तथा अपनी आत्मामेंही अधिको मानकर ब्राह्मण संन्यासआश्रमको ग्रहण करै ॥ १ ॥

विधूमे न्यस्तमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने ॥ अतीते पात्रसंपाते नित्यं भिक्षां
यतिश्चरेत् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ॥ २ ॥ न व्यथेच्च
तथाऽलामे यथालब्धेन वर्तयेत् ॥ न स्वादयेत्तथैवान्नं नादनीयात्कस्यचि-
द्गृहे ॥ ३ ॥

जिस समय ग्रामवासी मनुष्य भोजन करचुके हों, धुआं न उठताहो, मूललमी चावल निकालकर यथास्थानपर रखदिये हों और रखोई वा जलके पात्रोंका इधर उधर लेनाभी बंद होगयाहो उससमय संन्यासी भिक्षाके लिये जाय, सात घरोंसे भिक्षा मांगे, एकदिन जिन घरोंमेंसे भिक्षा मांगीहो फिर दूसरे दिन उनसे भिक्षा न मांगे ॥ २ ॥ यती भिक्षाके न मिलनेसे दुःखी न हो, जो कुछ मिलजाय उससेही जीविका निर्वाह करे, अन्नको स्वादिष्ट न करे और न किसीके घरमें भोजन करै ॥ ३ ॥

मृन्मयालानुपात्राणि यतीनां च विनिर्दिशेत् ॥

तेषां संमार्ज्जनाच्छुद्धिराद्रिश्चैव प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

यतिकेलिये मिट्टी और तोंवके पात्र कहे गयेह; यह जलसे सांजनेसेही शुद्ध होजातेहैं ॥ ४ ॥

कौपीनाच्छादनं वासो विभृयादव्यथश्चरन् ॥

शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्र सायंगृहो मुनिः ॥ ५ ॥

और दुःखसे रहित संन्यासी वनमें निवास करताहुआ कौपीन और गुदहीकेही वस्त्रोंको पहरे, शून्यस्थानमें निवास करे, जहां संध्या होजाय वहीं घर मानकर मौन हो निवास करै ॥ ५ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ॥

सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ६ ॥

भलीभांति चारों ओरको देखकर पैर रखै; और वस्त्रसे छानकर जल पिये, सत्यवचन बोले और मनसे पवित्र आचरण करै ॥ ६ ॥

सर्वभूतसमो भैत्रः समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ध्यानयोगरतां भिक्षः प्राप्नोति
परमां गतिम् ॥ ७ ॥ जन्मना यस्तु निर्मुक्तो मरणेन तथैव च ॥ आधिभि-
र्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ८ ॥ अशुचित्वं शरीरस्य प्रिशामिय-
विपर्ययः ॥ गर्भवासे च वसते तस्मान्मुच्येत नान्यथा ॥ ९ ॥

१ वहां ऐसाभी अर्थ होसकताहै कि जिस घरसे एक संन्यासी भिक्षा लेगयाहो ऐसा विदित होनेपर उसी घरमें दूसराभी भिक्षा मांगनेको न जाय ।

सम्पूर्ण प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखे, सबका मित्र बनारहै; और सुवर्ण, पत्थर, ढेला इनकोभी एकसाही समझै ध्यान और योगमें रत रहै; ऐसे आचरण करनेवाला भिक्षुक परम-गतिको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ जो शरीर जन्ममरण वा मनकी पीडा और देहके रोगसे छूटजाय देवता उसीको ब्राह्मण शरीर कहतेहैं ॥ ८ ॥ शरीरकी अशुद्धतासे प्रियके स्थानपर अप्रिय और अप्रियके स्थानपर प्रिय होजाताहै, और गर्भमें निवास होताहै, इन सब छेशोंसे ब्राह्मण जन्मके बिना नहीं छूटता ॥ ९ ॥

जगदेतन्निराकंदं निःसारकमनर्यकम् ॥

भे व्यमिति निर्दिष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥

यह संसार बड़ा भयंकर है साररहित और अनर्थरूप है, इसमें जो आयेहैं तौ इसको अवश्यही भोगना पड़ेगा; जो अपनी बुद्धिसे इसको भोगताहै उसकी मुक्ति होजातीहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ १० ॥

प्राणायामैर्देहोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥

प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥

प्राणायामसे दोषोंको और धारणाओंसे सम्पूर्ण पापोंको भस्मकरदे, प्रत्याहारसे संगोंको और ध्यानसे अज्ञानआदि गुणोंको दग्ध करदे ॥ ११ ॥

सव्याहर्तितं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥ त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स
उच्यते ॥ १२ ॥ मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणेति निगद्यते ॥ संहारश्चैन्द्रियाणां
च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥ हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्य दर्शनम् ॥
ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् ॥ १४ ॥

सात व्याहृति और ॐकार शिरोमंत्रसहित गायत्रीके प्राणोंको रोककर तीनवार पढ़नेको प्राणायाम कहाहै ॥ १२ ॥ धारणाके जाननेवाले मनके रोकनेको धारणा कहतेहैं, इन्द्रियोंके विषयोंसे हटानेको प्रत्याहार कहतेहैं ॥ १३ ॥ और योगाभ्याससे हृदयमें स्थित देवदेव परमात्माका जो दर्शन है, इसको ध्यान कहतेहैं, इसके उपरान्त ध्यानयोगको कहताहूं ॥ १४ ॥

हृदिस्था देवतास्सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ हृदि ज्योतीषि सूर्यश्च हृदि
सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ स्वदेहमरणं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥ ध्यान-
निर्मथनाभ्यासाद्विष्णुं पश्येद्भुदि स्थितम् ॥ १६ ॥ हृद्यर्कश्चंद्रमाः सूर्यः सोम-
मध्ये हुताशनः ॥ तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥ १७ ॥
अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥ तेजोमयं पश्य-
ति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ १८ ॥ वासुदेवस्तमोऽधानां
पणैरपि पिबोयते ॥ अज्ञानपटसंवीतैरिन्द्रियैर्विषयेच्छुभिः ॥ १९ ॥ एष वै
पुरुषो विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥ एष धाता विधाता च पुराणो निष्कलः
शिवः ॥ २० ॥ वेदाहमेतं पुरुषं महांतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ यं वै
विदित्वा न विभेति मृत्योर्नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय ॥ २१ ॥

हृदयमें सम्पूर्ण देवता और प्राण स्थित हैं, हृदयमेंही सम्पूर्ण तारागण और सूर्य निवास करतेहैं ॥ १५ ॥ अपने देहको नीचेकी अरणी और अकारको ऊपरकी अरणी करके ध्यानके उपरान्त अभ्यासरूप मयनसे हृदयमें विराजमान विष्णुका दर्शन होताहै ॥ १६ ॥ हृदयमें सूर्य और चन्द्रमा हैं सूर्यचन्द्रके मध्यमें अग्नि है इस अग्निमें सत्त्वपदार्थ स्थित है और सत्त्व पदार्थमें भगवान् अच्युत निवास करतेहैं ॥ १७ ॥ अणुसेभी अणु और महान्सेभी महान् आत्मा इस प्राणीके हृदयरूपी गुहामें स्थित है परमात्माकी कृपासे इस तेजोमय आत्माकी महिमाको कोई वेदान्तविचारसे शोकरहित हुए पुरुषही देखसकेहैं ॥ १८ ॥ अज्ञानसे अंधे पुरुषोंको यह सवमें निवास करनेवाले भगवान् पत्तोसे आच्छादित हैं अर्थात् पत्ते डाली जड़ चेतन सवमें व्याप्तहैं तथापि अज्ञानी उनको ऐसे नहीं देखसक्ते जैसे मेंहदीमें लाली दिखाई नहीं पढती नहीं तो एक पत्तेमेंही उसका प्रकाश दीखताहै और उन विषयकी इच्छावालोंकी इन्द्रिय अज्ञानरूपी वस्त्रोंसे ढकी रहतीहैं ॥ १९ ॥ और यह पुरुष (हृदयमें शयन करने-वाला) विष्णु प्रकट और अप्रकट और नित्य हैं; और वही धाता, विधाता, पुरातन, कलारहित और कल्याणस्वरूप हैं ॥ २० ॥ इनको मैं बड़ा पुरुष और सूर्यकी समान तेजस्वी समोंगुणसे परे जानताहूँ; इनको जानकर पुरुष मृत्युसेभी नहीं डरता और इसके अविरक्त मोक्षके लिये दूसरा कोई मार्ग नहींहै ॥ २१ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥ पंचैतानि विजानीयान्महाभूतानि
पंडितः ॥ २२ ॥ चक्षुः श्रोत्रं स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥ बुद्धिन्द्रियाणि
जानीयात्पंचैमानि शरीरके ॥ २३ ॥ रूपं शब्दस्तथा स्पर्शो रसो गंधस्तथैव
च ॥ इन्द्रियार्थान्विजानीयात्पंचैव सततं बुधः ॥ २४ ॥ हस्तौ पादावुपस्थं
च जिह्वा पायुस्तथैव च ॥ कर्मेन्द्रियाणि पंचैव नित्यमस्मिच्छरीरके ॥ २५ ॥
मनो बुद्धिस्तथैवात्मा ह्यव्यक्तं च तथैव च ॥ इन्द्रियेभ्यः पराणीह चत्वारि कथि-
तानि च ॥ २६ ॥ चतुर्विशत्यैतानि तत्त्वानि कथितानि च ॥ तथात्मानं
तद्व्यतीतं पुरुषं पंचविंशकम् ॥ २७ ॥ यं तु ज्ञात्वा विमुच्यते ये जनाः साधु-
वृत्तयः ॥ तदिदं परमं गुह्यमेतदक्षरमुत्तमम् ॥ २८ ॥ अशब्दरसमस्पर्श-
मरूपं गंधवर्जितम् ॥ निर्दुःखमसुखं शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २९ ॥
अजं निरंजनं शांतमव्यक्तं ध्रुवमक्षरम् ॥ अनादिनिधनं ब्रह्म तद्विष्णोः
परमं पदम् ॥ ३० ॥

और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पंडित जन इन पांचोंको महाभूत जानें ॥ २२ ॥
१ नेत्र, २ कान, ३ त्वचा, ४ रसना (जिह्वाके अप्रभागमें रहतीहै) और ५ घ्राण यह पांच
ज्ञानेन्द्रिय शरीरमें रहतीहैं ॥ २३ ॥ रूप, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, इन पांचों इन्द्रियोंके
अर्थ पंडितजनोंको अवश्य जानना उचित है ॥ २४ ॥ हाथ, पांव, लिंग, जिह्वा, गुदा यह
पांच कर्मेन्द्रिय शरीरमें हैं ॥ २५ ॥ मन, बुद्धि, आत्मा, अव्यक्त यह चार तत्त्व
इन्द्रियोंसे परे हैं ॥ २६ ॥ यह चौदास तत्त्व हैं और आत्मा जो पुरुष (ईश्वर)
है वह पञ्चोसमा है ॥ २७ ॥ जिसको जानकर साधुस्वभाव मनुष्य मुक्त होजातेहैं

सो यह गुप्त अविनाशी और सर्वोत्तम है ॥ २८ ॥ उस आत्मामें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह कुछ नहीं है; और दुःख सुख यहभी उसमें कुछ नहीं है वह विष्णुका परमपद है ॥ २९ ॥ जो जन्म और कर्मोंकी वासनासे रहित है और जो शांत, अप्रत्यक्ष, नित्य, अविनाशी और जो आदि और अंतसेभी रहित है और जो ब्रह्मरूप है वही विष्णुका परम पद है ॥ ३० ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु : प्रग्रहबंधनः ॥

सो ध्वनः पारमामोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ३१ ॥

जिस मनुष्यका विज्ञानही सारथी है, और मैं ही प्रग्रह (रस्सी) अर्थात् इन्द्रियरूपी घोड़ोंकी लगाम है वही संसाररूपमार्गसे परे उस विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

वा प्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ॥

यापि शतमाद्रागाजीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥ ३२ ॥

वाल (केश) के अग्रभागके सहस्रटुकड़े किये जायें उनमेंसे एक टुकड़ेका जो सौभाग्य है उससेभी जीव सूक्ष्म है ॥ ३२ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा तथा परः ॥ ३३ ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥ पुरु परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ३४ ॥ एष सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्यवि सदा ॥ दृश्यते त्वय्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इन्द्रियोंसे परे अर्थ (विषय) हैं और अर्थसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, बुद्धि से परे आत्मा महत्तत्त्व है ॥ ३३ ॥ महत्तत्त्वसे परे अव्यक्त प्रधान है अव्यक्तसे परे पुरुष है और पुरुष (ब्रह्म) से परे कुछ नहीं है; किन्तु वही उत्तम काष्ठा और गति है ॥ ३४ ॥ इन सम्पूर्ण प्राणियोंमें वह सर्वदा अविकल एकसा स्थित रहता है, और सूक्ष्म बुद्धिवाले मनुष्य उत्तम और सूक्ष्म बुद्धिसे उस ब्रह्मका दर्शन करते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियांगं मलकर्षणम् ॥

क्रियास्नानं तथा षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियांग, मलकर्षण, क्रियास्नान, यह छैः प्रकारका स्नान कहा है ॥ १ ॥

अ तः पुरुषोऽनहो जप्यामिहवनादिषु ॥ प्रातःस्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ चंडालशत्रूभूषाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ॥ स्नानानर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥ ३ ॥ पुण्यस्नानादिकं दैवज्ञविधिचोदितम् ॥ तद्विधौ काम्यं समुद्दिष्टं नाकाप्रस्तत्प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ जसु-

कामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतां पितृन् ॥ स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियांगं तत्प्र-
कीर्तितम् ॥ ५ ॥ मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥ मलापकर्षणार्थाय
प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ ६ ॥

स्नानके विनाकिये मनुष्य जप, अग्निहोत्रआदिके करनेका अधिकारी नहीं होता, इसका-
रण प्रातःकालका स्नान नित्यस्नान कहाँ है ॥ २ ॥ चांडाल, शव, पूय, राघ, और रजस्वला
स्त्री इनके स्पर्श करनेके उपरान्त जो स्नान कियाजाताहै उस स्नानको नैमित्तिक कहाँ है
॥ ३ ॥ पुष्यनक्षत्रआदि समयमें जो ज्योतिषशास्त्रमें कहाहुआ स्नान है उस स्नानको काम्य
कहाँ है, और निष्काम मनुष्य उस स्नानको न करे ॥ ४ ॥ पवित्रमंत्रोंके जपनेके निमित्त या
जो देवताओंकी पूजाके निमित्त स्नान कियाजाताहै उस स्नानको क्रियांग कहाँ है ॥ ५ ॥ जो
स्नान मेलको दूरकरनेके निमित्त उवटनाआदि लगाकर कियाजाताहै उस स्नानको मलक-
र्षण कहाँ है; कारण कि उस स्नान करनेमें मनुष्यकी प्रवृत्ति मेल दूरकरनेके लिये है
अन्यथा नहीं ॥ ६ ॥

सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥ क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र
महाक्रिया ॥ ७ ॥ तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम् ॥ नित्यं नैमि-
त्तिकं चैव क्रियांगं मलकर्षणम् ॥ ८ ॥

नदी, देवताओंके खोदेहुए कुंड, तीर्थ, छोटी २ नदी, इनमें जो स्नान कियाजाताहै उसे
क्रियास्नान कहाँ है, कारण कि इनमें स्नानकरना उत्तम कर्म है ॥ ७ ॥ और पूर्वोक्त नदी-
आदिकोंमें ही काम्य स्नान भलीभाँतिसे करना योग्य है और नित्य, नैमित्तिक, क्रियांग और
मलकर्षण यह चारप्रकारके स्नान हैं ॥ ८ ॥

तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥ स्नानं तु वह्नितप्तेन तथैव परचा-
रिणा ॥ ९ ॥ शरीरशुद्धिविज्ञाता न तु स्नानफलं लभेत् ॥ अद्भिर्गात्राणि
शुद्ध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं भवेत् ॥ १० ॥

तीर्थके अभावमें गरमजलसे और पूर्वोक्त नदीआदिसेभी भिन्न २ जलसे स्नानकरना
कहाँ है; और अग्निसे तपाये तथा अन्य मनुष्यके निकालेहुए जलसे जो स्नान है ॥ ९ ॥ वह
शरीरकी शुद्धिके निमित्त है, उस स्नानका फल नहीं मिलता कारण कि तीर्थस्नानसे फलही
प्राप्ति होतीहै और जलोंसे गात्रकी शुद्धि होतीहै ॥ १० ॥

सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥ स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्य-
फलं स्मृतम् ॥ ११ ॥ तीर्थं प्राप्यानुषंगेण स्नानं तीर्थं समाचरेत् ॥ स्नानजं
फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलेन तु ॥ १२ ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि
सदा नृणाम् ॥ परास्पर्शनपेक्षाणि कथितानि मनोषिभिः ॥ १३ ॥ सर्वे प्रस-
वणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः ॥ नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाद्वी तु
विशेषतः ॥ १४ ॥

देवताओंके खोदे तालाव, तीर्थ, और नदी इनमें स्नान करनाही कर्म है, इसकारण स्नान करनेसे पुण्यफल मिलताहै ॥ ११ ॥ जो अकस्मात् तीर्थमें जाकर स्नान कियाजाता है वह स्नान फलका देनेवाला होगा, तीर्थयात्राका फल नहीं होगा ॥ १२ ॥ बुद्धिमानोंने सम्पूर्ण तीर्थोंका मनुष्योंके पापोंका नाशकरनेवाला और परस्परमें अनपेक्ष कहा है ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण झरने, तालाव, पर्वत, नदी यह सभी पवित्र हैं और विशेषकर श्रीगंगाजी पवित्र हैं ॥ १४ ॥

यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥ विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ-
फलमश्नुते ॥ १५ ॥ नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ॥ यथोक्त-
फलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतानष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति यह अपने वशमें हैं वही तीर्थोंके फलको भोगताहै ॥ १५ ॥ जो मनुष्य पापी हैं उनके पापोंका नाश होजाताहै शुद्ध मनवाले मनुष्योंको तीर्थमें जानेसे इच्छानुसार फल मिलताहै ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

क्रियास्नानं तु वक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ॥

मृद्भिरद्भिश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ॥ १ ॥

इसके उपरान्त क्रियास्नानकी विधिको कहताहूं, प्रथम मिट्टी और जलसे विधिपूर्वक शौचकरे ॥ १ ॥

जले निमग्न उन्मज्ज्य उपस्पृश्य यथाविधि ॥ जलस्यावाहनं कुर्यात्तत्प्रवक्ष्या-
म्यतः परम् ॥ २ ॥ प्रपद्ये वरुणं देवमंभसां पतिमूर्जितम् ॥ याचितं देहि मे
तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥ ३ ॥ तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाघविनिषूदनम् ॥
सान्निध्यमस्मिन्सत्तोये भज त्वं मदनुग्रहात् ॥ ४ ॥ रुद्रान्प्रपद्ये वरदान्सर्वा-
नप्सुसदस्तथा ॥ सर्वानप्सुसदश्चैव प्रपद्ये प्रणतः स्थितः ॥ ५ ॥ देवमप्सुसदं
वह्निं प्रपद्येऽघनिषूदनम् ॥ अपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ॥ ६ ॥
रुद्रश्चाग्निश्च सर्पाश्च वरुणश्चाप एव च ॥ शमयंत्वाशु मे पापं मां रक्षंतु च
सर्वशः ॥ ७ ॥ इत्येवमुक्त्वा कर्तव्यं ततः संमार्जनं जले ॥ आपोहिष्ठेति
तिसृभिर्यथावदनुष्वशः ॥ ८ ॥ हिरण्यवर्णेति वदेदग्निश्च तिसृभिस्तथा ॥
शन्नोदेवीति च तथा शन्न आपस्तथैव च ॥ ९ ॥ इदमापः प्रवहत तथा मंत्र-
मुदीरयेत् ॥ एवं मंत्रान्समुच्चार्य छंदांसि ऋषिदेवताः ॥ १० ॥ अघमर्षणसू-
क्तस्य संस्मरन्प्रयतः सदा ॥ छंद आनुष्टुभं तस्य ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥ ११ ॥
देवता भाववृत्तान्तु पापघ्नस्य प्रकीर्तितः ॥ ततोऽभसि निमग्नस्तु त्रिः पठेदघम-
र्षणम् ॥ १२ ॥

फिर जलमें गोता लगाकर बाहर निकल विधिसहित आचमनकरके यथाविधि जलका आवाहन करे, इसके आगे जलका आवाहन कहताहूँ कि ॥ २ ॥ “जलके पति वरुणदेव-
जीकी मैं शरण हूँ हे वरुण ! जिस तीर्थकी मैं अभिलाषा करूँ सम्पूर्ण पापोंके दूरकरनेके
“उत्तं तुमं मुझे उर्सं दो ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण पापोंके दूरकरनेवाले तीर्थका मैं आवाहन
करताहूँ, हे तीर्थ ! इस उत्तम जलसे मेरे ऊपर कृपाकर मुझे संनिधिकरो ॥ ४ ॥ जलमें
स्थित रुद्रोंको और अन्य जलके निवासियोंको अमुकनामवाला मैं नमस्कारकरके उनकी शरण
हूँ ॥ ५ ॥ जलके निवासी और सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाले अग्निदेवताकी भी मैं शरण
हूँ ॥ ६ ॥ रुद्र, अग्नि, सर्प, वरुण, और जल यह शीघ्रही मेरे पापोंका नाशकरें और मेरी
चारों ओरसे रक्षाकरें ॥ ७ ॥ इस भांति कहकर फिर जलमें “आपो हि प्रा०” इत्यादि
तीनऋचाओंके क्रमसे मलीभांति मार्जनकरें ॥ ८ ॥ “हिरण्यवर्णा० अग्निश्च० शन्नो देवी०”
और “शन्न आपः०” इन मन्त्रोंको पढ़ें ॥ ९ ॥ और “इदमापः०” इस मन्त्रको पढ़ें इसप्र-
कार मन्त्रोंका उच्चारण कर छन्द ऋषि और जो देवता अघमर्पणसूक्तके हैं उनका स्म-
रते सर्वदा स्मरण करे, अघमर्पणसूक्तका छन्द अनुष्टुप् है और ऋषि अघमर्पण है ॥ १० ॥
॥ ११ ॥ पापके नाशकरनेवाले अघमर्पणका भाववृत्तं देवता कहाँ है फिर जलमें गोता लगाकर
तीनवार अघमर्पण मंत्रको पढ़ें ॥ १२ ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापप्रणाशनः ॥

तथाघमर्पणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥

जिस भांति यज्ञोंका राजा अश्वमेध सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है वसी भांति अघ-
मर्पणसूक्तभी सम्पूर्ण पापोंका नाशक है ॥ १३ ॥

अनेन ज्ञात्वा अम्मध्ये ज्ञातवान्धौतवाससा ॥ परिवर्तितवासास्तु तीर्थतीरं-
मुपस्पृशेत् ॥ १४ ॥ उदकस्याप्रदानाच्च ज्ञानशार्दी न पीडयेत् ॥ अनेन वि-
धिना ज्ञातस्तीर्थस्य फलमश्नुते ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस विधिके अनुसार जलमें स्नान करके गीलेवस्त्रको निकालकर दूसरे वस्त्रको पहरे
इसके पीछे किनारेपर आकर आचमन करे ॥ १४ ॥ और बिना तर्पणकिये धोतीको न धोवे,
इस विधिके अनुसार स्नान करनेसे मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दश गोऽध्यायः १०.

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ॥

इसके उपरान्त शुभ आचमनकी क्रियाकी कहताहूँ.

कायं कर्त्तुं कामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥ १ ॥ अंगुष्ठमूले च तथा प्राजा-
पत्यं विचक्षणैः ॥ अंगुल्यग्रे स्मृतं दिव्यं पित्र्यं तर्जनिमूलकम् ॥ २ ॥ प्राजा-
पत्येन तीर्थेन त्रिः प्राभीयाजलं द्विजः ॥ द्विः प्रमृज्य मुखं पश्चात्त्वान्यद्विः

समुपस्पृशेत् ॥ ३ ॥ हृद्गामिः प्रयते विप्रः कंठगामिश्च भूमिपः ॥ तालुगा-
स्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ४ ॥

(वहिने) हाथकी कनिष्ठा अंगुलीके मूलमें बुनि नोंनें काय (प्राह) तीर्थ कहाहै ॥ १ ॥ अंगुलीकी जड़में प्राजापत्य तीर्थहै, और अंगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ और तर्जनीकी जड़में पितृतीर्थ पंडितोंने कहाहै ॥ २ ॥ ब्राह्मण प्राजापत्य तीर्थसे तीनवार जलपिये, फिर दोवार मुखको पोंछे, और पीछे कानआदि छिद्रोंमें । स्पर्श भलीभांतिसे करै ॥ ३ ॥ ब्राह्मण हृदयतक आचमनके जलको पहुंचनेसे शुद्ध होतेहैं, क्षत्रिय कंठतक आचमनके जलके जानेसे शुद्ध होतेहैं, वैश्य तलुवेतक आचमनके जल जानेसे शुद्ध होतेहैं; और शूद्रकी शुद्धि मुखपर जलके स्पर्श करनेसेही होजातीहै ॥ ४ ॥

अंतर्जानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः ॥ उदङ्मुखो वा प्रयतो दिश-
श्चानवलोकयन् ॥ ५ ॥ अद्रिः समुद्रताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥ वह्निना
चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥

पूर्व या उत्तरकी ओरको मुखकर मनुष्य धान होकर घुटनोंके भीतर हाथकर दिशा-
ओंको न देखै ॥ ५ ॥ और कुपसे निकाले तथा झाग और बुलुलेरहित जलसे आचमन
करै वह आचमनका जल गरम और खारीमी न हो ॥ ६ ॥

तर्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृशे सापुटद्वयम् ॥ अंगुष्ठमध्यायोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं :
॥ ७ ॥ अंगुष्ठानामिकायोगे श्रवणौ समुपस्पृशेत् ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोगेन स्पृशे-
त्स्कंधद्वयं ततः ॥ ८ ॥ सर्वासामेव योगेन नाभिं च हृदयं तथा ॥ संस्पृशेच्च
तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः ॥ ९ ॥

अंगूठा और तर्जनी इन दोनोंसे नासिकाके दोनों छिद्रोंका स्पर्श करै; बीचकी अंगुली और
अंगुठेसे दोनों नेत्रोंको छुये ॥ ७ ॥ अंगूठा और अनामिका इन दोनोंसे कानोंका स्पर्श करै
कनिष्ठा और अंगुठेके योगसे दोनों कंधोंका स्पर्श करै ॥ ८ ॥ फिर पांचो अंगुलियोंके योगसे,
नाभि, हृदय, और मस्तक इनका स्पर्शकरै; यह आचमनकी विधि कहीहै ॥ ९ ॥

त्रिः प्राश्नीयाद्यदंभस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवन्ती-
त्यनुशुश्रुम् ॥ १० ॥ गंगा च यमुना चैव प्रीयते परिमार्जनात् ॥ नासत्यदसौ
प्रीयते स्पृष्टे नासापुटद्वये ॥ ११ ॥ स्पृष्टे चनयुग्मे तु प्रीयते शशिभास्करौ ॥
कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयते अनिलानलौ ॥ १२ ॥ धयोः स्पर्शनाद प्रीय-
ते सर्वदेवताः ॥ मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥

आचमनके समय जो तीनवार जलपान कियाजाताहै उससे ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र इत्यादि
देवता होतेहैं, यह हमने सुनाहै ॥ १० ॥ मुखमार्जन करनेसे गंगा और यमुना यह
दोनों होतीहैं; दोनों नासिकाके पुट स्पर्श करनेसे दोनों अश्विनीकुमार होते
॥ ११ ॥ दोनों नेत्रोंके स्पर्श करनेसे चन्द्रमा और सूर्य होतेहैं; और दोनों कंधोंके
स्पर्श करनेसे वायु और अग्नि प्रसन्न होतेहैं ॥ १२ ॥ दोनों कंधोंके स्पर्श करनेसे सम्पूर्ण
देवता होतेहैं, और मस्तकके स्पर्श करनेसे परमेश्वर प्रसन्न होतेहैं ॥ १३ ॥

विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्तशिखो द्विजः ॥ अप्रक्षालितपादस्तु आचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १४ ॥ वहिर्जानुरूपस्पृश्य एकहस्तापितैर्जलैः ॥ सोपानत्कस्तथा तिष्ठन्नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

यज्ञोपवीतके विना पहरे विना चोटीमें गांठ लगाये और विना पैर धोये मनुष्य आचमन करलेनेपरभी अशुद्ध रहताहै ॥ १४ ॥ दोनों घुटनोंसे हाथ बाहर रखकर हाथमें लियेहुए जलसे जूता पहरेहुए खडाहोकर जो आचमन करताहै वह अशुद्ध रहताहै ॥ १५ ॥

आचम्य च पुरा प्रोक्तं तीर्थसंमार्जनं तु यत् ॥ उपस्पृशेत्ततः पश्चान्मंत्रेणानेन धर्मतः ॥ १६ ॥ अंतश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम् ॥ १७ ॥

आचमनके पीछे तीर्थका मार्जन करै फिर धर्मपूर्वक इस मंत्रसे आचमन करै ॥ १६ ॥ हेजल ! सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें व्यापक यज्ञ, वषट्कार, ज्योति, रस अमृत आदिरूपसे ! तुम विचरतेहो ॥ १७ ॥

आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम् ॥ उदुत्यंजातवेदसमिति मंत्रेण निःक्षिपेत् ॥ १८ ॥ एष एव विधिः प्रोक्तः संध्यायाश्च द्विजातिषु ॥

फिर आचमन करनेके उपरान्त सूर्यके सन्मुखको मुखकर "उदुत्यं जातवेदसं०" इस मंत्रसे जलकी अंजुलि दे ॥ १८ ॥ यही नियम द्विजातियोंकी दोनों समयकी संध्याओंमें कहाहै;

पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥ १९ ॥ ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं वाथ शक्तितः ॥ ऋषयो दीर्घसंध्यंत्वादीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥ २० ॥

प्रातःकालकी संध्यामें खडा होकर जपकरै, और सायंकालकी संध्यामें बैठकर जपकरै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त पवित्र मंत्रोंका अपनी शक्तिके अनुसार जपकरै, ऋषि दीर्घ संध्याकी उपासना करतेथे इसी कारणसे उनकी आयु दीर्घ होतीथी ॥ २० ॥

सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् ॥

येषां जपैश्च होमैश्च पूर्यते मानवाः सदा ॥ २१ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इसके आगे वेदमें जो पवित्र मंत्र हैं उन सबका वर्णन करताहूं इन सब मंत्रोंके जप और हवनसे मनुष्य सर्वदा पवित्र होतेहैं ॥ २१ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ मापाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अधमर्षणं देववृत्तं शुद्धवत्यश्च तत्समाः ॥ कूष्माण्डयः पावमान्यश्च सावित्र्यश्च तथैव च ॥ १ ॥ अग्नीष्टुद्रुपदा चैव स्तोमानि व्याहृतीस्तथा ॥ भारुंडानि च सामानि गायत्री चौशनं तथा ॥ २ ॥ पुरुषवृत्तं च भार्पं च तथा सोमव्रतानि च ॥ अर्विलगं वार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तममृतं तथा ॥ ३ ॥ शतरुद्रियमथर्वशिर-

स्त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ॥ गोसूक्तमश्वसूक्तं च इंद्रसूक्तं च सामनी ॥ ४ ॥
त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च अग्निं वामदेवव्रतं च ॥ एतानि गीतानि पुनरिति
जंतुज्ञातिस्मरत्वं लभते यदीच्छेत् ॥ ५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अघमर्षणसूक्त, दैववृत्तसूक्त, शुद्धवतीकृचा, कूष्मांडीकृचा, पवमानसूक्त और गायत्री ॥ १ ॥
अमीष्ट द्रुपदा, स्तोम, व्याहृती, भारुंडसामवेद गायत्री और उशनामंत्र ॥ २ ॥ पुरुषवृत्त, भाष,
सोमव्रत, जलके मन्त्र, बृहस्पतिके मंत्र, वाक्सूक्त, अमृत, ॥ ३ ॥ शतरुद्री, अथर्वशिर, त्रिसुपर्ण,
महाव्रत, गोसूक्त, अश्वसूक्त, दोनों सामवेद ॥ ४ ॥ तीनों आज्यदोह, रथंतर, अग्निव्रत,
वामदेवव्रत, यह अघमर्षण आदि गानकरनेसे जीवोंको पवित्र करतेहैं; और इच्छानुसार इनका
जपकरनेसे मनुष्य उसी जातिमें प्रसिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥

इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

इति वेदपवित्राण्यभिहितानि एभ्यस्सावित्री विशिष्यते ॥ नास्त्यघमर्षणात्पर-
मंतर्जलेन सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृतिसमं हुतम् ॥ कुशशय्यामासीनः
कुशोत्तरीयो वा कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा अक्षमालामुपा-
दाय देवताध्यायी जपं कुर्यात् ॥ सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्माक्षरुद्राक्षपुत्रजीव-
कानामन्यतमानादाय मालां कुर्यात् ॥ कुशग्रंथिं कृत्वा वामहस्तोपायनैर्वा
गणयेत् आदौ देवतामार्षं छंदः स्मरेत् ततः सप्रणवसव्याहृतिकामादावन्ते च
शिरसा गायत्रीमावर्तयेत् ॥ अथास्याः सविता देवता ऋषिर्विश्वामित्रो गायत्री
छंदः ॐकारप्रणवाद्याः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः
ॐ सत्यमिति व्याहृतयः ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति
शिरः ॥ भवंति चात्र श्लोकाः ॥

वेदमें यह सब मन्त्र पवित्र कहेहैं, इन सम्पूर्ण मन्त्रोंमें गायत्री प्रधान है अघमर्षण
मन्त्रसे श्रेष्ठ जलके भीतरे जपोंमें दूसरा मन्त्र नहींहै; और गायत्रीके समान दूसरा जप
नहींहै, व्याहृतियोंके समान होम नहींहै; कुशासनपर बैठकर वां ओढकर कुशाकी पवित्रियोंको
धारणकर पूर्वकी वा सूर्यके सन्मुख जपकी को ले देवताका ध्यान करताहुआ
मनुष्य जपकरै, सुवर्ण, मणि, मोती, स्फटिक, कमलगट्टे, वहडेके फल इनमेंसे किं-
सियोंकी जपके लिये माला बनानै; और कुशाकी गांठोंसे या बाँयें हाथकी अंगुलियोंसे
गिनतीकरै, फिर प्रथम मन्त्रके देवता ऋषि छन्द इनका स्मरण करै; और फिर आदि और
अन्तमें शिरमंत्रसाहित गायत्रीका जपकरै; और गायत्रीका देवता सूर्य, ऋषि विश्वाम-
ित्र और गायत्रीही छन्द है; और ॐकारका प्रणव और ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ
महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं यह सात व्याहृति, “ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः
स्वरोम्” इस मन्त्रको शिर कहतेहैं; और यही श्लोकोंमेंभी कहाहै;

सव्याहृतिकां संप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यतेः क्वचित् ॥ १ ॥

जो मनुष्य सर्वदा व्याहृति, प्रणव, शिर इनके साथ गायत्रीका जप, करताहै वह कभी भय नहीं पाता ॥ १ ॥

तजसा तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी ॥ सहस्रजसा तु तथा पातकेभ्यः
समुद्धरेत् ॥ २ ॥ दशसाहस्रजसा तु सर्वकल्मषनाशिनी ॥ सुवर्णस्तेयकृ-
द्भिर्भो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ रापश्च विशुद्धयेत् लक्षजप्य संशयः ॥ ३ ॥

सौवार गायत्रीका जपकरनेसे दिनके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं और हजारवार गाय-
त्रीका जपकरनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाताहै ॥ २ ॥ जो दशहजारवार गायत्रीका जपकर-
ताहै उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं, सुवर्णकी चोरी करनेवाला ब्राह्मण, ब्रह्महत्याकरनेवाला,
गुरुकी शय्यापर गमनकरनेवाला, मदिरा पीनेवाला यह सब एकलाख गायत्रीकं जपकरनेसे
निस्सन्देह शुद्ध होजातेहैं ॥ ३ ॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ॥

अहोरात्रकृतात्पातात्क्षणादेव मुच्यते ॥ ४ ॥

जो मनुष्य स्नानके समय सावधान होकर तीन प्राणायाम करताहै वह दिनमें कियेहुए
पापोंसे उसीसमय छूटजाताहै ॥ ४ ॥

सव्याहृतिकाः संप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ॥

अपि भ्रूणहर्न मासात्पुनंत्यहरहः कृताः ॥ ५ ॥

व्याहृति और अक्षरसहित सोलह प्राणायाम प्रतिदिन करनेसे एक महीनेमें मनुष्य गर्भ-
हत्याके पापसेभी मुक्त होजाताहै ॥ ५ ॥

हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥ सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्स-
ला ॥ ६ ॥ शान्तिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥ हंतुकामोऽपमृत्युं च
धृतेन जुहुयात्तथा ॥ ७ ॥ श्रीकामस्तु तथा पत्रैर्विल्वैः कांचनकामुकः ॥ ब्रह्म-
वर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ॥ ८ ॥ धृतप्लुतैस्तिलैर्वह्निं जुहुयात्समा-
हितः ॥ गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥ पापात्मा लक्ष-
होमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥ अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सि-
तम् ॥ १० ॥

और जो हवन गायत्रीसे कियाजाताहै वह सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्णकरनेवाला है; भक्ति-
प्रिय और वरकी देनेवाली गायत्री सम्पूर्ण पापोंको नाशकरतीहै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य शान्तिकी
अभिलाषाकरै वह पवित्र होकर गायत्रीका हवन चावलोंसे करै; और जो अकालमृत्युसे
बचनेकी इच्छाकरै वह घीसे हवन करै ॥ ७ ॥ और लक्ष्मीकी इच्छाकरनेवाले कमलोंसे
हवनकरै और सुवर्णकी इच्छाकरनेवाला वेलोंसे गायत्रीका हवनकरै, ब्रह्मतेजकी इच्छा
करनेवाला दूधसे हवन करै ॥ ८ ॥ और भलीभांति सावधानीसे धी मिलेहुए तिलोंद्वारा

दशहजार गायत्रीके हवन करनेसे मनुष्य सब छूटजाताहै ॥ ९ ॥ और पापात्मा मनुष्य लाख गायत्रीके हवनकरनेसे सब पापोंसे छूटजाताहै तथा मनवांछितलोकमें जन्मलेकर अभिलषित फलको पाताहै ॥ १० ॥

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥ गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥ ११ ॥ हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥ तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥ १२ ॥

वेदोंकी माता गायत्री है; और पापोंकी नाशकरनेवाली है; इस लोक और स्वर्गमें गायत्रीसे परे पवित्रकरनेवाला दूसरा नहींहै ॥ ११ ॥ जो मनुष्य नरकरूपी समुद्रमें पड़ेहैं; उनका हाथ पकड़कर रक्षाकरनेवाली गायत्रीही है; इसकारण नियमपूर्वक शुद्धतासे ब्राह्मणः नित्य गायत्रीका अभ्यासकरै ॥ १२ ॥

गायत्रीजप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥ तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्धिरिव पुष्करे ॥ १३ ॥ जप्येनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥ कुर्यादन्यत्र वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १४ ॥

गायत्रीमें तत्पर ब्राह्मणको हव्य और कव्यसे जिमावै, कारण कि उस ब्राह्मणमें पाप इस भांति नहीं टिकते कि जैसे कमलके पत्तेके ऊपर जलकी बूंद नहीं ठहरती ॥ १३ ॥ ब्राह्मण गायत्रीके जपकरनेसेही सिद्ध होजाताहै, इसमें कुछ संदेह नहीं, वह ब्राह्मण चाहे अन्य कर्म करै वा न करै परन्तु तौ भी उसको मैत्र कहतेहैं ॥ १४ ॥

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥

नोच्चैर्जाप्यं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥ १५ ॥

उपांशु जप सौगुना फलका देनेवाला है; और मानसजप हजारगुणा फल देताहै, विशेष करके गायत्रीका जप ऊँचे स्वरसे बुद्धिमान् मनुष्य न करै, और जप भी ऊँचे स्वरसे न करै ॥ १५ ॥

सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥ गायत्रीजाप्यनिरतो क्षोपायं च विंदति ॥ १६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः मानसः ॥ गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १७ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य गायत्रीके जपमें तत्पर है वह स्वर्गको प्राप्तहोता है; और गायत्रीके जपकरनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ इसकारण सम्पूर्ण यत्नके स्नान करनेके पीछे पवित्र चिच होकर मनको रोक सम्पूर्ण पापोंके नाश करनेवाली गायत्री का जप करै ॥ १७ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

: कृतजप्यस्तदनु प्रादुर्मुखो दिव्येन तीर्थेन देवानुदकेन तर्पयेत् ॥ अथ तर्पणविधिः ॥ ॐ भगवंतं शेषं तर्पयामि । कालामिरुदं तु ततो रुक्मभौमं

तथैव च ॥ श्वेतभौमं ततः प्रोक्तं पातालानां च सप्तमम् ॥ १ ॥ जंबूद्वीपं ततः
 प्रोक्तं शाकद्वीपं ततः परम् ॥ गोमेदपुष्करं तद्वच्छाकारख्यं च ततः परम् ॥ २ ॥
 शार्वरं ततः स्वधामानं ततः हिरण्यरोमाणं ततः कल्पस्थायिनो लोकांस्तर्प-
 येत् ॥ लवणोदं ततः दधिमण्डोदं ततः सुरोदं ततः घृतोदं ततः क्षीरोदं ततः
 इक्षूदं ततः स्वादूदं ततः इति सप्तसमुद्रकम् प्रत्यृचं पुरुषसूक्तेनोदकांजलीन्
 दद्यात् पुष्पाणि च तथा भक्त्या ॥ अथ कृतापसव्यो दक्षिणामुखोऽन्तर्जानुः
 पित्र्येण पितॄणां यथाश्राद्धं प्रकाममुदकं दद्यात् ॥ सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौ-
 दुंबरेण खड्गपात्रेणान्यपात्रेण वोदकं पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात् ॥ पित्रे पितामहाय
 प्रपितामहाय मात्रे मातामहाय प्रमातामहाय मात्रे मातामह्यै प्रमातामह्यै
 सप्तमानुषुरूपान् पितृपक्षे यावतां नाम जानीयात् पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा
 गुरुणां मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात् ॥ मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संबंधिवांधवानां
 कुर्यात् ॥ तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥ भवंति चात्र श्लोकाः

स्तान्करनेके उपरान्त गांधर्त्रीको जपकर पूर्वकी ओरको मुखकरके देवतीर्थसे देवताओंका
 जलसे तर्पणकरै, अब तर्पणकी विधि कहतेहैं ॐ भगवान् शेषको तृप्तकरताहूं फिर काल अग्नि
 रुद्र, रुक्म, भौम, श्वेतभौम, और सातों पाताल क्रमानुसार इनको तृप्तकरै ॥ १ ॥ इसके
 पीछे जंबूद्वीप, शाकद्वीप, गोमेद, पुष्कर और शाकद्वीप इनको तृप्तकरै ॥ २ ॥ फिर
 शार्वर, स्वधामा, हिरण्यरोमा, कल्पतक स्थित रहनेवाले लोक इनको तृप्तकरै; फिर लवणोद,
 दधिमण्डोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, इक्षूद, स्वादूद इन सात समुद्रोंको तृप्तकरै; फिर पुरुषसूक्त
 को पढ़कर परमेश्वरको जलकी अंजुली दे; फिर भक्तिसहित पुष्प निवेदनकर अपसव्य हो
 दक्षिणको मुखकिये घुटनोंके भीतर हाथकर पितृतीर्थसे श्रद्धाके अनुसार यथेच्छ जल पितरों
 को दे, सोनेके पात्र वा चाँदी, गूलर या गेंडे अथवा किसी अन्यके पात्रसे पितृतीर्थका
 स्पर्शकर जलसे पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामह, प्रमातामह, माता, मातामही,
 प्रमातामही सात पुरुष पिताके पक्षमें जिनका नाम जानें पितृपक्षोंका तर्पण करै फिर गुरु
 और मातृपक्षकोंका तर्पणकरै, फिर सम्बन्धी वांधवोंका तर्पणकरै; और इसीभांति तर्पणकरने-
 के विषयमें श्लोकभी हैं ॥

विना रौप्य वर्णेन विना ताम्रतिलेन च ॥ विना दर्भैश्च मंत्रैश्च पितॄणां नोपति-
 ष्यते ॥ १ ॥ सौवर्णरज भ्यां च खड्गेनौदुंबरेण च ॥ दत्तमक्षयतां याति
 पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ २ ॥ हेम्ना तु सह यदत्तः क्षीरेण मधुना सह ॥
 तदप्यक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ ३ ॥

चाँदी, सोना, ताँवा, तिल, कुशा और मंत्र इनके विना दियाहुआ जल पितरोंको नहीं
 पहुँचताहै ॥ १ ॥ सुवर्ण, चाँदी, गेंडा, गूलर इनके पात्रोंसे जो मनुष्य पितरोंको जल देता है
 उसे अक्षय फल मिलताहै ॥ २ ॥ सुवर्ण, दूध, सहत इन सबको मिलाकर जो तिलजल
 पितरोंको दिया जाताहै; वह भी अक्षय होताहै ॥ ३ ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमाव-
हन् ॥ ४ ॥ स्नातः संतर्पणं कृत्वा पितॄणां तु तिलाभसा ॥ पितृयज्ञमवामोति
प्रीणाति च पितृस्तथा ॥ ५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अन्न इत्यादि द्रव्य, जल वा दूध, मूल फल इनसे पितरोंको प्रतिदिन प्रसन्न रखै ॥ ४ ॥
जो मनुष्य स्नानकरनेके उपरान्त तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करताहै, वह पितृयज्ञके
फलको पाताहै, और उसके पितर भी वृत्त होतेहैं ॥ ५ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥

पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥ १ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य देवकार्यके विषयमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा न करै, पितृकार्ये उपस्थित होने-
पर गुप्तरीतिसे परीक्षाकरै ॥ १ ॥

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था वैडालव्रतिकास्तथा ॥ ऊनांगा अतिरिक्तांगा ब्राह्मणाः
पंक्तिदूषकाः ॥ २ ॥ गुरुणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ॥ गुरुणां त्या-
गिनश्चैव ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ३ ॥ अनध्ययिष्वधीयानाः शौचाचारविव-
र्जिताः ॥ शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण निषिद्ध कर्मको करताहै; अथवा कठोरचित्त है, वा जिसकी देहका अंग न्यून
और अधिक है, वह पंक्तिको दूषित करनेवाला है ॥ २ ॥ जो गुरुके प्रतिकूल आचरण कर-
ताहै; और जो वेदको उखाडताहै, अर्थात् वेदोक्त कर्मको नहीं जानता, और जिसने गुरु-
ओंका त्यागकराहै वहभी पंक्तिको दूषित करनेवाला है ॥ ३ ॥ जो अनध्यायके दिन पढताहै
जो शौच आचारसे हीन है; और जो शूद्रके अन्नसे पुष्ट होताहै, वहभी पंक्तिको दूषितकर-
नेवाला है ॥ ४ ॥

षडंगवित्रिसुपर्णो बहुवृचो ज्येष्ठसामगः ॥ त्रिणाचिकेतः पंचामिर्ब्राह्मणः
पंक्तिपावनः ॥ ५ ॥ ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ॥ ब्रह्मदेयापतिर्यश्च
ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ६ ॥ ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ॥
अथर्वागिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ७ ॥ नित्यं योगरतो विद्वान्सम-
लोष्टाश्मकांचनः ॥ ध्यानशीलो हि यो विद्वान्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण वेदके छैहें अंगोंको जानताहो, और जो त्रिसुपर्णको जानताहो, जिसने बहु-
तसी ऋचा पढीहों, वा सामवेदको गाताहो, जिसने त्रिणाचिकेत पढाहो, जो पंचामिको
तापताहो वह ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ ५ ॥ जिसकी सन्तान वेदके अनुसारहो
जो वेदोक्तका दाता हो, और जिसका आगेका समयभी वेदके अनुसार हो वह ब्राह्मणभी
पंक्तिको पवित्र करनेवाला है ॥ ६ ॥ जो ऋग्वेद और सामवेदके पारको जानताहो; और

जिसने अथर्व आंगिरसवेदका भाग पढलियाहो वह ब्राह्मणभी पंक्तिको शुद्ध करनेवाला है ॥ ७ ॥ जो नित्य योगमार्गमें तत्पर है, जो ज्ञानी है, जो ढेलें पत्थर और सुवर्णको देखताहै, जो ध्यानशील है; और जो पंडित है वह ब्राह्मणभी पंक्तिका पवित्रकरने-वाला है ॥ ८ ॥

द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ त्रींश्च पित्र्ये वोदङ्मुखौस्तथा ॥ भोजयेद्विविधान्विप्रानेकै-
कमुभयत्र वा ॥ ९ ॥ भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् ॥

देवकर्ममें पूर्वाभिमुख दो ब्राह्मणोंको और पितृकर्ममें उत्तराभिमुख तीन अथवा अनेक-या दोनों जगह एक २ ब्राह्मणकोही भोजन करावै ॥ ९ ॥ या पंक्तिके पवित्र करनेवाले एकही ब्राह्मणको जिमावै;

दैवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चाद्ब्रह्मै तु तत्क्षिपेत् ॥ १० ॥ उच्छिष्टसन्निधौ कार्यं पिं-
डनिर्वपणं बुधैः ॥ अभावे च तथा कार्यमग्निकार्यं यथाविधि ॥ ११ ॥

और दैवकर्ममें नैवेद्य बनाकर अग्निमें हवनकरै ॥ १० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य उच्छिष्टके निकटही पिंडदान करै; और किसीकारणसे जो पिंडदानका अभाव हो तौ विधिसहित अग्नि-होत्र करै ॥ ११ ॥

श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जितः ॥ उच्छमत्रं द्विजातिभ्यः श्रद्धया वि-
निवेदयेत् ॥ १२ ॥ अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्च पंडितः ॥ भोजयेद्वि-
विधान्विप्रान्गंधमात्यसमुज्ज्वलान् ॥ १३ ॥ यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा
भोज्यमेव वा ॥ अनिवेद्यं न भोक्तव्यं पिंडमूले कदाचन ॥ १४ ॥

यत्नसहित श्राद्ध करकै शीघ्रतापूर्वक क्रोधसे रहित मनुष्य उच्छ अन्न ब्राह्मणोंको श्रद्धासे दान करै ॥ १२ ॥ फूल मूल तथा ब्रतवालोंका आसन इनपर न बैठालकर अर्थात् शुद्ध ऊन आदिके आसन पर बैठकर गंध, मालासे उज्ज्वल विविध ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ १३ ॥ अपने घरमें जो कुछ भक्ष्य वा भोज्य वस्तु बनाई हो उसको पिंडोंके पास बिना दिये कभी भोजन न करै ॥ १४ ॥

उग्रगंधान्यगंधानि चैत्यवृक्षभवानि च ॥ पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि
च ॥ १५ ॥ तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥ ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं
कार्पासमथवा नवम् ॥ १६ ॥ दशां विवर्तयेत्प्राज्ञो यद्यनाहतवस्त्रजा ॥ घृतेन
दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥ १७ ॥ धूपार्थं गुग्गुलं दद्याद्घृतयुक्तं
मधूत्कटम् ॥ चंदनं च तथा दद्यात्पिष्टा च कुंकुमं शुभम् ॥ १८ ॥

अधिक सुगंधिवाले वा गंधहीन, और लाल रंगके फूल इनको त्याग दे ॥ १५ ॥ यदि लाल फूल जलमें उत्पन्न हुएहों तौ दान करै, उनका सूत वा कपासका सूत दे ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य नये वस्त्रकी बत्ती बनावै, और फिर घी या तिलोंका तेल दीपकमें डालै ॥ १७ ॥ धूपके निमित्त घृत और मीठा मिलाहुआ गुग्गुल दे, और पीसकर चन्दन और कुंकुम दे ॥ १८ ॥

भूतणं सुरसं शिशुं पालकं सिंधुकं तथा ॥ कूष्मांडालाबुवार्ताकोविदारंश्च
वर्जयेत् ॥ १९ ॥ पिप्पलीमरिचं चैव तथा वै पिंडमूलकम् ॥ कृतं च लवणं
सर्वं वं ग्रं तु विवर्जयेत् ॥ २० ॥ राजमाषान्मसूरांश्च चणकान्कोरदूषकान् ॥
लोहितान्वृक्षनिर्यासाञ्छाद्वकर्मणि वर्जयेत् ॥ २१ ॥

भूतण, सरसों, सौंजना, पालक, सिंधुक, पेठा, तुम्बी, वैंगन, कचनार, आद्वमें इनका
निषेध है ॥ १९ ॥ पीपल, मिरच, गम, वनाया लवण, वांशका अग्रभाग इनको भी
त्याग दे ॥ २० ॥ रवांस, मसूर, कोदों और कोरदूपक, वृक्षके लाल गोंदको भी आद्वकर्म
में त्याग दे ॥ २१ ॥

आम्रमामलकीभिर्हुं मृद्धीकादधिदाडिमान् ॥ विदारीत्रैव रंभाद्या दद्याच्छाद्रे
प्रयत्नतः ॥ २२ ॥ धानालाजान्मधुयुतान्सक्तूच्छर्करया तथा ॥ दद्याच्छाद्रे
प्रयत्नेन शृंगाटकविसेतकान् ॥ २३ ॥

आम, आंवला, गन्ना, दाख, दही, अनार, विदारीकंद, केला इनको आद्वमें यत्नसहित
दे ॥ २२ ॥ सहतमें भिलेहुए धान, खीरै, खांड भिले सत्तू, शृंगाटक, विसेतक इनको भी
आद्वमें विशेष करके दे ॥ २३ ॥

भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान् ॥

अभिवाद्य पुनर्विप्राननुव्रज्य विसर्जयेत् ॥ २४ ॥

ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर उनके आचमन करनेके उपरान्त उनको दक्षिणा दे
ब्राह्मणोंको नमस्कारकर उनके पीछे २ जाकर पहुंचा आवै ॥ २४ ॥

निमंत्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः ॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ २५ ॥

जो ब्राह्मण निमंत्रित होकर खीसंसर्ग करताहै उसको आद्वमें जिमानेवाला और वह
जीमनेवाला दोनोंही बड़े पापके भागी होते हैं ॥ २५ ॥

कालशाकं सशल्कं च मांसं वार्ध्निगसस्य च ॥

खड्गमांसं तथानंतं यमः प्रोवाच धर्मवित् ॥ २६ ॥

कालशाक, शल्क, वार्ध्निगस (मृग) का मांस यमराजने इनको अनन्त फलका
देनेवाला कहा है ॥ २६ ॥

यद्दाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा ॥ प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानंत्यम-
श्नुते ॥ २७ ॥ गंगायमुनयोस्तीरे अयोध्यामरकंटके ॥ नर्मदायां गयातीर्थे
सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २८ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुंगे हिमालये ॥ सप्तवे-
ण्पृषिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥

गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, नैमिषारण्य इनमें जो जाकर पितरोंको देताहै, वह अक्षय
फलको प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ गंगा और यमुनाके किनारे, अयोध्या, अमरकंटक, नर्मदा,
गयातीर्थ इनमें देनेसे अनंत फल प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, भृगुतुंग, महालय,
ऋषिकूप, इनमें दानकरनेसे अनंत फल मिलताहै ॥ २९ ॥

म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ॥

न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥ ३० ॥

म्लेच्छोंके देशमें, रात्रिमें विशेषकर संध्याके समयमें बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्ध न करे; और म्लेच्छोंके देशमें जाय भी नहीं ॥ ३० ॥

हस्तिच्छाया यदत्तं यदत्तं राहुदशने ॥

विषुवत्ययने चैव सर्वमानंत्यमनुते ॥ ३१ ॥

गजच्छाया, ग्रहण, विषुवत्संक्रान्ति और दोनों अयन इनमें दान करनेसे अनन्त फल होता है ॥ ३१ ॥

प्रै पद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ॥ प्राप्य श्राद्धं प्रकर्तव्यं मधुना पाय-
सेन वा ॥ ३२ ॥ प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ॥ नृणां श्राद्धैः
सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ३३ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

यदि किसी कारणसे प्रौष्ठपदीप्रयुक्त महालय श्राद्धका यथायोग्य समय व्यतीत होजाय
तौ मघानक्षत्रसे युक्त त्रयोदशीके दिन मधुसे वा खीरसे श्राद्ध करे ॥ ३२ ॥ इससे
पितर प्रसन्न होकर मनुष्योंको सर्वदा सन्तान, पुष्टता, यश, स्वर्ग, आरोग्य, धन इन-
को देतेहैं ॥ ३३ ॥

इति शंखस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

जनने मरणे चैव सर्पिडानां द्विजोत्तमः ॥

अपहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निर्वेदसमन्वितः ॥ १ ॥

जो ब्राह्मण अग्निहोत्री और वेदपाठी है वह सर्पिडोंके जन्म अथवा मरणमें तीन दिनमें
शुद्ध होताहै ॥ १ ॥

सर्पिडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥ नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुद्ध्यति

॥ २ ॥ क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुद्ध्यति ॥ मासेन तु तथा शूद्रः

शुद्धिमाप्नोति नांतरा ॥ ३ ॥

सातवी पीढीमें सर्पिडता निवृत्त होजातीहै; और नामधारक ब्राह्मण दश दिनमें शुद्ध
होताहै; ॥ २ ॥ बारह दिनमें क्षत्रिय, एक पक्षमें वैश्य, और एक महीनेमें शूद्रकी शुद्धि
होतीहै प्रथम नहीं होती ॥ ३ ॥

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशुद्ध्यति ॥ अजातदंतवाले तु सद्यः शौचं
विधीयते ॥ ४ ॥ अहोरात्रात्तथा शुद्धिर्बाले त्वकृतचूडके ॥ तथैवानुपनीते तु

अपहाच्छुद्ध्यन्ति बांधवाः ॥ ५ ॥ अनूढानां तु कन्यानां तथैव शूद्रजन्मनाम् ॥

महीनोंकी समान रात्रियोंमें गर्भके स्त्रावमें जितने महीनेका गर्भ हो उतनी ही रात्रियोंमें
शुद्धि होतीहै और बालक विना दांत जमेही मरजाय तौ उसके मरनेमें उसी समय शुद्धि

कहीहै ॥ ४ ॥ जो बालक मूढनसे प्रथमही मरजाय वह अहोरात्रसे और यज्ञोपवीतसे पहले जो मरजाय उसके बंधु बांधव तीन दिनमें शुद्ध होजातेहैं ॥ ५ ॥ जो कन्या बिना विवाहे मरजाय उसके यहां तीन दिनमें शुद्ध होतीहै, और शुद्धके मरनेमें भी तीन दिनमें शुद्ध होतीहै;

अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ॥ ६ ॥ मृत्युं समधिगच्छेच्चैन्मासात्तस्यापि बांधवाः ॥ शुद्धिं समधिगच्छेद्युर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥

यदि बिनाविवाहा शूद्र सोलह वर्षसे पीछे ॥ ६ ॥ मृतक होजाय तौ उसके बंधु बांधव एक महीनेमें शुद्ध होतेहैं इसमें विचार करना उचित नहीं ॥ ७ ॥

पितृवैश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥ तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचि-
दपि शाम्यति ॥ ८ ॥ हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ॥ प्रसवे मरणे
तज्जमाशौचं नोपशाम्यति ॥ ९ ॥

यदि जिस कन्याका विवाह न हुआहो और वह पिताके घरही रजस्वला होजाय तौ उसके मरनेका अशौच कभी निवृत्त नहीं होता ॥ ८ ॥ यद्यपि कोई नीच वर्णकी कन्या विवाहसे प्रथम ही सन्तान उत्पन्न करले तौ उसके प्रसव और मरणके दोनों अशौच कभी निवृत्त नहीं होते ॥ ९ ॥

समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ॥

असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥

सजातीय अशौचमें यदि दूसरा सजातीय अशौच होजाय तौ प्रथमके साथही दूसरा भी समाप्त होजाताहै और जो दूसरा सजातीय न हो तौ धर्मराजके वचनके अनुसार दूसरेके संग दोनों अशौच निवृत्त होजातेहैं ॥ १० ॥

देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचि-
र्भवेत् ॥ ११ ॥ अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ तथा संवत्सरेतीते
स्नात एव विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

परदेशमें जाकर यदि जातिका मरण या जन्मअशौच हुएके समाचार सुनकर दशदि-
नके बीचमें जो शेष दिन हैं तबतक अशुद्ध रहताहै ॥ ११ ॥ यदि दशदिनके उपरान्त सुने
तौ तीन रात्रिमें और एक वर्ष बीतनेपर सुने तौ स्नान करनेसे ही शुद्ध होजाताहै ॥ १२ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥ परपूर्वासु च स्त्रीषु त्र्यहाच्छद्धिरिहेष्यते
॥ १३ ॥ मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते ॥ गृहे दत्तासु कन्यासु
मृतासु तु त्र्यहस्तथा ॥ १४ ॥ निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ॥
आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥ १५ ॥ मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्य-
त्विग्वांधवेषु च ॥ सव्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥ १६ ॥

अपने औरससे अतिरिक्त पुत्र व्यभिचारिणी और परपूर्वा स्त्री इनके मरनेमें तीन दिनमें
शुद्ध होजातीहै ॥ १३ ॥ नाना, आचार्य, विवाही कन्या इनके मरनेमें भी तीन दिनमें

शुद्धि होजातीहै॥१४॥दशके राजाके मरनेमें और अपने घरमें दौहित्रके जन्ममें आचार्यकी स्त्री वा पुत्रोंके मरनेमें एक दिनमें ही शुद्धि होजातीहै॥१५॥मामाके मरनेमें दिनरातमें और शिष्य ऋत्विक् और वांघव इत्थके मरनेमें एक रातमें, सब ब्रह्मचारी और अनुचान गुरु उपगुरुके मरनेमें एक दिन अशुद्धि रहतीहै ॥ १६ ॥

एकरात्रि त्रिरात्रं च षड्भ्रात्रं मासमेव च ॥ शूद्रे सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १७ ॥ त्रिरात्रमथ षड्भ्रात्रं पक्षं मासं तथैव च ॥ वैश्ये सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १८ ॥ सपिंडे क्षत्रिये शुद्धिः षड्भ्रात्रं ब्राह्मणस्य तु ॥ वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥ सपिंडे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ॥ दशरात्रेण शुध्येयुरित्याह भगवान्यमः ॥ २० ॥

अपना जो सपिंडी शूद्र होगयाहो उसके मरनेमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह चारों वर्ण क्रमानुसार एक रात, तीन रात, छैः रात, और एक महीनेमें शुद्ध होते हैं ॥१७॥ सपिंडी वैश्यके मरनेमें चारों वर्णोंको तीन रात, छैः रात, एक पक्ष और एक महीनेका अशौच कहाहै ॥ १८ ॥ और सपिंडी क्षत्रियके मरनेमें ब्राह्मणोंकी छैः रातमें और तीनों वर्णोंकी द्वादश दिनमें शुद्धि होतीहै ॥ १९ ॥ सपिंडी ब्राह्मणके मरनेमें चारों वर्णोंकी शुद्धि दश रातमें होतीहै, यह भगवान् यमने कहाहै ॥ २० ॥

भृग्वग्न्यनशनांभोभिर्मृतानामात्मयातिनाम् ॥ पतितानां च नाशौचं शस्त्रावि-
शुद्धताश्च ये ॥ २१ ॥ यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ॥ नाशौचभाजः
कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये ॥ २२ ॥

भृगु, अग्नि, अनशन, जल, अपने आप शस्त्र, जल इनसे जिनकी मृत्यु हुईहो वा जो पतित मरेहों उनका अशौच नहीं होता ॥ २१ ॥ संन्यासी, व्रती, ब्रह्मचारी, राजा, कारीगर, दीक्षित, और राजा की आज्ञा माननेवाले, यह अशुद्ध नहीं कहेहैं ॥ २२ ॥

यस्तु भुंक्ते पराशौचे वर्णां सोऽप्यशचिर्भवेत् ॥ अशौचशुद्धौ शुद्धिश्च तस्या-
प्युक्ता मनीषिभिः ॥ २३ ॥ पराशौचे नरो भुक्त्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥
भुक्त्वात्र म्रियते यस्य तस्य योनौ प्रजायते ॥ २४ ॥

जो ब्रह्मचारी दूसरेके अशौचमें खाताहै, वह अशुद्ध होजाताहै, परन्तु जब अशौचकी शुद्धि होजातीहै तभी शुद्धिमानोंने ब्रह्मचारीकी भी शुद्धि कहीहै ॥ २३ ॥ जो मनुष्य दूसरेके अशौचमें खाताहै उसको कीड़ेकी योनि मिलतीहै और जिसके अन्नको खाकर मरताहै उसी की जातिमें जन्म लेताहै ॥ २४ ॥

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ॥

प्रेतपिंडे क्रियावर्जमाशौचे विनिवर्तते ॥ २५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दान, प्रतिग्रह, हवन, वेदपाठ, पितरोंका कर्म यह सब प्रेतके लिये पितरोंके कर्मके अति-
रिक्त अशौचमें निवृत्त होजातेहैं ॥ २५ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ मापाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

मृन्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुद्ध्यति ॥ मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा घ्रीवनैः पूय-
शोणितैः ॥ १ ॥ संपृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ एतैरेव तथा
स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् ॥ २ ॥ शुद्ध्यत्यावर्तितं पश्चादन्यथा केवलांभसा ॥
अम्लोदकेन ताम्रस्य सीसस्य त्रपुणस्तथा ॥ ३ ॥ क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य
लोहस्य च विनिर्दिशेत् ॥ मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ४ ॥
अञ्जनानां चैव भांडानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ शाकवर्जं मूलफलद्विदलानां
तथैव च ॥ ५ ॥ मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥ उष्णांभसा
तथा शुद्धिं सज्जहानां विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण मट्टीके पात्र अशुद्ध होनेपर दुबारा अग्निमें पकानेसे शुद्ध होजाते हैं और मदिरा,
मूत्र, विष्टा, यूक, राध, और रुधिर ॥ १ ॥ इन सबका स्पर्श होनेसे मट्टीका पात्र दुबारा
अग्निमें तपानेसे भी शुद्ध नहीं होता और इन्हींका स्पर्श तांबे, सुवर्ण और चाँदीके पात्रमें
होगयाहो ॥ २ ॥ तौ वह फिर बनानेसे शुद्ध होताहै; और इसके अतिरिक्त अन्य किसी
प्रकारसे अशुद्ध होजाय तौ केवल उसकी शुद्धि जलसे ही होजातीहै, और तांबेकी शीसाकी
और लाखकी शुद्धि खटाईके जलसे होतीहै ॥ ३ ॥ लोहे और काँसीकी शुद्धि खारी जलसे
और मोती, मणि, मूंगा इनकी शुद्धि घोनेसे ही होजाती है ॥ ४ ॥ जलमें उत्पन्नहुए पदार्थ
और पत्थरके पात्र तथा शाकको छोड़कर मूल फल और वल्कल यह घोनेसे ही शुद्ध
होजातेहैं ॥ ५ ॥ यज्ञके पात्र यज्ञमें मांजनेसे और चिकने गरम जलसे घोनेसे शुद्ध
होजाते हैं ॥ ६ ॥

शयनासनयानानां सशूर्पशकटस्य च ॥ शुद्धिः संप्रोक्षणाद्यज्ञे करकंधनयोस्तथा
॥ ७ ॥ मार्जनाद्देश्मनां शुद्धिः क्षितेः शोधस्तु तक्षणात् ॥ संमार्जितेन तोयेन
वाससां शुद्धिरिष्यते ॥ ८ ॥ बहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत् ॥
प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणाञ्च तक्षणात् ॥ ९ ॥ सिद्धार्थकानां कल्केन
शृंगदंतमयस्य च ॥ गोवालैः फलपात्राणामस्थानां शृंगवतां तथा ॥ १० ॥
निर्यासानां गुडानां चलवणानां तथैव च ॥ कुसुंभकुंकुमानां च ऊर्णाकार्पासयो-
स्तथा ॥ ११ ॥ प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवान्यमः ॥

शय्या, आसन, सवारी, सूय, शकट, चटाई, ईधन इनकी शुद्धि यज्ञमें केवल जल छिड़कने
से होजातीहै ॥ ७ ॥ घरोंकी शुद्धि मार्जनसे और पृथ्वीकी शुद्धि कुछ थोड़ी खोदडालनेसे
और वस्त्रोंकी शुद्धि जलसे होतीहै ॥ ८ ॥ बहुतेसे अन्नोंकी तथा दलेहुए अन्न और
काष्ठके पात्रोंकी शुद्धि जलके छिड़कनेसे होतीहै ॥ ९ ॥ सींग और दांतकी वस्तु सरसोंकी
खलसे और फलके पात्र, हाड और सींगवालोंकी शुद्धि गौके चँवरसे होतीहै ॥ १० ॥ गोंद,
लवण, गुड, कुसुंभ, कुंकुम, ऊन और कपास ॥ ११ ॥ इनकी शुद्धि जल छिड़कनेसे होजा-
तीहै, यह भगवान् यमने कहाहै;

भूमिस्थमुदकं शुद्धं शुचिं तोयं शिलागतम् ॥ १२ ॥ वर्णगंधरसैर्दुष्टैर्वर्जितं
यदि तद्रवेत् ॥ शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदैव सुखाकरम् ॥ १३ ॥

और पृथ्वी तथा शिलापर पड़ा जल शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥ यदि वह जल दुष्टवर्ण जो
रस गंधसे रहित हो; वह नदी और आकरका जल शुद्ध है ॥ १३ ॥

शुद्धं प्रसारितं पण्यं शुद्धे चाऽजाश्वयोर्मुखे ॥

मुखवर्जं तु गौः शुद्धा मार्जार आश्रमे शुचिः ॥ १४ ॥

हाटमें फैलीहुई वस्तु वकरी और बोटका मुख शुद्ध हैं मुख छोडके गौका सर्वअंग शुद्ध है,
घरमें रहनेवाली बिलाव शुद्ध है ॥ १४ ॥

शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमंडलुः ॥

आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च ॥ १५ ॥

शय्या, स्त्री, बालक, वस्त्र, यज्ञोपवीत और पात्र यह अपने अपनेही शुद्ध हैं और अन्यके
शुद्ध नहीं हैं ॥ १५ ॥

नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुभं सुखम् ॥

रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचि ॥ १६ ॥

स्त्री, बछडे, पक्षी, इनका मुख कमसे रात्रि प्रस्रवण और वृक्ष तथा मृगयामें सर्वदा
शुद्ध है ॥ १६ ॥

शुद्धा भर्तृश्चतुर्येहि स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥

दैवे कर्मणि पित्र्ये च पंचमेऽहनि शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करके स्वामीके निमित्त और देवता पितरोंके कर्ममें पांचवें
दिन शुद्ध होतीहै ॥ १७ ॥

रथ्याकर्दमतोयेन घृविनाद्येन वाप्यथ ॥

नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ १८ ॥

कदाचित् मनुष्यकी नाभिके ऊपर गलीकी कीचड अथवा जल या थूक लगजाय तो उसी
समय स्नान करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १८ ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा स्नात्वा भोक्तुमनास्तथा ॥ भुक्त्वा क्षुत्त्वा तथा सुप्त्वा

पीत्वा चांभोऽवगाह्य च ॥ १९ ॥ रथ्यामाक्रम्य वाचामेद्वासौ विपरिधाय च ॥

लघुशंका, मलका त्याग, स्नान, भोजन, छींक, शयन, जलपान और जलमें अवगाहन
इनको करके भोजनसे प्रथम ॥ १९ ॥ और गलीमें चलकर वस्त्रोंको धारणकर आचमन कर;

कृत्वा मूत्रं पुरीषं च लेपगंधापहं द्विजः ॥ २० ॥ उद्धृतेनांभसा शौचं मृदा

चैव समाचरेत् ॥ पायौ च मृत्तिकाः सप्त लिंगे द्वे परिकीर्तिते ॥ २१ ॥ एक-

स्मिन्विंशतिर्हस्ते द्वयोर्देयाश्चतुर्दश ॥ तिस्रस्तु मृत्तिका ज्ञेयाः कृत्वा नखविशो-
धनम् ॥ २२ ॥ तिस्रस्तु पादयोर्ज्ञेयाः शौचकामस्य सर्वदा ॥ शौचमेतद्गृह-

स्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ २३ ॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिपर्व पूर्णते यया ॥ २४ ॥

इति श्रीशांखे धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

और द्विजाति ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मलमूत्रका त्याग करके जिससे दुर्गंध दूर होजाय ऐसी ॥ २० ॥ स्वयं जल निकालकर मिट्टी और जलसे शुद्धि करले; और गुदामें सातवार छिंममें तीनवार मिट्टी लगावै ॥ २१ ॥ बायें हाथसे वीसवार और फिर दोनोंमें चौदहवार नखोंकी शुद्धि करके तीनवार मिट्टीको लगावै ॥ २२ ॥ शुद्धिकी अभिलाषा करनेवाला मनुष्य तीनवार पैरोंमें मिट्टीको लगावै, यह शुद्धि गृहस्थियोंकी है; ब्रह्मचारियोंकी इससे दुगुनी शुद्धि कहैहै ॥ २३ ॥ वानप्रस्थोंकी इससे तिगुनी शुद्धि है, और संन्यासियोंकी चौगुनी है; प्रत्येक वारमें इतनी मिट्टी लगावै जिससे कि तीन अंगुल हाथके भरजाय ॥ २४ ॥

इति श्रीशङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

नित्यं त्रिषवणस्नायी कृत्वा पर्णकुटीं वने ॥ अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥ ग्रामं विशेषं भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥ २ ॥ हेमस्तेयी सुरापश्व ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ व्रतेनैतेन शुद्ध्यन्ते महापातकिनस्त्वमे ॥ ३ ॥

वनमें जाय पर्णकुटी बनाकर जटा धारण करके त्रिकालीन स्नान कर पत्ते, मूल, पत्र इनका भोजन करताहुआ पृथ्वीपर शयन करै ॥ १ ॥ अपने कर्मको मनुष्योंके निकट प्रकाश करताहुआ गांवमें भिक्षाके अर्थ जाय और वारहवर्षतक एक समय भोजन करै ॥ २ ॥ सुवर्णकी चोरी करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे रमण करनेवाला, यह महापापीभी इस व्रतके करनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ३ ॥

यागस्थं क्षत्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम् ॥ एतदेव व्रतं कुर्यादात्रेयीविनिषूदकः ॥ ४ ॥ कूटसाक्ष्यं तथैवोक्ता निक्षेपमपहत्य च ॥ एतदेव व्रतं कुर्यात्त्यक्त्वा च शरणगतम् ॥ ५ ॥ आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च ॥ हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ ६ ॥

यज्ञमें स्थित क्षत्रिय और वैश्यको मारनेवाला तथा रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेवाला इसी व्रतके करनेसे शुद्ध होजाताहै ॥ ४ ॥ झूठी साक्षी कहकर न्यायको चुराय और शरण आयेको त्यागकरके यही व्रत करै ॥ ५ ॥ अभिहोत्रीकी स्त्रीकी हत्या करनेपर और मित्रकी हत्या करनेपर, तथा विना जाने गर्भकी हत्या करनेपर भी इसी व्रतको करै ॥ ६ ॥

वनस्थं च द्विजं हत्वा पार्थिवं च कृतागसम् ॥ एतदेव व्रतं कुर्याद्विगुणं च विशुद्ध्ये ॥ ७ ॥ क्षत्रियस्य च पादोनं वधेऽर्द्धं वैश्यघातने ॥ अर्द्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥ ८ ॥ पादं तु शूद्रहत्यायामुदकयागमने तथा ॥

गोवधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तथा ॥ ९ ॥ पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान्मांसं
कृत्वा विचक्षणः ॥ आरण्यानां वधे तद्वत्तदर्थं तु विधीयते ॥ १० ॥

वनवासी ब्राह्मण और अपराधी राजा इनकी हत्या करके दूना व्रत करें तब वह शुद्ध होंगे
॥ ७ ॥ वनवासी क्षत्रियकी हत्या करके पीन व्रत करें, वैश्यकी और खोकी हत्या करके
इस व्रतको आधा करें ॥ ८ ॥ शूद्रकी हत्या करके और कतुमती ज़मीन में गमन करके पाद
चोथाई इस व्रतको करें ॥ ९ ॥ ग्रामके वनके पशुओंको मारनेवाला अन्य प्रायश्चित्त न करके
केवल यही आधा व्रत करें ॥ १० ॥

हत्वा द्विजं तथा सर्पजलेशयविलेशयान् ॥

सप्तरात्रं तथा कुर्याद्व्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥

पक्षी और जलचर तथा विलमें सर्पको मारकर सातरात्रिक ब्रह्महत्याका व्रत करें ॥ ११ ॥

अनस्थां तु शतं हत्वा सास्थां दशशतं तथा ॥

ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्पूर्णं संवत्सरं नरः ॥ १२ ॥

विना अस्थिके सौ जीवोंकी हत्या करके, या एक सहस्र हड्डीयुक्त जीवोंको मारकर मनुष्य
एक वर्षतक सन्पूर्ण ब्रह्महत्याके व्रतको करें ॥ १२ ॥

यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् ॥

तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १३ ॥

जिस ३ वर्णकी जीविकाका छेदन करे उसीवर्णकी हत्याका प्रायश्चित्त करे ॥ १३ ॥

अपहृत्य तु वर्णानां भुवं प्राप्य प्रमादतः ॥ प्रायश्चित्तं वधप्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं
चरेत् ॥ १४ ॥ गोजाश्रस्यापहरणे मणीनां रजतस्य च ॥ जलापहरणे चैव
कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ १५ ॥ तिलानां धान्यवस्त्राणां मद्यानामामिषस्य च ॥
संवत्सरार्द्धं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ १६ ॥ तृणेषु काष्ठतक्राणां रसानाम-
पहारकः ॥ मासमेकं व्रतं कुर्यादंतानां सर्पिणां तथा ॥ १७ ॥ लवणानां
गुडानां च मूलानां कुसुमस्य च ॥ मासार्द्धं तु व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः
॥ १८ ॥ लोहानां वैदलानां च सूत्राणां चर्मणां तथा ॥ एकरात्रं व्रतं कुर्या-
देतदेव समाहितः ॥ १९ ॥

अज्ञानसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंकी भूमि चोरी करले, सौ ब्राह्मणोंकी
आज्ञा लेकर प्रायश्चित्त करे ॥ १४ ॥ गौ, बकरी, घोड़ा, मणि, चांदी, जल इनकी चोरी
करनेवाला मनुष्य एक वर्षतक उक्त व्रतको करे ॥ १५ ॥ तिल, अन्न, वस्त्र, मदिरा, मांस,
इनकी चोरी करनेवाला छः महीनेतक सावधान होकर इसी व्रतको करे ॥ १६ ॥ तिल,
गन्ना, काठ, मट्टा, रस, दांत, घी इनकी चोरी करनेवाला एक महीनेतक इस व्रतको करे
॥ १७ ॥ लवण, मूल, फूल इनकी चोरी करनेवाला सावधान होकर पंद्रह दिनतक इसी
व्रतको करे ॥ १८ ॥ लोहा, वैदल, सूत, चाम इनकी चोरी करनेवाला एकरात्रि साव-
धान होकर यही व्रत करे ॥ १९ ॥

भुक्ता पलांडुं लशुनं मयं च करकाणि च ॥ नारं मलं तथा मांसं विद्वराहं
खरं तथा ॥ २० ॥ गौधेयकुंजरोष्ट्रं च सर्वं पांचनखं तथा ॥ क्रव्यादं कुक्कुटं
ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ २१ ॥

प्यांज, लहसुन, मदिरा, करक, मनुष्यकी विष्टा इत्यादि मल, मनुष्यका मांस, सूकर,
गधा इनका खानेवाला ॥ २० ॥ गोधेय, हाथी, ऊंट, सम्पूर्ण पंचनखमांस, जीव और ग्रामके
नुरगेको खानेवाला एक वर्षतक उक्त व्रतको करै ॥ २१ ॥

भक्ष्याः पंचनखास्तेते गोधाकच्छपशल्लकाः ॥

खड्गश्च शशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद्व्रतम् ॥ २२ ॥

गोह, कछवा, सेह, गेंडा, ससा, यही पांच पंचनख भक्ष्य हैं, इनको मारनेवाला भी इसी
व्रतको करै ॥ २२ ॥

हंसं मद्भुरकं काकं काकोलं खंजरीटकम् ॥ मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्बलाकं
शुकसारिकं ॥ २३ ॥ चक्रवाकं प्लवं कोकं मंडूकं भुजगं तथा ॥ मासमेकं व्रतं
कुर्यादितच्चैव न भक्षयेत् ॥ २४ ॥

हंस, मद्भुर, कौआ, काकोल (सर्प) खंजरीट, मत्स्यके खानेवाले मत्स्य, बगला, तोता,
सारिका, ॥ २३ ॥ चक्रवा, प्लव, कोक, मेंढक, सर्प इनका खानेवाला एकमहीनेतक इसी
व्रतको करै, और फिर इनको न खाय ॥ २४ ॥

राजीवान्सिंहतुंडांश्च शकुलांश्च तथैवच ॥ पाठीनरोहितौ भक्ष्यौ मत्स्येषु परि-
कीर्तितौ ॥ २५ ॥ जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रं विष्किरान् ॥ रक्तपादाञ्जाल-
लपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥

राजीव, सिंह, तुंड, शकुल, पाठीन, रोहित यह मत्स्य भक्ष्य हैं ॥ २५ ॥ जो जलमें
उत्पन्नहो और जो जलमेंही विचरण करें जो मुखके अग्रभागसे और नखोंसे खोदनेवाले,
जिनके पैर लाल हों, और जिनका पैर जालके समान हो इनको खानेवाला सात दिनतक
व्रत करै ॥ २६ ॥

तिथिरं च मयूरं च लावकं च कपिजलम् ॥ चार्ध्रिणसं वर्तकं च भक्ष्यानाह
यमस्तथा ॥ २७ ॥ भुक्ता चोभयतोदंतांस्तथैकशफदंष्ट्रिणः ॥ तथा भुक्ता तु
मांसं वै मासार्धं व्रतमाचरेत् ॥ २८ ॥

तीतर, मोर, लाल पक्षी, कपिजल, चार्ध्रिणस, वर्तक इनको यमराजने भक्ष्य कहा है
॥ २७ ॥ दोनोंओर दांतवाले, और जिनके एक खुर हो, इनको जो एक महीनेतक खाय वह
पंद्रह दिनतक व्रत करै ॥ २८ ॥

स्वयं मृतं तथा मांसं माहिषं त्वाजमेव च ॥ गोश्च क्षीरं विवत्सायाः संधिन्याश्च
तथा पयः ॥ संधिन्यमेध्यं भक्षित्वा पक्षं तु व्रतमाचरेत् ॥ २९ ॥ क्षीराणि यान्य-
भक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ॥ सप्तरात्रं व्रतं कुर्याद्यदेतत्पारेकीर्तितम् ॥ ३० ॥

जीव जो स्वयं मरजाय उसका मांस, या भैंसा, बकरी का मांस, या जिस गौका बछड़ा

मरगया हो या जो गाभिन हो उस गौका दूध, और संघिनीका दूध जो अशुद्ध हो उसको खानेवाला पंद्रह दिनतक व्रत करे ॥ २९ ॥ जो दूध अभक्ष्य है उनके विकारों (दही आदिकों) को खाकर बुद्धिमान् मनुष्य सात रात्रितक उक्त व्रतको करे ॥ ३० ॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्नश्चनप्रभवांस्तथा ॥ केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत् ॥ गुडशुक्तं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं च व्रती भवेत् ॥ ३१ ॥

वृक्षका लाल गोंद, और वृक्षके काटनेसे जो गोंद निकले वह, शुक्त, (कांजी वा जाल सिरका) वासी पदार्थ और गुडका शुक्त, इनको खानेवाला मनुष्य तीन रात्रितक व्रत करे ॥ ३१ ॥

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु यच्चान्यदधिसंभवम् ॥ गुडशुक्तं तु भक्ष्यं स्यात्सर्षपि-
प्लनिति स्थितिः ॥ ३२ ॥ यवगोधूमजाः सर्वे विकाराः पयसश्च ये ॥ राजवा-
डवकुल्यं च भक्ष्यं पर्युषितं भवेत् ॥ ३३ ॥

शुक्तोंमें दहीका विकार, घी मिला गुडका शुक्त यह भक्ष्य शुक्तोंमें कहा है ॥ ३२ ॥ जौ, गेहूं, दूध, इनका विकार, और राजवाडवका मांस यह वासी भी भक्ष्य है ॥ ३३ ॥

राजीवपकं मांसं च सर्वयत्नेन वर्जयेत् ॥

संवत्सरं व्रतं कुर्यात्प्राश्यैताञ्ज्ञानतस्तु तान् ॥ ३४ ॥

राजीव मत्स्यभेदके पकेहुए मांसको सब भाँति त्याग दे और जो मनुष्य ऊपर कहे-
हुओंको जान वृक्षकर खाले वह एक वर्षतक व्रतको करे ॥ ३४ ॥

शूद्रान्नं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रंगावतारिणः ॥ चिकित्सकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्री-
मृगजीविनः ॥ ३५ ॥ पंडस्य कुलदायाश्च तथा बन्धनचारिणः ॥ वद्धस्य
चैव चोरस्य अवीरायाः स्त्रियस्तथा ॥ ३६ ॥ चर्मकारस्य वेनस्य क्लीवस्य
पतितस्य च ॥ रुक्मकारस्य धूर्तस्य तथा वार्धुषिकस्य च ॥ ३७ ॥ कर्दर्यस्य
वृशंसस्य वेश्यायाः कितवस्य च ॥ गणान्नं भूमिपालान्नमन्नं चैव श्वजीविनाम्
॥ ३८ ॥ यौजिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मांसं व्रतं चरेत् ॥

शूद्र, रंगरेज, वैद्य, क्षुद्रबुद्धि स्त्री, और जो अपनी जीविका मृगोंसे करताहो ॥ ३५ ॥
नपुंसक, व्यभिचारिणी स्त्री, डांकिया, कैदी, चोर, पतिपुत्रहीन स्त्री ॥ ३६ ॥ चमार,
वेनवे, क्लीव, पतित, सुनार, धूर्त, वार्धुषिक, व्याज लेनेवाला ॥ ३७ ॥ कृपण, कायर, हिंसक,
वेश्या, कपटी, शूद्र इत्यादि इनके अन्नको खानेवाला, दलभट्टके अन्न तथा राजाके अन्न
और जो कुत्तोंसे अपनी जीविका करें उनके अन्नको ॥ ३८ ॥ मूँजके व्यापारी और
सूतिका (प्रसूति होकर शूद्र नहीं हुई स्त्री) के अन्नको खानेवाला एक महीनेतक
व्रत करे ॥

शूद्रस्य सततं भुक्त्वा षण्मासान्नव्रतमाचरेत् ॥ ३९ ॥ वैश्यस्य तु तथा भुक्त्वा
त्रिमासान्नव्रतमाचरेत् ॥ क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत् ॥ ४० ॥
ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रतं चरेत् ॥

और निरन्तर शूद्रजातिके अन्नको खानेवाला छै: महीनेतक व्रत करै ॥ ३९ ॥ वैश्यका अन्न निरन्तर खानेसे तीन महीने, और क्षत्रियका अन्न निरन्तर खानेसे दो महीनेतक व्रतकरै ॥ ४० ॥ ब्राह्मणका अन्न निरन्तर खानेवाला एक महीनेतक व्रत करै;

अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥ मद्यभांडगताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत् ॥ शूद्रोच्छिष्टाशने मांसं पक्षमेकं तथा विशः ॥ ४२ ॥ क्षत्रियस्य तु सप्ताहं ब्राह्मणस्य तथा दिनम् ॥ अथ श्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥ ४३ ॥

मदिराके पात्रमें जलको पीनेवाला पंद्रह दिनतक व्रत करै ॥ ४१ ॥ गुडकी मदिराके पात्रमें जल पीनेवाला सात रात्रि व्रत करै, शूद्रकी उच्छिष्टको खानेवाला एक महीनेतक और वैश्यकी उच्छिष्टको खानेवाला पन्द्रह दिनतक व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४२ ॥ क्षत्रियकी उच्छिष्टको खानेवाला सात दिनतक, ब्राह्मणकी उच्छिष्टको खानेवाला एक दिन और श्राद्धमें खानेवाला बुद्धिमान् मनुष्य एक महीनेतक व्रत करै ॥ ४३ ॥

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविंदति ॥

व्रतं संवत्सरं कुर्युर्दातृयाजकपंचमाः ॥ ४४ ॥

परिवेत्ता, परिवित्ति; जो स्त्री परिवेत्ताने बड़े भाईसे पहले विवाही हो वह, दाता और पांचवां याजक; इन पांचोंको एक वर्षतक व्रत करना उचित है ॥ ४४ ॥

काकोच्छिष्टं गवाम्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ॥ ४५ ॥ दूषितं केशकीटैश्च मूषिकालांगलेन च ॥ भक्षिकामशक्तेनापि त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ४६ ॥ वृथाकृसरसंयावपायसापूपशकुलीः ॥ भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ ४७ ॥ नील्या चैव क्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ॥ त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्यात्पुंश्चलीदशनक्षतः ॥ ४८ ॥ पादप्रतापनं कृत्वा वह्निं कृत्वा तथाप्यधः ॥ कुशैः प्रभृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ४९ ॥ नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥ त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याच्छिरः ॥ गुल्मलतास्तथा ॥ ५० ॥

काकका उच्छिष्ट, गौका, सूया इनका खानेवाला पन्द्रह दिनतक व्रत करै ॥ ४५ ॥ केश, कीडा, मूसा, बानर इनसे दूषितहुआ और मक्खी, मच्छर इनसे दूषित हुएको खाकर तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ४६ ॥ वृथा कृसर, संयाव, खीर, पूआ, पूरी इनका खानेवाला सावधानीसे तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ४७ ॥ नीलके वृक्षकी लकडीसे जिसके शरीरमें घाव होजाय, या कुत्तेने काटाहो उससे घाव होजाय; तौ वह तीन रात्रितक व्रतकरै ॥ ४८ ॥ और जिसके पुंश्चलीके दांतोंका क्षत होजाय, जो नीचे अग्नि रखकर पैरोंको सेके, और जो कुशाओंसे पैरोंको झाडे वह एक दिन व्रत करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४९ ॥ जो नीला वस्त्र पहनरहाहो जिसके छूनेसे स्नान करना योग्य है उसका अन्न खाकर और गुल्म लताका छेड़न करके तीन रात्रि व्रत करै ॥ ५० ॥

अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥

पलाशस्य द्विजश्रेष्ठस्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५१ ॥

ब्राह्मण ढाककी दनीहुई अन्ध्या (खाट आदि) यान (सवारी) आसन (पीढा कुरसी आदि) और खडाऊं इनपर बैठकर तीन रात्रि व्रत करै ॥ ५१ ॥

वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते ॥

भुक्तानं ब्राह्मणः पश्चाच्चिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५२ ॥

वाणी और भाव इनसे दुष्ट पदार्थको भावसे दुष्ट पात्रमें खाकर ब्राह्मण तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ५२ ॥

क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणः ॥

संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छित्त्वा पिप्पलपादपम् ॥ ५३ ॥

अपने प्राणोंकी रक्षामें तत्पर क्षत्री युद्धमें पीठ देकर और पीपलके वृक्षको काटकर एक वर्षतक व्रत करै ॥ ५३ ॥

दिवा च मैथुनं कृत्वा स्नात्वा नमस्तथांभसि ॥

नमां परस्त्रियं दृष्ट्वा दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५४ ॥

दिनके समय मैथुन करकै, जलमें नंगा हो स्नान करकै या दूसरेकी स्त्रीको नंगी देखकर एक दिनतक व्रत करै ॥ ५४ ॥

क्षिप्त्वाम्नावशुचि द्रव्यं तदेवांभसि मानवः ॥

मासमेकं व्रतं कुर्यादुपकुण्ड्य तथा गुरुम् ॥ ५५ ॥

अग्नि या जलमें अशुद्ध पदार्थ फेंककर वा गुरुपर क्रोध करनेवाला एकमहीनेतक व्रत करै ॥ ५५ ॥

पीतावशेषं पानीयं पीत्वा च ब्राह्मणः क्वचित् ॥ त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्ग्रामहस्तेन वा पुनः ॥ ५६ ॥ एकपत्तपुपविष्टेषु विषमं यः प्रयच्छति ॥ यश्च यावदसौ पकं कुर्यात्तु ब्राह्मणो व्रतम् ॥ ५७ ॥

कदाचित् ब्राह्मण पीनेसे बचेहुए पानीको पीले, या बांधे हाथसे जल पीले तौ तीन रात्रितक व्रत करै ॥ ५६ ॥ एक पत्तिमें बैठेहुओंके आगे जो न्यूनाधिक परोसे, वह ब्राह्मण इसी व्रतको करले ॥ ५७ ॥

धारयित्वा तुलां चैव विषमं कारयेद्बुधः ॥

सुरालवणमद्यानां दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५८ ॥

वणिक् तराजूमें तोलकराभी न्यूनाधिक करै, सुरा और लवणको बेचनेवाला मनुष्य यह सभी एक दिनतक व्रत करै ॥ ५८ ॥

१ वाणीदुष्ट जैसा “गोशृंगी” यह चचीढेके नाम हैं अतः वह अखाद्य है, भावदुष्ट जो वस्तु बुरी रीतिसे बनाई जातोहै, जैसे विहित मांसका भी कबाब आदिक भावदुष्ट पात्र रंगसे काले आदिक कियेहों।

२ “वृक्षं फलप्रदम्” इस पाठके अनुसार फल देनेवाले वृक्षके काटनेमें यह प्रायश्चित्त जानना ।

मांसस्य विक्रयं कृत्वा कुर्याच्चैव महाव्रतम् ॥

विक्रीय पाणिना मद्यं तिलानि च तथाचरेत् ॥ ५९ ॥

मांसको बेचनेवाला महाव्रत करे, अपने हाथसे मदिरा और तिलको बेचकरभी महाव्रतको करे ॥ ५९ ॥

हंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥

दिनमेकं व्रतं कुर्यात्प्रयतः सुसमाहितः ॥ ६० ॥

या ब्राह्मणको अपमानसूचक हंकार, और वडोंको तू कहकर भलीभांति सावधान होकर एक दिनतक व्रत करे ॥ ६० ॥

प्रेतस्य प्रेतकार्याणि कृत्वा च धनहारकः ॥

वर्णानां यद्व्रतं प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत् ॥ ६१ ॥

जो धन (वेतन) लेकर प्रेतकी क्रिया और प्रेतको श्मशानमें कंधेपर लेजाय वह निज वर्णका जो व्रत अन्यत्र कहाहै उसी व्रतको शुद्ध होकर करे ॥ ६१ ॥

कृत्वा पापं न गूहेत गूहमानं विवर्द्धते ॥

कृत्वा पापं बुधः कुर्यात्पर्वदानुमतं व्रतम् ॥ ६२ ॥

पाप करके उसे न छिपावै, कारण कि छिपानेसे पापकी वृद्धि होतीहै बुद्धिमान् मनुष्य पाप करके सभाकी अनुमतिसे प्रायश्चित्त करे ॥ ६२ ॥

तत्स्करश्वापदाकीर्णं बहुव्याधमृगे वने ॥ न व्रतं ब्राह्मणः कुर्यात्प्राणबाधभया-

त्सदा ॥ ६३ ॥ सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति ॥ व्रतैः कृच्छ्रैश्च दानैश्च

इत्याह भगवान्प्रथमः ॥ ६४ ॥ शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ शरीरा-

त्सर्वते धर्मः पर्वतात्सलिलं यथा ॥ ६५ ॥ आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य

ब्राह्मणैः सह ॥ प्रायश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कदाचन ॥ ६६ ॥

इति श्रीशाङ्खीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

ब्राह्मण चोर, भेडिये, सांप, मृगआदिक जन्तुओंसे परिपूर्ण स्थानमें जाकर या जहां प्राणोंका भय हो ऐसे स्थानमें जाकर व्रत न करे ॥ ६३ ॥ कारण कि, जीवनकी रक्षा सब स्थानोंपर लिखीहै, जीवित रहनेपर व्रत कृच्छ्र तथा अनेक दानद्वारा सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करसकताहै यह भगवान् प्रथममें कहाहै ॥ ६४ ॥ और शरीर ही धर्मका मूल है इस कारण यत्नसहित शरीरकी रक्षा करनी योग्य है, पर्वतमेंसे जलकी समान शरीरमेंसे धर्म निकलता रहताहै ॥ ६५ ॥ इस कारण सम्पूर्ण शास्त्रोंको विचारकर ब्राह्मणोंके साथ एकमति होकर ब्राह्मण प्रायश्चित्त व्रतोंके, अपनी इच्छासे कभी न बतावै ॥ ६६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

१ “दहित्वा च बहित्वा च त्रिरात्रमगुचिर्भवेत्” इस वचनसे दाह करनेवाला परगोत्रीमी तीन दिन अगुद्ध रहताहै, उसके उपरान्त प्रायश्चित्त करे।

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अ्यहं त्रिपवगस्नायी स्नाने स्नानेऽधमर्पणम् ॥ निमग्नस्त्रिः पटेदप्सु न भुंजीत
दिनत्रयम् ॥ १ ॥ वीरासनं च तिष्ठेत गां दद्याच्च पयस्विनीम् ॥ अधमर्पण-
मित्येतद्व्रतं सर्वाघनाशनम् ॥ २ ॥

तीन दिनतक प्रतिदिन तीनवार स्नानकर तीनों स्नानोंमें जलमें डूबाहुआतीनवार अधमर्पण
जपकरे, और तीन दिनतक भोजन न करे ॥ १ ॥ सर्वदा वीरासनपर खड़ा होकर दूध देने-
वाली गौका दान करे; इसका नाम अधमर्पण व्रत है इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं॥२॥

अ्यहं सायं अ्यहं प्रातरुपहमद्यादयाचितम् ॥

अ्यहं परं च नाशनीयात्याजापत्यं चरन्व्रतम् ॥ ३ ॥

प्राजापत्य व्रत करनेपर तीन दिनतक नक्त भोजन. तीन दिनतक एकभक्त, तीन दिनतक
अयाचित भोजन, और तीन दिनतक उपवास करे ॥ ३ ॥

अ्यहमुष्णं पिवेतोयं अ्यहमुष्णं घृतं पिवेत् ॥ अ्यहमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्ष-
रुपहं भवेत् ॥ ४ ॥ तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम् ॥

तीन दिनतक गरम जल पिये, तीन दिनतक गरम घृतका पान करे, तीन दिनतक गरम
दूधही पिये, और तीन दिनतक केवल वायु ही भक्षण करके रहे ॥ ४ ॥ इसका नाम
तप्तकृच्छ्र है और ऐसाही शीत उदक, शीत घृत, शीत दूध और वायु इनका क्रमशः तीन
तीन दिनतक सेवन कियाजाताहै वह शीतकृच्छ्र कहाहै,

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

और बारह दिनतक उपवास करनेका नाम पराक व्रत है ॥ ५ ॥

विधिनोदकसिद्धान्नं समश्रीयात्प्रयत्नतः ॥

सक्तून्हि सोदकान्मासं कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक जलसे बनाये अन्नको यत्नसहित जो मनुष्य खाये यदि वह मनुष्य एक मही-
नेतक सोदक करे अर्थात् भोजनके बिना जल न पिये उसे वारुणकृच्छ्र कहतेहैं ॥ ६ ॥

विल्वैरामलकैर्वापि पद्माक्षैरथवा शुभैः ॥

मासेन लोकैस्त्रीन्कृच्छ्रः कथ्यते बुद्धिसत्तमैः ॥ ७ ॥

एक महीनेतक वेल, आंवला, कमलगट्टे इनको खानेसे बुद्धिमानोंने स्त्रियोंका कृच्छ्र कहाहै॥७॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सातपनं
स्मृतम् ॥ ८ ॥ एतैस्तु अ्यहमभ्यस्तैर्महासातपनं स्मृतम् ॥ ९ ॥

गोमूत्र, गोघर, दूध, घृत, कुशाका जल इनका खाना, और एक दिन उपवास करना इसका
नाम सातपन कृच्छ्र है ॥ ८ ॥ और इन सबको तीन दिन करनेसे महासातपन कहाहै ॥९॥

पिण्याकं वामतक्रांबुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥

उपवासांतराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ॥ १० ॥

तिलोंकी खल, विनाजलका मट्टा, सत्तू इनको प्रतिदिन खाय और बीच २ में उपवास करनेका नाम तुलापुरुष है ॥ १० ॥

गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः॥

गोवर और जौको एकमहीनेतक प्रतिदिन सावधानीसे खाय, यह यावकव्रत है,

व्रतं तु वार्द्धिकं कुर्यात्सर्वपापपनुत्तये ॥ ११ ॥ ग्रासं चंद्रकलावृद्ध्या प्रांशनीयाद्वृद्धयन्सदा ॥ द्वासेयच्च कलाहानौ व्रतं चांद्रायणं स्मृतम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण पापोंके नाशकरनेवाले इस वार्द्धिक व्रतको करै उसीको चांद्रायण व्रत भी कहतेहैं उसका लक्षण यह है ॥ ११ ॥ चंद्रमाकी कलाकी भांति वृद्धिके अनुसार एकग्रास प्रतिदिन खावै ॥ और कलाकी हानिके अनुसार एक एक ग्रास प्रतिदिन घटाता जाय, यह चांद्रायण व्रत है ॥ १२ ॥

मुंडस्त्रिषवणस्त्रायी अधःशायी जितेंद्रियः ॥ स्त्रोशूद्रपतितानां च वर्जयेत्परिभाषणम् ॥ १३ ॥ पवित्राणि जपेच्छत्तया जुहुयाच्चैवं शक्तितः ॥ अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥ १४ ॥ पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः संतारिता नराः ॥ गंतपापा दिवं यांति नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

मुंडन किये हुए त्रिकाल स्नान करै, पृथ्वीपर शयन कर इन्द्रियोंको जीतना, स्त्री, शूद्र, पतित इनके साथ संभाषण न करना ॥ १३ ॥ और पवित्र स्तोत्रआदिका जप, यथाशक्ति हवन करना यह विधि सर्वदा सब कृच्छ्रोंमें जाननी उचित है ॥ १४ ॥ कृच्छ्रोंके प्रतापसे पापी मनुष्य पापोंसे छूटकर स्वर्गमें इसभांति जाताहै कि जैसे पापहीन मनुष्य स्वर्गमें जातेहैं, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १५ ॥

शंखप्रोक्तमिदं शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तस्स्वर्गलोके महीयते ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखीये धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य शंखकृषिके कहेहुए शास्त्रको पढताहै वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर स्वर्गलोकमें पूजित होताहै ॥ १६ ॥

इति श्रीशंखस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इति शंखस्मृतिः समाप्ता ॥ १३ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ लिखितस्मृतिः १४.

भाषाटीकासमेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ लिखितस्मृतिः ॥

इष्टापूर्ते तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

ब्राह्मण यज्ञपूर्वक इष्ट और पूर्वको करता है, कारण कि इष्टसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है, और पूर्वसे मोक्ष होजाती है ॥ १ ॥

एकाहमपि कर्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम् ॥ कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषी भवेत् ॥ २ ॥ भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः ॥ तल्लीकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानां प्ररोपणे ॥ ३ ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥ पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्वफलमश्नुते ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥ आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥ इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते ॥ अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ६ ॥

एकदिनतक जितना जल पृथ्वीमें रहजाय ऐसा जलाशय यज्ञसहित करे, और जिन जलाशयोंसे गौकी वृषा निवृत्त होजाय ऐसे जलाशयोंका बनानेवाला सातकुलोंको तारता है ॥ २ ॥ भूमिदान करनेसे जो लोक मिलता है वृक्षोंके लगानेसे भी मनुष्योंको वही लोक प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ बावडी, कूप, तालाब, देवताओंके मंदिर इनके दूटनेपर जो इनको फिर बनवाता है वह भी पूर्वके फलको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदोंकी रक्षा, अभ्यागतका सत्कार और बलिवैश्वदेव इनको इष्ट कहा है ॥ ५ ॥ द्विजातियोंके इष्ट और पूर्व यह साधारण धर्म कहे हैं; और शूद्र केवल पूर्वका अधिकारी है उसे वेदोक्त धर्म इष्टआदिकोंका अधिकार नहीं है ॥ ६ ॥

यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ॥

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥

मनुष्यकी अस्थि जबतक गंगाजलमें पड़ीरहै उतनेही हजार वर्षतक वह मनुष्य स्वर्गमें निवास करता है ॥ ७ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलिम् ॥

असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलांजलिम् ॥ ८ ॥

देवता और पितरोंके निमित्त जलकी अंजली जलमें दे, अर्थात् देवतर्पण और पितृतर्पणके निमित्त जलमेंही जलको डाले; जो बालक संस्कारके बिनाहुए मरगये हैं उनके लिये जलांजलि स्थलमें दे ॥ ८ ॥

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥ मुच्यते प्रेतलोकात् पितृलोकं
सः गच्छति ॥ ९ ॥ एष्टव्या वहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ॥ यजेत
वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥

जिस प्रेतके एकादशके दिन प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रआदि अधिकारी वृषका उत्सर्ग करतेहैं
वह प्रेत प्रेतलोकसे मुक्त होकर पितृलोकमें जाताहै ॥ ९ ॥ मनुष्य बहुतसे पुत्रोंकी इच्छा
करै यद्यपि बहुतसे पुत्रोंमेंसे कोई एक तो गयाको जायगा, या कोई तो अश्वमेधयज्ञ करैगा,
अथवा कोई तो नील बैलका उत्सर्ग करैगा वही यथार्थ पुत्र है ॥ १० ॥

वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ॥

हसन्ति तस्य भूतानि अन्योन्यं करताडनैः ॥ ११ ॥

काशीधाममें जाकर कदाचित् जो मनुष्य निकल आताहै तो सब भूत परस्परमें ताली
बजाकर उसका उपहास करतेहैं (तस्मात् काशीप्राप्त करकै क्षेत्रन्यास करकै वहां रहनाही
श्रेष्ठ है) ॥ ११ ॥

गयाशिर तु यत्किञ्चिन्नाम्नो पिंडं तु निर्वपेत् ॥ नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो
भोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥ आत्मनो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः ॥ यन्नाम्ना
पातयेत्पिंडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य गयामें जाकर नामोल्लेख करकै गयाशिरपर पिंडदान करताहै यदि वह नर-
क्रमेयी हो तोभी स्वर्गमें जाताहै; और जो स्वर्गमें होय तो उसकी मुक्ति होजातीहै ॥ १२ ॥
अपने सम्बन्धी हों या दूसरेके सम्बन्धी हों जिसकाभी नाम लेकर गयामें जो पिंडदेगा वह
मनुष्य सनातन ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥

लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा ॥

लांगूलशिरसा चैव सवै नीलवृषः स्मृतः ॥ १४ ॥

जिसका रंग लाल हो, खुर फूल और शिर यह सफेद हों उसे नील वृष कहतेहैं ॥ १४ ॥
नवश्राद्धं त्रिपक्षे च द्वादशस्त्वेव मासिकम् ॥ षण्मासौ चाव्दिकं चैव श्राद्धान्ये-
तानि षोडश ॥ १५ ॥ यस्यैतानि न कुर्वीत एकोदिष्टानि षोडश ॥ पिशाचत्वं
स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशैतरपि ॥ १६ ॥

आद्यं श्राद्ध (जो कि ब्राह्मणआदिको ११ वां आदिक दिन प्रथम रहोताहै वह) त्रिपक्ष (१॥
महीनेमें) बारह महीनोंके दो षण्मासिक, वर्षी, यह सोलह श्राद्ध हैं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य
प्रेतके लिये इन सोलह एकोदिष्टको नहीं करता; उसके सैंकड़ों श्राद्ध करनेसे भी वह प्रेतयो-
निसे मुक्त नहीं होता ॥ १६ ॥

सपिंडीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ॥ मातापित्रोः पृथक्कुयादिकोदिष्टं
मृतेऽहनि ॥ १७ ॥ वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मातापित्रोस्तु सन्ततम् ॥ अद्वैतं भोज-
येच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ १८ ॥ संक्रान्तावुरागो च पर्वण्यपि महालये ॥
निर्वाप्यास्तु त्रयः पिंडा एकतस्तु क्षयेऽहनि ॥ १९ ॥ एकोदिष्टं परित्यज्य पा-

वर्णं कुरुते द्विजः ॥ अकृतं तद्विजानीयात्स मातापितृघातकः ॥ २० ॥ अमा-
वास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा यदि ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्व-
णो विधिः ॥ २१ ॥

इसकारण सपिंडी करनेके उपरान्त प्रत्येक वर्षमें मातापिताके मरनेके दिनमें एकोद्दिष्ट पृथक् करै ॥ १७ ॥ माता पिताका श्राद्ध प्रत्येक वर्ष २ में निरन्तर करतारहें, और विश्व-
देवाके बिना श्राद्धमें जिमावै और एक पिंड दे ॥ १८ ॥ संक्रान्ति, ग्रहण, पर्व, पितृपक्ष
इनमें एकपक्षमें तीन पिंड दे और जोः क्षयके दिन ॥ १९ ॥ एकोद्दिष्टको त्यागकर
पार्वणश्राद्ध करताहै वह श्राद्ध न हुएकी समान है, और वह पुत्र माता पिताका मारने-
वाला है ॥ २० ॥ जो अमावस या पितृपक्षमें मरे उसके निमित्त सपिंडी करनेके उपरान्त
क्षयके दिन भी पार्वण श्राद्ध करै ॥ २१ ॥

त्रिदंडग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥

अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणन्तु विधीयते ॥ २२ ॥

त्रिदंडके छेनेसे ही प्रेत नहीं होता, उसके मरनेसे भी ग्यारहवें दिन पार्वण श्राद्ध कहाहै ॥ २२ ॥

यस्य संवत्सरादर्वाक्सपिंडीकरणं स्मृतम् ॥

प्रत्यहं तत्सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥ २३ ॥

एक वर्षसे प्रथम जिसका सपिंडीकरण कहाहै उसके निमित्तभी प्रतिदिन ब्राह्मण जलसे
भरा बट दान करै ॥ २३ ॥

पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिंडीकरणं स्त्रियः ॥ पितामह्यापि तत्तस्मिन्सत्येवन्तु
क्षयेऽहनि ॥ तस्यां सत्यां प्रकर्तव्यं तस्याः श्वश्वेति निश्चितम् ॥ २४ ॥

खीकी सपिंडी एकमात्र पतिके पिंडके साथही करनी चाहिये यदि खीका पति जीवित
हो सौ खीकी सासके पिंडमें खीका पिंड मिलावै और जो खीकी सासभी जीवीहो तो खीकी
सासकी सासके पिंडमें खीका पिंड मिलावै ॥ २४ ॥

विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ॥ एकत्वं सा गता भर्तुः पिंडे गोत्रे च
सूतके ॥ २५ ॥ स्वगोत्राद्भयते नारी उद्गाहात्सप्तमे पदे ॥ भर्तृगोत्रेण कर्तव्या
दानपिंडोदकक्रिया ॥ २६ ॥

खी विवाह होनेके पीछे चौथेदिनकी रात्रिमें पतिकी सझिनी अर्थात् पतिके पिंड, गोत्र
और सूतकमें एक होजातीहै ॥ २५ ॥ विवाहके पीछे सप्तपदीके होनेहीमें खी अपने
पिताके गोत्रसे भ्रष्ट होजातीहै अतः पतिके गोत्रसेही उसका पिंडदान और जलदान करना
चाहिये ॥ २६ ॥

द्विमातुः पिंडदानं तु पिंडे पिंडे द्विनामतः ॥ पण्णां देयास्त्रयः पिंडा एवं दाता
न मुह्यति ॥ २७ ॥ अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ॥ अदोषंतं
यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ २८ ॥

दो माताओंको दो पिंड दे और पिंडमें दोनोंका उच्चारण करै, छःके निमित्त अर्थात् बाप, दादा और पडदादा तथा माता, दादी और पडदादी इन छैके लिये तीन पिंडदान करै; इस प्रकारसे पिंडदेनेवाला दादा मोहको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ यदि मन्त्रज्ञ ब्राह्मण शरीरके पीकिको दूषित करनेवाले विकारोंसे युक्त होजाय उसको यमराजनें तौभी निदाप कहाहै, कारण कि वह पीकिको पवित्र करनेवाला है ॥ २८ ॥

अमौकरणशेषन्तु पितृपात्रे प्रदापयेत् ॥

प्रतिपाद्य पितृणां च न दद्याद्वैश्वदैविके ॥ २९ ॥

अमौकरणका शेष अन्न पिताके पात्रमें दे पहले पितरोंको देकर पीछे विश्वदेवाओंको न दे ॥ २९ ॥

अनमिको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्वणम् ॥

तत्र मातामहानां च कर्तव्यमुभयं सदा ॥ ३० ॥

यदि अग्निहोत्ररहित ब्राह्मण पार्वणश्राद्ध करै तौ वह मनुष्य पितृपक्ष और मातामहपक्ष इन दोनों पक्षोंका अवलम्बनकर श्राद्ध करै ॥ ३० ॥

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ॥

तेभ्य एव प्रदातव्यमेकोदिष्टं न पार्वणम् ॥ ३१ ॥

अपुत्रक होकर मृतक हुए पुरुष वा स्त्री इनके निमित्तभी एकोदिष्ट श्राद्ध करै, पार्वण श्राद्ध नहीं करै ॥ ३१ ॥

यस्मिन्नाशौ गते सूर्ये विपत्तिः स्याद्विजन्मनः ॥ तस्मिन्नहनि कर्तव्या दानपिंडोदकक्रियाः ॥ ३२ ॥ वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्तव्यमधिके न तु ॥ अधिमासे तु पूर्वं स्थाच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥ ३३ ॥ स एव हेयो दिष्टस्य येन केन तु कर्मणा ॥ अभिघातान्तरं कार्य्यं तत्रैवाहः कृतं भवेत् ॥ ३४ ॥

जिस राशिके सूर्यमें द्विजातिकी मृत्यु हुईहो उसी राशिके उसीदिन में दान, पिंडदान और जलदान करै ॥ ३२ ॥ और वर्षकी वृद्धिमें अभिषेक इत्यादि अधिक न करै यदि मलमाम् आजाय तौ वर्षसे प्रथमभी श्राद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ यदि किसी कर्मवशसे उस दिनको प्रारब्धवश त्यागदे अन्यथा नहीं; मृत्युके उपरान्त जो कर्तव्य है वह उसीदिन करना उचित है ॥ ३४ ॥

शालामौ पचते अन्नं लौकिकेनापि नित्यशः ॥ यस्मिन्नेव पचैदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ॥ ३५ ॥ वैदिके लौकिके वापि नित्यं हुत्वा ह्यतंदितः ॥ वैदिके स्वर्गमाप्नोति लौकिके हंति किल्बिषम् ॥ ३६ ॥ अमौ व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा मंत्रैस्तु शाकलैः ॥ संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्वीयादनग्निमान् ॥ ३७ ॥ उच्छेष्टपणं तु नोत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् ॥ ततो गृहवलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३८ ॥

नित्य शालाग्रि अथवा लौकिक अग्निमें अन्न पकावै, और जिस अग्निमें अन्न पकावै उस-
मेंही हवन करनेकी विधि है ॥ ३५ ॥ नित्य आलस्यरहित होकर लौकिक वा वैदिक अग्निमें
हवन करै, वैदिक अग्निमें हवन करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं ॥ ३६ ॥ प्रथम अग्निमें
सात व्याहृति और शाकलकृपिके कहेहुए मंत्रोंसे हवनकर भूतोंको अन्नका भाग देकर
भोजन करै और जो अग्निहोत्री न हो तौ ॥ ३७ ॥ जबतक ब्राह्मण विदा न हो जायँ तबतक
उच्छिष्ट न करे इसके पीछे गृहबलि करै यही व्यवस्थित धर्म है ॥ ३८ ॥

दर्भाः कृष्णाजिनं मंत्रा ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥ नैते निर्माल्यतां यान्ति योक्त-
व्यास्त पुनः पुनः ॥ ३९ ॥ पानमाचमनं कुर्यात्कुशपाणिस्सदा द्विजः ॥ भुक्त्वा
नोच्छिष्टतां याति एष एव विधिः सदा ॥ ४० ॥ पान आचमने चैव तर्पण
दैविके सदा ॥ कुशहस्तो न दुष्येत यथा पाणिस्तथा कुशः ॥ ४१ ॥ वाम-
पाणौ कुशान्कृत्वा दक्षिणेन उपस्पृशेत् ॥ विनाचामन्ति ये मूढा रुधिरैणाचमन्ति
ते ॥ ४२ ॥ नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रेषु ये कृताः ॥ पवित्रास्तान्विजानीया-
द्यथा कायस्तथा कुशाः ॥ ४३ ॥

दर्भ, काले मृगका चर्म, मन्त्र, विशेषकर ब्राह्मण, यह निर्माल्यता (अशुद्धि) को बार-
बार ग्रहण करनेसे भी अशुद्ध नहीं होते ॥ ३९ ॥ कुश हाथमें लेकर ब्राह्मण सर्वदा जल-
पान और आचमन करै, भोजन करनेपर भी यह कुश उच्छिष्ट नहीं होते, यह शास्त्रकी
विधि है ॥ ४० ॥ पीना, आचमन, तर्पण, देवकर्म इनमें सर्वदा कुश हाथमें लेनेसे मनुष्य
दूषित नहीं होता कारण कि जैसा हाथ है वैसीही कुशा होतीहैं ॥ ४१ ॥ बाँये हाथमें कुशा
लेकर दहिने हाथसे आचमन करै । जो मूढबुद्धि मनुष्य विना कुशाके आचमन करतेहैं वह
उनका आचमन रुधिरकी समान है ॥ ४२ ॥ नीवीमें और जनेऊमें जो कुशा रक्खीहैं वह
कुशा पवित्र हैं, कारण कि कुशाभी देहकी तन हैं ॥ ४३ ॥

पिंडे कृतास्तु ये दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ॥

मूत्रोच्छिष्टपुरीषं च तेषां त्यागो विधीयते ॥ ४४ ॥

जो कुशा पिंडोंपर रक्खी जातीहैं, वा जिनसे पितरोंका तर्पण कियागयाहो; या जिनको
लेकर मलमूत्र त्याग कियाहो उन कुशाओंका त्याग करदे ॥ ४४ ॥

दैवपूर्वं तु यच्छ्राद्धमदैवं चापि यद्भवेत् ॥

ब्रह्मचारी भवेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धं तु पैतृकम् ॥ ४५ ॥

जो श्राद्ध विश्वदेवपूर्वक हो वा विश्वदेवपूर्वक न हो अर्थात् पार्वण हो एकोद्दिष्ट हो, उस
समयमें ब्रह्मचारी रहै; और पितरोंके निमित्त श्राद्ध करै ॥ ४५ ॥

मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनंतरम् ॥

ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ ४६ ॥

प्रथम माताका श्राद्धकर पीछे पितरोंका करै, इसके पीछे नानाआदिका श्राद्ध हातहै,
इसभांति वृद्धिश्राद्धमें तीन श्राद्ध होतेहैं ॥ ४६ ॥

ऋतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धूरिलोचनौ ॥ पुरुरवा आर्द्रवाश्च विश्वेदेवाः
प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥ ये अत्र
विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ ४८ ॥ इष्टिश्राद्धे ऋतुर्दक्षो वसुः सत्यश्च
दैविके ॥ ४९ ॥ कालः कामोऽग्निकाय्येषु अधरे धूरिलोचनौ ॥ पुरुरवा
आर्द्रवाश्च पार्वणेषु नियोजयेत् ॥ ५० ॥

और ऋतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धूरि, लोचन, पुरुरवा, आर्द्रवा इनको विश्वेदेवा
कहा है ॥ ४७ ॥ “हे महाबली और महाभागी विश्वेदेवो ” जो इस श्राद्धमें कहे हैं वे
सावधान हो ॥ ४८ ॥ इष्टि (पूजननिमित्तक) श्राद्धमें ऋतु और दक्ष; देवश्राद्धमें वसु और
सत्य ॥ ४९ ॥ अग्निके कर्ममें काल और काम, यज्ञनिमित्तक श्राद्धमें धूरि और लोचन पार्व
णमें पुरुरवा, और आर्द्रवा इन विश्वदेवोंको नियुक्त करे ॥ ५० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत्तां प्राज्ञः पुत्रिका-
धर्मशंकया ॥ ५१ ॥ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥ अस्यां
यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥ ५२ ॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपे-
त्पुत्रिकासुतः ॥ द्वितीये तु पितुस्तस्यास्मृतीयं तत्पितुःपितुः ॥ ५३ ॥

जिस कन्याके भाई और पिता न हो, उस कन्याका पिता किस जातिका था यह कन्या
पुत्रिका है कि क्या यह शंका करके बुद्धिमान् मनुष्य उसके साथ विवाह न करे ॥ ५१ ॥
यद्यपि उस भाईहीन कन्याको मनुष्य अलंकृत करके यह कहकर दे कि “यह कन्या मैं
तुम्हें देता हूँ इसके जो पुत्र होगा वह मेरा होगा” जो इस प्रतिज्ञासे कन्या विवाही जाय उसे
पुत्रिका कहते हैं ॥ ५२ ॥ पुत्रिका कन्यासे उत्पन्न हुआ पुत्र पहले माताको पिंडदान करे,
दूसरा पिंड माताके पिताको दे, और तीसरा पिंड माताके बाबाको दे ॥ ५३ ॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितृन् ॥ अन्नदाता पुरोधाश्च भोक्ता च
नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥ अलाभे मृन्मयं दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥ घृतेन
प्रोक्षणं कार्य्यं मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥ ५५ ॥

जो मनुष्य श्राद्धके समय मट्टीके पात्रमें पितरोंको जिमांता है; उससे श्राद्धका कर्ता और
पुरोहित, तथा भोजन करनेवाला यह तीनों नरकको जाते हैं ॥ ५४ ॥ यदि पीतलआदिके
पात्र न हों तौ ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर मट्टीके पात्रमेंभी भोजन करावे; और मट्टीके पात्र
वासे छिडक छेनेपर वह पवित्र होजाते हैं ॥ ५५ ॥

श्राद्धं कृत्वापरश्राद्धे यस्तु भुंजीत विह्वलः ॥ पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिंडो-
दकक्रियाः ॥ ५६ ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति ॥
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनाः ॥ ५७ ॥ पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्य-
यनमैथुनम् ॥ दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत् ॥ ५८ ॥ अध्वगामी
भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः ॥ कर्मकृज्जायते दासः स्त्रीगमने च सुकरः ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करके दूसरेके यहां श्राद्धमें व्यालुल होकर भोजन करता है उसके
पितर लुप्तपिंड और लुप्तउदकक्रिय होकर नरकमें जाते हैं ॥ ५६ ॥ जो मनुष्य स्वयं श्राद्ध करके

या दूसरेके श्राद्धमें भोजन करके अधिकमार्ग चलताहै उसके पितर उस एक महीनेतक धूलि खातेहैं ॥ ५७ ॥ श्राद्ध करके दुबारा भोजन, मार्ग चलना, बोझ उठाना, पढ़ना, दान, प्रतिग्रह, हवन और मैथुन इन आठ कार्योंको त्यागदे ॥ ५८ ॥ श्राद्धमें खाकर जो मनुष्य अधिक मार्ग चलताहै वह थोड़ा होताहै, और जो दुबारा भोजन करताहै वह काक होताहै, और जो कर्म करताहै वह शूद्र होताहै, और जो स्त्रीसंसर्ग करताहै उसको सूकरकी योति मिलतीहै ॥ ५९ ॥

दशकृत्वः पिवेदापः सावित्र्या चाभिमंत्रिताः ॥

ततः सन्ध्यामुपासीत शुद्धयेत तदनन्तरम् ॥ ६० ॥

पूर्वोक्त कर्मोंको करनेवाला दसवार गायत्री पढ़ जल पिये और फिर सन्ध्योपासन करके शुद्ध होताहै ॥ ६० ॥

आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम् ॥

सर्वं तन्निष्फलं कुर्याज्जपं होमं प्रतिग्रहम् ॥ ६१ ॥

गौले वस्त्रोंको पहनकर अथवा घुटनोंसे दोनों हाथ बाहर करके जो जप, हवन और प्रतिग्रह किया जाताहै, वह उसका सब निष्फल होजाताहै ॥ ६१ ॥

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥ पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्पण्मासे

कृच्छ्रमेव च ॥ ६२ ॥ ऊनान्दिके द्विरात्रं स्यादेकाहः पुनरान्दिके ॥ श्रावे

मासं तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रं विधीयते ॥ ६३ ॥

नवश्राद्धमें भोजनकर चान्द्रायण व्रतकरै, मासिक श्राद्धमें जीमकर पराक व्रत करै और डेढ़ महीनेके श्राद्धमें और छैः महीनेके श्राद्धमें भोजन करके कृच्छ्र करै ॥ ६२ ॥ ऊतान्दिक-कमें त्रिरात्र, और वरसीमें एकदिन व्रत करै और शवके अशौचमें खानेवाला एकमहीनेतक व्रत करे; अथवा कृच्छ्र करना कहाहै ॥ ६३ ॥

सर्पविग्रहतानां च शृंगिदाष्टिसरीसृपैः ॥

आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥ ६४ ॥

जो ब्राह्मण सर्पके विपसे, या साँगवाले सरीसृप इनसे मृतक होगयाहो, जो अपनेसे त्याग-गयाहै इनका श्राद्ध न करै ॥ ६४ ॥

गोभिर्हतं तथोद्वह्यं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥

तं स्पृशन्ति च ये विप्रा गोजान्वाश्च भवंति ते ॥ ६५ ॥

जो मनुष्य गौके आघातसे मृतक होगयाहै और जो बंधनसे मरगयाहै, या ब्राह्मणद्वारा जो निहत हुआहै, इनके शवका जो स्पर्श करताहै वह दूसरे जन्ममें गौ, चकरो, घोडा इनकी योतिमें जन्म लेताहै ॥ ६५ ॥

अग्निदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये ॥ तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति मनुराह

प्रजापतिः ॥ ६६ ॥ त्र्यहमुष्णं पिवेदापरूपहमुष्णं पयः पिवेत् ॥ त्र्यह-

मुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ६७ ॥

उनके दाहका कर्ता और जो फाँसीका देनेवाला है, वह तप्तकृच्छ्र करनेसे शुद्ध होता है । यह मनुका वचन है ॥ ६६ ॥ तीन दिनतक गरम जल, तीन दिनतक गरम दूध, तीन दिनतक गरम घी, और तीन दिनतक वायुको भक्षण करके रहै ॥ ६७ ॥

गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥ यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मपा-
तकम् ॥ ६८ ॥ उद्यताः सह धावन्ते यद्येको धर्मधातकः ॥ सर्वे ते शुद्धि-
मृच्छन्ति स एको ब्रह्मधातकः ॥ ६९ ॥

गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, स्त्री, खेत, घर यदि इनको चुराले, और जिससे दुःखी होकर मनुष्य प्राणोंको त्यागदे उसीको ब्रह्महत्यारा कहते हैं ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य धर्म नष्ट करनेके उद्योगसे उद्यत होकर साथ २ जाता है उनमें जो मनुष्य एकका धर्म नष्ट करता है वह मनु-
ष्यही एकही ब्रह्महत्यारा और पापी है, और सब शुद्ध हैं ॥ ६९ ॥

पतितान्नं यदा भुंक्ते भुंक्ते चंडालवेश्मनि ॥

स मासार्द्धं चरेद्द्वारि मासं कामकृतेन तु ॥ ७० ॥

पतित मनुष्यके यहांका जो मनुष्य अन्नभोजन करे या चांडालके यहांका भोजन करे तो जो अज्ञानवासे भोजन किया हो तो पंद्रह दिनतक, और जानबूझकर खाया हो तो एकही महीनेतक जलपान करे ॥ ७० ॥

यो येन पतितेनैव स्पर्शं स्नानं विधीयते ॥

तैरेवोच्छिष्टसंपृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७१ ॥

जो मनुष्य जिस पतितका स्पर्श करनेपर स्नान करनेसे शुद्ध होता है यदि उसीको उच्छिष्टें दशमें स्पर्श किया हो तो प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होता है ॥ ७१ ॥

ब्रह्महा च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥

महान्ति पातकान्याहुस्तत्संस्र्गी च पंचमः ॥ ७२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमनकरने-
वाला; और इनकी संगति करनेवाला यह पांच महापातकी कहें हैं ॥ ७२ ॥

स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥

कर्षन्त्यनुग्रहं ये च तत्पापं तेषु गच्छति ॥ ७३ ॥

स्नेहके वशसे, वा लोभसे, वा भयसे, वा दयासे जो पापका प्रायश्चित्त नहीं कराते वह पाप उनकोही लगता है ॥ ७३ ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंपृष्टो ब्राह्मणस्तु कदाचन ॥

तत्क्षणात्कुरुते स्नानमाचामेन शुचिर्भवेत् ॥ ७४ ॥

यदि उच्छिष्ट मनुष्यके द्वारा उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श होजाय तो उसी समय स्नानकर
आचमन करनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ७४ ॥

कुब्जवामनवंदेषु गददेषु जडेषु च ॥ जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने

॥ ७५ ॥ क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा ॥ योगशास्त्राभियुक्ते च

न दोषः परिवेदने ॥ ७६ ॥

बढाभाई यद्यपि कुवडा, थिलंदिया, नपुंसक, तोतला, महामूर्ख, जन्मसे अंधा, बहुरा, गंगा हो तौ उसका विवाह न होनेपर छोटा भाई पहले विवाह करले तो इसमें दोष नहीं है ॥ ७५ ॥ छीव, देशांतरमें रहनेवाला, पतित, जिसने संन्यास धर्मको प्रदूषण करलिवाहो, और जो योगशास्त्रका अभ्यास करताहो ऐसे बडे भाईके हातेहुए छोटाभाई विवाह करले तौ कोई दोष नहीं है ॥ ७६ ॥

पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ॥

विक्रीणीत गजं चार्धं गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य कुए या बावडीको पाटवे, वृक्षोंको काटडाळे, हाथी या घोडेको बेचतारहे उसको गोवधका प्रायश्चित्त करना उचित है ॥ ७७ ॥

पादेङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥

तृतीये तु शिखावर्जं चतुर्थे तु शिखावपः ॥ ७८ ॥

जिस स्थलमें एक पादके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है वहां शरीरके सम्पूर्ण रोमोंको कटादे, और द्विपादमें डाढी मूंछोंका छेदनकरावे, और त्रिपादमें शिखाके अतिरिक्त सम्पूर्ण केशोंका और चतुर्थे पादमें शिखासहित मुंडन करावे ॥ ७८ ॥

चण्डालोदकसंस्पर्शं स्नानं येन विधीयते ॥ तैर्नवोच्छिष्टसंपृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७९ ॥ चण्डालस्पृष्टभांडस्य यत्तोयं पिबति द्विजः ॥ तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ८० ॥ यदि नोक्षिप्यते तोयं शरीरे तस्य जीर्यति ॥ प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ८१ ॥ चरेत्सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्रियः ॥ तदर्थं तु चरेद्देश्यः पादं शूद्रे तु दापयेत् ॥ ८२ ॥

चांडालके जलको छूकर स्नान करे; और उच्छिष्ट ब्राह्मण यदि चांडालके जलको छूले तौ प्राजापत्य व्रतकरे ॥ ७९ ॥ यदि कोई ब्राह्मण चांडालके घडेका या उसके यहांके पात्रमें जल पीले तौ जो उसी समय वमन करदे तौ वह प्राजापत्य व्रतकरे ॥ ८० ॥ और जो यदि वमन न करे और वह पचलाय तौ सांतपन कृच्छ्र करे प्राजापत्य करना ठीक नहीं ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण सांतपन, क्षत्रिय प्राजापत्य, वैश्य आधा प्राजापत्य करे; और शूद्रजाति चौथाई प्राजापत्य करे ॥ ८२ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना सूकरवायसैः ॥ उपोष्य रजनीभिकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥ अज्ञानतः स्नानमात्रमा नाभेस्तु विशेषतः ॥ अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यात्तदीयस्पर्शने मतम् ॥ ८४ ॥

यदि रजस्वला स्त्रीको कुत्ता, सूकर और काक यह छूले तौ एक रात्रि उपवास करे पंचगव्यके पीनेसे शुद्ध होतीहै ॥ ८३ ॥ यदि रजस्वला स्त्री अज्ञानसे किसीको नाभितक छूले तौ स्नान करनेसेही उसकी शुद्धि है, और नाभिसे ऊपर स्पर्शकरनेपर तीनरात उपवास करना उचित है ॥ ८४ ॥

वालश्चैव दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥

सद्य एव विशुद्ध्येत नाशौचं नोदकक्रिया ॥ ८५ ॥

बालक यदि जन्मदिनसे दशदिनके बीचमेंही मरजाय; तौ उसी समय शुद्धि होजातीहै उसका अशौच और जलदान नहीं होता ॥ ८५ ॥

शावसूतक उत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् ॥

शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥ ८६ ॥

यदि मरणसूतकमें जन्मसूतक होजाय तौ शेषदिनोंसे ही जन्मसूतककी शुद्धि होतीहै, और जन्मसूतकके दिनोंसे मरणसूतक निवृत्त नहीं होता ॥ ८६ ॥

षष्ठेन शुद्धयेतैकाहं पंचमे द्वयहमेव तु ॥

चतुर्थे सप्तरात्रं स्यात्त्रिपुरुषे दशमेऽहनि ॥ ८७ ॥

छठी पीढीमें एक दिनका, पांचवी पीढीमें दो दिनका, चौथीमें सातदिनका और तीसरीमें दशदिनका सूतक होताहै ॥ ८७ ॥

मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः ॥

आ दाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥ ८८ ॥

जा ब्राह्मण अग्निहोत्री नहींहै उसे मरणके दिनसेही अशौच लगताहै; और जो वेदोक्त अग्निहोत्र करताहै उसको दाहपर्यंतही अशौच लगताहै ॥ ८८ ॥

आमं मांस घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥

अन्यभांडस्थिता ह्येते निष्क्रांताः शुचयः स्मृताः ॥ ८९ ॥

कच्चा मांस, घृत, सहज, फलसे उत्पन्न स्नेहद्रव्य अर्थात् वादामका तेल इत्यादि यह अन्य मनुष्यके पात्रमेंसे अपने पात्रमें आनेसे शुद्ध होजातेहैं ॥ ८९ ॥

मार्जनीरजसा सक्ते स्नानवस्त्रघटोदके ॥

नवांभसि तथा चैव हंति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ९० ॥

मार्जनीके मुखसे निकलीहुई धूरि यदि स्नानके जलमें या वस्त्रके जलमें या घटके जलमें, वा नये जलमें लगजाय तौ प्रथम कियेहुए पुण्य उसी समय नष्ट होजातेहैं ॥ ९० ॥

दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिषु सक्तुषु ॥

धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥ ९१ ॥

दिनमें कैथके वृक्षकी छायामें, रात्रिमें दही और सत्तूमें और सर्वदा आमलेके फलोंमें अलक्ष्मी निवास करतीहै ॥ ९१ ॥

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥

तत्रतत्र तिलैर्होमं गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ १४ ॥

ब्राह्मण जिस २ कार्यमें अपनेको संकीर्ण (पतित) विचारै उसी २ कार्यमें तिलोंसे हवन और आठसौ गायत्रीका जपकरै ॥ ९२ ॥

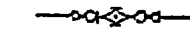
इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्तधर्मशास्त्रभाषाटीका सम्पूर्णा ॥ १४ ॥

इति लिखितस्मृतिः समाप्ता ॥ १४ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ दक्षस्मृतिः १५.

भाषाटीकासमेता ।



प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ दक्षस्मृतिप्रारंभः ॥ सर्वज्ञास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदवि-
दां वरः ॥ पारगः सर्वविद्यानां दक्षोनाम प्रजापतिः ॥ १ ॥
सम्पूर्ण धर्म और अर्थोंके जाननेवाले, सम्पूर्ण वेद और वेदके अंगोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ,
सम्पूर्ण विद्याओंके पारको जाननेवाले दक्षनामक प्रजापति हुए ॥ १ ॥

उत्पत्तिः प्रलयश्चैव स्थितिः संहार एव च ॥ आत्मा चात्मनि तिष्ठेत् आत्मा
ब्रह्मण्यवस्थितः ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एतेषां
तु हितार्थाय दक्षः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ३ ॥

उत्पत्ति, प्रलय, रक्षा और संहार इनके करनेमें सामर्थ्यवान् जो आत्मा है वही दक्षके
देहमें स्थित था; और उनका मन ब्रह्ममें स्थित था ॥ २ ॥ उन्हीं दक्षने ब्रह्मचारी, गृहस्थी,
वानप्रस्थ, संन्यासी इन चारों वर्णोंके हितके निमित्त दक्षनामक धर्मशास्त्रको निर्माणकिया ॥ ३ ॥

जातमात्रः शिशुस्तावद्यावदष्टौ समा वयः ॥ स हि गर्भसमो ज्ञेयो व्यक्तिसा-
त्रप्रदर्शितः ॥ ४ ॥ भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये ऋतानृते ॥ अस्मिन्ना-
ले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते ॥ ५ ॥ उपनीते तु दोषोस्ति क्रियमा-
णोर्विगर्हितैः ॥

जवतक बालककी आठ वर्षकी अवस्था न होजाय तबतक बालकको उत्पन्नहुए बालककी
समान जाने, वह बालक गर्भस्थित बालककी समान है; उसका एक आकार मात्रही है
॥ ४ ॥ जवतक बालकका जनेऊ न हो तबतक भक्ष्य; अभक्ष्य, पेय, अपेय, सत्य और
असत्य इंस बालकको दोष नहींहै ॥ ५ ॥ यज्ञोपवीत होजानेपर निश्चित कर्म करनेसे पापका
भाग होताहै;

अप्राप्तव्यवहारोऽसौ बालः षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥ स्वीकरोति यदा वेदं चरे-
द्भेदव्रतानि च ॥ ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो भवेद्गृही ॥ ७ ॥ द्विविधो
ब्रह्मचारी स्यादुपलुर्वाणको ह्यथ ॥ द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेव व्रते
स्थितः ॥ ८ ॥

जवतक सोलह वर्षकी अवस्था न हो तबतक व्यवहारका अधिकारी नहीं होता ॥ ६ ॥
जवतक वेदको पढ़े, और वेदोक्त व्रतको करे तबतक वह ब्रह्मचारी कहाताहै, इसके पीछे
स्नान्तक होकर गृहस्थी होताहै ॥ ७ ॥ (पंडितोंने शास्त्रमें अनेक प्रकारके ब्रह्मचारी कहेहैं)

परन्तु ब्रह्मचारी दो प्रकारके हैं एक तौ उपकुर्वाणक, दूसरा नैष्ठिक, जो जन्मभरतक ब्रह्मचर्यके ब्रतमेंही स्थित रहै ॥ ८ ॥

यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः ॥

न यतिर्न वनस्थश्च स सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य प्रथम गृहस्थाश्रममें स्थित होकर फिर ब्रह्मचारी होताहै; और जो वतीभी नहींहै और वानप्रस्थभी नहींहै वह सम्पूर्ण आश्रमोंसे भ्रष्ट है ॥ ९ ॥

अनाश्रमी न तिष्ठेत्त दिनमेकमपि द्विजः ॥ आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥ १० ॥ जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये च रतः सदा ॥ नासौ फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमाच्च्युतः ॥ ११ ॥

ब्राह्मण एकदिनभी आश्रमसे हीन होकर न रहै कारण कि आश्रमशून्य होनेपर प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ १० ॥ आश्रमरहित होकर जप, हवन, दान, और वेदपाठ इत्यादि द्विज जो कुछ कर्म करैगा उसका फल नहीं होगा ॥ ११ ॥

त्रयाणामानुलोम्यं हि प्रातिलोम्यं न विद्यते ॥

प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्यसः ॥ १२ ॥

ब्रह्मचर्य, गृहस्थआश्रम, वानप्रस्थआश्रम, इन तीनों आश्रमोंका अनुलोम्य है और प्रातिलोम्य नहींहै, इससे जो प्रातिलोम्यसे वर्तताहै उससेपरे अत्यन्त पापकाकर्ता कोई नहींहै ॥ १२ ॥ मेखलाजिनदंडैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ॥ गृहस्थो दानवेदाद्यैर्नखलोमैर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥ त्रिदंडेन यतिश्चैव लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती वनाश्रमी ॥ १४ ॥

मेखला, मृगचर्म, दंड इनसे ब्रह्मचारी और गृहस्थी दान और वेद इत्यादिसे अनुलोम कर्मोंद्वारा वानप्रस्थ विदित होताहै ॥ १३ ॥ संन्यासी तीन दंडोंसे लक्षित होता है चारों आश्रमोंके यह पृथक् लक्षण हैं, जिस वानप्रस्थके यह लक्षण नहीं हैं वह प्रायश्चित्तके योग्य है ॥ १४ ॥

उक्तं कर्म क्रमो नोक्ती न काल ऋषिभिः स्मृतः ॥

द्विजानां च हितार्थाय दक्षस्तु स्वयमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इति दाक्षे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऋषियोंन कर्म कहाहै परन्तु क्रम और काल नहीं कहा; यह सम्पूर्ण कार्य द्विजोंके हितके निमित्त दक्षमुनिने स्वयं कहेहैं ॥ १५ ॥

इति दक्षस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्विजेन दिने दिने ॥

तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ १ ॥

प्रातिदिन प्रातःकाल उठकर द्विजोंको जो कर्म करना चाहिये वह उपकारी कर्म मैं सब कहताहूँ ॥ १ ॥

उदयास्तमितं यावन्न विप्रः क्षणिको भवेत् ॥ नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चा-
न्यैरगर्हितैः ॥ २ ॥ संध्याद्यं वैश्वदेवांतं स्वकं कर्म समाचरेत् ॥ स्वकं कर्म
परित्यज्य यदन्यकुरुते द्विजः ॥ ३ ॥ अज्ञानादथवा लोभात्स तेन पतितो
भवेत् ॥ दिवसस्याद्यभागे तु कर्म तस्योपदिश्यते ॥ ४ ॥ द्वितीये च तृतीये
च चतुर्थे पंचमे तथा ॥ षष्ठे च सप्तमे चैव अष्टमे च पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥
विभागेष्वेव यत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥

ब्राह्मणगण सूर्यदेवके उदयसे अस्ततक नित्यकार्य, नैमित्तिककार्य और अन्य प्रकारके
अनिष्ट काम्यकर्मको त्यागकर, क्षणकालभी न वितावे ॥ २ ॥ जो ब्राह्मण सन्ध्या, बलि
वैश्वदेव इत्यादि अपने कर्मोंको त्यागकर अन्य वर्णका कर्म करताहै ॥ ३ ॥ अज्ञान अथवा
लोभसे वह ब्राह्मण उस अन्यकर्मके करनेसे पतित होजाताहै, और ब्राह्मणको दिनके पहले
भागमें जो कर्म करना कहाहै ॥ ४ ॥ और दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें और
आठवें भागमें पृथक् २ ॥ ५ ॥ इन भागोंमें जो कर्म कहाहै उन सबको कहताहूँ;

उषःकाले च सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् ॥ ६ ॥ ततः स्नानं प्रकुर्वीत
दन्तधावनपूर्वकम् ॥ अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ॥ ७ ॥ स्रव-
त्येष दिवा रात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥ क्लिद्यन्ति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि
स्रवन्ति च ॥ ८ ॥ अंगानि समतां यांति उत्तमान्यधमैः सह ॥ नानास्वेद-
समाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ॥ ९ ॥ अस्नात्वा नाचरोर्किञ्चिजपहोमादिकं
द्विजः ॥ प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ॥ १० ॥ सप्तजन्मकृतं
पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥ उपस्युषसि यत्स्नानं संध्यायासुदिते रवौ ॥ ११ ॥
प्राजापत्येन तनुल्यं महापातकनाशनम् ॥ प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि
तत् ॥ १२ ॥ सर्वमर्हति पृतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥ १३ ॥ गुणा
दश स्नानपरस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः ॥ आरोग्यमायुश्च मनो-
नुरुद्धदुःस्वप्नघातश्च तपश्च मेधा ॥ १४ ॥

जिससमय प्रातःकाल होजाय तब यथार्थ शौचकरके ॥ ६ ॥ दंतधावनके उपरान्त स्नान
करै, नौ छिद्रोंसे युक्त और अत्यन्तमलीन यह शरीर है ॥ ७ ॥ दिन और रात मलमूत्र
इसमेंसे झरताहै, प्रातःकालके स्नानकरनेसे इस शरीरकी शुद्धि होतीहै, जब मनुष्य सोजा-
ताहै, उससमय इन्द्रियें ग्लानिको प्राप्तहोतीहैं, और झरतीहैं ॥ ८ ॥ उत्तम मध्यम सभी अंग
एक होजातेहैं; और सोनेसे उठाहुआ मनुष्य विविध भौतिके पसीनोंसे पूर्ण होजाताहै ॥ ९ ॥
ब्राह्मण बिना स्नानक्रिये कभी जप और हवनआदि न करे, जो द्विज प्रातःकालही उठकर
स्नान करताहै ॥ १० ॥ उसके सात जन्मके क्रियेद्वारा पाप तीन दिनमेंही नष्ट होजातेहैं
प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर सन्ध्याके समयका जो स्नान है ॥ ११ ॥ वह प्राजापत्य
व्रतके समान महापापोंका नाश करनेवाला है; प्रातःकालका स्नान इसलोक और परलोकमें
सुखका देनेवाला है, उसकी प्रशंसा सभी करतेहैं ॥ १२ ॥ प्रातःकालका स्नान कर मनुष्य-
देहकी पवित्रतासे सम्पूर्ण जपहोमआदिके करनेका अधिकारी होताहै ॥ १३ ॥ जो सज्जन

पुरुष स्नानमें तत्पर होता है उसमें यह दशगुण विद्यमान होते हैं; रूप, पुष्टता, बल, तेज, आरोग्य, अवस्था, दुःस्वप्नका नाश, घातुकी वृद्धि, तप और बुद्धि ॥ १४ ॥

ज्ञानादनंतरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते ॥ अनेन तु विधानेन स्वाचांतः शुचिता-
मियात् ॥ १५ ॥ प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च त्रिः पिवेदंबु वीक्षितम् ॥ संवृत्पांगु-
ष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ १६ ॥ संहत्य तिस्राभिः पूर्वमास्यमेवमुप-
स्पृशेत् ॥ ततः पादौ समभ्युक्ष्य अंगानि समुपस्पृशेत् ॥ १७ ॥ अंगुष्ठेन
प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादुपस्पृशेत् ॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः
॥ १८ ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥ सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद्वाह
चाग्रेण संस्पृशेत् ॥ १९ ॥ संध्यायां च प्रभाते च मध्याह्ने च ततः पुनः ॥ २० ॥
हृद्भाभिः प्रयते विप्रः कंठगामिश्च भूमिपः ॥ वैश्यः प्राशितयात्राभिर्जिह्वागो-
भिः स्त्रियोग्निजाः ॥ २१ ॥

फिर स्नानके उपरान्त आचमन करै; इस विधिके अनुसार आचमन करनेसे मनुष्य पवित्र होजाता है ॥ १५ ॥ पहले दोनों हाथ और दोनों पैरोंको धोकर तीनवार जलको देखकर पियै; फिर अंगूठेकी जडसे तीनवार मुखको पोंछे ॥ १६ ॥ और तीनअंगुली मिलाकर प्रथम मुखका स्पर्श करै; इसके पीछे पैरोंको छिड़ककर अंगोंका स्पर्शकरै ॥ १७ ॥ अंगूठे और प्रदेशिनीसे नासिकाका स्पर्शकरै; इसके पीछे अंगूठे और अनामिकासे वारंवार नेत्र और कानोंका स्पर्श करै ॥ १८ ॥ अंगूठे और कनिष्ठिकासे नाभिका और हाथके तलसे हृदयका स्पर्शकरै, सम्पूर्ण अंगुलियोंसे शिरका, और हाथके अग्रभागसे भुजाओंका स्पर्शकरै ॥ १९ ॥ संध्याके समय, प्रातःकाल और मध्याह्नके समयमें पूर्वोक्त आचमनकरै ॥ २० ॥ हृदयतक आचमनका जल पहुंचनेसे ब्राह्मण, कंठतक पहुंचनेसे क्षत्रिय, प्राशितमात्र जल पहुंचनेसे वैश्य, और जिह्वातक जलके स्पर्शसे स्त्री और शूद्र पवित्र होते हैं ॥ २१ ॥

संध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥ स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः
श्वा चैव जायते ॥ २२ ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ यदन्य-
त्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ २३ ॥ संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधी-
यते ॥ स्वयं होमं फलं यत्तुं तदन्येन न जायते ॥ २४ ॥ ऋत्विक्पुत्रो गुरुर्भ्रा-
ता भागिनेयोऽथ विद्वपतिः ॥ एभिरेव हुतं यत्तु तद्हुतं स्वयमेव तु ॥ २५ ॥
देवकार्यं ततः कृत्वा गुरुमंगलमीक्षणम् ॥ देवकार्यस्य सर्वस्य पूर्वाह्निं तु विधी-
यते ॥ २६ ॥ देवकार्याणि पूर्वाह्निं मनुष्याणां तु मध्यमे ॥ पितृणामपराह्निं
तु कार्याण्येतानि यन्नतः ॥ २७ ॥ पौर्वाह्निकं तु यत्कर्म यदि तत्सायमाचरेत् ॥
न तस्य फलमाप्नोति बंध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ २८ ॥ दिवसस्याद्यभागे तु
सर्वमेतद्विधीयते ॥ द्वितीये चैव भागे तु वेदाभ्यासो विधीयते ॥ २९ ॥

जो ब्राह्मण सन्ध्या उपासना नहीं करता वह जीताहुआही शूद्र है; और मरकर वह कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है ॥ २२ ॥ सन्ध्याहीन मनुष्य नित्य अशुद्ध है, और वह सम्पूर्ण कर्मोंके अयोग्य है, वह जो कुछ कर्म करता है उसका फल उसे नहीं मिलता ॥ २३ ॥

सन्ध्याके उपरान्त स्वयं हवन करना कहाँ; कारण कि जो फल स्वयं होम करनेका है वह दूसरेसे करानेसे नहीं मिलता ॥ २४ ॥ ऋत्विजका पुत्र, गुरुभार्य, भानजा, और राजा इन्होंने जो हवन किया है वह स्वयं कियेही की समान है ॥ २५ ॥ सन्ध्या उपासना करने उपरान्त होम और देवपूजा करके गुरुकी पूजा और मंगलद्रव्योंका दर्शन करे; और देवकार्य मध्याह्ने पहलेही करना कहाँ ॥ २६ ॥ देवकार्य पूर्वाह्णमें, मनुष्योंके कार्य मध्याह्णमें, और पितरोंके कार्य मध्याह्ने पीछे यज्ञसहित करे ॥ २७ ॥ पूर्वाह्णमें कर्तव्य कर्मको जो मनुष्य सायंकालमें करता है वह उसके फलको प्राप्त नहीं होता, जिस भाँति वंश्यान्त्रीके भैरुनसे फल प्राप्त नहीं होता ॥ २८ ॥ दिनके प्रथम भागमें सन्ध्या इत्यादि सन्पूर्ण कर्मको कर दूसरे भागमें वेदको पढ़े ॥ २९ ॥

वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते ॥ ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडंगसहितस्तु यः ॥ ३० ॥ वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोभ्यसनं जपः ॥ प्रदानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥ ३१ ॥ सनित्युष्पकुशादीनां स कालः ससुदाहृतः ॥

ग्राहणोंको षडंगसहित वेदशास्त्रका अभ्यास पंचयज्ञकी सनान है, और चढ़ी महातप है ॥ ३० ॥ प्रथम वेदका अभ्यास पांच प्रकारका है, एक तो गुरुके मुखसे वेदको सुना, दूसरा वेदका विचार, तीसरा अभ्यास, चौथा जप, पांचवां शिष्योंको पढ़ाना ॥ ३१ ॥ समिधें, पुष्प, कुशा इत्यादिका संग्रह दूसरे भागमें करे,

तृतीये चैव भागे तु पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ३२ ॥ माताः पिता गुरुभार्या प्रजा दीनः समाश्रितः ॥ अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३३ ॥ ज्ञातिर्वैयुजः क्षीणस्तथाऽनाथः समाश्रितः ॥ अन्योऽप्यधनयुक्तश्च पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३४ ॥ सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्तव्यं तु विशेषतः ॥ ज्ञानविद्वयः प्रदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥ नरकः पीडने तस्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत् ॥ ३६ ॥ स जीवति य एवंको बहुभिश्चोपजीव्यते ॥ जीवंतो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरंभराः ॥ ३७ ॥ बह्वर्थं जीव्यते कैश्चित्कुटुंबार्थं तथा परैः ॥ आत्मार्येभ्यो न शक्नोति स्वोदरेपापि दुःखितः ॥ ३८ ॥ दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥ अदत्तदाना जायते परभाग्योपजीविनः ॥ ३९ ॥ यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यज्जुहोषि दिने दिने ॥ तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥ ४० ॥

तीसरे भागमें पोष्यवर्ग और अर्थकी चिन्ता करनी कर्तव्य है ॥ ३२ ॥ माता, पिता, गुरु, स्त्री, संतान, दीन, समाश्रित, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि इनको पोष्यवर्ग कहाँ ॥ ३३ ॥ तथा जाति, वंशु, असमर्थ, अनाथ, समाश्रित और धनी इन्हेंभी पोष्यवर्ग कहाँ ॥ ३४ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके निमित्त अन्नआदि वनावे, और ज्ञानवान् मनुष्यको दे, जो इसके विपरीत करता है वह नरकमें जाता है ॥ ३५ ॥ पोष्यवर्गके पालन करनेसे उत्तम-

स्थान स्वर्गकी प्राप्ति होती है, और पोष्यवर्गको पीडित करनेसे नरकमें जाता है, इसकारण यत्नसहित पोष्यवर्गका पालन करै ॥ ३६ ॥ उसी मनुष्यका जीवन सार्थक है, जो कि बहुतांशका जीवनमूल है; और जो केवल अपनेही उदरभरनेमें आसक्त हैं वह जीतेहुएभी मृतककी समान हैं ॥ ३७ ॥ कोई मनुष्य तो बहुतांशके लिये ही जीवन धारण करते हैं; और कोई मनुष्य केवल अपने कुटुम्बके लिये जीवन धारण करते हैं और कोई अपने उदर भरनेके लियेही दुःखी होकर अपने पालनमेंभी समर्थ नहीं होते ॥ ३८ ॥ इसकारण अपनी वृद्धिकी इच्छा करनेवाला दीन, अनाथ और सज्जन इनको दान दे; कारण कि जिन्होंने दान नहीं दिया है वह पराये भाग्यसेही जीविका निर्वाह करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥ जो बुद्धिमान् और सज्जनको दान करता है, जो प्रतिदिन हवन करता है वह धन्य है; और उसीको मैंभी धन्य मानता हूँ; जो धन दान वा हवनमें नहीं लगाता वह मनुष्य धनकी रक्षा करनेवाला है ॥ ४० ॥

चतुर्थे तु तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् ॥ तिलपुष्पकुशादीनि स्नानं चाकृत्रि-
मे जले ॥ ४१ ॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ॥ तेषां मध्ये
तु यन्नित्यं तत्पुनर्विद्यते त्रिधा ॥ ४२ ॥ मलापकर्षणं पश्चान्मंत्रवस्तु जले
स्मृतम् ॥ संध्यास्नानमुभाभ्यां तु स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥ मार्जनं
जलमध्ये तु प्राणायामो यतस्ततः ॥ उपस्थानं ततः पश्चाद्वायत्रीजप उच्यते
॥ ४४ ॥ सविता देवता यस्य मुखमभिस्त्रिपात्स्यता ॥ विश्वामित्र ऋषिश्छं-
दो गायत्री सा विशिष्यते ॥ ४५ ॥

दिनके चौथे भागमें स्नानके निमित्त जल, तिल, फल और कुशा आदि लावै और नदी-
आदिके अकृत्रिम जलमें स्नान करै ॥ ४१ ॥ स्नान तीनप्रकारका कहा है; नित्य जो प्रतिदिन
किया जाता है, नैमित्तिक जो सूर्यग्रहण वा चन्द्रग्रहण इत्यादिमें किया जाता है, और काम्य
जो स्वर्गादिकी कामनासे किया जाता है ॥ ४२ ॥ नित्य स्नानभी तीनप्रकारका है, जिस
स्नानमें सम्पूर्ण शरीरका मूल धुलजाय इसका नाम मलापहरण स्नान है, इसके पीछे जलमें
संकल्प करके मंत्रोंसहित जो स्नान किया जाता है यह दूसरा है; दोनों रीतिसे जो सन्ध्यामें
स्नान किया जाता है यही तीनप्रकारका स्नान हुआ ॥ ४३ ॥ जलके बीचमें मार्जन करै,
प्राणायाम करै इसके पीछे स्तुतिकर गायत्रीका जपकरै ॥ ४४ ॥ जिस गायत्रीके
सूर्य देवता हैं, मुख आग्नि, विश्वामित्र ऋषि, और त्रिपाद गायत्री छन्द है, वह गायत्री
सर्वोत्तम है ॥ ४५ ॥

पंचमे तु तथा भागे संविभागो यथार्थतः ॥ पितृदेवमनुष्याणां कीटानां चोप-
दिश्यते ॥ ४६ ॥ देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ॥ गृहस्थः प्रत्यहं
यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥ ४७ ॥ त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनि-
रुच्यते ॥ सीदमानेन तेनैव सीदंतीहेतरे त्रयः ॥ ४८ ॥ मूलत्राणे भवेत्स्कंधः
स्कन्धाच्छाखेति पल्लवाः ॥ मूलैर्नैव विनष्टेन सर्वमेतद्दिनश्यति ॥ ४९ ॥ तस्मा-
त्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी ॥ राज्ञा चान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च

सर्वदा ॥ ५० ॥ गृहस्थोपि क्रियायुक्तो गृहेण न गृही भवेत् ॥ नचैव पुत्र-
दारेण स्वकर्मपरिवर्जितः ॥ ५१ ॥ अहुत्वा च तथा जप्त्वा अद्वया यश्च
भुंजते ॥ देवादीनामृणी भूत्वा दरिद्रश्च भवेन्नरः ॥ ५२ ॥ एक एव हि
भुंक्तेनमपरोन्नेनभुज्यते ॥ नभुज्यते स एवैको यो भुंक्ते तु समांशकम् ॥ ५३ ॥
विभागशीलो यो नित्यं क्षमायुक्तो दयालुकः ॥ देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स
तु धार्मिकः ॥ ५४ ॥ दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ॥ गुणा
यस्य भवन्त्येते गृहस्थो मुख्य एव सः ॥ ५५ ॥ संविभागं ततः कृत्वा गृहस्थः
शेषभुग्भवेत् ॥ भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ॥ ५६ ॥

दिनके पांच भागमें यथायोग्य विभाग करे; पितृ, देवता, मनुष्य और कीट पतंग इनका
विभाग करे; यह दृष्ट कृषिने कहा है ॥ ४६ ॥ देवता, मनुष्य और कीट पतंग यह प्रतिदिन
गृहस्थीद्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, इसकारण गृहस्थाश्रमही श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ तीनों
आश्रमोंकी चोनि गृहस्थीकोही कहा है, संसारमें उसके दुःखी रहनेसे अन्य आश्रमीभी
दुःखी होजाते हैं ॥ ४८ ॥ जिस भांति वृक्षकी जड़की रक्षाकरनेसे डाली और डालियोंमें
पत्ते होजाते हैं; और एक जड़के नाश होनेसेही सब नष्ट होजाते हैं ॥ ४९ ॥ इसकारण यज्ञ-
सहित गृहस्थीकी रक्षा और उसकी पूजा तथा सर्वश मान राजा और तीनों आश्रमी करें
॥ ५० ॥ कर्ममें पराचण गृहस्थी घरमें रहनेसेही गृहस्थी नहीं होता, अर्थात् घर उसका
बन्धन नहीं है; और जो गृहस्थी अपने कर्मसे हीन है वह भी पुत्रसे गृहस्थी नहीं होता, अर्थात्
पुत्र इत्यादि उसके नरकमें सहायक नहीं होते ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य हवन और जपके बिना
किये भोजन करते हैं वह देवता और मनुष्य आदिके ऋणीहोकर दरिद्री होते हैं ॥ ५२ ॥
कोई मनुष्य तौ अन्न खाते हैं और किसी मनुष्यको अन्नही खाता है; जो देवता आदिको
भागदेकर खाता है केवल उसीको अन्न नहीं खाता ॥ ५३ ॥ जिसका स्वभाव बांटकर खाने-
का है; जिसमें क्षमा और दया है वा जो देवता और अतिथियोंका भक्त है वह गृहस्थीही
धार्मिक है ॥ ५४ ॥ दया, लज्जा, क्षमा, श्रद्धा, बुद्धि, त्याग, कृतज्ञता इतने गुण जिसमें
विद्यमानहों वही दयार्थ गृहस्थी है ॥ ५५ ॥ गृहस्थीको उचित है सबको बांटकर पीछे आप
भोजनकर आनन्दसहित उस अन्नको पचावे ॥ ५६ ॥

इतिहासपुराणाद्यैः पष्टं वा सप्तमं नयेत् ॥ अष्टमे लोकयात्रा तु वहिःसंभ्या ततः
पुनः ॥ ५७ ॥ होमं भोजनकृत्यं च यच्चान्यद्गृहकृत्यकम् ॥ कृत्वा चैवं ततः
पश्चात्स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ॥ ५८ ॥ प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाम्यासेन तौ
नयेत् ॥ यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५९ ॥

दिनका छठा वा सातवां भाग इतिहास और पुराणादिके पाठसे विवाच; लोककी यात्रा
आठवें भागमें करे; इसके पीछे सन्ध्या करनेको बाहर जाय ॥ ५७ ॥ फिर हवन, भोजनादि
तथा जो कुछ घरका काम काज हो उसको समाप्तकर इसप्रकार कुछ पढ़े ॥ ५८ ॥ प्रदोषके
पहले पीछले दोनों पहरोंको वेदाभ्याससे व्यतीत करे, और दोपहर शयनकरे, जो द्विज
इसभांति आचरण करता है वह ब्रह्मपदको प्राप्तहोता है ॥ ५९ ॥

नैमित्तिकानि कर्माणि निपतन्ति यथायथा ॥ तथातथा तु कार्याणि न कालस्तु विधीयते ॥ ६० ॥ यस्मिन्नेव प्रयुजानो यस्मिन्नेव प्रलीयते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वाध्यायं च समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥

नैमित्तिक या काम्यकर्म जिस समय जिसभांति उपस्थित हो उसे वसी भावसे निर्वाह करै, स्वस्थकालकी प्रतीक्षा न करै ॥ ६० ॥ वेदके अभ्यासमें लगकर वेदमेंही लीन होजा-
ताहै; इसकारण यत्नपूर्वक वेदका अभ्यासकरना उचित है ॥ ६१ ॥

सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत् ॥

भुजानश्च शयानश्च ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ६२ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सर्वदा मध्यके दोनों पहरोमें हवनसे बचाहुआ जो घृत और भात है उसकाही भोजनकरै,
यथासमय भोजन और शयन करनेसे ब्राह्मण कभी दुःखी नहीं होता ॥ ६२ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सुधा नव गृहस्थस्य ईषदानानि वै नव ॥ नव कर्माणि च तथा विकर्माणि नवैव तु ॥ १ ॥ प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि पुनर्नव ॥ सफलानि नवान्यानि निष्फलानि तथा नव ॥ २ ॥ अदेयानि नवान्यानि वसुजातानि सर्वदा ॥ नवका नव निर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥ ३ ॥

गृहस्थीको नौ अमृत, नौ ईषत्दान, नौ कर्म और नौ विकर्म कहेहैं ॥ १ ॥ और नौ गुप्त, नौ प्रकाशके योग्य, नौ सफल और नौ निष्फल हैं ॥ २ ॥ सर्वदा नौ वस्तु अदेय हैं, यही नौ वस्तु गृहस्थीकी उन्नतिका कारण हैं ॥ ३ ॥

सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ॥ मनश्चक्षुर्मुखं वाचं सौम्यं दत्त्वा चतु-
ष्टयम् ॥ ४ ॥ अभ्युत्थानमिहागच्छ पृच्छालापः प्रियान्वितः ॥ उपासनमनुव्रज्या
कार्याण्येतानि नित्यशः ॥ ५ ॥

अब नौ सुधावस्तुओंको कहताहूँ; यदि सज्जन पुरुष अपने घरपर आवे तौ मन, नेत्र, मुख, वाणी इन चारोंको सौम्य रखै ॥ ४ ॥ इसके पीछे देखतेही चट खड़ाहो आनेका कारण पूछे, प्रीतिसहित वार्तालाप करै, सेवाकरै, चलते समय पीछे २ कुछ दूर चलै, इसभांति नौओंको प्रतिदिन करै ॥ ५ ॥

ईषदानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ॥ पादशौचं तथाभ्यंग आश्रयः
शयनानि च ॥ ६ ॥ किंविदद्याद्यथाशक्ति नास्यानश्नगृहे वसेत् ॥ मृज्जलं
चाथने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥ ७ ॥

और यह नौ ईषत् (तुच्छ) ९ दान हैं; भूमि, जल, तृण, पैरधोना, डबटन, आश्रय, शय्या, ॥ ६ ॥ और अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा २ दे, कारण कि विना भोजनके

गृहस्थीके घरमें निवास नहीं है; और अतिथिको मट्टी वा जल दे यह नौ द्रवदान घरमें सर्वदा होते हैं ॥ ७ ॥

संख्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायौ देवतार्चनम् ॥ वैश्वदेवं क्षमातिथ्यमुद्धृतं चापि शक्तितः ॥ ८ ॥ पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् ॥ गुरुमातृपितृणां च संविभागो यथार्हतः ॥ ९ ॥ एतानि नव कर्माणि

संख्या, स्नान, जप, होम, वेदपाठ, देवताका पूजन, बलि वैश्वदेव, अपनी शक्तिके अनुसार अन्न देकर अतिथिका सत्कार, ॥ ८ ॥ और पितर, देवता, मनुष्य, दीन, अनाथ, तपस्वी, गुरु, माता, पिता इन सबका यथारीतिसे विभाग ॥ ९ ॥ यह नौ कर्म हैं;

विकर्माणि तथा पुनः ॥ १० ॥ अनृतं पारदार्यं च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥ अगम्यागदनापेयपानं स्तेयं च हिंसनम् ॥ ११ ॥ अश्रौतकर्माचरणं मैत्रधर्म-वहिष्कृतम् ॥ नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ १२ ॥

और यह नौ विकर्म हैं ॥ १० ॥ कि झूठ, पराई स्त्री, अमक्ष्यका भक्षण, अगम्यस्त्रीमें गमन, पीनेके अयोग्य वस्तुका पान, चोरी, हिंसा ॥ ११ ॥ वेदरहित कर्मोंका करना, मैत्रधर्मसे बाह्य रहना, यह नौ कर्म निन्दित हैं इन सबको त्यागदे ॥ १२ ॥

पेशुन्यमनृतं माया कामः क्रोधस्तथाऽप्रियम् ॥ द्वेषो दंभः परद्रोहः

और चुगली, झूठ, माया, काम, क्रोध, अप्रिय, द्वेष, दंभ, दूसरोंसे द्रोह, ये भी नौ विकर्म-ही हैं. इन सबको भी त्यागदे;

प्रच्छन्नानि तथा नव ॥ १३ ॥ आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रो भैरुनभेपजे ॥ तपो दानापमानौ च नव गोप्यानि सर्वदा ॥ १४ ॥

नौ प्रच्छन्न ये हैं कि, ॥ १३ ॥ अवस्था, धन, घरका छिद्र, मन्त्र, भैरुन, भेपज, तप, दान, अपमान यह नौ सर्वदा छिपाने योग्य हैं ॥ १४ ॥

प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रयाः ॥ कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहःपापम-कुत्सनम् ॥ “प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा” ॥ १५ ॥

और प्रायोग्य कर्म (अर्थात् उत्तमर्गने अवमर्णको कृणुदेना) कृणुकी शुद्धि, (वापीस देदेना) दान, पढना, वेचना, कन्याका दान, वृषोत्सर्ग, एकान्तमें कियाहुआ पाप, और अनिष्टा, ये नौ प्रकाशित करें ॥ १५ ॥

मातापित्रोर्गुरु मित्रे विनीते चोपकारिणि ॥

दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं तत्सफल भवेत् ॥ १६ ॥

माता, पिता, गुरु, मित्र, नम्र, उपकारी, दीन, अनाथ, सज्जन इनको देना सकल है ॥ १६ ॥

धूर्तं वृद्धिनि मल्ले च कुर्वये कितवे शठे ॥

चाटुचारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥ १७ ॥

और धूर्त, बन्दी, मल्ल, कुर्वये, कपटी, शठ, चाटु, चारण, चोर इनका देना निष्फल है ॥ १७ ॥

सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम् ॥ अन्वाहितं च निक्षेपं सर्वस्वं
चान्वये सति ॥ १८ ॥ आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ॥ यो
ददाति स मूर्खस्तु प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ १९ ॥

इकट्ठी भिक्षा, न्यास, कोश, स्त्री और स्त्रियोंका धन, अन्वाहित, निक्षेप, और वंशके
होते सर्वस्व यह नौ वस्तुएँ आपत्तिकाल आजानेपरभी देनें उचित नहीं; उन्हें देनेवाला मूर्ख
है और वह प्रायश्चित्त करनेके योग्य है ॥ १८ ॥ १९ ॥

नवनवकवेत्तारमनुष्ठानपरं नरम् ॥

इह लोके परत्रापि नीतिस्तं नैव मुंचति ॥ २० ॥

इन पूर्वोक्त नवनवके इक्यासीको जो मनुष्य जानताहै वह मनुष्योंका अधिपति है; उसको
नीति इस लोक और परलोकमें नहीं छोड़नी ॥ २० ॥

यथैवात्मा परस्तद्द्रष्टव्यः सुखमिच्छता ॥ सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि
तथा परे ॥ २१ ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किञ्चित्क्रियते परे ॥ यत् तु
पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य अपने सुखकी अभिलाषा करताहै वह अपनेही न दूसरेकोभी देखै कारण
कि जिस भांति सुख दुःख अपनेको होताहै उसी भांति दूसरेकोभी होताहै ॥ २१ ॥ जो सुख
दुःख दूसरेके लिये किया जाताहै वह सब अपनी आत्मामेंही आकर प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

न क्लेशेन विना द्रव्यं विना द्रव्येण न क्रिया ॥ क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने
कुतः सुखम् ॥ २३ ॥ सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ॥ तस्माद्धर्मः
सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

और क्लेशके विना पाये धन नहीं मिलता और विना धनके कर्म नहीं होता; कर्महीनें
मनुष्यसे धर्म नहीं बनता, धर्महीनको सुख नहीं मिलता ॥ २३ ॥ सुखकी अभिलाषा सभी
करतेहैं; और वह सुख धर्मसेही मिलताहै; इसकारण सम्पूर्ण वर्णोंको यत्नसहित धर्म करना
उचित है ॥ २४ ॥

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥ दानं हि विधिना देयं काले पात्रे
गुणान्विते ॥ २५ ॥ समद्विगुणसाहस्रमानत्यं च यथाक्रमम् ॥ दाने फलवि-
शेषः स्याद्विसायां तावदेव तु ॥ २६ ॥

आर जो धन न्यायसे प्राप्तहुआहै उस धनसे परलोकके कर्म करने उचित हैं; और उत्तम
अवसरमें विधिसहित सुपात्रको दानदे ॥ २५ ॥ उस दानका फल क्रमानुसार सम, दूना,
सहस्रगुना और अनन्त इस भांति विशेषरीतिसे होताहै और उतनाही हिंसामें पापकी वृद्धि
जानलेना ॥ २६ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ सहस्रगुणमाचार्य्यं त्वनंतं वेदपारगे
॥ २७ ॥ विधिहीने यथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ॥ न केवलं तद्विनश्ये-
च्छेषमप्यस्य नश्यति ॥ २८ ॥

ब्राह्मणसे अन्यको देना सम है, अर्थात् जितना दिया उतनाही का फल है, और ब्राह्मणब्रह्मके देनेसे द्वागुना है; आचार्यको देनेसे सहस्रगुना, और जो वेदके पारको जानताहै उसके देनेसे अनंत फल होताहै ॥ २७ ॥ और जो पात्र विधिसे हीन है उसे जो प्रतिग्रह दियाजाताहै वही केवल व्यर्थ नहीं है, वरन उसका शेषदानभी होजाताहै ॥ २८ ॥

व्यसनप्रतिकारार्थं कुटुंबार्थं च याचते ॥

एवमन्विष्य दातव्यमन्यया न फलं भवेत् ॥ २९ ॥

दुःखके दूर करनेके लिये और जीवनके लिये जो मांगे उसको हृदयकरी दे यह विधि है ॥ २९ ॥

मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः ॥ यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ ३० ॥ यच्छ्रेयो नामिहोत्रेण नाम्निष्टोमेन लभ्यते ॥ तच्छ्रेयः प्राप्नुयाद्विप्रो विप्रेण स्थापितेन वै ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य माता पितासे हीन किसीभी बालकका संस्कार तथा विवाहआदि कराकर गृहस्थधर्ममें स्थितकरताहै उसके पुण्यकी संख्या नहीं हो सकती ॥ ३० ॥ जो कल्याण अग्नि-होत्र और अग्निष्टोम यज्ञके करनेसे नहीं मिलता उस कल्याणको वही ब्राह्मण प्राप्तकरताहै जो उपरोक्त प्रकारसे विवाहादि संस्कार कराकर अपने कर्ममें स्थित है ॥ ३१ ॥

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चात्मदयितं भवेत् ॥

तत्तद्वृणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ३२ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो अपनेको संसारमें इष्ट और प्रिय है उसी २ वस्तुको अक्षय पुण्यकी अभिलाषा करने-वाला गुणवान् मनुष्य दान करे ॥ ३२ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदि च्छंदानुवर्तिनी ॥ गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा ॥ १ ॥ तथा धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ॥ २ ॥

पुरुषोंकी स्त्रीही गृहाश्रमका मूल है यदि स्त्री आज्ञाकारिणी हो, तथा वशमें हो तो गृह-स्थाश्रमसे परे और कोई श्रेष्ठ सुखका साधन नहींहै ॥ १ ॥ यदि स्त्री वशवर्तिनी है तो पुरुष स्त्रीके साथ धर्म, अर्थ, काम इन तीनों वर्गोंके फलको भोगताहै ॥ २ ॥

प्राकाम्ये वर्तमाना या स्नेहान्न तु निवारिता ॥

अवश्या सा भवेत्पश्चाद्यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥ ३ ॥

यदि स्त्री इच्छानुसार नहीं चलनेवाली है उस स्त्रीको पुरुष स्नेहके वशसे निवारण नहीं करे, तब वह स्त्री फिर बिलकुल कावूसे बाहर होजातीहै, जिस भांति अल्परोगके होनेपर उसकी चिकित्सा न करनेसे पीछे वह बड़ा कष्टदायक होजाताहै ॥ ३ ॥

अनुकूला नवागदु दक्षा साध्वी प्रियंवदा ॥

आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी ॥ ४ ॥

जो स्त्री स्वामीके अनुकूल आचरण करती है वाक्यदोपरहित (अर्थात् विनययुक्त भाषण-
करनेवाली), कार्यमें कुशल, सती, मीठे वचन बोलनेवाली और जो स्वयंही धर्मकी रक्षा
करतीहै और पतिमें भक्ति करनेवाली है वह स्त्री मनुष्य नहीं वरन देवताकी समान है ॥४॥

अनुकूलकलत्रो यः स्वर्गस्तस्य इहैव हि ॥ प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संश-
यः ॥ ५ ॥ स्वर्गेऽपि दुर्लभं हेतदनुरागः परस्परम् ॥ रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तदा
कष्टतरं नु किम् ॥ ६ ॥ गृहवासः सुखार्थो हि पत्नीमूलं च तत्सुखम् ॥ सा
पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी ॥ ७ ॥ दुःखायान्या सदा खिन्ना
चित्तभेदः परस्परम् ॥ प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ८ ॥ जलौका
इव ताः सर्वा भूषणाच्छादनाशनैः ॥ सुभृतापि कृता नित्यं पुरुषं ह्यपकर्षति
॥ ९ ॥ जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी ॥ इतरा तु धनं
चित्तं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ॥ १० ॥ साशंका बालभावे तु यौवनेऽ-
भिमुखी भवेत् ॥ तृणवन्मन्यते नारी वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥ ११ ॥ अनु-
कूला त्ववागदुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ॥ एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न
संशयः ॥ १२ ॥ प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा ॥ भर्तुः प्रीतिकरी
या तु भार्या सा चेतरा जरा ॥ १३ ॥

जिस पुरुषकी स्त्री वशमें है वह इसीलोकमें स्वर्ग भोगताहै; और जिसकी स्त्री वशमें
नहींहै वह नरक भोगताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ५ ॥ स्वर्गभी एक दुर्लभ पदार्थ है स्त्री पुरु-
षोंमें परस्पर प्रेम होना; स्त्री पुरुषोंमें एक अनुराग करनेवाला और एक विरक्त हो; तो इससे
अधिक कष्ट और क्या होगा ॥ ६ ॥ गृहस्थाश्रममें निवास केवल सुखकेही लिये है, परन्तु
गृहस्थाश्रममें स्त्रीही सुखका मूल है; जो स्त्री विनययुक्त और मनके भावको जानतीहै और
जो वशमें है वह यथार्थ स्त्री कहनेके योग्य है ॥ ७ ॥ उपरोक्त गुणोंके विपरीत स्वभाव
होनेपर स्त्रियें केवल दुःख भोगतीहैं और उनका मन सर्वदा दुःखी रहताहै; पुरुषोंकी स्त्रीही
यदि प्रतिकूल आचरणकरनेवाली है, तो परस्परमें चित्त नहीं मिलता, यदि पुरुषके दो स्त्री
हों तो दोनोंका चित्त दुःखी रहताहै ॥ ८ ॥ सब स्त्रियें जलौकाकी समान हैं, अलंकार,
वस्त्र, और अन्न इत्यादिसे भलीभाँति पालित होनेपर सर्वदा पुरुषोंके रक्तशोषण करतीहैं ॥९॥
वह क्षुद्र जलौका केवल रक्तशोषण करती है; परन्तु स्त्रीरूप जलौका पुरुषोंके रक्त, धन,
मांस, वीर्य, बल, और सुख सबका शोषण करतीहै, अर्थात् स्त्रियें पुरुषोंको एक दंड (घड़ी)
भी स्वच्छन्दतासे नहीं रहने देती ॥ १० ॥ जब परस्परमें दोनोंकी अवस्था अल्प है तब
स्त्रियोंको सर्वदा शंका रहती है, जब परस्परमें दोनोंकी युवा अवस्था होजातीहै तब स्वामीके
प्रति स्त्रीका टेढ़ापन (रोप) होताहै, अर्थात् इच्छानुसार न चलतीहै और जब स्वामीकी
अवस्था वृद्ध होजातीहै तब उसको तृणकी समान तुच्छ जानतीहै ॥ ११ ॥ जो स्त्री पतिके
वशमें है, वाक्यदोपसे रहित है, (अर्थात् विनययुक्त भाषण करनेवाली हो,) कर्ममें दक्ष, सती

और पतिव्रता है, और यह सम्पूर्ण गुण जिस स्त्रीमें विद्यमान हैं वह स्त्री निश्चयही लक्ष्मीका स्वरूप है ॥१२॥ जो स्त्रियें सर्वदा प्रसन्नचित्त रहतीहैं स्थान और मानकी ज्ञाता स्वामीमें प्रीति करनेवाली गृहोपकरण, द्रव्योंमें अवस्थान और परिमाणविषयमें अभिन्न वह स्त्रीही स्त्री कहनेके योग्य है और जिसमें यह गुण न हों वह केवल शरीरको क्षयकरनेवाली जरास्वरूप है ॥१३॥

शिष्यो भार्या शिशुर्भाता पुत्रो दासः समाश्रितः ॥

यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोके हि गौरवम् ॥ १४ ॥

जिस गृहस्थके शिष्य, स्त्री, बालक, भाई, मित्र, दास और आश्रित नियमसहित चलेतेहैं उसका संसारमें गौरव होताहै ॥ १४ ॥

प्रथमा धर्मपत्नी तु द्वितीया रतिवर्द्धिनी ॥ दृष्टमेव फलं तत्र नादृष्टमुपपद्यते ॥ १५ ॥ धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् ॥ दोषे सति न दोषः

स्यादन्या भार्या गुणान्विता ॥ १६ ॥

पहली विवाहीहुई स्त्री धर्मपत्नी है, दूसरी विवाहिता स्त्री केवल रति बढ़ानेके निमित्त है; उस स्त्रीका फल केवल इस लोकमेंही है परलोकमें नहीं ॥ १५ ॥ यदि पहली विवाहिता स्त्रीमें कोई दोष नहींहो तो उसे धर्मपत्नी कहतेहैं; और यदि उसमें कोई दोष हो और दूसरी स्त्रीमें कोई गुण हो तो दूसरे विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होगा ॥१६॥

अदुष्टाऽपत्तितां भार्या यौवने यः परित्यजेत् ॥

स जीवनांतं स्त्रीत्वं च बन्धत्वं च समाप्नुयात् ॥ १७ ॥

जो पुरुष दोषरहित विना पवित ऐसी स्त्रीको यौवनअवस्थामें त्यागताहै, वह पुरुष मर कर स्त्रीयोनिको प्राप्त हो बन्धत्वको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्तारं यावमन्यते ॥

शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥ १८ ॥

जो स्त्री दरिद्र वा रोगी पतिका तिरस्कार करतेहै वह स्त्री, कुतिया, गीधनी, मकरी बार-बार होतीहै ॥ १८ ॥

मृते भर्तारि या नारी समारोहेद्भुताशनम् ॥ सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥ १९ ॥ व्यालप्राही यथा व्यालं बलाद्बद्धरते विलात् ॥ तथा सा पतिसुदृत्य तेनैव सह मोदते ॥ २० ॥ चण्डालप्रत्यवसितपरिव्राजकतापसाः ॥

तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैस्सह वासयेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और पतिके मरनेके उपरान्त जो स्त्री सती होजातीहै; वह शुभ आचरण करनेवाली होती है, और स्वर्गमें देवताओंसे पूजित होतीहै, ॥ १९ ॥ सर्पका पकड़नेवाला बिलमेंसे जिस प्रकार सर्पको निकालताहै उसी प्रकार वह स्त्री पतिका उद्धार कर उसके साथ आनंद भोगतीहै ॥ २० ॥ चांडाल, अंत्यज, संन्यासी और तापस इनके उत्पन्नहुए संतानोंको चांडालके साथही रखे ॥ २१ ॥

इति श्रीदशस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

उक्तं शौचमशौचं च कार्यं त्याज्यं मनीषिभिः ॥

विशेषार्थं तयोः किंचिद्वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

शुद्धिमानोंने शौचको करना और अशौचका त्याग जो कहा है, उन दोनोंको हितकी इच्छासे मैं विशेषतासे कहता हूँ ॥ १ ॥

शौचं यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ॥ शौचाचारविहीनस्य
स्ता निष्फलाः क्रियाः ॥ २ ॥ शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथांतरम् ॥ ३ ॥ अशौचाद्धि वरं बाह्यं
तस्मादाभ्यन्तरं वरम् ॥ उभाभ्यां तु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥ ४ ॥

शौचके विषयमें सर्वदा यत्नकरना कर्तव्य है ब्राह्मणोंके पक्षमें शौचही सम्पूर्ण धर्म और कर्मोंका मूल है; शौच आचाररहित हुए ब्राह्मणोंके सम्पूर्ण कर्म निष्फल होजाते हैं ॥ २ ॥ शौच दो प्रकारका है एक तो बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर, मट्टी और जलसे बाह्य शौच होता है और मनकी शुद्धिसे आन्तरिक शौच होता है ॥ ३ ॥ अशौचमें बाह्य शौच श्रेष्ठ है, और बाह्य शौचसे आन्तरिक शौच श्रेष्ठ है, जो इन दोनोंसे शुद्ध है वही शुद्ध है दूसरा नहीं ॥ ४ ॥

एका लिंगे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा ॥ उभयोः सप्त दातव्या मृद-
स्तसु पादयोः ॥ ५ ॥ गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु यथाक्रमम् ॥ द्विगुणं त्रि-
गुणं चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥

बाह्य शौचका नियम कहता हूँ, प्रथम मलत्याग करनेके विषयमें जो करना कर्तव्य है अवशणकरो, लिंगको एकवार, गुहामें तीनवार वा दोनोंमें तीन या चारवार, और दाँये हाथमें दशवार तथा दोनों हाथोंमें सातवार और दोनों पैरोंमें तीनवार मट्टी लगावै ॥ ५ ॥ यह शौच गृहस्थियोंको कहा है; ब्रह्मचारियोंको दुगुना वानप्रस्थको त्रिगुना, संन्यासीको चौगुना करना कहा है ॥ ६ ॥

अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ॥ द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा
परिकीर्तिता ॥ ७ ॥ लिंगे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्वी पूर्यते यया ॥ एतच्छौचं
गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८ ॥ त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां च
चतुर्गुणम् ॥ दातव्यमुदकं तावन्मृदभावो यथा भवेत् ॥ ९ ॥

गुहामें तीनवार मट्टी लगानेकी कहा है, इससे पहलीवार मट्टी आधी तीकी बराबर और दूसरी तीसरी वारमें उस्सेमी आधी हो ॥ ७ ॥ और तीन अंगुल भरजाँय इतनी मट्टी लिंगमें लगावै यह शौचका परिमाण गृहस्थियोंके लिये कहा है, ब्रह्मचारियोंको इससे दुगुना करना उचित है ॥ ८ ॥ वानप्रस्थोंको त्रिगुना, और संन्यासियोंको चौगुना कहा है; इतना जल लगावै जिससे मट्टीका लेप दूरहोजाय ॥ ९ ॥

मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुंभशतेन च ॥

न शुद्ध्यन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः ॥ १० ॥

जिन पुरुषोंका अन्तःकरण शुद्ध नहींहै वह दुष्टात्मा हजार बार मट्टीसे व सौ घड़े जलसे भी शुद्ध नहीं होसके ॥ १० ॥

मृदा तोयेन शुद्धिः स्यान्न क्लेशो न धनव्ययः ॥

यस्य शौचेपि शैथिल्यं चित्तं तस्य परीक्षितम् ॥ ११ ॥

मट्टी और जलसेही शुद्धि होतीहै, कुछ धन खर्च नहीं होता और न कुछ क्लेश होताहै (इसकारण शौचके विषयमें यत्नकरना उचित है) जितका शौचके विषयमें ध्यान नहींहै; वह धर्मकर्ममें प्रवृत्त नहींहै ॥ ११ ॥

अन्यदेव दिवा शौचमन्यदात्रौ विधीयते ॥ अन्यदापदि निर्दिष्टं ह्यन्यदेव ह्यनापदि ॥ १२ ॥ दिवा कृतस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते ॥ तदर्धमातुरस्या-
हुस्त्वरयां त्वर्द्धमध्वानि ॥ १३ ॥

जो शौच कहागयाहै यह दिनमें करना कर्तव्य है, रात्रिके समय अन्यप्रकारका करना कर्तव्य है; ब्राह्मणोंको आपत्तिकालमें एकप्रकारका और स्वयंकालमें अन्य प्रकारका शौच करना कर्तव्य है ॥ १२ ॥ दिनमें जो शौच कहागयाहै, उससे आधा रात्रिके समय करनेसे शुद्ध होजाताहै; रोगी मनुष्यके लिये जो शौच रात्रिमें कहागयाहै उससे आधा कहाहै अर्थात् दिनके शौचका एकपाद करनेसेही शुद्ध होजाताहै; विदेश जानेके समय मार्गमें अतिशीघ्रताके कारण एकपादसे आधा शौच करनेपर शुद्ध होजाताहै ॥ १३ ॥

दिवा यद्विहितं कर्म तदर्धं च निशि स्मृतम् ॥

तदर्धं चातुरे काले पयि शूद्रवदाचरेत् ॥ १४ ॥

जिस कर्मको दिनमें करनेके लिये कहाहै उससे आधा रात्रिमें करे, और हगनावस्थामें उसका आधा करे, और मार्गमें शूद्रकी समान आचरण करना योग्य है ॥ १४ ॥

न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचे शुद्धिमभीप्सता ॥

प्रायश्चित्तेन युज्येत विहिताऽतिक्रमे कृते ॥ १५ ॥

इति श्रीद्राक्षे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिससमय, जिस स्थानमें जितना शौच कहागयाहै उससे अल्प या अधिक करना उचित नहीं, न्यून या अधिक शौच करनेसे शुद्ध नहींहोता जो इस विधिको उल्लंघन करताहै वह प्रायश्चित्तके योग्य होताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीदशस्मृतौ भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पष्ठोऽध्यायः ६.

अशौचं तु प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युनिमित्तकम् ॥

यावज्जीवं तृतीयं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥

अब जन्म और मरणमें जो अशौच होताहै और जीवनपर्यन्त जो अशौच होताहै, ऐसे तीन अशौच शास्त्रमें कहेहुए हैं उनको अब कहताहूँ ॥ १ ॥

सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ २ ॥ मरणांतं तथा चान्यद्दश पक्षास्तु सूतके ॥ उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥

सद्यःशौच, एकदिन, दोदिन, तीनदिन, चारदिन, छैः दिन, दसदिन, बारहदिन, पन्द्रह दिन और एकमास ॥ २ ॥ और मरणपर्यन्त यह दस पक्ष सूतकमें हैं, वर्णके क्रमसे इन सबको मैं कहताहूँ ॥ ३ ॥

ग्रंथार्थतो विजानाति वेदमंगैः समन्वितम् ॥ सकल्पं सरहस्यं च क्रियावांश्चैव सूतकी ॥ ४ ॥ राजर्त्विग्दीक्षितानां च बाले देशांतरे तथा ॥ व्रतिनां सत्रिणां चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥ एकाहस्तु समाख्यातो योमिवेदसमन्वितः ॥ हीने हीनतरे चैव द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ ६ ॥ जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥ वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥ अस्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्त्वा हुत्वा च भुञ्जते ॥ एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥ ८ ॥ व्याधितस्य कदर्पस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥ क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्री-जितस्य विशेषतः ॥ ९ ॥ व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥ श्रद्धा-त्यागविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १० ॥ न सूतकं कदाचित्स्याद्यावज्जीवं तु सूतकम् ॥ एवंगुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥

षडङ्गसहित कल्प और रहस्यसहित वेदको जो मनुष्य जानताहै जो मनुष्य वेदोक्त कर्मकांडको करताहै उसको सूतक नहीं होता ॥ ४ ॥ राजा, ऋत्विज्, दीक्षित, बालक, परदेशमें जो रहताहो, व्रती, सत्री इनको सद्यःशौच कहाहै ॥ ५ ॥ जो वेदपाठी और अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं उसे एकदिनका, हीनको तीनदिनका और अधिक हीनको चारदिनका अशौच होताहै ॥ ६ ॥ जो मनुष्य जातिमात्रका ब्राह्मण है उसे दशदिनका, क्षत्रियको बारह दिनका, वैश्यको पंद्रह दिनका और शूद्रको महीनेका अशौच होताहै ॥ ७ ॥ जो मनुष्य स्नान, आचमन, जप, दान और विना हवनके किये भोजन करतेहैं उन सबको जीवनपर्यन्त अशौच होताहै ॥ ८ ॥ रोगी, कायर, कृपण, ऋणी, क्रियाकर्मसे हीन, मूर्ख और जिसे स्त्रीने जीतलियाहो ॥ ९ ॥ जिसका चित्त सर्वदा व्यसनमें आसक्त हो और जो नित्य पराये आधीन रहताहो जो श्रद्धा और त्यागसे हीन हो उसका भस्मांत सूतक होताहै ॥ १० ॥ सूतक कभी नहींहै और जीनेतक सूतक है इसप्रकार गुणकी विशेषतासे सूतक कहाहै ॥ ११ ॥

सूतके मृतके चैव तथाच मृतसूतके ॥

एतत्संहतशौचानां मृताशौचं शुद्ध्यति ॥ १२ ॥

यदि जन्मसूतकमें मरणसूतक और मरणसूतकमें जन्मसूतक होजाय तो दोनोंकी शुद्धि मरण अशौचके साथ होजातीहै ॥ १२ ॥

दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ॥ दशाहात् परं शौचं विप्रोर्हति च धर्मवित् ॥ १३ ॥ दानं च विधिना देयमशुभात्तारकं हि तत् ॥ मृतकांतं

मृतो यस्तु सूतकांति च सूतकम् ॥ १४ ॥ एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥ उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥ १५ ॥

दान, प्रतिग्रह, हवन, वेदपाठ सूतकमें इन सबका निषेध है, धर्मज्ञ ब्राह्मण दशादिनके उपरान्त शुद्धि प्राप्त करता है ॥ १३ ॥ उससमय विधिपूर्वक दानकरना उचित है कारण कि वह दानही अमंगलसे उद्धार करता है; मरणाशौचके बीचमें जो मरण अशौच होजाय अथवा जन्मसूतकके बीचमें जन्मसूतक होजाय ॥ १४ ॥ तौ इन एकत्रहुए सूतकमें पूर्व अशौचके शेषदिनोंमें शुद्धि होजाती है; दोनों सूतकमें दशादिनतक कुलका अन्न भोजन न करे ॥ १५ ॥

चतुर्थेहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः ॥

ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शां विधीयते ॥ १६ ॥

विद्वान् मनुष्य चौथेदिन अस्थिसंचयन न करे फिर अस्थिसंचयनके उपरान्त अंगका स्पर्श करे ॥ १६ ॥

वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः ॥ दशपट्यहमेकाहः प्रसवे सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥ स्वस्थकाले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्तितम् ॥ आपद्रतस्य सर्वस्य सूतकेपि न सूतकम् ॥ १८ ॥

यदि एक पतिके अनुलोमके क्रमसे चार स्त्री हो तौ उन स्त्रियोंकी सन्तान होनेके सूतकमें पतिको क्रमसे दशदिन, छैः दिन, तीनदिन, वा एकदिनका सूतक होता है ॥ १७ ॥ यह सम्पूर्ण अशौच स्वस्थ अवस्थामें कहा है, आपत्तिकालमें सूतकके समयमेंभी सूतक नहीं होता ॥ १८ ॥

यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ म्रियेत वा ॥ पूर्वसंकल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र विद्यते ॥ १९ ॥ यज्ञकाले विवाहे च देवयागे तथैव च ॥ हूयमाने तथा चाग्नी नाशौचं नापि सूतकम् ॥ २० ॥

इति द्वाक्षे धर्मशास्त्रे पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

यज्ञके होनेके समयमें यदि कोई जन्म वा मृतक होजाय तौ पूर्वसंकल्प कियेहुएमें दोष नहीं है ॥ १९ ॥ यज्ञके समय, विवाहमें, और देवपूजन तथा अग्निहोत्रमें अशौच और सूतक दोनों नहीं होते ॥ २० ॥

इति दक्षस्मृतौ भाषाटीकायां पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

लोका वशीकृता येन येन चात्मा वशीकृतः ॥

इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥

जिससे जगत् वशमें कियाजाता है, जिसके द्वारा आत्मा वशीभूत होता है जिससे इन्द्रिय जीतीजाती हैं उसी योगकी कथाको कहता हूँ ॥ १ ॥

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ॥

तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगो योग उच्यते ॥ २ ॥

, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क, समाधि ये जिसके छैः अंग हैं उसीको योग कहतेहैं ॥ २ ॥

मैत्रीक्रियामुदे प्राणिव्यवस्थिता ॥

ब्रह्मलोकं नयत्याशु धातारि धारणा ॥ ३ ॥

सब प्राणियोंमें आनन्दकी जो एक क्रिया है वह ब्रह्मलोकमें इसभांति लेजातीहै जिसभांति धारणा ब्रह्माको ॥ ३ ॥

नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रंथचित्नात् ॥ ब्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्य-
चिद्भवेत् ॥ ४ ॥ न च पथ्याशनाद्योगो न ना ग्रनिरिक्षणात् ॥ न च शास्त्रा-
तिरिक्तेन शौचेन भवति कचिद् ॥ ५ ॥ न मंत्रमौनकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ॥
लोकयात्रानियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ॥ ६ ॥

वनमें निवास, अनेक ग्रंथोंका विचार, व्रत, यज्ञ, और तप, इनसे किसीको योग प्राप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ पथ्यभोजन, नाकके अग्रभागोंका देखना, शास्त्रोंकी अधिकता और शौच इनसेभी योग नहीं होता ॥ ५ ॥ मंत्र, मौन, कपट, अनेक प्रकारके पुण्य और लोकके व्यवहारमें तत्पर इनसेभी योग नहीं होता ॥ ६ ॥

अभियोगात्तथाभ्यासात्तस्मिन्नेव तु निश्चयात् ॥ पुनःपुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्ध्य-
ति नान्यथा ॥ ७ ॥ आत्मचिन्ताविनोदेन शौचेन क्रीडनेन च ॥ सर्वभूतस-
मत्वेन योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ८ ॥ यश्चात्मनिरतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव
च ॥ आत्मानन्दस्तु सततमात्मन्येव सुभाविताः ॥ ९ ॥ रतश्चैव सु श्र-
संतुष्टो नान्यमानसः ॥ आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिद्ध्यति ॥ १० ॥

अपि योगयुक्तश्च जाग्रच्चापि विशेषतः ॥ ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो
ब्रह्मवादिनाम् ॥ ११ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ॥ ब्रह्मभूतः स
एवेह दक्षपक्ष उदाहृतः ॥ १२ ॥

अभियोग, अभ्यास, योगमेंही निश्चयसे और बारंवार निर्वेद विरक्तिसे योग सिद्ध होताहै ॥ ७ ॥ आत्माकी चिन्ताके आनन्दसे, शौच, आत्मामें क्रीडा, सब भूतोंमें स इनके द्वारा योग सिद्धहोताहै, इसके अतिरिक्त नहीं ॥ ८ ॥ सर्वदा आत्मामें मिला, आत्मामें क्रीडाशील, आत्मामें आनन्दस्वभाव, और निरन्तर आत्मामें प्रीतिमान् ॥ ९ ॥ आत्मामें रमा आत्मामें सन्तुष्ट जिसका मन अन्यत्र न हो; और जो भलीभांतिसे आत्मामें दृप्त हो उसी पुरुषको योग सिद्ध होताहै ॥ १० ॥ योगी सोताहुआभी जागतेकी समान है जिसकी ऐसी चेष्टाहो वही श्रेष्ठ और ब्रह्मवादियोंमें बड़ा कहागयाहै ॥ ११ ॥ इस संसारमें आत्माके विना जो दूसरेको न देखे वही ब्रह्मरूप है, यह दक्षपक्षके पक्षमें कहाहै ॥ १२ ॥

विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विंदति ॥ यत्नेन विषयासक्तिं माद्योगी
विवर्जयेत् ॥ १३ ॥ विषयैर्द्रियसंयोगं केचिद्योगं वदन्ति वै ॥ अधर्मो धर्मबु-
द्ध्या तु गृहीतस्तैरपंडितैः ॥ १४ ॥ आत्मनो मनसश्चैव संयोगं तु ततः परम् ॥
उक्तानामधिका ह्येते केवलं योगवंचिताः ॥ १५ ॥

जिसका चित्त विषयमें आसक्त हो वह यती मोक्षको प्राप्त नहीं होता; इसकारण योगी विषयकी ओरसे अपना मन हटाके ॥ १३ ॥ कोई मनुष्य विषय और इन्द्रियोंके संयोगको योग कहतेहैं उन निर्बुद्धियोंने अधर्मको धर्मबुद्धिसे जानाहै ॥ १४ ॥ उनसे अन्य कोई आत्मा और मनके संयोगको योग कहतेहैं यह योग पूर्वाक्त ठगोंसेभी अधिक है ॥ १५ ॥

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥

एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ १६ ॥

सब वृत्तियोंसे मनको हटाकर और जीवको परमात्मामें लगानेसे मुक्त होजाताहै; यही योग मुख्य है ॥ १६ ॥

कपायमोहविक्षेपलज्जाशंकादिचेतसः ॥

व्यापारास्तु समाख्यातास्तास्तित्वा वशमानयेत् ॥ १७ ॥

कपाय, मोह और विक्षेपका जो नाश है उसका वही व्यापार कहाहै; जिसका मन वशमें होजाय, इसकारण कपायआदिसे रहित मनको अपने वशमें करे ॥ १७ ॥

कुटुंबैः पञ्चभिर्ग्रामः पटुस्तत्र महत्तरः ॥ देवासुरैर्मनुष्यैश्च स जेतुं नैव शक्यते ॥ १८ ॥

वलेन परराष्ट्राणि गृह्णन्तूरस्तु नोच्यते ॥ जितो येन्द्रियग्रामः स

शूरः कथ्यते बुधैः ॥ १९ ॥ बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ॥

मनस्येवेंद्रियाण्यत्र मनश्चात्मनि योजयेत् ॥ २० ॥ सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं

ब्रह्मणि न्यसेत् ॥ एतद्ध्यानं तथा ज्ञानं शेषस्तु ग्रंथविस्तरः ॥ २१ ॥

पाच कुटुम्बियोंका ग्राम होताहै; और उस ग्राममें छठा (मन) सबसे बड़ा है; उसको जीतनेको देवता मनुष्य, असुर यह कोई भी समर्थ नहीं होते ॥ १८ ॥ जो बलपूर्वक दूसरेके देशोंको छीन लेताहै वह शूर नहीं कहाता; परन्तु वास्तवमें वही शूर है जिसने इन्द्रियरूपी ग्रामको जीत लियाहो ॥ १९ ॥ सर्व बहिर्मुख इन्द्रियोंको अंतर्मुख करे, फिर उन इन्द्रियोंको मनमें युक्तकरे; मनको आत्मामें योजित करे ॥ २० ॥ और सब भावोंसे रहित क्षेत्रज्ञको ब्रह्ममें मिलावे इसीका नाम ध्यान और ज्ञान है; शेष तो सब ग्रंथका विस्तारहीहै ॥ २१ ॥

त्यक्त्वा विषयभोगास्तु मनो निश्चलतां गतम् ॥

आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्तितः ॥ २२ ॥

जो मर्त विषय भोगोंको त्यागकर आत्माकी शक्तिरूपसे निश्चल होजाताहै उसे समाधि कहतेहैं ॥ २२ ॥

चतुर्णां सन्निकर्षेण फलं यत्तदशाश्रितम् ॥ द्वयोस्तु सन्निकर्षेण शाश्वतं ध्रुवम-

क्षयम् ॥ २३ ॥ यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति निरुच्यते ॥ कथ्यमानं तथा-

न्यस्य हृदये नाधितिष्ठति ॥ २४ ॥ स्वयंवैद्यं च तद्ब्रह्म कुमारी मैथुनं यथा ॥

अयोगी नैव जानाति जात्यंधो हि यथा घटम् ॥ २५ ॥ नित्याभ्यसनशीलस्य

सुसंवेद्यं हि तद्ब्रह्मेत् ॥ तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २६ ॥

चारके संनिकर्षसे जो फल होताहै वह अनित्य है, और पिछले अंगोंसे जो फल होताहै वह सनातन और नित्य तथा अक्षय्य होताहै ॥ २३ ॥ सब लोकोंको जो ब्रह्म नारिख प्रतीत होताहै, और जो अस्तिशब्दसे पुकारा जाताहै; तथा कहाहुआभी जो दूसरेके हृदयमें स्थित नहीं होता ॥ २४ ॥ वही ब्रह्म इसभांति स्वयं जानने योग्य है, जिसप्रकार कुमारीका मैथुन, और योगमार्गसे हीन उसी ब्रह्मको इसभांति नहीं जानता, जिसप्रकार जन्मांधपुरुष घटको ॥ २५ ॥ नित्य अभ्यासशील मनुष्यको मलीभांति अनायाससे जानने योग्य है; और सूक्ष्म होनेके कारण वह सनातन परब्रह्म अनिर्देश्य है ॥ २६ ॥

बुधास्त्वाभरणं भावं मनसालोचनं तथा ॥ मन्यन्ते स्त्री च मूर्खश्च तदेव बहु मन्यन्ते ॥ २७ ॥ सत्त्वोक्तदाः सुरास्तेपि विषयेण वशीकृताः ॥ प्रमादिभिः क्षुद्रसत्त्वैर्मनुष्यैरत्र का कथा ॥ २८ ॥ तस्मात्पुण्यकषायेण कर्तव्यं दंडधारणम् ॥ इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ॥ २९ ॥ नः स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः ॥ वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥ ३० ॥

पंडितोंका विचार और मनसे जो ब्रह्मका देखना है इसको भूषण मानतेहैं, स्त्री और मूर्ख यह भूषणकोही बहुत उत्तम मानतेहैं ॥ २७ ॥ विषयोंमें जब सत्त्वगुणी देवताओंकोभी अपने वशमें करलिया तब फिर प्रमादी मनुष्योंको वशमें करलेंनेकी तौ क्या दात है ॥ २८ ॥ इसकारण जिसने मनके मैलका त्याग करदियाहो वही दंडको धारण करै और जिसने त्याग न कियाहो उसको दंडधारण करनेकी सामर्थ्य नहींहै और विषय उसका तिरस्कार करतेहैं ॥ २९ ॥ जिसभांति तरंगोंके कारण जल क्षणमात्रकोभी स्थिर नहीं रहता, इसीभांति वासनाओंसे रहताहुआ चित्तभी स्थिर नहीं रहसकता, इसकारण उसका विश्वास न करै ॥ ३० ॥

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक् ॥ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ ३१ ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३२ ॥

जिसकी रक्षा आठ प्रकारकी है इसकारण उस ब्रह्मचर्यकी सर्वदा रक्षा करै कि, स्मरण, कीर्तन, क्रीडा, प्रेक्षण, गुप्तबोलना, ॥ ३१ ॥ संकल्प, विकल्प, अध्यवसाय, क्रियाकी निवृत्ति; यह आठप्रकारका मैथुन बुद्धिमानोंने कहाहै ॥ ३२ ॥

त्रिदंडव्यपदेशेन जीवन्ति बहवो नराः ॥ यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदंडी हि स स्मृतः ॥ ३३ ॥ नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कथंचन ॥ एतैः सर्वैः सुसंपन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥ ३४ ॥

त्रिदंडके बहानेसे बहुतसे मनुष्य जीवन धारण करतेहैं परन्तु जो ब्रह्मको नहीं जानता वह त्रिदंडी नहीं कहाता ॥ ३३ ॥ न पढना, न बोलना, न किसीप्रकार सुनना, जो इन सब गुणोंसे युक्त हो वही संन्यासी है दूसरा नहीं ॥ ३४ ॥

पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥

श्रवदेनांकयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥ ३५ ॥

जो संन्यास लेकर अपने धर्ममें स्थिर न रहें उसको राजा अपने नगरसे कुत्तेके पैरका दाग देकर निकाल दे ॥ ३५ ॥

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चैव मिथुनं स्मृतम् ॥ त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥ ३६ ॥ नगरं हि न कर्तव्यं ग्रामो वा मिथुनं तथा ॥ एतन्नयं तु कुर्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः ॥ ३७ ॥ राजवार्तादि तेषां तु भिक्षावार्ता परस्परम् ॥ स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं सन्निकर्षादसंशयम् ॥ ३८ ॥ लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः ॥ एते चान्ये च बहवः प्रपंचास्तु तपस्विनाम् ॥ ३९ ॥

पूर्वोक्त धर्मवाला एकव्यक्ति हो तो उसकी भिक्षुक संज्ञा है, दो व्यक्ति हों तो वे मिथुन संज्ञा कहें, तीनके समूहको ग्राम कहते हैं, इससे अधिकोंका संग नगर कहाता है ॥ ३६ ॥ इसकारण संन्यासी ग्राम, नगर और मिथुन इनकी संगति न करे इन तीनों कर्मोंको जो यति करता है वह उत्तम धर्मसे पतित होजाता है ॥ ३७ ॥ कारण कि, उनमें राजाकी अथवा भिक्षाकी बात परस्पर होता है, स्नेह, चुगलपन, मत्सरता, वार्ताआदि यह सन्निकर्षसे होते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३८ ॥ पदना, कहना, और धनप्राप्तिके निमित्त शिष्योंको रखना यह पूजाके निमित्त है, यह सब तथा अन्य सबभी तपस्वियोंके प्रपंच हैं ॥ ३९ ॥

ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकां तशीलता ॥

भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोपपद्यते ॥ ४० ॥

ध्यान, शौच, भिक्षा, एकांतमें निवास भिक्षुकके यह चार कर्म हैं पांचवां नहीं ॥ ४० ॥

यस्मिन्देशे भवेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ॥

सोऽपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यस्य बांधवः ॥ ४१ ॥

ध्यान और योगमें पंडित जिस देशमें निवास करताहो वह देशभी पवित्र होजाता है; फिर उसके बंधु बांधव क्यों न होंगे ॥ ४१ ॥

तपोभिर्यं वशीभूता व्याधितावसथावहाः ॥ वृद्धा रोगगृहीताश्च ये वान्ये विकलेंद्रियाः ॥ ४२ ॥ नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुर्नावसथार्हणः ॥ स दूषयति तत्स्थानं वृद्धादीन्पीडयत्यपि ॥ ४३ ॥ नीरुजश्च युवा चैव ब्रह्मचर्याद्विनश्यति ॥ ब्रह्मचर्याद्विनष्टश्च कुलं गोत्रं च नाशयेत् ॥ ४४ ॥

तपश्चा और जपके द्वारा जो दुर्बल होगये हैं, रोगी, वृद्ध, और जिनकी इन्द्रियों विकार-युक्त हैं ॥ ४२ ॥ यह घरमें निवास करसकते हैं, परन्तु रोगरहित युवा भिक्षुक घरमें वासकरनेके योग्य नहीं हैं, कारण कि, उसके ठहरनेसे उस स्थानकोभी दोष लगता है और वह वृद्धोंको पीडित करता है ॥ ४३ ॥ आरोग्य युवा भिक्षुक इसमांति आचरण करनेसे ब्रह्मचर्यसे पतित होजाता है, और फिर वह ब्रह्मचर्यसे नष्ट होकर अपने वंशकोभी नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

यस्य त्वावसथे भिक्षुर्मिथुनं यदि सेवते ॥

तस्यावसथनाथस्य मूलान्यपि निकृताति ॥ ४५ ॥

भिक्षुक जिसके घरमें वासकरै यदि मैथुन करै तौ वह उस घरके स्वामीको जहमूलसे है ॥ ४५ ॥

आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्तमपि विश्रमेत् ॥ किं तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्यो हि जायते ॥ ४६ ॥ संचितं यद्गृहस्थेन पापमामरणांतिकम् ॥ स निर्दहति तत्सर्वमेकरात्रोषितो यतिः ॥ ४७ ॥ ध्यानयोगपरिश्रान्तं यस्तु भोजयते यतिम् ॥ अखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४८ ॥

और आश्रममें संन्यासी एकमुहूर्तको ठहरजाय, अन्य धर्मका प्रयोजन क्या है वह उससेही कृतार्थ होजाताहै ॥ ४६ ॥ गृहस्थीने अपने शरीरमें जो पापसंचय कियेहैं यति उसके घरमें एकरात्रि निवासकर उसके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करदेताहै ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य योगाश्रममें परिश्रान्त यतिको भोजन कराताहै; सो चराचर त्रिलोकीके निवासीको भोजन करानेका जो फल है वही फल उसको मिलताहै ॥ ४८ ॥

द्वैतं चैव तथाद्वैतं द्वैताद्वैतं तथैवं च ॥ न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत्पारथ्य-
कम् ॥ ४९ ॥ नाहं नैव तु संबंधो ब्रह्मभावेन भावितः ॥ ईदृशायां त्ववस्थाया-
मवाप्यं परमं पदम् ॥ ५० ॥ द्वैतपक्षः समाख्यातो ये द्वैते तु व्यवस्थिताः ॥
अद्वैतानां प्रवक्ष्यामि यथा धर्मः सुनिश्चितः ॥ ५१ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेण
द्वितीयं यो विपश्यति ॥ अतः शास्त्राण्यधीयते श्रूयते ग्रंथविस्तरः ॥ ५२ ॥

द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत इन तीनोंमें द्वैत नहींहै यही पारमार्थिक ज्ञानहै ॥ ४९ ॥ मैं नहीं हूं, और न मेरा है, और न मेरा किसीसे सम्बन्ध है परन्तु मैं ब्रह्मरूपमें स्थित हूं; इस अवस्थामें ब्रह्मपद प्राप्त होताहै ॥ ५० ॥ द्वैतमें स्थितिवालोंको द्वैतपक्षका कहाहै और अद्वैतपक्ष-
नालोंका धर्म भलीभांति निश्चित है उसको मैं कहताहूं ॥ ५१ ॥ इसमें जो आत्माके अति-
रिक्त दूसरी वस्तुको देखताहै उसीने मानों शास्त्र पढेहैं, और ग्रंथोंके विस्तारको सुनाहै ॥ ५२ ॥

दक्षशास्त्रे यथा प्रोक्तमाश्रमप्रतिपालनम् ॥ अधीयते तु ये विप्रास्ते यांति पर-
लोकताम् ॥ ५३ ॥ य इदं पठते भक्त्या शृणुयादपि यो नरः ॥ स पुत्रपौत्र-
पशुमान्कीर्तिं च समवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ श्रावयित्वा त्विदं श श्राद्धकालेऽपि
यो द्विजः ॥ अक्षय्यं भवंति श्राद्धं पितृन्धैवोपतिष्ठते ॥ ५५ ॥

इति श्रीदक्षे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो ब्राह्मण दक्षऋषिके इस शास्त्रमें कहेहुए आश्रमोंका प्रति करतेहैं वा जो इस शास्त्रको पढतेहैं वह परलोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ५३ ॥ जो इसे पढताहै, या नीच वर्णभी इसे सुनताहै वह पुत्रपौत्रयुक्त तथा पशुवाला होकर कीर्तिको पाताहै ॥ ५४ ॥ जो ब्राह्मण श्राद्धके समय इस शास्त्रको सुनवाताहै उसका श्राद्ध अक्षय्यफलका देनवाला होताहै और पितरोंके निकट प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीदक्षस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति दक्षस्मृतिः समाप्ता ॥ १५ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ गौतमस्मृतिः १६.

भाषाटीकासमेता ।



प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ गौतमस्मृतिप्रारंभः ॥ वेदो धर्ममूलं तद्विदां च स्मृतिशाले दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः ॥ साहसं च महतां न तु दृष्टोऽर्थो वरदौर्वल्यान् तुल्यबलविरोधे विकल्पाः ।

वेदही धर्मका मूल है, स्मृति और शीलभी धर्मका मूल है, धर्मका व्यतिक्रम और साहसभी दृष्टि आता है; परन्तु महापुरुषोंका कर्म कोई दृष्ट अर्थ नहीं है प्रबल और दुर्बलसे समान बलवाले शास्त्रोंके विरोधमें विकल्पभी होता है, अर्थात् जहां दो वाक्योंसे दो प्रकार कर्म प्राप्त हों वहां दोनों करने उचित हैं;

उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे नवमे पंचमे वा काम्यं गर्भादिः संख्या वर्षाणां तद्वितीयजन्म तद्यस्मात्स आचार्यो वेदानुवचनाच्च एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोः आपोडशाद्ब्राह्मणस्य पतिता सावित्री द्वाविंशते राजन्यस्य त्र्यधिका या वैश्यस्य । मांजीज्याभौर्धासौत्र्यो मेखलाः क्रमेण कृष्णरुक्मस्ताजिनानि वासांसि शाणक्षौमचीरकुतपाः सर्वेषां कार्पासं चाविकृतं कापायमप्येके, चार्द्रं ब्राह्मणस्य मांजिष्ठहारिद्रे इतरयोर्वैल्वपालाशौ ब्राह्मणस्य दंडौ आश्वत्थपैलवौ शेषे यज्ञियो वा सर्वेषाम् । अपोडितायूपचक्राः सवल्कला मूर्द्धललाटनासाग्रप्रमाणाः मुंडजटिलशिखाजटाश्च ।

ब्राह्मणका आठ या नौ वर्षमें यज्ञोपवीत करें, यदि ब्रह्मतेजकी इच्छा करें तो पांचवें वर्षमें भी हो सकती है, पांचवें वर्षकी गणना गर्भसे करते, वह यज्ञोपवीत दूसरा जन्म है जिससे आचार्य वेदका उपदेश करता है, क्षत्रिय और वैश्यका क्रमानुसार ग्यारह और बारहवर्षतक यज्ञोपवीत करनेकी विधि है, सोलहवर्षतक ब्राह्मणकी और क्षत्रियकी चारदसवर्षतक और वैश्यकी चौबीस वर्षतक गायत्री पठित नहीं होती अर्थात् गौणअधिकार रहता है, उपनयनके समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, यथाक्रमसे मेखला मूंजकी और सूतकी ज्या और मूर्वाकी वनावें, और काले तथा रुक्मृगका और मेंढेका चर्म, शन, रेशम, और कुंशा इनके बख वनावें और कोई २ ऐसामी कहते हैं कि तीनों वर्णोंको कपासके नवीन और गेरु तथा मजीठ वृक्षके लालरंगके बख धारण करने उचित हैं; ब्राह्मणको हलदीमें रंगाहुआ क्षत्रिय और वैश्यको भी धारण करना उचित है, ब्राह्मण बेल, या पलाशके काष्ठका दंड, और दोनोंजाति क्रमसे पोपल और पीलुका दंड धारण करें, तथा और जाति १ यज्ञिय

का दंड धारण कर सकता है परन्तु वह दंड फटे न हों. दंडका परिमाण तीनों जातियों यथाक्रमसे मस्तक, ललाट और नासिकाके अग्रभाग तक हो, ब्राह्मण सध मुंडन करावै, क्षत्रिय मस्तकपर जटा रखे और वैश्य शिखा रखे ।

द्रव्यहस्त उच्छिष्टोऽनिधायाचमेत् ॥

कोई द्रव्य यदि हाथमें हो और वह यदि उच्छिष्ट होजाय तो इस द्रव्यको बिना पृथ्वी-पर रखे आचमन करै.

द्रव्यशुद्धिः परिमार्जनप्रदाहृतक्षणाणिर्जजनानि तैजसमार्त्तिकदारवतांतवानां तैजसवदुपलमणिशंखशुक्तीनां दारुवदस्थिभूम्योः आवपनं च भूमेः । चैलवद्रंजुविदलचर्मणाम् उत्सर्गो वात्यंतोपहतानाम् ।

धातु, मट्टी, काष्ठ, शुक्तिनिर्मितवस्तु इन चारों द्रव्योंकी शुद्धि क्रमसे मांजने, तपाने, और धोनेसे होजाती है; और पत्थर, मणि, शंख, सीपी इनकी शुद्धि धातुके समान है, काष्ठके समान. हाड और भूमिकी शुद्धि है, और भूमिकी शुद्धि हलसे खनन करनेपरभी होजाती है, वांसके पात्रकी शुद्धि बखके समान है और जो अत्यन्त अष्ट हो तो उसे त्याग दे.

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत् । शुचौ देश आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्वंतरा कृत्वा यज्ञोपवीत्यामणिवंधनात्पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतो हृदयस्पृशस्त्रितुर्वाऽप आचमेत् । द्विः परिमृज्यात्पादौ चाभ्युक्षेत् । खानि चोपस्पृशेच्छीर्षण्यानि मूर्द्धनि च दद्यात् । सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा च पुनः दंतश्लिष्टेषु दंतवदन्यत्र जिह्वाभिर्मर्शनात् । प्राक् च्युतेरित्येके । च्युते स्वास्त्राववद्विद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ न मुख्या विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वति ताश्चेदंगे निपतंति । लेपगंधापकर्षणे शौचममेध्यस्य तदद्विः पूर्वं मृदा च मूत्रपुरीषरेतो विस्रंसनाभ्यवहारसंयोगेषु च यत्र चा यो विदध्यात् ।

पूर्व वा उत्तरको मुख करके शौचका प्रारंभ करै, पवित्रस्थानमें बैठकर दोनों घुटनोंके भीतर दहिनी मुजाको रखकर नियमसहित यज्ञोपवीत धारणकर मणिवंध दोनों हाथोंको धोकर मौन धारणकर हृदयका स्पर्शकर तीन या चारवार जलसे आचमन करै, और दो बार मुखका मार्जन करै, पैरोंको छिड़कै; और शिरके सातों छिद्रोंका स्पर्श करै, फिर मूर्द्धापर भी जलका स्पर्श करै; यदि जिह्वासे स्पर्श न हो तो दांतोंमें लगा अन्नादि दांतोंकेही समान है, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि जबतक वह दांतोंसे पृथक् न हो तब-तकही दांतोंके समान है; और पृथक् होनेपर आस्त्रावके समान होजाता है; इसकारण उसको मुखसे बाहर निकालनेसेही शुद्धि होती है; जो मुखकी बूंद अपने शरीरपर गिरजाय उससे शरीर अशुद्ध नहीं होता; अशुद्ध वस्तुका लेप और गंधको दूरकरनेके लिये शौच करे यदि पवित्र वस्तु लगी हो वा मूत्र, विष्टा, वीर्यस्खलन भोजनके समयमें होजाय तो वेद और स्मृतियोंमें कही रीतिके अनुसार वहां मट्टी और जलसे शौच करना उचित है;

पाणिना सव्यमुपसंगृह्यांशुष्ठमधीहि भौ इत्यामंत्रयेत् गुरुः । तत्र चक्षुर्मनः प्राणो-पस्पर्शनं दमैः प्राणायामास्त्रयः पंचदश मात्राः प्राक्कूलेष्वासनं च ॐ पूर्वा

व्याहृतयः पंचसप्तांताः गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातर्वह्णानुवचने चाद्यंतयोरनुज्ञात उपविशेत् । प्रादुमुखो दक्षिणतः शिष्य उदङ्मुखो वा सावित्री चानुवचनमादितो ब्रह्मण आदाने ँकारस्यान्यत्रापि ।

गुरु अपने हाथसे शिष्यका अंगूठा पकड़कर “भो शिष्य तू पढ़ ” यह कहकर बुलावे इसके उपरान्त शिष्य गुरुमें अपने नेत्र और मनको लगाकर कुशाओंसे अपने प्राणोंको स्पर्शकर तीन प्राणायाम करे; आचमनका प्रमाण पन्द्रह वृंदवत् है और पूर्वकी ओरको अग्रभागवाली कुशाओंके आसनपर बैठकर ँकारपूर्वक पाँच वा सात व्याहृतियोंका पाठ करे प्रातःकालमें वेद पढ़नेके प्रारंभ और अन्तमें शिष्य गुरुके चरणोंको ग्रहण करे और गुरुकी आज्ञा लेकर गुरुके दक्षिण भागमें, पूर्व या उत्तरको मुख करके बैठे प्रथम गायत्री तथा वेद और ँकारके पढ़नेके समयमेंभी इसीभांति बैठे;

अंतरागमने पुनरुपसदने श्वनकुलमंडूकसर्पमार्जारानां त्र्यहमुपवासो विप्रवासश्च प्राणायामा घृतप्राशनं चेतरेषां श्मशानाभ्यध्ययने चैवम् ॥ १ ॥

इति श्रीगीतमीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कुत्ता, मंडक, सर्प, खिलाव यह यदि पढ़नेके समय गुरु शिष्यके बीचमें होकर निकलजाय तो ब्राह्मण तीनदिन वनमें निवासकर उपवास करे और क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि प्राणायाम और घृतका भोजन करे, श्मशानके निकट जो पढ़ताहै उसके लियेभी यही प्रायश्चित्त है ॥

इति श्रीगीतमस्मृतौ मापाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षः अहुतो ब्रह्मचारी यथोपपादमूत्रपुरीषो भवति नास्याचमनकल्पो विद्यते अन्यत्रापमार्जनप्रधावनोक्षणभ्यो न तदुपस्पर्शनादशौचम् ॥ न त्वेवैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुञ्ज्यात् न ब्रह्माभिव्याहारेदन्यत्र स्वधानिनयनात् ॥

यज्ञोपवीतसे प्रथम इच्छानुसार बोलने और इच्छानुसार भोजनकरनेमें कोई दोष नहीं है, उस समय हवन और ब्रह्मचर्यका अधिकार नहीं होता, ऐसे मनुष्यका मलमूत्र त्यागनेका भी कोई नियम नहीं है; उसको शरीरका मार्जन, धोना, और ऊपर जल छिड़कनेके लिये शुद्धिके निमित्त आचमनकामी विधान नहींहै, न छूनेयोग्य वस्तुके स्पर्शकरनेसे भी उसे दोष नहीं लगता उसको अग्निमें हवन वा बलिवैश्वदेवकार्यमेंभी नियुक्त न करे, और पितृकार्यके अतिरिक्त उसको वेदका मन्त्र न पढ़ावे,

उपनयनादिनियमः ॥ उक्तं ब्रह्मचर्यम् अग्नीन्धनभैक्षचरणे सत्यवचनम् ॥ अपा-
मुपस्पर्शनमेक आगोदानादि । वहिः संध्यार्थं तिष्ठेत्स्वामासीतोत्तरां सज्योति-
प्याज्योतिषो दर्शनाद्वाग्यतो नादित्यमीक्षयेत् वर्ज्येन्मधुमांसगंधमात्यादि वा
स्वप्रांजनाभ्यंजनयानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवादनस्नानदंतधावनह-
र्षनृत्यगीतपरिवादभयानि ।

यज्ञोपवीत होनेसेही सब नियमोंकी रक्षा करनी होतीहै, उपनयन होजानेपर जो चर्य कहाहै उसे करै, अग्निकी रक्षा, ईधन, भिक्षा मांगना, सत्य बोलना, जलोंसे आचमन करना कोई २ इन नियमोंको गोदानसे पहले कहतेहैं कि, संध्या करनेके निमित्त ग्रामसे बाहर जाय, और प्रातःकालकी संध्या उससमय करै कि जिस समय आकाशमें तारागण स्थित हों, और सायंकालकी संध्या नक्षत्रोंके उदय होनेपर मौन धारणकर करै; सूर्यको न देखे, ब्रह्मचारी, मधु, मांस, गन्ध, फूलमाला, दिनमें शयन, अंजन, उबटना, सवारी, जुता, छत्री, काम, क्रोध, लोभ, मोह, वाजा, वजाना, अधिक स्नान, दूतोन, हर्ष, नृत्य, गाना, निन्दा, मदिरा और मय इन सबको त्यागदे ॥

गुरुदर्शने कंठप्रावृतावसक्थिकापाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवितहसितजृम्भितास्फोटनानि स्त्रीप्रेक्षणात्मने मैथुनशंकायां धूतं हीनसेवामदत्तादानं हिंसा आचार्यतत्पुत्रस्त्रीदीक्षितनामानि शुष्कां वाचं मयं नित्यं ब्राह्मणः अधः शय्याशायी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी वागुदरकर्मसंयतः नामगोत्रे गुरोः संमानतो निर्दिशेत् ॥ अर्चिते श्रेयासि चैवम् ॥ शय्यासनस्थानानि अवहाय प्रतिश्रवणमभिक्रमं वचनादृष्टेन अधःस्थानासनस्तिर्यग्वा तत्सेवायां गुरुदर्शने चोत्तिष्ठेत् । गच्छंतमनुव्रजेत् कर्म विज्ञाप्याख्यायाऽऽहूताध्यायी युक्तः प्रियहितयोस्तद्गार्यापुत्रेषु चैवम्, नोच्छिष्टाशनस्त्रपनप्रसाधनपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि विप्रोष्योपसंग्रहणं गुरुभार्याणां तत्पुत्रस्य च नैके युवतीनाम् ॥

और गुरुको देखकर कंठ रोकले, घुटने फैलाकर बैठना, पैरोंका फैलाना, थूकना, हसना, जंभाई लेना अंगको हाथ से वजाना इनकाभी त्याग करदे, स्त्रीको देखना, स्पर्श करना, तथा मैथुनकी शंका, जुआ, नीचकी सेवा, विनादिये लेना, हिंसा, आचार्य और आचार्यके पुत्र स्त्री तथा दीक्षित इनका नाम लेना, सूखी वाणी, मदिराका पीना इन सब कार्योंको एकवारही त्यागदे; ब्राह्मणको सर्वदा पृथ्वीपर शयन करना उचित है; गुरुसे प्रथम उठै नीचे आसनपर बैठे और गुरुके सोजानेपर पीछे शयनकरै; वाणी, मुजा और उदर इनको अपने वशमें रखलै, मान अर्थात् आदरसहित गुरुका नाम और गोत्र उच्चारण सब करै; सब भांति से पूजने योग्य और श्रेष्ठ मनुष्यके साथभी इसीप्रकारका व्यवहार करै, गुरुकी शय्या, आसन और स्थानका त्यागकरै नीचे बैठ अथवा नम्रभावसे स्थित होकर गुरुके वचनोंको श्रवणकरै, और गुरुके वचनके अनुसार चलै; गुरुको देखतेही उठ खड़ाहो, उनके चलनेपर पीछे २ चलै, यदि गुरु किसी बातको पूछें तौ उनको यथार्थ उत्तर दे, वह जब पढ़नेके लिये बुलावें तभी जाकर पढ़ै, और सर्वदा उनका प्रिय और हितकारी कार्य करतारहै और उच्छिष्टभोजन, स्नान कराना, प्रसाधन, पैरघोना, उबटना चरणोंका स्पर्श इनके अतिरिक्त उनकी स्त्री और पुत्रोंके साथभी इसी प्रकारका व्यवहार करै, और परदेशसे आनेपर गुरुकी स्त्रीपुत्रोंकेभी चरण स्पर्श करै, कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि गुरुकी युवती स्त्रियोंके साथ उक्त व्यवहार न करै ॥

व्यवहारप्राप्तेन सार्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तं पतितवर्जमादिमध्यातेषु भव-
च्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपूर्व्येण आचार्यज्ञातिगुरुस्वेच्छालाभेऽन्यत्र तेषां पूर्व परि-
हरेत् निवेद्य गुरवेऽनुज्ञातो भुंजीत । असंनिधौ तद्भार्यापुत्रसत्रह्यचारिसद्व्यः ।
वाग्यतस्तृप्यन्नलोलुप्यमानस्सन्निधायादकं स्पृशेत् ।

आवश्यकता होनेपर पतित और निन्दित वर्णके अतिरिक्त और सबके यहांसे भिक्षा लेबावे,
भिक्षाके समय वर्णके क्रमसे प्रथम मध्य और अन्तमें “भवत्” शब्दका प्रयोग करे, ब्राह्मण
भिक्षाके समय पहले “भवत्” शब्दका प्रयोग करे, क्षत्रिय मध्यमें और वैश्य अन्तमें; आचा-
र्य, कुल, जाति, गुरु और अन्यान्य आत्मियोंके निकट भिक्षा न मांगे, यदि अन्यत्र कहीं
भिक्षा न मिले तो इनमेंसे प्रथम कहेहुएको त्यागकर औरोंसे भिक्षा मांगे; भिक्षासे जो
कुछ मिले उसे गुरुके आगे निवेदन करे, इसके पीछे गुरुकी आज्ञा लेकर भोजन करे गुरुके
विद्यमान न होनेपर उनकी स्त्री, पुत्र और अपने साथके पढ़नेवाले शिष्योंके आगे रखे
और भिक्षाका अन्न समर्पण करे; इसके पीछे तृप्ति होनेतक मौन होकर भोजन करे, और
भोजनको रखकर जलसे आचमन करे;

शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तौ रज्जुवेणुविदलाभ्यां तनुभ्याम्, अन्येन व्रतं रा-
ज्ञा शास्यः ।

शिष्यको किसीप्रकारका आघात न पहुंचाए ऐसी ताड़ना गुरु करे, और अशक्तको रस्सी,
वंत, बांस वा हाथ आदिसे शिक्षा करे; और जो गुरु अन्य वस्तुसे करताहै राजा उसे
दंड दे;

द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्य्यं चरेत् । प्रतिद्वादश सर्वेषु ग्रहणांतं वा । विद्याति
गुरुरर्थेन निमन्त्र्यः कृतानुज्ञातस्य वा स्नानम् । आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणां मातेत्येकः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

एक वेदके पढ़नेमें बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य्य धारणकरे, प्रत्येक वेदमें इसीप्रकार ब्रह्मचर्य्य है;
जबतक भली मांतिसे विद्या प्राप्त न हो तबतक पढ़तारहे; जब पढ़चुके तो गुरुको इक्षिण
दे, इसके पीछे गुरुकी आज्ञासे स्नानकरे, सब गुरुओंमें आचार्यही श्रेष्ठ है; और कोई २
माताको श्रेष्ठ बताते हैं ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मायाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

तस्याश्रमविकल्पमंके ब्रुवते । ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वैखानस इति । तेषां
गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् । तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्वमात्रं
गुरोः कर्मशेषेण जपेत् । गुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे सत्रह्यचारिण्यस्मौ
वा एवंवृत्तो ब्रह्मलोकमेवाप्नोति जितेंद्रियः । उत्तरेषां चैतदविरोधी अनिचयो
भिक्षुः ऊर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु भिक्षार्थी ग्राममियात् । जघन्यमनिवृत्तं
चरेत् ॥ निवृत्ताशीर्वाक्चक्षुःकर्मसंयतः कौपीनाच्छादनार्थं वासो विभृयात्

ग्रहीणमेके निर्णेजनाविप्रयुक्तमौषधीवनस्पतीनामंगमुपाददीत न द्वितीयामपहर्तु रात्रिं ग्रामे वसेत् । मुंडः शिखी वा वर्ज्येजीववधसमीभूतेषु हिंसानुग्रहयोर-
नारंभो वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः श्रावणकेनाग्निमाधाय अग्राम्य-
भाजी देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्ष्यमप्युपयुंजीत
न फालकृष्णमधितिष्ठेत् ग्रामं च न प्रविशेत् जटिलश्रीराजिनवासाः नातिसां-
वत्सरं भुंजीत ऐकाग्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गार्हस्थस्य गार्हस्थस्य ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कोई २ ब्रह्मचारीको इसभांति आश्रमोंका विकल्प कहतेहैं कि ब्रह्मचारी, गृहस्थी, भिक्षुक,
वैखानस इन सबके इनका मूल केवल गृहस्थही है, कारण कि और तीनोंमें संतान
उत्पन्न नहीं होती, और इन चार प्रकारके आश्रमोंमें ब्रह्मचारीके लिये सर्वदा आधीनताही
फहीहै गुरुके निमित्त कर्मको करनेसेही वह लोकोंको जीतताहै यदि गुरु न हो तो गुरुको
संतानके प्रति गुरुके व्यवहार करै; यदि गुरुकी कोई संतान न हो तो बृद्धगुरुका
शिष्य वा अग्निके प्रतिही इसप्रकारका आचरण करै, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर इसप्रकारका
व्यवहार करताहै वह ब्रह्मलोकको जाताहै, और यह भिक्षुक पिछले तीनों आश्रमोंका विरोधी
न हो संचयन करै, ऊर्ध्वरेता और स्थिरस्वभाव होकर वर्षाऋतुमें भिक्षाके अर्थ ग्राममें जाय,
निषिद्ध शूद्रजातिके अतिरिक्त उत्तम जातिमें भिक्षा मांगै भिक्षुक किसीको आशीर्वाद न दे और
वाणी, नेत्र तथा अपना कर्म इनको छिपावै, कौपीनमात्र और ओढनेके वस्त्रको धारणकरै; कोई २
ऐसा भी कहते हैं कि किसीके त्यागे उस वस्त्रको धारणकरै जो साफ और नया हो, अथवा
औषधी वा वनस्पतिकी छालको धारणकरै; और भोजनके निमित्त दूसरी रात्रिमें ग्राममें
।स न करै; मुंडन कराये रहै, शिखाको राखै और जीवकी हिंसाको त्यागदे, प्राणियोंका
वध न करै, सब प्राणियोंको समदर्शी हो देखै; और किसीके ऊपर हिंसा वा दया न करै,
वैखानसका धर्म है कि मूल भोजनकर वनमें निवास करै, तपस्या करै; और तपस्वियोंकी
अग्नि स्थापनकरै, ग्राममें भोजन न करै, देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य इनकी पूजा करै; निषिद्ध
जातिके अतिरिक्त सबका अतिथि वने, और कभी २ भिक्षा मांगकरभी जीवन धारण
करले; परन्तु जो जोतनेसे उत्पन्न हो उस अन्नको न खाय किसी ग्राममें भी प्रवेश न करै,
मस्तकपर जटा रखै, चीर वा मृगछालाके वस्त्र धारणकरै, वर्षादिनसे अधिकके अन्नको न खाय
आचार्योंने कहाहै कि गृहस्थाश्रमही श्रेष्ठ और प्रत्यक्ष फलका देनेवाला है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विदेतानन्यपूर्वा यवीयसीम् असमानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं
सप्तमात् पितृवंधुभ्यो जीविनश्च मातृवंधुभ्यः पंचमात् ॥

वेद के उपरान्त गृहस्थी होकर अपने अनुरूप, जिसका किसीके विवाह न हुआहो
और अपनी समान थोड़ी अवस्थावाली कन्याके साथ विवाह करै, जो अपने प्रवरकी होतीह

उसके साथ परस्परमें विवाह नहीं होता । पिताके बंधुओंकी सातवीं पीढ़ीसे ऊपर और माताके बंधुओंकी पांचवीं पीढ़ीसे ऊपर विवाह होजाताहै;

ब्राह्मो विद्याचारित्रबन्धुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृतां संयोगमंत्रः । प्राजापत्ये सह धर्मं चरतामिति । आपं गोमिथुनं कन्यावते दद्यात् । अंतर्वेद्याविजे दानं दैवः । अलंकृत्येच्छन्त्याः स्वयं संयोगो गांधर्वः । वित्तेनानतिस्त्रीमतामासुरः । प्रसह्यादानाद्राक्षसः । असंविज्ञानोपसंगमनात्पैशाचः । चत्वारो धर्म्याः प्रथमाः षडित्येके ॥

कन्याको वल्ल और आभूषणोंसे सुसज्जितकर उत्तम चरित्रवाले और शीलवान् मनुष्यको कन्या देनेका नामही ब्राह्म विवाह है, “तुम दोनों जने एकत्र होकर धर्मका आचरण करो” यह कहकर जो विवाहमें कन्या और वरका संयोग करानाहै उसका नाम प्राजापत्य विवाह है; कन्याके पिताको दो गौ देकर जो कन्या विवाही जाय उसका नाम आप विवाह है, वेदीके यज्ञमें ब्रती पुरोहितको कन्या देनेका नाम दैवविवाह है, अलंकृत और अभिलाषिणी स्त्रीके साथ पुरुषका परस्परमें इच्छानुसार जो संयोग होजाताहै उसका नाम गांधर्व विवाह है धन दान करके अधिक स्त्रीवाले मनुष्यको जो कन्या दी जातीहै वह आसुर विवाह है । वलपूर्वक कन्याको हरण करलेआनेका नाम राक्षस विवाह है; और कन्याको कन्याकी अज्ञान अवस्थामें लेआवै उसका नाम पैशाच विवाह है, इन आठों प्रकारके विवाहोंमें प्रथमके चार धर्मानुगत हैं, और कोई २ कहतेहैं कि प्रथमके छैःही धर्मानुगत हैं;

अनुलोमानंतैरैकांतरद्वंतरासु जाताः सवर्णावष्टोग्रनिषाददौष्यंतपारशवाः प्रतिलोमासु सूतमागधयोगवक्षत्तुवैदेहकचंडालाः ब्राह्मण्यजीजनत्पुत्रान् वर्णभ्य आनुपूर्व्यात् ब्राह्मणसूतमागधचंडालान् तेभ्य एव क्षत्रिया मूर्धावसिक्तक्षत्रियधीवरपुल्कसान् तेभ्य एव वैश्याभृज्जुकंटकमाहिष्यवैश्यवैदेहान् तेभ्य एव पारशवयवनकरणशूद्रान् शूद्रेत्येके । वर्णांतरगमनमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमेन पंचमेन चाचार्याः सृष्ट्यंतरजातानां च प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः शूद्रायां च असमानायां च शूद्रात्पतितवृत्तिः अंत्यः पापिष्ठः ॥

अनुलोमविवाहके अनन्तर जिसमें एकका अंतर हो वह अनुलोम और जिसमें दोका अंतर हो वह प्रतिलोम, इन स्त्रियोंमें ब्राह्मणइत्यादिसे उत्पन्नहुए पुत्र यह होते हैं, विप्रसे सुनार, अम्बष्ठ, क्षत्रीसे क्षत्रिया, उग्र, निषाद, वैश्यामें दौष्यंत और पारशव वैश्यसे शूद्रामें जन्म है, प्रतिलोम स्त्रियोंमें ब्राह्मणमें क्षत्रीसे सूत, मागध, क्षत्रियामें वैश्यसे आयोगव, क्षत्तां, और शूद्रसे वैश्यामें वैदेहक चांडाल उत्पन्न होते हैं, कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि क्रमानुसार चारों वर्णोंके पतियोंसे इन पुत्रोंको उत्पन्नकरती है ब्राह्मणसे ब्राह्मण, क्षत्रियोंसे सूत, वैश्यसे मागध, शूद्रसे चांडाल और इनसेही क्षत्रियाब्राह्मणसे मूर्धावसिक्त, क्षत्रियसे क्षत्री, वैश्यसे धीमर, और शूद्रसेः पुल्कसको उत्पन्न करतीहै, और इनसेही वैश्या स्त्री भृज्जु, कंटक, और क्षत्रियसे माहिष्य और वैश्यसे वैश्य और शूद्रसे वैदेहको उत्पन्न करती है और इसीभांति चारों वर्णोंके योगसे शूद्रा क्रमानुसार पारशव, यवन, करण और शूद्र यह चारप्रकारके पुत्र

उत्पन्नकरवी है, आचार्य कहते हैं कि छोटी और बड़ी जातिके विवाहसे वीं वा पांचवीं पीढ़ीमें दूसरा वर्ण होजाताहै; और जो अन्यवर्णमें उत्पन्न हुए हैं उनमें प्रतिलोम और शूद्रांमें उत्पन्न अन्यवर्णकी स्त्रीमें शूद्रसे जो उत्पन्नहुए हैं वह पतितवृत्ति अन्त्यज और पापी हैं;

पुनंति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानाषादश दैवादशैव प्राजापत्यादश पूर्वान्दशा-
परानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रा ब्राह्मीपुत्राः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सज्जनपुत्र तीनपीढ़ीतक और आर्ष तथा दैवविवाहसे जो पुत्र उत्पन्न हुआहै वह दश और दश अगले पुरुषोंको पवित्र करता है और जो ब्राह्म विवाहसे पुत्र उत्पन्न है वह पूर्वोक्त बीस पीढ़ी और अपनेको पवित्र करता है ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

ऋतावुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ॥ देवपितृमनुष्यभूतर्षिपूजकः नित्य-
स्वाध्यायः पितृभ्यश्चोदकदानम् । यथोत्साहमन्यद्वापर्योदिरिर्मादिर्वा तस्मिन्
गृह्याणि देवपितृमनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च बलिकर्मप्रावर्धनवन्तरिर्विश्वदेवाः
प्रजापतिः स्विष्टकृदिति होमः दिग्देवताभ्यश्च यथा स्वद्वारेषु मरुद्भ्यो गृहदेव-
ताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्येऽद्रच उदकुंभे आकाशायेत्पन्तरिक्षे नक्तंचरेभ्यश्च
सायं स्वस्तिवाच्य भिक्षादानप्रश्नपूर्वं तु ददातिषु चैवं धर्मेषु समद्विगुण हस्त्रा-
नंत्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः गुर्वर्थानिवेशौषधार्थवृत्ति-
क्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागौ बहिर्वेदिभिक्षमाणेषु
कृतामितरेषु प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ।

ऋतुमती स्त्रीमें तथा निषिद्ध दिनोंमें स्त्रीसंसर्ग नकरै और प्रतिदिन देवता, पितर, मनुष्य, भूत और ऋषि इनकी पूजा करतारहै, सर्वदा वेदको पढ़ै, पितरोंको जलदान करै, और उत्साह सहितें अन्यकर्मकोभी करै, स्त्री, अग्नि और पुत्रादिके होनेपर गृहस्थके कर्म होतेहैं; देव, पितर, मनुष्य, स्वाध्याय और बलि वैश्वदेव यह यज्ञ हैं, अग्निमें बर्षा करै, अग्नि, धन्वन्तरि, विश्वदेव, प्रजापति और स्विष्टकृत् इनमें हवन करै, जिस दिशाका जो अधिपति है उसी औरको उसके निमित्त बलिप्रदान करै, दिशाके द्वारपरभी अन्न दे ४९ मरुत् और घरके देवताओंके निमित्तभी बलिप्रदानकरै घरके भीतर जाकर ब्रह्माके निमित्त बलि-प्रदानकरै, और जलके कलशमें जलकी पूजाकरै अन्तारिक्षमें आकाशको बलिप्रदानकरै, और सायंकालमें राक्षसोंको बलिप्रदानकरै स्वस्तिवाचन कराकर ब्राह्मणको दे व अब्राह्मणको देनेमें इसी प्रकारके धर्मोंमें समान फल है अथवा भिक्षासे ब्राह्मणको दानकरै, या किसी धर्मके विषयमें दानकरै, दानकारी अब्राह्मण, श्रोत्रिय और वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको दानकरनेसे समान फलहोताहै, दुगुना, सहस्रगुना, और अनन्तगुना फल प्राप्तहोताहै गुरुओंके निमित्त और औपधिके लिये भिखारी दरिद्र, यज्ञ करनेके लिये उद्यत, विद्यार्थी, निर्बल,

पथिक, और विश्वजित्यज्ञकारी इनको विभाग करके देना उचित है, वेदीके बाहरे मांग-नेवालेको अन्नदान देना उचित है, यदि किसी मनुष्यको कुछ देना स्वीकार करलियाहो फिर उसको विधर्मी जानले तो उसको अंगीकार कोहुई भी वस्तु न दे.

कुट्टहृष्टभीतार्तलुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यनृतान्यपातकानि । भोजयेत्पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणीसुवासिनीस्थविरान् जघन्यांश्च आचार्य-पितृसखीनां च निवेद्य वचनाक्रियाः ऋत्विगाचार्यश्चशुरापितृमातुलानामुपस्थाने मधुपर्कः संवत्सरे पुनर्यज्ञविवाहयोरर्वाक् राज्ञश्च श्रोत्रियस्य अश्रोत्रियस्यासनोदके श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नाविशेषांश्च प्रकारयेत् नित्यं वा संस्काराविशिष्टं मध्यतोन्नदानं वैद्ये साधुवृत्ते विपरीतेषु तृणोदकभूमिः स्वागतं ततः पूज्यानत्या-शश्च शय्यासनावसथालुब्रज्योपासनानि संदृक्श्रेयसोः समानानि अल्पशोपि हीने।

क्रोधी, आनन्दी, डरपोक, रोगी, लोभी, बालक, वृद्ध, मूढ, मत्त, और उन्मत्त, इनको मिथ्या बात कहनेमें भी पातक नहीं है, अतिथि, कुमार, (बालक) गर्भिणी, सुहागिनी स्त्री, और अपनेसे बड़े तथा छोटे इनको पहले भोजन कराकर गृहस्थी पीछे आप भोजन करें; ऋत्विक्, श्वशुर, पिता, मामा, आचार्य इनकी पूजामें वर्ष दिनमें एकवार मधुपर्क यह करें; और आचार्य, पिता और मित्र इनको निवेदन करके पीछे किसी कर्मको करें, विवाहके राजासे प्रथम वेदपाठी ब्राह्मणको मधुपर्क दे अश्रोत्रियके आनेपर आसन और जल दे; और कमी श्रोत्रिय आजाय तो उसी समय पाद्य अर्घ्य और विविध भांतिके अन्न वन-वाकर दे, चतुर वैद्यको वनायेहुए अन्नमेंसे प्रतिदिन अन्न दे, और वैद्य यदि अच्छा न हो तो तृण, जल, भूमि इनका दानकरें, जो कुछभी न हो तो स्वागत तो अवश्यही करें; और पूजन करतेके योग्यका अवलंबन करके भोजन न करें; और शय्या, आसन, घर, पीछे चलना, सेवा अपने समान और उत्तम मनुष्य इन दोनोंके निमित्त एकभावसे करें; जो अपनेसे हीन हो, उसको पूर्वोक्त सत्कारसे किंचित् सत्कार करें;

असमानग्रामोतिथिरेकरात्रिको धिवृक्षसूर्योपस्थापी कुशलानामयारोग्याणामनु-प्रश्रोऽथ शूद्रस्याब्राह्मणस्यानतिथिरब्राह्मणो यज्ञे संवृत्तश्चेत् भोजनं तु क्षत्रियस्योर्ध्व-ब्राह्मणेभ्यः अन्यान् भृत्यैः सहानृशंसार्थमानृशंसार्थम् ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो अपने ग्रामका न हो किसी वृक्षके नीचे एक रात्रि निवास करताहो, सूर्यकी स्तुति करताहो उसीको अतिथि कहतेहैं, उसकी कुशल क्षेम और आरोग्यताका प्रश्न करें, शूद्र और अंत्यज यह अतिथि नहीं होसकता; अब्राह्मण यदि यज्ञमें आजाय तो वह अतिथि होताहै; परन्तु क्षत्रियको ब्राह्मणसे पीछे भोजन करावै, और अन्यजातियोंको भृत्योंके साथ दयाके परवश होकर भोजनकरावै ।

इति श्रीगौतमस्मृती भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ओऽध्यायः ६.

पादोप हणं गुरुसमवायेऽन्वहम् । अभिगम्य तु विप्रोष्य मा पितृतद्वंधूनां
जानां विद्यागुरूणां च स पाते परस्य स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादोऽज्ञस-
मवाये स्त्रीपुंगोर्गोऽभिवादतोऽनियममेकेनाविप्रोष्य स्त्रीणाममातृपितृव्यभार्या-
भगिनीनां नोपसंग्रहणं तृभार्याणां श्वश्रुश्च ऋत्विक्शुशुरापितृव्यमातुलानां तु
यवीयसां प्रत्युत्थानमनभिव : तथान्यः पूर्वः पौरोऽशीतिकावरः शूद्रोऽप्य-
पत्यसमेन अवरोप्यार्यः शूद्रेण नाम चास्य वर्जयेत् ॥

प्रतिदिन गुरुओंका स होनेपर उनके चरणोंको ग्रहण करै और यदि विदेशसे माता,
पिता, इनके बंधु तथा बड़ाभाई और विद्यागुरु यह आज्ञाय तौ इनके सन्मुख जाकर चर-
णोंको ग्रहणकरै, और यदि यह इकट्ठे होकर मिलै तौ जो सबके गुरु हैं पहले उनके
चरण ग्रहण करै “भायको यह मैं नमस्कार करताहूँ” इस भांति अपने नामको लेकर नम-
स्कारकरै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि मूर्खोंके स्त्रियोंके मिलनस्थानसे
नमस्कारका कुछ नियम नहीं है, और जो स्त्री, माता, चाचा, ताई, भगिनी, भाईकी स्त्री,

यह परदेशसे आई हैं तौ इनके चरणोंको ग्रहण न करै, ऋत्विज, श्वशुर, चाचा, मामा,
और अपनेसे दश वर्ष बड़ा अन्यजाति पुरवासी हो तौ इनको देखतेही उठकर खड़ा होजाय
परन्तु नमस्कार न करै; और अस्सी वर्षका शूद्रभी अपने पुत्रके समान बैठाने योग्य है; और
उसका नाम शूद्रके समान लेना उचित नहीं;

राज्ञश्चाजपः प्रेष्यः भोभवन्निति वयस्यः समानेऽहनि तो दशवर्षवृद्धः पौरः
पंचभिः कलाधरः श्रोत्रियश्चारणस्त्रिभी राजन्यवैश्यकर्मविद्याहीनाः दीक्षितश्च
प्राक्क्रियात् वित्तबंधुकर्मजातिविद्यावयांसि सामान्यानि परबलीयांसि श्रुतं तु
सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च ॥

यदि राजाका भृत्य अजप हो तौ उसको भी भवत्शब्दका प्रयोग करै; जो एक दिनही
उत्पन्न हुआ हो उसे वयस्य और अपनेसे जो पांच वर्ष बड़ा हो उसे कलाधर वा
श्रोत्रिय कहतेहैं और जो अपनेसे तीन वर्ष बड़ा है वह चारण कहाताहै, और कर्म विद्यासे
हीन क्षत्रिय, वैश्य, दीक्षित, घन, बंधु, कर्म, जाति, विद्या, अवस्था इन सबमें पहला बड़ा है,
और वेद तौ सबसेही बड़ा है, कारण कि वही धर्म और श्रुतिका मूल है;

चक्रिदशमीस्थाणुग्राह्यवधूस्नातकराजभ्यः पथोदानं राज्ञा तु श्रोत्रियाय त्रि ॥

इति गौ ऋ धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रथवान्, नव्वै अधिक अवस्थाका मनुष्य, दयाकरने योग्य, वधू, स्नातक, ब्रह्मचारी,
यह सब राजाको मार्ग छोडदे, और राजा वेदपाठीको मार्ग छोडदे ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मोऽध्यायः ७.

आपत्कल्पो ब्रा णस्याब्राह्मणादिद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषा । समाप्तेर्ब्रा णो गुरुः याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः सर्व्वेषां पूर्व्वः पूर्व्वो गुरुः तदभावे क्षत्रवृत्तिः तदभावे वैश्यवृत्तिः तस्यापण्यं गंधरसकृतान्नातिलशाणक्षौमाजिनानि रक्तनिर्णिके वाससी क्षीरं च सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधुमांसतृणोदकापथ्यानि पशवश्च हिंसासंयोगे पुरुषवशा कुमारी वेहतश्च नित्यं भूमित्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वन-
हुहश्चैके विनिमयस्तु रसानां रसैः पशूनां च न लवणाकृतान्नयोस्तिलानां च समेनामेन तु पक्वस्य संप्रत्यर्थे सर्व्वधातुवृत्तिरशक्तावशूदेण तदप्येके प्राणसं-
शये तद्वर्णसंकराभक्ष्यनियमस्तु प्राणसंशये ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म वैश्यकर्म ॥

इति गौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आपत्तिकालमें ब्राह्मण जातिके अतिरिक्त अन्यजातिसे विद्या पढे और जयतक पढतारहै तबतक उसकी सेवा शुश्रूषा करतारहै, अथवा पीछे २ चले फिर जब विद्या पढ चुके तब ब्राह्मणही गुरु होताहै, यज्ञकराना, पढाना, दानलेना यह सब धर्म ब्राह्मणोंकेही हैं, इनमें पहला धर्म श्रेष्ठ है; यदि ब्राह्मणोंको यह वृत्ति न मिलै तौ वह क्षत्रियवृत्तिको करनेलगे; और उसमें सफल मनोरथ न हो तौ वैश्यकी वृत्तिसे जीविका निर्वाह करै; परन्तु ब्राह्मण गंध, रस, पक्का अन्न, तिल, सन, मृगचर्म, रंगेवस्त्र, दूध, दूधके त्रिकार, मूल, फल, फूल, औषधि, शहत, मांस, तृण, जल, अपथ्यवस्तु, हिंसाके संयोगमें पशु, पुरुष, वांछ स्त्री, कुमारी, जिसका गर्भ गिरजाताहो, भूमि, धान, जौ, वकरी, भेड इनको कदापि न वेचै, और कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि औषधि, गौ, बैल, इनकाभी वेचना उचित नहीं, एक प्रकारके रसके साथ दूसरे प्रकारके रसका बदला नकरै; पशुके साथ पशुका बदला न करै लवणके साथ लवणका, पके अन्नके साथ पके अन्नका, और तिलोंसे तिलकाभी बदला न करै, भोजनकी आवश्यकता होनेपर उसीसमय कच्चे अन्नसे पके अन्नका बदला करले; और अशक्त होनेपर सब धातुओंके द्वारा अपनी आजीविका करले, शूद्रके साथ कमी न करै; परन्तु वर्णसंकरके क्ष्यका नियम रक्खै, प्राण संशय उपस्थित होनेपर ब्राह्मण भी शस्त्रधारण करले, और क्षत्रिय वैश्य कर्मको करै ।

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

द्वौ लोके धृतवृत्तौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः । तयोश्चतुर्विधस्य मनुष्यजातस्यां-
तःसंज्ञानां चलनपतनसर्पणानामायत्तं जीवनं प्रसूतिरक्षणमसंकरो धर्मः । स एष बहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदांगवित् वाकोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृ-
त्तिः चत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः पद्सु वासामया-

चारिकेष्वभिनिनीतः वड्भिः परिहार्यो राज्ञा वध्यश्चावध्यश्चादंड्यश्चावहि
श्चापरिचाह्यश्चापरिहार्यश्चेति ।

इस लोकमें राजा और बहुश्रुत ब्राह्मण यह दोहीजन व्रत धारण करनेवाले हैं इसके बीचमें बहुश्रुत ब्राह्मणही श्रेष्ठ है. चार प्रकारकी मनुष्यजातिमें ज्ञानका अंश है, इनका जीवन, चलन, पतन, पढ़न, यह उत्सर्पणके आधीनहै, प्रसूतिकी रक्षाही पवित्र धर्म है, वह मनुष्यही बहुश्रुत कहाजाता है जो लोकरीति तथा वेद वेदांगका जाननेवाला और वाको यमें चतुर तथा इतिहास और पुराण इनमें कुशल हो; सर्व वेदादि श की अपेक्षा करनेवाला (उसका अनुसरण करनेवाला) जिसके चालीस प्रकारके हुएहैं, तीन प्रकारके कर्मोंमें अभिरत और जो छैः कर्मोंमें तत्पर हो; और जो समय २ के आचरणोंमें भलीप्रकार शिक्षित हो और जिसमें ऊपर कहे हुए छैःहों कर्म नहीं वह राजाके मारने योग्य है; जो उपरोक्त छैःहो कर्मको करताहै उसे राजा दण्ड न दे और न उसकी निन्दा करै तथा वह राजाके देशसे बाहर निकालने योग्य भी नहींहै ॥

गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनं जातकर्मनामकरणान्नप्राशनं चौलोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पंचानां यज्ञानामनुष्ठानं देव-पितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां च अष्टकापार्वणश्राद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्व-युजीति सप्तपाकयज्ञसंस्था अभ्याधेयमभिहोत्रं दर्शपौर्णमासौ आग्रहायणं चातु-र्मास्यानि निरूढपशुबंधसौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञसंस्थाः अग्निष्टोमोत्यग्निष्टोम उक्त्यः षोडशी वाजपेयोतिरात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः । अथाष्टावात्मगुणाः दया सर्व्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचमना-यासो मंगलमकार्ष्ण्यमस्पृहेति । यस्यैते न चत्वारिंशत्संस्काराः न चाष्टावात्म-गुणा न स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति ॥ यस्य तु खलु संस्कारा-णामेकदेशोऽप्यष्टावात्मगुणाः अथ स ब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति गच्छति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन, चारों वेदोंका अध्ययनके अर्थ ब्रह्मचर्य, स्नान, विवाह, देव, पितर, मनुष्य, भूत, ब्रह्म इन पांचों यज्ञोंका अनुष्ठान, अष्टका और पार्वण श्राद्ध, श्रावण, अगहन, चैत्र, और कारके महीनेमें-की १५ पूर्णमासी, यह सात पाकयज्ञके भेद हैं और अग्निका आधान, अभिहोत्र, दर्शयज्ञ, पूर्णमास-यज्ञ, आग्रहायणयज्ञ, चातुर्मास्ययज्ञ, पशुबंधयज्ञ, सौत्रामणि यह सात हविर्यज्ञके भेद है, और अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्त्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम, यह सात सोमयज्ञके भेद हैं, और यह चालीस गर्भाधानआदि संस्कार हैं; आठ प्रकारके आत्माके गुण हैं, प्राणीमात्रमेंही दया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मंगलविधान, कृपणताराहित्य; और अस्पृहा, यह चालीस प्रकारके संस्कार और आठ प्रकारके गुण जिसमें नहींहैं वह कभी भी

ब्रह्मलोक वा सायुज्यमुक्तिको प्राप्त नहीं होता और जिसमें चालीस प्रकारके संस्कारमेंसे कुछभी हों और आठ प्रकारके गुण हों वह सायुज्य वा सालोक्यको प्राप्त होताहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

स विधिपूर्व स्नात्वा भार्यामधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थधर्मान् प्रयुञ्जान इमानि व्रतान्यनुकर्षेत् स्नातकः नित्यं शुचिः सुगंधिः स्नानशीलः सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यात् । न रक्तमुल्वणमन्यधृतं वा वांसो विभृयात् । न सशु-
पानहौ निर्णिक्तमशक्तौ न रुढश्मश्रुरकस्मान्नाग्निमपश्च युगपद्वारयेत् । नापोऽ-
मेध्येन संसृजेत् । नांजलिना पिवेत् । न तिष्ठन् उद्धृतेनोदकेनाचामेत् । न
शूद्राशुच्येकपाण्यावार्जितेन न वाय्वग्निं विप्रदित्यापो देवता गाश्च प्रतिपश्यन्
वा मूत्रपुरीषामेध्यान्युदस्येत् नैता देवताः प्रति पादौ प्रसारयेत् । न पर्णलो-
ष्टाश्मभिर्मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यात् । न भस्मकेशनखतृपकपालामेध्यान्यधि-
तिष्ठेन्न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत संभाष्य पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् ।
ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत । अथेतुं धेनुभज्येति श्रूयात् । अभद्रं भद्रमिति
कपालं भगालमिति मणिवनुरितोद्बधुः । गां धयंतीं परस्मै नाचक्षीत । नचै-
नां वारयेत् । न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति विलंबेत् । न च तस्मिन् शयने
स्वाध्यायमधीयीत । न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेत् । नाकल्पां नारी-
मभिरमयेत् । न रजस्वलां न चैतां श्लिष्येत् न कन्याम् । अग्निमुखोपधमनविगृ-
ह्यवादवहिर्गन्धमाल्यधारणपापीयसावलेखनभार्यासहभोजनांजनावेक्षणकुट्टार-
प्रवेशनपादधावनसंदिग्धभोजननदीवाहुतरणवृक्षवृषभारोहणावरोहणप्राणना-
व्यवस्थां च विवर्जयेत् । न संदिग्धां नावमधिरोहेत् । सर्व्वत एव आत्मानं
गोपायेत् । न प्रावृत्य शिरोहनि पर्येटेत् । प्रावृत्य रात्रौ मूत्रोच्चारं च न भूमाव-
नेतर्द्धाय नाराच्चावसथान्न भस्मकरीपकृष्टछायापथिकाम्येषूभे मूत्रपुरीषे दिवा
कुर्यात् । उदङ्मुखः संध्ययोश्च रात्रौ दक्षिणामुखः पालाशमासनं पादुके दंत-
धावनमिति च वर्ज्जयेत् । सोपानत्कश्चाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान्
वर्ज्जयेत् । न पूर्वाह्नमध्यन्दिनापराह्णानफलान् कुर्याद्वा यथाशक्ति धर्मार्थ-
कामेभ्यस्तेषु च धर्मोत्तरः स्यात् । न नम्रां परयोपितमीक्षेत् न पदासनमाक-
र्षेत् । न शिशनोदरपाणिपादवाक्चक्षुश्चापलानि कुर्यात् । छेदनभेदनविलेखन-
विमर्दनास्फोटनानि नाकस्मात्कुर्यात् ॥ नोपरिवत्सतंत्र्यां गच्छेत् । न जलंकुलः
स्यात् । न यज्ञमवृतो गच्छेत् । दर्शनाय तु कामम् । न भक्ष्यानुसंगे भक्षयेत् ।
न रात्रौ प्रेष्याहृतमुद्धृतस्नेहविलेपनपिण्याकमथितप्रभृतीनि चात्तवीर्याण्य-

इनीयात् । सायंप्रातस्त्वन्नमभिषुजितमर्निदन् भुंजीत । न कदाचिद्-
नमः स्वपेत् स्नायाद्वा । यच्चात्मवन्तो वृद्धाः सम्यग्विनीता दम्भ-
लोभमोहविद्वेदविद आचक्षते तत्समाचरेत् ॥ योगक्षेमार्थमीश्व-
रमधिगच्छेत् । नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्मिकेभ्यः प्रभूतैर्धौदकयवसकुशमाल्यो-
पनिष्क्रमणमार्य्यजनभूयिष्ठमनलसमृद्धं धार्मिकं विधिष्ठितं निकेतनमावसितुं य-
तेत । प्रशस्तमंगल्यदेवतायनचतुष्पथादीन् प्रदक्षिणमावर्तेत । मनसा वा तत्स-
माचारमनुपालयेदापत्कल्पः सत्यधर्म्मार्थ्यवृत्तः शिष्टाध्यापकः शौचशिष्टः
श्रुतिनिरतः स्यात् । नित्यमर्हिंसो मृदुदृढकारी दमदानशील एवमाचारो माता-
पितरौ पूर्वापरान्श्च संबद्धान् दुरितेभ्यो मोक्षयिष्यन् स्नातकः शश्वद्रह्य च
च्यवते न च्यवते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

प्रथमः पाठकः ॥ १ ॥

वेदको पढकर ब्राह्मण विधिसहित स्नानकर विवाह करै; इसके पीछे शास्त्रोक्त नियमके अनुसार गृहस्थधर्मका अनुष्ठानकर इन व्रतोंको करै, स्नातक होकर सर्वदा पवित्र रहै; उत्तमर-
गंधवाले द्रव्योंका सेवनकरै, और प्रतिदिन स्नान करै, शील रखै, धनके होतेहुए पुराने
और मलीन वस्त्रोंको न पहरे; मलीन और रंगेहुए वस्त्रोंको न पहरे, दूसरेके पहरेहुए
को न पहरे; पहरीहुई माला और टूटे जूते आदिको न पहरे, सामर्थ्य होनेपर जीर्णो-
धारण न करै, और एक कालमें अग्नि और जलको धारण न करै, अंजुलीसे जल
न पियै, खडे होकर निकालेहुए जलसे आचमन न करै; और शुद्ध, अशुद्ध तथा एक हाथसे
निकालेहुए जलसे आचमन न करै, वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, देवता, जल, गौ इनके
सन्मुख मूत्र, विष्टा तथा किसी अपवित्र वस्तुका त्याग न करै, देवताओंके ओरको पैर न
फैलावै; पत्ते, पत्थर इनसे मूत्र और विष्टाको दूर न करै; और मसम, केश, नख,
मुत्सी, कपाल, अपवित्र वस्तु इनपर भी न बैठे; म्लेच्छ, अशुद्ध, अधर्मी मनुष्य इनके साथ
सम्भाषण न करै; यदि सम्भाषण करै तो मनही मन पुण्यात्माओंका स्मरणकरै; दूध
न देवीहो उस गौको धेनुभव्या इस भांति कहै; अमंगल वस्तुको मंगल कहै, कपालको
भगाल कहै, इन्द्रधनुको माणधनु कहै; चुगती हुई गौको और बछडेको न बताने और न उस-
हटाने, मैथुनकरके शौचकरनेमें विलम्ब न करै, मैथुनकी शय्यापर वेद न पढ़े, पिछली
रात्रिमें पढकर फिर शयन न करै, असमर्थ स्त्रीके साथ तथा रजस्वला स्त्रीके साथ भोग न
करै, रजस्वलाका स्पर्शभी न करै, कन्याके साथ मैथुन न करै, अग्निको मुखसे न
फूँके, गर्हित वचन न बोलै, बाहरे गंध वा माला धारण न करै, पापीके साथ अवलेखन
न करै, भार्य्याके साथ भोजन न करै, जिससमय स्त्री नेत्रोंमें अंजन लगातीहो उस समय उसने
देखे, खोटे द्वार में न जाय, दूसरेसे पैरोंको न धुलावै, और संदिग्ध स्थानमें भोजन न करै,
हाथोंसे नदीको न पैरै, विषवृक्षपर चढ़ना वा उतरना जिनमें प्राणोंकी शंकाहो उन सब को
त्यागदे, टूटीहुई नौकापर न चढ़ै, सब प्रकारसे आत्माकी रक्षाकरै दिनमें नेगे शिर न

फिरै, और रात्रिमें शिर ढककर मलमूत्रका त्यागकरै, परन्तु पृथ्वीको तृणआदिसे विनाढके मूत्रविषाका त्याग न करै; भस्म, सूका गोबर, जूता, खेत, छाया, मार्ग अच्छी वस्तु इनमें मलका त्याग न करै, दिनके समयमें उत्तरको सन्ध्या और रात्रिके समयमें दक्षिणको मुखकरके मलमूत्रका त्यागकरै; और ढाकका आसन, खड़ाऊं, दतौत इनको त्यागदे, जूता, पैरोंमें पहरेहुए भोजन, उपवेशन, शयन, स्तुति और नमस्कार न करै । यथाशक्ति पूर्वाह्न और अपराह्न इनको निष्फल न जानेदे, परन्तु यथाशक्ति धर्म अर्थ और कामोंमें समयको व्यतीत करै, इन तीनोंमें धर्मही उत्तम है, दूसरेकी नंगी स्त्रीको न देखै, परसे आसनको न खेचे, लिंग, उदर, हाथ, पैर, वाणी, नेत्र इनको चपल न करै, और छेदन, भेदन, विलेखन, मलना, हाथसे हाथ बजाना इनको विना प्रयोजन न करै, रस्सीके ऊपर जलके तटपर न बैठे, वरणीके विना हुये यज्ञमें न जाय; और देखनेके लिये तौ इच्छानुसार जाय; खानेकी वस्तुको गोदीमें रखकर न खाय, सेवककी लाई हुई रात्रिमें विना चिकनी खल और विलपन निर्जलमट्टा, गरिष्ठवस्तु इनको न खाय, सायंकाल और प्रातःकालमें पूजाकरके विना अन्नकी चिन्दा किये भोजनकरै, रात्रिके समय नंगा शयन न करै, नंगा स्नान न करै, जिस कर्मके करनेको आत्मज्ञानी वृद्धपुरुष भली भांति दीक्षित, दम्भ, लोभ, मोहसे रहित और वेदके जाननेवाले कहैं उस कर्मको सर्वदा करतारहै, और योगक्षेमके निमित्त धनीके समीप जाय; देवता, गुरु, धर्मज्ञ इनको छोडकर अन्य घरोंमें निवास करनेके लिये यत्न न करै, जिस स्थानमें काठ, जल, भुसा, कुशा, फल और मार्ग यह अधिक प्राप्तहों और जहां बहुतसे सज्जन पुरुष निवास करते हों, जिस स्थानमें अग्निहोत्र हो गेसे स्थानमें निवास करै, श्रेष्ठ और मांगलिक वस्तु और चौराहे इनको दहिनीओर देकर गमन करै; पीडादि आपत्ति प्रस्त होनेपर भी मनही मनमें सम्पूर्ण धर्माचरणोंका पालन करै, सर्वदा सत्यधर्मसे सज्जनोंका आचरणकरै, सत्पुरुषोंको पढावै, शौचकी शिक्षा दे और वेदको पढतारहै, प्रतिदिन हिंसा न करै, नम्रतासे दृढ कर्म करै, इन्द्रियोंको दमन करै, दान करै, शील रखै, इस प्रकार आचरण करताहुआ माता, पिता और पहले पिछले सम्बंधियोंको पापसे मुक्त करनेकी इच्छा करताहुआ गृहस्थी सनातनः ब्रह्मलोकमें निवास करताहै ।

इति श्रीगीतमस्मृतौ भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम् । ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः सर्वेषु नियमस्तु आचार्यज्ञातिप्रियगुरुधनविद्यानियमेषु ब्राह्मणः संप्रदानमन्यत्र यथोक्तान् कृपिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदं च राज्ञोधिकं रक्षणं सर्वभूतानां न्याय्यदंडत्वं विभृयात् ॥ ब्राह्मणान् श्रोत्रियान् निरुत्साहांश्चाब्राह्मणानकरांश्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये भये विशेषेण चर्या च रथधनुर्भ्यां संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च न दोषो हिंसायामाहवे अन्यत्र व्यञ्जसारथ्यायुधकृतांजलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षादिरुद्धतगोब्राह्मणवादिभ्यः क्षत्रियश्चेदन्यस्तमुपजीवेत् त्तिः स्यात् जेता लभेत सांग्रामिकं वित्तं वाहनं तु राज्ञ उद्धारश्चा-

पृथक् जये अन्यत्तु यथार्हः भाजयेद्राजा राज्ञे बलिदानं कर्षकैः दशममष्टमं
वा पशुहिरण्ययोरप्येके पंचाशद्भागं विंशतिभागः शुल्कः पण्ये मूले फल-
मधुमांसपुष्पौषधतृणधनानां षष्ठं तद्रक्षणधर्मिन्त्वात्तेषु तु नित्ययुक्तः स्यात् ।
अधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो मासिमास्येकैकं कर्म कुर्युः । एतेनात्मोपजीविनो
व्याख्याताः । नौचक्रिवंतश्च भक्तं तेभ्योपि दद्यात् । पण्यं वणिग्भिरर्थापच-
येन देयम् । प्रणष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुः विख्याप्य राज्ञा संवत्सरं
रक्ष्यमूर्द्धमधिगंतुश्चतुर्थं राज्ञः शेषः स्वामी । रिक्थाक्रयसंविभागपरिग्रहांधि-
गमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः निध्यधि-
गमो राजधनं न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य अब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभेतेत्येके ।
चौरहृतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् । कोशाद्रा दद्यात् । रक्ष्यं बालधनमाव्य-
वहारप्रापणादा समावृत्तेर्वा ।

तीनों द्विजातियोंको अध्ययन, यज्ञ, और दान इन तीनों कर्मोंका अधिकार है; इन
तीनोंमें ब्राह्मणको अधिक पढ़ाना, यज्ञकराना, और दानलेना यह विशेष है, और सबमें
यह नियम है कि आचार्य जाति गुरु धन विद्या इनके नियममें ब्राह्मणही उपदेश करनेवाला
होताहै, और शास्त्रमें कहेहुए कर्मोंको छोड़कर लैन देंन श्रुत्योंसे कृषी कराना यह क्षत्रिय और
वैश्यके धर्म हैं, परन्तु राजाका यह अधिक धर्म है कि सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा, दंडकरने-
योग्य दुष्ट मनुष्यको दंड, वेदपाठी और उद्योगहीन, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, विनाकरवाले,
इनकी पालनाकरै, युद्धक्षेत्रमें रथपर चढ़कर धनुष, बाण धारण कियेरहै, युद्ध करतेमें
विमुख न हो, युद्धके समयमें प्राणियोंकी हिंसासे पाप नहींहै, विजयमें और भयमें अज्ञात
न हो, परन्तु हताश, सारथीहीन, घोड़ेरहित, शस्त्रहीन, जो कृतांजलि हो, जिसके बाल
खुले हों, जो मुखफेरे बैठेहो, वृक्षपर चढ़ाहो, दूत हो और जो अपनेको गौ अथवा ब्राह्मण
कहै, यदि दूसराभी क्षत्रिय हो तो उसीके आश्रय होकर अपनी जीविकासे उसका निर्वाह
करै; संग्रामको जीतनेवाला श्रुत्यभी सं की वस्तुओंके लेनेका अधिकारी है, परन्तु धन
और सवारी यह राजाही लेनेका अधिकारी है; यदि युद्धमें राजाभी साथ हो तो अत्यन्त
श्रेष्ठ वस्तु वा कुछ एक द्रव्यका भागभी राजाओंका होताहै; और राजा अन्य वस्तुओंको
यथायोग्य वांटदे, खेतीकरनेवाला राजाको छटा, दशवां वा आठवां भाग दे. ईधन, वृण
इनका छठाभाग राजाको दे कारण कि इनकी रक्षा करना राजाकाही धर्म है; राजा इनमें
नित्य सावधानी रखै; प्रत्येक महीनेमें एकदिन राजाका काम कारीगर करतारहै, और अपना
निर्वाह अधिकसे करै; यही धर्म मजूर, नौकावान, तथा रथवानोंकाभी है, वहभी राजाको भागदेने
योग्य हैं; और वैश्य धनके विना बेचनेकी वस्तुको न दे. जिसका स्वामी न हो यदि उसका नष्ट
मिलजाय तो राजासे कहै; और उस धनकी पहले राजा एकवर्षतक रक्षाकरै, एक वर्षके उपरान्त
जिसको वह धन मिलाहो उसको चौथाई दे और शेष धनको अपने रखै; और भाग,
विभाग, परिग्रह, अधिगम, लोभ इनमें ब्राह्मणका लब्धमें क्षत्रियका विजितमें और
वैश्यका निर्विष्टमें जो मिलजाय वह अधिक होताहै, और नेके मिलनेमें

राजाको भाग दे. कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि पशु और सुवर्णमेंभी पांचवां भाग है और चलनेकी वस्तुमें बीसवां भाग राजाका है परन्तु पंडित ब्राह्मणोंके अतिरिक्त कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि यदि ब्राह्मणसे अतिरिक्त वर्ण विख्यात हो तौ छटे भागका अधिकारी है; चोरीके द्रव्यको पाकर राजा उस धनको यथास्थानपर पहुंचादे, या अपने खजानेसे देदे; जबतक बालक व्यवहारको न जाने तबतक अथवा गृहस्थी होनेतक बालकके धनकी रक्षा करतारहे यही राजाका धर्म है;

वैश्यस्याधिकं कृषिवाणिक्पाशुपाल्यं कुसीदं शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधमशौचमाचमनार्थं पाणिपादप्रक्षालनमेवैके श्राद्धकर्मभृत्यभरणं स्वदारतुष्टिः परिचर्या चोत्तरेषां वृत्तिं लिप्सेत जीर्णान्युपानच्छत्रवासः कूर्चान्युच्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्च । यं त्रायमाश्रयते भर्तव्यस्तेन क्षीणोपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यात् । अनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः । पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके । सर्वे चोत्तरोत्तरं परिचरेयुः । आर्यानार्ययोर्व्यतिक्षेपे कर्मणः साम्यं साम्यम् ॥

इति श्रीगौतमोपे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

वैश्यकी खेती, व्यवहार, पशुओंका पालन, कुसीद सूदके लेनेसे अधिक धर्म है. और चौथा वर्ण शूद्र है एकजाति अर्थात् द्विजातिसंस्कारसे यह हीन होताहै, उसकेभी यही धर्म हैं; सत्य, क्रोधहीन, शौच, आचमनके निमित्त हाथ पैरोंका धोना, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि, श्राद्धकरना, भृत्योंकी पालना, शूद्र, फल, सहत, मीठा, मांस, फूल, औषधि, अपने द्वारपर सन्तोष, उत्तर द्विजातियोंकी सेवा, और उनसे अपनी जीविकाकी इच्छा करतारहे, और उनके पुराने जूते, छत्री, वस्त्र, कूर्च तथा कुशाकी मुष्टिको धारण करे; उनकी उच्छिष्ट भोजन करे, अपनी इच्छानुसार किसी शिल्पकार्यद्वारा अपनी जीविका निर्वाह करे, शूद्र सेवाके निमित्त जिसका आश्रय ले वही इसकी पालना करता रहै. दीनअवस्था होनेपर उसे शूद्रभी प्रतिपालन करे वही इस शूद्रको बड़ाई देनेवाला है उसके निमित्त इसके संचय हैं, और शूद्रको नमस्कारके मन्त्रकामी अधिकार है, कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि पाकयज्ञोंसे शूद्रभी स्वयं पूजन करले, और चारों वर्णोंमें पिछले २ पूर्व २ वर्णोंकी सेवा करे; और सज्जन, दुर्जन इनका व्यतिक्षेप तथा उलटापलटोंमें दोनों कर्म समान हैं ॥

इति श्रीगौतमस्मृती मायाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

राजा सर्व्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जं साधुकारी स्यात् । साधुवादी त्रय्यामान्वीक्षिकया चाभिविनीतः । शुचिर्जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपायसंपन्नः समः प्रजासु स्यात् हितं चासां कुर्व्वीत । तमुपर्यासीनमथस्तादुपासीरन्नये ब्राह्मणेभ्यस्तेप्येन मन्येरन् । वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् । चलतश्चेनान्स्वधर्म्मं एव स्यापयेत् । धर्म्मस्थोऽंशभागभवतीति विज्ञायते । ब्राह्मणं च पुरो दधीत विद्याभिजन-

वाग्रूपवयःशीलसंपन्नं न्यायवृत्तं तपस्विनम् । तत्प्रसूतः कर्माणि कुर्वीत ब्रह्म-
प्र हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च वि यते ।

ब्राह्मणके अतिरिक्त राजा सभीका ईश्वर है, वह सर्वदा लोकोंका हित करतारहै; सर्वदा मधुरवचन कहतारहै, कर्मकांड और ब्रह्मविद्यामें शिक्षित शुद्ध जितेंद्रिय और जिसके सहायक गुणवान् हों उपायोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण प्रजामें समदर्शी रहै, उनका हित कर-
तारहै, सबसे ऊंचे आसनपर बैठेहुए उस राजाकी ब्राह्मणके अतिरिक्त और सब जातियें सेवाकरै, ब्राह्मणभी उसका मान्यकरै जो चारोंवर्णोंकी न्यायसे रक्षाकरै और आप धर्मके मार्गमें स्थित रहकर धर्मपथसे स्वलित चारों वर्णोंको अपने २ धर्मपर स्थापित करै, वही राजा धर्मके अंशका भागी कहागया; यह बात शास्त्रसे जानीगई है, विद्या, देश, वाणी, रूप, अवस्था, शीलवान्, न्याययुक्त तपस्वी जो ब्राह्मण है उसे पुरोहित करै। ब्राह्मणसे उत्पन्नहुआ क्षत्रिय अर्थात् ब्राह्मणसे संस्कार कियाहुआ कर्मोंको करतारहै, कारण कि ब्राह्म-
णसे उत्पन्नहुआ (अर्थात् संस्कार कियाहुआ) क्षत्रिय बढताहै, और दुःखी नहींहोता यह शास्त्रके अनुसार जानागयाहै।

यानि च दैवोत्पातचित्तकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्विधेयं तदधीनमपि ह्येके योगक्षेमं
प्रतिजानते । शांतिपुण्याहस्वस्त्ययनायुष्यमंगलयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेष-
णसंवलनाभिचारद्विषद्वृद्धियुक्तानि च शालामौ कुर्यात् । यथोक्तमृत्विजोऽन्यानि ।
दैविक उत्पातोंकी चिन्ता करनेवालोंने जो कहाहै उसको आदरपूर्वक श्रवणकरै। कोईर
ऐसाभी कहतेहैं कि योग, क्षेम उनकेही आधीन है। अभिशालामें प्रहृशांति, पुण्याह, स्वस्त्ययन,
आयुर्वृद्धि और मंगलदायक कार्य, नान्दीमुख, शत्रुओंकी पराजय, विनाश और पीडादायक
कर्मोंका अनुष्ठान करै; और अन्यकर्मोंको मृत्विजोंकी आज्ञानुसार करै।

तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यंगान्युपवेदाः पुराणं देशजातिकुलधर्माश्चा-
न्नायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिक्पशुपालकुसीदकारवः स्वस्वे वर्गे तेभ्यो
यथाधिकारमर्यान् प्रत्यवहृत्य धर्मव्यवस्थान्यायाधिगमे तर्कोभ्युपायः तेना-
भ्यूह्य यथास्थानं गमयेत् । विप्रतिपत्तौ त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्यवहृत्य निष्ठां
गमयेत् । तथाह्यस्य निःश्रेयसं भवति । ब्रह्म क्षेत्रेण संपृक्तं देवपितृमनुष्यान्
धारयतीति विज्ञायते ।

राजा प्रजाओंके विवादस्थानमें विचारकर निर्णय करै, वेद, धर्मशास्त्र, वेदाङ्ग, उपवेद,
पुराण, शास्त्रोंके अविरुद्ध, देशधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म, उसका प्रमाण, कृषि, वाणिज्य,
पशुपाल, व्यापारी, और शिल्पकारियोंको अपने २ वर्गमें स्थितकरै, अधिकारके अनुसार
इनसे धन लेकर धर्मकी व्यवस्था करै; और न्यायके दंडनेमें उसका निर्णय करै, उस-
सेही निश्चय करके जहांका तहां पहुंचादे और विवाद होनेपर अधिक विद्वानोंको सौंपकर
निर्णय करावै कारण कि ऐसा करनेसेही राजाका कल्याण होताहै, ब्रह्मवीर्य क्षत्रियके
तेजके साथ मिलनेसे राजा ब्राह्मण, देवता, पितर और मनुष्य इनकी पालना करताहै,
यह बात शास्त्रसे विदित है, और बड़ोंनेभी यही कहाहै।

दंडो दमनादित्याहुस्तेनादांतान् दमयेत् वर्णाश्राश्रमाश्च स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्य
फलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्तसुखमेवसो
जन्म प्रतिपद्यन्ते । विष्वंचो विपरीता नश्यन्ति तानाचार्योपदेशो दंडश्च पालयते ।
तस्मात् राजाचार्यावनिध्यावनिधौ ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्र एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दमनके निमित्तही दंडकी सृष्टि है इसकारण सर्वदा सृष्टिका दमन करतारहें, स्वधर्मसे
स्थित वर्ण और आश्रम मरनेके उपरान्त अपने २ कर्मोंके फलको भोगकर पुण्यके अंतमें
इसभांति जन्म लेतेहैं; जहां यह उत्तम हों कि देश, जाति, कुल, रूप, अवस्था, विद्या, धन,
आचरण, सुख और बुद्धि. अपने धर्मसे विपरीत आचरण करतेहुए वर्ण और आश्रम नष्ट
होजातेहैं, नष्टहुए. उनको आचार्यका उपदेश और दंड पालना करताहै, इसकारण राजा
और आचार्य यह निन्दाकरनेके योग्य नहींहैं ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मापाटीक्रायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायामिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्यामंगं योच्यो येनोपह-
न्यात् । आर्यस्यभिगमने लिंगोद्धारः स्वप्रहरणं च गोप्ता चेद्वधोधिकः ।
अथाहास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम्, उदाहरणे जिह्वाच्छेदः
धारणे शरीरभेदः । आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुर्द्वयः शतम् । क्षत्रियो
ब्राह्मणाक्रोशे दंडपारुष्ये द्विगुणम् ॥ अध्यर्द्धं वैश्यः । ब्राह्मणः क्षत्रिये पंचाशत्
तदर्थं वैश्ये न शूद्रे किञ्चित् ब्राह्मणराजन्यवत् । क्षत्रियवैश्यौ अष्टापाद्यं स्तेयकि-
ल्बिषं शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेपाम् । प्रतिवर्णं विदुषांतिक्रमे दंडभूयस्त्वम् ।
पलहरितधान्यशाकादाने पंचकृष्णलमल्पे पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते
तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते पालक्षेत्रिकयोः पंचमापा गवि पट्टपूखरे अश्व-
महिष्योर्दश अजाविषु द्वौ द्वौ सर्व्वविनाशे शतं शिष्टाकरणे प्रतिपिद्धसेवायां
च नित्यं चेलर्पिंडादूर्ध्वं स्वहरणं गोग्न्यर्थं तृणमेधोवीरुद्रनस्पतीनां च पुष्पाणि
स्ववदाददीत फलानि चापरिवृत्तानाम् ॥

शूद्र यदि किसी द्विजातिके प्रति तिरस्कारसूचक वाक्य कहें और कठोरभावसे
आघात करें; तब वह जिस अंगसे आघात करें राजा उसके उसी अंगको कटवादे; और
अपनेसे बड़ोंकी छियाँके संग यदि गमन करें तो उसका लिंग कटवादे; और जो वह स्वयंही
मरजाय या अपनी किसी भांति रक्षाकरें तो उसका गर्भाघकदंड यहहै कि, राजा उसका
करै. शूद्र यदि वेदको सुनके तो राजा शीशे और लाखसे उसके कान भरदे, वेदमंत्रका

रहते यदि दूसरा पुरुष तक भोगें तौ उसकी वृद्धि सुद और बेदपाठी संन्यासी और राजाके पुरुष भोगलें तौ उनका वह धन नहीं होसकता, निध्य कौशका द्रव्य, मांगाहुआ, मोललिया, सोंपाहुआ आधि, वा चरोहर, यह यदि नष्ट होजाय तौ दोष नहींहै अर्थात् यह धन जिसको मिलजाय वह पुरुष दंडदेनेके योग्य नहींहै, यदि इनके मिलनेमें किसी मनुष्यका कुछ अपराध होजाय तौ दोष है, और चोर अपने वालोंको खोलकर हाथमें मुसल ले राजाके सन्मुख जाकर अपना अपराध कहदे; वह चोर राजाके बांधने वा छोड़देनेसे शुद्ध होताहै, राजा यदि उस मूखसे न मार, तौ पापका भागी राजा होताहै परन्तु राजा ब्राह्मणको शरीरका दंड न दे, वरन कामसे त्रिगुक्त करदे और सबके सन्मुख विदित करे, वा अपने देशसे निकालदे, और शरीरपर दाग लगादे, यदि जो राजा ब्राह्मणको उपरोक्त दंड न दे तौ वह पापका भागी होताहै, और मंत्री और पापी चोरके समान है और राजा जानकर अधर्मोंको पकड़ पुरुषकी शक्ति और अपराधके न्यूनत्विकके विधानसे दंडदे, अथवा वेदके जाननेवाले लैसा कहें बंसाही दंडदे ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मापाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

विप्रतिपत्तौ, साक्षिणि मिथ्यासत्यव्यवस्था बहवः स्युरनिदिताः स्वकर्मसु प्रत्ययिका राज्ञां निःश्रीत्यनभितायाश्चान्यतरस्मिन्नपिशूदाः ब्राह्मणस्त्वब्राह्मण-वचनादनवरोव्योऽनिवद्धश्चेत् नासमवेतापृष्टाः प्रवृत्तुः अवचनेन्यथावचने च दोषिणः स्युः स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः अनिवद्धैरपि वक्तव्यं पीडा-कृते निबंधः प्रमत्तोक्ते च साक्षिसम्भराजकर्तृषु दोषो धर्मतंत्रपीडायाम् । शपथेनैके सत्यकर्मणा तदेवराजब्राह्मणसंसदि स्यात् ।

विवाहके स्थानमें साक्षीके द्वारा कौन झूठाहै और कौन सच्चा है राजा इस बातका स्थिर करे; दोनों पक्षमें निजकर्म अनिन्दित हो, राजाका विश्वासी पक्षपाती और द्वेषशून्य शास्त्रज्ञ-तिथी साक्षी होसकताहै, परन्तु साक्षीकी संख्या अनेक होनी आवश्यक है, अब्राह्मणोंके वचनकी अपेक्षा ब्राह्मणोंके वचनका आदर करे; साक्षी यदि साक्षी देनेके लिये सन्नद्ध न हो, तौ उसे राजाके घरपर जानेकी आवश्यकता नहींहै, परन्तु ऐसे साक्षीसे यदि राजा पूछे तौ वह सत्य २ कहदे कारण कि सत्य कहनेसे स्वर्ग और मिथ्या कहनेसे नरककी प्राप्ति होतीहै, अनिकटभी साक्षी देसकताहै; कारण कि किसीकी पीडासे वा रोकनेसे अथवा प्रमत्तहोकर कहनेसे साक्षीको और समासद तथा राजाके कर्मचारी इनको दोष है, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि धर्मके आधीन दुःखमें सबे कर्मसेभी शपथद्वारा निर्णय होताहै; आर उससे वह सौगंध, देवता, राजा या ब्राह्मण इनकी समांमें लीजाय;

अब्राह्मणानां शुद्रपश्वनृते साक्षी दश हन्ति गोश्वपुरुषभूमिषु दशगुणोत्तरान् । सर्व वा भूमौ हरणे नरकः भूमिवदप्सु भैरुनसंयोगेषु च पशुचन्मधुसर्पिषोः गोवदस्त्रहिरण्यधान्यब्रह्मसु यानेष्वश्ववत् मिथ्यावचने याप्यो दंडश्च साक्षी नानृतवचने दोषो जीवनं चेत्तदधीनं ननु पापीयसो जीवनं राजा प्राद्विवाको

वा शास्त्रवित् प्राड्विवाको मध्यो भवेत् । संवत्सरं क्षेत प्रतिभायां धेन्वनहुत्स्त्रीप्रजनसंयुक्तेषु शीघ्रम् । आत्ययिके सर्वधर्मभ्यो गरीयः प्राड्विवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मणसे छोटे २ पशुओंके विषयमें यदि झूठ कहै तौ वह दश पशुओंको मारताहै, गौ, घोड़ा, पुरुष, भूमि इनके विषयमें यदि झूठ कहै तौ दशगुनी क्रमसे वा सम्पूर्ण हत्या करताहै, पृथ्वीकी चोरी करनेवालेको नरककी प्राप्ति होतीहै जलके चुराने वा दूसरेकी स्त्रीके साथ मैथुन करनेमेंभी नरक मिलताहै, मीठा और घीकी चोरी करनेमें पशुकी चोरीकी समान दोष होताहै; जो साक्षी झूठ कहै बोह निकालने वा दण्ड देनेके योग्य है, यदि साक्षीकी जीविका उसीके अधीन हो तो इसमें दोष नहींहै, अर्थात् झूठबोलेदे तौभी पापका भागी नहीं होता; वस्त्र, सुवर्ण, अन्न, और बेदमें गौके समान दोष हैं, सवारी की चोरीमें घोड़ेकी समान दोष है; यदि अत्यन्त पापीसे जीविका हो, तौ राजा वकील और शास्त्रोंका जाननेवाला ब्राह्मण यह झूठ न बोलें; और जो वकील बीचमें रहै वह एक वर्षतक प्रतिभाके लौटेनेकी बाटदेखें, गौ, बैल, स्त्रीके संतान होना और मैथुन इनमें शीघ्र न्याय करै; और आवश्यकीय कार्योंमें वकीलका सत्य वचन प्रामाणिक हैं ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ ५० ॥

च दशोऽध्यायः १४.

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिंडानामेकादशरात्रं क्षत्रि-
यस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमेकमासं शूद्रस्य तच्चेदंतः पुनरापतेतच्छेषेण
शुद्धयेत् । रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राज-
क्रोधाच्च । युद्धप्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्वंधनप्रपतनैश्चेच्छतां पिंडनिवृत्तिः
सप्तमे पंचमे वा जननेप्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रीः संसने
गर्भस्य त्र्यहं वा श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणी असपिण्डे योनिसंबंधे सहाध्या-
यिनि च सत्रेह्यचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसंयत्रे प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमशौच-
मभिसंधाय चेत् उक्तं वैश्यशूद्रयोः आर्तवीर्वा पूर्वयोश्च त्र्यहं वा आचार्यतत्पुं-
त्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवम् । अवरश्चेद्वर्णः पूर्ववर्णमुपस्पृशेत् । पूर्वो वावरं तत्र
शावोक्तम् आशौचे पतितचंडालसूतिकोदक्याशवस्पृष्टितत्पृष्ठचुपस्पर्शने
सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येत् । शवानुगमे शुनश्च यदुपहन्यादित्येके उदकदा-
नं सपिंडैः कृतचूडस्य तत्स्त्रीणां चानतिभाग एकेऽप्रतानाम् ।

ऋत्विक् दीक्षित और ब्रह्मचारियोंके अतिरिक्त इनको दशदिन और सपिंडियोंको ग्यारह दिन, क्षत्रियको बारहदिन, वैश्यको पंद्रहदिन, और शूद्रको एकमहीनेतक शवका सूतक होता है; एक अशौचके बीचमेंही यदि दूसरा अशौच होजाय तौ पहलेके साथही उसकी शुद्धि

होती है; पहला अशौच जिसादिन समाप्त होगा उसकी एकरात्रि रहनेपर यदि प्रातःकालही दूसरा अशौच और होजाय तौ तीनदिन में शुद्धि होती है; गौ या ब्राह्मणके द्वारा मृतक होनेपर तीनदिन अशौच रहता है, राजाके क्रोधसे, युद्धमें, बैठने, और भोजन त्यागनेके व्रतमें यदि पुरुष मरजाय, या शस्त्र, अग्नि, विप, जलसे ऊंचेपरसे गिरकर, वा फाँसीखाकर, या वर्षाके जलसे जो मनुष्य मरजाय उसकी सातवीं पीढ़ी व प्रांचवी पीढ़ीमें पिंडोंका अधिकार नहीं रहता; और जन्मसूतकमेंभी इसीभांति शुद्धि होती है, गर्भ गिरजानेपर जितने महीनोंका गर्भ हो उतनीही रात्रितक माता पिता अथवा माताहीको अशौच रहताहै, और गर्भके पडनेमें तीनदिनका सूतक होता है; यदि दशदिनके उपरान्त सूतक विदित जानपड़े तो एकरात दोदिनतक होता है, जो अपना सपिंड नहो, जिसके साथ योनिक सम्बन्धहो या अपनेसाथ पढनेवाला हो, वा ब्रह्मचर्यमें साथीहो या वेद पढनेवालाहो इनके मरजानेमें एकदिनका सूतक होता है; और जो मनुष्य जानकर भेतका स्पर्श करे उसको दशदिनका सूतक होता है; वैश्य और शूद्रका सूतक प्रथम कहलाये हैं; रजस्वला स्त्रीके स्पर्श करनेवाले तथा सूतकी ब्राह्मण और क्षत्रियको स्पर्श करनेवाले मनुष्यको तीनदिनका सूतक होता है; पूर्वकहेहुओंमें और आचार्य तथा आचार्यका पुत्र, स्त्री, यजमान, शिष्य इनका स्पर्शकरनेवालेकोभी पहले कहेहुओंको तीनदिनका अशौच होता है; यदि नीचवर्णका मनुष्य श्रेष्ठवर्णके शवका स्पर्श करले, अथवा श्रेष्ठवर्ण हीनवर्णके शवका स्पर्शकरले, तौ उसेभी मरणका अशौच होता है; पतित, चांडाल, सूतिका, ऋतुमती और शवके स्पर्श तथा इन सबके स्पर्श करनेवालोंके स्पर्श करनेवाला जलमें मग्नहोकर वस्त्रोंसहित स्नान, शवके साथ जानेवाले और कुत्तेका स्पर्श करनेवालाभी वस्त्रोंसहित स्नानकरै, और चूड़ाकरण होनेके उपरान्त मृतक होजाय तौ उसको सपिंड जलदान करै, कोई कोई ऐसाभी कहते हैं कि विना विवाही कन्याओंको जलदेनेका अधिकार नहीं है; अर्थात् मरनेपर जलदान न करै ॥

अधःशय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्वे न मार्जयेन् । न मांसं भक्षयेयुर दा-
नात् । प्रथमतृतीयसप्तमनवमेषूदकक्रिया वाससां च त्यागः । अंत्ये त्वंत्यानां
दंतजन्मादिमातापितृभ्यां तूष्णीं माता बालदेशांतरित जितासपिंडानां
सद्यः तैचम् । राज्ञां च कार्यविरोधात् । ब्रा णस्य च स्वाध्यायानिवृत्यर्थ
स्वध्यायानिवृत्यर्थम् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जलदानसे प्रथम भूमिपर शयन करै ब्रह्मचारी रहै, मांसका भक्षण न करै, प्रथम, तीसरे, सातवें, नवें-दिन जलदान और वस्त्रोंका त्याग करै, अन्त्यजोंका जलदान और वस्त्रोंका त्यागना यह दशमें दिन होताहै, और दांतोंके जमआनेपर यदि बालक मरजाय तौ माता पिताको अथवा केवल माताहीको सूतक लगताहै, और बालक, परदेशी, संन्यासी, असपिंड इनको और जिस कार्यमें विघ्न उपस्थित न हो इसकारणसे राजाओंकी और वेदपाठमें विघ्न न होजाय इसकारण ब्राह्मणकी उसीसमय शुद्धि होजातीहै ।

इति श्रीगौतमस्मृती भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् । पंचमीप्रभृति चापरपक्षस्य यथा-
श्राद्धं सर्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसंधाने वा का नियमः शक्तिः वै
गुणसंस्कारविधिरय नवावरान् भोजयेद्युजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रो-
त्रियान् वाग्रूपवयःशीलसंपन्नान् । युवभ्यो दानं प्रथममेकं पितृवत् । न च
मित्रकर्म कुर्यात् । पुत्राभावे सर्पिडा मातृसर्पिडाः शिष्याश्च दद्युस्तदभावे
ऋत्विज यौ । तिलमाषव्रीहियवोदकदानैर्मासं पितरः प्रीणति । मत्स्यहरि-
णरुरुशशकूर्मवराहमेधमांसैः संवत्सराणि । गव्यपयःपायसैर्द्वादशवर्षाणि
वार्ध्वाणसेन मांसिन कालशाकच्छा हिखड्गमांसैर्मधुमिश्रैश्चानृत्यम् ।

इ य श्राद्धके विषयमें कहतेहैं, अमावस्याके दिन पितरोंके लिये श्राद्धकरै, अपर-
पक्षमें (अर्थात् महालयमें) पंचमी इत्यादि तिथियोंमें भी पितरोंके निमित्त श्राद्ध करै,
श्राद्धमें कहेहुए द्रव्य, देश और ब्राह्मणके समागममें भी श्राद्धकरै, श्राद्धमें जो समय नियत किया-
गयाहै, उसमें भी श्राद्धकरै, शक्तिके अनुसार अन्नके गुणोंका संस्कार करै, और अपनी
शक्तिके अनुसार कमसे तौ ९ ब्राह्मणोंको जिमावै, अथवा उत्साहके अनुसार अयुग्म
आदि वेदपाठी, वाणीरूप अवस्थाशील, इनसे युक्त ब्राह्मणोंको जिमावै, प्रथम युवा पितरोंके
ब्राह्मणोंको अन्नदान करै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि सबको पिताक्री समान समझ-
कर श्राद्धकरै, और श्राद्धके दिन सन्ध्या उपासना न करै, यदि पुत्र न हो तो सर्पिड वा
शिष्यही पिंडदे, और यहभी न हो तौ ऋत्विज और आचार्य यह दे; तिल, उडद, चावल, जौ
और जलके देनेसे पितर एक महीनेतक तृप्त होतेहैं; और मत्स्य, हरिण, रुरु, शशा, कछुआ,
सूअर इनके मांससे एकवर्षतक, खारसे और गौके दुग्धसे बारह वर्षतक, वार्ध्वाणसके
मांससे और कालशाक, धकरी, गेंडा, तथा मीठे मिलेहुए इनके मांससे पितृ अनन्त
तृप्त होतेहैं;

न भोजयेत् स्तेनस्त्रीवपतिततद्वृत्तिनास्तिकवीरहाग्रेदिधिषूदिधिषूपातिस्त्रीग्राम्या-
जकाजपा त्सृष्टाभिमद्यपकुचरकूटसाक्षिप्रातिहारिकानुपपत्तिर्यस्य च । कुंडा-
शी सोम विक्रय्यगारदाही गरदावकीर्णिगणप्रेष्यागम्यागामिहिंसपरिवितिपरि-
वेत्तुपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्वालान् कुनखिद्यावदंतश्चित्रिपौनर्भवकित-
वाजपराजप्रेष्यप्रातिरूपिकशूद्रांपतिनिराकृतिकिलासिकुसीदिवणिक्शिल्पोप-
जीविज्यावादित्रतालनृत्यगीतशीलान् पित्रा चाकामेन विभक्तान् ।

चोर, नपुंसक, पतिव्रत, और जिसकी जीविका पतितसे हो उसे, नास्तिक, वीरकी हत्या
करनेवाला, जो दूसरी विवाही स्त्रीको मुख्य समझता हो, वा जिसने दूसरी स्त्रीके साथ
विवाह कियाहो, जो स्त्री और ग्रामवासियोंको यज्ञ करावै, वक्ररियोंकी रक्षा करनेवाला;
जिसने अग्निहोत्र लेकर छोड़दियाहो; मदिरा पीकर जो पृथ्वीमें विचरण करै; झूठी साक्षी
देनेवाला, दूत, जिसको यह मालूम न हो कि यह कौन है, कुंडाशी, सोमको बेचनेवाला,

घरमें आग्न लगावेवाला, विष देनेवाला, ब्रतलेकर जिसने छोड़दियाहो, बहुतांका दूत, अयोग्य स्त्रीके साथ करनेवाला, हिंसक, परिविविध परिवेत्ता, पर्याहित, सब स्थानोंमें फिरनेव , त्यक्तात्मा, जिसका मन वशमें न हो, घुरे नखोंवाला, काले दांतवाला, दादवाला, दूसरी विवाहिता स्त्रीका पुत्र, कपटी वकरोको पालनेवाला, राजाका दूत, वैरूपिया, शूद्रा का पति, तिरस्कारसे जीविका करनेवाला, कुष्ठरोगी, व्याजलेनेव , जो लेनदेन करता हो, कारीगरीसे जीविका करनेवाला, प्रत्यंचा, वाजा, ताल, नृत्य, गीत, जिसका इनमें मन लगताहो; जिसे विना इच्छाके पिताने जुदा करदियाहो, इन्हेंको श्राद्धमें जिमावे नहीं;

शिष्यांश्चैकं सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवंतं : श्राद्धी शूद्रातरुपगस्त-
त्युन्नरोषे मासं नयति पितृन् तस्मात् तदहर्ब्रह्मचारी स्यात् ॥ श्वचंडालपति-
वैक्षण्ये दुष्टं तस्मात् परिश्रुते दद्यात् तिलैर्वा विकिरेत् । पं पावनौ वा
शमयेत् ।

कितनेक महर्षि कहते हैं कि शिष्य तथा तीनपुरुषोंसे अधिक पीढ़ीके सगोत्रियोंकोभी श्राद्धमें भोजन करावे, और गुणवानको शीघ्रही जिमावे; यदि श्राद्धकरनेवाला शूद्राको शिष्यापर गमन करे तौ शूद्रापुत्रके क्रोधमें एकमहीनेतक पितरोंको नरकमें वास होता है; इसकारण श्राद्धके दिन ब्रह्मचर्यसे रहै, कुत्ता, चांडाल, पतित इनके देखनेसेभी श्राद्ध दूषित होजाता है; इसकारण एकांत में श्राद्ध करै, तिलोंको बखेर दे, अथवा पंक्तिको पवित्र करनेवाले ब्राह्मण शांति करदेते हैं;

पंक्तिपावनाः षडंगवित् ज्येष्ठस गस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः पंचाभिः
तको मंत्रब्राह्मणवित् धर्मज्ञो ब्रह्मदेयानुसंधान इति हविःषु चैव दुर्वला-
दीन्श्राद्ध एवैक एवैके ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

जो षडंग वेदको जाननेवाला ज्येष्ठ उत्तम सामका जो गानकरे; जिसने तीनवार अग्नि चिनीहो ऋग्वेदके मधुवाता आदि तीनों मंत्रोंका जाननेवाला त्रिसुपर्ण मंत्रोंका ज्ञाता, पंचाभि मंत्र और ब्राह्मणोंका ज्ञाता, स्नातक, गृहस्थी, धर्मज्ञ, ब्रह्मदेयानुसन्धान वेदमें जो मलीभांति से द्रव्यआदि दे इतने षडंगके ज्ञाताओंको पंक्तिका पवित्रकरनेवाला कहा है, हवन इत्यादि कार्यमेंभी इसीप्रकार दुर्वल मनुष्योंको भोजन करावे और कोई २ ऐसाभी कहते हैं कि यह नियम केवल श्राद्धकाही है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

श्रावणादिवार्षिकीं प्रोष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीतच्छदांसि अर्धपंचमासान् । पंच-
दक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टलोमा न मासं भुंजीत द्वेमास्यो वा नियमः ।

वर्षाकृतमें श्रावणकी पूर्णिमा और भादोंकी पूर्णिमाको वा दक्षिणायनके पांच महीनों में ब्रह्मचारी नियमपूर्वक लोमोंको त्यागकर वेदको पढ़े मास भोजन न करे अ दो महीनेमें सुण्डन करावे,

वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं वाणभेरीमृदंगगर्जनार्तशब्देषु च श्वसृगालगर्दभसंज्ञादे लोहितैद्रधनुर्नीहारेषु अभ्रदर्शने चापतीं मूत्रित उच्चारिते निशासध्योदके वर्षति चैके वलीकसंतानमाचार्यपरिवेषणे ज्योतिषोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामांतमहापथाशौचेषु प्लुतिगंधांतःशवादिवाकीर्तिशूद्रसंधाने शुल्कके चोद्रावे ऋग्यजुषं च सामशब्दो यावत् । आकालिकाः निर्घातभूमिकंपराहुदर्शनोल्काः स्तनयितुवर्षविद्युतश्च प्रादुष्कृताभिषुः अनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात् त्रिभागादिप्रवृत्तौ सर्वमुल्काविद्युत्समेत्येकेषां स्तनयितुपरारहे अपि प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्ररात्रात् । अहश्चेत्सज्योतिः विषयस्ये च राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपाहितवेदसमाप्तिः छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रम् अमावास्यायां च ब्यहं वा कार्तिकीफाल्गुन्याषाढौषौर्णमासीतिस्रोष्टकास्त्रिरात्रमन्याग्न्येके अभितो चार्षिकं सर्वे वर्षविद्युत्स्तनयितुसंनिपाते प्रस्पंदिन्यूर्ध्वं भोजनादुत्सवे प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तं नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचि श्राद्धिनामाकालिकमकृश्राद्धिकसंयोगेपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरंति यावत्स्मरंति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

यदि दिनके शब्द धूल उड़ानेवाली वायु चलै और रात्रि के समय कानोंमें फुंकारतीहुई पवन चले, तौ वेदको न पढ़ै. वाण, भेरी, नक्कारा, मृदंग, रोगीका भयंकर शब्द, कुत्ता, गीध, गधा इनका शब्द होता हो, वा इन्द्रधनुष दीखपड़ै तथा नीहार और कुसमय मेघ दृष्टि पड़ै मलमूत्र त्याग करनेके उपरान्त तथा रात्रि और संध्याके समयमें वेदको न पढ़ै; और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षा होते समयमेंभी न पढ़ै, अपने कुटीके वलीक (अर्थात्—प्रांतभाग बरौती) से बरसातका पानी टपके इतनी बरसात होवै तौ निकट और जहां आचार्यके चारोंओर मनुष्य बैठे हों वहां, चन्द्रमा सूर्यके निकट मंडलवननेके समय, इन समयोंमेंभी वेदको न पढ़ै, किसीकारणसे भयभीत होकर, सवारीमें चढ़कर, लेटकर, घुटनोंको खड़ा करके भी वेदको न पढ़ै, श्मशानमें ग्रामके निकट बड़े मार्गमें, और अशौचके निकट वेदको न पढ़ै; दुर्गके निकट, शव, नाई, शूद्र, और शुल्कमहसूलके स्थानपर भांग-ताहुआ वेद न पढ़ै, जहांतक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदका शब्द सुनाईजाय, अकालमें निर्घात, भूमिकंप, राहुदर्शन, उल्कापात, मेघवर्षण, और विजलीका गिरना, अग्निका लगना इतने समयमेंभी वेदको न पढ़ै; विना ऋतुके विजली बमकै, और रात्रिके पहले पहरमें तारे टूटें तौ वेदको न पढ़ै, यदि मध्याह्नके समय गरजै, अथवा प्रदोषकालमें गरजै; और आधीरातके समयमें भी वेदको न पढ़ै; दिनके समय तारे दीखें अपने देशके राजाकी मृत्यु होनेपर वेद पढ़नेका निषेध है, परदेशमें जाकर दूसरेके साथ वेदकी समाप्ति करै. वसन, श्राद्ध, मनुष्य, यज्ञभोजन इनमें एक दिनका अमावसमें दो दिनका; कार्तिक, फाल्गुन, तथा, आपादकी पूर्णिमा और तीनों अष्टका इनमें तीन रात्रिका वेदका ध्याय होताहै, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि वर्षाऋतुके आदि अन्तमेंभी वेदके पढ़-

नेका निषेध है, वर्षा होतीहो बादल गर्जता हो, और नही २ वृद्धें पडती हों उस समयभी वेद न पढ़ै भोजनकरनेके उपरान्त और उत्सवमें वेद पढनेका निषेध है, पढेहुए वेदको रात्रिमें चारसुहूर्तसे अधिक न पढ़ै; और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि मन नगरमें नित्य रुद्ध रहताहै; इसकारण नगरमें वेदको न पढ़ै और श्राद्ध करनेवालोंको बिना अनध्यायके समयभी अनध्याय होताहै, और अकृतान्तश्राद्धमेंभी सब विद्याओंका अनध्याय होताहै, यह विका वचन है ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

प्रशस्तानां स्वकर्म्म द्विजातीनां वा णो भुञ्जीत प्रतिगृ ण्यात् । एधोदक-
यवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासनावसथयानपयोदधिधानाशफरिप्रियंगुस-
ङ्गमार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्व्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यत् । वृत्तिश्चेत्
नांतरेण शूद्रान् प पालक्षेत्रकर्षककुलसंगतकारयितृपरिचारका भोज्यान्ना वणि-
क्काशिल्पी । नित्यमभोज्यं केशकीटावपन्नं रजस्वलाकृष्णशकुनिपदोपहतं भूण-
ग्रावेक्षितं गवोपघ्रातं भावदुष्टं शुक्तं केवलमदधि पुनः सिद्धं पर्युषितमशाकभ-
क्ष्यन्नेहमासमधूनि उत्सृष्टपुंश्चल्यभिशास्तानपदेश्यदंडिकतक्षकदर्यबंधनिकाचि-
कित्सकमृगयुवार्युच्छिष्टभोजिगणविद्विषाणामपांक्तानां प्राक् दुर्बलान् वृथान्ना-
च मनोत्थानव्यपेतानि समासमाभ्यां विषमसमे पूजान्तरानर्चितश्च गोश्च
क्षीरमनिर्दशायाः सूतके अजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमेकशफं च
स्यंदिनीयमसूसंधिनीनां च याश्च व्यपेतवत्साः पंचनखाश्च शल्यकशशकश्वा-
विद्गोधाखड्गकच्छपाः उभयतोदत्केश्यलोमैकशफकलर्विकप्लवचक्रवाकहंसाः
काककंकगृध्रयेना जलजा रक्तपादतुंडाः ग्राम्यकुक्कुटसूकरौ धेन्वनडुहौ च
आपन्नदावसन्नवृथामांसानि किसलयकयाकुलशुननिर्यासलोहिताव्रश्चनाश्वनि-
चिदारुवकबलाकाःशुकदुहृटिद्विभमांघातुनक्तंचरा अभक्ष्याः । भक्ष्याःप्रतुदावि-
किराजालपादाः मत्स्याश्चाविकृतावध्याश्च धर्मार्थव्यालहतादृष्टदोषवाक्प्रशस्-
न्यभ्युक्ष्योपयुञ्जीतोपयुञ्जीत ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अपने कर्म्ममें तत्पर द्विजातियोंके यहां ब्राह्मण भोजन करै, और उनसे प्रतिग्रह ले, ईधन, जल, भुसा, मूल, मीठा, भयसे रहित हो स्वयं दीहुई शय्या, आसन, सवारी, घर, दूध, दही, धाना, मत्स्य, कांगुनी, माला, और मार्गका शाक, यह शूद्रके यहांसेभी लेने योग्य हैं, और पिता, गुरु, देवता, भृत्य इनकी पालनाके निमित्त सबके यहांसे लेनेयोग्य है, यदि और कोई आजीविका हो तो शूद्रोंसे लेले अन्यसे न ले, और शूद्रोंमें भी उसके यहांसे ले जो कि पशुओंकी पालना करनेवाला, किसान, कुलका संगी, पिताका सेवक हो; इनका अन्न खाने-

योग्य है; और जो व्यापारो शिल्पी न हो उसका भी खानेयोग्य है; जो अन्न केश और कीड़ासे दूषित हुआहो रजस्वला स्त्री और पक्षीके पैरसे जिसका स्पर्श होगयाहो, कर्कौ हत्या करनेवालेने जो देखाहो, गौका सूंघाहुआ, मावदुष्ट, दहीके अतिरिक्त शुक्त, दुवारा पकाया शाकसे भिन्न वासी ऐसे खाने योग्य पदार्थ, स्नेह, मांस, और सहत ये अभक्ष्य हैं, जिसको व्यभिचारके कारण त्यागदियाहो, या जिसे व्यभिचारका दोष लगायाहो, जिसके लेनेको स्वामीने आज्ञा न दीहो, जिसको कुछ दंड हुआहो, बढई, उपकार न माननेवाला; वधनिक, व्याघ्र, उच्छिष्ट जलका पीनेवाला, बहुतोंका शत्रु, और पक्षिसे वाह्य इनके यहाँका अन्न न खाय, दुर्बलसे प्रथम भोजन न करै, भोजन, आचमन और उत्थान, इनको वृथा न करै, समकी विषम पूजा, और विषमकी सम पूजा तथा सूर्यादिक तारोंकी पूजाका त्याग न करै; और दसदिनसे पहले (व्याईहुई) गौ, बकरी, भैंस, इनका दूध न पिये, भेड ऊंटनी, घोड़ी, रजस्वला, दो बच्चेवाले, संधिनी, दूध देनेवाली मृतवत्सा इनका दूध पीने योग्य नहींहै; सेह, खरगोस, गोह, गेंडा, कछुआ यह सेहके अतिरिक्त सब अभक्ष्य हैं, दोनोंओर दांतवाले, बड़े २ रोम जिनके हों, एकखुरवाले और कलविक चिडिया, जल-मुरगी, चकवा, हंस, काक, कंक, गीघ, बाज, जिनके चौंच और पैर लाल हों यह जलके जीव, ग्रामका मुरगा, शूकर, गौ और बैल यह स्वयं मरजाँय, और वनमें अग्निसे जो उक्त जीव मरजाय उसका मांस और वृथामांस, पत्तेका रस आदि स्वयंहतेका मांस जिनमें लाली हो ऐसा निकलाहुआ गोंद, अश्व, निचि दारु, (?) वक, बगला, तोता, दुदु, टट्टीरी, मांवाट, और चिमगादर यह जीव सब अभक्ष्य हैं, चौंचसे खोदनेवाले, जालकी पैरनेवाले और विकाररहित मछली यह भक्षणीय हैं और मारने योग्य है, धर्मके लिये सर्पसे मरेहुए तथा निर्दोष और जिन्हे कोई धुरा न कहै उनको भी जलसे छिड़ककर काममें लेलेना योग्य है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अस्वतंत्रा धर्मे स्त्री नातिचरेद्भर्तारं वाक्चक्षुःकर्मसंयता यद्यपत्यलिप्सुर्देव-
रात् गुरुप्रसूतान्नर्तुमतीयात् पिंडगोत्रऋषिसंबंधेभ्यः योनिमात्राद्वा नादेव-
रादित्येके । नातिद्वितीयं जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्त-
स्य द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरैव । नष्टे भर्तारि पाद्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽभिगमनं
प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसंगात् तस्य द्वादशवर्षाणि ब्राह्मणस्य विद्यासंबंधे भ्रात-
रि चैवं ज्वायसि यवीयान् कन्याग्न्युपयमनेषु षडित्येके । त्रीन्कुमार्यृतूनती-
त्य स्वयं युज्येतानिदितेनोत्सृज्य पित्र्यानलंकारान् । प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन् दो-
षी प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके । द्रव्यादानं विवाहसिद्धयर्थं धर्मतंत्रप्रसंगे च
शूद्रात् । अन्यत्रापि शूद्रात् बहुपशोर्हीनकर्मणः शतगोरनाहिताग्नेः सहस्र-
गोर्वा सोमपात् सप्तर्षी चाभुक्ता निचयाय अप्यहीनकर्मभ्यः आचक्षीत राज्ञा

पृष्ठस्तेन हि भर्तव्यः श्रुतशीलसंपन्नश्चेद्धर्मतंत्रपीडायां तस्याकरणे दोषोऽदोषः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

“न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति” इस मनुवाक्यके अनुसार स्त्री धर्म करनेमें भी पतिके आधीन है, इससे स्वामीकी आज्ञाको कभी उलंघन न करे. और पतिकी मृत्यु होजाय तो मनवाणीसे नियमपूर्वक सुकर्ममें तत्पर रहे, यदि उस अवसरमें उसको सन्तानकी इच्छा हो तो पतिके सहोदर अर्थात् अपने देवरसे ऋतुकालमें समागमकर सन्तान उत्पन्न करले बिना ऋतुके गमन न करे, और यदि देवर न हो तो जिसके साथ ऋपि पिंड और गोत्रका सम्बन्ध है वा केवल योनिसम्बन्धवाले देवरसे: सन्तान उत्पन्न करले, परन्तु ऋतुकालके सिवाय गमन न करे, किन्हीका यह मत है कि देवरके सिवाय अन्य किसीसे गमन न करे, और ऋतुकालके बिना गमन न करे, देवरसेभी दो सन्तानसे अधिक उत्पन्न न करे ऋतुकालके बिना दूसरेकी सन्तान उसके पतिकी नहीं होती, अर्थात् यदि किसीप्रकारका सत्त्व न हो तो यह सन्तान उत्पन्न करनेवालेकीही होगी कारण कि अविधिसेही जीतेहुए पतिके उसके क्षेत्रमें यदि सन्तान उत्पन्न हो तो यह सन्तान क्षेत्रीकीही होगी अथवा उस क्षेत्रके स्वामी और उत्पन्न करनेवाला इन दोनोंकीही यह सन्तान होगी वास्तवमें तो जो पालेगा उसीकीही वह सन्तान होगी (यह उपपत्तिका धर्म द्विजातिसे पृथक् जनके निमित्त है कारण कि मनुने इसका निषेध किया है “ नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तन्या द्विजातिभिः”) और दूसरे यह कलिवर्ज्यभी है इससे द्विजातिमें आदरके योग्य नहीं है, अब पतिके अज्ञातवासके धर्म कहते हैं, यदि पतिकी कुछ खबर न मिले तो छः वर्षतक उसकी वाट देखे, यदि समाचार मिल जाय तो स्वयं उसके पास चलीजाय यदि संन्यासी होगयाहो तो उसके पास न जाय. अब पिताके मरनेपर ज्येष्ठभ्राताके पढनेको जानेमें क्या कर्तव्य है सो कहते हैं । ब्राह्मणके विद्या-सम्बन्धमें ज्येष्ठभ्राताभी यदि इसीप्रकार समाचाररहित होजाय उसकी खबर न मिले तो छोटा भाई उसका कन्यादान अग्निरक्षा यज्ञोपवीत तथा विवाह करनेको वारहवर्षतक उसके आनेकी वाट देखे पीछे उसका विवाह करदे, कोई कहते हैं कि, छःवर्षतक वाट देखे यदि पिताआदि उसको न विवाहतेहैं तो कुमारी तीन ऋतु वितारकर पिताके दियेहुए अलंकार भूषण त्यागकर स्वयं किसी श्रेष्ठ कुलके वरसे विवाह करले, ऋतुके पहलेही कन्या दानकरना उचित है ऋतुके पहले कन्यादान न करनेसे कन्याका पिताआदि पापयुक्त होताहै; कोई कहते हैं कि, कन्या ऋतुमती होनेसे पहले विवाहना उचित है यदि द्रव्य न हो तो इस विवाह सम्पन्न करने अथवा किसी धर्मकार्यके करनेके निमित्त शूद्रसेभी द्रव्य लेलेनेमें दोष नहीं है रे कार्यके निमित्तभी बहुत पशुवाले शूद्रसे, हीनकर्मवाले सौ गौके स्वामीसे अग्निहोत्र-रहित ब्राह्मणसे तथा सहस्रगौके स्वामी सोमपीनेवाले ब्राह्मणसे घन ग्रहण करे जब भोजन न मिले और सातवीं बेला आजाय तब अहीनकर्म (श्रेष्ठकर्मवाले) के यहांसे भोजन ग्रहणकरले यदि राजा पूछे तो उसे सत्य २ कहदे, धर्मके आचरणमें बाधा हो तो राजा वेदवित्त तथा शास्त्रसम्पन्न सुशील ब्राह्मण भरण पोषण करतारहे ऐसा न करनेसे उसको दोष लगेगा पालनसे दोष न होगा ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

द्वितीयः प्रपा : ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

उक्तो वर्णधर्मश्चाश्रमधर्मश्च ॥ अथ खल्वयं पुरुषो येन कर्मणा लिप्यते
यथैतदयाज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणमवद्यवदनं शिष्टस्या प्रतिषिद्धसेवनमिति
च तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न कुर्यादिति मीमांसते न कुर्यादित्याहुर्न हि कर्म
क्षीयत इति कुर्यादित्यपरे पुनः स्तोमेनेष्ट्वा पुनः सवनमायांतीति विज्ञायते ।
ब्रात्यस्तोमैश्चेष्ट्वा तरति सर्व्वं पाप्मानम् । तरति ब्रह्महत्यां योश्चमेधेन यजते ।
अग्निष्टुताभिः शस्यमानं याजयेदिति च । तस्य निष्कयणानि जपस्तपो होम
उपवासो दानमुपनिषदो वेदांताः सर्व्वच्छन्दःसुसंहिता मधून्यवमर्षणमथर्व-
शिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहद्रथंतरे पुरुषगतिर्महानाग्न्यो
महावैराजं महादिवाकीर्त्य ज्येष्ठसाम्नामेन्यतमं वहिष्पवमानं कूष्माण्डानि पाव-
मान्यः वेत्री चेति पावनानि । पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रसु-
वको हिरण्यप्राशनं घृतप्राशनं सोमपानमिति च मेध्यानि । सर्व्वे
शिलोच्चयाः सर्वा स्रवंत्यः पुण्या हृदास्तीर्थानि ऋषिनिवासा गोष्ठपरिस्कंदा इति
देशाः । ब्रह्मचर्य्यं सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रतायः शायिताऽ-
नाशक इति तपांसि । हिरण्य गौर्वासोऽथो भूमिस्तिलघृतमन्नामिति देयानि ।
संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहः षडहरूपहोहोरात्र
इति कालाः एतान्येवानादेशे विकल्पेन येरन्नेनसि गुरुणिः गुरुणि लघुनि
लघूनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चांदायणमिति सर्व्वप्रायश्चित्तं प्रायश्चित्तम् ॥

इति श्रीगौतमीयेधर्मशास्त्र एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

वर्णधर्म, और आश्रमोंका धर्म कहागया, इस समय जिस कर्मके करनेसे मनुष्य पापसे
लिप्त होते हैं, उसको कहते हैं; यज्ञ न करने योग्यको यज्ञ कराना, और भक्षणके अयोग्यको
भक्षण कराना, तथा नमस्कार करने अयोग्यको नमस्कार करना, शास्त्रोक्त कर्मका न करना,
नीचकी सेवा करना, निषिद्ध कर्मोंके करनेपर प्रायश्चित्त करै अथवा न करै उसकी मीमांसा
कीजती है; कोई २ ऋषि कहते हैं कि प्रायश्चित्त न करै, कारण कि कर्मोंका क्षय नहीं
होता, कोई २ कहते हैं कि प्रायश्चित्त करै कारण कि शास्त्रसे यह विदित होता है कि
पुनर्बार स्तोमयज्ञके करनेसे पवित्र होजाते हैं; और ब्रात्यस्तोम यज्ञके करनेसे सम्पूर्ण
पापोंसे छूटजाता है, अश्वमेध यज्ञका करनेवाला ब्रह्महत्याके पापसे छूटजाता है; शापकी
निन्दासे लिप्तहुआ मनुष्य अग्निष्टुत यज्ञको करै और उपरोक्त पापोंका प्रायश्चित्त यह है कि
जप, तप, हवन, उपवास, दान, उपनिषद, वेदान्त, चारों वेदोंकी संहिता, मधु, अवमर्षण,
अथर्वण वेदके शिरोमंत्र, पुरुषसूक्त, राजन और रोहिणी मंत्र, बृहत् और रथन्तर साम,
पुरुषगति, महानाग्नौ ऋचा, महावैराज, महादिवाकीर्त्य और ज्येष्ठसामोंका कोईसा भाग
वहिष्पवमान, कूष्माण्ड, पावमानी ऋचा, गायत्री यह सभी मनुष्यको पवित्र करनेवाले हैं;

यथोन्नत, शाकमक्षण, फल, प्रसृत यावक, हिरण्य, घृत, सोमलता इनका पीना भी पवित्र करनेवाले हैं, सम्पूर्ण पर्वत, झरने, पवित्र कुंड, तीर्थ, ऋषि गौशोंका निवास इन सम्पूर्ण देशोंमें जानेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होजातेहैं; ब्रह्मचर्य, सत्य मापण, यथा समय आचमन, आर्द्र, वस्त्र, पृथ्वीपर शयन, और अन्नशन इन सम्पूर्ण कार्योंका नाम तपस्या है; सुवर्ण, गौ, विल, वस्त्र, घोडा, भूमि, घृत और अन्न इन सब वस्तुओंका दान करे; वर्ष, छैः मास, तीनमास, दो मास, वा एक मास, चौबीस, वारह, छैः तीन दिन अहोरात्र यह काल है, पूर्वोक्त सम्पूर्ण प्रायश्चित्त अन्नादेश पापमें भी क्रिये जाते हैं, परन्तु बड़े पापमें बड़े और छोटे पापमें छोटे प्रायश्चित्त करनेयोग्य हैं, कुछ अतिक्रूर चांद्रायण यह सब पापोंके प्रायश्चित्त हैं ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ मायादीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथ चतुःषष्टिषु यातनास्थानेषु दुःखान्यनुभूय तत्रेमानि लक्षणानि भवन्ति ब्रह्महर्द्रकुष्ठो सुरापः श्यावदंतः गुरुतल्पगः पंगुः स्वर्णहारी कुनखी द्विव्रीं वस्त्रापहारी हिरण्यहारी दर्दुरी तेजोपहारी मण्डली स्नेहापहारी क्षयी तथा अजीर्णवानन्नापहारी ज्ञानापहारी मूकः प्रतिहंता गुरोरपस्मारी गोत्रो जात्यंधः पिशुनः प्रतिनासः प्रतिवक्रस्तु सूचकः शूद्रोपाध्यायः श्रपाकस्त्रपुसीसचामर-विक्रयी मद्यप एकशफविक्रयी मृगव्याधः कुंडाशी मृतकचैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी नास्तिको रंगोपजीव्यभक्ष्यभक्षी गंडरी ब्रह्मगुरुपतस्कराणां देशिकः पिंडितः पंडो महापायिको गंडिकश्चांडाली पुष्कसी गोण्ववकीर्णी मध्वामेही धम्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्तकः खल्वाटः सगोत्रासमयस्यभिगामी श्लोपदी पितृमातृभगिनीस्यभिगाम्यविजितस्तेषां कुञ्जकुंडपंडव्याधितव्यंगदरित्राल्पा-युषोऽल्पबुद्धिः चंडपंडशैलूपतस्करपरपुरुषभेज्यपरकर्मकराः खल्वाटवक्रांगसं-कीर्णाः क्रूरकर्मणः क्रमशश्चांत्याश्रोपपद्यते तस्मात्कर्तव्यमेवेह प्रायश्चित्तं विशुद्धैर्लक्षणैर्जायते धर्मस्य धारणादिति धर्मस्य धारणादिति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशान्ने विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

सम्पूर्ण पापी चौंसठ नरकके स्थानोंमें दुःख भोगकर मनुष्यलोकमें पूर्वोक्त पापोंसे चिह्न-युक्त हो जन्म लेते हैं, ब्रह्महत्या करनेवालेके गीला कुष्ठ होताहै, मदिरा पीनेवालेके दांत काले होते हैं गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला लंगडा होता है, सुवर्णकी चोरी करनेवालेके नख बुरे होते हैं, वस्त्रोंका चुरानेवाला दाढ़युक्त होता है, सोनेका चोर मंडक होता है, तेजका चोर चक्रत्तेरोगसे युक्त होता है, धीकी चोरी करनेवाला क्षयी होता है अन्नकी चोरी करनेवाला अजीर्ण रोगसे युक्त होता है; ज्ञानकी चोरी करनेवाला गुंगा, गुनका मारनेवाला मिरगीरोगसे युक्त होताहै, गौकी हत्या करनेवाला जन्मांध होताहै, सूचककी नाक और मुखमें सर्वदा दुर्गंध आतीरहतीहै, शूद्रका पढ़ानेवाला चांडाल,

रांग, सीसा, चँवर इनका बेचनेवाला, मद्यप, एकशफ पशुओंको बेचनेवाला, मृग-
न्याष, कुंडाशी, मृत्यु वा धोबी और बिना शास्त्रके जाने नक्षत्रोंको बतानेवाला अर्घुद-
रोगी, नास्तिक, रंगरेज, भक्षण करने अयोग्यका भक्षण करनेवाला गंडमालाका रोगी
होताहै, ब्राह्मण, कठोर, तस्कर, इनका जो गुरु हो, नपुंसक, रातदिन रास्ता चल-
नेवाला गंडमालाका रोगी, और चांडाली, भंगन इनके साथ रमण करनेवाला प्रमेह रोगसे
युक्त होताहै; पतिव्रता दूसरेकी स्त्रीमें मैथुनकी इच्छा करनेवाला गंजा; अपने गोत्रकी स्त्रीमें
गमन करनेवाला, और अपनी स्त्रीके साथ कुसमयमें गमन करनेवाला श्लीषदी होताहै,
पिता, और माताकी वहन और पिताकी अन्य स्त्रियोंमें वीर्य डालनेवाला कुवडा, भ्रू-
कृच्छ्री तथा अंगहीन दरिद्री और अल्पबुद्धि होताहै, तथा क्रोधी, नपुंसक, नट, चोर,
पराये मृत्यु और टहलने, खल्वाट, गंजे, कुवडे, वर्णसंकर और क्रूर कर्म करनेवाले होतेहैं,
क्रमानुसार अत्यजभी होतेहैं, इसकारण मनुष्ययोनिमें पापका प्रायश्चित्त अवश्य करना
उचित है, कारण कि धर्मके धारण करनेसे निर्मल चिह्नवाले मनुष्य उत्पन्न होतेहैं ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१ .

त्यजेत्पितरमपि राजघातकं शूद्रयाजकं शूद्रार्थयाजकं वेदविप्लावकं भ्रूणहर्नं
यश्चात्यावसायिभिः सह संवसेदंत्यावसायिन्या वा तस्य विद्यागुरुन्योनिःसंबंधाश्च
पात्य सर्वाण्युदकादीनि प्रेतकर्मणि ॐ पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः दासः
कर्मकरो वा अवकरादमेध्यपात्रमानीय दासी घटान् पूरयित्वा दक्षिणाभिमुखः
पदा विपर्यस्येदमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनूषी-
तिनो मुक्तशिखा विद्यागुरवो योनिःसंबंधाश्च वीक्षेरन् । अप उपस्पृश्य ग्रामं
प्रविशंति अत ऊर्ध्वं तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन्सावित्रीमज्ञानपूर्वं
ज्ञानपूर्वं चेन्निरात्रम् ।

राजाका मारनेवाला, शूद्रको यज्ञकरानेवाला, वेदको डुवानेवाला, भ्रूणहत्याकारी, अंत्या-
वसायी स्त्रियोंका संग करनेवाला ऐसे पिताको भी पुत्र त्यागदे (अन्योंको तौ कहनाही
क्या) फिर वह मनुष्य विद्या, गुरु और योनिःसम्बन्धियोंको इकट्ठा करके जलवन्ध
इत्यादि सम्पूर्ण प्रेतोंके कार्यको करे; और इसके निमित्त पात्रको त्यागदे, दास, अथवा
मृत्यु, अवकरसे अशुद्ध पात्र र, दासी घडोंको भरकर दक्षिणको मुख करके
“इसको मैं अनुदक करताहूं” यह कहकर पैरसे लटका करदे और वह सब उस प्रेतका
नाम लें; अपसज्य हो शिखाको खोलकर विद्यागुरु और वंशु भी देखलें; फिर जलका
स्पर्शकर ग्राममें प्रवेश करे और उसके संग यदि कोई अज्ञानतासे संभाषण करले तौ वह
होकर एक दिन गायत्रीका जपकरे, और जिसने जानबूझ कर संभाषण कियाहो वह
तीन रात्रि खडे होकर गायत्रीका जपकरे.

यस्तु प्रायश्चित्तेन शुद्धचेतस्मिन् शुद्धे शातकुंभमयं पात्रं पुण्यतमात् द्वदात्
येत्वा स्रवंतीभ्यो वा तत एनमप उपस्पृश्येयुः । अथास्मै तत्पात्रं दशुस्तत्सं-

प्रतिगृ जपेत् ता द्यौः शांता पृथिवी शांतं शिवमंतरिक्षं योरोचनस्तमिह
गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिस्तरस्समंदाभिः पावमानीभिः कूष्मांडैश्चाज्यं जुहुयात् ।
हिरण्यं ब्राह्मणाय वा दद्यात् गां चाचार्याय च यस्य च प्राणांतिकं यश्चित्तं
स मृतः द्रष्टेत् तस्य सर्वा उदकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युरेतदेव शांत्युदकं
सर्वेषूपपातकेषु सर्वेषूपपातकेषु ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकारसे राजाकी हत्या करके भी पुरुष यदि शुद्ध होगयाहो तो वह शुद्ध होजानेके
उपरान्त सुवर्णके घडेको पवित्र कुंडमें वा झरनोंमेंसे भरकर उसका स्पर्श करै और सु
घडेको उसे देदे फिर वह उस घडेको लेकर “शांता द्यौः शांता पृथिवी शांतं शिवमंतरिक्षं यो रोच-
नस्तमिह गृह्णामी” इन मंत्रोंको जपे, और यजुर्वेदकी ऋचा, पावमानी तथा कूष्मांडीसे घृतका हवन
करै, ब्राह्मणको सुवर्णका दान दे, आचार्यको गौदान करै जिस पापीका प्रायश्चित्त प्राणा-
न्तिक है वह मरनेके पीछे शुद्ध होता है, उसके उदकदानआदि सम्पूर्ण प्रेतकर्म करने में उन
समस्त पापोंमें यही शांतिका उदक कहा है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां मेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमावृपितृयोनिसंबन्धगस्तेन नास्तिकनिंदितकर्माभ्यासिप-
तितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः । पातकसंयोजकाश्च तैश्चाब्दं समाचरन्
द्विजातिकर्मभ्यो हानिः पतनं परत्र चासिद्धिस्तामेकं नरकं त्रीणि प्रथमान्यनि-
र्देश्यानि मनुः । न स्त्रीष्वगुरुतल्पगः पततीत्येके । भ्रूणहनि हीनवर्णसेवायां च
स्त्री पतति कौटसाक्ष्यं राजगामि पैशुनं गुरोरनृताभिशंसनं महापातकं नि
अपांक्त्यानां प्राग्दुर्बलात् । गोहंतृब्रह्मोज्झतन्मंत्रकृदवकीर्णपतितसावित्रि-
केषूपपातकं याजनाध्यापनाद्विगाचार्यौ पतनीयसेवायां च हेयौ अन्यत्र हाना-
त्पतति तस्य च प्रतिग्रहीत्येके न कर्हिचिन्मातापित्रोरवृत्तिः दायं तु न भजे-
रन् ब्राह्मणाभिशंसने दोषस्तावान् द्विरेनसि दुर्बलहिंसायां चापि मोचने
शक्तश्चेत् । अभिक्रुद्धावगूरुणं ब्राह्मणस्य वर्षशतमस्वर्ग्यं निपातने निघाति
सहस्रं लोहितदर्शने यावतस्तत्प्रस्कंधं पांसून् संगृह्णीयात्संगृह्णीयात् ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला, माता और
पिताके पक्षकी योनिसम्बन्धकी स्त्रियोंके साथ गमन करनेवाला नास्तिक, निंदित कर्मोंको
करनेवाला, पतितका संसर्ग करनेवाला, अपतितका त्यागनेवाला यह सभी पतित हैं इनके
साथ जो मनुष्य एक वर्षतक संसर्ग करता है वह भी पातकी होजाता है, वह पतित
द्विजातियोंके कर्मसे हीन होकर घर और परलोकमें अगतिको प्राप्त होता है; और कोई २

ऐसा भी कहते हैं कि, मनुष्यको नरक होता है यह मनुका मत है कि पहले तीन (हत्याकारी, मदिरा पीनेवाला, गुरुशय्यापर गमनकारी) का प्रायश्चि नहीं है, कोई २ यह कहते हैं कि गुरुकी शय्यापर गमन करने पतित होता है अन्य स्त्रीमें गमनकरनेवाला पतित नहीं होती. भूणहत्या करनेवाली और नीच वर्णकी सेवा करनेसे स्त्री पतित होती है; झूठी साक्षी, राजाकी चुगली, गुरुकी झूठी निन्दा यह भी महापातकके समान है; पंक्तिके बीचमें हत्यारा, वेदका त्यागी, (वेदमंत्रोंके व्यवहारसे रहित) अवकीर्णी और गायत्री से पतित है जो ऋत्विक् आचार्य हो तो यह भी त्यागनेके योग्य हैं; जो पतितकी सेवाको करते हैं जो नहीं त्यागता है वह भी पतित होता है, और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि पतितके प्रतिग्रहसे यह पतित होते हैं; पुत्र माता पिताकी आज्ञाका उल्लंघन न करे, और विना उनकी आज्ञाके भाग भी न दटे, ब्राह्मणकी निन्दा तथा पूर्वोक्त निरपराधी और दुर्बलकी हिंसा में भी दुगुणा दोष है; यदि छुटानेमें सामर्थ्यवान् होकर ब्राह्मणको हिंसा करावे, और गुरुर क्रोध करे तो ब्राह्मणको सौ वर्षतक नरक होता है मारनेमें सहस्र वर्षतक और रुधिरके निकलनेपर जितने रुधिरसे पृथ्वीके परमाणु भीजें उतनेही वर्षतक नरक प्राप्त होता है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिष्वच्छादितस्य लक्ष्येण वा स्याज्जन्यशस्त्रभृतां खट्वांगकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान् ब्रह्मचारी भैक्ष्याय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्म्मचक्षणः यथोपक्रमेत्संदर्शनादार्यस्य ज्ञानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदकोपस्पर्शनाच्छुद्ध्येत् । प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य द्रव्यापचये वा ज्यवरं प्रति राज्ञोऽश्वमेधावभृथे वान्ययज्ञेऽप्यभिष्टंदतश्चोत्सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे हत्वापि आत्रेय्यां चैवं गर्भे चाविज्ञाते ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं ब्रह्मचर्यमृषभैकसहस्राश्च गा दद्यात् वैश्ये त्रैवार्षिकमृषभैकशताश्च गा दद्यात् । शूद्रे संवत्सरमृषभै दशाश्च गा दद्यात् । अनात्रेय्यां चैवं गां च वैश्यवत् मंडूकुलकाकविडराहमूषिकाश्चहिंसासु च । अस्थिमतां सहस्रं हत्वा अनस्थिमतामनडुद्गारे च अपि वाऽस्थिमतामेकैकस्मिन् किञ्चिदद्यात् । षंडे च पलालभारः सीसमाषकश्च वराहे घृतघटः सर्पे लोहदंडः ब्रह्मबंध्यां च ललनायां जीवो वैशिके न किञ्चित् तल्पान्नधनलाभवधेषु पृथग्वर्षाणि द्वे परदारे त्रीणि श्रोत्रियस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गः यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिषिद्धमत्र योगे सहस्रवाक् चेत् अग्न्युत्सादिनिराकृत्युपपातकेषु चैवं स्त्री चातिचारिणी गुप्ता पिंडं तु लभेत् । अमानुषीषु गोवर्जं स्त्रीकृते कृष्णमंडैर्वृतहोमो घृतहोमः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

ब्रह्महत्या करनेवालोंका प्रायश्चित्त यह है कि वह मनुष्य अग्निमें प्रवेश करे अथवा तीनबार शस्त्रचारियोंके शस्त्रसे काटेजाय, फिर वह खट्वांग और कपालको हाथमें लेकर बारह वर्षतक चर्य

व्रतकोधारण किये भिक्षाके निमित्त अपने कर्मको कहतेहुए ग्राममें जायँ, सज्जन मनुष्यको देख-
कर मार्ग छोड़दें और तीर्थोंमें स्नान, आसन और जलके आचमनसेही शुद्ध होतेहैं, यदि
ब्रह्महत्याके निमित्तसे किसी ब्राह्मणके प्राण वचजाय, अथवा नष्टहुआ द्रव्य मिलजाय;
तो तीसरा भाग कम प्रायश्चित्त करै, राजा अश्वमेध अथवा अन्य यज्ञोंमें अग्निकी स्तुति
करै; और जो अंतःकरणसे ब्राह्मणके वधकी इच्छा न करताहो यदि वह ब्राह्मण मरजाय
तो, ऋतुमती स्त्रीके मरनेमें वा विना जाने गर्भके नष्ट करनेमें भी नौ वर्षका प्रायश्चित्त है;
ब्राह्मण क्षत्रियोंके मारनेमें छैः वर्षका स्वभावसे ब्रह्मचर्य करै, और सहस्र गौ दे तथा
वैश्यके मारनेमें तीन वर्षका ब्रह्मचर्य करै एक बैल और सौ गौ दे, शूद्रकी हत्यामें एक
वर्षका ब्रह्मचर्य कर एक बैल और ग्यारह गौ दे, रजस्वलाके अतिरिक्त स्त्रीका मारने-
वाला एक वर्षतक ब्रह्मचर्य कर एक बैल और सौ गौओंका दान करै, मेंढक, काक,
नौला, धिंव, अश्व, दंहर, मूसा, इनकी हिंसामें भी पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करै; सहस्र अस्थि-
वाले और अस्थियोंसे रहितोंकी हत्यामेंभी तथा अधिक भारसे बैलकी हत्यामेंभी यही
प्रायश्चित्त है; और अस्थिवाले छोटे २ जीवोंकी एक २ हत्यामें थोड़ा २ दान करै, पंड
जीवकी हत्यामें पलालका एक भार, और मासा सीसा दानकरै, शूकरकी हत्यामें घीका
बड़ा, सर्पकी हत्यामें लोहेकी दंडको ब्राह्मणको दे; ब्राह्मणकी व्यभिचारिणी स्त्रीकी हत्या
शय्या, अन्न और धनके लोभसे विना जाने होजाय तो भिन्न २ वर्षके प्रायश्चित्त करनेकी
विधि है. दूसरेकी स्त्रीकी हत्या करनेवाला दो और वेदपाठीकी स्त्रीकी हत्यामें तीन वर्ष-
तक प्रायश्चित्त करै, यदि द्रव्य मिलजाय तो अपराधी छोड़ देनेके योग्य है, अथवा
उसको उसके घर पहुंचादे, यदि इस अपराधमें हजार बारभी सच्चा हो अग्निका त्यागी,
तिरस्कारी और उपपातक हो उनमें भी यही प्रायश्चित्त है; स्त्रीके व्यभिचारिणी
होनेपर उसे घरमें रखछोड़ै और पिंड दे. गौके अतिरिक्त स्त्रीसे भिन्न स्त्रीकी कीहुई
हत्यामें कूर्पांडमंत्रोंसे घीका हवन करै ।

इति गौतमस्मृती मापाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णा संचेयुः रामास्ये मृतः द्रवेत् अमत्या पाने
पयोधृतमदकं वायुं प्रतिव्यहं तप्तानि सकृच्छस्ततोऽस्य संस्कारः मूत्रपुरीषरे-
तसां च प्राशने श्वापदोष्ट्रखराणां चांगस्य ग्रामकुक्कुटशूकरयोश्च गंधाघ्राणे
सुरापस्य प्राणायामो धृतप्राशनं च पूर्वैश्च दष्टस्य तल्पे लोहशयने गुरुतल्पगः
यीत । सूर्मौ वा ज्वलंतीं चाश्लिष्येत् । लिंगं वा सवृषणमुत्कृत्यांजलावाधा-
य दक्षिणां प्रतीचीं दिशं व्रजेत् । अजिह्ममाशरीरनिपा त मृतः शुद्ध्येत् ।
सयोनिःसगोत्राशिष्यभार्या स्नुषायां गवि च गुरुतल्पसमोऽवकर इत्येके
श्वभिरादयेद्राजा निहीनवर्णगमने यं प्रकाशं पुमांसं घातयेत् । यथोक्तं वा
गर्दभनावकीर्णो निर्ऋतिं चतुष्पथे यजते । जिनमूर्द्धवालं परिधाय लोहि-

तपात्रः सप्तगृहान् भैक्षं चरेत् कर्माचक्षाणः संवत्सरेण शुद्धचेत् । रेतःस्कंदने
भये रोगे स्वप्नेर्भाधनभैक्षचरणानि सप्तरात्रं कृत्वाज्यहोमः साभिसंधेर्वारि
भ्याम् ॥

मदिरा पीनेवाले ब्राह्मणके मुखमें उष्ण मदिराको डालै तौ वह मृत्युको पाकर पापसे मुक्त होताहै; यदि अज्ञानतासे मदिरापान कीहै तो तीन दिनतक क्रमानुसार दूध, घृत, उदक और वायुको भोजनकर तप्तकृच्छ्र व्रतको करै इसके उपरान्त पुनर्वार यज्ञोपवीत करावै, मूत्र, विष्टा, वीर्य, भेडिया, ऊंट, गधा, ग्रामका सुरगा इनके भक्षण करनेमेंभी पूर्वोक्त संस्कार करै, मदिरा पीनेवालोंकी दुर्गंधको सुंघने और पूर्वोक्त भेडियेआदिके काट-खानेमें प्राणायाम और घृतका भोजन करै, गुरुकी स्त्रीके साथ गमन करनेवाला तपाईहुई लोहेकी शय्यापर शयन करै, और जलतीहुई लोहेकी स्त्रीका स्पर्श करै; अथवा अण्डकोश-सहित इन्द्रियको काट हाथमें रखकर दक्षिण अथवा पश्चिम दिशाको चलाजाय और मरण-पर्यंत निष्कपट रहै, फिर मरनेके उपरान्त शुद्ध होजाताहै। मित्रकी स्त्री, कुलगोत्रकी स्त्री, शिष्य और पुत्रवधू, गौ इनके साथ गमन करनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमनकरनेके समान प्रायश्चित्त करै, यदि कोई उत्तम वर्णकी स्त्री नीच वर्णके पुरुषके साथ व्यभिचार करै, तौ राजा उसको सबके सम्मुख मरवा दे, और वह पुरुष भी वच करनेके योग्य है, गधीके योनिमें वीर्य डालनेवाला चौराहेमें निर्ऋति देवताका पूजन करै, और वालोंसहित उस गधेकी चामको ओढकर लोहेका पात्र हाथमें ले अपने कर्माँको कहताहुआ सात घरोंसे भिक्षा मांगै, एक वर्षतक इस भांति करनेसे शुद्ध होजाताहै; भय, रोग, या सुपुष्टि अवस्थामें वीर्य स्खलित होजाय तौ सात दिनतक अग्निहोत्र करनेके लिये ईधन और भिक्षा मांगकर घृतसे हवन करै।

सूर्याभ्युदित ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुञ्जानोभ्यस्तमिते च रात्रिं जपन् सावित्रीम्, अशुचिं दृष्ट्वादित्यमीक्षेत प्राणायामं कृत्वा अमेध्यप्राशने वा अभोज्यभोजने निष्पुत्रीषीभावः त्रिरात्रावरमभोजनं सप्तरात्रं वा, स्वयं शीर्णान्युपयुञ्जानः फलान्यनातिक्रामन् प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दिनो घृतप्राशनं च आक्रोशानृतर्हिंसासु त्रिरात्रं परमं तपः सत्यवाक्ये चेद्धारुणीभिः पावमानीभिर्होमः । विवाहमैथुननिर्मातृसंयोगेष्वदोषमेके । अनृतं चेत् न तु खलु गुर्वयेषु यतः सप्त पुरुषानितश्च परतश्च हन्ति । मनसापि गुरोरनृतं वदन्नल्पेष्वप्यर्थेषु । अंत्यावसायिनीगमने कृच्छ्रान्दः अमत्या द्वादशरात्रम्, उदकपागमने त्रिरात्रं त्रिरात्रम् ॥

इति श्रीतौतमयी धर्मशास्त्रे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

सूर्यके उदय होनेपर ब्रह्मचारी रहै प्रतिदिन एक बार भोजन करै; सूर्यके अस्त होनेपर गायत्रीका जप करताहुआ रात्रिको व्यतीत करै, अपवित्र वस्तुको देखकर सूर्यका दर्शन करै; और अपवित्र वस्तुको भक्षण करके प्राणायाम और सूर्यका दर्शन करै, अभोज्य वस्तुका यदि भोजन करले तौ जबतक उस अन्नका मल शरीरमेंसे न निकले तबतक (तीन रात्रितक)

भोजन न करै अथवा सात दिनतक आपसे दूटेहुए फलोंका भक्षण करै, पांचों पंचनख पशुओंके अतिरिक्त अन्य पशुओंके भक्षणमें व्रतन करै घृतका भक्षण करै; निन्दा, मिथ्या, हिंसा इनमें सत्य वचनके विषे अर्थात् जो सब निन्दक हों तौ वारुणी पावमानी ऋचाओंसे हवन करै और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि विवाह, मैथुन और माताके अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंके साथ झूठ बोलनेका दोष नहीं है, गुरुके निमित्त झूठ बोलनेवाला सात पिछली और सात अगली पीढियोंको नष्ट करता है । मनसे भी गुरुके निमित्त तुच्छ कामोंमें जान बूझकर यदि झूठ बोले अथवा भीलादिके साथ यदि गमन करै, पूर्वोक्त कर्मोंको यदि अज्ञानसे करै तौ बारह रात्रितक कृच्छ्र करनेसे शुद्धि होती है, और रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेवाला तीन रात्रि कृच्छ्र करै ॥

इति श्रीगौतमस्मृती भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः २५.

रहस्यं प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्ऋचं तरत्समंदीत्यप्सु जपेदप्रतिग्राह्यं प्रतिजिघृक्षन् प्रतिगृह्य वा अभोज्यं बुभुक्षमाणः पृथिवीमावपेत् ऋत्वंतरमण उदकोपस्पर्शनाच्छुद्धिमेके स्त्रीषु पयोव्रतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयमद्विस्तृतीयं दिवादिष्वेकभक्तको जलक्लिन्नवासाः लोमानि नखानि त्वचं मांसं शोणितं स्नाय्वस्थिमज्जानमिति होम आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमीत्यंततः सर्व्वेषामेतत्प्रायश्चित्तं भूणहत्यायाः । अथान्य उक्तो नियमः । अम त्वं पारयेति महाव्याहृतिभिर्जुहुयात् । कूष्मांडैश्चाज्यं तद्व्रत एव वा ब्रह्महत्या-
रापानस्तेयगुरुतत्पेषु प्राणायामैः । स्नातोऽधमर्षणं जपेत् । सममश्वमेधाव-
भृत्येन सावित्रीं वा सहस्रकृत्व आवर्तयन् पुनिते हैवात्मानमंतर्जले वाधमर्षणं त्रिरावर्तयन् पापेभ्यो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अज्ञानतासे जो अपराध किया है उसका यह प्रायश्चित्त है कि जलमें बैठकर "तरत्स-मंदी" इस ऋचाको चार बार जपै, और प्रतिग्रहके अयोग्य को लेनेकी इच्छा करनेवाला वा लेनेवाला भी जल में बैठकर पूर्वोक्त ऋचा को जपै, और अभोज्य भोजन की इच्छा करनेवाला पृथ्वीपर्यटन करै, ऋतुमती स्त्रीके साथ गमन करनेवाला स्नाय वा आचमन करनेसे ही शुद्ध होजाता है, और कोई २ ऐसा कहते हैं कि स्त्रियोंके साथमें यह प्रायश्चित्त है कि जो भूणहत्या करै वह दशरात्रितक दूध पीनेका व्रत करै; आगेकी दश रात्रितक घी पिये; और अगली दश रात्रियोंमें जलही पिये; दिनमें एकवार भोजन करै, और भीजेहुए वस्त्रोंको पहनकर लोम, नख, मांस, रुधिर, स्नायु, मज्जा, शरीर यह "आत्मनो मुखे मृत्योरास्ये जुहोमि" इस मंत्रसे हवनकरै, सम्पूर्ण भूणहत्या करनेवालोंकाभी यही प्रायश्चित्त है तथा उपरोक्त नियमसे रहकर "अमे त्वं पारय" यह कहकर सात महा-व्याहृतियोंसे हवन करै और कूष्मंडल मंत्रोंसे घीका हवन करै, ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला इन दोषोंमेंभी पूर्वोक्त व्र

कर प्राणायाम और स्नान करके अवमर्पणका जप करै तथा सहस्रवार गायत्रीको जपे, तब वह अश्वमेधके अवभृथके समान आत्माको पवित्र करताहै; और जलके बीचमें तीनवार अवमर्पणको जपनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ।

इति श्रीगीतमस्मृतौ भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

तदाहुः कतिधावकीर्णीं प्रविशतीति । मरुतः प्राणेन्द्रं वलेन बृहस्पतिं ब्रह्मवर्च-
सेनाभिमेवेतरेण सर्वेणेति । सोमावास्यायां निश्यामिमुपसमाधाय प्रायश्चित्ता-
ज्याहुतीर्जुहोति कामावकीर्णोऽस्यवकीर्णोऽस्मि कामाय स्वाहा । कामाभिदुग्धो-
स्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति । समिधमाधायानुपर्युक्ष्य यज्ञवास्तुं कृत्वो-
पस्थाय समासिंचन्वित्येतया त्रिरुपतिष्ठेत् । त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजि-
त्याभिक्रांत्या इति । एतदेवैकेषां कर्माधिकृत्ययोः पूत इव स्यात्स इत्थं जुहुया-
दित्यमनुमंत्रयेत् वरोदक्षिणेति । प्रायश्चित्तमविशेषात् अनार्जवपैशुनप्रतिषिद्धा-
चारानाद्यप्राशनेषु शूद्रायां च रेतः सिक्त्वा योनौ च दोषवति कर्मण्यभिसं-
धिपूर्वोऽप्यविलगाभिरप उपस्पृशेद्गारुणीभिरन्यैर्वा पवित्रैः प्रतिषिद्धवाङ्मनसयो-
रपचारे व्याहृतयः संख्याताः पंच सर्वास्वपो वाचामेदहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वा-
हेति प्रातः रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनात्विति सायम् अष्टौ वा समिध आदध्यादेव-
कृतस्येति हुत्वैवं सर्वस्मादेनसो मुच्यते मुच्यते ॥

इति श्रीगीतमीथे धर्मशास्त्रे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

कितने प्रकारसे अवकीर्णीं प्रवेश करताहै; विद्वानोंने यह कहाहै कि पवनमें प्राण, इन्द्रमें वल, बृहस्पतिमें ब्रह्मतेज और अन्य समस्त देहकी वस्तु अग्निमें प्रवेश करतेहैं; वह अवकीर्णीं अमावसकी रात्रिको अग्नि स्थापन करै, प्रायश्चित्तकी “कामावकीर्णोऽस्मि कामाय स्वाहा” और “कामाभिदुग्धोऽस्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहा” इन मंत्रोंसे आहुति दे, समिधकी लकड़ी रखकर छिड़के, और यज्ञवास्तुका चक्र बनावै, ‘समासिंचतु’ इस मन्त्रसे तीनवार स्तुति करै, और उसी वास्तुमें “त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्याभिक्रांत्या”, यह मन्त्र पढ़े, यहभी कितने ऋषियोंका वचन है कि, कर्मका प्रारंभ कर जो पवित्र करनेकी अभिलाषा करनेवाले हैं वह भी इसी प्रकार होम करै; और ‘वरो दक्षिणा’ इससे स्तुति करै, इसी भांति सामान्यमेंभी प्रायश्चित्त है, कठोरता, चुगली, निषिद्ध आचरण, अभक्ष्यभक्षण इनमें और शूद्रा स्त्रीमें वीर्य डालकर, वा आग्रहसे जो दूषित कर्म कियाहै तौ वरुणदेवतावाली और जलके चिह्नयुक्त ऋचाओंसे या अन्यान्य पवित्र मंत्रोंसे आचमन करै, मन और वाणीके निषिद्ध आचरणमें पांच व्याहृतियोंसे अथवा सभी व्याहृतियोंसे आचमन करै; प्रातःकालमें “अहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहा” इस मन्त्रसे, और सायंकालमें “रात्रिश्च मा वरुणश्च पुनातु” इस मन्त्रसे आठ समिधें रक्खै; और “देवकृतस्य” इस मंत्रद्वारा हवन करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे छूटजाताहै ।

इति गीतमस्मृतौ भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामः । हविष्यान्प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्री-
र्नाशनीयात् । अथापरं त्र्यहं नक्तं भुञ्जीत । अथापरं त्र्यहं न कंचन याचेत् ।
अथापरं त्र्यहमुपवसेत् । संतिष्ठेदहनि रात्रावासीत् क्षिप्रकामः सत्यं वदेत् ।
अनार्यैर्न संभाषेत् । रौरवयौधाजिने नित्यं प्रयुञ्जीत । अनुसवनमुदकोपस्प-
शनम् । आपोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयेत् । हिरण्यवर्णाः शुचयः
पावका इत्यष्टाभिः॥अथोदकतर्पणम्॥ॐ नमो हमाय मोहमाय संहमाय धुन्वते
तापसाय पुनर्वसवे नमो नमो मौज्यायौर्म्याय वसुविदाय सर्वविदाय नमो
नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमो नमो रुद्राय पशुपतये
महते देवाय त्र्यम्बकायैकचरायाधिपतये हराय शर्वपेशानाय शिवाय शांता-
योग्राय वज्रिणे वृणिने कपादिने नमो नमः सूर्यायादित्याय नमो नमो नील-
श्रीवाय शितिकंठाय नमो नमः कृष्णाय पिंगलाय नमो नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय
वृद्धायैन्द्राय हरिकेशायोद्धरेतसे नमो नमः सत्याय पावकाय पावकवर्णाय नमो
नमः कामाय कामरूपिणे नमो नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णाय
तीक्ष्णरूपिणे नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय मध्यमपुरुषायोत्तम-
पुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चन्द्रललाटाय नमो नमः कृत्तिवाससे
पिनाकहस्ताय नमो नमः इति । एतदेवादित्योपस्थानम् । एता एवाज्याहुतयः ।
द्वादशरात्रस्यांते चरुं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् । अग्नये स्वाहा सो-
माय स्वाहा अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इंद्राग्निभ्यामिन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे
प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति ॥ अथ ब्राह्मणतर्पणम् ॥ एतेनैवातिकृच्छ्रो
व्याख्यातः । यावत्सकृदाददीत तावदशनीयात् अञ्चक्षस्तृतीयः स कृच्छ्रातिकृच्छ्रः
प्रथमं चरित्वा शुचिः पृतः कर्मण्यो भवति । द्वितीयं चरित्वा यत्किंचिदन्यत्
महापातकेभ्यः पापं कुरुते तस्मात्प्रमुच्यते । तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो
मुच्यते । अथैतांस्त्रीन् कृच्छ्रान् चरित्वा सर्वेषु स्नातो भवति सर्वैर्देवैर्ज्ञातो
भवति यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस समय कृच्छ्रव्रतके विषयमें कहते हैं, प्रातःकालमें केवल हविष्यान्नको भोजन कर तीन
रात्रितक कुछ न खाय, पीछे तीन दिनतक नक्त व्रत करे, इसके पीछे तीन दिन अयाचित
व्रतका अनुष्ठान करे, अर्थात् किसीके कुछ न मांगे, फिर तीन दिनतक उपवास करे, दिनके
समय खड़ा रहे, रात्रिके समय बैठे, बहुत शीघ्र फलकी इच्छा करनेवाला सत्य बोले, दुष्टोंके साथ
वार्तालाप न करे, नित्य रुरु, यौघ इनकी मृगछाला ओढे, त्रिकालमें आचमन कर “आपो
हि ष्ठा” आदि तीन ऋचाओंसे और “हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः” इत्यादि आठ पवित्र

ऋषाभसे मार्जन करै; फिर इसभांति जलसे तर्पण करै कि हम, मोहम, संहम, धुन्त, तापस, पुनर्वसु, मौज्य, और्त्य, क्सुविन्द, सर्वविन्द, पार, सुपार, महापार, पारयिष्णु, रुद्र, पशुपति, महान् देव, त्र्यम्बक, एकचर, अधिपति, हर, शिव, शान्त, उग्र, वज्रि, घृणि, कपर्दी, सूर्य, आदित्य, नीलम्रीव, शितिकंठ, कृष्ण, पिंगल, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वृद्ध, हरिकेश, ऊर्ध्वरेतः, सत्य, पावक, पावकवर्ण, काम, कामरूपी, दीप्त, दीप्तरूपी, तीक्ष्ण, तीक्ष्णरूपी, सौम्य, सुपुरुष, म्हापुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष, ब्रह्मचारी, चन्द्रललाट, कृत्तिवासा, पिनाक-हस्त इन सबको मेरा नमस्कार है, यह तर्पण है और सूर्यकी स्तुति भी यही है, घृतकी आहुति भी यही है, इस प्रकार व्यतीतहुए चारह दिनके उपरान्त चरुको पकाकर इन देवताओंके निमित्त हवन करै, और “अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, इंद्राग्निभ्यां स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा, त्रिभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा” इस हवन के पीछे वेदके मंत्रोंसे तर्पण करै; इसी प्रकार अतिकृच्छ्र भी कहागया है, जितना एकवार सुखमें आवै उतनाही भोजन करै और जलकोही भक्षण करै, यह कृच्छ्रातिकृच्छ्र है; प्रथम कृच्छ्रको शुद्धतासे करके पवित्र और कर्मका अधिकारी होता है; दूसरे अतिकृच्छ्रको करके महापातकसे अन्य जो पाप करताहै उससे मुक्त होजाता है, और तीसरे कृच्छ्रको करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होजाता है; और इन तीनों कृच्छ्रोंको करनेसे सम्पूर्ण कर्मोंमें ज्ञात होताहै उसको सभी देवता जानतेहैं इस प्रकार जानै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथातश्चांद्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं व्रतं चरेत् । श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् । आप्यायस्व संते पयांसि नवोनव इति चैताभिस्तर्पणयाज्यहोमौ हविषश्चानुमंत्रणम् उपस्थानं चंद्रमसौ यदेवा देवहेडनमिति चतसृभिराज्यं जुहुयात् । देवकृतस्येति चांते समिद्धिः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वस्तपः सत्यं यशः श्रीः रूपं गीरोजस्तेजः पुरुषो धर्मः शिव इत्येतैर्ग्रासानुमंत्रणं प्रतिमंत्रं मनसा नमः स्वाहेति वा संवशासप्रमाणमास्याविकारेण चरुभैक्षसत्तुकणयावकपयोदधिवृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां पंचदशग्रासान् शुक्लैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात् अमावास्यायामुपोष्येकोपचयेन पूर्वपक्षं, विपरीतमेकैषाम् । एष चांद्रायणो मासो मासमेतमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हंति द्वितीयमाप्त्वा दश पूर्वान्दशापरानात्मानं चैकविंशं पंक्तौश्च पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चंद्रमसः सलोकतामामोत्याप्नोति ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अब चान्द्रायण व्रतके विषयमें कहतेहैं, चान्द्रायणका नियम यह है कि चतुर्दशीमें कृच्छ्र व्रतकरके मुंडन करै; और प्रातःकाल पूर्णमासीके दिन उपवास करै “आप्यायस्व सं ते पयांसि नवोनव” इत्यादि मंत्रोंसे पाठकर तर्पण करै; घृतका हवनकरै, हविका अक्षुमंत्रण और चन्द्रमाकी

स्तुति इन सबको करे और "यद्देवा देवहेछनं" इत्यादि चार ऋचाओंसे घृतका हवनकरे, इसके पीछे "देवकृतस्य" इत्यादि मंत्रोंसे समिधोंका हवनकरे और "भूः, भुवः, स्वः, तपः, सत्यं, यशः श्रीः, रूपं, गीः, ओजः, तेजः, पुरुषः, धर्मः, ज्ञिवः" इन चौदह मंत्रोंसे ग्रासोंका अनुमंत्रण क्रमानुसार करे, इसके पीछे प्रत्येकमंत्रसे मनसे ' नमः स्वाहा' यह पढ़े; सम्पूर्ण ग्रासोंका प्रमाण यह है कि जितनेसे विकार उत्पन्न न हो, चरु, भिखाका अन्न, सत्तू, कण, जौ, दूध, दही, घृत, मूल, , उदक; हवि, यह एक २ क्रमानुसार श्रेष्ठ हैं; पूर्णमासीके दिन पंद्रह ग्रासोंको खाकर प्रतिदिन एकग्रास कम करके कृष्णपक्षमें भोजनकरे, अमावसके दिन चपावाकर प्रतिदिन एक २ ग्रासको बढ़ावे शुक्लपक्षमें भक्षणकरे; किसी ऋषियोंके मतमें इससे विपरीत चांद्रायणकी विधि है; और यह चांद्रायणभास है, इसका पवित्र होकर प्रथम एक-महीनेतक (व्रत) करके मनुष्य सब पापोंसे छूटकर मुक्ति पाताहै; और दूसरीवार करनेसे दसपीढ़ी पिछली और दसपीढ़ी अगली तथा इक्कीसवीं अपनी आत्माको और जिन पंक्तियोंमें बैठे उन पंक्तियोंकोभी पवित्र करताहै; और एक वर्षतक चांद्रायण करनेसे चन्द्रलोकको प्राप्त होताहै ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः २९.

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋक्थं भजेरन् निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति चेच्छति । सर्वं वा पूर्व्वजस्येतरान्विभृयात् पितृवत् । विभागे तु धर्मवृद्धिं विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मियुनमुभयतोदद्युक्तो वृषो गोवृषः काणखोरकृदखंजा मध्यमस्थानिकांश्चेत् अविधान्यायसी ग्रहमनौयु चतुष्पदां चैकैकं यवीयसः समं चेतारत् सर्वं द्यंशी वा पूर्व्वजः स्यात् । एकैकमितरेषाम् एकैकं वा काम्यं पूर्व्वः पूर्वो लभेत दशतः पशूनामेकशफो द्विपैर्दानां वृषभोधिको ज्येष्ठस्य ऋषभोदशा ज्यैष्ठिने यस्य समं वा ज्यैष्ठिने । येन यवीयसां प्रतिमातृ वा स्ववर्गे भागविशेषं पितोत्सजेत् । पुत्रिकामनपत्योभिं प्रजापतिं चेष्टास्मदर्थमपत्यमिति संवाद्य अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकेत्येकेषां तत्संशयान्नोपयच्छेदभ्रातृकां पिंडगोत्रपिसंवंधा ऋक्थं भजेरन् । स्त्री चानपत्यस्य बीजं वा लिप्सेत् । देवरवत्यामन्यतोजातमभागं स्त्रीधनं दुहितृणामप्रदानमप्रतिष्ठितानां च भगिनीशुल्कं सोदराणामूर्द्धं मातुः पूर्व्वं चैके संसृष्टविभागः प्रेतानां ज्येष्ठस्य संसृष्टिनि प्रेतोऽंससृष्टिऋक्थभाक् । विभक्तजः पित्र्यमेव स्वयमर्जितमवेद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात् अवैद्याः समं विभजेरन् पुत्राः औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नापविद्धा ऋक्थभाजः कान्तीनसहोदपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयंदत्तक्रीता गोत्रभाजः । चतुर्थांशिनश्चौरसाद्यभावे ब्राह्मणस्य ॥ राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यांशभाक् । ज्येष्ठांशहीनमन्यत् राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणोपुत्रेण क्षत्रियाच्चेत् शूद्रापुत्रोप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेच्छभेत वृत्तिमूलमंतेवाप्तिविधिना सवर्णापुत्रोप्यन्या-

यवृत्तो न लभेत । णस्य श्रोत्रिया अनपत्यस्य ऋक्थं भजेरन् ।
राजेतरेषां जडक्कीवौ भर्तव्यौ । अपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत् प्रतिलो-
मासूदकयोगक्षेमकृतान्नेष्वविभागः स्त्रीषु च संयुक्तासु अनाज्ञाते दशावरैः
शिष्टैरुहवाद्भिः अलुब्धैः प्रशस्तं कार्यं चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रायुत्तमा-
स्त्रय आश्रमिणः पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान् दशावरान् परिषदिति : आच-
क्षते । असंभवे चैतेषामश्रोत्रियो वेदवित् शिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह । यतो
यमप्रभावो भूतानां हिंसानुग्रहयोगेषु धर्मिमणं विशेषेण स्वर्गलोकं धर्मविदामोति
नाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो धर्मः ॥

इति श्रीगौतमीये धर्मशास्त्र एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति श्रीगौतमधर्मशास्त्रं संपूर्णम् ॥ १६ ॥

पिताकी मृत्युके पीछे पिताके धनको पुत्रही विभाग (वांट) कर ले, पिताकी जीवित अवस्थामें माताकी रजोनिवृत्ति होजाय; और पिता इच्छा करै तो धन वांटदे, या सम्पूर्ण धन बड़े पुत्रको देकर अन्य पुत्रोंको केवल भरणपोषणके निमित्तही देसकताहै; या बड़ा भाई छोटे भाइयोंको पिताकी समान पालनाकरै और विभाग करै तो धर्मसे बीसवां भाग अधिक धन और दोनों ओरके दांतवाला धैल ज्येष्ठभाईको दे, काना, लंगडा, गंजा, यह धैल मध्यम पुत्रको दे; और यदि अनेक धैल हों तो गौ, कवच, गाड़ी और एक २ पशु छोटे भाइयोंको दियाजाय; और शेष सब धनको बराबर २ वांटलै. बड़े भाईको दो भाग, और छोटे भाइयोंको एक २ भाग देना उचित है, और अपनी इच्छासेही सबभाई एक २ भाग लेलैं, दश घोड़े वा धैल आदि पशुओंमेंसे क्रमसे सबभाई एक २ लेलैं, परन्तु बड़े भाईको एक अधिक देना उचित है; और सबसे बड़ी स्त्रीके पुत्रको सोलह धैलदे; अथवा छोटे भाइयोंको भी उसके समानही दे; और माताको भी उसीकी समान भाग पिता देदे; जिसके पुत्र न हो वह पुरुष यह प्रतिज्ञा करै कि मेरे लिये अपत्य पुत्र इसमें हो, और अग्नि प्रजापतिका पूजनकर पिता पुत्रिकाको दान करै; कोई २ ऐसा कहतेहैं कि अभिसंधि होनेसेही पुत्रिका हो सकतीहै, इस कारण पुत्रिकाके संदेहसे जिसके भाई न हो उस स्त्रीसे विवाह न करै पिंड, गोत्र, ऋषी इनके सम्बन्धी धनको वांटलैं, और जिसके पुत्र न हो उसकी स्त्रीमी धन लेलैं, या देवरसे पुत्रको उत्पन्न करै; और जिसके देवर हो वह यदि किसी अन्यसे उत्पन्न करले, तो उसका धन बिना विवाही और अप्रतिष्ठित कन्याओंका होता है, भगिनीयोंका शुल्क माताकी मृत्यु होजानेपर पीछे भाइयोंका होता है, मृतकहुए संसृष्टियोंका धन बड़े भाईका है, और उस संसृष्टिके मृतक हो जानेपर यदि जो संसृष्टि न हो तो उस धनका अधिकारी भाई है; विभाग हो जानेके पीछे जो पुत्र उत्पन्न हो वह पिताकेही भागका भोगनेवाला है, जिस विद्वान् मनुष्यने स्वयं धन संप्रह कियाहै, वह मूर्ख विचारहित भाइयोंको यथेच्छ न दे, और जो पुत्र भी विद्यासे हीन हो तो समविभाग करले, और धर्मसे विवाहीका पुत्र, देवर से उत्पन्न पुत्र, गोदलिया पुत्र, स्वयं आया हुआ, जिसकी यह खबर न हो कि यह किसके वीर्यसे उत्पन्न है वह, जो जीवन आदिमें पड़ा मिलाहो यह छैहो पुत्र धनके भागी हैं. कारी कन्याका पुत्र जो

विवाहके समय गर्भ में हो एक स्थानपर सम्बन्ध करके फिर दूसरी जिस कन्याका विवाह होगयाहो उसका पुत्र, पुत्रिकाका पुत्र, जिसको पिता माता प्रसन्नतासे देजाय वह, मोललिया यह भी छैहो पुत्र गोत्रके भागी हैं और धनके चौथे भागमें इनका अधिकार है, क्षत्रियोंमें उत्पन्न हुआ बड़ा और ब्राह्मणका पुत्र और सआदिपुत्रोंके न होनेपर तुल्य अंशका अधिकारी है परन्तु बड़े भार्दको वीसमा भाग आदि क्षत्रिय और वैश्यके पुत्रके समागम होनेपर भागी नहीं होता; परन्तु समभागका अंशी होताहै; जो पुत्र क्षत्रियसे वैश्यमें उत्पन्नहो वह पुत्र ब्राह्मणीके पुत्रकी समान है और पुत्रहीन मनुष्यकी शूद्रास्त्रीका पुत्रभी यदि शिष्यभावसे सेवा करै तो भोजन वस्त्रमात्रका अधिकारी होसकताहै, और जो अपने वर्णकी स्त्रीकाभी पुत्र न्यायके विरुद्ध चलताहै वह वृत्तिका भागी नहीं है, कोई २ ऐसा कहते हैं कि उस पुत्रराहित ब्राह्मणके धनको, वेदपाठी क्षत्रिय इत्यादिके धनको राजा लेले, अज्ञानी आर नपुंसकभी पालनेके योग्य हैं; और जड़का पुत्रभी भागका अधिकारी है, शूद्राके पुत्रके समान प्रतिलोमभी अंशके भागी हैं, और जल, योगक्षेम, तथा सिद्धअन्न इनका और इकट्ठी रहती स्त्रियोंका विभाग नहीं है, जिस पापका प्रायश्चित्त शास्त्रमें विदित नहो तो क्रमानुसार तर्ककरनेवाले लोभसे हीन दसजनोंसे निर्णय करले; चारों वेदोंके पारको जाननेवाले तीन आश्रमी और तीन पृथक् २ धर्मके ज्ञाता हों, इन दश मनुष्योंके एकत्रहीनेको सभा कहा है, यदि इस प्रकारके परिपदोंका अभाव हो तो वेदके जाननेवाले शिष्ट, यह दोनोंजने विवादके विषयमें मीमांसा करदे, उसीमांतिका आचरण करे, कारण कि शास्त्रमेंभी यही कहाहै कि वेदका जाननेवाला सम्पूर्ण भूतोंका दुःख और दया करनेमें समर्थ होनेसे सर्व भूतोंपर निग्रहानुग्रहसमर्थ यमधर्मराजके समान प्रभावशाली है, धर्मके विषयमें धर्मका जाननेवाला स्वर्गलोकमें ज्ञान और निर्णय करनेके कारण प्राप्त होताहै, यही धर्म है ।

इति श्रीगौतमस्मृतौ मायाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति गौतमस्मृतिः समाप्ता ॥ १६ ॥



॥ श्रीः ॥
अथ शातातपस्मृतिः १७.

भाषाटी समेता ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ शातातपस्मृतिप्रारंभः ॥ प्रायश्चित्तविहीनानां महा-
पातकिनां नृणाम् ॥ नरकान्ते भवेज्जन्म चिह्नांकितशरीरिणाम् ॥ १ ॥
प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिह्नं तत्पापसूचितम् ॥ प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्ता-
पवर्ता पुनः ॥ २ ॥

जिन महापातकी मनुष्योंने प्रायश्चित्त नहीं किया है, वह नरक भोगनेके उपरान्त उन्हीं
उन पापसूचक चिह्नोंसे युक्त होकर जन्म लेते हैं ॥ १ ॥ जबतक उस पापका प्रायश्चित्त न
किया जाय तबतक पापकी सूचना देनेवाला चिह्न प्रत्येक जन्ममें होता है, प्रायश्चित्त करने
और पश्चात्ताप करनेसे वह पापका चिह्न जाता रहता है ॥ २ ॥

महापातकजं चिह्नं सप्त जन्मानि जायते ॥ उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि
पापसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चोपक्रमैः शमम् ॥
जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥ ४ ॥ पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य
परिक्षये ॥ बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥ ५ ॥

महापातक पापका चिह्न सात जन्मतक प्रकाश पाता है; उपपातकका चिह्न पांच जन्मतक
प्रकाश पाता है और पापका चिह्न तीन जन्मतक प्रकाश पाता है ॥ ३ ॥ मनुष्योंके दुष्कर्मोंसे
उत्पन्न हुए रोग उपायोंसे शांत होते हैं; जप, देवपूजा, हवन, इन सम्पूर्ण कार्योंसे समस्त रोगोंकी
शांति होती है ॥ ४ ॥ पूर्वजन्ममें जो पाप किया है वह नरक भोगनेके अन्तमें व्याधि-
रूपसे पापियोंको पीड़ित करता है, उसकी शांतिका उपाय जप इत्यादि कार्य जानें ॥ ५ ॥

कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा ॥ सूत्रकृच्छ्राश्मरी कासा अतिसार-
भगन्दरौ ॥ ६ ॥ दुष्टव्रणं गंडमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ॥ इत्येवमादयो
रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥ ७ ॥ जलोदरं यकृत्क्षीहाशूलरोगव्रणानि
च ॥ श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलग्रहाः ॥ ८ ॥ रक्तार्बुदविसर्पाद्या
उपपापोद्भवाः ॥ दंडापतानकश्चित्रवपुःकम्पविचर्चिकाः ॥ ९ ॥ बल्मीक
पुंडरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः ॥ अर्शआद्या नृणां रोगा अतिपापाद्भवन्ति
हि ॥ १० ॥ अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते वर्णसंकरात् ॥ उच्यन्ते च
निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात् ॥ ११ ॥

कुष्ठरोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, सूत्रकृच्छ्र, श्वास, अतिसार और भगंदर ॥ ६ ॥
दुष्टघाव, गंडमाला, पक्षाघात, नेत्रोंका नाश इत्यादि रोग महापातकोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥
जलोदर, यकृत, दहिनी कुक्षिकीमें ग्रीहा (तिली), शूल, घाव, सांस, अजीर्ण, ज्वर, छर्दी,

भ्रम, मोह, गलग्रह ॥ ८ ॥ रक्तावुद, विसर्प, इत्यादि रोग उपपातकोंसे उत्पन्न होतेहैं, दंडा-
पतानक, चित्रवपु, कंप, खुजली, ॥ ९ ॥ चकदे, पुंडरीकआदि रोग पापोंसे उत्पन्न होतेहैं,
अत्यन्त पापके करनेसे बवासीर रोग होताहै ॥ १० ॥ और अन्यभी बहुतसे वर्णसंकर रोग
उत्पन्न होतेहैं; उनके कारण तथा प्रायश्चित्तोंको क्रमानुसार कहतेहैं ॥ ११ ॥

महापापेषु सर्वं स्यात्तदर्थमुपपातके ॥

दद्यात् पापेषु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिवलावलम् ॥ १२ ॥

महापातकमें सम्पूर्ण उपपातकमें आधा और पापोंमें छंठा भाग प्रायश्चित्त व्याधिकी न्यूना-
धिकता देखकर कल्पना करना उचित है ॥ १२ ॥

अथ साधारणं तेषु गोदानादिषु कथ्यते ॥ गोदाने वत्सयुक्ता गौः सुशीला
च पयस्विनी ॥ १३ ॥ वृषदाने शुभोऽनवाञ्छुक्तांवरसकांचनः ॥ निवर्तनानि
भदाने दश दद्याद्विजातये ॥ १४ ॥ दशहस्तेन देडेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् ॥
दश तान्येव गोचर्मं दत्त्वा स्वर्गं महीयते ॥ १५ ॥ सुवर्णशतानिष्कं तु
तदर्द्धार्द्धप्रमाणतः ॥ अश्वदाने मृदुश्लक्ष्णमश्वं सोपस्करं दिशेत् ॥ १६ ॥
महिषीं माहिषे दाने दद्यात्स्वर्णायुधान्विताम् ॥ दद्याद्रजं महादाने सुवर्ण-
फलसंयुतम् ॥ १७ ॥ लक्षसंख्याह्रणं पुष्पं प्रदद्यादेवताचने ॥ दद्याद्विजसह-
स्राय मिष्टान्नं द्विजभोजनैः ॥ १८ ॥ रुद्रं जपेच्छ्लक्षपुष्पैः पूजयित्वा च त्र्यं-
कम् ॥ एकादश जपेद्द्वान्दशंशं गुग्गुलैर्घृतैः ॥ १९ ॥ हुत्वाभिषेचनं
कुर्यान्मंत्रैर्वरुणदेवतैः ॥ शान्तिके गणशांतिश्च ग्रहशान्तिकपूर्वकम् ॥ २० ॥

अब गोदान इत्यादिमें साधारण विधि कहतेहैं, गोदानमें सुशील बड़डेसहित दूध देने-
वाली गौ देनी उचित है ॥ १३ ॥ बैलके दानमें शुभ और सुन्दर सफेद बख़ तथा कांच-
नसे विभूषितकर वृषभका दानकरै; पृथ्वीके दानमें ब्राह्मणोंको दशनिवर्तन पृथ्वीदान करै
॥ १४ ॥ दश हाथके बराबरके दंडसे तीस दंडका निवर्तन कहाहै; और दश निवर्तनकी
बराबर पृथ्वीका गोचर्म होताहै, गोचर्मकी बराबर पृथ्वी दान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें
पूजित होताहै ॥ १५ ॥ सो निष्क (तोले) के चौथाई निष्कको सुवर्ण कहाहै, और घोड़ेके
दानमें कोमल सुलक्षण चिकना, अथवा सामग्री सहित सुन्दर घोड़ा दे ॥ १६ ॥ जिस
स्थानमें भैंसका दान कहा गयाहै उस स्थानमें सुवर्ण और अख शस्त्रोंसे युक्तकर महिषका
दान करै; और महादान अर्थात् हाथीके दानमें सुवर्ण और फलसहित हाथीका दान करै
॥ १७ ॥ देवताके पूजनमें उत्तम २ एक लाख फूल प्रदानकरै, और ब्राह्मणोंके भोजनमें एक
सहस्र ब्राह्मणोंको मिष्टान्न दे ॥ १८ ॥ त्र्यम्बक महादेवके जपमें लाख फूलोंसे महादेव-
जीका पूजनकर ग्यारह रुद्रोंका जपकरै; गुग्गुल और घृतसे दशंश ॥ १९ ॥ हवन करके
वरुणदेवताके मंत्रोंसे अभिषेक करै, और शान्तिके कर्ममें ग्रहोंकी शान्तिकर गणशांति करै ॥ २० ॥

धान्यदाने शुभं धान्यं खारीपट्टियितं स्मृतम् ॥ वस्त्रदाने पट्टवस्त्रद्वयं कर्पूरसं-
युतम् ॥ २१ ॥ दशपंचाष्टचतुर उपवेश्य द्विजान् शुभान् ॥ विधाय वैष्णवीं

पूजां संकल्प्य निजकाम्यया ॥ २२ ॥ धेनुं दद्याद्विजातिभ्यो दक्षिणां चापि शक्तितः ॥ अलंकृत्य यथाशक्ति व लंकरणैर्द्विजान् ॥ २३ ॥ याचेद्दण्ड-
णेन प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥ तेषामनुज्ञया कृत्वा प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ २४ ॥ पुनस्तान्परिपूर्णार्थानर्चयेद्विधिवद्विजान् ॥ संतुष्टा ब्राह्मणा दद्युरनुज्ञां
व्रतकारिणे ॥ २५ ॥

अन्नके दानमें ६० खारी अन्नका दान कहा है, वस्त्रके दानमें कपूरसहित रेशमके वस्त्रका दान करै ॥ २१ ॥ दस, पांच, या आठ अथवा चार उत्तम ब्राह्मणोंको पास बैठालकर अपनी कामनाके अनुसार संकल्प करनेके उपरान्त विष्णुका पूजन कर ॥ २२ ॥ ब्राह्मणोंको गौ और यथाशक्ति दक्षिणा दे, फिर वस्त्र और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंको शोभायमान कर ॥ २३ ॥ उनसे शास्त्रोक्त और पापके अनुसार प्रायश्चित्तको मांगै; और उनकी आज्ञा ले भलीभांति प्रायश्चित्त कर ॥ २४ ॥ मनोरथ पूर्ण करनेवाले ब्राह्मणोंकी पूजा करै; इसके पीछे ब्राह्मण संतुष्ट होकर उस व्रत करनेवाले पुरुषको आज्ञा दें ॥ २५ ॥

जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि॥ सर्वं भवति निश्छिद्रं यस्य चेच्छन्ति
ब्राह्मणाः ॥ २६ ॥ ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥ सर्वदेव-
मया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥ २७ ॥ उपवासो चैव स्नानं तीर्थफलं
तपः ॥ विप्रैस्सम्पादितं सर्वं सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥ २८ ॥ सम्पन्नमिति
यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥ प्रणम्य शिरसा धार्यमग्निष्टोमफलं लभेत्
॥ २९ ॥ ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम् ॥ तेषां वाक्योदकेनैव
शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ३० ॥ तेभ्योऽनुज्ञामभिप्राप्य प्रगृह्य च तथाशिषः ॥
भोजयित्वा द्विजाच्छत्त्या भुञ्जीत सह वंधुभिः ॥ ३१ ॥

इति श्रीशातातपस्ये कर्मविपाके साधारणविधिः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

जप, तप, तथा यज्ञ इत्यादिके कर्ममें जो न्यूनता रहजाती है, वह ब्राह्मणोंकी आज्ञासे दूर होजाती है ॥ २६ ॥ ब्राह्मण जो कहते हैं उसे देवताभी मानते हैं, कारण कि ब्राह्मण देवताओंके स्वरूप हैं, इसीकारण उनका वचन मिथ्या नहीं होता ॥ २७ ॥ उपवास, व्रत, स्नान, तीर्थयात्राका फल, और तपस्या यह सब जिसके ब्राह्मणोंने करदिये हैं उसको इनका सम्पूर्ण फल होता है ॥ २८ ॥ यदि जिस कार्यमें "तुम्हारा वह कार्य सिद्ध होगया" यह वचन ब्राह्मण कहें, उनके उस वचनको नमस्कारकर शिरपर जो धारण करता है वह अग्निष्टोम यज्ञके फलको पाता है ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण मनोरथोंका पूर्ण करनेवाला, जलसे रहित जंगमतीर्थ ब्राह्मण है, उनके वचनरूपी जलसे मलिन मनुष्य शुद्ध होजाते हैं ॥ ३० ॥ इसके पीछे उनकी आज्ञा लेकर और उनके आशीर्वादको ग्रहण कर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराय पीछे अपने वंधुओंसहित आप भोजन करै ॥ ३१ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

ब्रह्महा नरकस्यान्ते पांडकुष्ठी प्रजायते ॥ प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत स तत्पातकशा-
न्तये ॥ १ ॥ चत्वारः कलशाः कार्य्याः पंचरत्नसमन्विताः ॥ पंचपल्लवसंयुक्ताः
सितवस्त्रेण संयुताः ॥ २ ॥ अश्वस्थानादिमृद्युक्तास्तीर्थोदकसुपूरिताः ॥ कषा-
यपंचकोपेता नानाविधफलान्विताः ॥ ३ ॥ सर्वोपधिसमायुक्ताः स्थाप्याः
प्रतिदिशं द्विजैः ॥ रौप्यमष्टदलं पद्मं मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥ ४ ॥ तस्यो-
परि न्यसेद्देवं ब्रह्माणं च चतुर्मुखम् ॥ पलार्द्धाद्विप्रमाणेन सुवर्णेन विनिर्मि-
तम् ॥ ५ ॥ अर्चत्पुरुषमूक्तेन त्रिकालं प्रतिवासरम् ॥ यजमानः शुभैर्गन्धैः
पुष्पैर्धूपैर्यथाविधि ॥ ६ ॥ पूर्वदिक्कुम्भेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः ॥ पठेयुः
स्वस्ववेदांस्ते ऋग्वेदप्रभृतीञ्छनैः ॥ ७ ॥ दशांशेन ततो होमो ग्रहशांतिपुरः
सरम् ॥ मध्यकुम्भे विधातव्यो वृत्ताक्तैस्तिलहेमभिः ॥ ८ ॥ द्वादशाहमिदं
कर्म समाप्य द्विजपुंगवः ॥ तत्र पीठे यजमानमभिर्पिंचेद्यथाविधि ॥ ९ ॥
ततो दद्याद्यथाशक्ति गोमूत्रहेमतिलादिकम् ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथा देयमाचार्याय
निवेदेयत् ॥ १० ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ प्रीताः सर्व्वे
व्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥ ११ ॥ इत्युदीर्य सुहृर्भक्त्या तमाचार्य क्षमा
पयेत् ॥ एवं विधाने विहिते श्वेतकुष्ठी विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

ब्रह्महत्याकरनेवाला पापी नरक भोगकर दूसरे जन्ममें श्वेतकुष्ठी होताहै, वह उस पापकी
शांतिके निमित्त प्रायश्चित्त करे ॥ १ ॥ चार कलशोंमें पंचरत्न डालें, और कलशोंके मुखों-
पर पंचपल्लव रखकर सफेद वस्त्रसे बांध दे ॥ २ ॥ अश्वशालाआदि सात स्थानोंकी मट्टी
इन कलशोंमें डालकर तीर्थके जलसे इनको भरें, पीछे पंचकपाय (कपड़ीवस्तु) और अनेक
मांतिके फलोंसे युक्त करे ॥ ३ ॥ पीछे सर्वोपधियोंसे युक्त करके चारोंदिशाओंमें रखे;
और बीचके कलशके ऊपर चांदीका बना आठदलका कमल रखे ॥ ४ ॥ फिर उस
कमलके ऊपर चतुर्मुखी छैःमासे सुवर्णकी बनी ब्रह्माजीकी मूर्ति स्थापित करे ॥ ५ ॥
फिर यजमान प्रतिदिन उत्तम गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादिसे तीनों कालमें पुत्पमृत्तका जपकर
ब्रह्माका विधिसहित पूजन करे ॥ ६ ॥ ऋग्वेदआदि ब्राह्मण ब्रह्मचर्य धारणकर पूर्वजादि दिशाओं-
में स्थित बटोंके निकट बीरे २ वेदोंको पढ़े ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त ग्रहशांति करके बीचके
बटपर घृतसंयुक्तकर तिल और सुवर्णसे दशांशहवन करे ॥ ८ ॥ इसके पीछे द्विजोंमें श्रेष्ठ
चारहदिनतक उक्त कार्यको समाप्तकर आसनपर बैठेहुए यजमानका विधिसहित अभिषेक करे
॥ ९ ॥ इसके उपरान्त गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और तिल इन्हें अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणों-
को दानकरे; और आचार्यको देनेयोग्य वस्तु दे ॥ १० ॥ “इसके पीछे सूर्य, वसु, रुद्र,
विश्वेदेवा मरुद्गण यह” सब प्रसन्न होकर मेरे कठिन पापको दूरकरें ॥ ११ ॥ इसप्रकार
बारम्बार भक्ति सहित प्रार्थनाकर आचार्यके निकट क्षमा प्रार्थना करे; इसमांवि नियम
सहित प्रायश्चित्त करनेसे श्वेत कुष्ठी शुद्ध होजाता है ॥ १२ ॥

कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः ॥ स्थापयेद्वटमेकन्तु पूर्वोक्तद्रव्य-
संयुतम् ॥ १३ ॥ रक्तचंदनं गिरं रज्जुष्पांवरान्वितम् ॥ रक्तकुंभन्तु तं
कृत्वा स्थापयेदक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥ ताम्रपात्रं न्यसेत्तत्र तिलचूर्णेन पूरि-
॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं हेमनिष्कमयं यमम् ॥ १५ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन पापं
मे शाम्यतामिति ॥ सामपारायणं कुर्यात्कलशे तत्र सामवित् ॥ १६ ॥
दशांशं सर्षपैर्दृत्वा पावमान्यभिषेचने ॥ विहिते धर्मराजानमाचार्य्याय निवे-
दयेत् ॥ १७ ॥ यमोऽपि महिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः ॥ दक्षिणाशापति-
र्देवो मम पापं व्यपोहतु ॥ १८ ॥ इत्युच्चार्य्य विसृज्यैनं मांसं सद्भक्तिमाचरेत् ॥
ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेन निष्कृतिः ॥ १९ ॥

गौकी हत्या करनेवाला कुष्ठी होता है और नरक भोगनेके अंतमें उसका प्रायश्चित्त इसभांति
है कि पूर्वोक्त द्रव्योंसे संयुक्तकर एक घटको स्थापित करै ॥ १३ ॥ और लाल चंदनसे उस
घटपर लेपकरै, फिर लाल फूल और लाल वस्त्र उस घटके ऊपर रखै, इसभांति उस घटको
करके दक्षिण दिशामें रखै ॥ १४ ॥ इसके पीछे तिलका चून तांबेके पात्रमें भरकर
उस पात्रको घटके ऊपर स्थापितकरै, और उस पात्रपर सुवर्णके निष्क (तोलाका भेद)
से वनवाय यमराजकी मूर्ति स्थापित करै ॥ १५ ॥ मेरे पापोंकी शांति होजाय, यह कहकर
पुरुषसूक्त मंत्रद्वारा यमराजका पूजन करै; इसके पीछे सामवेदका जाननेवाला ब्राह्मण उस
कलशके ऊपर सामवेदकी पारायण करै ॥ १६ ॥ फिर सरसोंसे दशांशहवनकर पावमानी
ऊँचाओंसे अभिषेक करनेके उपरान्त धर्मराजकी मूर्ति आचार्यको दे ॥ १७ ॥ भैसेपर चढ़ा
हाथमें भयंकर दंडलिये दक्षिणदिशाका स्वामी यमराज देवता मेरे पापोंको दूरकरै ॥ १८ ॥
यह कहकर आचार्यको विदाकर एकमहीनेतक उत्तम भक्ति करै; ब्राह्मण और गौके मारने-
वालेकी यह शुद्धि कही ॥ १९ ॥

पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धः प्रजायते ॥ नरकाति प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं यथा-
विधि ॥ २० ॥ प्राजापत्यानि कुर्वीत त्रिंशच्चैव विधानतः ॥ व्रतान्ते कार-
येन्नावं सौवर्णफलसम्भिताम् ॥ २१ ॥ कुंभं रौप्यमयं चैव ताम्रपात्राणि पूर्व-
वत् ॥ निष्कहेम्ना तु व्यो देवः श्रीवत्सलं नः ॥ २२ ॥ पट्टवस्त्रेण संवे-
ष्ट्य पूजयेत्तं विधानतः ॥ नावं द्विजाय तां दद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ २३ ॥
वासुदेव जगन्नाथ सर्वभूताशयस्थित ॥ पातकार्णवमशं मां तारय प्रणतार्तिहृत्
॥ २४ ॥ इत्युदीर्य्य प्रणम्याथ ब्राह्मणाय विसर्जयेत् ॥ अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति
विप्रेभ्यो दक्षिणां ददेत् ॥ २५ ॥

पिताकी हत्या करनेवाला, बुद्धिहीन और महासूर्ख होता है, माताका मारनेवाला अंधा
होता है वह नरक भोगनेके उपरान्त विधिसहित यह प्रायश्चित्त करै ॥ २० ॥ तीस प्राजाप-
त्य विधिसहित करै और व्रतकी समाप्तिमें पलभर सुवर्णकी नाव वनवावै ॥ २१ ॥ चांदी
पूर्वोक्त प्रकारसे तांबेके पात्र वनवावै, और तोलेभर सुवर्णकी विष्णुकी मूर्ति

॥ २२ ॥ इसके उपरान्त रेशमके वस्त्र में उस मूर्तिको लपेटकर विधिसहित विष्णुभगवानका पूजन करे; और सामग्रीसहित उस नावको ब्राह्मणको दे ॥ २३ ॥ हेवासुदेव ! हेजगत्के नाथ, हेसम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थिति करनेवाले हेनमस्कारकरनेवालोंके दुःखको दूर करनेवाले पापरूपी समुद्रमें डूबेहुए मेरा उद्धार करो ॥ २४ ॥ यह कहकर नमस्कार कर ब्राह्मणोंको विदाकरे, और अपनी शक्तिके अनुसार अन्य ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे ॥ २५ ॥

स्वसृधाती तु बधिरो नरकान्ते प्रजायते ॥ मूको भ्रातृवधे चैव तस्येयं निष्कृतिः स्मृता ॥ २६ ॥ सोऽपि पापविशुद्ध्यर्थं चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात्सुवर्णफलसंयुतम् ॥ २७ ॥ इमं मंत्रं समुच्चार्य ब्रह्मार्णां तां विसर्जयेत् ॥ सरस्वति जगन्मातः शब्दब्रह्माधिदेवते ॥ २८ ॥ दुष्कर्मकरणात्पापात् पाहि मां परमेश्वरि ॥

भगिनी (वहन) की हत्याकरनेवाला बहुरा और भाईको मारनेवाला गूंगा होताहै, उसका प्रायश्चित्त नरकके अंतमें यह कहाहै ॥ २६ ॥ वह अपने पापसे शुद्धिके निमित्त चांद्रायण व्रत करे, और व्रतकी समाप्तिमें सुवर्णके पलसहित पुस्तकका दान करे ॥ २७ ॥ इस मंत्रको पढ़कर देवीसरस्वतीका विसर्जन करे कि हेसरस्वति ! हेजगन्माता, हेवेदकी देवता, हे परमेश्वरि ! निदितकर्म करनेसे जो पाप उत्पन्न हुआहै उससे मेरी रक्षा करो २८ ॥

वालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ॥ २९ ॥ ब्राह्मणोद्वाहनं चैव कर्तव्यं तेन शुद्ध्ये ॥ श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥ ३० ॥ महारुद्रजपं चैव कारयेच्च यथाविधि ॥ पडंगैकादशै रुद्रै रुद्रः समभिधीयते ॥ ३१ ॥ रुद्रैस्तथैकादशभिर्महारुद्रः प्रकीर्तितः ॥ एकादशभिरेतैस्तु अतिरुद्रश्च कथ्यते ॥ ३२ ॥ जुहुयाच्च दशांशेन दूर्ध्वयायुतसंख्यया ॥ एकादश स्वर्णनिष्काः प्रदातव्याः सदक्षिणाः ॥ ३३ ॥ पलान्येकादश तथा दद्याद्विज्ञानुसारतः ॥ अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥ ३४ ॥ स्नापयेद्दम्पतीः पश्चान्मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥ आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालंकरणानि च ॥ ३५ ॥

वालककी हत्या करनेवाला मनुष्य मृतवत्स होताहै ॥ २९ ॥ वह शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणोंको कंधेपर चढ़ाकर चले, और विधानसे हरिवंश पुराणको श्रवण करे ॥ ३० ॥ पीछे महारुद्रका जप करावे, पडंगकी ग्यारह रुद्रोंको रुद्र कहते हैं ॥ ३१ ॥ ग्यारह रुद्रोंको महारुद्र कहाहै; और ग्यारह महारुद्रोंको एक अतिरुद्र कहतेहैं ॥ ३२ ॥ दशहजार दूर्वाओंसे दशांश हवनकरे और ग्यारह तोलेभर सुवर्णकी दक्षिणा दे ॥ ३३ ॥ वनके अनुसार ग्यारह पल सुवर्णदे, और अन्य ब्राह्मणोंकोभी अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणादे ॥ ३४ ॥ पीछे वरुण देवतावाले मंत्रोंसे स्त्रीसहित यजमानको स्नानकरावे, और आचार्यको वस्त्र तथा आम्रपणदे ॥ ३५ ॥

गोत्रहा पुरुषः कुष्ठी निर्वंशश्चोपजायते ॥ स च पापविद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतं चरेत् ॥ ३६ ॥ व्रतान्ते मेदिनीं दत्त्वा शृणुयादथ भारतम् ॥

गोत्रकी हत्याकरनेवाला पुरुष कुष्ठी और वंशसेहीन होताहै वह अपने पापसे मुक्तहोनेके लिये सौ प्राजापत्यकरै ॥ ३६ ॥ व्रतकी समाप्तिमें पृथ्वीका दानकर महाभारतको श्रवण करै,

स्त्रीहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थात्रोपयेद्दश ॥ ३७ ॥

दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

स्त्रीकी हत्या करनेवाला अतिसार रोगवाला होताहै, वह दश पीपलके वृक्ष लगावे ॥ ३७ ॥ और सक्करकी गौका दानकरै; तथा सौ ब्राह्मणोंको भोजन करावे;

राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः ॥ ३८ ॥ गोभूहिरण्यामि त्र-
जलवस्त्रप्रदानतः ॥ घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ ३९ ॥ इत्यादिना
क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥

राजाका मारनेवाला क्षयरोगसे युक्त होताहै, उसका प्रायश्चित्त यहहै ॥ ३८ ॥ गौ, मिष्टान्न, जल, वस्त्र, घृतकी और तिलकी गौ इनका दान ॥ ३९ ॥ क्रमानुसार करै, तौ वह मनुष्य क्षयरोगसे मुक्त होजाताहै.

रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः ॥ ४० ॥

प्राजापत्यानि चत्वारि सप्तधान्यानि चोत्सृजेत् ॥

वैश्यकी हत्याकरनेवाला मनुष्य रक्तअर्बुद (लहड) रोगसे युक्त होताहै ॥ ४० ॥ वह चार प्राजापत्य व्रतकर सत्तनजेका दानकरै,

दंडापतानकयुतः शूद्रहन्ता भवेन्नरः ॥ ४१ ॥

प्राजापत्यं सकृच्चैवं दद्याद्धेनुं सदक्षिणाम् ॥

शूद्रकी हत्याकरनेवाला मनुष्य दंडापतानक रोगवाला होताहै ॥ ४१ ॥ वह एक प्राजा-
पत्यकर दक्षिणासहित गौका दानकरै,

कारूणां च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते ॥ ४२ ॥

तेन तत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥

शिल्पीकी हत्याकरनेवाला रूखा (सूखा) होताहै ॥ ४२ ॥ वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये सफेद बैलका दानकरै,

सर्वकार्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः ॥ ४३ ॥ प्रासादं कारयित्वा तु

गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥ गणनाथस्य मन्त्रं तु मन्त्री लक्षमितं जपेत् ॥ ४४ ॥

कुलित्यशकैः पूषैश्च गणशान्तिपुरस्सरम् ॥

हाथीकी हत्याकरनेवाला मनुष्य सब कामोंमें अधूरा होताहै ॥ ४३ ॥ वह मनुष्य मंदिर बनवाकर गणेशजीकी प्रतिमाको स्थापितकरै, और मन्त्रोंका ज्ञाता उस मन्दिरमें गणेशजीका एक लक्ष मंत्र जपे ॥ ४४ ॥ कुलथीका शाक और फूलोंसे गणेशजीका हवनकरै,

उष्ट्रे विनिहते चैव जायते विकृतस्वरः ॥ ४५ ॥

स तत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात्कर्पूरकं फलम् ॥

ऊंटकी हत्याकरने ॥ तोतला होताहै ॥ ४५ ॥ वह अपने पापसे छूटनेके लिये कपूरका फलदे,

अश्वे विनिहते चैव वक्रतुंडः प्रजायते ॥ ४६ ॥

शतं पलानि दद्याच्च चन्दनान्यवनुत्तये ॥

घोड़ेको मारनेवाला टेढ़े मुखका होताहै ॥ ४६ ॥ वह अपने उस पापसे मुक्त होनेके लिये सौ पल (चारसौ तोले) चंदनका दानकरै।

हिपीघातने चैव कृष्णगुल्मः प्रजायते ॥ ४७ ॥ खरे विनिहते चैव खररोमा प्रजायते ॥ निष्कत्रयस्य प्रकृतिं संप्रदद्याद्विरण्मयीम् ॥ ४८ ॥

भैंसकी हत्याकरनेवाले मनुष्यको गुल्मरोग होताहै ॥ ४७ ॥ खरकी हत्याकरनेवाला खररोमवाला होताहै, वह उस पापसे मुक्त होनेके लिये तीन तोले सुवर्णकी प्रतिमाका दानकरै ॥ ४८ ॥

तरक्षौ निहते चैव जायते केकरेक्षणः ॥

दद्याद्वल्नमयीं धेनुं स तत्पातकशान्तये ॥ ४९ ॥

तरक्षुजीवकी हत्या करनेवाले मनुष्यके केकर नेत्र होतेहैं वह उस पापकी शांतिके निमित्त रत्नमयी गौका दानकरै ॥ ४९ ॥

शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः ॥

स दद्यात्तु विशुद्ध्यर्थं घृतकुंभं सदक्षिणम् ॥ ५० ॥

सूकरकी हत्या करनेवाला मनुष्य ऊँचे दांतोंका होताहै वह अपने पापसे शुद्ध होनेके लिये दक्षिणासहित घीके घड़ेका दानकरै ॥ ५० ॥

हरिणे निहते खंजः शृगाले तु विपादकः ॥

अश्वस्तेन प्रदातव्यः सौवर्णपलनिर्मितः ॥ ५१ ॥

शृगकी हत्या करनेवाला लंगडा होताहै, गीदड़की हत्या करनेवाला एक पैरवाला होताहै, वह अपने पापसे शुद्ध होनेके लिये सुवर्णसे बने घोड़ेका दानकरै ॥ ५१ ॥

अजाभिघातने चैव अधिकांगः प्रजायते ॥

अजा तेन प्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥ ५२ ॥

वकरीकी हत्या करनेवाले मनुष्यके अधिक अंग होतेहैं, वह विचित्र वस्त्रोंसहित वकरीका दान करै ॥ ५२ ॥

उरध्रे निहते चैव पांडुरोगः प्रजायते ॥

कस्तूरिकापलं दद्याद्ब्राह्मणाय विशुद्ध्ये ॥ ५३ ॥

वकरेका मारनेवाला पांडुरोगी होताहै; वह अपनी शुद्धिके लिये पलभर कस्तूरी ब्राह्मणको दानकरै ॥ ५३ ॥

मार्जारि निहते चैव पीतपाणिः प्रजायते ॥

पारावतं ससौवर्णं प्रदद्यान्नृष्कमात्रकम् ॥ ५४ ॥

विलावकी हत्या करनेवाला पीले हाथोंका होताहै; वह एक तोले सुवर्णके कद्रुतरका दान करै ॥ ५४ ॥

शुकसारिकयोर्धाति नरः स्खलितवाग्भवेत् ॥

सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यात्स विप्राय सदक्षिणम् ॥ ५५ ॥

तोते और मैनाकी हत्या करनेवाला मनुष्य तोतला होताहै, वह दक्षिणाके साथ शास्त्रकी पुस्तक ब्राह्मणको दानकरै ॥ ५५ ॥

वकधाती दीर्घनासो दद्याद्ग्रां धवलप्रभाम् ॥

काकधाती कर्णहीनो दद्याद्गामसितप्रभाम् ॥ ५६ ॥

वगलेका मारनेवाला मनुष्य बडोनाकका होताहै, वह सफेद गौका दान करै, और काककी हत्या करनेवाला कानोंसे हीन होताहै; वह काली गौके दान करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ५६ ॥

हिंसायां निष्कृतिरियं ब्राह्मणे समुदाहृता ॥

तदर्धाद्धप्रमाणेन क्षत्रियादिष्वनुक्रमत् ॥ ५७ ॥

इति शातातपीथे कर्मविपाके हिंसाप्रायश्चित्तविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यह हिंसाओंमें पूर्वोक्त प्रायश्चित्त ब्राह्मणोंका कहा इससे आधा प्रायश्चित्त क्षत्रियोंका और चौथाई वैश्यका है; और इससे आठवां भाग शूद्रको कमसे करनेके लिये कहाहै ॥ ५७ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सुरापः श्यावदन्तः स्यात्प्राजापत्यन्तरं तथा ॥ शर्करायास्तुलाः सप्त दद्यात्पा-

पविशुद्ध्ये ॥ १ ॥ जपित्वा तु महारुद्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ ततोऽभिषेकः

कर्तव्यो मन्त्रैर्वरुणदेवतैः ॥ २ ॥ मद्यपोरक्तपित्ती स्यात्स दद्यात्सर्पिषोऽष्टम् ॥

मधुनोऽर्धघटं चैव सहिरण्यं विशुद्ध्ये ॥ ३ ॥

मदिरा पीनेवाले मनुष्यके दांत काले होतेहैं, वह अपने इस पापसे मुक्त होनेके लिये प्राजापत्यव्रत करनेके उपरान्त शर्कराकी सात तुलाओंका दान करै ॥ १ ॥ पीछे महारुद्रका जपकर तिलोंसे दशांश हवन करै; फिर वरुणदेवतावाले मन्त्रोंसे अभिषेक करै ॥ २ ॥ मदिरा पीनेवाले मनुष्यको रक्तपित्त रोग होताहै वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये घीसे भराहुआ घडा मीठे वा सहतका दे ॥ ३ ॥

अभक्ष्यभक्षणे चैव जायते कृमिकोदरः ॥

यथावत्तेन शुद्ध्यर्थमुपोष्यं भीष्मपंचकम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य अभक्ष्यका भक्षण करताहै उसके उदरमें कीड़े होतेहैं, वह मनुष्य भीष्मपंचक शास्त्रकी रीतिसे उपवास करै ॥ ४ ॥

उदक्यावीक्षितं भुक्त्वा जायते कृमिलोदरः ॥

गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

रजस्वलाके देखे हुए पदार्थको खानेवाला मनुष्य कृमिलोदर होताहै, वह मनुष्य गोमूत्र और जौको खाकर तीन रात्रिमें शुद्ध होजाताहै ॥ ५ ॥

भुक्त्वा चास्पृश्य संस्पृष्टं जायते कृमिलोदरः ॥

त्रिरात्रं समुपोष्याथ स तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥

अयोग्य मनुष्यके स्पर्श कियेहुए पदार्थको खाकर मनुष्य कृमिलोदर होताहै, वह तीनरा-
त्रतक उपवास करके उस पापसे मुक्त होताहै ॥ ६ ॥

परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते ॥ लक्षहोमं स कुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि
॥ ७ ॥ मन्दोदरामिर्भवति सति द्रव्ये कदन्नदः ॥ प्राजापत्यत्रयं कुर्याद्भोजयेच्च
शतं द्विजान् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य दूसरेके अन्न में विघ्न करताहै उसे अजीर्ण रोग होताहै, वह मनुष्य विधिसहि-
त एकलाख गायत्रीके जपसे हवनकर प्रायश्चित्त करे ॥ ७ ॥ जो मनुष्य धन होनेपर भी
कुत्सित अन्नको देताहै, वह मंदोदररोगसे पीडित होताहै, वह अपने पापसे मुक्त होनेकेलिये
दीन प्राजापत्य व्रतकरे और फिर सौ ब्राह्मणोंको जिमावे ॥ ८ ॥

विषदः स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दश पयस्विनीः ॥

जो मनुष्य विष देताहै उसे छर्दिकी रोग होता है; वह दूध देनेवाली दश गौओंका
दान करे,

मार्गहा पादरोगी स्यात्सोऽश्वदानं समाचरेत् ॥ ९ ॥

मार्गको नष्टकरनेवाला पैरोंका रोगी होताहै, उसकी शुद्धि घोड़ेके दान करनेसे होतीहै ॥ ९ ॥

पिशुनो नरकस्याति जायते श्वासकासवान् ॥

घृतं तेन प्रदातव्यं सहस्रपलसम्मितम् ॥ १० ॥

चुगली करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके अंतमें म्वांस और खांसीरोगसे युक्त होताहै,
वह सहस्र टकेभर वीके दानकरनेसे शुद्ध होताहै ॥ १० ॥

धूर्तोऽपस्माररोगी स्यात्स तत्पापविशुद्धये ॥

ब्रह्मकूर्चमयीं धेनुं दद्याद्वाश्च सदक्षिणाः ॥ ११ ॥

धूर्त मनुष्यको मिरगीका रोग होताहै; वह उस पापसे शुद्ध होनेके लिये ब्रह्मकूर्चमयी
गौको दे और पीछे दक्षिणा दे ॥ ११ ॥

शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमोचने ॥

सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरः ॥ १२ ॥

जो मनुष्य दूसरेको दुःख देताहै, वह शूल रोगसे युक्त होताहै; वह अन्नदानकरनेसे पापसे
छूटजाताहै और पीछे रुद्रका जप करे ॥ १२ ॥

दावाभिदायकश्चैव रक्तातीसारवान्भवेत् ॥

तेनोदपानं कर्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः ॥ १३ ॥

वनमें अग्नि लगानेवालेको रक्तातीसार रोग होताहै, वह मनुष्य जलको पिलावे और
वटके वृक्षके लगानेसे शुद्ध होजाताहै ॥ १३ ॥

सुरालये जले वापि शकुन्मूत्रं करोति यः ॥ गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥ १४ ॥ मासं सुरार्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु ॥ प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥ १५ ॥

जो मनुष्य देवताके मंदिर वा जल में मलमूत्र करताहै उसके पापका रूप दारुण रोग गुदामें होताहै ॥ १४ ॥ गुदाके रोगवाला मनुष्य एकमहीनेतक देवताका पूजन करै, और दो गौ दानकर एक प्राजापत्य व्रतसे उसकी शांति होतीहै ॥ १५ ॥

गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहजलोदराः ॥ तेषां प्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥ १६ ॥ एतेषु दद्याद्विप्राय जलधेनुं विधानतः ॥ सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम् ॥ १७ ॥

जो मनुष्य गर्भको गिराताहै उसके यकृत्, तिल्ली, जलोदर आदि रोग होतेहैं; उसके पापों की शांतिके निमित्त यह प्रायश्चित्त कहाहै कि ॥ १६ ॥ विधिसहित सुवर्ण, चाँदी, ताँवा इनके तीनपलसहित जलधेनुको दे ॥ १७ ॥

प्रतिमाभंगकारी च अप्रतिष्ठः प्रजायते ॥ संवत्सरत्रयं सिंचेदश्वत्थं प्रतिवासरम् ॥ १८ ॥ उद्वाहयेत्तमश्वत्थं स्वगृहोक्तविधानतः ॥ तत्र संस्थापयेद्देवं विन्नराजं सुपूजितम् ॥ १९ ॥

जो मनुष्य प्रतिमाको भंगकरताहै वह प्रतिष्ठासे हीन होता है, वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये तीनवर्षतक प्रतिदिन पीपलको सींचता रहै ॥ १८ ॥ फिर अपने गृहोक्तविधिसे पीपलका विवाह करै इसके पीछे भलीभाँतिसे पूजाकर गणेशजीकी स्थापनाकरै ॥ १९ ॥

दुष्टवादी खंडितः स्यात्स वै दद्याद्विजातये ॥

रूप्यं पलद्वयं दुग्धं घटद्वयसमन्वितम् ॥ २० ॥

दुष्टवचनको कहनेवाला मनुष्य अंगहीन होताहै, वह मनुष्य दो पल चाँदी और दुग्धके दो घटोंको दानकरै ॥ २० ॥

खल्लीटः परनिन्दावान्धेनुं दद्यात्सकांचनाम् ॥

दूसरेकी निन्दा करनेवाला गंजा होजाहै; वह सुवर्ण सहित गौका दान करै,

परोपहासकृत्काणः स गां दद्यात्समौक्तिकाम् ॥ २१ ॥

दूसरेकी हँसी करनेवाला काना होताहै, वह मोती और गौका दान करनेसे दोषहीन होजाता है ॥ २१ ॥

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान् ॥

निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात्सत्यवर्तिनाम् ॥ २२ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके प्रकीर्णप्रायश्चित्तं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सभाके बीचमें पक्षपात करनेवाले मनुष्यको पक्षाघात होताहै वह मनुष्य तीन सोना सत्यवाधियोंको दे ॥ २२ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

कुलत्रो नरकस्यान्ते जायते विप्रहेमहत् ॥

स तु स्वर्णशतं दद्यात्कृत्वा चांद्रायणत्रयम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाला मनुष्य नरक भोगनेके उपरान्त निर्वंश (होनवंश) होता है; वह तीन चांद्रायणत्रयकर सौ तोले सुवर्णका दान करे ॥ १ ॥

औदुंवरी ताम्रचौरी नरकान्ते प्रजायते ॥

प्राजापत्यं स कृत्वात्र ताम्रं पलशतं दिशेत् ॥ २ ॥

जो मनुष्य ताम्रकी चोरी करता है वह नरक भोगनेके अन्तमें उदुंबर कुंठरोगसे युक्त हो-
ता है; इस पापका प्रायश्चित्त यह है कि वह प्राजापत्यत्रय करके सौ पल ताम्र दान करे ॥ २ ॥

कांस्यहारी च भवति पुंडरीकसमन्वितः ॥ कांस्यं पलशतं दद्यादलंकृत्य
द्विजातये ॥ ३ ॥

काँसीकी चोरी करनेवाला पुंडरीक रोगवाला होता है; वह ब्राह्मणोंको भृशणोंसे शोभाय-
मानकर सौ पल काँसीका दान करे ॥ ३ ॥

रीतिहृत्पिगलाक्षः स्यादुपोष्य हरिवासरम् ॥ रीतिं पलशतं दद्यादलंकृत्य द्विजं
शुभम् ॥ ४ ॥

पीतलकी चोरी करनेवाले मनुष्यके पीले नेत्र होते हैं; उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह
एकादशी तिथिमें उपवासकर एकसौ पल पीतल उत्तम ब्राह्मणोंको अलंकृतकर दे ॥ ४ ॥

मुक्ताहारी च पुरुषो जायते पिंगमूर्ध्वजः ॥

मुक्ताफलशतं दद्यादुपोष्य स विधानतः ॥ ५ ॥

मोतियोंकी चोरी करनेवाले मनुष्यके केश पीले होते हैं, वह विधिपूर्वक उपवासकर सौ
मोती दान करे ॥ ५ ॥

त्रपुहारी च पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥

उपोष्य दिवसं सोऽपि दद्यात्पलशतं त्रपु ॥ ६ ॥

त्रपुकी चोरी करनेवाले मनुष्यको नेत्ररोग होता है, वह मनुष्य एकदिन उपवासकर सौ
पल सीसेका दान करे ॥ ६ ॥

सीसहारी च पुरुषो जायते शीर्षरोगवान् ॥

उपोष्य दिवसं दद्याद्घृतधेनुं विधानतः ॥ ७ ॥

शीशेकी चोरी करनेवाले मनुष्यके शिरमें रोग होता है, उसका प्रायश्चित्त यह है कि वह
विविधहित एकदिन उपवासकर घीकी गौका दान करे ॥ ७ ॥

दुग्धहारी च पुरुषो जायते बहुमूत्रकः ॥

स दद्याद्दुग्धधेनुं च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥ ८ ॥

दूधकी चोरी करनेवाले मनुष्यको बहुमूत्र रोग होता है; वह ब्राह्मणको दुग्धवती गौ
दान करे ॥ ८ ॥

दधिचौर्येण पुरुषो जायते मदवान्यतः ॥

दधिधेनुः प्रदातव्या तेन विप्राय शुद्धये ॥ ९ ॥

दहीका चोर मदवाला होताहै; वह अपनी शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणको दही और गौका दान करै ॥ ९ ॥

मधुचोरस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥

स दद्यान्मधुधेनुं च समुपोष्य द्विजातये ॥ १० ॥

जो मनुष्य सहतकी चोरी करताहै; वह नेत्रोंका रोगी होताहै; वह व्रत उपवासकर ब्राह्मणको सहत और गौदान करै ॥ १० ॥

इक्षोर्विकारहारी च भवेदुदरगुल्मवान् ॥

गुडधेनुः प्रदातव्या तेन तद्दोषशांतये ॥ ११ ॥

जो मनुष्य ईखके रसको चुराता है उसको गुल्मरोग होताहै; वह अपने उस दोषकी शांतिके निमित्त गुडकी गौका दान करै ॥ ११ ॥

लोहहारी च पुरुषः कर्बुरांगः प्रजायते ॥

लोहं पलशतं दद्यादुपोष्य स तु वासरम् ॥ १२ ॥

जो मनुष्य लोहेको चुराताहै वह कवरा होताहै; वह अपनी शुद्धिके निमित्त एकदिन उपवास कर सौ टके भर लोहेका दानकरै ॥ १२ ॥

तैलचौरस्तु पुरुषो भवेत्कंठ्ठादिपीडितः ॥

उपोष्य स तु विप्राय दद्यात्तैलघटद्वयम् ॥ १३ ॥

जो तेलको चुराता है उसको खुजली आदिका रोग होताहै वह अपने पापसे मुक्त होनेके लिये एकदिन उपवासकर दो घड़े तेल ब्राह्मणोंको दे ॥ १३ ॥

आमान्नहरणाच्चैव दन्तहीनः प्रजायते ॥

स दद्यादश्विनौ हेमनिष्कद्वयविनिर्मितौ ॥ १४ ॥

जो मनुष्य कच्चे अन्नको चुराताहै वह दरिद्री होताहै; वह दो तोले सुवर्णकी मूर्ति अश्विनीकुमारकी बनवाकर ब्राह्मणको दे ॥ १४ ॥

पक्वान्नहरणाच्चैव जिह्वारोगः प्रजायते ॥

गायत्र्याः स जपेत्तुल्यं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ १५ ॥

पक्वान्नकी चोरी करनेवाले मनुष्यकी जिह्वामें रोग होताहै, वह मनुष्य एक लक्ष गायत्रीका जपकरै और तिलोंसे दशांश हवन करै ॥ १५ ॥

फलहारी च पुरुषो जायते व्रणितांगुलिः ॥

नानाफलानामपुतं स दद्याच्च द्विजन्मने ॥ १६ ॥

फलकी चोरी करनेवाले मनुष्यकी अंगुलियोंमें घाव होतेहैं; वह मनुष्य भ्रांति २ के णोंको दान करै ॥ १६ ॥

तांबूलहरणाच्चैव श्वेतौष्ठः संप्रजायते ॥

स दक्षिणां प्रदद्याच्च विदुमस्य द्वयं वरम् ॥ १७ ॥

पानीकी चोरी करनेवाले मनुष्यके होठ सफेद होतेहैं; वह उत्तम दो मूर्गोंकी दक्षिणा दे ॥ १७ ॥

शाकहारी च पुरुषो जायते नीललोचनः ॥

ब्राह्मणाय प्रदद्याद्दे महानीलमणिद्वयम् ॥ १८ ॥

शाककी चोरी करनेवाले मनुष्यके नीले नेत्र होतेहैं वह दो महानील मणि ब्राह्मणको दे १८

कन्दमूलस्य हरणाद्भस्वपाणिः प्रजायते ॥

देवतायतनं कार्य्यमुद्यानं तेन शक्तितः ॥ १९ ॥

जो मनुष्य कंदमूलकी चोरी करताहै उसके हाथ छोटे छोटे होतेहैं, वह मनुष्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार देवताका मंदिर और बगीचा बनवावे ॥ १९ ॥

सौगन्धिकस्य हरणाद्दुर्गन्धाङ्गः प्रजायते ॥

स लक्ष्मेकं पद्मानां जुहुयाज्जातवेदसि ॥ २० ॥

जो मनुष्य सुगंधिकी चोरी करताहै उसके अंगमें दुर्गंध आती रहतीहै, वह मनुष्य अग्निमें एक लक्ष कमलोंका हवन करे ॥ २० ॥

दारुहारी च पुरुषः स्विन्नपाणिः प्रजायते ॥

स दद्याद्विदुषे शुद्धौ काश्मीरजपलद्वयम् ॥ २१ ॥

काठकी चोरीकरनेवाले मनुष्यके हाथमें पसीना बहुत होताहै वह मनुष्य अपनी शुद्धिके लिये विद्वान्को दो पल हीरेका दानकरे ॥ २१ ॥

विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ॥

न्यायेतिहासं दद्यात्स ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ॥ २२ ॥

शास्त्रकी पुस्तककी चोरी करनेवाला मनुष्य गूंगा होताहै, वह ब्राह्मणको दक्षिणासहित न्याय और इतिहासके ग्रन्थोंका दानकरे ॥ २२ ॥

वस्त्रहारी भवेत्कुष्ठी संप्रदद्यात्प्रजापतिम् ॥

हेमनिष्कमितं चैव वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥ २३ ॥

वस्त्रोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य कुष्ठरोगी होताहै; वह एक तोले सुवर्णकी मूर्ति और दो वस्त्र ब्राह्मणको दे ॥ २३ ॥

ऊर्णाहारी लोमशः स्यात्स दद्यात्कंवलान्वितम् ॥

स्वर्णनिष्कमितं हेम वह्निं दद्याद्विजातये ॥ २४ ॥

ऊनकी चोरी करनेवाले मनुष्यके शरीरपर जगह २ रोग होतेहैं, वह तोलेभर सुवर्णकी आगिकी मूर्ति और कन्वल ब्राह्मणको दे ॥ २४ ॥

पट्टसूत्रस्य हरणान्निर्लोभा जायते नरः ॥

तेन धेनुः प्रदातव्या विशुद्ध्यर्थं द्विजन्मने ॥ २५ ॥

जो मनुष्य रेशमकी चोरी करताहै उसके मुखआदिपर रोम नहींहोते वह अपने दोषकी शुद्धिके निमित्त ब्राह्मणको गौदान करै ॥ २५ ॥

औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते ॥

सूर्यायार्घ्यः प्रदातव्यो मासं देयं च कांचनम् ॥ २६ ॥

जो मनुष्य औषधको चोरी करताहै उसके आधा शीशीका रोग होताहै; वह मनुष्य सूर्य भगवान्को अर्घ और ब्राह्मणको एकमासा सुवर्ण दानकरै ॥ २६ ॥

रक्तवस्त्रप्रवालादिहारी स्फारक्तवातवान् ॥

सवस्त्रां महिर्षीं दद्यान्मणिरागसमन्विताम् ॥ २७ ॥

जो मनुष्य लाल वस्त्र और मूंगकी चोरी करताहै उसे रक्तवातका रोग होताहै, वह मनुष्य वस्त्र और मणिके साथ मैसका दानकरै ॥ २७ ॥

विप्ररत्नापहारी चाप्यनपत्यः प्रजायते ॥ तेन कार्यं विशुद्धयर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ २८ ॥ मृतवत्सोदितः सर्वो विधिरत्र विधीयते ॥ दशांशहोमः कर्तव्यो पलाशेन यथाविधि ॥ २९ ॥

ब्राह्मणके रत्नोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य संतानसे हीन होताहै, वह अपनी शुद्धिके निमित्त महारुद्रका जपकरै ॥ २८ ॥ जिसके पुत्र मर २ जातेहैं उसको जो प्रायश्चित्त करना कहाहै उस सभी प्रायश्चित्तको करे; और ढाककी लकड़ियोंमें दशांश हवन करै ॥ २९ ॥

देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः ॥ ज्वरो महाज्वरश्चैवं रौद्रो वैष्णव एव च ॥ ३० ॥ ज्वरे रौद्रं जपेत्कर्णे महारुद्रं महाज्वरे ॥ अतिरौद्रं जपेद्रौद्रे वैष्णवे तद्वयं जपेत् ॥ ३१ ॥

देवताकी मूर्तिकी चोरी करनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारका ज्वर होताहै, ज्वर, महाज्वर, रौद्रज्वर, वैष्णवज्वर, ॥ ३० ॥ यदि जो ज्वर होय तौ रोगीके कानमें रौद्र जपकरै, यदि महाज्वर होय तौ महारुद्रका जपकरै यदि रौद्रज्वर होय तौ अतिरुद्रका जपकरै और वैष्णव ज्वर होय तौ अतिरुद्रका जपकरै ॥ ३१ ॥

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहणीयुतः ॥

तेनान्नोदकवस्त्राणि हेम देयं च शक्तिः ॥ ३२ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके स्तेयप्रायश्चित्तं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अनेक प्रकारके चोरी करनेवाले मनुष्यको ग्रहणी रोग होताहै वह मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार अन्न जल वस्त्र सुवर्ण इनका दानकरै ॥ ३२ ॥

इति श्रीशातातपस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

मातृगामी भवेद्यस्तु लिंगं तस्य विनश्यति ॥ चांडालीगमने चैव हीनकोशः प्रजायते ॥ १ ॥ तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं कुंभमुत्तरतो न्यसेत् ॥ कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं कृष्णमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं कांस्यपात्रे धनेश्व-

रम् ॥ सुवर्णनिष्कपटकेन निर्मितं नरवाहनम् ॥ ३ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन धनं
विश्वरूपिणम् ॥ अथर्ववेदविद्विप्रो ह्याथर्वणं समाचरेत् ॥ ४ ॥ सुवर्णपुत्तिकां
कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥ दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन्
॥ ५ ॥ निधीनामधिपो देवः शंकरस्य प्रियस्सखा ॥ सौम्याशाधिपतिः श्रीमा-
न्मम पापं व्यपोहतु ॥ ६ ॥ इमं मंत्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥
दद्यादेवं हीनकोशे लिंगनाशे विशुद्धये ॥ ७ ॥

माताके साथ गमन करनेवाले मनुष्यका लिंग नष्ट होताहै, चांडालकी छाँके साथ
गमन करनेवाले मनुष्यके धंडकीश नहीं होते ॥ १ ॥ वह अपने प्रायश्चित्तके निमित्त उत्त-
रदिशामें काले बघड़े डका और काले फूलोंसे शोभायमान घड़ेको स्थापित करे ॥ २ ॥
उस घड़ेके ऊपर कांसीके पात्रमें छैः तोले सुवर्णसे बनाहुई नरवाहन कुबेरकी मूर्ति स्थापित
करे ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त पुरुषसूक्तसे सब विश्वरूपी कुबेरका पूजनकरे; और अथर्ववेदके
जाननेवाले ब्राह्मणसे अथर्ववेदका पाठ करावे ॥ ४ ॥ और “मैं पापरहित हूँ” इस भाँति कहता-
हुआ बीसतोले सुवर्णकी प्रतिमाका पूजन करके ब्राह्मणको दे ॥ ५ ॥ “हे निधियोंके स्वामी और
महोदवके प्यारे मित्र, उत्तरदिशाके स्वामी और लक्ष्मीवान् कुबेरदेव मेरे पापको दूर करो ॥ ६ ॥
इस मंत्रका उच्चारणकर विधिसहित कुबेरकी मूर्ति लिंगहीन और नष्टकोशवाला मनुष्य
आचार्यको दे ॥ ७ ॥

गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्रः प्रजायते ॥ तेनापि निष्कृतिः कार्या शास्त्रद-
ष्टेन कर्मणा ॥ ८ ॥ स्थापयेत्कुंभमेकं तु पश्चिमायां शुभे दिने ॥ नीलवस्त्रसमा-
च्छन्नं नीलमाल्यविभूषितम् ॥ ९ ॥ तस्योपरि न्यसेदेवं ताम्रपात्रे प्रचेतसम् ॥
सुवर्णनिष्कपटकेन निर्मितं यादसांपतिम् ॥ १० ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन वरुणं
विश्वरूपिणम् ॥ सामविद्ब्राह्मणस्तत्र सामवेदं समाचरेत् ॥ ११ ॥ सुवर्णपु-
त्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥ दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति
ब्रुवन् ॥ १२ ॥ यादसामधिपो देवो विश्वेपामपि पावनः ॥ संसारान्धौ कर्ण-
धारो वरुणः पावनोऽस्तु मे ॥ १३ ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥
दद्यादेवमलंकृत्य मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ १४ ॥

जो मनुष्य गुरुकी छाँके साथ रमण करताहै उसे मूत्रकृच्छ्र रोग होताहै, वह मनुष्यभी
शास्त्रीकी रीति से प्रायश्चित्त करे ॥ ८ ॥ वह पुरुष पश्चिम दिशामें नीले वस्त्रोंसे ढके और
नीले फूलोंसे शोभायमान एक घड़ेको शुभ मुहूर्तमें स्थापनकरे ॥ ९ ॥ फिर उस घड़ेके ऊपर
ताँबेके पात्रमें छैः तोले सुवर्णसे बने और जलके जीवोंके स्वामी वरुण देवताको स्थापित करे
॥ १० ॥ और विश्वके रूपी वरुणका पुरुषसूक्तसे पूजन करे उस घड़ेके समीप सामवेदका
जाननेवाला ब्राह्मण सामवेदका पाठ करे ॥ ११ ॥ और बीसतोले सुवर्णकी मूर्ति बनाकर
ब्राह्मणका पूजनकर “मैं पाप रहित हूँ” इस भाँति कहता हुआ दे ॥ १२ ॥ जलके जीवोंके
स्वामी सबको पवित्र करनेवाले और संसाररूपी समुद्रमें कर्णधार जो वरुणहै वह मेरेको
पवित्र करे ॥ १३ ॥ इस मंत्रको पाठकर विधिसहित वरुण देवताकी मूर्तिको शोभायमानकर
मूत्रकृच्छ्रकी शान्तिके निमित्त ब्राह्मणको दे ॥ १४ ॥

स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठं प्रजायते ॥ भगिनीगमने चैव पीतकुष्ठं प्रजायते ॥ १५ ॥ तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं पूर्वतः कलशं न्यसेत् ॥ पीतवस्त्रसमाच-
पीतमाल्यविभूषितम् ॥ १६ ॥ तस्योपरि न्यसेत्स्वर्णपात्रे देवं सुरेश्वरम् ॥
सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं वज्रधारिणम् ॥ १७ ॥ यजेत्पुरुषसूक्तेन वासवं
विश्वरूपिणम् ॥ यजुर्वेदं तत्र साम ऋग्वेदं च समाचरेत् ॥ १८ ॥ सुवर्णपु-
त्तिकां कृत्वा सुवर्णदशकेन तु ॥ दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन्
॥ १९ ॥ देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः ॥ शतयज्ञः सहस्राक्षः
पापं मम निकृन्ततु ॥ २० ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥
दद्याद्देवं सहस्राक्षं सपापस्यापनुत्तये ॥ २१ ॥

अपनी कन्याके साथ गमनकरनेवाला मनुष्य रक्तकुष्ठका रोगी होता है, बहिनके साथ
गमनकरनेवाले मनुष्यको पीतकुष्ठ होता है ॥ १५ ॥ वह मनुष्य उसपापसे छूटनेके निमित्त
पीलेवस्त्रसे ढका और पीले फूलोंसे शोभायमान घड़ेको पूर्वदिशामें स्थापित करे ॥ १६ ॥
उसके ऊपर सुवर्णके पात्रमें छैः तोले सुवर्णसे बनी और हाथमें वज्रसहित देवताओंके ईश्वर इन्द्र-
देवताकी मूर्तिको स्थापितकरे ॥ १७ ॥ और पुरुषसूक्तेसे विश्वरूपी देवराज इन्द्रका पूजन
करे; फिर उस घड़ेके निकट यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद इनका पाठकरे ॥ १८ ॥ पीछे दस
सुवर्णकी प्रतिमा वनवायकर ब्राह्मणोंका पूजन करके; “मैं पापसे हीनहूँ” इसभांति कहताहुआ
दे ॥ १९ ॥ “देवताओंका स्वामी वज्रसहित जिसका स्थान विष्णुहै जिसने सौ अश्वमेध
यज्ञ किये हैं, हजार जिसके नेत्र हैं वह देवराज इन्द्र मेरे सम्पूर्ण पापोंको दूर करे” ॥ २० ॥
इस मंत्रको पढ़कर विधिपूर्वक आचार्यको इन्द्रकी मूर्ति सब पापोंकी निवृत्तिके लियेदे ॥ २१ ॥

भ्रातृभार्याभिगमनाद्गलत्कुष्ठं प्रजायते ॥ स्ववधूगमने चैव कृष्णकुष्ठं प्रजायते
॥ २२ ॥ तेन कार्यं विशुद्ध्यर्थं प्रागुक्तस्यार्द्धमेव हि ॥ दशांशहोमः सर्वत्र
घृताक्तैः क्रियते तिलैः ॥ २३ ॥

जो मनुष्य भाईकी स्त्रीके साथ गमन करता है उसके गलित कुष्ठ होता है और पुत्र वधूके
साथ गमन करनेसे काला कुष्ठ होता है ॥ २२ ॥ वह मनुष्य अपने पापोंसे छूटनेके निमित्त
पहले कहेहुएमेंसे आधा प्रायश्चित्त करे, और पूर्वोक्त सब प्रायश्चित्तोंमें घीसे भीगेहुए तिलोंसे
दशांश हवनकरे ॥ २३ ॥

यदगम्याभिगमनाज्जायते ध्रुवमंडलम् ॥ कृत्वा लोहमयीं धेनुं पिलषष्टिप्रमा-
णतः ॥ २४ ॥ कार्पासभांडसंयुक्तां कांस्यदोहां सवत्सिकाम् ॥ दद्याद्विप्रायः
विधिवदिमं मंत्रमुदीरयेत् ॥ सुरभी वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु ॥ २५ ॥

जो मनुष्य गमनकरने अयोग्य चांडाली स्त्रीके साथ गमनकरता है उस मनुष्यके शरीरमें
चकत्ते होते हैं वह साठ तिलके प्रमाणसे लोहेकी गौ बनवाकर ॥ २४ ॥ और कपास पात्र
काँसीकी दोहती और बछड़ेवाली उस गौको विधिसहित ब्राह्मणको दे और फिर यह मंत्र पढ़े;
गौही विष्णु भगवान्की मूर्ति है, मातारूप है वह गौ मेरे पापका नाश करे ॥ २५ ॥

तपस्विनीसंगमने जायते चाश्मरीगदः ॥ स तु पापविशुद्धयर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २६ ॥ दद्याद्विप्राय विद्रुपे मधुधेनुं यथोदिताम् ॥ तिलद्रोणशतं चैव हिरण्येन समन्वितम् ॥ २७ ॥

तपस्विनीके साथ गमनकरनेसे मनुष्यको पथरीका रोग होताहै, वह मनुष्य उस पापकी शुद्धिके निमित्त यह प्रायश्चित्त करे ॥ २६ ॥ किसी विद्वान् ब्राह्मणको शास्त्रकी विधिके अनुसार गौदान करे, और सुवर्णसहित सौ द्रोण तिल दे ॥ २७ ॥

पितृष्वस्रभिगमनादक्षिणांशत्रणी भवेत् ॥

तेनापि निष्कृतिः कार्या अजादानेन शक्तिः ॥ २८ ॥

पिताकी बहिनके साथ गमनकरनेसे मनुष्यके दाहिने कंधेपर घाव होतेहैं; वकरीके दानको करके वहभी प्रायश्चित्त करे ॥ २८ ॥

मातुलान्यां तु गमने पृष्ठकुब्जः प्रजायते ॥

कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २९ ॥

माईके साथ गमन करनेवाला मनुष्य कुबड़ा होताहै, वह काली सृगछालाको देकर प्रायश्चित्त करे ॥ २९ ॥

मातृष्वस्रभिगमने वामांगे व्रणवान्भवेत् ॥

तेनापि निष्कृतिः कार्या सव्यग्दासप्रदानतः ॥ ३० ॥

माँसीके साथ गमन करनेवाले मनुष्यके अंगमें घाव होतेहैं, वह मनुष्य भली प्रकार दासका दानकर प्रायश्चित्त करे ॥ ३० ॥

मृतभार्याभिगमने मृतभार्यः प्रजायते ॥

तत्पातकविशुद्धयर्थं द्विजमेकं विवाहयेत् ॥ ३१ ॥

विधवा स्त्रीके साथ गमन करनेवाले मनुष्यकी स्त्री मरजातीहै; वह मनुष्य उस पापसे छूटनेके निमित्त एक ब्राह्मणका विवाह करदे ॥ ३१ ॥

सगोत्रस्त्रीप्रसंगेन जायते च भगन्दरः ॥

तेनापि निष्कृतिः कार्या महिषीदानयत्नतः ॥ ३२ ॥

अपने गोत्रकी स्त्रीके साथ गमन करनेसे मनुष्यको भगंदर रोग होताहै, इसका यही प्रायश्चित्त है कि यत्नसहित भैंसका दानकरे ॥ ३२ ॥

तपस्विनीप्रसंगेन प्रमेही जायते नरः ॥

मासं रुद्रजपः कार्यो दद्याच्छ्रुत्तया च कांचनम् ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य तपस्विनीके साथ गमन करताहै उसे प्रमेह रोग होताहै; वह अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका दानकरे और एक महीनेतक रुद्रका जप करताहै ॥ ३३ ॥

दीक्षितस्त्रीप्रसंगेन जायते दुष्टरक्तदृक् ॥

स पातकविशुद्धयर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य दीक्षावाले मनुष्यकी स्त्रीके साथ गमन करताहै वह दुष्ट होताहै और उसके नेत्र लाल होतेहैं, वह उस पापसे छूटनेके निमित्त दो प्राजापत्यव्रत करे ॥ ३४ ॥

स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी ॥

तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३५ ॥

अपनी जातिकी स्त्रीके साथ जो मनुष्य गमन करताहै उस मनुष्यके हृदयमें घाव होताहै, वह दो प्राजापत्यव्रत कर उस पापसे छूटजाताहै ॥ ३५ ॥

पशुयोनौ च गमने सूत्राघातः प्रजायते ॥

तिलपात्रद्वयं चैव दद्यादात्मविशुद्ध्यै ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य पशुकी योनिमें गमन करताहै उसे सूत्राघात रोग होताहै; वह अपनी शुद्धिके लिये दो तिलपूरेत पात्रोंको दे ॥ ३६ ॥

अश्वयोनौ च गमनाद्बुदस्तंभः प्रजायते ॥

सहस्रकमलस्नानं मांसं कुर्याच्छिवस्य च ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य घोड़ीकी योनिमें गमन करताहै उसे गुदाका स्तंभ होताहै; वह एक महीनेतक सहस्रकमलोंसे शिवजीको स्नानकरावै ॥ ३७ ॥

एते दोषा नराणां स्युर्नरकांते न संशयः ॥

स्त्रीणामपि भवत्येते तत्तत्पुरुषसंगमात् ॥ ३८ ॥

इति श्रीशातातपीये कर्मविषयकेऽगम्यागमनप्रायश्चित्तं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यह ऊपर कहेहुए दोष मनुष्योंको नरकके अंतमें होतेहैं इसमें किंचित्भी संदेह नहीं; और उन उन पुरुषोंकी संगतिसे उपरोक्त दोष स्त्रियोंको भी होतेहैं ॥ ३८ ॥

इति श्रीशातातपस्मृतौ भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अश्वशूकरशृंग्यद्विहृमादिशकटेन च ॥ भृग्वभिदारुशस्त्राश्मविषोद्धंधनजैर्मृताः

॥ १ ॥ व्याघ्राहिगजभूपालचोरवैरिवृकाहताः ॥ काष्ठशल्यमृता ये च शौचसं-

स्कारवर्जिताः ॥ २ ॥ विषूचिकान्नकवलदवांतीसारतो मृताः ॥ डाकिन्यादि

ग्रहैर्ग्रस्ता विद्युत्पातहताश्च ये ॥ ३ ॥ अस्पृश्या अपवित्राश्च पतिताः पुत्रवर्जिताः ॥

पंचत्रिंशत्प्रकारैश्च नामुवंति गतिं मृताः ॥ ४ ॥ पित्राद्याः पिंडभाजः स्युस्त्रयो

ल्लेपभुजस्तथा ॥ ततो नांदीमुखाः प्रोक्तास्त्रयोऽप्यश्रुमुखास्त्रयः ॥ ५ ॥ द्वादशै-

ते पिदगणास्तर्पिताः सन्ततिप्रदाः ॥ गतिहीनाः सुतादीनां सन्ततिं नाशयंति

ते ॥ ६ ॥ दश व्याघ्रादिनिहता गर्भं विघ्नन्त्यमी क्रमात् ॥ द्वादशास्त्रादि-

निहता आकर्षन्ति च बालकम् ॥ ७ ॥ विषादिनिहता घ्नन्ति दशसु द्वादश

स्वपि ॥ वर्षैकबालकं कुर्यादनपत्योऽनपत्यताम् ॥ ८ ॥ व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः

कुमारीगमनेन च ॥ विषदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुष्टकृत् ॥ ९ ॥ राज्ञा राज-

कुमारघ्नश्चैरेण पशुहिंसकः ॥ वैरिणा मित्रभेदी च बकवृत्तिवृकेणतु ॥ १० ॥

शुरूघाती च शय्यायां मत्सरी शौचवर्जितः ॥ द्रोही संस्काररहितः शुना

निक्षेपहारकः ॥ ११ ॥ नरो विहन्यतेऽरण्ये शूकरेण च पाशिकः ॥ कृमिभिः
कृतवासाश्च कृमिणा च निकृन्तनः ॥ १२ ॥ शृंगिणा शंकरद्रोही शकटेन च
सूचकः ॥ भृगुणा मेदिनीचौरो वह्निना यज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥ दवेन दक्षि-
णाचौरः शस्त्रेण श्रुतिनिन्दकः अश्मना द्विजनिन्दाकृद्विषेण कुमतिप्रदः ॥
॥ १४ ॥ उद्वंधनेन हिंस्रः स्यात्सेतुभेदी जलेन तु ॥ द्रुमेण राजदन्तिहृदतिसा-
रेण लोहहृत् ॥ १५ ॥ डाकिन्याद्यैश्च म्रियते स दर्पकार्यकारकः ॥ अनध्यायेऽ-
प्यधीयानो म्रियते विद्युता तथा ॥ १६ ॥ अस्पृश्यस्पर्शसंगी च वान्तमा-
श्रित्य शास्त्रहृत् ॥ पतितो मदविकेताऽनपत्यो द्विजवस्त्रहृत् ॥ १७ ॥

यदि मनुष्य घोडा, सूकर, सींगवाले पशु, पर्वत, वृक्ष, गाढी, शिला, अभि, काष्ठ, शस्त्र, पत्थर, विष, और फाँसी इत्यादिसे मृतक होजाय ॥ १ ॥ जो मनुष्य सिंह, हाथी, राजा, चोर, वैरी, व्याघ्र और काठके आघातसे मरजाय, जो शौच और संस्कारसे हीन हो ॥ २ ॥ हैजा, अन्नका और अन्नका घास वनकी अभि, अतीसार, शाकिनी आदिग्रह, विजलीका गिरना और उत्पात इत्यादि इनसे जो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाय ॥ ३ ॥ छूनेके अयोग्य, अपवित्र, पतित, पुत्रहीन, इन पूर्वोक्त पैतृस प्रकारसे मरेहुए मनुष्योंको गति नहीं होती ॥ ४ ॥ पितासे आदि लेकर तीन पिंडके भागी और उनसे पहले तीन लेपके भागी, और उनसे पहले तीन अश्रु-मुख होतेहैं ॥ ५ ॥ वृत्तिको प्राप्त होकर वह वारह पितरोंके गण सन्तानको देतेहैं; और जो गातिसे हीन हैं वह अपने पुत्रादिकी सन्ततिको नष्टकरतेहैं ॥ ६ ॥ सिंह इत्यादि इस प्रकारके आघातसे मृतक हुए पितर गर्भको नष्ट करतेहैं; और अन्न इत्यादिके आघातसे मृतक हुए वारह जन बालकको नष्ट करतेहैं ॥ ७ ॥ विषादि द्वारा मृत्युको प्राप्तहुए दस या वारह पुरुष दस वर्षके बालकको नष्ट करतेहैं, वा मनुष्यको सन्तानहीन करदेते हैं ॥ ८ ॥ जो मनुष्य कुमारी कन्यामें गमन करताहै, वह सिंहसे मारा जाताहै, जो मनुष्य किसीको विष देताहै, वह सर्पके आघातसे हत होताहै; और राजाके पुत्रको मारनेवाला तथा राजाके साथ दुष्टता करनेवाला हाथीसे मरताहै ॥ ९ ॥ जो राजपुत्रको मारताहै वह राजदंडसे मरताहै; पशुकी हिंसा करनेवाला चोरसे मारा जाताहै; और मित्रोंका भेद करनेवाला शत्रुके हाथसे माराजाताहै; जिसकी वकृत्तिहै उसकी मृत्यु वृकसे होतीहै ॥ १० ॥ शुरुकी हत्याकरनेवाला शय्यापर मरताहै; मात्सर्ययुक्त मनुष्य शौचरहित होकर मरताहै; दूसरेका अपकार करनेवाला मनुष्य दाहादि संस्कारसे हीन होकर मरताहै; और घरोहरका चुरानेवाला कुत्तेके काटनेसे मरताहै ॥ ११ ॥ फाँसीवाला मनुष्य वनमें शूकरसे मरताहै; और वस्त्रोंका चुरानेवाला कीड़ोंसे; और छेदनकरनेवाला भी कीड़ोंसे मरता है ॥ १२ ॥ शिवजीके साथ द्रोह करनेवाला सींगवाले पशुओंसे मरताहै; चुगली करनेवाला मनुष्य गाढीसे, पृथ्वीका चोर बड़ी शिलासे, और यज्ञमें हानि करनेवाला अग्निसे मरताहै ॥ १३ ॥ दक्षिणाका चौर वनकी अग्निसे वेदोंकी निन्दा करनेवाला शस्त्रसे, ब्राह्मणोंका निन्दक पत्थरसे और कुबुद्धिका देनेवाला विषसे मरताहै ॥ १४ ॥ हिंसाकरनेवाला मनुष्य फाँसीसे मृतक होताहै, पुलकी तोड़नेवाला जलमे, राजाके हाथीको चुरानेवाला वृक्षसे और लोहेका चुरानेवाला अतिसारसे मरताहै ॥ १५ ॥ अहंकारसे कार्यकरनेवाला शाकिनी आदिसे

और अनध्यायमें पढ़नेवाला बिजलीसे मरताहै ॥ १६ ॥ अयोग्यका स्पर्श करनेवाला, और
 १ चुरानेवाला यह दोनों वमनरोगसे मरतेहैं; मदिराका वेचनेवाला पतित होताहै,
 गन्के बख्खोंका चोर सन्तानहीन होताहै ॥ १७ ॥

अथ तेषां क्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ कारयेन्निष्कमात्रं तु पुरुषं प्रे-
 तरूपिणम् ॥ १८ ॥ चतुर्भुजं दंडहस्तं महिषासनसंस्थितम् ॥ पिष्टैः कृष्णतिलैः
 कुर्यात्पिंडं प्रस्थप्रमाणतः ॥ १९ ॥ मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुंडलसंयुतम् ॥
 अकालमूलं कलशं पंचपल्लवसंयुतम् ॥ २० ॥ कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वौषधि-
 समन्वितम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्देवं पात्रं धान्यफलैर्युतम् ॥ २१ ॥ सप्तधान्यं तु
 सफलं तत्र तत् सफलं न्यसेत् ॥ कुंभोपरि च विन्यस्य पूजयेत्प्रेतरूपिणम् ॥ २२ ॥
 कुर्यात्पुरुषसूक्तेन प्रत्यहं दुग्धतर्पणम् ॥ षडंगं च जपेद्बुद्धं कलशे तत्र वेदवित्
 ॥ २३ ॥ यमसूक्तेन कुर्वीत यमपूजादिकं तथा ॥ गायत्र्याश्चैव कर्तव्यो जपः
 स्वात्माविशुद्धये ॥ २४ ॥ गृहशांतिकपूर्वं च दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ अज्ञातना-
 मगोत्राय प्रेताय सतिलोदकम् ॥ २५ ॥ प्रदद्यात्पितृतीर्थेन पिंडं मन्त्रमुदीरयेत् ॥
 इमं तिलमयं पिंडं मधुसर्पिःसमन्वितम् ॥ २६ ॥ ददामि तस्मै प्रेताय यः
 पीडां कुरुते मम ॥ सजलान्कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान् ॥ २७ ॥
 द्वादश प्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकं च विष्णवे ॥ ततोऽभिषिञ्चेदाचार्यो दम्पती कल-
 शोदकैः ॥ २८ ॥ शुचिर्वरायुधधरो मंत्रैर्वैरुणदैवतैः ॥ यजमानस्ततो दद्यादा-
 चार्याय सदक्षिणान् ॥ २९ ॥ ततो नारायणवलिः कर्तव्यः शास्त्रनिश्चयात् ॥
 एष साधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ॥ ३० ॥ विशेषस्तु पुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनि-
 हतेष्वपि ॥ व्याघ्रेण निहते प्रेते परकन्यां विवाहयेत् ॥ ३१ ॥ सर्पदंशे नागव-
 लिर्देयः सर्वेषु कांचनम् ॥ चतुर्निष्कमितं हेम गजं दद्याद्गजैर्हते ॥ ३२ ॥
 राज्ञा विनिहते दद्यात्पुरुषं तु हिरण्यमयम् ॥ चोरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते
 वृषम् ॥ ३३ ॥ वृकेण निहते दद्याद्यथाशक्तिं च कांचनम् ॥ शय्यामृते
 प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता ॥ ३४ ॥ निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना सम-
 धिष्ठिता ॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कस्वर्णजं हरिम् ॥ ३५ ॥ संस्कारहीने च
 मृते कुमारं च विवाहयेत् ॥ शुना हते च निक्षेपं स्थापयेन्नृजशक्तिः ॥ ३६ ॥
 शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् ॥ कृमिभिश्च मृते दद्याद्ब्रूमात्रं द्वि-
 जातये ॥ ३७ ॥ शृंगिणां च हते दद्याद्वृषभं वस्त्रसंयुतम् ॥ शकटेन मृते
 दद्यादश्वं सोपस्करान्वितम् ॥ ३८ ॥ भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥
 अग्निना निहते दद्यादुपानहं स्वशक्तिः ॥ ३९ ॥ दवेन निहते चैव कर्तव्या
 सदने सभांशस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् ॥ ४० ॥ अश्मनानिहते

दद्यात्सवसां गां पयस्विनीम् ॥ विषेण च मृतेन्द्यान्मेदिनीं क्षेत्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥
 उद्वंधनमृते चापि प्रदद्याद्गां पयस्विनीम् ॥ मृते जलेन वरुणं हैमदद्यात्त्रिनिष्ककम् ॥ ४२ ॥
 वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं स्वर्णसंयुतम् ॥ अतिसारमृते लक्षं सावित्र्याः संयतो जपेत् ॥ ४३ ॥
 डाकिन्यादिमृते चैव जपेद्बुद्धं यथोचितम् ॥ विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ॥ ४४ ॥
 अस्पर्शं च मृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥ सच्छास्त्रपुस्तकं दद्याद्भ्रान्तमाश्रित्य संस्थिते ॥ ४५ ॥
 पातित्वेन मृते कुर्यात्प्राजापत्यानि षोडश ॥ मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवार्तिं चरेत् ॥ ४६ ॥
 निष्कत्रयमितं स्वर्णं दद्यादश्वं हयाहते ॥ कपिना निहते दद्यात् कपिं कनकनिर्मितम् ॥ ४७ ॥
 विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ तिलधेनुः प्रदातव्या कंठेऽन्नकवले मृते ॥ ४८ ॥
 केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समाचरेत् ॥ एवं कृते विधानेन विदध्यादौर्द्धदैहिकम् ॥ ४९ ॥
 ततः प्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥ दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आयुरारोग्यसंपदः ॥ ५० ॥

अथ हन सवका क्रमानुसार प्रायश्चित्त कहतेहैं, कि, एक तोलभर सुवर्णकी प्रेतकी मूर्ति बनावै ॥ १८ ॥ उस मूर्ति के चार भुजा हों हाथमें दंड देकर उसे फिर भैसेपर सवार करे, फिर काले तिलोंको पीस कर प्रस्थभरका एक पिंड बनावै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त उस पिंडमें सहत घी मिलाकर सुवर्णके कुंडल उस पिंडपर रखे, नीचे से गोल एक कलश हो उसपर पंच पल्लव रखे ॥ २० ॥ फिर उसे काले वस्त्रसे ढकदे और उसमें सर्वांगपथि डाले, फिर उसपर अन्न और फलसहित पात्र रखे, फिर उस पात्रपर देवताकी मूर्तिको स्थापित करे ॥ २१ ॥ पीछे फलके साथ सतनजा रखे और उस कलशपर प्रेतकी मूर्तिको रखकर ॥ २२ ॥ पुरुषसूक्तको पढ़ताहुआ प्रतिदिन दूधसे तर्पणकरे, और उस कलशके निकट वेदोंका ज्ञाता पढंग रुद्रका जपकरे ॥ २३ ॥ इसके पीछे यमसूक्तसे यमराजकी पूजाकरे; और अपने आत्माकी शुद्धिके निमित्त गायत्रीकाभी जपकरे ॥ २४ ॥ प्रहोंकी शांति कर तिलोंसे दशांश हवनकरे; जिस प्रेतके गोत्र और नामको नहीं जाना है उस प्रेतके निमित्त तिलांजलि दे ॥ २५ ॥ पितृतीर्थसे पिंड दे पीछे इस मंत्रको कहै कि सहत और घी मिलाहुआ यह तिलका पिंड ॥ २६ ॥ उस प्रेतके निमित्त देताहूं जो मुख पीड़ादेताहै; और जिस जलमें काले तिल हों ऐसे जलसे भरेहुए काले घडे ॥ २७ ॥ चारह प्रेतको और एक विष्णु भगवान्को दे, इसके पीछे आचार्य कलशोंके जलसे स्त्रीपुरुष दोनोंका अभिषेक करे ॥ २८ ॥ फिर आचार्य शुद्धतापूर्वक उत्तम शस्त्रको धारणकर वरुणदेवतावाले मंत्रोंसे यजमानका अभिषेक करे; फिर यजमान आचार्यको श्रेष्ठ दक्षिणा दे ॥ २९ ॥ पीछे शास्त्रकी विधिके अनुसार नारायणबलि करे; यह साधारण विधि जिनकी गति नहीं हुई है उनकी कहीगई ॥ ३० ॥ और जिनकी मृत्यु सिंह इत्यादिसे हुई है उनकी विशेष विधि यह है कि जो मनुष्य व्याघ्रसे मरजाय उसकी गतिके निमित्त दूसरेकी कन्याका विवाह करदे ॥ ३१ ॥ जो सर्पके काटनेसे मरगये हैं उनके उद्धारकी इच्छासे नागोंको बलि दे, सब विषयोंमें सुवर्णकी दक्षिणा दे; जो हाथीके आघातसे मरगये हैं उनके उद्धारकी कामनासे चार तोले सुवर्ण दान करे ॥ ३२ ॥

राजदंडसे मरेहुए मनुष्यके निमित्त सुवर्णका पुरुष बनवाकर दे; चोरसे मरेहुए पुरुषके आशयसे गौदान करै; यदि मनुष्य शत्रुके आघातसे मृतक हुआ होतौ बैलका दान करै ॥ ३३ ॥ भिडाके द्वारा मृतकहुए मनुष्यके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण दानकरै; शय्यापर, मृतकहुए पुरुषको छुटकारा पानेकी इच्छासे रुईसहित शय्यादान करै ॥ ३४ ॥ और उस शय्यापर तोलेभर सुवर्णकी विष्णुभगवान्की मूर्ति रखै, यदि जो शुद्धिसे हीन होकर मृत्युको प्राप्तहोतौ दो तोले सुवर्णकी विष्णुकी मूर्तिदे ॥ ३५ ॥ यदि संस्काररहित होकर मरे तौ दूसरेके लडकेका विवाह करदे; कुत्तेके काटनेसे मनुष्यकी मृत्यु होजाय, तौ अपनी शक्तिके अनुसार कुछ धन मट्टीके नीचे गाड़ दे ॥ ३६ ॥ शूकरद्वारा मृतक हुए मनुष्यके उद्धारके निमित्त दक्षिणासहित भैंसेका दान करै; कुमिद्वारा मरे हुए मनुष्यके आशयसे ब्राह्मणको गेहूँ दे ॥ ३७ ॥ यदि सांगवाले पशुसे मनुष्य मृतक हो तो वस्त्रसहित बैलका दान करै; गाड़ीसे मरे हुए मनुष्यके निमित्त सामग्री सहित घोड़ा दे ॥ ३८ ॥ पर्वतकी शिलासे पिचकर मरजाय तौ अन्नका पर्वत दे; यदि अग्निसे मरे तौ अपनी शक्तिके अनुसार जूते दान करै ॥ ३९ ॥ दावाग्निसे यदि मनुष्य मरजाय तौ किसी स्थानमें सभा बनौवै, शस्त्रसे मरजाय तौ दक्षिणा सहित भैंसेका दान करै ॥ ४० ॥ पत्थरसे मरजाय तौ बछड़े सहित दूध देनेवाली गौका दान करै और विपसे मृतक होजाय तौ खेतीसहित पृथ्वीका दान करै ॥ ४१ ॥ फांसीसे मरे हुए मनुष्यके निमित्त दूध देनेवाली गौका दान करै, जलसे मरजाय तौ तीन तोलेभर सुवर्ण की मूर्ति वरुणकी दे ॥ ४२ ॥ वृक्षसे मरजाय तौ सुवर्णका वृक्ष दे और सुवर्ण दान करै; अतिसार रोगसे मरजाय तौ सावधानीसे एकलाख गायत्रीका जप करवावै ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य शाकिनी आदिसे मृतक होजाय तौ यथारीति रुद्रका जप करवावै; विजलाके गिरनेसे मरजाय तौ विद्याका दान करै ॥ ४४ ॥ छूनेके अयोग्यके स्पर्शसे मरजाय तो वेदका पाठ करावै; वमन करनेसे मृतक होजाय तौ उत्तम शास्त्रकी पुस्तक दान करै ॥ ४५ ॥ पतित होकर मृतक हो तौ १६ प्राजापत्य करै सन्तानहीन होकर मरे तो नव्वे कृच्छ्र करै ॥ ४६ ॥ और तीन तोले सुवर्ण दान करै, घोड़ेसे मरजाय तौ घोड़ा दे, बन्दरसे मृतक हो तौ सुवर्णका बन्दर बनवाकर दे ॥ ४७ ॥ विपूचिकासे मृतक होजाय तौ उत्तम भोजनसे सौ ब्राह्मण जिमावै, यदि कण्ठमें घ्रास अटकनेसे मरजाय तो तिलकी गौका दान करै ॥ ४८ ॥ और रोम आदिके रोगसे मृतक होजाय तौ उस मनुष्यके उद्धारके निमित्त आठ कृच्छ्र त्रत करै; इस प्रकार कर्म करनेके उपरान्त अन्येष्टि कर्मको करै ॥ ४९ ॥ इसके पीछे प्रेतभावसे छूटकर तृप्त होकर पितर पुत्र, पोते, अवस्था, आरोग्यता और सम्पदा इत्यादिको देते हैं ॥ ५० ॥

इति शातातपप्रोक्तो विपाकः कर्मणामयम् ॥ शिष्याय शरभंगाय विन-
यात्परिपृच्छते ॥ ५१ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके अगतिप्रायश्चित्तं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

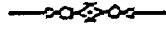
वितनयपूर्वक शरभंग शिष्यके पूछनेपर शातातप ऋषिने कर्मोंका विपाक कहा है ॥ ५१ ॥

इति शातातपस्मृतौ भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति तातपस्मृतिः स । ॥ १७ ॥

अथ वशिष्ठस्मृतिः १८.

प्रथमोऽध्यायः १.



श्रीगणेशाय नमः॥ अथ वासिष्ठस्मृतिप्रारंभः॥ अथातः पुरुषनिश्रेयसार्थं धर्मजिज्ञासा॥ ज्ञात्वा चालुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके प्रेत्य च । विहितो धर्मः । तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् । दक्षिणेन हिमवत उत्तरेण विन्ध्यस्य ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वे प्रत्येतव्याः न ह्यन्ये प्रतिलोमकल्पधर्माः । एतदार्यावर्तमित्याचक्षते । गंगायमुनयोऽरुतराप्येकैः । यावद्वा कृष्णमृगौ विचरति तावद्ब्रह्मवर्चसमिति । अथापि भाल्लविनो निदानं गायामुदाहरन्ति ॥

इस समय मनुष्योंकी मुक्तिके लिये धर्मके जाननेकी अभिलाषा होती है; जो मनुष्य धर्मको जानकर उसके अनुसार कार्य करता है वह इस लोक और परलोकमें धार्मिक कहकर अत्यन्त प्रशंसाके योग्य होता है; ज्ञानमें जो कहा है वही धर्म है; यदि ज्ञानमें न मिलें तो सज्जनोंका वचनही प्रामाणिक है, हिमालय पर्वतके दक्षिण और विन्ध्याचल पर्वतके उत्तर भागमें जो सब धर्म और सम्पूर्ण आचार प्रचलित हैं वह सभी जाननेके योग्य धर्म हैं, अन्य आचारोंके धर्मको न विचारें, कारण कि वह अतिशय गार्हित धर्म हैं; इसी स्थानका नाम आर्यावर्त है; गंगा और यमुनाके मध्यके स्थानको भी कोई २ आर्यावर्त कहते हैं; फलतः जिस ३ स्थानमें काले मृग स्वभावसे ही विचरण करते हैं, उस २ स्थानमें ब्रह्मतेज वर्तमान है ॥

पश्चात्सिधुर्विहरिणीसूर्यस्योदयने पुनः ॥ यावत्कृष्णोऽभिधावति तावद्ब्रह्मवर्चसम् ॥ त्रैविद्यवृद्धा यं ब्रूयुर्धर्मं धर्मविदो जनाः ॥ पवनं पावनं चैव सर्वतो नात्र संशयः ॥ इति ।

इसमें भी भाल्लवि पंडित इत्यादि मूल प्राचीन गायान्ता वर्तित करते हैं, “पश्चिम समुद्र और सूर्यके उदयाचलके मध्यके जिन २ स्थानोंमें काले मृग विचरण करते हैं, उन २ देशोंमें ब्रह्मतेज वर्तमान है” तीनों वेदोंमें बड़े बृद्ध, धर्मके जाननेवाले शुद्धि और शोधनके विषयमें जिस धर्मका उपदेश करें वही यथार्थ धर्म है इसमें संदेह नहीं”

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः ।

श्रुतिके अभावमें मनुने देशधर्म, जातिधर्म और कुलधर्म इन सबका वर्णन किया है।

सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनस्ती व्यावतंदः परिवितिः परिवेत्ता अग्नेदिधिर्पूदिधिषूपतिर्वारहा ब्रह्मन्न इत्येत एनस्विनः । पंचमहापातकान्याचक्षते । गुरुतरुपं सुरापानं भ्रूणहत्यां ब्राह्मणमुवर्णहरणं पातितसंप्रयोगं च ब्राह्मे वा यौनेन वा ।

जिसके शयन (निद्रा) करनेमें सूर्य उदयहो, उसको सूर्याभ्युदित कहते हैं, और जिसके शयन (निद्रा) करनेमें सूर्यका अस्त हो उसको सूर्याभिनिर्मुक्त कहते हैं, ऐसे सूर्याभ्युदित

मनुष्य, सूर्याभिनिर्मुक्त मनुष्य बुरे नखवाला, काले दांतवाला, परिवित्ति, परिवेत्ता, अग्नेदि-
विषु, और दिधिपूका पति, वीरकी हत्या करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, यह सब पापी
हैं, निम्नलिखित पांच प्रकारके पापी महापापी कहे गये हैं; जैसे, गुरुकी शय्यापर गमन
, मदिरा पीना, ब्रह्महत्या, गर्भकी हत्या, ब्राह्मणका सुवर्ण चुराना, पतितके साथ पढ़ना
। और यौन (सम्यन्ध) से मेल,

अथाप्युदाहरंति ॥ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौ-
नादन्नपानासनादपि ॥

इन सब विषयोंमें पंडितोंने कहा है कि, पतितके साथ एक वर्षतक संग, एक वर्षतक यज्ञ
कराना पढ़ाना, सम्बन्ध करना, भोजन, जलपान, बैठना इनके करनेसे मनुष्य पतित होता है,

अथाप्युदाहरंति । विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशे त्विह सर्वनाशः ॥

कुलापदेशेन ह्योपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां स्त्रियमुद्धरंतीति ॥

और यह भी कहा है कि "विद्या नष्ट होनेपर फिर भी मिल सकती है, परन्तु जातिकी
नाश होनेपर सर्वनाश होजाता है, वंशकी मर्यादाके बलसे घोड़ा भी सम्मान पाता है, इस
कारण अच्छे वंशकी स्त्री के साथ विवाह करे;"

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं यं ब्रूयात्तं राजा चानुति-
ष्ठेत् । राजा तु धर्मेणानुशासत् पष्ठं पष्ठं धनस्य हरेत् । अन्यत्र ब्राह्मणात् ।
इष्टापूर्तस्य तु पष्ठमंशं भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वदमाद्यं करोति । ब्राह्मण
आपद उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा भवतीतीह प्रेत्य चाभ्यु-
दयिकमिति ह विज्ञायते ॥ इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तीन वर्णोंकी ब्राह्मण वंशमें रखलै, ब्राह्मण उनको जिस धर्मका उपदेश दे, राजा उसे
प्रचलित करे, राजाके धर्मानुसार राज्य पालन करनेपर ब्राह्मणको छोड़कर और सब प्रजासे
राजा छठा भाग ले, राजा ब्राह्मणोंके इष्टापूर्त धर्मकार्यके छठे भागको लेता है, यह प्रसिद्ध
है कि ब्राह्मणही वेदका आदि प्रकाशक है, ब्राह्मणही सबको आपत्तियोंसे उद्धार करता है,
इस कारण ब्राह्मण अनादि है और करग्रहण करनेके अयोग्य है, चन्द्रमा ब्राह्मणोंका राजा है,
यही इस लोक और परलोकका कल्याण करनेवाला है यह विदित है ।

इति वशिष्ठस्मृती भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः । त्रयो वर्णा द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रिय-
वैश्याः । तेषां मातुरग्रेधिजननं द्वितीयं मौजीवन्धनं तत्रास्य माता सावित्री
पिता त्वाचार्य उच्यते । वेदप्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार वर्ण हैं, इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह
तीन द्विजाति हैं; इन तीनोंका जन्म पहले मातासे और दूसरा जन्म यज्ञोपवीतसे होता है,
दूसरे जन्ममें गायत्री माता है और आचार्य पिता कहागया है आचार्य वेदको पढ़ाता है, इस
कारण आचार्यको पिता कहागया है ।

अथाप्युदाहरंति । द्वयमिह वै पुरुषस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्वं नाभेरर्वाचीनं मन्येत तद्यदूर्ध्वं नाभेस्तेनास्यानौरसी प्रजा जायते । यदुपनयति जनन्यां जनयति यत्साधुकरोति । अथ यदर्वाचीनं नाभेस्तेनास्यौरसी प्रजा जायते तस्माच्छ्रोत्रिययनूचानमपूज्योऽसीति न वदंतीति हारीताः ॥

इसमें भी यह वचन है कि पुरुषके शरीरके दो भाग हैं जिससे ब्राह्मणके देहका नाभिके ऊपरका भाग और एक नाभिसे नीचेका भाग है जो भाग नाभिले ऊपरका है इससे इस मनुष्यके अनौरसी प्रजा होती है, कि जो यज्ञोपवीत होता है और जननी (गायत्री) में उत्पन्न करता है वही अच्छा करनेवाला है और जो नाभिसे नीचेका भाग है तिससे मनुष्यके औरसे प्रजा होती है, इस कारण वेदपाठी और विद्यामें बड़ेको “ तू अपूज्य है ” यह वचन नहीं कहे ऐसा हारीत ऋषिका वचन है ।

अथाप्युदाहरंति ॥ नह्यस्य विद्यते कर्म किंचिदामोर्जीबंधनात् ॥ वृत्त्या शूद्रः समो ज्ञेयो यावद्वेदेन जायते ॥ अन्यत्रोदककर्म स्वधापितृसंयुक्तेभ्यः ।

इसमें बड़े महर्षि यह कहते हैं कि यज्ञोपवीतसे प्रथम इसको कोई कर्मका अधिकार नहीं है, जबतक यह वेदमें उत्पन्न नहीं होता तबतक जलदान स्वधा पितरोंका संयोग इनके अतिरिक्त और सब आचरणमें शूद्रके समान जानना ।

विद्या हवै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेषधिष्टेऽहमस्मि । असूयकायान्जवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् । य आहृणात्यवितथेन कर्मणा बहुदुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन् । तं मन्येत पितरं आतरं च तस्मै न दुह्येत्कतमच्चनाह । अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियंते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा । यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् । यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । यस्तेन दुह्येत्कतमच्चनाह तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन्निति ॥ दहत्यभिर्यथा कक्षं ब्रह्म त्वदमनादृतम् । न ब्रह्म तस्मै प्रब्रूयाच्छक्यमाममकृतं त इति ॥

विद्याने ब्राह्मणोंके निकट आकर कहा, कि “मेरी रक्षाकरो, मैं तुम्हारा गुप्त घन हूँ, और निंदक कठोर तथा व्रतहीन मनुष्यके निकट मुझे प्रगट न करना, कारण कि उसीसे मैं वीर्यवाली हुई हूँ । जो मनुष्य बहुतसा परिश्रमकर सम्पूर्ण कर्मोंके द्वारढककर भी अत्यन्त सुख मानताहै उस गुरुको माता और पिता माने, उसके साथ कभी भी किसीभी प्रकारका द्रोह न करे, जो सम्पूर्ण ब्राह्मण पढकर मन, वचन और कर्मसे गुरुका सन्मान नहीं करते वह जिस भांति गुरुके उपकारमें नहीं आते उसी भांति शास्त्रज्ञान भी उनको स्पर्श नहीं कर सकता; और वह ब्राह्मण जिसको, शुद्ध, अप्रमत्त बुद्धिमान् और ब्रह्मचारी समझे और जो मनुष्य “मैंने किसीके निकट उपदेश नहीं पाया ” यह कहकर गुरुसे द्रोह न करे (हे ब्रह्मन् !) “उस निधिप रक्षकके निकट मुझे कहिये” अग्नि जिसप्रकार वृणको दग्ध करतीहै उसीप्रकार अनादर किया ब्राह्मणभी दग्ध करताहै; इसकारण उस, अनादरके करनेवालेको शक्तिभर ब्रह्म (वेद) का उपदेश न करे, यह वेदका वचन है.

षट्कर्माणि ब्राह्मणस्य अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति ।
 त्रीणि राजन्यस्याऽध्ययनं यजनं दानं शस्त्रेण च प्रजापालनं स्वधर्मस्तेन
 जीवेत् । एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य कृषिवाणिज्यपाशुपाल्यकुसीदानि च ।
 एतेषां परिचर्या शूद्रस्य अनियता वृत्तिः अनियतकेशवेशाः सर्वेषां मुक्तशिखा-
 वर्जम्, अजीवंतः स्वधर्मेणान्यतरापापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन्नतु कदाचिज्ज्याय-
 सीम् । वैश्यजीविकामास्थाय पण्येन जीवतोऽश्मलवणमपण्यं पाषाणकोपक्षौ-
 माजिनानि च तांतवस्प रक्तं सर्वं च कृतान्नं पुष्पमूलफलानि च गंधर
 उदकं च ओषधीनां रसः सोमश्च शस्त्रं विषं मांसं च क्षीरं संविकारमपस्त्रपु
 जतु सीसं च ।

ब्राह्मणके छैः कर्म हैं, पढना, पढाना, यज्ञकरना, कराना, दान और प्रतिग्रह; क्षत्रियोंके
 तीन कर्म हैं, अध्ययन, याजन और दान; शास्त्रके अनुसार प्रजापालनभी क्षत्रियका धर्म है,
 उससेही जीविका निर्वाह करै, वैश्यके भी तीन हैं, खेती, लैन्देन, पशुओंका पालन, और
 सूद्र (व्याज) लेना, यह वैश्यकी वृत्ति है, और इन तीनों जातिकी सेवाकरना यह शूद्रका
 धर्म है और शूद्रकी जीविकाका नियम नहीं है, वालोंकी रक्षाका नियम नहीं है, और वे
 भी नियम नहीं है, तब केवल खुली चोटी होकर न रहै, स्वधर्म से जीविका निर्वाह न
 होनेपर जिसमें पाप नहो इसप्रकारकी दूसरी वृत्तिका अवलम्बन करले, परन्तु जिसमें
 पाप हो. ऐसी वृत्तिको कभी अवलम्बन न करै, वैश्यकी वृत्तिको अवलम्बनकर वाणिज्य
 जीविका निर्वाह करै तो निम्नलिखित द्रव्योंको न बेचै, "जैसे मणिमुक्ता इत्यादि, लवण,
 पाषाणकी वस्तु उपक्षौम, मृगचर्म, लालसूत्रका वस्त्र, और वनायाहुआ सबप्रकारका
 पुष्प, मूल, फल, गंध, रस, जल, औषधियोंका रस, अमृतकी लता, शस्त्र, विष, मांस, दूध,
 और और दूधके विकार त्रपु, लाख, और सीसा इनके बेचनेका निषेध है;

अथाप्युदाहरंति ॥ सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥

अथहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

इसमें भी यह वचन कहतेहैं कि मांस, लाख, लवण इनके बेचनेसे ब्राह्मण शीघ्र पतित
 होताहै और दूधके बेचनेसे तीन दिनमें पतित होताहै;

ग्राम्यपशूनामेकशफाः केशिनश्च सर्वे चारण्याः पशवो वयांसि दंष्ट्रिणश्च । धा-
 न्यानां तिलानाहुः ।

ग्रामके पशुओंके बीचमें एक खुरके पशु और केशोंवाले पशु तथा वनके सब पशु पक्षी
 और ढाढवाले पशु, अन्नमें तिल यह सब बेचनेके अयोग्य कहे हैं,

अथाप्युदाहरंति । भोजनाभ्यंजनादानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥ कृमिभूतः स
 विघ्नायां पितृभिः सह मज्जति ॥ कामं वा स्वयं कृष्योत्पाद्य तिलान्विक्रीणीरन् ।

इसमें यहभी वचन है कि भोजन उबटना इनसे अन्न जो तिलोंसे वह विघ्नमें
 होकर पितरोंसहित नरकमें डूबता है; और आप जोतकर जो तिलोंको उत्पन्न करै तो इच्छाके
 अनुसार बेचै ।

(तस्मादाभ्यामनस्योताभ्यां प्राक्प्रातराशात्कृषिः स्यात् । निदावेऽयः प्रयच्छेन्ना-
तिपीडनलांगलं प्रवीरवसुशेवः सोमपित्सरु ॥ तदुद्रपतिगामविम्प्रफर्ष्यञ्चपी-
वरीम्प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥ लांगलं प्रवीरवद्दीरं मनुष्यवदनलुब्धतासुशे कल्पा-
णीह्यस्य नासिकोद्वयतिदूरेपविद्वति सोमपिष्टरु सोमोह्यस्य प्राप्नोति ॥ तत्सहतदुद्र-
पतिगामरिमा अजानश्चनखरखरोष्ट्राणां च शफवांश्च दर्शनीयां पीवरीं कल्याणीं
प्रथमयुवतीं कथं हि लांगलमुद्रपेदन्यत्र धान्यविक्रयात् ॥

इसकारण जिन्हें वधिषा न किया हो, जिनकी नाक में नाथ न डाला हो ऐसे बैलोंसे पृथ्वी
को प्रातःकालके भोजनके पहले समयमें जोतै, ग्रीष्मऋतुमें जलका दानकरै हल ऐसा होना
उचित है जिससे अत्यन्त पीडा न हो, पैनी धारवाली जिसमें कुश हो, और जो हल
सोमलताके पीनेवाले यजमानके लिये पृथ्वीको खोद सकै वह हल धेनुरूपी पृथ्वीको खोद
सकताहै, और रथको लेजानेवाले मेप और अश्वभी पृथ्वीको खोद सकतेहैं; जो पृथ्वीपर
अश्व इत्यादि बड़े वेगसे दौडते हैं, जो पुष्ट हैं और जो रथ तथा हलके लेजानेवाले बैल हैं,
और थोड़े बलसे ले जानेमें समर्थ हैं; और जिसमें बलवान् अच्छे बैल लगेहों और कुश मुख
देनेवाली लगीहो, कारण कि जिस हलकी कुश अच्छी है वही हल जमीनमें दूरतक प्रवेश
करसकता है उस हलमें बैल, मीडे, बकरी जोतना और रथमें थोड़े खिचड तथा ऊंट जोतै,
यदि बैल बलवान् और नये हों तो ऐसे बैलोंके हलसे पुष्ट और कल्याणकारिणी प्रथमतः
इस पृथ्वीको यदि धान्यविक्रय करनेका न होय तो कैसा भला जोतै, यदि जोतै तो तिलोंको
उत्पन्नकर उनके बेचनेमें कुछ दोष नहीं है (इसकारण वास्तविक तो वाणिज्यापार ब्राह्मणको
कहा नहीं अतएव ब्राह्मणको कृषिकर्म करना उचित नहीं)

रसारसैः समतो हानतो वा निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः ॥ तिलतंडुलपकान्नं
विद्यान्मनुष्याश्च विहिताः परिवर्तकेन ।

रसोंको रसोंसे बराबर वा न्यूनतासे बेचे, परन्तु रसोंसे लवण को न बेचे, तिल, चावल,
तथा पक्काअन्नभी रसोंसे लेना उचित नहीं, और मनुष्यको भी मनुष्यके बदलेमें
लेनेको कहाहै;

ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुपान्नं नाद्याताम् ॥ अथाप्युदाहरन्ति । समर्थ धान्यमुद्धृत्य
महार्थ यः प्रयच्छति ॥ स वै वार्धुपिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ वार्धुपिं
ब्रह्महंतारं तुलया समतोलयत् ॥ अतिष्ठद्भूणहा कोट्यां वार्धुपिन्यक् पपातह ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय यह वार्धुपिकके अन्नका भोजन न करै, इसमें भी यह वचन कहाहै
कि सस्ते अन्नको निकालकर महंगा अन्न ब्रह्मवादियोंमें निंदित है यही वार्धुपिक कहाताहै,
यदि वार्धुपिक और ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य एक तराजूमें तोला गयाहो, ब्रह्महत्याक-
रनेवालेकी ओरका पल्ला ऊंचा होजाय और वार्धुपिक हिलातकभी न हो,

कामं वा परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याद्विगुणं हिरण्यं त्रिगुणं धान्यं धान्येनैव
रसा व्याख्याताः ।

जो कर्मसे हीन और पापी हो उसको अपनी इच्छानुसार दुगुना करनेके लिये सुवर्ण और तिगुना करनेके लिये अन्नदेना उचित है, और उस अन्नसेही रसभी कहेगये हैं, अर्थात् रसोंका देना भी कहा है;

पुष्पमूलफलानि च तुलाधृतमष्टगुणम् । अथाप्युदाहरति । राजाऽनुमतभावेन द्रव्यवृद्धिं विनाशयेत् ॥ पुनः राजाभिषेकेण द्रव्यवृद्धिं च वर्जयेत् ॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पंचकं च शते स्मृतम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ वसिष्ठवचने प्रोक्तां वृद्धिं वार्षुषिके शृणु ॥ पंचमाषास्तु विंशत्यामेवं धर्मो न हीयते ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

फूल, फल, मूल यह तुलामें रखे गयेहों तौ आठगुने लेने; इसमेंभी यह वचन कहा गया है कि राजा अपनी इच्छासे द्रव्यकी वृद्धिका नाश करदे और फिर राजाके अभिषेकसे द्रव्यकी वृद्धिको त्याग दे, और एक सौ रुपये पर चारों वर्णोंसे दो तीन चार, और पांच रुपये सहीनेका व्याज क्रमानुसार ग्रहण करे; और वशिष्ठके वचनमें कही हुई वार्षुषिक वृद्धिको श्रवण करो वीससेर पर पांचवां भाग अधिक अन्नका ले अर्थात् चौबीस सेर अन्न ले, इसरीतिसे करनेपर धर्मकी हानि नहीं होती ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अश्रोत्रियाननुवाक्या अनमयः शूद्रधर्माणो भवन्ति नानृगब्राह्मणो भवति ।

वेदको न पढनेवाला, अनुवाकशून्य, अग्निहोत्ररहित यह तीनों वर्ण शूद्रकी समान हैं, बिना वेदके पढे ब्राह्मण नहीं होता,

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरति ।

इस विषयमें (मनु) के श्लोकोंका प्रमाण दिखाते हैं कि,

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेवं शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १ ॥ न वणिङ्न कुसीदजीवी ये च शूद्रप्रेषणं कुर्वन्ति न स्तेनो न चिकित्सकः ॥ अन्नता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥ तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥

“जो ब्राह्मण वेदको न पढकर अन्य विषयोंमें परिश्रम करता है, वह इस जन्ममेंही अपने वशसाहित शूद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वणिक, और व्याजसे जीविका करनेवाला, शूद्र, चोर और वैद्य यह शूद्रत्वको प्राप्त नहीं होते, जिस ग्राममें व्रतसेहीन और अध्ययनसे वर्जित ब्राह्मण भिक्षा मांगकर अपनी जीविका निर्वाह करसके, राजा उन ग्रामवासियोंको दंड दे कारण कि, यह सब ग्रामवासी चोरोंको आहार देकर उनका पालन करते हैं;

चत्वारोपि त्रयो वापि यदब्रूयुर्वेदपारगाः ॥ स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ अन्नतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां पर्वत्तं नैव विद्यते ॥

चार जने वा तीनजने वेदके जाननेवाले मनुष्य जिस धर्मको कहें वही यथार्थ धर्म कहकर जाननेके योग्य है, अन्य सहस्रों मनुष्योंका उपदेश कियाहुआ धर्म धर्म नहीं है । व्रत और मंत्रोंसे हीन केवल जातिमात्रसेही जीविका करनेवाले ब्राह्मण चाहें हजारों इकट्ठे क्यों नहीं होजायें परन्तु वह तौभी “पर्यत्” नहीं होसकते;

यद्वदंत्यन्यथा भूत्वा मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥

तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृष्वनुगच्छति ॥

मूर्ख मनुष्य जिस धर्मको न जानकर धर्मरहितकार्यको धर्म कहकर उसका उपदेश करते हैं, वह पाप सौ प्रकारसे विभक्त होकर कहनेवालोंकी मंडलीकी ओरको जाताहै;

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः ॥ अश्रोत्रियाय दत्तानि तृप्तिं ना-
याति देवताः ॥ यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चैव बहुश्रुतः ॥ बहुश्रुताय दातव्यं
नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवाजिते ॥ ज्वलंत-
मग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ यश्च काष्ठमयो हस्ती यश्च चर्ममयो मृगः ॥
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥

हव्य और कव्य प्रतिदिन वेदपाठी ब्राह्मणको दे; विना वेद पढेके देनेसे देवता तृप्त नहीं होते, गृहके निकटही जो मूर्ख रहताहो, और विद्वान् मनुष्य दूर रहता हो तो मूर्खको छोड़कर विद्वान्कोही हव्य कव्य देना उचित है, मूर्खके उत्सर्जनमें दोष नहीं है, कारण कि जलती हुई अग्निको त्यागकर भस्ममें हवन नहीं कियाजाता, काठका घना हाथी, चमड़ेका मृग और अन्ययनसे विमुख ब्राह्मण, यह तीनों नाममात्रके धारण करनेवाले हैं;

विद्वद्भोज्यानि चान्नानि मूर्खा राष्ट्रेषु भुञ्जते ॥

तदन्नं नाशमायाति महच्चापि भयं भवेत् ॥

अन्न विद्वानोंके भोजनकरने योग्य है; यदि मूर्ख अन्नको भोजन करेंगे तो वह अन्न निरर्थक होजायगा और उस राज्यमें महाभय उपस्थित होगा;

अप्रज्ञायमानवित्तं योऽधिगच्छेद्वाजा तद्वरेत् अधिगन्त्रे पष्ठमंशं प्रदाय ब्राह्मण-
श्चेदधिगच्छेत् पट्कर्मसु वर्तमानो न राजा हरेत् ।

यदि किसीको दूसरेका विना जानाहुआ धन मिलजाय; तो राजाको उचित है कि जिस मनुष्यको वह धन मिलाहै उससे वह धन लेकर उस धनके छैः भागकर उसमेंसे एकभाग उसे देदे, शेषधन अपने पास रखे; और यदि छैः कर्मोंमें युक्त ब्राह्मणको यह धन मिलजाय तो राजा उसे ग्रहण न करे;

आततायिनं हत्वा नात्र त्राणेच्छोः किञ्चित्किल्बिषमाहुः । पट्टविधास्त्वातता-
यिनः । अथाप्युदाहरंति ॥ अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्वनापहः ॥ क्षेत्रदार-
हरश्चैव पडेते आततायिनः ॥ आततायिनमायांतमपि वेदांतपारगम् ॥

जिघांसंतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ स्वाध्यायिनं कुले जातं यो
हन्यादाततायिनम् ॥ न तेन भूणहा स स्यान्मन्युस्तंमृत्युमच्छति ॥

आत्मरक्षाके निमित्त आततायीके मारनेमें कुछ पाप नहीं होता, ऐसा कहा है कि आततायी छैः प्रकारके हैं, इस विषयमें औरभी कहा है; अग्नि लगानेवाला, विषदेनेवाला, जिसके हाथमें हो, घनका चोर खेतकी चोरी करनेवाला, और स्त्रीकी चोरी करनेवाला यह छैः प्रकारके अयी हैं, वेदांतके पार जाननेवाले भी हिंसा करनेवाले आततायीको मारनेकी इच्छा करै, से ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता अष्टकुलमें उत्पन्न वेदपाठी आततायीको जो मारता है, उस हत्यासे वह पाप नहीं होता है, कारण कि इसका वह क्रोधही मारनेवाला है;

त्रिणाचिकेतः पंचामिस्त्रिसुपर्णवान् चतुर्मेधा वाजसनेयी षडंगविद्विहोदयानु-
संतानश्छंदोगो ज्येष्ठसामगो मंत्रब्राह्मणवित् यस्य धर्मानधीते यस्य च
पुरुषमातृपितृवंशः श्रोत्रियो विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चेति पंक्तिपावनाः ।
चातुर्विध्यो विकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥ आश्रमस्थास्त्रयो मुख्याः परिष-
त्स्यादशावरा ॥ उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्स आचार्यः । यस्त्वेकदेशं
स उपाध्यायश्च वेदांगानि ।

यह मनुष्य पंक्तिको पवित्रकरनेवाले हैं कि त्रिणाचिकेत पंचामि तीन सुपर्णको जो जानता है; जिसकी बुद्धि चार प्रकारकी हो, वाजसनेयी संहिताको जानता हो; ब्रह्म वेदका भागी जिसको संतान हो, छंद और ज्येष्ठ सामवेदको जाननेवाला मंत्रब्राह्मणका ज्ञाता जो धर्मोंको पंडता हो और जिसके ओर माता पिताका वंश वेदपाठी हो, जो विद्यावान् और स्नातक ये पंक्तिको पावन करनेवाले हैं; ब्रह्मचारी और चारों विद्याओंमें जो एकभी विद्याको जानता हो और छैः अंग जानता हो, धर्मशास्त्रको जो पढ़ावै और आश्रमोंमें स्थित तीन मुख्य २ पुरुष तथा कमसेकम होती है; जो शिष्यको यज्ञोपवीत कराकर जो चारों वेदोंको पढ़ावै वह आचार्य कहाता है और जो वेदका कोई भाग वा कोई अंग पढ़ावै उसे उपाध्याय कहते हैं;

आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीयाताम् ॥
क्षत्रियस्य तु तन्नित्यमेव रक्षणाधिकारात् ।

अपनी रक्षाके समयमें, और वर्णोंकी संकर अष्टताके समयमें ब्राह्मण और वैश्यभी शस्त्रोंको धारण करलें तो शस्त्रधारणमें दोष नहीं है, कारण कि, क्षत्रियको तो रक्षाकरनेका अधिकार है.

प्राग्वोदग्वासीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी चामणिवंधनात् । अंगुष्ठमूलस्योत्तरतो
रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामेदशब्दवत् द्विः प्रमुञ्ज्यात् खान्पद्भिः संस्पृशेत्
मूर्द्धन्यपो निनयेत् सव्ये च पाणौ व्रजंस्तिष्ठन् शयानः प्रणतो वा नाचामेत् ।
हृदयंगमाभिरद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कंठगाभिः क्षत्रियः शुचिः वैश्यो-
द्भिः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरेव चापुत्रद्वारापि यागास्तर्पणानि स्युः ।

और पूर्व वाँ उत्तरकी ओरको मुखकरके बैठे, पैर और हाथोंको पहुंचेतक धोकर अंगूठेकी जड़में जो रेखा उत्तर दिशाकी ओरको है वही ब्रह्मतीर्थ है उससे इसप्रकार आचमन करै, जिसप्रकार शब्द न हो, फिर दो बार मुखको पोंछकर कान आदि छिद्रोंमें जलका स्पर्श करै,

मस्तकपर जल लगावै, बाँधे हाथसे चलता हुआ खड़ा सोती प्रणेतृ हुआ आचमन न करे और बिना झागोंका जल जो हृदयतक पहुँचै ऐसे जलसे ब्राह्मण और जो जल कंठतक पहुँचै उससे क्षत्रिय, और जो मुखमें पहुँच जाय उससे वैश्य और जिसका स्पर्शही होतों हो उनसे स्त्री और शुद्ध पवित्र होतेहैं, जो पुत्र यज्ञ करताहै उससे वृत्ति होतीहै;

न वर्णगंधरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः । न मुख्या विप्रपुच्छिष्टं कुर्वन्ति । अनंगश्लिष्टाः । सुप्त्वा भुक्त्वा पीत्वा स्नात्वा चाचांतः पुनराचामेत् । वासश्च परिधाय आद्यौ संस्पृश्य यत्रालोमकौ न श्मश्रुगतौ लेपो दंतवदंतसंकेतौ यच्चांतर्मुखे भवेत् ॥ आचांतस्यावशिष्टं स्यान्नगिरित्रेव तच्छुचिः । परानथाचामयतः पदौ या विप्रुपा गताः ॥ भूम्यां तास्तु समाः प्रोक्तास्ताभिर्नोच्छिष्टभागभवेत् ॥ प्रचरन्नभ्यवहार्येषु उच्छिष्टं यदि संस्पृशेत् ॥ भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचांतः प्रचरेत्पुनः ॥ यद्यन्मीमांस्यं स्यात्तत्तदग्निः संस्पृशेत् ।

और जो जल, वर्ण, गंध, रस आदिसे दुष्ट हों, और जो अशुद्धभागमें आवे हों उनसे आचमन करना उचित नहीं, और जो मुखकी वृद्ध अंगपर स्पर्श न करें तौ वह उच्छिष्ट नहीं करती आचमनेके उपरान्त शयन, भोजन और जलपान करके फिर आचमन करे, वस्त्रोंको पहन कर आचमन करनेकी विधि है; और ओष्ठका स्पर्शकरके रोमोंके बिना श्मश्रुका लेप शुद्ध नहीं है, दांतोंमें लगी हुई वस्तु दांतोंकेही समान है, और जो मुखके भीतरे आचमनका शेष जल रहजाय तौ उसके निगलतेही मुखकी शुद्धि है, और जो दूसरोंको आचमन कराते समयमें अपने पैरोंपर जलकी वृद्ध गिर जाय तौ वह पृथ्वीके समान है, उनसे अशुद्धि नहीं होती; भोजनके स्थानमें परोसते समयमें यदि उच्छिष्टका स्पर्श होजाय, तौ हाथ के द्रव्यको पृथ्वीपर रखकर आचमन करे, फिर परोसे, जिस जिसमें अपवित्रताकी शंका हो उसी उसमें जलका छीटा दे;

श्वहताश्च मृगा वन्याः पातितं च खगैः फलम् ॥ वालैरनुपविद्धान्तः स्त्रीभिरुचरितं च यत् ॥ परिसंख्याय तान्सर्वाञ्छुचीनाह प्रजापतिः ॥ प्रसारितं च यत्पण्यं ये दोषाः स्त्रीमुखेषु च ॥ मशकैर्मक्षिकाभिश्च नीली येनोपहन्यते ॥ क्षितिस्थाश्चैव या आपो गवां प्रीतिकराश्च याः ॥ परिसंख्याय तान्सर्वाञ्छुचीनाह प्रजापतिरिति ।

छुत्तेका माराहुआ मृग, पक्षियोंका गिराया फल, बालकोंका लुआ; और स्त्रियोंका कियाहुआ आचरण, प्रजापतिने विचारकर इन सबको पवित्र कियाहै दूकानोंपर फैली हुई वेषनेकी वस्तु, स्त्रीके मुखके दोष, मच्छर, और मक्खी जो नीलपर बैठजाय; जिनसे गौ की वृत्ति हो, पृथ्वीपर स्थितजल इन सबको गणना करके प्रजापतिने शुद्ध कहाहै;

लेपं गंधापकर्षणम् । शौचममेध्यलिप्तस्य । अद्रिर्मृदा च तेजसमृण्मयदारवतांतवानां भस्मपरिमार्जनं प्रदाहत्क्षणनिर्णजनानि तेजसवदुपलमणीनां मणिवच्छंखशुक्तीनां दारुवदस्थानां रज्जुविदलचर्मणां चैलवच्छौचम् । गोवालैः फलचमसानां गौरसर्पपक्वलेन क्षौमजानाम् ।

में अशुद्ध वस्तु लगीहो उसकी शुद्धि जिससे दुर्गंध जाती रहै ऐसे लेप वा जल मट्टीसे होजातीहै; सुवर्णके, मट्टी, काठ, और तन्तुओंके पात्रोंकी शुद्धि क्रमसे भस्मके मांजने, पकाने छीलने और घोनेसेही होजाती है; पत्थर और मणियोंकी शुद्धि सुवर्ण आदिके पात्रोंके समान है, शंख और सीपोंके पात्रोंकी शुद्धि मणिके समान है और हड्डोंकी शुद्धि काष्ठके समान है, रस्सी, विदल, और चाम, इनकी शुद्धि वस्त्रोंके समान है, फल, यज्ञका पात्र, इनकी शुद्धि चँवरसे होतीहै, रेशमके वस्त्रोंकी शुद्धि सफेद सरसोंके खलसे होतीहै;

भूम्यास्तु संभार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थाने दोषविशेषात्प्राजापत्यमुपैति ।
पृथ्वीकी शुद्धि जलके छिड़कने, बुझाने तथा लीपने और खोदनेसे होजातीहै, और जो किसी स्थानमें अधिक दोष हो तौ प्राजापत्य व्रत करै.

अथाप्युदाहरन्ति । खननादहनाद्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि । चतुर्भः शुद्धयते भूमिः पंचमात्रोपलेपनात् ॥ रजसा शुद्धयते नारी नदी वेगेन शुद्धयति । भस्मना शुद्धयते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्धयति ॥ मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाशु-शोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्धयत पुनः पाकेन मृण्मयम् ॥ अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिज्ञानेन शुद्धयति ॥ अद्भिरेव कांचनं पूयेत तथा राजतम् ।

इसमेंभी यह वचन प्रामाणिक है कि खोदने जलने, वर्षामें गौओंके फिरनेमें इन चार प्रकारसे और पांचवें लीपनेसेभी शुद्धि होजाती है, खीकी शुद्धि रजसे है, नदीकी शुद्धि वेगसे है, काँसीके पात्रकी शुद्धि भस्मसे है, खटाई से ताँबेके पात्रकी शुद्धि है, मदिरा, मूत्र, विष्टा, कफ, राध, आंशु, रुधिर, जिस मट्टीके पात्रमें इनका स्पर्श होगयाहो वह अग्नि में पकानेसे भी शुद्ध नहीं होता, जलसे शरीरकी शुद्धि होती है, सत्यसे मनकी शुद्धि है, विद्या और तपस्याके द्वारा भूतात्माकी शुद्धि होतीहै, ज्ञानके उदयसे बुद्धि निर्मल होतीहै सुवर्ण और चांदीके पात्रकी शुद्धि जलसे होती है.

अंगुलिकनिष्ठिकामूले दैवं तीर्थम् । अंगुल्यग्रे मानुषम् । पाणिमध्य आग्ने-यम् । प्रदेशिन्यंगुष्ठयोरंतरा पित्र्यम् । रोचन्त इति सायंप्रातरशनान्यभिपूज-येत् । स्वदितमिति पित्र्येषु । संपन्नमित्याभ्युदयिकेषु ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कनिष्ठा उंगलीकी जड़में कायतीर्थ है; उंगलियोंके अग्रभागमें मनुष्यतीर्थ है अंगूठेके और प्रदेशिनीके बीचमें पितृतीर्थ कहाहै, सायंकाल और प्रातःकालमें अन्नकी पूजा करै, और ये रुचिकर अच्छे अन्नहैं ऐसी प्रशंसाकरे. और पितरोंके भोजनमें स्वदित, (अच्छाभोजन खाया) और विवाहआदिके भोजनमें “अच्छा संपन्नहुआ” ऐसा कहै ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ मापाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रकृतिविशिष्टं चातुर्वर्ण्यं संस्कारविशेषाच्च । ब्राह्मणोऽस्य सुखमासीद्वाहू राजन्यः
कृतः ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत । इति निगमो भवति ।
गायत्र्या छंदसा ब्राह्मणमसृजत । त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचि-
च्छंदसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ त्रिष्वेव निवासः स्यात्सर्वेषां सत्यम-
क्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ।

प्रकृति और संस्कारके भेदसे चारों वर्णोंका विभाग है, और इतना भेदभी है कि इस ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, और जंघाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं; गायत्री छंदसे ब्राह्मणकी सृष्टि है, और त्रिष्टुभछंदसे क्षत्रियोंकी सृष्टि है, और जगतीछंदके योगसे वैश्यकी सृष्टि, ईश्वरनेकी है, अर्थात् उपरोक्त वेदके मंत्रोंसे इनका संस्कार होता है, परन्तु शूद्रकी सृष्टि किसी छंदयोगसे नहीं की इससेही शूद्र संस्कारके हीन जानाजाता है, प्रथम तीन वर्णोंमेंही संस्कारकी स्थिति है, सम्पूर्ण वर्णही सत्यवादी क्रोधरहित दानी और हिंसारहित हुए, और जातकर्मही उनका धर्म है;

पितृदेवतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् । मधुपर्कं च यज्ञे च पितृदेवतकर्मणि ॥
अत्रैव च पशुं हिंस्यन्नान्ययेत्यत्र वीन्मनुः ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्प-
द्यते कश्चित् ॥ न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्माद्भागं वधोऽवधः ॥ अयापि ब्राह्म-
णाय वा राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेदेवमस्या-
तिथ्यं कुर्वतीति ॥

पितर, देवता, और अतिथि, इनकी पूजामें पशुकी हिंसा करै, कारण कि मनुका वह वचन है कि मधुपर्कमें यज्ञमें पितर और देवताओंके निमित्त जो कर्म हैं उनमें पशुकी हिंसा करै; तौ कुछ दोष नहीं है, अन्यथा हिंसा न करै; बिना प्राणियोंकी हिंसाकिये मांस कहीं उत्पन्न नहीं होता; प्राणियोंकी हिंसाभी स्वर्गकी देनेवाली है; इस कारण यागयज्ञमें जो प्राणियोंकी हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है, बिना हिंसाके हुए स्वर्ग नहीं मिलसकता, ब्राह्मण वा क्षत्रियके अभ्यागत होनेपर इनके लिये बड़ा धैल वा बड़ा वकरा पकावे; इसप्रकार इसके आतिथ्य करनेका नियम है;

उदकक्रियामशौचं च द्विवर्षात्प्रभृतिमृत उभयं कुर्यात् । दंतजननादित्येके ।
शरीरमग्निना संयोज्य । अनवेक्षमाणा आपोऽभ्यवयति ततस्तत्रस्था एव सव्यो-
त्तराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वति । अयुग्मा दक्षिणासुखाः । पितृणां वा
एषा दिक् वा दक्षिणा । गृहान्प्रजित्वा स्वस्तरे अहमश्नत आसीरन् ।
अशक्तौ कीतोत्पन्नेन वर्तेरन् ।

दो वर्षसे अधिक अवस्थामें मरे तौ जलदान और अशौच दोनोंही करने उचित हैं, और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं, कि यदि बालकके दांत जमआये हों तब वह मरजाय तौ दोनों कर्मोंका करना उचित है, मृतकके शरीरमें अग्निलगाकर चिताकी ओरकी बिनादेखे जलकी

ओरको चलाआवै और जलमें खड़ाहोकर दोनों हाथोंसे जलदान करै, और अयुग्म तथा दक्षिण दिशाको मुखकरै; कारण कि दक्षिण दिशा पितरोंकी है, फिर घरमें जाकर तीन दिनतक उपवासकर अच्छे आसनपर बैठे, शक्तिके न होनेपर मोल लेकर खाले;

दशाहं शावमाशौचं सर्पिण्डेषु विधीयते । मरणात्प्रभृतिदिवसगणना । सर्पिण्डता सप्तपुरुषं विज्ञायते । अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते । प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् तांश्च तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोर्वीजानि निमित्तत्वात् ।

सर्पिण्डियोंमें मरणअशौच दसदिनतक होता है, और मरनेके दिनसे दिनोंकी गिनतो ह, सात पीढीतक सर्पिण्ड जानेजातेहैं और कुमारी कन्याओंके मरनेका अशौच तीन पीढियोंमें तीन दिनतक होताहै, और विवाही हुई कन्याओंका आशौच जहां कन्या विवाहीहोवहीं होताहै; इसी भांति उन कन्याओंके जन्मसूतकमें भी भली भांति शुद्धि की इच्छाकरनेवालोंकी अशौच है, कारण कि, माता और पिता बीजके निमित्त हैं,

अथाप्युदाहरंति । नाशौचं सूतके पुंसः संसर्ग चेन्न गच्छति । रजस्तत्राशुचिर्ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥ ब्राह्मणो दशरात्रेण पक्षमात्रेण भूमिपः । वैश्यो विंशतिरात्रेण शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ अशौचं यस्तु शूद्रस्य सूतके वापि भुक्तवान् ॥ स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनिषु जायते ॥ अनिर्देशाहे पक्वान्नं नियोगाद्यस्तु भुक्तवान् ॥ कृमिर्भूत्वा स देहांते तद्विद्यामुपजीवति ।

इस विषयमें यह वचन है कि, यदि सूतकमें स्पर्श नः करै तो पुरुषको अशौच नहीं है, कारण कि जन्मसूतकमें रज अशुद्ध है और वह रज पुरुषमें नहीं है ब्राह्मण दश दिनमें, क्षत्रिय, एक पक्षमें, वैश्य बीसरात्रिमें और शूद्र, एक महीनेमें शुद्ध होताहै, जो मनुष्य शूद्रके अशौच वा सूतकमें भोजन करताहै, वह पुरुष नरकोंमें जाता है या सर्पादि योनिमें उत्पन्न होताहै जो निमांत्रित होकर दस दिनके भीतर भोजन करै, वह कौड़ाहोकर उसी वृत्तिसे जीविका चिर्वाह करताहै,

द्वादशमासान्द्वादशार्द्धमासान्वासंश्रितामधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सर्पिण्डानां त्रिरात्रमाशौचम् । सद्यः शौचमिति गौतमः । देशान्तरस्थे प्रेते ऊर्ध्वं दशाहान्नैकरात्रमाशौचम् । आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्प्रियते पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः ।

उस पापसे मनुष्य वारह वा छैः महीनेतक उपवासकरे सांहिताका पाठकरनेसे पवित्र होताहै, यह शास्त्रसे जानागया है, कि दो वर्षसे कम अवस्थाका बालक मरजाय वा गर्भपात होजाय तो सर्पिण्डोंको तीन रात्रिका अशौच होताहै; और गौतम ऋषिका यह वचन है कि उसी समय शुद्धि होजातीहै,

भूपयतिश्मशानरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्य सशिरा अभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

राजा संन्यासी श्मशान रजस्वला, सूतिका, और अशुद्ध इनका स्पर्शकर शिर सहित जल-
से स्नान करै तब पवित्र होता है ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अस्वतन्ना स्त्री पुरुषप्रधाना अनग्निरनुदकया च । अनृतमिनि विज्ञायते ।

पुरुष स्वतंत्र है और स्त्री पराधीन है, अग्निहोत्रसे हीन और जप तथा दानके अयोग्य है
झूठ, रूप है यह शास्त्रसे जाना जाता है; ॥

अथाप्युदाहरंति । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥ पुत्राश्च स्याद्विरे
भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥ तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

इस विषयमें यह भी वचन है कि बाल्यावस्थामें पिता रक्षा करता है, यौवनव्रतस्थामें
पति रक्षा करता है, और वृद्धावस्थामें स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुत्र है, स्त्री कभी स्वाधीन
नहीं हो सकती; और प्रायश्चित्त तथा क्रीडाके समयमें स्त्रीको पतिका अवलंबन कड़ा है;

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ त्रिरात्रं रजस्वलाऽशुचिर्भवति ।

सा नाज्ज्यान्नाभ्यंज्यान्नाप्सु स्नायात् । अथः शयीत दिवा न स्वप्यात् नाग्निं
स्पृशेत् न रज्जुं प्रमृजेत्त दंतान्धावयेत् मांसमश्नीयात् न महान्निरीक्षयेत् न
हसेत् किंचिदाचरेत्त्रांजलिना जलं पिबेत् न खर्परेण वा न लोहितायसेन वा
विज्ञायते हींदस्त्रिशीर्षाणम् त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मना गृहीतो मन्युत इति । तं
सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन् भ्रूणहन् भ्रूणहन् भ्रूणहन्निति स स्त्रिय उपाधावत्
अस्पैमे ब्रह्महत्यायै तृतीयभागं गृहीतेति गत्वैवमुवाच ता अशुवन् किन्नोभूदिति
सोब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति ता अशुवन्नृतौ प्रजां विंदामह इति कामं मा विजानी
मोऽलं भवाम इति ययेच्छया आपसवकालात्पुरुषेण सह भैयुनभावेन संभवाम
इति च एषोस्माकं वरस्तथेन्द्रोक्तास्ता प्रतिजगृहुः तृतीयं भ्रूणहत्यायाः सैषा
भ्रूणहत्या मासिमास्याविर्भवति । तस्माद्रजस्वलान्नं नाश्नीयात् । अतश्च
भ्रूणहत्याया एवैतद्रूपं प्रतिमुच्यस्ते कञ्चुकमिव ।

ऐसा कहा है कि, महीने २ में ऋतुमती होनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होता है; वह स्त्री
रजस्वला होनेपर तीनदिनतक अशुद्ध रहती है, रजस्वला स्त्री नेत्रोंमें अंजन न लगावै, छवटन
न करे, जलमें स्नान न करे, पृथ्वीपर शयनकरे, अग्निका स्पर्श न करे, और रस्सीको न
धोवै, दांतोंको न धोवै मांसको न खाय घरको न देखे, हँसे नहीं और कुल कर्म न करे छोटे
पात्रमें अंजुलिसे जल न पिये, और लोहेके पात्रसेभी जल पीनेका निषेध है यह शास्त्रसे
जानागया है, कि इन्द्रने तीन शिरवाले त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको मारकर अपनेको पापसे
गृहीत माना तब उस इन्द्रको सब प्राणियोंने इस प्रकार कोशा कि हे ब्रह्महत्या करनेवाले ३.
तब वह इन्द्र स्त्रियोंके निकट जाकर यह बोला कि इस मेरी ब्रह्महत्याका तीसरा पापका
भाग तुम ग्रहण करो, स्त्रियोंने यह सुनकर कहा कि हमें क्या होगा, तब इन्द्रने कहा कि वर

मांगो तव ि ने कहा कि हमें ऋतुकालमें सन्तानकी प्राप्ति हो तव इन्द्रने कहा कि हम देतेहैं और प्रसन्न होकर कहतेहैं कि तुम्हें इच्छानुसार सन्तानकी प्राप्ति हो, फिर योने कहा कि गर्भके रहनेपरभी सन्तान होनेके समयतक हम पुरुषके साथ मैथुन करने एक धर हमको यहभी मिले; तव इन्द्रने कहा कि “अच्छा” ऐसाही होगा, तव वह स्त्रियें उस हत्याका तीसरा भाग ग्रहण करतीहुई, प्रत्येक महीने २ में वही हत्या प्रगट होतीहै; इसकारण रजस्वला स्त्रीका अन्न नहीं खाना। इसी कारण रजस्वला स्त्री रजरूपी ब्रह्महत्याको महीने महीनेमें छोडके मुक्त होतीहै जैसे सर्प केंचलीको छोडके मुक्त होजाताहै; तदादुर्ब्रह्मवादिनः । अंजनाभ्यंजनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं तद्धि स्त्रियोऽन्नमिति । तस्या न च मन्यन्ते आचारा याश्च योषित इति सेयमुपयाति । उदक्यायास्त्वासते तेषां ये च केचिदनमयः गृहस्थाः श्रोत्रियाः पापाः सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यही ब्रह्मवादियोंने कहाहै कि; रजस्वला स्त्री अंजन न लगावै, उबटन न लगावै, इसनिमित्त ऐसी स्त्रीका अन्न लेना उचित नहीं; इसकारण उस समय उस अवीरा स्त्रीको इन काप्योंमें ब्रह्मवादियोंकी सम्मति नहीं है । जो रजस्वला स्त्रीके साथ संभोग करतेहैं, जो अभिहोत्रसे हीन हैं, और जो वेदपाठी हैं, वह गृहस्थी होकर भी सदा शूद्रके समान हैं ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥ हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १ ॥ नैनं प्रयाति न ब्रह्म नामिहोत्रं न दक्षिणा ॥ हीनाचारश्रितं अष्टं तारयन्ति कथंचन ॥ २ ॥ आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षडभिरंगैः ॥ छंदांस्तेन मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव तापतप्ताः ॥ ३ ॥ आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडंगा अखिलाः सपक्षाः ॥ कां प्रीतिमुत्थापयितुं समर्था अंधस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥ ४ ॥ नैनं छंदांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं मायया वर्त्तमानम् ॥ तत्राक्षरे सम्यगधीयमाने पुनाति त यथावदिष्टम् ॥ ५ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च स व्याधितोल्पायुरेव च ॥ ६ ॥ आचारात्फलते धर्ममाचारात्फलते धनम् ॥ आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हंत्यलक्षणम् ॥ ७ ॥ सर्वलक्षणहीनोपि यः सदाचारवान्नरः ॥ श्रद्धधानोनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

यह निश्चय है कि आचारही सबका परम धर्म है, आचारअष्ट मनुष्य इसलोक आर पर नष्ट होताहै जो मनुष्य आचारसे रहित और अष्ट हैं उनको तपस्या, वेदाध्ययन, अभिहोत्र और दक्षिणा यह किसी प्रकारभी उद्धार नहीं करसकते; यदि छैःहों अंगोंसहित

वेदको पढ़ता हुआ मनुष्य आचारहीन होनेके कारण किसी प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता जिस प्रकार अग्निसे तपाये हुए घोंसलेको पक्षी त्याग देते हैं उसी प्रकार आचारसे हीन ब्राह्मणको मृत्युके समयमें वेद त्याग देते हैं; आचारसे हीन मनुष्यको सांगोपांग वेद और छः ऋगं अंग किस प्रीतिको उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं, जिस भांति अंधेको सुन्दर स्त्री, और मायासे वर्तमान और मायावी मनुष्यको दुःखसे वेद उसका चन्दार नहीं कर सकते, परन्तु भली भाँतिसे पढ़ा हुआ एक अक्षरभी वेदका मनुष्यको पवित्र करनेवाला है, दुराचारी मनुष्य लोकमें निन्दित और सर्वदा दुःखका भागी है वह रोग ग्रस्त और अस्त्रायु होता है; आचारका फल धर्म है, आचारका फल धन है, आचारसे सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है, आचार दुष्ट लक्षणोंका नाश करता है, जो मनुष्य सम्पूर्ण लक्षणोंसे हीन होकर भी केवल एक सदाचारके करनेवाला है; श्रद्धालु और निश्चिन्त वह मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है,

आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्मविदा तु कार्याः ॥

वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव धनान्युषी गुप्ततमे तु कार्ये ॥ ९ ॥

धर्मज्ञ मनुष्य, भोजन, गमन, क्रीडा, वाणी, बुद्धि, वीर्य, तप और धन इनको गुप्त भावसे करे; ॥

उभे सूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्याद्बुद्धिमुखः ॥ रात्रौ कुर्यादक्षिणस्थ पंच ह्यायुर्न हीयते ॥ १० ॥ प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च प्रति गां प्रति च द्विजम् ॥ प्रति सोमोदकं संध्यां प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ११ ॥ न नद्यां मेहनं कार्यं न भस्मनि न गोमये ॥ न वा कृष्टे न मार्गे च नोत्ते क्षेत्रे न शादले ॥ १२ ॥ छायायामंधकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणवायवभयेषु च ॥ १३ ॥ उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्यात्त्वानमनुद्धृताभिरपि ॥ आहरे-
न्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससिकृतां तथा ॥ १४ ॥ अंतर्जले देवगृहे वल्मीके मृषिकस्थले ॥ कृतशीचावशिष्टा च न ग्राह्याः पंचः मृत्तिकाः ॥ १५ ॥ एका लिंगे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके ॥ पंच पाने दशकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ १६ ॥ एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥

मलसूत्रका त्याग दिनमें उत्तरकी ओरको मुखकरके करे और रात्रिमें दक्षिणको मुखकरके करे, कारण कि ऐसा करनेसे आयुकी हानि नहीं होती; अग्नि, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, चन्द्रमा, जल, संध्या इनके सम्मुख जो मलकात्याग करता है उसकी बुद्धि नष्ट होजाती है, और नदी, भस्म, गोबर, जुता हुआ खेत; मार्ग और घोड़ा खेत, वास, इनमें मलका त्याग न करे छाया वा अंधकारके समयमें रात्रि अथवा दिनमें और प्राणोंकी हिंसामें अपनी इच्छानुसार मुखकरके मलका त्यागकरे, जलको आप निकालकर स्नान करे, घिना निकाले जलसे किनारेपर मट्टी अथवा रेत बाहर निकालकर स्नान करले, जलके भीतरकी, देवताके स्थानकी मट्टी बौमीकी मट्टी चुहोंकी खोदी हुई मट्टी और शौचसे बची यह पांच प्रकारकी मट्टी लेनी उचित नहीं लिंगमें एकवार, बाँधे हाथ तीन बार इसके पीछे दोनों हाथोंमें दोवार मट्टी लगावे, गुदामें पाँचवार, बाँधे हाथमें दसवार और फिर दोनों हाथोंमें सातवार मट्टी लगावे

गृहस्थीको इसप्रकार शौच करना कर्तव्य है इससे दुगुना ब्रह्मचारीको, तिगुना वानप्रस्थको, और यतिको चार गुना करना कर्तव्य है,

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ॥ द्वात्रिंशच्च गृहस्थस्य अमितं ब्रह्म-
चारिणः ॥ १८ ॥ अनङ्गवान्ब्रह्मचारी च आहिताग्निश्च ते त्रयः ॥ भुञ्जाना
एव सिद्ध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥ १९ ॥ तपोदानोपहारेषु व्रतेषु निय-
मेषु च ॥ इज्याध्ययनधर्मेषु यो नासक्तः स निष्क्रियः ॥ २० ॥

आठ ग्रास यतिका भोजन है. सोलह ग्रास वानप्रस्थका भोजन है, वत्तीस ग्रास गृह-
स्थीका भोजन है; ब्रह्मचारीके भोजनका नियम नहीं है, वैल ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ यह
तीनों भोजनसेही सिद्धिको प्राप्त होतेहैं, और भोजन न करनेवाले इनकी सिद्धि नहीं है, तप,
दान, व्रत, उपहार, नियम, यज्ञ, पढाना, धर्म जो इनमें आसक्त न हो वह निष्क्रियहै,

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ॥ विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेत-
द्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २१ ॥ सर्वत्र दाताः श्रुतिपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे नि-
वृत्ताः ॥ प्रतिग्रहे संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २२ ॥

योग, तप, इन्द्रिय दमन, दान, सत्य, शौच, दया, वेद, विद्या, विज्ञान, आस्तिक्य, यह
लक्षण ब्राह्मणके हैं, जो ब्राह्मण सबजगह इन्द्रियोंको दमन करनेवाले हैं; और जिनके कान
वेदसे पूर्ण हैं, जो जितेन्द्रिय हैं जो प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त हैं और जो प्रतिग्रह लेनेमें
संकोच करतेहैं वह ब्राह्मण उद्धारकरनेको समर्थ हैं.

असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः ॥ चत्वारः कर्मचांडाला जन्मत-
श्चापि पंचमः ॥ २३ ॥ दीर्घवैरमसूयां च असत्यं ब्रह्मदूषणम् ॥ पैशुन्यं निर्द-
यत्वं च जानीयाच्छूद्रलक्षणम् ॥ २४ ॥

निंदक, चुगल, कृतघ्नी, क्रोधी यह चारों जने कर्मसे चांडाल हैं, और इसके अतिरिक्त
पांचवां जातिचांडाल है, अधिक वैर, निन्दा, झूठ, ब्राह्मणको दोष लगाना, चुगलपन, निर्द-
यता यह सब लक्षण शूद्रके जानने;

किंचिद्वेदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् ॥

पात्राणामपि तत्पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥ २५ ॥

कोई पात्र वेदसे हैं और कोई पात्र तपसे हैं और पात्रोंका भी पात्र वह है कि जो शूद्रके
अन्नको नहीं खाताहै,

शूद्रान्नरसपुष्टांग अधीयानोपि नित्यशः ॥ जुह्वित्वापि यजित्वापि गतिमूर्ध्वा न
विंदति ॥ २६ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥ स भवेच्छू-
द्रो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ २७ ॥ शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं यो वि-
गच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हको भवेत् ॥ २८ ॥

जिसका शरीर शूद्रके अन्नसे पुष्ट है वह चाहै नित्य वेद पढताहो, और अग्निहोत्र तथा यज्ञकोभी करताहो परन्तु तौभी वेकुंठको नहीं प्राप्त होसकता; जिस ब्राह्मणके मरतेसमय शूद्रका अन्न उदरमें रहजाताहै, वह सूकरकी योनि पाताहै, अथवा शूद्रके कुलमें जन्म लेताहै; शूद्रके अन्नको भोजन कर मैथुन करनेसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह पुत्र जिसके अन्न खानेसे उत्पन्न हुआहै उसका है, इसीकारण वह स्वर्गके जानयोग्य नहींहै;

स्वाध्यायाह्वं योनिमित्रं प्रज्ञातं चैतन्यस्य पापभीरुं बहुज्ञम् ॥

स्त्रीयुक्तान्नं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्षातं तादृशं पात्रमाहुः ॥ २९ ॥

जो वेदके पढनेमें युक्त है, जातिका मित्र, शांतस्वभाव, चैतन्य (ब्रह्म) में स्थिति, पापसे डरनेवाला, बहुत जन और स्त्रीकी पालन पोषण करना, धर्मज्ञता, गौओंकी रक्षा करना, और जो व्रतोंसे थकाहो उसको पात्र कहतेहैं.

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ विनश्येत्पात्रदौर्वल्यात्तच्च पात्रं
रसाश्च ते ॥ ३० ॥ एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमथं महीं तिलान् ॥ अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दारुवत् ॥ ३१ ॥

कच्चे पात्रमें रक्खाहुआ जो दूध, दही तथा सहत है जिसभाँति पात्रकी दुर्बलतासे वह पूर्वोक्त रस और वह पात्र नष्ट होजाताहै उसीप्रकार जो मूख, गौ, सुवर्ण, वस्त्र, घोड़ा, मृध्नी, तिल, जो इनको ग्रहण करताहै वह काष्ठके समान भस्म होजाताहै;

नागं नखं च वादित्रं कुर्यान्नचापौजलिना पिबेत् ॥ न पादेन न पाणिना वा
राजानमभिहन्यात् । न जलेन जलं नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् न फलेन फलं
न कल्कपुटको भवेत् । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् ।

अंग और नखोंसे वाजा न बजावै. हाथकी अँगुलीसे जल न पिये, और राजाको पैर तथा हाथसे न मारै; और जलसे जलको न मारै, ईंट मारकर फलको न तोड़े, कल्कको दोनोंमें न रक्खे, म्लेच्छोंकी भाषा न सीखे;

अथाप्युदाहरन्ति । न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत् । न चांगचपलो
विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥ पारंपर्यागतो येषां वेदः सपरिवृंहणः ॥ ते
शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाःश्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ यन्न संतं नचासंतं नाश्रुतं न बहुश्र-
तम् ॥ न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मण इति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस विषयमें यहभी कहाहै कि, हाथ पैर नेत्र आदि अंग इनको चपल न करै, और यह शिष्टोंका वचन है कि अंगप्रत्यंगसम्पन्न वेद जिन ब्राह्मणोंके वंशमें परंपरासे चला आया है, उन ब्राह्मणोंको वेदके प्रत्यक्ष करनेवाले जानना, और जो सत् असत्को और वेदके पाठक अपाठकको और सदाचारी और असदाचारी जो इनको जानताहै, अर्थात् जो ब्रह्म-
ज्ञानी हैं वही ब्राह्मण है वही यथार्थ ब्राह्मण है ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ मापाटीकायां पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः । तेषां वेदमधीत्य वेदो वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्योपनिक्षेप्तुमावसेत् ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् आशरीरविमोक्षणात् । आचार्यं प्रमृते आर्षिं परिचरेत् । विज्ञायते हि तवामिराचार्यं इति । संयतवाक्चतुर्थं षष्ठमकालभोजी भैक्षमाचरेत् । गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुहं गच्छंतमनुगच्छेत् । आसीनं चानुतिष्ठेत् । शयानं चासीन उपविशेत् । आहूताध्यायी सर्वभैक्ष्यं निवेद्य तदनुज्ञया भुंजीत खट्वाशयनदंतप्रक्षालनाभ्यंजनवर्जस्तिष्ठेत् । अहनि रात्रावासीतत्रिःकृत्वोऽभ्युपेयादपोभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ, और संन्यास यह चार आश्रम हैं, इन चारोंके बीचमें ब्रह्मचारी एक वेद वा दो वेदोंको पढ़कर जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट नहीं हुआहै वह अपने शरीरको निवेदन करनेके लिये गुरुके घरमें निवास करै; और जबतक शरीरपात न हो तबतक गुरुकी सेवा करता रहै; आचार्यके परलोक जानेपर अग्निकी सेवा करै, कारण कि यह शास्त्रसे विदित हुआहै कि अग्निही तेरा आचार्य है, वचनको रोक कर चौधे, छठे वा आठवें समयमें भोजन करै, और भिक्षा मांगै, गुरुके आधीन रहै, जटा धारण करै, या केवल चोटी रखै, गुरुक चलनेपर आप पीछे २ चले और गुरुके बैठनेपर आप बैठे, गुरुके शयन करनेके उपरान्त पीछे आप शयन करै, जब गुरु पढ़नेके लिये बुलावै तो पढ़नेको जाय; जो भिक्षा मांगकर लावै वह प्रथम सब गुरुदेवको निवेदन कर आज्ञा ले पीछे आप भोजन करै, शय्यापर शयन, दन्तधावन, और उबटन इनको त्यागदे, दिन रात गुरुके यहां रहे, प्रतिदिन तीनवार स्नान करै.

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणालुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्षमस्पृष्टमैशुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विदेत् । पंचमीं मातृवंधुभ्यः सप्तमीं पितृवंधुभ्यः । वैवाह्यमग्निमिध्यात् । सायमागतमतिथिं नावरुंध्यात् । नास्यानशनन् गृहे वसेत् । यस्य नाश्नाति वासार्थो ब्राह्मणो गृहमागतः ॥ सुकृतं तस्य यत्किंचित्सर्वमादाय गच्छति ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥ अनित्यं हि तिथिर्यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते । नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा ॥ काले प्राप्ते अकाले वा नास्यानशनन् गृहे वसेत् ॥

गृहस्थी होनेके समयमें, क्रोध और हर्षको रोकना आवश्यक है, गुरुकी आज्ञा लेकर समावर्तनस्तान कर, अन्य गोत्रकी जिसको मैथुनका स्पर्श न हुआ हो, जो युवती तथा अपनी समान हो, और माताके बंधुओंसे पाँचवीं और पिताके बन्धुवोंसे जो सातवीं हो ऐसी स्त्रीके साथ विवाह करे फिर वैवाहिक अग्निको प्रज्वलित करे, सन्ध्याके समय जो अतिथि आवै उसे अन्यत्र न जानेदे, गृहस्थीके घरमें बिना भोजनके अतिथि निवास न करे, जिस गृहस्थीके घरमें प्रयोजनवाला आयाहुआ ब्राह्मण भोजन नहीं करताहै, उसका जो कुछ पुण्य है उस सबको लेकर चला जाताहै, जो ब्राह्मण एक रात्रितक रहताहै उसीको अतिथि कहते हैं. इसकारण उसकी तिथि अनियत है इसी कारणसे उसे अतिथि कहाहै, एक ग्रामका और सङ्ग आयाहुआ अतिथि नहीं होता, समय वा असमय पर आवै परन्तु उसे भूखा न रखे,

श्रद्धाशीलोऽस्पृहालुरलमग्न्याधेयाय नानाहिताग्निः स्यात् । अलं च सोमपा-
नाय नासोमयाजी स्यात् । युक्तः स्वाध्याये प्रजनने यज्ञे च गृहेष्वभ्यागतं
प्रत्युत्थानासनशयनवाग्भिः सनृताभिर्मानयेत् । यथाशक्ति चान्नेन सर्वभूतानि ।

गृहस्थी श्रद्धालु, और अलोलुप रहै, अग्निहोत्रके लिये समर्थ है इसकारण गृहस्थी अग्नि-
होत्रसे हीन न रहै, सोमपानमें समर्थ होनेपर सोमयज्ञसे हीन न रहै, स्वाध्याय, सन्तानो-
त्पादन, और यज्ञ, यह गृहस्थीके लिये विशेष करके करने कर्तव्य हैं, घरमें आयेहुएको देख
उठना, आसन, शय्या, कोमल वचन, इनसे माने शक्तिके अनुसार अन्नसे गृहस्थीही सब
भूतोंको समान है,

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्य-
ते ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यांति संस्थितिम् ॥ एवमाश्रमिणः सव
गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥ यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः ॥ एवं
गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवंति भिक्षवः ॥ नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वा-
ध्यायी पतितान्नवर्जी ॥ ऋतौ गच्छन्विधिवच्च जुह्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलो-
कात् ब्रह्मलोकादिति ॥

इति वसिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गृहस्थीही यज्ञकरताहै, गृहस्थीही तप करताहै, इसकारण चारों आश्रमोंके बीचमें गृहस्था
श्रमही श्रेष्ठ है, जिसभांति सम्पूर्ण नदियें समुद्रमें मिलजातीहैं, उसीप्रकार सम्पूर्ण आश्रम
गृहस्थाश्रममें मिले रहतेहैं; जिसभांति सम्पूर्ण प्राणी जीवात्माके आश्रयसे जीवित रहते हैं,
उसीप्रकार भिक्षासे जीविका करनेवाले गृहस्थीके आश्रमके बलसे गृहस्थीका आश्रयकर जीवित
रहतेहैं, जो नित्य तर्पणकरै, जो नित्य यज्ञोपवीतको धारण करै, जो नित्य वेदको पढता रहै
पतितके अन्नका त्याग करै, ऋतुकालमें स्त्रीसंसर्ग करै, विधिसे हवन करै, वह ब्राह्मण ब्रह्म-
लोकसे पतित नहीं होता ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वानप्रस्थो जटिलश्रीराजिनवासा ग्रामं च न विशेत् । न फ कृष्टमधितिष्ठेत् ।
अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत । ऊर्ध्वरेताः क्षमाशयो मूलफलभैक्षेणाश्रमागतम-
तिथिमर्चयेत् । दद्यादेव न प्रतिगृह्णीयात् । त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् । श्राव-
णकेनाभिमाधायाहिताग्निः स्याद्वृक्षमूलिकः ऊर्ध्वं षड्भ्यो मासेभ्योऽनगिरनि-
केतो दद्यादेवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानंत्यमानंत्यम् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वानप्रस्थ जटा धारण करे रहै, चौरवस्त्र तथा मृगछाला धारण करै ग्राममें प्रवेश न करै,
हलसे जुते हुए अन्नको न खाय, विना जुता अन्न तथा फल मूल इनको इकट्ठा करता रहै,
ऊर्ध्व रेता रहै, पृथ्वीपर शयन करै, जो आश्रममें अतिथि आवै उसकी पूजा फल मूलसे करै,
छैः महीनेके उपरान्त अग्नि और स्थानको त्याग दे, देवता, पितृ, मनुष्य इनको अवश्य दे,
वह अनन्त स्वर्गको जाता है ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १० . :

परित्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत् ॥ अयाप्युदाहरंति । अभयं
सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो द्विजः ॥ तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु
विद्यते ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यस्तु विवर्तते ॥ हंति जातानजालांश्च प्रति-
गृह्णाति यस्य च ॥ संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ॥ वेदसंन्यासतः
शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ॥ उप-
वासात्परं भैक्ष्यं दयादानाद्विशिष्यते ॥

संन्यासी सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर प्रस्थान करै, इस विषयमें पंडितोंने कहा है, कि
जो ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर विचरण करता है, उसे कभी किसी प्राणीसे
भय नहीं होता, सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय देकर जो स्थिति करता है उसे किसी प्राणीके
निकट भय नहीं रहता; और जो ऐसा संन्यासी जिस गृहस्थीसे कुछ भी प्रतिग्रह करता
है वह उस गृहस्थीके जात और अजात तथा पिछले और अगले सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करता
है, एक अक्षर (ॐ) ही श्रेष्ठ वेद है और प्राणायाम परम तप है, उपवास करनेसे भिक्षाका
अन्न श्रेष्ठ है, दानकी अपेक्षा दया प्रधान है ।

मुंडोऽममत्वपरिग्रहः सप्तागाराप्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्ष्यम् । विधूमे सन्नमुसले
एकशाटीपरिवृतोऽजिनेन वा गोप्रलूनैस्तृणैर्वैष्टितशरीरः स्थंडिलशाय्यनित्यां
वसतिं वसेत् । तथा ग्रामांते देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसाज्ञानमधी-
यमानः अरण्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥

मुंडित, ममता और परिग्रह शून्य होकर रहै; “ आज उस २ के घर जाऊंगा ” ऐसा
चिन्तन मनमें न कर सात घरोंसे भिक्षा मांगै, एक घोंटीसे ढका अथवा मृगछाला और

गौके वालोंसे जिसका शरीर छिपा हो, वह संन्यासी पृथ्वीपर शयन करै; और अनित्य वसतीमें निवास करै, और इसीप्रकार ग्रामके निकट देवमंदिर वा शूने घर तथा वृक्षके नीचे निवास करै और मनसे ज्ञानको पढ़ै; जिस स्थानपर ग्रामके पशु हों उस स्थानपर विहार न करै ।

अथाप्युदाहरंति । अरण्यनित्यस्य जितेंद्रियस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ॥

अध्यात्मचिंतागतमानसस्य ध्रुवा ह्यनावृत्तिरूपेक्षकस्य ॥ अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ता-

चारः अनुमत्त उन्मत्तवेषः ॥

इसमें यह भी वचन है कि, वनमें नित्य निवास करै, जित्तेन्द्रिय होकर रहै, जिस संन्यासीको इन्द्रियोंसे प्रीति न हो और जिसका मन आत्माकी चिन्तामें लगा रहै, उसे जन्म मरणका अभाव है, जिसके चिह्न प्रगट न हों और आचरण प्रगट हों, और जो उन्मत्त हो, जिसका वेष उन्मत्तकी समान हो ।

अथाप्युदाहरंति । न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि लोकग्रहणे रतस्य ॥

न भोजनाच्छादनतत्परस्य नचापि रम्यावसथप्रियस्य ॥ न चोत्पातनिमित्ता-

भ्यां न नक्षत्रांगविद्यया ॥ अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभेचैव न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रा-

संगाद्भिर्निर्गतः ॥ न कुट्यां नोदके संगे न चैले न त्रिपुष्करे ॥ नागारे नासने

शेते यः स वै मोक्षवित्तमः ॥

और यह भी कहा है कि, जो केवल वाक्पांडित्यमें तत्पर है (स्वयं स्वविहित क्रियाको नहीं करता), जो लौकिक व्यवहारमेंही तत्पर रहता है (पारमार्थिक ईश्वर प्रणिधानादि नहीं करता), जो केवल खान पान वस्त्र पात्रादिकोंमेंही आसक्त रहता है और उत्तम मठ मन्दिर और सुन्दर ग्राम आदिकोंमेंही तत्पर रहता है उस संन्यासीका मोक्ष नहीं होता है । संन्यासीने लौकिक व्यवहारसे उपजीविका सम्पादन करनेके लिये दिव्य भौम और आंतरिक्ष वृष्टि विद्युत् तेजी मन्दी वगैरह वातें, तथा नक्षत्र विद्या ज्योतिष शास्त्रानुसार तिथि नक्षत्र जन्म-पत्रिका आदिकोंके फल, वैद्यकीय औपधियोंसे चिकित्सा, धर्मशास्त्रादिके अनुसार विधि और प्रायश्चित्तादिकोंका कथन, किसीका कथन सुनके अपने भी अनुवाद करके कहना, ऐसी वृत्ती रखके भिक्षा मिलानेकी इच्छा करना नहीं, भिक्षा नहीं मिले तो खेद न करै भिक्षा मिलजाय तो हर्ष भी न करै केवल अपने प्राणयात्रा जितने अन्नादिसे होसके उतनेसे निर्वाह करले, इंद्रियोंके विषयोंमें आसक्त न रहे, जो संन्यासी कुटीमें, उदकमें, दूसरेके संगमें, वस्त्रके ऊपर त्रिपुष्करमें, घरमें आसनके ऊपर शयन नहीं करता वह मोक्षका तत्त्व जाननेवाला तत्त्वज्ञ मोक्षगामी पुरुष है ।

लक्षणकुले वा य भेत्तद्भञ्जीत सायं मधुमांससर्पिःपरिवर्जं यतीन्साधून्वा

गृहस्थान्सायंप्रातश्च तृप्येत् । ग्रामे वा वसेत् अजिह्वाः अशरणः असंक कः ।

नचेंद्रियसंयोगं कुर्वीत केनचित् । उपेक्षकः सर्वभूतानां हिंसानुग्रहपरिहारेण

पै न्यमत्सराभिमानाहंकाराश्रद्धानार्जवात्म चपरगर्हादंभलोभमोहक्रोधविवर्ज-

नं सर्वाश्रमिणां धर्म इष्टो यज्ञोपवीत्युदककमंडलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलान्न-
पानवर्जो न हीयते ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकात् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथवा संन्यासीने ब्राह्मणोंके घरमें भिक्षा मांगना वहांसे जो मिले वह भक्षण करै भीठा, मांस, घी, इनको त्याग दे, गृहस्थी, संन्यासी और साधुओंको प्रसन्न होकर तृप्त करता रहै, अथवा ग्राममें निवास करै कपटी न हो, शरण न रक्खै, दुर्जन न हो, इंद्रियोंका संयोग न करै, सब प्राणियोंकी हिंसा और अनुमहको त्याग कर उपेक्षा करता रहै, चुगलपन, मत्सरता, अभिमान, अहंकार, अश्रद्धा, कठोरता, मनका शोक, निंदा, दंभ, लोभ, मोह, क्रोध, इन सबको त्याग दे, यह सब आश्रमवालोंका इष्ट धर्म कहा गयाहै कि यज्ञोपवीतको धारण करे रहै, जलका कमंडल हाथमें रक्खै, पवित्र रहै, और ब्राह्मण शूद्रके अन्नको त्यागदे; इति आचरण करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

षट्कर्मा गृहदेवताभ्यो वलिं हरेत् । श्रोत्रियायान्नं दत्त्वा ब्रह्मचारिणे वासं-
तरं पितृभ्यो दद्यात्ततोऽतिथिं भोजयेत् । स्वेष्टायासमानुपूर्व्येण स्वगृह्याणां
कुमारवालवृद्धतरुणप्रभृतींस्ततोऽपरा नृह्यान् । श्वचांडालपतितवायसेभ्यो भूमौ
निर्वपेच्छूदेभ्य उच्छिष्टं वा दद्याच्छेषं यतो भुंजीत । सर्वोपयोगेन पुनः पाको
यदि निवृत्ते वैश्वदेवेतिथिरागच्छेद्विशेषेणात्मा अन्नं कारयेद्विजातयेद्वि वैश्वान-
रः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहम् । तस्मादपानमन्यत्र वर्षाभ्यस्तां हि शान्ति-
जनां विद्मिरिति तं भोजयित्वोपासीतासीमान्तादनुब्रजेदनुज्ञाताद्वा ।

छैः कर्मोंमें रत ब्राह्मण घरके देवताओंको वलिप्रदान करै । वेदपाठी और ब्रह्मचारीको अन्नदेकर फिर पितरोंको अन्नदे, इसके पीछे अतिथिको भोजन करावै, इसके पीछे बंधु बांध-
वोंको भोजन करावै, फिर वृद्ध, युवा, कुमार, बालक तथा घरके सेवकको जिमावै, इसके पीछे कुत्ते, चांडाल पतित तथा कौआआदिको भोजन करावै, फिर पृथ्वीपर वलि दे, और शूद्रोंको उच्छिष्ट दे तथा शेष अन्नको आप सावधानीसे भोजन करै; सब अन्नके उपभोग होजानेपर फिर पाककर, यदि वैश्वदेवकी निवृत्तिपर अतिथि आजाय तौ उसके लिये भोजन बनवावै, कारण कि जो ब्राह्मण अतिथि घरमें आजाय तौ दुवारा अग्नि उत्पन्न होतीहै; और वर्षाके समयके अतिरिक्त अतिथि भोजनके उपरान्त उस घरसे चलाजाय उसको शान्ति-
वाले जन जानतेहैं, अतिथिको भोजन कराकर सेवा करै और ग्रामकी सीमातक उसके पीछे २ चलाजाय; अथवा जबतक वह लौटनेको न कहै तबतक चले।

परपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात् । पूर्वैद्युर्ब्राह्मणान् सन्निपात्य यतीन्
गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविकर्मस्थान् श्रोत्रियाञ्छिष्यानन्तेवासिनः
शिष्यान्पि गुणवतो भोजयेद्विलभशुक्लविगृध्रिद्यावदंतकुष्ठिकुनखिवर्जम् ॥

अथाप्युदाहरन्ति । अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शरीरैः पंक्तिदूपणैः ॥ अदृष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात् ॥ खे पतन्ति हि या धारास्ताः पिवन्त्यकृतोदकाः ॥ उच्छिष्टेन प्रपुष्टास्ते यावन्नास्तमितो रविः ॥ क्षीरधारास्ततो यान्त्यक्षयाः संचरभागिनः ॥ प्राक्संस्कारप्रमीतानां प्रवेशनमिति श्रुतिः ॥ भागधेयं मनुः प्राह उच्छिष्टोच्छेषणे उभे । उच्छेषणं भूमिगर्तं विकिरैलेपसोदकम् ॥ अनुप्रेतेषु विसृजेदप्रजानामनायुषाम् । उभयोः शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्ननिवेदनम् ॥ तदन्तरं प्रतीक्षन्ते ह्यसुरा दुष्टचेतसः ॥ तस्मादशून्यहस्तेन कुर्यादन्यमुपागतम् ॥ भोजनं वा समालभ्य तिष्ठतोच्छेषणे उभे ॥

महालयपितृपक्षमें चतुर्थीके उपरान्त पितरोंको दे, पहलेदिन ब्राह्मणोंको नौतकर, संन्यासी गृहस्थी, साधु, वृद्ध, शुद्धकर्म करनेवाले, वेद पढनेवाले शिष्य तथा अपने शिष्य और गुणी इनको भोजन करावै, और जिसके सफेद दादहों, लोभीहो, दांत जिसके कालेहों, कुष्ठी और जिसके नख बुरेहों इन सबको, त्यागदे, इसमें यहभी बचन है कि जो मंत्रोंका जाननेवाला हो, उसका शरीर वा वह पंक्तिको दुष्ट करनेवाला हो, यमने उसको दूषित नहीं कहा, कारण कि वह पंक्तिको पवित्र करनेवाला है; श्राद्धकी उच्छिष्टको दिन छिपनेसे पहले फेंकदे, आकाशमें जो जलकी धारा पडती है उसको वह पीते हैं, जिनको उदक दान दियाहो, जबतक सूर्यदेव न छिपतेहैं तब तक वह उच्छिष्टसेपुष्ट रहतेहैं, फिर वह उच्छिष्ट भागियोंके देनेसे अक्षय दूधकी धारा होजातीहै; जो बिना संस्कारके मरगयेहैं अर्थात् जिनका संस्कार नहीं हुआहै उनका प्रवेश श्राद्धमें नहीं होताहै, उनके भागको मनुने उच्छिष्ट और उच्छेषण इन दोनोंको कहाहै; पृथ्वीपर जलसहित जो विकिरका लेप है उसे उच्छेषण कहतेहैं, बिना संतानके हुए तथा बिना अवस्थाके जो मरगयेहैं उनको विकिर देनी उचित है, दोनों शाखाओंके अतिरिक्त पृथक् २ हाथोंसे जो पितरोंको अन्न देताहै, उस अन्नकी वाट दुष्टचित्तवाले असुर देखतेहैं; इसकारण एक हाथसे अन्नको परोसना उचित नहीं; अथवा भोजनके पास बैठकर दोनों उच्छेषण दे,

द्वौ दैव पितृकृत्ये त्रीनैकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत् समृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरैत् ॥ सक्तियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः ॥ पचैतान्विस्तरौ हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥ अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ शुभशीलो-पसंपन्नं सर्वालक्षणवर्जितम् ॥

दो विश्वदेवाके कार्यमें और तीन पितरोंके कार्यमें अथवा दोनों जगह एक २ ब्राह्मणको बनवानभी भोजन करावै, और अधिकका जमाना उचित नहीं, और सत्कर्म, देश, समय, शौच, और ब्राह्मणकी सम्पत्ति विस्तार इन पांचोंको नष्ट करदेताहै; इसकारण अधिक ब्राह्मणोंको भोजन कराना उचित नहीं, या एकही वेदके पारको जाननेवाले एक ब्राह्मणको भोजन करावै, जो सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे युक्त शीलवान् और सबकुलक्षणोंसे हीनहो,

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ॥ अन्नं पात्रे समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकु-
तस्य तु ॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्त्तते ॥ प्रास्येदन्नौ तदन्नं तु
दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥

(प्रश्न) यदि श्राद्धमें एक ब्राह्मणको भोजन करावै तौ वहां सब देव कैसे हों? (उत्तर)
सम्पूर्ण अन्न एकपात्रमें रखकर देवताओंके स्थानमें रखकर फिर श्राद्ध प्रारंभ होताहै, और
उस अन्नको अग्निमें डालदे तथा ब्रह्मचारीको देदे,

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदभंति वाग्यताः ॥ तावद्धि पितरोऽभ्यर्च्यन्ति यावन्नोक्ता
हविर्गुणाः ॥ हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरोऽभ्यवतर्पिताः । पितृभिस्तर्पितैः
पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥ नियुक्तस्तु यदा श्राद्धे दैवे तं तु समुत्सृजेत् ॥
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्नरकमृच्छति ॥

जवतक अन्न गरम रहताहै तवतक पितर मौन धारण करके भोजन करतेहैं, अन्नके गुणोंका
बखानना उचित नहीं, पितरोंके वृत्त होने पर अन्नकी प्रशंसा करनी उचित है; श्राद्धमें नियुक्त
होकर यदि जो मनुष्य देवताओंके कार्य को त्यागदे तो जितने पशुके शरीरमें रोम होतेहैं
उतने समयतक नरकमें वासकरताहै,

ग्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतुपास्तिलाः ॥ ग्रीणि चान्नं प्रशंसन्ति शौचम-
क्रोधमत्वराम् ॥ दिवसस्याष्टमे भागे मंदी भवति भास्करः ॥ स कालः कुतुपो
नाम पितृणां दत्तमक्षयम् ॥

श्राद्धमें तीन वस्तु पवित्र हैं, दौहित्र, कुतुप काल और तिल; इनसेही अन्नकी प्रशंसा है
अक्रोध, और शीघ्रताका त्याग, और शौच, यह तीनों सामग्री श्राद्धके अन्नको श्रेष्ठ करतीहै;
दिनके आठवें भागमें सूर्य मंद होताहै उस समयका नाम “कुतुप” है उस समय पितरोंको
जो दियाजाताहै सो अक्षय होताहै,

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥ भवंति पितरस्तस्य तन्मां-
सरेतसो भुजः ॥ यत्तस्ततो जायते च दत्त्वा भुक्त्वा च योऽभ्यसेत् ॥ न स
विद्यामवाप्नोति क्षीणायुश्चैव जायते ॥

जो मनुष्य श्राद्धकरके वा श्राद्धके अन्नको भोजन करके मैथुन करताहै उसके पितर उस
महीनेमें मांस और रेत भोजन करतेहैं, जो श्राद्ध करके वा श्राद्धके अन्नको भोजन करके
विद्या पढताहै; वह न जाने किस योगमें उत्पन्न होगा, और उस जन्ममें उसे विद्या प्राप्त
नहीं होती, और वह अल्पायु होताहै;

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ उपासते सुतं जातं शकुन्ता इव
पिप्पलम् ॥ मधुमांसैश्च शकैश्च पयसा पायसेन वा ॥ अधुना दास्यति श्राद्धं
वर्षासु च मघासु च ॥ संतानवर्द्धनं पुत्रं तृप्यन्तं पितृकर्मणि ॥ देवब्राह्मण-
संपन्नमभिनन्दन्ति पूर्वजाः ॥ नन्दन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टैरिव कर्षकाः ॥ यद्गया-
स्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥

जिस भांति पक्षी पीपलके वृक्षको देखकर आशा करतेहैं, उसीप्रकार पितृ, पितामह, प्रपितामह उत्पन्नहुए पुत्रके प्रति आशा रखतेहैं कि हमारा पुत्र हमें मीठा, मांस, शाक, दूध, खीरआदि देगा, वर्षा और मघाओंमें हमारा श्राद्ध करेगा, जो पुत्र सन्तानको बढ़ानेवाला पित्रोंके कार्यमें वृत्ति करनेवाला है, और देवताकी समान ब्राह्मणसम्पत्तियुक्त पूर्वपुरुषगण उसकी प्रशंसा करतेहैं, जिसभांति किसान उत्तम वर्षाको देखकर आनंदित होतेहैं, उसीप्रकार पितर उससे आनंदित होतेहैं, जो पुत्र गयामें जाकर श्राद्ध करताहै, पितर उससेही पुत्रवान् होतेहैं;

श्रावण्याग्रहायण्योश्चाष्टकायां च पितृभ्यो दद्यात् द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने वा कालनियमोऽवश्यम् ।

श्रावणी पूर्णिमा, आग्रहायण अगहनकी पूर्णिमा, और अष्टका इन दिनोंमें पित्रोंका श्राद्ध करै, अथवा जब उत्तम द्रव्य और देश तथा ब्राह्मण इनका समागम होजाय उस समयमेंभी श्राद्ध करनेका नियम है,

यो ब्राह्मणोऽग्निमादधीत । दर्शपूर्णमासाग्रयणोष्टिचातुर्मास्यपशुसोमैश्च यजते । नैयमिकं ह्येतद्वर्णं संस्तृतं च विज्ञायते हि त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् ब्राह्मणो जायते । यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यो ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः । इत्येष वा अनृणो यज्वा यः पुत्री ब्रह्मचर्यवानिति ।

जो ब्राह्मण आहिताग्नि है वह दर्श पौर्णमासयज्ञ, आग्रहायणयज्ञ, चातुर्मास्ययज्ञ, पशु, तथा सोम इन यज्ञोंको अवश्य करै, कारण कि यह ऋण नियमसे है, देवताओंके निकट यज्ञका ऋण है, पितरोंके निकटसे मनुष्य सन्तानका ऋणी है, और ऋषियोंके निकटसे ब्रह्मचर्यका (वेदादिअध्ययनका) ऋण है, इन तीनोंके ऋणोंसे ऋणी होकर ब्राह्मण जन्म लेताहै, तब वह यज्ञशील और पुत्रवान् तथा ब्रह्मचर्य धारण करनेसेही ऋणसे छूटजाताहै,

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भद्वादशेषु वैश्यम् । पालाशो दंडो बैल्वो वा ब्राह्मणस्य नैयग्रोधः क्षत्रियस्य वा औदुम्बरो वा वैश्यस्य कृष्णाजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवं क्षत्रियस्य गव्यं वस्ताजिनं वैश्यस्य शुक्लमहतं वासो ब्राह्मणस्य मांजिष्ठं क्षत्रियस्य हारिद्रं कौशेयं वैश्यस्य सर्वेषां वा तान्तवमरक्तं भवेत् । भवत्पूर्वा ब्राह्मणो भिक्षां याचेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदंत्यां वैश्यश्च आपोऽशवाद्ब्राह्मणस्यानतीतः काल आद्राविंशाक्षत्रियस्याचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवंति नैनानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्नैभिर्विवाहयेयुः । पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं चरेत् । द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेन्मासं माक्षिकेनाष्टरात्रं घृतेन पडुरात्रमयाचितं त्रिरात्रमम्बक्षोऽहोरात्रमेवोपवासम् । अश्वमेधावभृत्यं गच्छेद्वात्यस्तोमेन वा यजेत् ॥

इति वशिष्ठे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

गर्भसे लगाकर आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करै, और गर्भसे लगाकर ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका, और गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत करानेकी विधि है, ब्राह्मणका

दंड ढाक वा धेलके वृक्षका है, और क्षत्रियका दंड वटके वृक्षका है, आर वैश्यका दंड गूलरके वृक्षका है, काले मृगकी छाल ब्राह्मणका दुपट्टा है, रुरु मृगका चर्म क्षत्रियका, और गौ या छागका चर्म वैश्यका वस्त्र है, सफेद और नवीन वस्त्र ब्राह्मणका है, मजीठसे रंगाहुआ वस्त्र क्षत्रियका, और रेशमका हलदीसे रंगाहुआ वस्त्र वैश्यका होताहै, अथवा तीनोंकाही बिना रंगाहुआ सूतका वस्त्र धारण करनेयोग्यहै, ब्राह्मण पहले “भवत्” शब्दका प्रयोग करै, क्षत्रिय बीचमें “भवत्” शब्दका उच्चारणकरै, और वैश्य अंतमें “भवत्” शब्दका प्रयोग करै गर्भसे लगाकर सोलहवर्षतक ब्राह्मणका, और गर्भसे लेकर बाईस वर्षतक क्षत्रियका, और गर्भसे लेकर चौबीस वर्षतक वैश्यके यज्ञोपवीत करनेकी विधि है, इसके उपरान्त जो यज्ञोपवीत न हो तौ वह पतित होताहै और उसे गायत्रीका अधिकार नहीं होता, फिर उनका यज्ञोपवीत करना उचित नहीं, और न उन्हें वेद पढावै अथवा यज्ञ करानामी कर्तव्य नहीं, उनके साथ विवाह न करै, जो मनुष्य गायत्रीसे पतित है वह उद्दालक व्रत करै; दो महीनेतक जौके आटेका भोजन करै, एक महीनेतक सहित खाय, आठ दिनतक धी पिये, छैः दिनतक जो बिना मांगे भिखे उससे निर्वाह करै, और तीन दिनतक केवल जलही पीकर जीवन धारण करै, एक अहोरात्र उपवासकरै, इसका नाम उद्दालक व्रत है, या किसीके अश्वमेधयज्ञमें अवसृथस्नान करै, अथवा ब्रात्यस्तोम यज्ञ करै ।

इति वसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातः स्नातकव्रतान् स न कंचिद्याचेतान्यत्र राजातिवासिभ्यः/क्षुधापरीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा क्षेत्रं गामजाविकं सन्ततं हिरण्यं धान्यमन्नं वा न तु स्नातकः क्षुधावसीदेदित्युपदेशः न नद्यां स सहसा संविशेन्न रजस्वलायामयोग्यायां नकुलं कुलंस्पाद्वत्सर्ता विततां नातिकामेन्नोद्यंतमादित्यं पश्येन्नादित्यं तपन्तं नास्तं मूत्रपुरीषे कुर्यान्न निष्ठीवेत् परिवेष्टितशिरा भूमिमयज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाय मूत्रपुरीषे कुर्यादुदङ्मुखश्चाहनि नक्तं दक्षिणाशुखः संध्यामासीतोत्तरामुदाहरंति ।

इसके उपरान्त स्नातक व्रत कहते हैं, स्नातक ब्राह्मण किसीके निकट अन्नकी कमी याचना न करै; अथवा बिना दिये राजा वा शिष्योंसे कुछ मांगले; क्षुधासे युक्त हो तौ कुछेक मांगले किया वा न किया अन्न वा खेत, गौ, बकरी, भेंड, सुवर्ण, धान, और अन्न इनको मांगले यह उपदेश है कि, स्नातक मनुष्य क्षुधासे दुःखी न रहै, नदीमें सहसा प्रवेश न करै और रजस्वला तथा अयोग्य स्त्रीकी संगति न करै फैली हुई बछड़ेकी रस्सीको न चलावै और उदय होते तथा मध्याह्नमें तपते हुए और अस्त होते हुए सूर्यका दर्शन न करै, जलमें

१ ब्राह्मण तो इसप्रकार कहै कि “भवति भिक्षां देहि” और क्षत्रिय भवत् शब्दको मध्यमें देकर “भिक्षां भवति देहि” यह कहकर भिक्षा मांगै, और वैश्य भवत्शब्दको अन्तमें कहकर “भिक्षां देहि भवति” इसभांति कहै.

विष्टा मूत्रका त्याग न करै और उक्त समयमें मल, मूत्र तथा थूकका त्याग करै और विष्टा मूत्र त्यागनेके समयमें मस्तकपर वस्त्र बांधले, यज्ञके अयोग्य तिनकोंसे पृथ्वीको ढककर सन्ध्याके समय उत्तरको और रात्रिके समय दक्षिणको मुख करके उसके ऊपर मल, मूत्र त्याग करै ।

स्नातकानां तु नित्यं स्यादन्तर्वासस्तथोत्तरम् ॥ यज्ञोपवीते द्वे यष्टिः सोदकश्च कमण्डलुः ॥ अप्सु पाणौ च काष्ठे च कथितं पावकं शुचिम् ॥ तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्यात्कमण्डलम् ॥ पर्याग्निकरणं ह्येतन्मनुराह प्रजापतिः ॥ कृत्वा चावश्यकार्याणि आचामेच्छौचवित्तत इति ।

स्नातकोंके धर्मका यह भी वचन कहते हैं कि स्नातकोंका नित्य अन्तर्वास और उत्तर है, दो यज्ञोपवीत छाठी और कमण्डलु होता है, जल हाथ और काष्ठोंमें कमण्डलुको कहा है, इस कारण जल और हाथोंसे कमण्डलुको मांजै, यह मनुने पर्याग्निकरण कहा है, फिर आवश्यक कार्योंको कर शौचका जाननेवाला आचमन करै ।

ग्राह्मुखोऽन्नानि भुंजीत । तूर्णानि सांगुष्ठं कृशाग्रासं ग्रसेत न च मुखशब्दं कुर्याद्वतुकालाभिगामी स्यात् । पर्व्ववर्जं स्वदारेषु वा तीर्थमुपेयात् ॥

पूर्वकी ओरको मुख करके भोजन करे और मौन धारण कर अंगूठे सहित अंगुलियोंसे छोटा ग्रास खाए; और मुखका शब्द न करे वतुकालमें स्त्रीका संग करे और धर्मके समयमें स्त्रीका निषेध है, और अपनी स्त्रीके साथही संसर्ग करे, तीर्थकी यात्रा करे, अथाप्युदाहरन्ति ॥ यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये कुर्वीत मैथुनम् ॥ भवन्ति पितरस्तस्य तन्मांसरेतसो भुजः ॥ या स्यादनतिचारेण रतिः साधर्म्यसंश्रिता ॥ आप च पावकोऽपि ज्ञायते ॥ अद्य श्वो वा विजनिष्यमाणाः पतिभिः सहशयन्त इति स्त्रीणामिन्द्रदत्तो वरः ।

और इसमें यहभी वचन है कि, जो मनुष्य अपनी स्त्रीके मुखमें मैथुन करताहै, उसके पितर उस एकमहीनेभर तक वीर्यको भक्षण करतेहैं; और जो व्यभिचारको छोड़कर रतिके धर्ममें स्थित रहताहै वही पवित्र जानाजाताहै “जो स्त्रियें आजकलमें सन्तान उत्पन्न करनेवाली (आसन्नप्रसूति) हैं वहभी स्वामीके साथ सहवास करसकती हैं” ऐसा जानाजाताहै कि, इन्द्रने स्त्रियोंको यह वरदान दियाहै,

न वृक्षमारोहेन कूपमवरोहेन्नाग्निं मुखेनोपधमेन्नाग्निं ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयान्नाग्निब्राह्मणयोरनुज्ञाप्य वा भार्य्या सह नाशनीयादवीर्य्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते ॥ नेन्द्रधनुर्नाम्ना निर्दिशेन्मणिधनुरिति ब्रूयात् ॥ पालाशमासनं पादुके दंतधावनमिति वर्जयेत् । नोत्संगे भक्षयेदधो न भुंजीत । वैणवं दंडं धारयेद्भुक्कमण्डले च । न वहिर्मांसां धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः सभासमवायांश्च वर्जयेत् ॥

वृक्षपर न चढ़ै, कुएँपर न बैठे मुखसे आग्निको प्रज्वलित न करै, ब्राह्मणके और अग्निके बीचमें होकर न निकले अथवा आज्ञा लेकर निकले. स्त्रीके साथ भोजन न करै, कारण कि, ऐसा करनेसे सन्तान बलहीन होतीहै यह वाजसनेयी संहिता ग्रंथमें कहाहै इन्द्र धनुषको नामसे न कहै, परन्तु मणिधनुषको नाम लेकर पुकारै, ढाकका आसन, खड़ाऊँ, दत्तौन, इनका निषेध है, गोदीमें रखकर अन्नको न खाय, वांसका दंड और सुवर्णके कुंडल धारण करै, और सुवर्णकी मालाके अतिरिक्त प्रत्यक्ष मालाको न पहरे; और समाके समूहका त्याग करै.

अथाप्युदाहरन्ति । अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैव दर्शनम् ॥ अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः ॥ इति । नानाहृतो यज्ञं गच्छेत् यदि ब्रजेदधि वृक्षसूर्यमध्वानं न प्रतिपद्यते । नावं च सांशयिकीं वाहुभ्यां न नदीं तरेदुत्थायापररात्रमधीत्य न पुनः प्रतिसंविशेत् । प्राजापत्ये मुहूर्ते ब्राह्मणः स्वनियमाननुत्तिष्ठेदनुत्तिष्ठेदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इसमें यहभी वचन कहाहै कि, वेदोंका प्रमाण न मानना, और सम्पूर्ण ऋषियोंके शास्त्रोंमें अव्यवस्था समझनी यही आत्माका नष्ट करनाहै, यज्ञमें विनानुलाये कदापि न जाय अथवा केवल देखनेको चाहिये तौ जाय ।

वृक्षोंके ऊपर तथा सन्मुखसे सूर्यके मार्गका आश्रय न करै, जिस नावमें डूबनेका सन्देह हो उसमें कदापि न बैठे और नदीमें न पैरै, पिछली रात्रिके पहरके समय उठकर और पढ़कर फिर शयन न करै, ब्राह्मणमुहूर्तमें उठकर अपने नियमोंको करै ।

इति वासिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातः स्वाध्यायश्चोपाकर्म श्रावण्यां पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां वामिमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्यश्च्छन्दोभ्यश्चेति । ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य दधि प्राश्य तत उपांशु कुर्वीत । अर्धपंचममासानर्द्धषष्ठानत ऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वाधीयीत । कामं तु वेदांगान् ।

इसके उपरान्त स्वाध्याय और उपाकर्मको वर्णन करते हैं, श्रावणकी पूर्णिमा अथवा भादोंकी पूर्णिमामें उपाकर्म करै, फिर देवता और वेदके उद्देश्यसे अग्निको समीप रखकर ब्राह्मण हवन करै, ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर दधिभोजनके उपरान्त साढ़े पांच वा साढ़े छैः महीनेतक जप करै, इसके उपरान्त शुक्लपक्षमें पढ़ै और वेदके अंगोंको इच्छानुसार पढ़ै ।

तस्यानध्यायाः संध्यास्तमिते स्युस्तत्र शवे दिवाकीर्त्ये नगरेषु कामं गोमयपर्युषिते परिलिखिते वा श्मशानांते शयानस्य श्राद्धिकस्य ।

वेदाध्ययनके अनध्याय हैं कि संध्याके समयमें वेदके पढ़नेका निषेध है, ग्रामके बीचमें यदि चाण्डाल वा प्रेत आजाय तौ वेदको न पढ़ै, धर्मके बढ़ानेकी इच्छासे नगरमें भी वेदका पढ़ना निषिद्ध है; जिस प्रदेशके लिये हुए गोबर बासी होगये हैं उस भूमिपर बैठके न पढ़े और श्मशानके समीप और शयन करते करते और श्राद्ध करके भी वेद न पढ़े ।

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ फलान्यापास्तिलान्भक्ष्यमथान्यच्छादिकं भवेत् ॥ प्रतिगृह्याप्यनध्यायः पाण्यास्या ब्राह्मणाः स्मृताः इति ।

इस विषयमें पंडितोंने मनुका श्लोक कहा है—फल, जल, तिल, वा अन्य श्राद्धमें दिया हुआ भक्ष्य जो कुछ भी लेता है, तब भी पढ़नेका निषेध है, कारण कि ब्राह्मणोंके हाथोंको सुख कहा है ।

धावतः पृतिगंधिप्रसृतेरितवृक्षमारुहस्य नावि सेनायां च भुक्त्वा चार्धघ्राणे वाणशब्दे चतुर्दश्याममावास्यायामष्टम्यामष्टकासु प्रसारितपादोपस्थस्योपाश्रितस्य गुरुसमीपे मिथुनव्यपेतायां वाससा मिथुनव्यपेतेनानिर्मुक्तेन ग्रामांति छर्दितस्य मूत्रितस्योच्चरितस्य यजुषां च सामशब्दे वा जीर्णे निर्घातभूमौ च न चंद्रसूर्योपरागेषु दिङ्नादपर्वतनादकंपप्रपातेषूपलरुधिरपांशुवर्षेण्वकालिकमुल्काविद्युत्सज्योतिषमपत्वाकालिकं वा ।

दौड़नेके समयमें वेद न पढ़े, वृक्षपर चढ़कर नौकापर चढ़कर और सेनाके बीचमें स्थितिके समय, भोजनके अन्तमें वेदाध्ययन न करे, वाणका शब्द होनेके समय भी अनध्याय है, चतुर्दशी अमावस्या अष्टमी और अष्टकाओंमें वेदको न पढ़े, पंरोंको फैलाकर वेद न पढ़े जिस समय गुरुके निकट नम्र और विनीत-भावसे बैठा हो, उस समय भी न पढ़े, मैथुन करके छोटी हुई शय्याके ऊपर और बिना बखोंके त्यागे तथा ग्रामके समीप, वा वसन कर बिछा मूत्र त्यागनेके उपरान्त वेद पढ़नेका निषेध है, सामवेदके गानके समयमें यजुर्वेदको न पढ़े, जिस पृथ्वीपर विजली गिरी हो उस पृथ्वीके ऊपर तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समयमें, दिशाओंके शब्दमें, पर्वतके शब्दमें, भूकम्पमें, ओले, रुधिर, धूल, इनकी वर्षाके समयमें और अकालमें अनध्याय होता है और जिस समय बिना अवसरके तारे और विजली दूटकर गिरे, तब इनमें अकालिका अनध्याय होता है ।

आचार्य्यं च प्रेते त्रिरात्रमाचार्य्यपुत्रशिष्यभार्य्यास्वहोरात्रम् ऋत्विग्योनिसंबंधेषु च गुरोः पादोपसंग्रहणं कार्य्यं ऋत्विक्श्वशुरपितृव्यमातुलानवरवयसः प्रत्युत्थाग्राभिवदेद्ये चैव पादग्राह्यास्तेषां भार्य्या गुरोश्च मातापितरौ यो विद्यादभिवन्दितुमहमयं भोरिति ब्रूयाद्यश्च न विद्यात्प्रत्यभिवादे नाभिवदेत् ।

आचार्य्यके मरनेके उपरान्त तीन रात्रि आचार्यका पुत्र, शिष्य वा स्त्री इनके और ऋत्विज योनिसम्बन्धके मरनेपर अहोरात्रका अनध्याय होता है; गुरुके चरणोंको पकड़े और ऋत्विज श्वशुर वा चाचा, मामा, तथा जो अवस्थामें बड़े हों, जिनका पैर पकड़ने योग्य हो उनकी स्त्री तथा गुरुकी माता और पिता इनको नमस्कार करे, जो नमस्कार करना जानता हो वह “अयमहं भोः” (भो गुरु यह मैं) ऐसा कहै, और जो इस भांति कहता न जाने उसे आशीर्वाद न दे ।

पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ॥ अथाप्युदाहरन्ति । उपाध्यायादृशाचार्य्य आचार्य्याणां शतं पिता ॥ पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ भार्य्याः पुत्राश्च शिष्याश्च संस्पृष्टाः पापकर्मभिः ॥ परिभाष्य परित्याज्याः पतितो योऽन्यथा भवेत् ॥ ऋत्विगाचार्यावयाजकानध्यापकौ हेयावन्यत्र हानात् पतितो नान्यत्र पतितो भवतीत्याहुरन्यत्र स्त्रियाः ॥ सा हि परगमिता तद्विब्रामक्षुण्णामुपेयात् ॥

और यदि पिता पतित हो तो उसको त्याग दे; और माता पुत्रके लिये पतित नहीं होती इसमें यह भी वचन कहते हैं कि उपाध्याय पढानेवालेसे दशगुना आचार्य है और आचार्यसे दशगुना पिता है और पितासे सहस्रगुनी माता गौरवमें अधिक है, यदि स्त्री, पुत्र, शिष्य इनको पापकी संगति होजाय तो निन्दनीय वचन कहकर उनको त्याग दे और जो इनको नहीं त्यागता वह पतित होता है, ऋत्विक् यदि यज्ञ न करावै और आचार्य न पढ़ावै तो दोनोंको त्याग दे, और जो इनका त्याग नहीं करता वह पतित होता है, और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि पतित नहीं होता अर्थात् स्त्रीके अतिरिक्त स्त्री पतित होती है जो स्त्री पर पुरुषके साथ गमन करती है, तो दूसरी नई स्त्रीके साथ विवाह करले ।

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिरिष्यते ॥ गुरुवद्गुरुपुत्रस्य वर्तितव्यमिति श्रुतिः शास्त्रं वस्त्रं तथान्नानि प्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य विद्याविजयजः संवन्धः कर्म च मान्यम् पूर्वं पूर्वं गरीयान् । त्यविरवालातुरभारिकचक्रवर्ता पंथाः समागमे परस्मै देयो राज्ञातकयोः समागमे राज्ञा स्नातकाय देयः । सर्वैरेव वा उच्चतमाय तृणभूम्यग्न्युदकवाक्सूनृतानसूयाः सप्त गृहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन कदाचनेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

गुरुका गुरु यदि सन्मुख हो तो उसके साथभी गुरुके समान आचरण करे; और गुरुके पुत्रके साथ भी गुरुके समान वर्ताव करे, यह वेदमें कहा है, वस्त्र और अन्न यह ब्राह्मणके ग्रहण करनेसे, विद्या, विनयं सवन्ध, कर्म, यह चारों माननेके योग्य हैं, इन सबमें पहलाही श्रेष्ठ है, वृद्ध, बालक, रोगी, भारी और चक्रचालक गाड़ीवान् मनुष्योंको मार्ग छोड़ दे राजा और स्नातकके उपस्थित होनेपर राजा स्नातकको मार्ग छोड़दे और सबके एकत्र समागममें ऊंचे मनुष्यको पहले मार्ग छोड़देना उचित है, तृण, आसन, भूमि, अग्नि, जल, सूतवचन और अनसूया साधुओंके घरमें कदापि इनका अभाव न हो ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथ भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥ विकित्सकमृगयुपुंश्चलीदंडिकस्तेनाभिश्शस्तपंडपतितानामभोज्यं कदर्य्यक्षितवद्वातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौकसूचकवार्धुविकचर्माविकृतानां शूद्रस्य चायज्ञस्पोषयज्ञे यश्चोपपतिं मन्यते

यश्च गृहीततद्धेतुर्पश्च वधार्हं नोपहन्यात् । कौ वंशमोक्षी इति चाभिहितयेत्
गणान्नं गणिकान्नम् ॥

इसके उपरान्त जो वस्तु भक्षणके योग्य है और जो अयोग्य है उसका वर्णन करते हैं, वैद्य, व्याध, व्यभिचारिणी स्त्री, जो पशुओंको दंडसे मारें, और चोर, शापप्रस्त, नपुंसक, पतित, कृपण, कैदी, आतुर, मदिरा बेचनेवाला, बढई, धोबी, कलाल, जुगल, और जो ज्वाज लेता हो इनके यहांका अन्न भोजनकरना निषिद्ध है चर्मकारके यहांभी भोजन न करें, यज्ञके अनधिकारीके यहां उपयज्ञमें अन्न भोजन न करें, जो मनुष्य यज्ञमें दूसरेको स्वामी माने, जो मनुष्य पकड़नेमें कारण हो तथा जो वध करने योग्यका वध न करें, और जो मनुष्य यह कहें कि वध मोक्ष क्या है; गणका अन्न और वैद्याका अन्न यहभी भोजन करनेके योग्य नहीं है;

अथाप्पुदाहरन्ति । नाश्नन्ति श्वपतेर्देवा नाश्नन्ति वृषलीपतेः ॥ः भार्याजितस्य-
नाश्नन्ति यस्यचोपपतिर्गृहे इति एधोदकसवत्सकुशलाभ्युद्यतपानावस्यसफरिमि-
यंगुस्तरजमधुमांसानि नैतेषां प्रतिगृह्णीयात् ।

इसमें यहभी वचन है, कि कुत्तोंके स्वामीके यहांका देवता अन्न भोजन नहीं करते और वृषलीपतिके यहांका अन्नभी भोजन नहीं करते, जो स्त्रीके वशमें हो उस मनुष्यके, और जिस स्त्रीके घरमें उपपति रहताहो उसके यहांका अन्नभी देवता भोजन नहीं करते हैं; इनके यहांसे काष्ठ, जल, फल, पुष्प, और विनयसे लायाहुआ दूधआदि पानी घर मत्स्य, कांगनी, अश्व, मधु, और मांस इनका ग्रहण करना उचित नहीं;

अथाप्पुदाहरन्ति ॥ गुर्व्यर्धदारमृजिहीपन्नर्ध्विष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रति-
गृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं तत इति ।

यह कहा है, कि “गुरुके निमित्त दक्षिणाका द्रव्य अपने विवाहके निमित्त तथा” कुटुम्ब-
पालन और देवता और अतिथियोंका पूजन तथा श्रेष्ठ कार्य करनेके निमित्त सबके निकटसे प्रतिग्रह लेले; परन्तु उस प्रतिग्रह लियेहुए द्रव्यसे स्वयं तृप्त न हो,

न मृगयोरिषुचारिणः परिवर्ज्यमन्नम् । विज्ञायते ह्यगस्त्यो वर्षसाहसिके
सत्रे मृगयां चचार तस्यासंस्तु रसमयाः पुरोडाशा मृगपक्षिणां प्रशस्ता-
नामपि ह्यन्नम् ॥

जो बाणसे पशुओंकी हिंसा करता है उसव्याचका अन्न त्यागने योग्य नहीं है यह शास्त्रसे
विहित है, कारण कि अगस्त्य ऋषिने सइस वर्षके यज्ञमें मृगादिपक्षियोंकी मृगया की थी,
उससे उनका प्रशस्त मृग और पक्षियोंका सुरसपूर्ण पुरोडाश और अन्नहुआथा,

प्राजापत्याञ्ज्वाकानुदाहरन्ति ॥ उद्यतामाहतां भिक्षां पुरस्तादग्रचोदिताम् ॥
भोज्यं प्राजापतिर्मेन अपि दुष्कृतकारिणः ॥ श्रद्धयानेन भोक्तव्यं चौरस्यापि
विशेषतः ॥ नत्वेव बहुधा तस्य यावानपहृता भवेत् ॥ न तस्य पितरोऽश्नन्ति
दशवर्षाणि पंच च ॥ नच हव्यं वहव्यमिर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥ चिकित्स-

कस्य मृगयाः शिल्पहस्तस्य पाशिनः ॥ षंढस्य कुलदायाश्च उद्यतापि न गृह्यते इति ॥

पंडितोंने प्रजापतिके कितने एक श्लोक कहे हैं; जो स्वयं दान लेनेके निमित्त आयाहुआ अयाचित, जिसकी पंहले सूचना न हो, और दुष्कर्म करने वालेकी भी भिक्षा प्रजापतिने भोज्य मानी है; तब फिर श्रद्धावाला मनुष्य चोरके अन्नको कदापि भोजन न करै, और जो भिक्षा चोरीकी न हो, उसको एक बारके अतिरिक्त न खाय, और जो पूर्वोक्त चोरीकी भिक्षाका अपसान करता है उसके यहां पंद्रह वर्षतक पितर भोजन नहीं करते, और अग्नि साकल्यको ग्रहण नहीं करती चिकित्सक, शास्त्रधारी, फौसी देनेवाला, पशुओंको मारनेवाला, छुई और व्यभिचारिणी, इनकी स्वयं दीहुई भिक्षा ग्रहण करनेके योग्य नहीं है,

उच्छिष्टं गुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्टमुच्छिष्टोपहतं च यदशनं केशकीटोपहतं च कामं तु केशकीटानुद्धृत्यादिः प्रोक्ष्य भस्मनावकीर्य वाचा च प्रशस्तमुपभुंजी-
तापि ह्यन्नम् ॥

गुरुके अतिरिक्त दूसरेकी उच्छिष्ट अपनी उच्छिष्ट और उच्छिष्टसे दूषित अन्नको भोजन न करै, केश वा कीड़े आदिसे दूषित हुआ अन्नभी भोजन करनेके योग्य नहीं है, और वाल तथा कीड़े आदिको निकालकर जल छिड़कनेसे वह खानेके योग्य होजाता है, इसके उपरान्त वचनसे श्रेष्ठ बतायाहुआ अन्न भोजन करनेके योग्य है,

भ्राज्यापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति । त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामक-
ल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्निर्णितं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ देवद्रोण्यां विवाहेषु
यज्ञेषु प्रकृतेषु च ॥ काकैः श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तन्न विसर्जयेत् ॥ तस्मात्तदन्न-
मुद्धृत्य शेषं संस्कारमर्हति ॥ द्रवाणां प्लावनेनैव धनानां क्षरणेन तु ॥ पाकेन
मुखसंस्पृष्टं शुचिरेव हि तद्ववेत् ॥ अन्नं पर्युषितं भावदुष्टं हृल्लेखनं पुनः ॥
सिद्धमाममृजीषपर्कं च । कामं तु दद्याद्धृतेन चाभिधारितमुपभुंजी-
तापि ह्यन्नम् ॥

इस विषयमें पंडितोंने प्रजापतिके श्लोक कहे हैं कि, शौचाशौचके विषयमें जिसकी शुद्धि न देखीहो जो जलसे छिड़का हो, जिसे वाणीसे श्रेष्ठ कहाहो, देवद्रोणी, विवाह, यज्ञक प्रस्तुत इनमें काक तथा कुत्तोंने जिस अन्नका स्पर्श कियाहो । त्यागना उचित नहीं, इसकारण उतनेही अन्नको निकालकर शेष अन्न संस्कारके योग्य है, उस अन्नमें द्रव्योंकी शुद्धि छिड़कनेसे होजाती है और जिसमें मुखका स्पर्श हुआहो उसकी शुद्धि पकानेसे होजाती है, वांसी अन्न, भावदुष्ट अन्न हृदयको जो अच्छा न लगे, पकाहुआ अन्न, कच्चा अन्न, जो भूतनेके पात्रमें पकाहो उस अन्नकी धीमें भिगोकर इच्छानुसार देदे, और स्वयंभी खाले,

भ्राज्यापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणं व्यंजनानि च ॥

दातारं नोपतिष्ठति भोक्ता भुंक्ते च किल्बिषमिति ॥ १ ॥

इस विषयमें प्रजापतिके श्लोक कहते हैं कि हाथसे दियाहुआ घृतआदि लवण शाक उसका फल दाताको नहीं मिलता, और खानेवाला पापका भागी होता है,

लघुनपलांडुकमुकगृजनश्लेष्मांतर्वृक्षनिर्यासलोहिताग्रश्चनाश्वश्च कावलीढं शूद्रो-
च्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्र इतरेऽप्यन्यत्र मधुमांसफलविकर्षेण्वग्राम्यपश्व-
विषयः संधिनीक्षीरमवत्सागोमहिष्यजातरोमानिर्दशाहानामनामंभ्यं नाव्यु-
दकमपूपधानाकरंभसक्तुचरकतैलपायसशाकानिलशुक्लानि वर्जयेदन्यांश्चक्षीरयव-
पिष्टवीरान् ।

और लस्सन, सलगम, क्रमुक, गाजर, बहेडा, वृक्षका गोंद, लालगोंद, जो वृक्षके काटनेसे उत्पन्न हो, घोड़ा, कुत्ता, काक, इनका चाटा हुआ, शूद्रका चच्छिष्ट जो मनुष्य इसका भोजन करले तो कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करे और सहत, मांस, फल इनके अतिरिक्त अन्तमें प्रायश्चित्त भी करे, वनके पशुओंसे भिन्न, संधिनी और जिसके बलडा न हो इनका दूध गौ, भैंस और जिनके रुंये न फूटे हों, इनका दूध और व्यानेसे दस दिनके भीतरका दूध, यह खाने योग्य नहीं है, नावका जल, मालपुवे, धान, करम्भ, सत्तू, चरक, तेल, पायस, शाक, इनको त्यागदे; और अन्यभी क्षीर जौकी चूनकी मदिरा हैं इनको भी त्यागदे;

श्वाविच्छ कशशकच्छपगोधाः पंचनखा नाभक्ष्या अनुष्टाः पशूनामन्यतोद-
न्तश्च यत्स्यानां वा वेहगवयशिशुमारनक्रकुलीरा विकृतरूपाः सर्पशीर्षाश्च
गौरगवयशलभाश्चानुद्दिष्टास्तथा ॥ धेन्वनद्धाहौ मेध्यौ वाजसनेयने । खड्गे तु
विवदंत्यग्राम्यशूकरे च शकुनानां च विशुविषिक्किरजालपादाः कलर्विकप्लव-
हंसचक्रवाकभासमद्गुट्टिभट्टिभाटवांधनक्तंचरा दार्वाघाटाश्वटकवैलातकहारितखं-
जरीटग्राम्यकुल्लुटशुकसारिकाकोकिलक्रव्यादा ग्रामचारिणश्च ग्रामचारिणश्चेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

गैंडा, सेह, शशा, कलवा, गोह, यह पांचनखवाले पशु अभक्ष्य नहीं हैं; और ऊंटके अतिरिक्त अन्य पशुओंमें जो एकतरफ दांतवाले हैं वह भी अभक्ष्य नहीं हैं, और मत्स्योंमें वह नीलगाय, शिशमार, नाका, कुलीर, जिनका आकार बुरा न हो, जिनका सर्पके समान शिर हो, गोरें पक्षी, टीडी और जिनको नहीं कहा है वह अभक्ष्य नहीं हैं वाजसनेयमतमें गौ बैलभी पवित्र हैं, गैंडा और गामका सूकर इनमें विवाद ऋषि गण करते हैं कि कोई तो अभक्ष्य है और कोई अभक्ष्य है, और पक्षियोंमें विशुवि विष्किर, जालपाद, कलर्विक, प्लव, मुरगा, हंस, चक्रवा, भास, मद्गु, टिट्ठिभ, वांध, रात्रिको उडनेवाले, दार्वाघाट जो काष्ठको चोंचसे खोदे, चिडियां, बैला, हारीत, खंजरीट, गांवका मुरगा, तोता, मैना, कोकिल मांसका भक्षक, ग्राममें जो जो विचरण करें यह अभक्ष्य हैं ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४ ॥

पंचदशोऽध्यायः १५.

शोणितशुकसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः तस्य प्रदानविक्रयत्यागेषु माता-
पितरौ प्रभवतः । नत्वेकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि संतानाय पूर्वेषाम् ।
न ी द त् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ।

मनुष्योंका उपादान कारण शुक्र है, रुधिर निमित्तसे पिता माता कारण हैं, इस कारण उसके देनेमें तथा विक्रयकरनेमें और त्यागनकरनेमें मातापिता समर्थ हैं, एक पुत्रके होनेपर उसे दान न करै, और उससे प्रतिग्रहभी न करै, कारण कि यह पुत्र पूर्वपुरुषोंकी धाराका रक्षा करनेवाला है, स्वामीकी बिना आज्ञाके खियें दान वा प्रतिग्रह न करै,

पुत्रं प्रतिगृहीष्यन् बंधूनाह्वय राजनि चावेद्य निवेशनस्य मध्ये व्याहृतीर्हुत्वा दूरेवांधवमसन्निकृष्टमेव संदेहे चोत्पन्ने दूरेवांधवं शूद्रमिव स्थापयेत् ॥ विज्ञायते ह्येकेन बहु जायत इति ।

जो पुत्रको लेनेकी इच्छा करै तब वह अपने बंधुवांधवोंको बुलाकर राजाके सन्मुख निवेदनकर घरके मध्यमें व्याहृतियोंसे हवन करके जिसके बंधुवांधव दूर हों, और जो संदेह आजाय तथा बंधु दूर हों उसे शूद्रके समान टिकावै, और शास्त्रसे यह जानागया है कि एक से बहुत हांसे हैं,

तस्मिंश्चेत् प्रतिगृहीते औरसः पुत्र उत्पद्यते चतुर्थभागभागी स्यात् ।

दत्तकपुत्रके लेनेके उपरान्त जो अपने औरससे पुत्र उत्पन्न होजाय. तब यह दत्तकपुत्र प्रतिगृहीता पिताके धनके चार भागका एक भाग पावै,

यदि नाभ्युदयिके युक्तः स्याद्वेदविप्लविनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्ण पात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्ष्य केशान् ज्ञातयोऽन्वारभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापाद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन सह धर्ममीयुस्तद्धर्माणस्तद्धर्मापन्नाः पतितानां तु चरितव्रतानां प्रत्युद्धारः ।

यदि दत्तक पुत्र आभ्युदयिककर्ममें युक्त न हो अथवा वेदको अष्ट करदे तब वामपादसे कुशाओंके अग्रभागको रखकर अथवा रक्त कुशाओंको रखकर इस दत्तक निमित्त पूर्णपात्र दे; और इसके घट देनेवालेको सुंघन कराकर जातिके मनुष्य इस कर्मका प्रारंभ करै, और अपसव्य कराकर घरोंमें इच्छानुसार विचरण करने दें, इसके पीछे उसके धर्मको प्राप्त होते हैं उसके धर्म वालेभी उस के धर्मको प्राप्त होते हैं; और पतित यदि व्रतको करले तब उसकाभी उद्धार होजाताहै,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अग्न्यभ्युद्धरतां गच्छेत्कीडंति च हंसंति च ॥ यश्चोत्पातयतां गच्छेच्छौचमित्याचार्यमातृपितृहंतारस्तत्प्रसादाद्भयाद्वा । एषा प्रत्यापत्तिः । पूर्णाब्दात् प्रवृत्ताद्वा कांचनं पात्रं माहेयं वा पूरयित्वापोहिष्ठाभिरेव षड्भिर्ऋग्भिः सर्वत्र वाभिरिक्तस्य प्रत्युद्गीरपुत्रजन्मना व्याख्यातः ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इसमें यह भी वचन है कि जो अग्निका उद्धार करताहै, उसके साथ गमन करनेवाला, कीड़ा करनेवाला, हँसनेवाला और पतितके साथ गमन करनेवाला, उनके मातापिताके मारनेवालोंकी शुद्धि मातापिताकी प्रसन्नता वा भयसे होतीहै वही प्रायश्चित्त है जो पूर्ण घटके दानमें प्रवृत्त है, सुवर्ण वा सुवर्णसे पृथ्वीका गट्टा भरकर “ आपो हि ह्य ” इन छैः ऋचाओंसे व सर्वत्र इन ऋचाओंसे मार्जन करे यह अभिरिक्त पतितका उद्धार पुत्रजन्मके समानहै।

इति वशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथ व्यवहाराः ॥ राजमन्त्री सदःकार्याणि कुर्यात् । द्वयोर्विवदमानयोरत्र पक्षांतरं गच्छेद्यथासनमपराधो ह्यंते नापराधः समः सर्वेषु भूतेषु यथासनमपराधो ह्याद्यवर्णयोर्विधानतः संपन्नतामाचरेद्राजा वालानामप्राप्तव्यवहाराणां प्राप्तकाले तु तद्वत् । लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् ॥ धनस्वीकरणं पूर्वं धनी धनमवाप्नुयात् ॥ इति । मार्गक्षेत्रयोर्विसर्गे तथा परिवर्तनेन ऋणाग्रहेष्वर्थान्तरेषु त्रिपादमात्रं गृहक्षेत्रविरोधे सामंतप्रत्ययः सामंतविरोधेऽपि लेख्यप्रत्ययः प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धश्रेणिप्रत्ययः ।

इसके उपरान्त व्यवहारको कहते हैं. राजमन्त्री सभाका कार्य करै । वादी प्रतिवादी दोनोंके बीचमें यदि मन्त्री एकका पक्षपात करै तो वह अपराध राजाको होगा. सब प्राणियोंको बराबर दृष्टिसे देखै, यदि राजासे किसी प्रकारका अपराध होजाय तो ब्राह्मण क्षत्रियकी विधिके अनुसार उसको शुद्ध करले अप्राप्त व्यवहारमें वालकोंका विचार राजा करै, प्राप्त व्यवहार होनेपर पहलेकी समान नियम जानै । लेख, साक्षी और भोग यह तीन प्रकारका प्रमाण है, इसके दिखातेही धनी धनको पाते हैं मार्ग और खेतके विवादमें त्याग वा वदलेसे निर्णय करले, ऋणके आग्रह वा अर्थान्तरमें तिहाई भाग दिलावै, घर वा खेतके विवादमें लम्परदारोंकी बातका विश्वास करै, सामन्तियोंके वचनके विरोधमें लेखका विश्वास करना होगा । लेखके विरोधमें उस ग्रामके निवासी तथा वृद्धजनोंके वचनका विश्वास करै,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ य एकं क्रीतमाधेयमन्वाधेयं प्रतिग्रहम् ॥ यज्ञादुपगमा वोनैस्तथा धूमशिखा ह्यमी ॥ इति । तत्र भुक्ते दशवर्षमेवोदाहरन्ति ।

इसमें यह भी वचन है कि एकक्रीत, आधेय, अन्वाधेय, प्रतिग्रह, यज्ञमें, वा वाणोंसे युद्धमें जो मिलजाय और धूमशिखा यह निर्णयके कारण हैं तिनमें दस वर्षका भोग कहा है ।

आधिः सीमाधिकं चैव निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं श्रोत्रियद्रव्यं न राजाऽऽदातुमर्हति ॥ इति । तच्च संभोगेन ग्रहीतव्यम् । गृहिणां द्रव्याणि राजगामीनि भवन्ति ।

धरोहर, सीमा अधिक, निक्षेप, सौपना, उपनिधि, स्त्री, राजाका और वेदपाठीका द्रव्य इनको राजा न ले और उसका संभोग उस धनसे कुछ उत्पन्न करके लेले, कारण कि गृहस्थियोंके द्रव्य राजाके यहां जानेवाले होते हैं ।

तथा राजा मन्त्रिभिः सह नागरैश्च कार्याणि कुर्यादसौ वा राजा श्रेयान् वसुपरिवारः स्यादगृध्रं परिवारं वा राजा श्रेयान् गृध्रपरिवारः स्यान्नगृध्रगृध्रपरिवारः स्यात् । परिवारादोषाः प्रादुर्भवन्ति स्तेयहारविनाशनं तस्मात् पूर्वमेव परिवारं पृच्छेत् ॥

और राजा मन्त्री, तथा नगर निवासी इनसे मिलकर कार्यको करै अथवा श्रेष्ठ राजाही इस धनको ग्रहण करै, और धनकी इच्छा राजाका परिवार न करै, तथा कुटुम्ब और राजा दोनोंही धनकी इच्छा न करै, परिवारसे दोष उत्पन्न होते हैं कि चोरी हरना और विनाश होता है इस कारण पहलेही परिवारको धन मिलै ।

अथ साक्षिणः ॥ श्रोत्रियो रूपवान् शीलवान् पुण्यवान् सत्यवान् साक्षिणः
सर्वे एव वा । स्त्रीणां साक्षिणः स्त्रियः कुर्यात् । द्विजानां सदृशा द्विजाः
शूद्राणां संतः शूद्राश्च अंत्यानामंत्याः ॥

इसके उपरान्त साक्षियोंका वर्णन करते हैं, वेदपाठी रूपवान्, शीलस्वभाव, पुण्यात्मा और सत्यवादी मनुष्यही साक्षी होनेके योग्य है, अथवा दस्युतादिके स्थानमें सभी साक्षी हो सकते हैं, स्त्रियोंके कार्यमें स्त्रियां साक्षी उचित हैं ब्राह्मणोंके कार्यमें अनुरूप ब्राह्मण, शूद्रोंके कार्यमें श्रेष्ठ शूद्र, और अन्त्यज जातिके कार्यमें अन्त्यज जातिका साक्षी होना उचित है ।

अथाप्युदाहरन्ति ॥ प्रातिभाष्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दंडशु-
ल्कावशिष्टं च न पुत्रोदातुमर्हतीति ॥

इसमें यह भी वचन है कि पिताके प्रतिभाव्य अर्थात् दर्शन और प्रत्यय प्रतिभू तद्देय अर्थ है, वृथा दान, साक्षी, शूरवीरता, दण्ड, शुल्क कन्याका मोल इनमें जो ऋण लिया हो, उसे पुत्र नहीं दे सकता ।

ब्रूहि साक्षिन्यथातत्त्वं लंबते पितरस्तव ॥ तव वाक्यमुदीर्यतमुत्पतन्ति पतन्ति
च ॥ नमो मुंडः कपाली च भिक्षार्थं क्षुत्पिपासितः ॥ अंधः शत्रुकुले गच्छे-
द्यस्तु साक्ष्यनृतं वदेत् ॥ पंच कन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥ शतमश्व-
नृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ व्यवहारे मृते दारे प्रायश्चित्ते कुले स्त्रियः ॥
तेषां पूर्वपरिच्छेदाच्छेद्यते वागवादिभिः ॥

हे साक्षी देनेवाले ! सत्य २ कह, तेरे पितर लटक रहे हैं, तेरा वचन निकलतेही ऊपरको उठ जायेंगे नहीं तो धीचम लटकते रहेंगे, जो साक्षी झूठ कहैगा तौ नंगे शिर मुड़ाये, अन्धे और क्षुधा तृष्णासे कातर हो कपाल हाथमें लेकर शत्रुओंके कुलमें भिक्षा मांगते फिरेंगे कन्याके निमित्त जो असत्य कहता है उसके पांच पुरुष नरकको जाते हैं, गौके निमित्त मिथ्या कहनेपर दश पुरुष नरकको जाते हैं, अश्वके निमित्त असत्य बोलनेपर एकसौ पुरुष नरकको जाते हैं और पुरुषके निमित्त मिथ्या कहनेपर सहस्र पुरुष नरकको जाते हैं, व्यव-
हारमें, मरणमें, वैवाहिक विधिमें, प्रायश्चित्तमें और (?) स्त्रीके कुलके विषयमें (?) मिथ्या साक्षी देनेवालोंके पूर्वके सम्बन्ध (?) छूटजाते हैं ।

उद्वाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ॥ विप्रस्य चार्थे अनृतं
वदेयुः पंचानृतान्याहुरपातकानि ॥

स्वजनस्यार्थे यदि वार्थहेतोः पक्षाश्रयेणैव वदन्ति कार्य्यम् ॥ वैशन्दवादं स्वकुला-
नुपूर्वान्स्वर्गस्थितानपि पातयन्त्यपि ॥

इति श्रीवासिष्ठ धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विवाहके समय, रतिकार्यमें प्राणनाशकी सम्भावना, सर्वस्व चौर्ध्व और ब्राह्मणार्थ, इन पांच विषयोंमें असत्य कहनेसे पातक नहीं होता, अपने जनके लिये और धनके लोभसे किसीके पक्षमें होकर जो झूठ बोलते हैं वह स्वर्गमें स्थित हुए अपने पुरुषोंको नरकमें गिराते हैं ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्वं च गच्छति । पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेऽ-
जीवतो मुखम् ॥ अनन्ताः पुत्रिणां लोका नापुत्रस्य लोकौऽस्तीति श्रूयते ।
प्रजाः संत्वपुत्रिण इत्यपि शापः ॥ प्रजाभिरग्रेस्त्वमृतत्वमश्रुयामित्यपि निगमो
भवति ॥ पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानंत्यमश्नुते ॥ अयं पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्न-
स्याप्नोति विष्टपमिति ॥

पिता यदि जीवित अवस्थामें उत्पन्न हुए अपने पुत्रका मुग्न देखले तो अपना पितृऋण उसके ऊपर सौंपता है और मोक्षको प्राप्त होता है पुत्रवालोंके लोक और स्वर्ग आदि अनन्त होते हैं और जिसके पुत्र न हो उसको लोककी प्राप्ति नहीं होती, यह शास्त्रमें विदित है, सन्तान पुत्रवान् न हो ऐसा शाप है और अग्निकी उपासनासे सन्तान होनेसे मोक्ष हो यह भी निगम है, पुत्रसे लोकोंकी जीवता है और पौत्रसे अनन्त लोक भोगता है और पुत्रके पौत्रसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है ।

क्षेत्रिणः पुत्रो जनयितुः पुत्र इति विवदन्ते तत्रोभयथाप्युदाहरन्ति ॥ यद्यन्यगोपु
वृषभो वत्सान् जनयते सुतान् ॥ गोभिनामेव ते वत्सा मोघं स्पंदनमोक्षण-
मिति । अप्रमत्ता रक्षंतु वैनं मा च क्षेत्रे परे बीजानि वासो जनयितुः पुत्रो भवति
संपरायो मोघं रेतोऽकुरुत तंतुमेतमिति ।

जिसकी स्त्री उसका पुत्र होता है, अथवा जिससे उत्पन्न हो उसका पुत्र होता है, इस विषयमें बहुतसे विवाद करते हैं इन दोनों विवादोंमें यह भी वचन कहते हैं कि जिस भांति अन्यकी गौमें जो बछड़ोंकी उत्पन्न करता है, वह बछड़े गौवालेकेही होते हैं, उसी भांति अन्य स्त्रीमें वीर्यका छोटना निष्फल है; अप्रमत्त हुए इस पुत्रकी रक्षा करनी उचित है और पराये क्षेत्रमें वीर्य डालना उचित नहीं, ऐसा जाननेवालोंका पुत्र होता है वीर्यको परलोकमें सफल करो कारण कि यह तन्तुरुप है ।

बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्नरः ॥ सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रवंत इति श्रुतिः ॥

एकसे उत्पन्नहुए बहुतसे मनुष्योंमें यदि एक पुत्रवाला हो तो वह सभी उससे पुत्रवाले हैं, यह वेदमें लिखा है,

बहूनीनां द्वादश ह्येव पुत्राः पुराणदृष्टाः स्वयमुत्पादितः स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः
तदलाभे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्वितीयः तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते अभ्रातृका पुंसः
पितृलभ्येति प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम् ॥

और बहुत स्त्रियोंके बारह प्रकारके पुत्र होते हैं, यह पुराणोंमें देखाजाताहै, सत्कारकरके विवाही हुई अपनी स्त्रीमें जो अपने औरससे उत्पन्न हो वह प्रथम, वह न होय तो नियुक्त जिसके लिये गुरुआदिने आज्ञादी हो, अन्यकी स्त्रीमें उत्पन्नहुआ पुत्र दूसरा, तीसरा पुत्रिका पुत्र, भाई जिसके न हो वह कन्या जो कन्या के पितासे पुरुषको मिले उसका लडका कन्या-
के पिताका होताहै,

श्लोकः ॥ अम्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥ अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥

यह श्लोकभी है कि बिना भाईकी भूषणआदिसे शोभायमानकर कन्या मैं तुझे देताहूँ इसमें जो पुत्र होगा वह मेरा होगा ।

पौनर्भवश्चतुर्थः पुनर्भूः कौमारं भर्तारमुत्सृज्यान्वैः सह चरित्वा तस्यैव कुटुंबमाश्रयति सा पुनर्भूभवति । या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्व पातिं विन्दते मृते वा सा पुनर्भूभवति ।

पौनर्भव पुत्र चतुर्थ है; जो स्त्री वाग्दान करके स्वामीको त्यागकर दूसरेके साथ सहवास करती है और फिर स्वामीके कुटुम्बके साथ मिलती है वह पुनर्भू होती है, और जो नपुंसक पतित, तथा उन्मत्तको छोड़कर या पतिके मरजानेके उपरान्त जो दूसरा पति करलेती है, वह पुनर्भू स्त्री होती है,

कानीनः पंचमो या पितृगृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादयेन्मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥ अप्रप्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्दति तुल्यतः ॥ पुत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिंडं हरेद्धनम् इति ॥

पांचवां पुत्र कानीन होताहै जो कन्या संस्कारसे प्रथम अपनी इच्छासे पुत्रको उत्पन्न करले वह नानाका पुत्र होताहै, और ऐसा कहाहै कि बिना विवाही कन्या सजातीय पुरुषसे यदि पुत्र उत्पन्न करले तो उस पुत्रसे नाना पुत्रवान् होताहै, और वह पुत्र नानाके धनका अधिकारी होताहै, और नानाको पिंडदान करे,

गढे च गूढोत्पन्नः षष्ठः इत्येते । दायादा बांधवास्त्रातारो महतो भयात् ॥ इत्याहुः ।

और छठा गुप्तस्थानमें जो उत्पन्न हो वह गूढोत्पन्न यह छैः भागके अधिकारी बांधव हैं, और बड़े भयसे रक्षाकरनेवाले हैं, ऐसा कहा है,

अथादायादास्तत्र सहोढ एव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति । दत्तको द्वितीयो यं मातापितरौ दद्याताम् । क्रीतस्वतीयस्तच्छुनःशेषेन व्याख्यातं हरिश्चंद्रो ह वै राजा सोजीगर्तस्य सोपवस्त्रैः पुत्रं विक्राय्य स्वयं क्रीतवान् । स्वयमुपागतश्चतुर्थः तच्छुनःशेषेन व्याख्यातं शुनःशेषो ह वै यूपे नियुक्तो देवतास्तुष्टाव तस्येह देवता पाशं विमुमुक्षुस्तमृत्विज ऊर्चुर्ममैवायं पुत्रोऽस्त्विति । तानाह न संपदेते संपादयामासुरेष एव यं कामयेत तस्य पुत्रोऽस्त्विति तस्येह विश्वामित्रो होतासीत्तस्य पुत्रत्वमियाय ॥ अपविद्धः पंचमो यं माता पितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात् । शूदापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुः इत्येतेऽदायादा बांधवाः ॥

अब अदायाद पुत्र कहते हैं, तिनमें पहला सहोढ है, जिस कन्याका गर्भवतीकाही संस्कार होगया हो उसमें जो पुत्र उत्पन्न होताहै वह सहोढ कहाताहै, दूसरा दत्तक, जिसे माता पिता दें, तीसरा क्रीत, यह शुनःशेषसे व्याख्यान कहागया है; हरिश्चंद्र राजा हुआ

वह अजीगर्वके पुत्रको विकत्राकर आप मोल लेताहुआ, और जो स्वयं आयाहो वह चौथा है, यहभी शुनःशेषसे व्याख्यान जानागया, शुनःशेष ग्राममें नियुक्त होकर देवताओंकी स्तुति करताहुआ, देवताओंने उसके बंधनको छुटाया, तब उससे ऋषिज बोले कि यह पुत्र मेराही हो, और उनसे कहा यह संमति करो कि जो ऋषि इसको पुत्र करनेकी इच्छा करे वह उसीका होजाय, उस यज्ञमें विश्वामित्र होता ये शुनःशेष उसीका पुत्र हुआ, पांचवां अपविद्ध पुत्र जिसे मातापिताने त्याग दिया हो उसे ग्रहण करले, और शूद्रपुत्र छठा होता है, यह छैः पुत्र भागके अधिकारी नहीं हैं,

अथाप्युदाहरन्ति॥ यस्य पूर्वेषां वर्णानां न कश्चिदायादः स्यादेते तस्यापहरन्ति।

इस विषयमें यहभी वचन है कि जिसके पिछले वर्णोंमें कोई दायद न हो उसके धनके यह छैःजने अधिकारी हैं,

अथ भ्रातृणां दायविभागो व्यंशं ज्येष्ठो हरेद्रवाश्वस्य चानुसदृशमजावयो गृहं च कनिष्ठस्य काष्ठं गां यवसं गृहोपकरणानि च । मध्यमस्य मातुः पारिणेयं स्त्रियो विभजेरन् । यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यासु पुत्राः स्युर्यशं ब्राह्मण्याः पुत्रो हरेत् । व्यंशं राजन्यायाः पुत्रः समभितरे विभजेरन्नन्येन चैषां स्वयमुत्पादितः स्यात् व्यंशमेव हरेदन्येषां त्वाश्रमान्तरगताः क्लीबोन्मत्तपतिताश्च भरणं क्लीबोन्मत्तानाम् ।

अब भाइयोंका अंश विभाग कहा जाता है, बड़ा भाई घोडा और इनके समान वक्करी और घर इनके दो भागोंका अधिकारी है और छोटे भाईको काष्ठ गाँ और घासके लेनेका अधिकार है, धिचला भाई घरकी सम्पूर्ण सामग्रियोंके लेनेका अधिकार रखता है और माताके सम्मुखके धनको जो कि विवाहके समयका है वहुएँ वांट लें, जो ब्राह्मणसे ब्राह्मणी क्षत्रिया और वैश्य स्त्रियोंमें जो पुत्र हों, तौ ब्राह्मणीका पुत्र तीन भागका अधिकारी है और क्षत्रियाका पुत्र दो भागके लेनेका अधिकारी है, और अन्यान्य वैश्या तथा शूद्राका पुत्र वह समभागसे वांटलें, इनके बीचमें जिसने स्वयं धन पैदा किया है वह दो भाग लेनेका अधिकारी है, और जो अन्य आश्रममें रहता है तथा नपुंसक और पतित है, वह धनके भागका अधिकारी नहीं है, नपुंसक और उन्मत्त केवल भरण पोषणके निमित्त धनके अधिकारी होते हैं ।

प्रेतपत्नी षण्मासं व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुञ्जाना शयीतोर्ध्वं पङ्क्त्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याकर्म गुरुर्योनिसंवंधात् । सन्निपात्य पिता भ्राता वा नियोगं कारयेत्तपसे वोन्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुज्यात् । ज्यायसीमपि षोडशवर्षा नचेदामयाविनी स्यात् । प्राजापत्ये मुहूर्त्तं पाणिग्रहणवदुपचारोऽन्यत्र संस्थाप्य वाक्पारुष्याहंडपारुष्याच्च ग्रासाच्छादनस्नानलेपनेषु प्राग्यामिनी स्यादनियुक्तायामुत्पन्न उत्पादयितुः पुत्रो भवतीत्याहुः स्याच्चेनियोगिनो दृष्टा लोभान्नास्ति नियोगः । प्रायश्चित्तं वाप्युपनियुज्यादित्येके ।

जिस स्त्रीका स्वामी मरगया है वह छैः महीनेतक व्रत करै, खारी वस्तु और लवणको न खाय, पृथ्वीपर शयन करै, फिर छैः महीनेके उपरान्त स्नान कर पतिका श्राद्ध करके विद्या वा कर्ममें बड़े गुरु तथा अपने सम्बन्धियोंको इकट्ठा करके स्त्रीका पिता और भाई उस स्त्रीको नियोग करावै, अर्थात् दूसरे पुरुषसे गर्भ धारण करावै, और जो उन्मत्त तथा वशमें न हो, वा रोगी हो, रिस्तेमें बड़ी तथा सोलह वर्षसे अधिक अवस्थाकी न हो उसको नियोग कराना उचित नहीं, और देवर आदि भी रोगी न हो, प्राजापत्य मुहूर्तमें नियोग करावै और पतिके समानही वह स्त्री उसकी सेवा करै, हँसना, कठोर वचन, कठोर दण्ड इनको न करै, जो पहला पति धन छोड़गया है उससे भोजन वस्त्र और लेपन इनको करै, और जिस स्त्रीका नियोग न हुआ हो उसमें जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह उत्पन्न करनेवालेका होता है, यह शास्त्रके जाननेवालोंके कहा है; यदि नियोग करनेवाली स्त्रीको धनका लोभ हो ता नियोग नहीं है और कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि वह प्रायश्चित्त करै ।

कुमार्यृतुमती त्रिवर्षाण्युपासीतोर्ध्व त्रिभ्यो वर्षेभ्यः पतिं विदेत्तुल्यम् ॥
अथाप्युदाहरति ॥ पितुः प्रदानात्तु यदा हि पूर्वं कन्या वयो यैः समतीत्य दीयते ॥ सा हन्ति दातारमपीक्षमाणा कालातिरिक्ता गुरुदक्षिणे च ॥ प्रयच्छे-
न्नमिकां कन्यामृतुकालभयात्पिता ॥ ऋतुमत्यां हि तिष्ठत्यां दोषः पितरमृच्छ-
ति ॥ यावच्च कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सकामामभियाच्यमाना ॥ भ्रूणानि
तावन्ति हतानि तान्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः ॥

कुमारी अवस्थामें रजस्वला होनेपर कुमारी कन्या तीन वर्षतक अपेक्षा करै, फिर स्वयं अपने तुल्य स्वामीकी खोज आप वरले, इस विषयमें यह भी कहा है कि यदि पिताके दान करनेसे प्रथमही ऋतुकाल होजाय और पीछे वह कन्या विवाही जाय तौ वह कन्या दृष्टि मात्रसेही दाताको हतती है, पिता ऋतुकालके भयसे शीघ्रही कन्याका विवाह कर देते हैं, जो कन्या कुमारी अवस्थामें ऋतुमती होती है तौ उसका पिता पापका भागी है, अतुरूप वरकी इच्छा करनेवाली और जिस कन्याकी अन्य पुरुष अभिलाषा करते हो और उस अवस्थामें यदि कन्याका विवाह न कियाजाय, तौ वह कन्या जितनीबार ऋतुमती होगी उतनीही बार पिता माताको भ्रूणहत्याका पाप लगता है यह धर्म कहागया,

अद्विर्वाचा च दत्तानां त्रियेताथो वरो यदि ॥ न च मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी
पितुरेव सा ॥ यावच्चेदाहता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ॥ अन्यस्मै विधिव-
द्देया यथा कन्या तथैव सा ॥ पाणिग्रहे मृते वाला केवलं मंत्रसंस्कृता ॥ सा
चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥ इति ॥

केवल जलके छोटे देने अथवा वचनमात्रसेही कन्यादान होजाताहै, वाग्दान होनेपर वरकी मृत्यु होजाय तौ यह कुमारी कन्या पिताकीही होगी, कारण कि मंत्रोंसे विवाह तौ हुआही

* यह विषय कलियुगातिरिक्त है कारण कि कलियुगमें पुरुष विशेषकर विषयासक्त होते हैं "अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे सांसं तथा मधु । देवराच सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत्" देवरादिसे नियोग करना कलियुगमें निषेध है ।

नहीं है; इतने हरीहुई कन्याका मंत्रोंसे संस्कार न हुआ हो तौ वह कन्या विधिपूर्वक दूसरेको दे देनी, उचित है, कारण कि वह कन्याकेही समान है; जो पतिके मरजाने पर केवल मंत्रोंसे संस्कारकी हुई बालक कन्या अक्षतयोनि अर्थात् जिसे अन्यपुरुषका संबंध न हुआ हो वह पुनः विवाहके योग्य है,

प्रोषितपत्नी पंचवर्षा प्रवसेद्यद्यकामा यथा प्रेतस्य एवं च वर्तितव्यं स्यात् । एवं पंच ब्राह्मणीप्रजाता चत्वारि राजन्या प्रजाता त्रीणि वैश्या प्रजाताद्रे शूद्रा प्रजाता । अत ऊर्ध्वं समानोदकपिंडजन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान् । न खलु कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ।

जिसका पति परदेशको गयाहो वह पांच वर्षतक बैठीरहै, इसके उपरान्त पतिके निकट चली जाय, यदि धर्म और धनके लोभसे परदेशकी इच्छा न करै तौ मरनेकी स्त्रीके समान वर्ताव करै; इसीप्रकार ब्राह्मणकी संतान पांच वर्षतक, क्षत्रियाकी चारवर्षतक, वैश्याकी तीनवर्षतक और शूद्राकी दो वर्षतक प्रतीक्षा करै पीछे पर पतिपर चलीजाय, आगे समानोदक गोत्र, सपिंड इनमें पहलार श्रेष्ठ है; और कुलीनके विद्यमान होतेहुए पर पुरुषका संग न करै.

यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्वायादः स्यात् सपिंडाः पुत्रस्थानीया वा तस्य धनं विभजेरंस्तेषामलाभे आचार्यान्तेवासिनौ हरेयातां तयोरलाभे राजा हरेत् । न तु ब्राह्मणस्य राजा हरेद्ब्रह्मस्वं तु विषं घोरम् । न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् इति ॥ त्रैविद्यसाधुभ्यः संप्रयच्छेदिति ॥

इति वशिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

जिस पुरुषके पहले दायके भागियोंमेंसे यदि कोईभी अंशका भागी न हो तौ सपिंड वा पुत्रके स्थानी उसके धनको परस्परमें बांटलें, आर यदि यहभी न होय तौ आचार्य और शिष्य उसके धनके अधिकारी हैं, और यदि यहभी न होय तौ उस धनको राजा ले ले, और ब्राह्मणके धनको राजाके लेनेका अधिकार नहीं, कारण कि ब्राह्मणका धन घोर विष है, कारण कि यह कहाहै कि विष विष नहीं है, ब्राह्मणके धनको विष कहा है, विष तौ केवल एक कोही मारताहै, और ब्राह्मणका धन पुत्र पौत्रोंको मारनेवाला है इस कारण राजाको उचित है कि ब्राह्मणके धनको राजा तीनों विद्याओंके जाननेवालोंको देदे ।

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भार्गवीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चांडालो भवतीत्याहुः । राजन्यायां वैश्यायामन्यावसायी । वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको भवतीत्याहुः । राजन्यायां पुक्कसः । राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः सूतोभवतीत्याहुः ॥

शूद्रसे जो ब्राह्मणीमें उत्पन्नहो वह चांडाल होताहै, ऐसा कहागयाहै, क्षत्रिया और वैश्योंमें जो शूद्रके औरससे उत्पन्नहुआ पुत्र अंत्यावसायी होताहै और ब्राह्मणीमें जो वैश्यसे पुत्र उत्पन्न

हुआहै वह रोमक कहाताहै; और क्षत्रिया स्त्रीमें जो वैश्यके औरससे पुत्र उत्पन्न हुआ है उसे पुत्रकस पुत्र कहतेहैं; और क्षत्रियके औरससे जो ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ है वह पुत्र सूत कहाता है;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ छिन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलोम्यगुणाश्रिताः ॥ गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान्विजानियुरिति । एकांतरद्व्यंतरज्यंतरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरवच्छिन्ना अंबष्टा निषादा भवंति । शूद्रायां पारशवः पारयन्नेव जीवन्नेव शवो भवतीत्याहुः शव इति मृताख्या एतच्छावं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे तु नाध्येतव्यम् ॥

इसमें यहभी वचन कहेगये हैं कि इसभांति गुप्तभावसे उत्पन्न होकर नीचजातिभी समान गुणवाली होजातीहै इसकारण गुणहीन भ्रष्टाचार और हीनकर्मोंसे इनकी पहचान करै एक, दो, वा तीन वर्णके व्यवधानसे जो ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्योंसे उत्पन्न हो वह क्रमानुसार अष्ट निषाद और भील होतेहैं, और शूद्रोंमें उत्पन्नहुआ पारशव होता है, वह जीता हुआही शव होताहै, यह शास्त्रमें विदित है, शव यह मृतकका नाम है और कोई २ ऐसाभी कहतेहैं कि शूद्रही श्मशान है, इसकारण शूद्रके समीप कदापि न पड़े;

अथापि यमगीताञ्छ्लोकानुदाहरन्ति ॥ श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं ये शूद्राः पापचारिणः ॥ तस्माच्छूद्रसमीपे च नाध्येतव्यं कदाचन ॥ न शूद्राय मर्ति दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥ न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

यहांपर यम ऋषिके कहेहुए श्लोकोंको कहतेहैं, कि पापकरनेवाले शूद्रही प्रत्यक्ष श्मशानकी समानहैं, इसीकारणसे शूद्रके निकट पढ़नेका निषेधहै और शूद्रको ज्ञान, उच्छिष्ट, तथा साकल्य न दे, और धर्मोपदेश तथा व्रतका उपदेश भी शूद्रको देना उचित नहीं ॥

यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत् ॥ सोऽसंवृतं तमो घोरं सह तेन प्रपद्यते ॥ इति ।

जो मनुष्य शूद्रको धर्म और व्रतका उपदेश करताहै वह पुरुष शूद्रके साथ घोरनरकमें जाताहै; व्रणद्वार कर्मिर्यस्य संभवेत् कदाचन ॥ प्राजापत्येन शुद्धयेत् हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणेति ।

जिस पुरुषके घावमें कदाचित् कीड़े होजायें तौ प्राजापत्य व्रतकर सुवर्ण गौ और वख इनकी दक्षिणा देनेसे शुद्ध होताहै;

नाशित्परांमपेयात् कृष्णवर्णायाः सरमाया इव न धर्माय न धर्मायति ॥ :

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अग्निहोत्री मनुष्य अन्यस्त्रीका संग न करै, कारण कि कालेवर्ण (शूद्र) की स्त्री भोगके लियेही है धर्मके लिये नहीं है ।

इति श्रीवसिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

धर्मे राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात् सिद्धिः । भयकारणं ह्यपालनं वै
एतत् ॥ सूत्रमाहुर्विद्वांसस्तस्माद्गार्हस्थ्येनैयमिकेषु पुरोहिते दद्याद्विजातये
ब्राह्मणः पुरोहितो राष्ट्रं दधातीति । तस्य भयमपालनादसामर्थ्याच्च ॥

प्रजाकी पालना करनाही राजाका धर्म है, कारण कि, पालनाका न करना यही भयका
कारण होजाताहै इससे यही जीवनपर्यन्त करने योग्य है, इसी विषयमें विद्वानोंने सूत्र कहाहै,
इस कारण गृहस्थके आवश्यकीय कार्योंमें पुरोहितको पालनका मार सौंपदे, कारण कि यह
शास्त्रसे विदित हुआहै कि राजाका पुरोहित ब्राह्मण देशकी पालना करता है. अपालन और
सामर्थ्यके अभावसे राजाको भय होताहै;

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् सर्वान् वैताननुप्रविश्य राजा चतुरो वर्णान् स्वध-
र्मे स्थापयेत्तेष्वधर्मपरेषु दंडं तु देशकालधर्माधर्मवयोविद्यास्थानविशेषैर्दिशेत्
आगमादृष्टाभावात् पुष्पफलोपगान्यदेयानि हिंस्यात् कर्षणकरणार्थं चोप-
हृत्या । गार्हस्थ्यं गां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् । अधिष्ठानान्नो नीहारसा-
र्थानामस्मान्न मूल्यमात्रं नैहारिकं स्यान्महामहस्थः स्यात् । संमानयेदवाह-
नीयद्विगुणकारिणी स्यात् । प्रत्येकं प्रयास्यः पुमान् शतं वाराद्धयं वा तदेतद-
प्यर्थाः स्त्रियः स्युः कराष्टौ मानाधारमध्यमः पादः कार्पापणस्य । निरुक्तो-
न्तरोः मानाकरः श्रोत्रियो राजपुमानथ प्रव्रजितचालवृद्धतरुणप्रदाता प्रागा-
मिकाः कुमार्यो मृतापत्याश्च बाहुभ्यामुत्तर शतगुणं दद्यान्नदाकक्षवनशैलो
पमांगा निष्कराः स्युस्तदुपजीविनो वा दद्याः । प्रतिमासमुद्राहकरैस्त्वागमये-
द्राजनि च प्रेते दद्यात् । प्राशंगिकं तेन मातृवृत्तिर्व्याख्याता । राजमहिष्याः
पितृव्यमातुलंशजापितृव्यान् राजा विभृयात्तद्रामित्वादंशस्य स्युस्तद्वंधूंश्चा-
न्याश्च राजपत्न्यो ग्रासाच्छादनं लभेरन् अनिच्छंतौ वा प्रव्रजेरन् क्लीबोन्मत्तां-
श वापि ॥

देश, जाति, कुल, इनके सब धर्मोंको राजा जानकर चारों वर्णोंको अपने २ धर्ममें स्थितकरै
और जब चारोंवर्ण अधर्ममें तत्पर होजायें तब देश, काल, समय, धर्म, अवस्था, विद्या, स्थान
इनकी विशेषताके अनुसार दंड दे, शास्त्रमें कहा नहीं इसवास्ते फलवाले वृक्षांको काटना
उचित नहीं. यदि खेती करनी हो तौ काटले गृहस्थकी सामग्री और नियमोंके मान तथा
तालकी रक्षा राजाको करनी उचित है और नगरीमेंसे अपने करके मध्यमें अन्न इत्यादिको
न ले परन्तु धन लेले, और देवस्थान, श्मशान, तथा मार्ग इनका कर राजाको लेना उचित नहीं
युद्धकी यात्राके समय दश वाहक वाहिनी सना दूनी लेजानी उचित है और सेना २ में प्याउ
भी हों कमसे कम सौ गज घोडाओंसे युद्धकरावै और जो घोडा मृतक होगेयेंहैं उनकी स्त्रियों-
को राजा खाने के लिये भोजन दे, और अतसीका कर आठ भुसका कर पांच और जलका
कर चौथाई कार्पापण होताहै यदि जल सूख गयाहो, तौ करका लेना उचित नहीं, वेदपाठी,

राजाका पुरुष, संन्यासी, बालक, वृद्ध, विद्यार्थी, दाता, विधवा स्त्री और सेवकोंकी स्त्री इनसे राजाको कर लेना उचित नहीं, यदि कोई भुजाओंके बलसे नदीको पार हो तो उससे सौ गुना कर लेनेका दंड दे; नदीके किनारे, वन दाह पर्वतोंके निवासियोंको निष्कर कहते हैं अथवा जो उन नदी इत्यादिसे जांविका निर्वाह करे वह राजाको कर दे या न दे; और जो अपने शरीरसे शिल्पविद्याका कार्य करते हैं उनसे प्रत्येक महीनेमें एक दिन काम करा ले जिस राजाके संतान न हो और उसको मृत्यु होजाय तो राजाके करको राजाके श्राद्धमें लगा दे, इसकारण राजामें माताके सन्मान वर्ताव कहा है, अर्थात् जिसभांति माताके श्राद्धमें पुत्र देताहै, उसी भांति राजाके श्राद्धमें दे, और जिस रानीको राज्य मिलाहो, उसके चाचा, मामा, तथा धंधुओंका पालन राजा करे, राजाकी स्त्रियोंकोभी भोजन वस्त्र मिलना उचित है, जिस राजाकी रानीकी भोजन वस्त्रकी इच्छा नहो वह जहां इच्छा हो वहां चलीजाय, नपुंसक और उन्मत्तोंका पालन राजा करे, कारण कि उनका धन राजाकोही मिलताहै;

मानवं श्लोकमुदाहरन्ति ॥ न रिक्तकार्पापणमस्ति शुल्कं न शिल्पवृत्तौ न शिशौ न धर्मे ॥ न भक्षवृत्तौ न हुतावशेषे न श्रोत्रिषे प्रव्रजिते न यज्ञे ॥ इति ।

शुल्कके विषयमें इस न्यायपर मनुके श्लोक कहतेहैं, स्वापारियोंको वृक्षानपरसे राजा करले; और शिल्प, विद्या, बालक, वृद्ध, भिक्षासे मिला, चोरीसे वचा, संन्यासी, यज्ञ इन त्यागोंमें राजाको करलेना उचित नहीं;

स्तेनानिश्चस्तदुष्टशस्त्रधारिसहोद्व्रणसंपन्नव्यपविष्टेष्वेकेषां दंडोत्सर्गे राजैकरा-
प्रसृपवमेत् विरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रमदंडचदंडेन पुरोहितन्विरात्रं वा ॥

यदि चोर चोरीका धन राजाको देदे तो क्षुपित नहीं है, यदि शस्त्रधारो, अपराधी और जिसके शरीरमें घाव होजाय और वह राजाके पास चलाजाय तो वह अपराधी नहीं है; यदि राजा दंड देने योग्यको बिना दंडदियेही छोड़दे तो मकरात्रितक उपवास करे और पुरोहितको तीन रात्रितक उपवास करना उचित है; और दण्डके अयोग्यको दंड देनेमें पुरोहितको कृच्छ्र करना उचित है,

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अत्रादं भ्रूणहा मार्षि पत्यो भार्यापचारिणी ॥ गुरौ शि-
प्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥ राजभिर्घृतदंडास्तु कृत्वा पापानि
मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनो यथा ॥ एनो राजानमृ-
च्छत्यप्नुन्मजंतं सकिल्बिषम् ॥ तं चेन्न घातयेद्राजा राजधर्मेण दुष्य-
ति ॥ इति ।

यहां यह भी बचनहै, कि भ्रूणहत्याकरनेवाला अन्नके भोजकाको, व्यभिचारिणी स्त्री पति को शिष्य और याज्य गुणको और चोर राजाको अपना पाप देतेहैं, यह पापकरनेवाले राजा के दंडदेनेसे शुद्ध होते हैं, और वह शुद्धहोकर स्वर्गमें इस भांति जातेहैं जिसभांति पुण्यात्मा, पापियोंके छोड़नेसे पाप राजाको लगताहै, यदि राजा पापीका वध न करे तो राजधर्म क्षुपित होता है;

राज्ञामन्येषु कार्येषु सद्यः शौचं विधीयते ॥ तथा तान्यपि नित्यानि काल एवात्र कारणम् ॥ इति ॥ यमगीतं च श्लोकमुदाहरन्ति ॥ नात्र दोषोऽस्ति राज्ञां वै व्रतिनां न च मंत्रिणाम् ॥ ऐन्द्रस्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा इति ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

राजा हि चार्क कर्मोंमें शीघ्रही शुद्ध होजाताहै, उसीप्रकार सम्पूर्ण कर्मोंमें राजाकी शुद्धि है, कारण कि इसमें कारण समयही है, यहाँपर यमकृपिके कहेहुए श्लोकोंको वर्णन करतेहैं, राजा, व्रतवान् और मंत्रके ज्ञाता इनको दोष नहीं लगता; कारण कि वह सब इन्द्रके स्थानमें (अर्थात् राजगद्दी और धर्म गद्दी यह इन्द्रका स्थानहोताहै इस वास्ते) वे सर्वदा ब्रह्म रूपसे विराजमान हैं ॥

इति श्रीवशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अनभिसंयिकृते प्रायश्चित्तमपराधे सविकृतेऽप्येकः । गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ॥ इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यम इति । तत्र च सूर्याभ्युदयतः सन्नहस्तिष्ठेत्सावित्री च जपेदेवं सूर्याभिनिर्मुक्तो राजावासीत् ॥

अज्ञानसे किये हुए पापका प्रायश्चित्त है और जानकर किये हुए पापका प्रायश्चित्त भी कोई २ कहते हैं, गुरु ज्ञानियोंका शासनकर्त्ता है, राजा दुरात्माओंका शासन करनेवाला है, इस लोकमें जो गुप्तभावसे पाप करतेहैं, उनका शासन करनेवाला यमराज है; प्रायश्चित्तके समयमें सूर्याभ्युदयसे लेकर सारे दिनतक खड़ाहुआ गायत्रीका जप करतारहै, और सूर्यास्त होनेपर सारी रात्रि बैठा रहै;

कुनस्त्री श्यावदंतस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनर्निर्विशेत् । अथ द्विधिपूपातिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निर्विशेत्तां चैवोपयच्छेद्विधिपूपातिः कृच्छ्राति-कृच्छ्रौ चरित्वा निर्विशेत् चरणमहरहस्तद्रक्ष्यामः । ब्रह्मन्नः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनरुपनीतो वेदमाचार्यात् । गुरुतत्पगः सवृषणं शिश्नमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् यत्रैव प्रतिहन्यात्तत्र तिष्ठेदामलया-त्रिष्कालको वा घृताक्तस्तप्तां सूर्मिं परिष्वजेन्मरणान्मुक्तो भवतीति विज्ञायते । आचार्यपुत्रक्षिप्यभार्यासु चैवं योनिषु च गुर्वी सखा गुरुसखी च पतितां च गत्वा कृच्छ्रावदं चरेत् एतदेव चांडालपतितान्नभोजनेषु ततः पुनरुपनयन वपनादीनां तु निवृत्तिः ॥

विगडे नखवाला तथा जिसके काले दाँत हों वह वारह रात्रितक कृच्छ्र करतारहै; और पौरिविधि वारह रात्रितक कृच्छ्र करै, इसके पीछे दूसरी स्त्रीके साथ विवाह करले; और

१ परिवेत्ता और परिवित्तिके लक्षण यह हैं कि बडे भाईके अविवाहित रहते छोय भाई विवाह करे तो वह परिवेत्ता है और बढामाई परिवित्ति कहावाहै ।

छोटे भाईकी स्त्री जिसका विवाह अपने विवाहसे प्रथम हुआहै उस स्त्रीको ग्रहण न करै, और परिवर्त्ति छोटाभाई कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करके उस स्त्रीको बड़े भाईकी अनुमतिसे फिर ग्रहण करले; और अप्रेदिधिपुका पति बारह रात्रि तक कृच्छ्र करके अपना दूसरा विवाह करले, और पहली स्त्रीको ग्रहण न करै और दिधिपुके पतिको उस स्त्रीके अर्पणकर फिर उसे अंगीकार करै; और शूर वीरके हत्यारेका प्रायश्चित्त अगाडी कहेंगे, और वेदका त्यागकरनेवाला बारह रात्रितक कृच्छ्र करके फिर आचार्यसे वेद पढ़ै, और गुरुकी शय्यापर गमन करनेवाला अण्डकोशों सहित अपनी लिंग इन्द्रियको काटकर हाथकी अंजुलीके ऊपर उसे रखकर दक्षिण दिशाकी ओरको मुखकरके चलाजाय; और जब न चलाजाय तो उसी स्थानपर मरण समयतक स्थित रहै, और जो जबभी मृत्यु न हो तो तपीहुई लोहेकी सलाका का स्पर्श करै, वह मृत्युसेही पवित्र होताहै, यह शास्त्रसे विदितहै, आचार्य, पुत्र और शिष्य इनकी स्त्रियोंमें और अपनी जातिकी स्त्रियोंमें भी गमन करनेसे यही प्रायश्चित्त है, गर्भवती, मित्रकी स्त्री, वा गुरुके मित्रकी स्त्री, हीनजातिकी स्त्री और पतितके साथ गमन करनेवाला तीन महीनेतक कृच्छ्र करै, और जो मनुष्य चांडाल तथा पतित इनके यहांका भोजन करता है उसके लियेभी यही प्रायश्चित्त है और वह मनुष्य अपना पुनर्वार यज्ञोपवीत करै, परन्तु मुंडन न करावै;

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ वपनं मेखला दंडो भैक्षचर्यव्रतानि च । निवर्त्तते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ इति ॥

इस विषयमें मनुका श्लोक कहते हैं कि, मुंडन, मेखला, दंड, भिक्षा, व्रत यह द्विजातियों के दुवारा संस्कारमें नहींहोते अर्थात् इनका निषेध है;

सर्वमद्यपाने क्लीबव्यवहारेषु विष्णून्मरेतोऽभ्यवहारेषु चैवम् ।

जो जानकर आटेसे बनी या गुड तथा मधुसे बनीहुई सबप्रकारकी मदिराको पीताहै, और जो क्लीबोंके व्यवहार करता है, वह कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र करै और पुनर्वार संस्कार करै; विष्टा, मूत्र, धीर्य इनके खानेमेंभी यही प्रायश्चित्त करै;

मद्यभांडे स्थिता अपो यदि कश्चिद्विजोऽर्थवत् ॥ पद्मोदुंबरविल्वपलाशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति । अभ्यासे सुराया अग्निवर्णा तां द्विजः पिबेत् ।

यदि कोई द्विज मदिराके पात्रमें रक्खे हुए जलको पीले तो पिलखन, गुलर, बेल और ढाकको औटाकर इनके जलको तीन रात्रितक पिये तब वह शुद्ध होताहै; और जो मनुष्य बारंबार मदिराको पीताहै वह अग्निसे समान वर्णवाली तप्तमदिराका पान करै, तब उसकी शुद्धि शरीरपात होनेसे होती है अर्थात् वह मरकर शुद्ध होता है;

भ्रूणहनं च वक्ष्यामः । ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवत्यविज्ञातं च गर्भम् । अविज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवंति तस्मात् पुंस्कृत्य जुहुयात् । लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय इति प्रथमां त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति द्वितीयं लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति तृतीयां

त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचामृत्युं वासय इति चतुर्थी मांसानि मृत्योर्जुहोमि मांसै-
र्मृत्युं वासय इति पंचमी मेदेन मृत्योर्जुहोमि मेदसा मृत्युं वासय इति षष्ठीम-
स्थानि मृत्योर्जुहोमि अस्थिभिर्मृत्युं वासय इति सप्तमी मज्जानं मृत्योर्जुहो-
मि मज्जाभिर्मृत्युं वासय इति अष्टमीम् । राजार्थे ब्राह्मणार्थे वा ग्रामेऽभिमुख-
मात्मानं घातयेत् । त्रिरंजितो वापराधः पूतो भवतीति विज्ञायते । दिरुक्तं
कृतः कनीयो भवतीति ।

ब्राह्मणको और जिस गर्भका ज्ञान न हो उस गर्भके मारनेसे मनुष्यको भ्रूणहत्याका पाप होता है; कारण कि, बिना जाने गर्भ पुरुष होते हैं इसकारण पुरुष मानकर इन मंत्रोंसे हवन करै “लोमोंको मृत्युके निमित्त होमताहूँ और लोमोंसे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह पहली “त्वचाको मृत्युके निमित्त होमताहूँ और त्वचासे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह दूसरी “रुधिरको मृत्युके निमित्त होमताहूँ, और लोहितसे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह तीसरी “मांसोंको मृत्युके निमित्त होमताहूँ, और मांसोंसे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह चौथी “स्नायुको मृत्युके लिये होमताहूँ, और स्नायुसे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह पांचवी “भेदाको मृत्युके निमित्त होमताहूँ, और भेदासे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह छठी “अस्थियोंको मृत्युके लिये होमताहूँ, और अस्थियोंसे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह सातवीं “मज्जाको मृत्युके निमित्त होमताहूँ और मज्जाओंसे मृत्युको तृप्त करताहूँ” यह आठवीं आहुति इसभांति दे राजा वा ब्राह्मणके निमित्त संग्राममें अपनेको मरवा दे पूर्वोक्त प्रकारसे जब उसकी तीनवार पराजय होजाय तब वह शूद्र होताहै यह शास्त्रमें विदित है, यदि दूसरेको अपने पापको कह दे तो पापीका पाप कनिष्ठहोजाता है;

तदप्युदाहरन्ति ॥ पतितं पतितेऽप्युक्त्वा चोरं चोरेति वा पुनः॥वचसा तुल्यदोषः
स्यान्न मिथ्यादोषतां व्रजेत् ॥ इति ।

अथवा चोरको चोर कहदे, और पतितको यदि पतित कहदे तो उसमें समानही दोष है इसमें मिथ्या दोष नहीं होसकता.

एवं राजन्यं हत्वाष्टौ वर्षाणि चरेत् । पडैश्यं त्रीणि शूद्रं ब्राह्मणं चात्रेयीं
हत्वा सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ च । आत्रेयीं वक्ष्यामो रजस्वलामृतुस्नातामा-
त्रेयीमाहुः । अत्रेत्येषामपत्यं भवतीति चात्रेयी । राजन्यहिंसायां वैश्यहिंसा-
यां शूद्रं हत्वा संवत्सरं ब्राह्मणसुवर्णहरणात् प्रकीर्य केशान् राजानमभिधा-
वेत् स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु भवानिति तस्मै राजौदुंबरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं
प्रमापयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते । निष्कालको वा घृताक्तो गोमया-
ग्निना पादप्रभृत्यात्मानमधिदाहयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

क्षत्रियको मारनेवाला आठ वर्षतक कूच्छ करै, वैश्यको मारनेवाला छै वर्षतक और शूद्रको मारनेवाला तीनवर्ष तक कूच्छ करै, और वैश्य तथा आत्रेयी और यज्ञमें स्थित क्षत्री और पश्यको मारनेवाला तीन वर्षतक कूच्छ करै, आत्रेयीको कहते हैं कि जिस रजस्वला स्त्रीने अतुस्नान कियाहो उसीको आत्रेयी कहते हैं, यह ऋषियोंने कहाहै आत्रेयी पदका यह अर्थ है कि, जिसमें गमनकरनेमें संतान उत्पन्नहो, आत्रेयीके अतिरिक्त ब्राह्मणीकी हिंसामें

क्षत्रीकी हिंसामें और क्षत्रियाकी हिंसामें वैश्यकी हिंसाका और वैश्याकी हिंसामें शूद्रकी हिंसाका प्रायश्चित्त करके शूद्रको मारनेवाला एक वर्षतक कृच्छ्र करै; ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाला अपने केशोंको खोलकर राजाके सन्मुख दौड़कर चलाजाय और शीघ्रतासे जाकर यह कहै “कि हे राजन् ! मैं चोर हूं तुम मुझे दंड दो” तब राजाको उसे गूलरका शाख देना उचित है, उससे वह अपने शरीरको मारे तब वह मरनेसे शुद्ध होताहै यह शाख से जाना गयाहै, यदि वह न मरे तौ अपने शरीर पर घीको मलकर उपलोंकी अग्निसे परोतक अपने शरीरको जला दे, उसकी शुद्धि मरनेसेही होतीहै;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ पुरा कालात्ममीतानामानाकविधिकर्मणाम् ॥ पुनरापन्नं देहानामंगंभवति तच्छृणु ॥ स्तेनः कुन्तली भवति श्वित्री भवति ब्रह्महा ॥ सुरापः श्यावदंतस्तु दुश्कर्मा गुरुतल्पगः ॥ इति । पतितैः संप्रयोगे च ब्राह्मेण वा यौनेन वा तेभ्यः शकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परित्यागस्तैश्च न संवसेदु-
दीर्घां दिशं गत्वाऽनश्नन् संहिताध्ययनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

इस विषयमें किसीर का यहभी वचन है कि, जिन्होंने स्वर्गकी विधिके कर्म नहीं किये हैं, और जो समयसे प्रथमही मरगयेहैं, फिर जब उनका जन्म होताहै तब उनके शरीरपर यह बिह्व होतेहैं उनका वर्णन करतेहैं श्रवणकरो, चोरी करनेवालेके धुरे नख होतेहैं, ब्रह्महत्या करनेवाला श्वेतकुष्ठो होताहै; मदिरा पीनेवालेके दांत काले होतेहैं, गुरुकी शय्यापर गमन करनेवालेका चमड़ा घुरा होताहै, पतितोंके साथ विद्या वा योनिका सम्बन्ध करनेसे जो उनसे धन आदि मिलै उसे त्याग दे, और उनके साथ फिर निवास न करै; फिर वह उत्तर दिशामें जाय भोजनको त्यागकर संहिताको पढतारहै तब वह शुद्ध होताहै, यह शाख-से जाना गयाहै;

अथाप्युदाहरन्ति ॥ शरीरपातनाच्चैव तपसाध्ययनेन च ॥ मुच्यते पापकृत्पा-
पादानाच्चापि प्रमुच्यते ॥ इति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इसमें यह वचनभी कहाहै, कि शरीरके गिराने, तपस्या करने और पढनेसे पाप करने वाला मुक्त होजाता है और दान देनेसे भी पापसे छूटजाता है यह शास्त्रसे विदित हुआ है ।

इति वासिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्दीरगैर्वैष्टयित्वा शूद्रमग्नौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वा-
पनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नम्रां खरमारोप्य महापथमनुब्राजयेत् पूता भवती-
ति विज्ञायते ॥ वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेल्लोहितदर्भैर्वैष्टयित्वा वैश्यमग्नौ प्रास्ये-
द्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नम्रां गोरथमारोप्य महापथ-
मनुसंब्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते । राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छरपत्रै-

वेष्टायित्वा राजन्यमभौ प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरोवापनं कारयित्वा सर्पिषामन्यज्य
नभो रक्तग्रन्थारोप्य महापयमनुवाजयेत् ॥ एवं वैश्यो राजन्यायां बृद्धश्च
राजन्यावैश्ययोः ।

बृद्ध यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो मुखको कृणोंमें लपेटकर अग्निमें डाले, और
ब्राह्मणीका शिर मुड़ाकर उसके सारे शरीरमें घृत मलकर तंगी कर गंधकी पीठपर चढ़ा-
कर सड़कके बीचमें घुमाये ऐसा करनेसे वह ब्राह्मणी पवित्र होती है; यह शास्त्रसे जाना गया
है वैश्य यदि ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो वैश्यको लाठ कुशाओंसे लपेटकर अग्निमें डाल
दे और ब्राह्मणीका मस्तक मुड़ाकर उसके सारे शरीरमें घी मलकर तंगीकर देखोंके रखमें
बैठाकर महामार्गमें निकालदे तब वह पवित्र होती है; यह शास्त्रसे विदित हुआ है यदि क्षत्रिय
ब्राह्मणीके साथ गमन करे तो करोंके पत्तोंमें लपेटकर क्षत्रीको अग्निमें डालदे और ब्राह्मणीका
शिर मुड़ाकर उसके समस्त शरीरमें घृत मल तंगीकर गंधपर चढ़ाकर पूजा मार्गको निकालदे
इसीमांति वैश्य क्षत्रियाके साथ गमनकरे, और बृद्ध क्षत्रिया वा वैश्यामें गमनकरे वी पूर्वोक्त
प्रायश्चित्त करनेसे उनको मुक्ति होती है ।

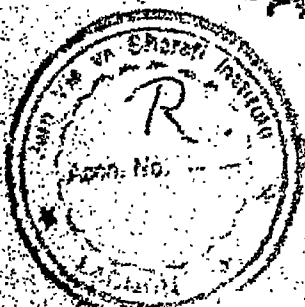
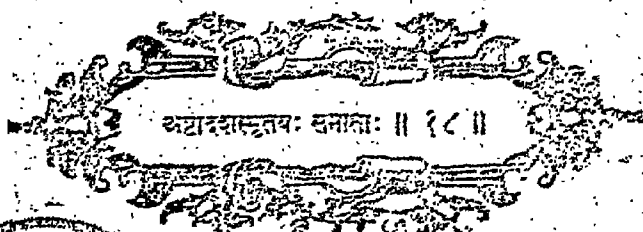
मनसा भर्तुरतिचारि त्रिरात्रं यावत् क्षीरं भुञ्जानाथः शयाना त्रिरात्रमपि निद्र-
मायाः सावित्र्यप्रगतेन शिरोभिर्वा जुहुव्यान्धृता भवतीति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्र एकविंशद्विंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

समाप्त्यं वासिष्ठस्मृतिः ।

जो स्त्री मनसे पतिकका अवलम्बन करे वह तीन रात्रितक जी और दूधको छाकर पृथ्वीपर
शयन करे; लड़में तीन रात्रि स्नातकरे, और आठसौ गायत्री वा शिषिसन्त्रोक्त हवन करे
तब वह पवित्र होती है, ऐसा शास्त्रसे जाना गया है ।

इति श्रीवासिष्ठस्मृतौ भारद्वाजायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टोम्-कमालय-बम्बई.

